कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यविरचितं

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितमहाकाव्यम्

द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ पर्वाणि

सम्पादक :

मुनिराज श्रीपुण्यविजयजी महाराज

શ્રી હેમચંદ્રાચાર્ય

प्रकाशक :

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति

शिक्षण-संस्कारनिधि

अहमदाबाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यविरचितं

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितमहाकाव्यम्

द्वितीय – तृतीय – चतुर्थ पर्वाणि

सम्पादक:

आगमप्रभाकर मुनि श्री पुण्यविजयजी महाराज

श्री हेमचंद्राचार्य

प्रकाशक :

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति
शिक्षण – संस्कार निधि, अमदावाद
आर्थिक सहयोग: श्रीजैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक बोर्डिंग, अमदावाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितमहाकाव्यम् ।

द्वितीय–तृतीय–चतुर्थ पर्वात्मको द्वितीयो विभागः ।

आद्यसम्पादकः मुनिराज श्रीपुण्यविजयजी महाराजः ।

परिशिष्टादिना समलङ्कृत्य पुनः सम्पादकः

पूज्यपादाचार्यप्रवर श्रीविजयसूर्योदसूरिवर–शिष्य पं. शीलचन्द्रविजय गणी ।

प्रकाशक : क. स. श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति शिक्षण संस्कारनिधि, अमदावाद.

प्रतयः ५००

वि. सं. २०४६ ई. स. १९९०

मूल्यम् :

प्राप्ति स्थान : (१) श्रीविजयनेमिसूरि ज्ञानाशाला पांजरापोळ, रिलीफ रोड, अमदावाद–३८०००१

(२) सरस्वती पुस्तक भण्डार
हाथीखाना, रतनपोळ
अमदावाद–३८०००१

परिशिष्टादि मुद्रक : क्रिश्ना प्रिन्टरी
हरजीभाई पटेल
जूना नारायणपुरा गाम
अमदावाद–३८००१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण

शान्ति अने समतानी
मूर्ती छतां प्रचंड शक्तिना स्वामी,
संयमनी नरवी साधना द्वारा प्राप्त-
सहज प्रसन्नताना भंडार,
परमवत्सल छतां परमनिरीह
परमपूज्य आचार्य भगवन्त
श्रीविजयविज्ञानसूरीश्वरजी महाराजनी
पावनकारी स्मृतिमां......

— शीलचन्द्रविजय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय निवेदन

कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्यनी नवमी जन्म शताब्दीना उपलक्ष्यमां तेमनी महान काव्य रचना स्वरूप त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित्र नामक ग्रंथनुं पुनमुद्रण करतां अमे अपार हर्षनी लागणी अनुभवीए छीए.

छत्रीश हजार श्लोकोमां पथरायेला अने २४ तीर्थंकर भगवन्तो तथा अन्य शलाकापुरुषोनां विशद अने विस्तृत चरित्रो वर्णवतो आ ग्रंथ जैन संघना संस्कृत तेमज ऐतिहासिक साहित्यमां अपूर्व अलंकार स्वरूप ग्रंथ छे. आ ग्रंथनुं पठन पाठन तेनी रचना थइ त्यारथी मांडीने आज पर्यंत जैन संघमां अविरतपणे चाल्या ज कर्युं छे अने हजी पण ए ज प्रकारे ते ग्रंथ वंचातो रहेशे ते निःसन्देह छे.

आ ग्रंथनी एक करतां वधु आवृत्तिओ, जुदा जुदा स्थलेथी प्रगट थइ छे. अने आजना फोटोस्टेट के ओफसेट मुद्रण पद्धतिना झडपी समयमां तो अत्यन्त झडपथी तेनी नकलो छपाइ रही छे, जे आ ग्रन्थनी मांग अने उपयोगितानुं द्योतन करे छे. परन्तु आ महाग्रन्थनुं जुदी जुदी प्राचीन ताडपत्रीय तथा अन्य हाथपोथीओनां आधारे संशोधन करी, तेनी शुद्ध वाचना तथा उपलब्ध पाठांतरोनी नोंध तथा विशिष्ट टिप्पणी वगेरे तैयार करवापूर्वक आ ग्रन्थ प्रगट थाय ते अत्यन्त जरूरी हतुं. केम के आ ग्रन्थ मात्र जैन साधु साध्वीओमां ज नहि, पण जैनेतर समाजमां तेम ज विदेशी विद्वज्जगतमां पण खूब जिज्ञासापूर्वक वंचातो रह्यो छे अने आ ग्रन्थना गुजराती-हिंदी ज नहि, पण विदेशी विद्वाने करेल अंग्रेजी अनुवादो पण प्रगट थया छे. आ संयोगोमां आ ग्रन्थनी समीक्षित-संशोधित-शुद्ध वाचना तैयार करवी अत्यन्त अनिवार्य गणाय.

आ वात आजथी छ दायका अगाउ न्यायांभोनिधि परमपूज्य जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजना पट्टधर पंजाबकेशरी परमपूज्य आचार्य श्री विजयवल्लभसूरीश्वरजी म. ना प्रशिष्य विद्वत्प्रवर परमपूज्य मुनिराज श्री चरणविजयजी म. ना ध्यान पर आवी हती, अने सम्पूर्ण त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्रना सम्पादननुं महान कार्य तेओए आरंभ्युं हतुं, जेना फलस्वरूपे वि. सं. १९९२ (ई. १९३६) मां आ महाग्रन्थनो प्रथम पर्वात्मक प्रथम भाग, पुस्तकाकारे तेम ज प्रताकारे, भावनगरनी श्री जैन आत्मानन्द सभा तरफथी प्रगट थयो हतो.

दुर्भाग्ये आ पछी थोडा ज समयमां सम्पादक मुनिराज कालधर्म पामी जतां, बीजा भागनुं शरू थयेलुं काम अधूरूं रह्युं, जे त्यार पछी आगमप्रभाकर पूज्य मुनिराज श्रीपुण्यविजयजी महाराजे पूरुं करी आप्युं, अने ते बीजो भाग वि. सं. २००६मां (ई. १९५०) ते ज सभा तरफथी प्रगट थयो हतो. आ बीजा भागमां २-३-४ पर्वोनो समावेश थयो छे.

सं. २०४५ ना वर्षे श्री कलिकालसर्वज्ञनी नवमी शताब्दीनुं निमित्त पामीने अत्यारे अलभ्यप्राय आ बन्ने भागोनुं पुनर्मुद्रण करवानी तेम ज आगलना अवशिष्ट पर्वात्मक भागोनुं सम्पादन-प्रकाशन करवानी भावना प. पू. आचार्यमहाराज श्रीविजयसूर्योदय सूरीश्वरजी महाराज तथा तेमना शिष्य पं. श्री शीलचन्द्रविजयजी गणीने थतां तेओश्रीए अमोने प्रेरणा करतां अमोए ते स्वीकारी लीधी, अने प्रथम तबक्कामां आजे तद्दन अप्राप्य एवा प्रथम-द्वितीय भागोनुं पुनर्मुद्रण करवानुं नक्की कर्युं, जेना फलरूपे प्रस्तुत ग्रन्थ आपना हाथमां छे.

आ बन्ने भागोना पुनर्मुद्रण माटे सम्मति आपवा बदल श्री जैन आत्मानन्द सभा-भावनगरनो अमे घणो घणो आभार मानीए छीए. अने आ बन्ने भागोनुं झडपी पुनमुद्रण करी आपवा बदल श्री सरस्वती पुस्तक भण्डार अमदावादना संचालकोना पण अमे ऋणी छीए.

पुस्तकरूपे प्रगट थतां आ बे भागो आम तो जूनी आवृत्तिनुं ओफसेट पद्धतिथी करेलुं पुनमुद्रण ज छे. तेम छतां आ आवृत्तिमां थोडांक परिशिष्टोनो उमेरो करवामां आव्यो छे, ते आ प्रमाणे—

परिशिष्ट १ मां श्लोकोनो अकारादिक्रम मूकवामां आव्यो छे; बीजा परिशिष्टमां ग्रन्थगत विशेष नामोनी सूचि आपी छे, त्रीजा परिशिष्टमां ग्रन्थगत सूक्ति-कण्डिकाओनु संकलन छे. आ उपरांत प्रथम आवृत्तिमां क्यांक क्यांक अशुद्धिओ रही गयेली जणातां तेनी नोंध करी तेनुं शुद्धिपत्रक पण आ मुद्रणमां मूकेल छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ बधां परिशिष्टो वगेरे तैयार करवामां प. पू. मुनिराज श्री नन्दिघोषविजयजी, मुनिराज श्री जिनसेनविजयजी, मुनिराज श्री विमलकीर्तिविजयजी आदिए घणो श्रम लीधो छे.

आ ग्रन्थोना सम्पादन माटे उपयुक्त पद्धति तेमज हस्तप्रतिओ आदि विषे जाणकारी जिज्ञासुओने मली रहे ते हेतुथी मूल आवृत्तिना सम्पादकोनां निवेदनो यथावत् पुनर्मुद्रित करेल छे.

प्रथम बे भागोना पुनर्मुद्रण पछी तबक्कावार बाकीनां पर्वोनी सम्पादित वाचनानुं प्रकाशन करवानी पण अमारी भावना छे, अने अमोने आनन्द छे के बाकीनां पर्वोनुं प्राचीन प्रतिओना आधारे सम्पादन कार्य पं. श्री शीलचन्द्रविजयजी करी रह्या होवाथी टूंक समयमां अमारी आ भावना अवश्य साकार बनशे.

प्रस्तुत कार्यमां श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक बोर्डिंग अमदावाद तरफथी अमोने पूर्ण आर्थिक सहयोग प्राप्त थयो छे, ते बदल ते संस्थाना संचालकोनो अमे हृदयपूर्वक आभार मानीए छीए.

अन्तमां, घरदीवडा जेवी अमारी नानकडी संस्थाना माध्यमथी श्री हेमचन्द्राचार्यना महान अने उपकारक साहित्यनो प्रसार–प्रचार करवानो आवो अवसर अमने वारंवार मलतो रहे तेवी शुभ कामना.

डे. लालभाई दलपतभाईनो वंडो
पानकोर नाका
अमदावाद–१

ली.
कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य
नवम जन्म शताब्दी स्मृति
संस्कार शिक्षण निधि, अमदावाद
ना ट्रस्टीओ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रासंगिक

आ बीजा भागना संपादननी प्रस्तावनामां हुं विशेष कशुं लखी शकुं एवी परिस्थितिमां नथी. मात्र एटलुं ज कहीश के आ "त्रिषष्ठि शलाकापुरुष चरित्र" ग्रंथनुं संपादन कार्य पू. पा. आचार्य भगवान श्री विजयवल्लभसूरिजी महाराजना शिष्य मुनिश्री चरणविजयजीए शरु कर्युं हतुं. तेनो प्रथम भाग सन् १९३६ मां पत्राकारे अने पुस्तकाकारे एम बन्ने स्वरूपे प्रकाशित थई चुक्यो छे. ते पछी बीजो भाग पण तरत प्रकाशित करवानो इरादो हतो ज. पण बीजा भागनुं थोडुं काम थया पछी मुनि चरणविजयजी काची उमरे कालधर्म पाम्या. एवा विद्वान साधुनो देहांत ए अमारा बधा माटे घणा ज दुःखनी वात मनाई छे. एमना स्वर्गवास पछी आ संपादन कार्य मारी पासे आव्युं.

मारी पासे बीजां कामो हतां ज, छतांय में ए स्वीकारी लीधुं. पण ए पछीना वर्षोनो समय मारा माटे संघर्षणनो काल पूरवार थयो छे अने घणी अणचिंतवी घटनाओ ए समयमां बनी छे.

प्रथम तो मारी बीमारी ज शरु थई जे घणां वर्षो सुधी चाली, ते दरम्यान पाटण श्री हेमचन्द्राचार्य ज्ञानमंदिरनुं काम शरु थयुं. तेने व्यवस्थित करवामां केटलांक वर्षो गया. ते पछी पू. पा. श्रीमान चतुरविजयजी महाराज कालधर्म पाम्या. ते पछी पू. पा. श्रीमान प्रवर्तकजी महाराज कालधर्म पाम्या एटले बीजी जवाबदारीओ पण आवी. एवामां प्रकाशननुं काम शरु थयुं अने विहार पण शरु थया.

आ घटनाओ एवी सतत रीते बनती रही के प्रस्तुत ग्रंथना संपादननुं काम ठंडुं पडतुं गयुं अने ठेलातुं गयुं. पण ज्यारे आगम संपादननुं काम शरु थयुं त्यारे आ काम तरफ कांईक उपेक्षा पण आवी. पण ए जवाबदारीनो भार मन उपर सतत रह्या करतो हतो एटले तेनो केटलोक अंश तो में तैयार कर्यो पण पाछळथी अवशिष्ट भागनुं काम एक पछी एक जुदी जुदी व्यक्तिओने सोंपवुं पड्युं. तेना पाठांतरो कोईए लीधा, तो टिप्पणो वळी बीजाए कर्यां. तो प्रुफ रिडींग वळी त्रीजाए कर्युं. पाठांतरो पाटणवासी पं. अमृतलाल मोहनलाले लीधा, टिप्पणो पं. बहेचरदासजीए तैयार कर्यां, बाकीनुं काम पं. अंबालाल शाहे कर्युं. एटले मारी तो एमां उपलक दृष्टिनी नजर ज रही शकी छे.

आ रीते आ बीजा भागना संपादननुं काम अनेक हाथे तैयार थयेली रसोई जेवुं छे. ते स्वादिष्ट छे के अस्वादिष्ट छे अथवा एने माटे मने प्रसन्नता छे के विषाद छे ए कशुं व्यक्त करी शकतो नथी, तो पण आटलां वर्षो पछीय प्रस्तुत ग्रंथना बीजा भागने वाचको समक्ष रजू करी संतोष अनुभववानो प्रयत्न करुं छुं.

आ संपादन मारी स्वीकारेली जवाबदारी छे तेने मारा ढंगे पूरी रीते अदा नथी करी शक्यो ए माटे सद्गतनो क्षमाप्रार्थी छुं.

मुनि पुण्यविजय,
(सं. २००६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम आवृत्तिनुं प्रकाशकनुं निवेदन.

कलिकाल सर्वज्ञ परमपूज्य श्रीहेमचन्द्राचार्यकृत श्रीत्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र मूल ग्रंथनुं बीजुं, त्रीजुं, अने चोथुं (त्रण पर्व) बीजो ग्रंथ (विभाग) प्रताकारे अने पुस्तककारे श्री जैन आत्मानंद शताब्दिना आठमा पुष्प तरीके आ प्रगट करवामां आवेल छे

न्यायांभोनिधि श्रीमद्विजयानंद सूरीश्वरजी (आत्मारामजी) महाराजनी जन्मजयंति श्री वडोदरा शहेरमां आचार्य महाराजश्री विजयवल्लभसूरीश्वरजी महाराज साहेबना अध्यक्षपणा नीचे समारोहपूर्वक उजवाणी हती; ते परम गुरुभक्ति अने शताब्दिनुं चिरस्मरण जळवाई रहे ते माटे पूज्य आचार्य महाराजना विद्वान प्रशिष्य श्री चरणविजयजी महाराजने ते कार्य सुप्रत करवामां आवेलुं हतुं. अने क्रमे क्रमे आत्मानंद शताब्दि सिरिझना पाछळ आपवामां आवेल सात ग्रंथो प्रकट थया हता. दरम्यान विद्वान मुनिराजश्री चरणविजयजी महाराजनो अचानक स्वर्गवास थयो. आवा विद्वान मुनिवर माटे आखा परिवारनी जेम ज आ सभाने पण ते दुःखनो विषय बनेल छे.

त्यारबाद आ कार्य केटलाक वखत सुधी मुलतवी रह्युं हतुं, परन्तु त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र जेवा महामूल्य व्याख्यान कथा अने काव्य साहित्यना अपूर्व ग्रंथनुं बाकीनुं प्रकाशन कार्य पूर्ण थवुं जोईए, तेम आचार्यश्री विजयवल्लभसूरीश्वरजी महाराजनी इच्छा थतां साक्षर शिरोमणि पूज्य श्री पुण्यविजयजी महाराजने ते कार्य सुप्रत कर्युं. परम पूज्यश्री पुण्यविजयजी महाराजश्रीए पाटण ज्ञानमंदिर अने भंडारोनी व्यवस्था कर्या पछी आगमो वगेरेना संपादननुं महान् कार्य तेओ घणा परिश्रमवडे करी रह्या हता. समय पण बीजा कार्यो माटे नहोतो तेम छतां हाथमां लीधुं अने तेओ कृपालुश्रीए आ ग्रंथमां आपेल प्रासंगिक विवेचनमां जणाव्या प्रमाणे आ ग्रंथनुं सुंदर संशोधन करी आ सभाने प्रकाशन कार्य सुप्रत कर्युं जे माटे विद्वान मुनिराजश्री पुण्यविजयजी महाराजनो आ सभा परम उपकार माने छे.

कृपालु श्री पुण्यविजयजी महाराजे आ कार्य हाथमां लेवाथी ज आ बीजुं पुस्तक आटला वखते पण प्रकाशन थवा पाम्युं छे. जे माटे सभा पोतानो आनंद व्यक्त करे छे.

श्री आत्मानंद भवन–भावनगर.
धनतेरस सं. २००६

गांधी वल्लभदास त्रिभुवनदास
(साहित्य भूषण.)
सेक्रेटरी श्रीजैन आत्मानंद सभा भावनगर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति शिक्षण संस्कारनिधि (ट्रस्ट) ना उपक्रमे पुनर्मुद्रित के प्रसिद्ध थयेलां प्रकाशनोनी यादी—

१. प्रमाणमीमांसा, — कर्ता : श्रीहेमचन्द्राचार्य
सं. पं. सुखलालजी संघवी

२. हेमसमीक्षा — ले. मधुसूदन मोदी

३. हैम स्वाध्याय पोथी. — सं. पं. शीलचन्द्र विजय गणी

४. त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरितमहाकाव्यम् — प्रथम – द्वितीय विभाग

हवे पछी प्रकाशित थनारा ग्रन्थो :

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित महाकाव्य

पर्व ५ थी १० तथा परिशिष्टपर्वनी, विभिन्न भण्डारोनी प्राचीन हस्तप्रतिओना आधारे शुद्ध रीते सम्पादित वाचनावाळी आवृत्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हं नमः ॥

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितस्य

द्वि-त्रि-चतुर्थपर्वणाम् विषयानुक्रमणिका।

द्वितीयम् पर्व

प्रथमः सर्गः।

विषयः	पृष्ठम्
वत्सविजयवर्णनम्।	१५७
सुसीमानगरीस्वरूपम्।	१५७
पूर्वभवे प्रथमश्रीविमलवाहनभवः।	१५८
विमलवाहनस्य वैराग्यवासना। ...	१५८
अरिन्दमसूरिवंदनार्थं विमलवाहनस्य उद्यानगमनम्।	१५९
विमलवाहनस्य सूरिम् वैराग्यकारणस्य पृच्छा	१६०
अरिन्दमसूरेः आत्मवृत्तान्तः। ...	१६०
विमलवाहनस्य दीक्षाग्रहणेच्छा।	१६१
मंत्रिभिः परामर्शः।	१६१
कुमारसंबोधनम्।	१६२
कुमारस्य प्रत्युत्तरः।	१६२
मंत्रिणः कुमारं प्रति शिक्षाप्रदानम्।	१६३
कुमारस्य राज्याभिषेकः।	१६३
कुमारं उद्दिश्य विमलवाहनस्य शिक्षावचनम्।	१६३
विमलवाहन-प्रव्रज्या-महोत्सवः। ...	१६४
विमलवाहनस्य पञ्चमुष्टिलोचः। ...	१६५
सूरिवर्यस्य देशना।	१६५
विमलवाहनस्य विशुद्धचारित्रपालनम्।	१६५
विमलवाहनस्य परिषहसहनं तीर्थकृत्कर्मोपार्जनञ्च।	१६६
विजयविमाने अमरो जातः। ...	१६६

द्वितीयः सर्गः।

विषयः	पृष्ठम्
अजितप्रभोः च्यवनम्।	१६७
चतुर्दश स्वप्नाः।	१६७
अजितप्रभोर्गर्भावतरणं, विजयादेव्याः स्वप्नदर्शनञ्च।	१६८
स्वप्नलक्षणपाठकाः	१६९
अजितप्रभोर्जन्म....	१७०
दिक्कुमारिकाकृतो जिनजन्मोत्सवः। ...	१७१
सौधर्मेन्द्रागमनम्।	१७५
सौधर्मेन्द्रेण पञ्चरूपेण प्रभोर्मेरौ नयनम्।	१७७
ईशानेन्द्रागमनम्।	१७७
जिनजन्मोत्सवार्थं चतुःषष्टेरिन्द्राणामागमनम्।	१७८
मेरुशिरसि अच्युतेन्द्रविहिताजितजिनपूजनम्।	१८०
मेरुशिरसि सौधर्मेन्द्रविहिताजितजिनपूजनम्।	१८१
सौधर्मेन्द्रेणाजितप्रभोः मातुः समीपे नयनम्।	१८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयः	पृष्ठम्
अजितजिन–सगरचक्रिजन्मोत्सवः। ...	१८३
जितशत्रुराजनिर्मितो नामकरणोत्सवः।	१८४

तृतीयः सर्गः।

विषयः	पृष्ठम्
अजितजिन–सगरचक्रिणोर्बाल्यलीला।	१८५
सगरचक्रिणो विद्याभ्यासः।	१८५
अजितजिन–सगरचक्रिणोर्यौवनं पाणि- .... ग्रहणञ्च।	१८७
अजितजिनराज्याभिषेकः तत्पितुर्दीक्षा च।	१८७
अजितप्रभो राज्यवैभवः।	१८८
अजितजिनस्य दीक्षासङ्कल्पः।	१८८
सगरस्य प्रार्थना।	१८९
सगरस्य राज्याभिषेकः।	१९०
जिनस्य वार्षिकं दानम्।	१९०
अजितजिनप्रव्रज्यामहोत्सवः। ...	१९१
अजितप्रभोः प्रव्रज्या।	१९२
पञ्च दिव्यानि	१९३
अजितजिनस्योग्रविहारिता।	१९४
अजितप्रभोस्तपः।	१९४
अजितजिनस्योग्रचर्या।	१९५
अजितप्रभोः केवलोत्पत्तिः, देवेन्द्राणामागमनं च।	१९५
समवसरणम्।	१९६
भगवतो द्वादशपर्षदा, समवसरणान्तर्गमनञ्च।	१९७
कर्मक्षयजास्तीर्थकृदतिशयाः।	१९७
प्रभोर्वन्दनार्थं सगरस्य गमनम्।	१९८
अजितप्रभोर्देशना।	१९८
चतुर्विधं धर्मध्यानम्, आज्ञाविचयमपायविचयं च।	१९८
विपाकविचयम्, विपाकः, अष्टौ कर्माणि।	१९९
संस्थानविचयम लोकस्वरूपं च। ...	१९९
अधोलोकः, नरकाः, नरकावासा वलयाश्च।	२००
भवनपतयस्तच्चिह्नानि तदिन्द्राश्च।	२००
व्यन्तरा वानव्यन्तरस्तच्चिह्नानि तदिन्द्राश्च।	२००
ज्योतिष्काः।	२०१
तिर्यग्लोकः, मेरुश्च।	२०१
जम्बूद्वीपस्तद्वर्षाणि वर्षधराश्च। ...	२०२
जम्बूद्वीपह्रदाः, महानद्यः, विदेहक्षेत्रम् च।	२०२
विजयाः।	२०३
जम्बूद्वीपस्य जगती वैताढ्यगिरयश्च।	२०३
लवणाब्धिः, पातालकलशा वेलन्धरदेवाश्च।	२०४
धातकी पुष्कराद्धे तद्गता मेरवश्च।	२०४
मानुषोत्तरः।	२०४
आर्यानार्यदेशा मनुष्याश्च।	२०५
अन्तरद्वीपाः।	२०६
नन्दीश्वरः।	२०७
कर्मभूमयः, ऊर्ध्वलोकश्च।	२०७
वैमानिकाः।	२०७
गणभृतां स्थापना।	२०९
बलिः, गणभृद्देशना च।	२१०
शासनाधिष्ठायक–देव–देव्यौ।	२१०
द्विजन्मना सह भगवतः संकेतवार्त्ता। ..	२१०
सुलक्षणा–शुद्धभट्टयोः कथानकम्। ...	२११
सम्यक्त्व–मिथ्यात्वयोर्देवगुरुधर्मणां च .... स्वरूपम्।	२१२
सम्यक्त्वस्य लक्षणादि।	२१२
शुद्धभट्टस्य केवलोपार्जनम्।	२१३

चतुर्थः सर्गः।

विषयः	पृष्ठम्
सगरस्य चक्ररत्नोत्पत्तिः, तत्पूजा च। ...	२१४
दिग्विजयाय प्रयाणकम्।	२१४
सगरस्य दिग्विजयः।	२१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय:	पृष्ठम्
सगरस्य स्त्रीरत्नप्राप्तिः ।	२२३
सगरस्य विनीतायां प्रवेशः।....	२२४
सगरस्य चक्रिपदाभिषेकः ।	२२५
पञ्चमः सर्गः ।	
पूर्णमेघसुलोचनयोः पूर्वभवसम्बन्धः । ...	२२६
मेघवाहनसहस्राक्षयोः पूर्वभवः ।	२२६
राक्षसवंशः ।	२२६
सगरपुत्राणां देशदर्शनाय प्रस्थानम्, अपशकुनानि च ।	२२७
सगरपुत्रैः अष्टापदगिरेर्दर्शनम् ।	२२८
अष्टापदे जिनार्चनम् ।	२२९
सगरपुत्रैः अष्टापदगिरेः परिखाविधानम् ।	२३०
सगरात्मजानां नागराजेन भस्मीकरणम् ।	२३१
षष्ठः सर्गः ।	
सगरपुत्रमरणे तत्सैन्यानां विलापः ।	२३२
सगरपुत्राणां मरणे तदन्तःपुरीणां परिदेवनम् ।	२३२
सामन्तादीनां शोचनम् ।	२३२
सगरपुत्रान्तःपुरीप्रभृतीनामयोध्यां प्रति प्रस्थानम् ।	२३३
मुमूर्षूणां तेषां अपरिचितेन द्विजेन संस्थापनम् ।	२३३
अपरिचितेन द्विजेन स्वपुत्रमरणमिषेण ... सगरप्रतिबोधनम् ।	२३४
सगरस्य विलापः ।	२३७
अपरिचितेन द्विजेन सगरस्याश्वासनम् ।....	२३८
सुबुद्धिमन्त्र्युक्तं तान्त्रिकोदाहरणम् । ...	२३८
द्वितीयमन्त्र्युक्तं अपरमिन्द्रजालिकोदाहरणम् ।	२३९
गङ्गाप्रवाहस्खलनाय भगीरथस्य गमनम् ।	२४८
जह्नुप्रभृतीनां सगरपुत्राणां भगीरथस्य च पूर्वभवाः ।	२४९
सगरस्य प्रव्रज्या ।	२५१
सगरस्यक्षा केवलनं ।	२५२
अजितस्वामिसगरयोर्निर्वाणम् । ...	२५२
अजितप्रभुनिर्वाणमहोत्सवः ।	२५३

तृतीयम् पर्व

विषय:	पृष्ठम्
प्रथमः सर्गः ।	
सम्भवजिनपूर्वभवचरितम् ।	२५५
दुर्भिक्षः ।	२५६
संसारविरागता ।	२५७
सम्भवजिनस्य गर्भावतरणम् । ...	२५९
चतुर्दश स्वप्नाः ।	२५९
सम्भवजिनजन्म दिक्कुमारीकृतो महोत्सवश्च ।	२६०
चतुष्षष्टीन्द्रविहितः सम्भवजिनजन्मोत्सवः ।	२६०
चतुष्षष्टिः इन्द्राः	२६१
शक्रेन्द्रेण कृता प्रार्थना	२६२
सम्भवनामस्थापनम् ।	२६२
पित्रा राज्यसमर्पणम्	२६३
सम्भवजिनवार्षिकदानं दीक्षा च । ...	२६४
शक्रस्तुतिः ।	२६५
सम्भवजिनपारणम्, पञ्च दिव्यानि, पीठं केवलज्ञानञ्च ।	२६५
समवसरणरचना ।	२६६
अनित्यभावनागर्भिता सम्भवजिनदेशना ।	२६७
त्रिमुखो यक्षः, दुरितारिश्च यक्षिणी ।	२६८

विषयः	पृष्ठम्

सम्भवजिनपरिवारादिकम् ।.... .... २६८
प्रभोर्निर्वाणम् । २६८

द्वितीयः सर्गः ।

अभिनन्दनजिनपूर्वभवचरितम् । ... २६९
अभिनन्दनजिनजन्मनगरी पितरौ च । ... २७०
चतुर्दश स्वप्नाः, जन्मोत्सवश्च । २७१
जिनेश्वराय राज्यसमर्पणम् ।.... .... २७२
वार्षिकदानं, दीक्षा च । २७२
जिनकेवलज्ञानम् । २७३
अशरणभावनागर्भा देशना । २७३
यक्ष-यक्षिण्यौ । २७४
जिनपरिवारादिकम् । २७४
अभिनंदनजिननिर्वाणम् । २७४

तृतीयः सर्गः ।

निष्पुत्रताया दुःखम् । २७५
कुलदेवीवरदानम् । २७६
पुरुषसिंहनामस्थापनम् । २७६
दशधा यतिधर्मः । २७७
प्रव्रज्याया दुष्करत्वम् । २७८
चातुर्गतिकभवपालजं दुःखम् । ... २७८
सुमतिस्वामिजन्मपुरी पितरौ च । ... २७९
जिनमात्रा विवादभञ्जनम् । २८०
जिनजन्मादिकम् । २८१
सुमतिजिनदीक्षा । २८१
केवलज्ञानम् । २८१
अष्टप्रातिहार्यगर्भिता स्तुतिः । २८२
एकत्वभावनागर्भिता जिनदेशना ... २८२
सुमतिजिनशासनदेवदेव्यौ । ... २८३
जिनपरिवारः । २८३
जिननिर्वाणम् । २८३

चतुर्थः सर्गः ।

पद्मप्रभजिनपूर्वभवचरितम् । ... २८४
जन्मपुरी पितरौ च । २८५
जिनजन्मोत्सवः । २८५
पद्मप्रभजिनस्य प्रव्रज्या । २८६
पद्मप्रभजिनदेशना २८६
नरकगतिक्लेशस्वरूपम् । २८७
तिर्यग्गतिदुःखस्वरूपम् । २८७
मनुष्यगतिदुःखस्वरूपम् । २८८
देवगतिक्लेशवर्णनम् । २८९
पद्मप्रभस्वामिशासनदेवदेव्यौ । ... २९०
पद्मप्रभजिनपरिवारः । २९०
पद्मप्रभजिननिर्वाणम् । २९०

पञ्चमः सर्गः ।

सुपार्श्वजिनपूर्वजन्मसम्बन्धः । ... २९१
सुपार्श्वजिनजन्मादि । २९२
जिनस्य दीक्षा केवलज्ञानं च । ... २९३
सुपार्श्वजिनदेशना । २९४
जिनस्य यक्ष-यक्षिण्यौ । २९४
सुपार्श्वजिनपरिवारः। २९४
जिननिर्वाणम् । २९५

षष्ठः सर्गः ।

चन्द्रप्रभजिनपूर्वभवसम्बन्धः... ... २९६
चन्द्रप्रभजिनजन्म । २९७
चन्द्रप्रभजिनस्य प्रव्रज्यादि ।... .... २९८
चन्द्रप्रभजिनस्य देशना । २९९
चन्द्रप्रभजिनयक्ष-यक्षिण्यौ । २९९
चन्द्रप्रभपरिवारः । ३००
चन्द्रप्रभनिर्वाणम् । ३००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तमः सर्गः ।

विषयः	पृष्ठम्
सुविधिजिनपूर्वभवसम्बन्धः ।	३०१
सुविधिजिनजन्मादि ।	३०२
सुविधिजिनदीक्षादि ।	३०३
अष्टकर्मोत्तरप्रकृत्याश्रवस्वरूपज्ञापिका सुविधिस्वामिदेशना ।	३०३
सुविधिजिनशासन-देव-देव्यौ ।	३०५
सुविधिजिनपरिवारः ।	३०५
सुविधिजिननिर्वाणम् ।	३०६
अष्टजिनान्तरे तीर्थोच्छेदश्च	३०६

अष्टमः सर्गः ।

विषयः	पृष्ठम्
शीतलजिनपूर्वभवसम्बन्धः ।	३०७
शीतलजिनजन्मादि ।	३०८
शीतलजिनप्रव्रज्यादि ।	३०९
आश्रव-संवरस्वरूपगर्भा शीतलजिनदेशना ।	३१०
शीतलजिनयक्ष-यक्षिण्यौ परिवारादि च ।	३१०
शीतलजिननिर्वाणम् ।	३१०

चतुर्थं पर्व

प्रथमः सर्गः ।

विषयः	पृष्ठम्
श्रेयांसजिनपूर्वभवसम्बन्धः । ...	३१३
श्रेयांसजिनगर्भावतारः ।	३१४
श्रेयांसजिनजन्मादि ।	३१६
जिनप्रव्रज्यादि ।	३१६
त्रिपृष्ठवासुदेव-अचलबलदेवादीनां चरितम् ।	३१७
श्रेयांसजिनस्य केवलज्ञानम् ।	३३९
समवसरणम् ।	३३९
जिनस्य देवताकृतस्तुतिः ।	३४०
श्रेयांसजिनस्य देशना ।	३४०
निर्जरास्वरूपगर्भा श्रेयांसजिनदेशना ।	३४१
जिनस्य परिवारादि ।	३४१
जिनस्य निर्वाणम् ।	३४२
त्रिपृष्ठस्य नरकगमनम् ।	३४२
अचलबलदेवस्य सिद्धिगमनम् । ...	३४३

द्वितीयः सर्गः ।

विषयः	पृष्ठम्
श्रीवासुपूज्यपूर्वभवसम्बन्धः । ...	३४४
वासुपूज्यजिनजन्मोत्सववर्णनम् । ...	३४४
शक्रस्तुतिः ।	३४५
पाणिग्रहणार्थं पितुराज्ञा ।	३४७
वासुपूज्यस्य प्रत्युत्तरः ।	३४७
वासुपूज्यस्य दीक्षा ।	३४८
द्विपृष्ठवासुदेवस्य विजयबलदेवस्य च वृत्तान्तः ।	३४८
वासुपूज्यस्य समवसरणम् ।	३५३
जिनस्य देवताकृतस्तुतिः ।	३५३
वासुपूज्यजिनस्य देशना ।	३५३
जिनस्य परिवारादि ।	३५५
निर्वाणम् ।	३५५

तृतीयः सर्गः ।

विषयः	पृष्ठम्
विमलनाथजिनपूर्वभवसम्बन्धः । ...	३५६
विमलनाथजिनजन्म ।	३५६
विमलनाथजिनप्रव्रज्यादि ।	३५८
स्वयम्भूवासुदेवस्य रुद्रबलदेवस्य च वृत्तान्तः ।	३५८
विमलनाथजिनस्य कैवल्यं समवसरणं च ।	३६१
विमलजिनस्य धर्मदेशना ।	३६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयः	पृष्ठम्
विमलजिनस्य परिवारादि ।	३६२
विमलजिनस्य निर्वाणम् ।	३६३
चतुर्थः सर्गः ।	
अनन्तनाथपूर्वभवसम्बन्धः ।	३६४
जिनजन्म ।	३६५
अनन्तजिनप्रव्रज्यादि ।	३६६
पुरुषोत्तमवासुदेवस्य सुप्रभबलदेवस्य वृत्तान्तः ।	३६६
अनन्तनाथजिनस्य केवलज्ञानं समवसरणं च ।	३७०
जिनस्य धर्मदेशना ।	३७१
अनन्तनाथजिनस्य परिवारादि । ...	३७४
जिनस्य निर्वाणम् ।	३७४
पञ्चमः सर्गः ।	
धर्मनाथजिनस्य पूर्वभवसम्बन्धः । ...	३७५
धर्मनाथजिनजन्म ।	३७६
जिनप्रव्रज्या ।	३७७
पुरुषसिंहवासुदेवस्य सुदर्शनबलदेवस्य च ... वृत्तान्तः ।	३७७
धर्मनाथजिनस्य कैवल्यं समवसरणं च । ...	३८१
धर्मनाथजिनस्य धर्मदेशना ।	३८२
धर्मनाथजिनस्य परिवारः ।	३८६
प्रभोः निर्वाणम् ।	३८६
षष्ठः सर्गः ।	
मघवचक्रवर्तिचरितम् ।	३८७
सप्तमः सर्गः ।	
सनत्कुमारचक्रिचरितम् ।	३८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ अर्हम् ॥

॥ नमः प्रथमानुयोगप्रणेतृभ्यः श्रीकालकार्येभ्यः ॥

कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्यविनिर्मितं

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितम् ।

अजितस्वामि–सगरचक्रवर्त्तिप्रतिबद्धं द्वितीयं पर्व ।

प्रथमः सर्गः

जयन्त्यजितनाथस्य, जितशोण[1]मणिश्रियः । नम्रेन्द्रवदनादर्शाः, पादपद्मद्वयीनखाः ॥ १ ॥
कर्मा[2]हिपाशनिर्णाशजाङ्गुलीमन्त्रसन्निभम् । अजितस्वामिदेवस्य, चरितं प्रस्तवी[*]म्यतः ॥ २ ॥
नाभी[3]सनाभेर्द्वीपानां, जम्बूद्वीपस्य मध्यगम् । दुःषमसुषमाप्रायं, विदेहक्षेत्रमस्ति तत् ॥ ३ ॥
अस्ति तत्र महानद्याः, सीतायाः दक्षिणे तटे । विजयो वत्स इत्याख्याविख्यातो विपुलर्द्धिकः ॥ ४ ॥
एकदेश इव स्वर्गप्रदेशस्य भुवं गतः । अभ्राजिष्ट स बिभ्राणो, रामणीयकमद्भुतम् ॥ ५ ॥
तत्रोपर्युपरि ग्रामं, ग्रामैरथ पुरं पुरैः । निवसद्भिर्यदि परं, नभसेव[†] हि शून्यता ॥ ६ ॥
सम्पदा निर्विशेषाणां, परस्परमतुच्छया । पूर्ग्रामाणां तत्र भेदो, राजाश्रयकृतो यदि ॥ ७ ॥
स्वच्छस्वादुजलास्तत्र, महावाप्यः पदे पदे । क्षीराम्भोनिधिनिर्गच्छत्सिराभिरिव पूरिताः ॥ ८ ॥
तत्र चाऽलब्धमध्यानि, स्वच्छानि च महान्ति च । स्थाने स्थाने तडागानि, मनांसीव महात्मनाम् ॥ ९ ॥
तत्राऽऽर्द्रवल्लीबहला, आरामाश्च पदे पदे । तन्वन्ति मेदिनीदेव्याश्चित्रपत्रलताभ्रमम् ॥ १० ॥
ग्रामे ग्रामे चेक्षु[4]वाटास्तत्र पान्थतृषाच्छिदः । महेक्षुभिः शोभमाना, रसाम्भस्कुम्भसन्निभैः ॥ ११ ॥
तत्राऽनुगोकुलं गावः, प्लावयन्ति महीतलम् । क्षीरनद्य इवाऽङ्गिन्यः, प्रक्षरत्क्षीरनिर्झराः ॥ १२ ॥
तत्राऽऽसीनैः पथि पथि, पान्थद्वन्द्वैः फलद्रुमाः । विराजन्ते युगलिभिः, कुरुकल्पद्रुमा इव ॥ १३ ॥
तस्मिन्नवन्यास्तिलक[5]सनाभिः सम्पदां निधिः । यथार्थनामा नगरी, सुसीमेत्यस्ति विश्रुता ॥ १४ ॥
असाधारणया ऋद्ध्या, पुरीरत्नं चकास्ति तत् । आविर्भूतं भुवो मध्यात्, किञ्चित् पुरमिवाऽऽसु[6]रम् ॥१५॥
तत्रैकाकिन्योऽपि नार्यः, सञ्चरन्त्यो गृहान्तरे । सत्सखीका इवाऽऽभान्ति, सङ्क्रान्ता रत्नभित्तिषु ॥ १६ ॥
परिखाम्भोधिपरिधिश्चित्ररत्नशिलामयः । जगत्यां जगतीवोच्चैः, प्राकारस्तत्र शोभते ॥ १७ ॥
[‡]सञ्चरद्भिर्गजैस्तत्र, प्रक्षरन्मदवारिभिः । प्रशान्तपांसवो रथ्या, नित्यं वर्षाजलैरिव ॥ १८ ॥
नीरङ्गी[7]षु कुलस्त्रीणां, कुमुदिन्युदरेष्विव । लभन्ते यत्र[§] सूर्यो[8]स्रा, नाऽवकाशं मनागपि ॥ १९ ॥

---

१ पद्मरागमणिः । २ कर्मनागपाशनाशे जाङ्गुलीमन्त्रसमम् । * °स्यहम् ल ॥ ३ नाभिसदृशस्य । † °वाऽस्ति शू° खंता ॥
४ इक्षुक्षेत्राणि । ५ तिलकसदृशः । ६ असुरसम्बन्धि । ‡ संवहद्भिर्ग° खंता ॥ ७ लज्जावस्त्रेषु । § तत्र पा ॥ ८ सूर्यकिरणाः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजन्ते तत्र चैत्येषु, चलद्ध्वजपटाञ्चलाः । मा गाश्चैत्योपरीत्यर्कं, निषेधन्त इवाऽसकृत् ॥ २० ॥
श्यामीकृतनभांस्यम्भःप्लुतभूमीनि भूरिशः । उद्यानानि महीलग्नमेघसं[1]ध्यश्चि तत्र च ॥ २१ ॥
स्वर्णरत्नमयास्तत्र, क्रीडाशैलाः सहस्रशः । आरामरम्यकट[2]का, मेरोरिव कुमारकाः ॥ २२ ॥
सा च धर्मार्थकामानां, युगपत् सुहृदामिव । क्रीडार्थमेकसङ्केतनिकेतनमिवोच्चकैः ॥ २३ ॥
भोगावत्यमरावत्योरधऊर्ध्वस्थयोः पुरोः । सोद[3]र्यैवाऽन्तरे जाता, सा स[4]ध्रीची महर्द्धिभिः ॥ २४ ॥
नगर्यामभवत् तस्यां, राजा विमलवाहनः । *विमलात्माऽतिविमलैर्गुणोस्रैश्चन्द्रमा इव ॥ २५ ॥
प्रपुष्णन् लालयन् वृद्धिं, प्रापयन् लम्भयन् गुणैः । स प्रजाः पालयामास, स्वापत्यानीव वत्सलः ॥२६॥
अन्यायं स निजस्याऽपि, न सेहे न्यायनिष्ठुरः । चिकित्स्यते हि निपुणैरङ्गोद्भवमपि व्रणम् ॥ २७ ॥
लीलयैव महौजस्कः, स विश्व[5]गवनीभुजाम् । शिरांसि नमयामास, समीर इव भूरुहाम् ॥ २८ ॥
त्रिवर्गं पालयामास, परस्परमबाधितम् । नानाविधं प्राणिगणं, महात्मेव तपोधनः ॥ २९ ॥
औदार्य-धैर्य-गाम्भीर्य-क्षान्तिप्रभृतयो गुणाः । तस्याऽन्योऽन्यमभूष्यन्तोपवनस्येव पादपाः ॥ ३० ॥
प्रसर्पन्तो गुणास्तस्य, सौभाग्यैकधुरन्धराः । कस्य न ह्यलगन् कण्ठे, चिरायातवयस्यवत् ? ॥ ३१ ॥
पर्वतारण्यदुर्गादिदेशेष्वपि महौजसः । स[6]दागतेरिव गतिः, शासनं तस्य नाऽस्खलत् ॥ ३२ ॥
आक्रान्ताशेषदिक्कस्य, प्रसरच्चण्डतेजसः । लुलुठुर्भूभृतां मूर्ध्नि, पादास्तस्य रवेरिव ॥ ३३ ॥
सर्वज्ञो भगवान् स्वामी, यथा तस्य महामतेः । भूभुजामपि सर्वेषां, स एवैकस्तथाऽभवत् ॥ ३४ ॥
विस्त्रिताभित्रबलः, सु[7]त्रामेवैकविक्रमः । साधुभ्य एव स शिरो, नमयामास बाल्यतः ॥ ३५ ॥
यथा तस्याऽतुला शक्तिर्बाह्यानां द्विषतां जये । [8]आन्तराणामपि तथा, बभूवैकविवेकिनः ॥ ३६ ॥
दुर्दमं दमयामास, बलादुत्पथगत्वरम् । यथेभ-वाजिप्रभृति, स इन्द्रियगणं तथा ॥ ३७ ॥
स ददौ दानशीलोऽपि, पात्र एव यथाविधि । पात्रे बहुफलं तद्धि, शुक्तावम्भोदवारिवत् ॥ ३८ ॥
विदधानः प[9]रपुरप्रवेशमिव सर्वतः । प्रजाः प्रवर्त्तयामास, धर्म्येऽध्वनि स धर्मवित् ॥ ३९ ॥
चरित्रेण पवित्रेण, सोऽवासयदिदं जगत् । मलयोर्वी परिमलेनेव चन्दनपादपः ॥ ४० ॥
द्वि[10]ड्जयादातुरत्राणादर्थिसम्प्रीणनादपि । युद्धवीरो दयावीरस्त्यागवीरश्च सोऽभवत् ॥ ४१ ॥
स एवं राजधर्मस्थः, स्थिरधीरप्र[11]मद्वरः । चिरं ररक्ष वसुधां, सुधामिव फणीश्वरः ॥ ४२ ॥
कृत्याकृत्यविदस्तस्य, सारासारं विविश्वतः । अन्येद्युरेवमुत्पेदे, भववैराग्यवासना ॥ ४३ ॥
योनिलक्षमहावर्त्तनिपातक्लेशभीषणः । पा[12]रावार इवाऽपारः, संसारो धिगसावहो ! ॥ ४४ ॥
इहेन्द्रजालवत् स्वप्नजालवच्च भवे हहा ! । क्षणाद् दृष्टैः क्षणान्नष्टैरर्थैर्मुह्यन्ति जन्तवः ॥ ४५ ॥
यौवनं पवनोद्धूतपताकाञ्चलचञ्चलम् । आयुः कुशाग्रविश्रान्तजलबिन्दुचलाचलम् ॥ ४६ ॥
अमुष्याऽप्यायुषो गर्भवासे नरकवासवत् । अत्यन्तदुःखाद् गच्छन्ति, मासाः पल्योपमोपमाः ॥ ४७ ॥
अथ जातस्य बालत्वेऽप्यायुर्भागः कियानपि । प[13]रप्रणेयस्य सतो, मुधाऽन्धस्येव गच्छति ॥ ४८ ॥
इन्द्रियार्थरसस्वादुरसास्वादेन यौवने । मत्तस्येव वृथा गच्छत्यायुरंशः कियानपि ॥ ४९ ॥
त्रिवर्गसाधनाशक्तवपुषश्च वपुष्मतः । आयुः शेषं वृथा याति, प्रसुप्तस्येव वार्द्धके ॥ ५० ॥
इत्थं विदन्नपि भवी, भवायैव विचेष्टते । कामं रोगीव रोगाय, विषयास्वादलम्पटः ॥ ५१ ॥
यौवने विषयेभ्योऽसौ, यथा ह्युत्तिष्ठते भवी । तथोत्तिष्ठेत चेन्मुक्त्यै, किं हि न्यूनं तदा भवेत् ? ॥ ५२ ॥
स्वयङ्कृतैः कर्मपाशैः, [14]स्वं भवी वेष्टयत्यहो ! । स्वलालातन्तुसन्तत्या, जालकार इव कृमिः ॥ ५३ ॥

१ सद्मानि । २ समो मध्यप्रदेशः । ३ भगिनीव । ४ तुल्या । * विमलाङ्गोऽति° ल ॥ ५ सर्वत्र । ६ पवनस्य । ७ इन्द्रः । ८ क्रोधादीनाम् । ९ परकायप्रवेशमिव । १० अरिजयात् । ११ परापेक्षारहितः । १२ समुद्रः । १३ पराधीनस्य । १४ आत्मानम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अम्भोधौ युगशमिलाप्रवेशन्यायतो भवे । कथञ्चिन्मानुषं जन्म, लभ्यते पुण्ययोगतः ॥ ५४ ॥
तत्राऽपि चाऽऽर्यदेशेषु, जन्मिनो जन्म जायते । महतश्च कुलस्याऽऽप्तिः, सेवा गुरुकुलस्य च ॥ ५५ ॥
इति प्राप्याऽपि सामग्रीं, शिवाय यतते न यः । सम्पन्नायां रसवत्यां, स तिष्ठति बुभुक्षितः ॥ ५६ ॥
उभयोरपि चोर्ध्वाऽधोगत्योः स्वायत्तयोरिह । धावत्यधोमुखं प्रायो, जडधीर्जलवज्जनः ॥ ५७ ॥
समये साधयिष्यामि, स्वार्थमित्याशयं वहन् । प्राप्यतेऽर्वाग् यमदूतैररण्ये तस्करैरिव ॥ ५८ ॥
कृत्वाऽघमपि यान् पुष्येत्, तेषामुत्पश्यतामपि । अत्राणो रङ्कवज्जन्तुः, कृष्टा कालेन नीयते ॥ ५९ ॥
ततश्च नीतो नरके, लभतेऽनन्तवेदनाः । जन्मान्तरानुधावीनि, कर्माणि ऋणवन्नृणाम् ॥ ६० ॥
माताऽसौ मे पिता चाऽसौ, भ्राताऽसावङ्गभूरसौ । इति स्वबुद्धिर्मिथ्यैव, शरीरमपि न स्वकम् ॥ ६१ ॥
एषां पृथक् पृथक् स्थानादेयुषामिह केवलम् । एकत्राऽवस्थितिः स्थाने, पक्षिणामिव पादपे ॥ ६२ ॥
ततोऽप्यन्यत्र गच्छन्ति, पृथक् स्थानेषु देहिनः । नक्तमेकत्र शयिताः, पान्था इव निशात्यये ॥ ६३ ॥
अरघट्टघटीन्यायेनैहिरेयाहिरामिह । कुर्वतां देहिनां हन्त!, कः स्वकः? कः परोऽथवा? ॥ ६४ ॥
तत् त्यक्तव्यं कुटुम्बादि, त्यक्तव्यं पुरतोऽप्यदः । स्वार्थायैव यतितव्यं, स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता ॥ ६५ ॥
एकान्तानन्तसुखदः, स्वार्थो निर्वाणलक्षणः । मूलोत्तरगुणैः स स्यात्, प्रकाशोऽर्ककरैरिव ॥ ६६ ॥
इति चिन्तयतो राज्ञश्चिन्तामणिरिव स्वयम् । श्रीमानरिन्दमो नामोद्याने सूरिः समाययौ ॥ ६७ ॥
तदागमनवार्तां च, समाकर्ण्य महीपतिः । पीतपीयूषगण्डूष, इव हर्षं समासदत् ॥ ६८ ॥
तं वन्दितुमथाऽऽनन्दादचालीदचलापतिः । मायूरपत्रातपत्रैः, कुर्वन् साब्दमिवाऽम्बरम् ॥ ६९ ॥
लक्ष्मीदेव्या निपतद्भ्यां, कटाक्षाभ्यामिवोच्चकैः । स्पृश्यमानश्चामराभ्यामुभयोरपि पार्श्वयोः ॥ ७० ॥
तुरङ्गैः स्वर्णसन्नाहैः, स्वर्णपक्षैः खगैरिव । वेगिभिर्विजितश्वासैः, रुन्धानः ककुभोऽखिलाः ॥ ७१ ॥
अञ्जनाचलचूलाभिर्जङ्गमाभिरिवाऽभितः । महास्तम्बेरमैर्भाराद्व्यथयन्नवनीतलम् ॥ ७२ ॥
स्वयं समन्तात् सामन्तैर्भक्तितः परिवारितः । निजस्वामिमनोज्ञानान्मनःपर्ययिकैरिव ॥ ७३ ॥
बन्दिकोलाहलस्पर्द्धादिव प्रसृमरैर्दिवि । नादैर्मङ्गलतूर्याणां, दूरात् पिशुनितागमः ॥ ७४ ॥
करेणुकाधिरूढाभिर्वारस्त्रीभिः सहस्रशः । शृङ्गाररसवापीभिः, परितः परिवारितः ॥ ७५ ॥
सिन्धुरस्कन्धमारूढश्छायाकुलनिकेतनम् । उद्यानं नन्दनप्रायं, प्राप तद् भूमिवासवः ॥ ७६ ॥
[सप्तभिः कुलकम्]
उत्तीर्य कुञ्जरस्कन्धादवनीपतिकुञ्जरः । प्रविवेश तदुद्यानं, सिंहो गिरिगुहामिव ॥ ७७ ॥
वज्रसंवर्मितमिवाऽभेद्यं मन्मथपत्रिणाम् । रागरोगागदङ्कारं, द्वेषद्वेषिद्विषन्तपम् ॥ ७८ ॥
क्रोधानलनवाम्भोदं, मानद्रुममहागजम् । मायोरगीगरुत्मन्तं, लोभशैलमहाशनिम् ॥ ७९ ॥
मोहान्धकारतरणिं, तपस्तेजोऽनलारणिम् । क्षमासर्वस्वधरणिं, बोधिबीजाम्बुसारणिम् ॥ ८० ॥
आराममिव धर्मद्रोरात्मारामं महामुनिम् । आरादरिन्दमाचार्यमद्राक्षीत् तत्र पार्थिवः ॥ ८१ ॥
[चतुर्भिः कलापकम्]
कांश्चिदुत्कटिकासीनान्, कांश्चित् पद्मासनस्थितान् । गोदोहिकासनान् कांश्चित्, कांश्चिद् वीरासनासितान् ॥
वज्रासनजुषः कांश्चित्, कांश्चिद् भद्रासनस्थितान् । कांश्चिद् दण्डासनासीनान्, कांश्चिद् वल्गुलिकासनान् ॥
कांश्चित् क्रौञ्चनिषदनान्, कांश्चिद्धंसासनस्थितान् । पर्यङ्कासनिनः कांश्चित्, कांश्चिदुष्ट्रासनस्थितान् ॥८४॥

---

१ स्वाधीनयोः । २ बन्धूनाम् । * °रानुबन्धीनि खंता ॥ ३ पुत्रः । ४ आगतानाम् । ५ गमनागमनम् । ६ मोक्षलक्षणः । ७ राजा । ८ मेघसहितम् । ९ महागजैः । १० नम्रीकुर्वन् । ११ मनःपर्यायज्ञानिभिः । १२ सूचितागमनः । १३ छायाव्याप्तस्थानम् । १४ कामबाणानाम् । १५ वैद्यम् । १६ सूर्यम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कांश्चित् तार्क्ष्यासनान् कांश्चित्, कपालीकरणस्थितान् । आम्रकुब्जासनान् कांश्चित्, कांश्चन स्वस्तिकासनान् ॥
दण्डपद्मासनान् कांश्चित्, कांश्चित् सोपाश्रयासनान् । कायोत्सर्गस्थितान् कांश्चित्, कांश्चिदुक्षासनस्थितान् ॥
निरपेक्षान् शरीरेऽपि, निर्व्यूढस्वप्रतिश्रवान् । विविधेषूपसर्गेषु, समरेषु भटानिव ॥ ८७ ॥
अन्तरङ्गानरीन् जिष्णून्, सहिष्णूंश्च परीषहान् । तपोध्यानैरलम्भूष्णून्, साधूनपि ददर्श सः ॥ ८८ ॥
उपेत्याऽरिन्दमाचार्यान्, ववन्दे मेदिनीपतिः । बिभ्राणः पुलकव्याजाद्, भक्तिमङ्कुरितामिव ॥ ८९ ॥
सूरिवर्योऽप्युपमुखं, विन्यस्तमुखवस्त्रिकः । धर्मलाभाशिषमदात्, सर्वकल्याणमातरम् ॥ ९० ॥
नरेश्वरोऽपि विनयात्, तनुं सङ्कोच्य कूर्मवत् । अवग्रहभुवं मुक्त्वा, निषसाद कृताञ्जलिः ॥ ९१ ॥
शुश्राव देशनां तस्मादाचार्यादवनीपतिः । एकतानमनास्तीर्थकरादिव पुरन्दरः ॥ ९२ ॥
राज्ञस्तद्भववैराग्यं, धर्मदेशनया तया । व्यशिष्यताऽवदातत्वं, शरदेव हिमद्युतेः ॥ ९३ ॥
आचार्यपादान् वन्दित्वा, रचिताञ्जलिसम्पुटः । गिरा विनयगर्भिण्येत्यभ्यधाद् वसुधाधवः ॥ ९४ ॥
अनन्तदुःखरूपाणि, फलान्यनुभवन्नपि । संसारविषवृक्षस्य, जनो वैराग्यभाग् न हि ॥ ९५ ॥
कथं संसारवैराग्यं, जातं भगवतामिह ? । आलम्बनविभावेन, भवितव्यं हि केनचित् ॥ ९६ ॥
दन्तांशुज्योत्स्नया व्योमतलं धवलयन्नथ । एवमाचार्यचन्द्रोऽपि, सप्रसादमभाषत ॥ ९७ ॥
संसारे धीमतां सर्वमपि वैराग्यकारणम् । विशेषतस्तु वैराग्यहेतुः कस्यापि कश्चन ॥ ९८ ॥
अहं हि गृहवासस्थः, पुरा दिग्जयहेतवे । हस्त्यश्व-रथ-पादातचमूभिः सहितोऽचलम् ॥ ९९ ॥
मार्गान्तराले सततस्निग्धच्छायामनोरमम् । जगद्भ्रमणखिन्नाया, विश्रामौक इव श्रियः ॥ १०० ॥
नृत्यन्तमिव कङ्केल्लिलोलपल्लवपाणिभिः । हसन्तमिव विहसन्मल्लिकास्तवकोत्करैः ॥ १०१ ॥
रोमाञ्चितमिवोदञ्चत्कदम्बकुसुमोच्चयैः । वीक्ष्यमाणमिव स्मेरकेतकीकुसुमेक्षणैः ॥ १०२ ॥
सन्तापिनस्तपनांशून्, दूरादापततोऽपि हि । साल-तालद्रुमभुजैर्निषेधन्तमिवोच्छ्रितैः ॥ १०३ ॥
दत्तगुप्यद्गुरुमिवाऽध्वगार्थं वटपादपैः । सज्जीकृतपाद्यमिव, सारणीभिः पदे पदे ॥ १०४ ॥
शृङ्खलिताम्भोदमिव, महद्भिररघट्टकैः । गुञ्जन्मधुकरारावैराह्वयन्तमिवाऽध्वगान् ॥ १०५ ॥
तमाल-ताल-हिन्ताल-चन्दनैर्मध्यवर्त्तिभिः । दिवाकरकरत्रासात्, तिमिरैरिव सेवितम् ॥ १०६ ॥
चूत-चम्पक-पुन्नाग-नाग-केसरकेसरैः । जगत्येकातपत्रत्वं, तन्वानं सौरभश्रियः ॥ १०७ ॥
ताम्बूली-लवली-द्राक्षावितानैरतिसन्ततैः । पान्थयूनां विना यत्नं, तन्वन्तं रतिमण्डपान् ॥ १०८ ॥
भद्रशालमिवाऽऽयातं, मेरुशैलतलावनेः । भृशाभिराममारामं, तदाऽद्राक्षमहं व्रजन् ॥ १०९ ॥
चिरेण दिग्जयं कृत्वा, निवृत्तः पुनरप्यहम् । आरामस्याऽन्तिके तस्य, सह चम्वा समागमम् ॥ ११० ॥
उत्तीर्य वाहनेभ्योऽहं, कौतुकात् सपरिच्छदः । तदन्तः प्रविशन्नन्यादृक्षमद्राक्षमग्रतः ॥ १११ ॥
इति चाऽचिन्तयमहं, भ्रान्तोऽन्यत्र किमागमम् ? । इदं किं वा परावृत्तमिन्द्रजालमथेदृशम् ? ॥ ११२ ॥
यत् क पत्रलता साऽर्ककरप्रसरवारणी ? । क वाऽसावातपस्यैकातपत्रत्वमपत्रता ॥ ११३ ॥
क सा कुञ्जेषु विश्रान्तरमणीरमणीयता ? । निद्रायमाणाजगरदारुणत्वमिदं क च ? ॥ ११४ ॥
कैलापिकलकण्ठादिमधुरालापिता क सा ? । विलोलकाकोलकुलरोलव्याकुलता क च ? ॥ ११५ ॥
प्रलम्बलम्बमानार्द्रशिम्बीबहलता क सा ? । क चैषा शुष्कशाखाग्रदोलायितभुजङ्गता ॥ ११६ ॥
क च सा कुसुमामोदसुरभीकृतदिकता ? । चिल्ली-कपोत-ध्वाङ्क्षादिविष्टादुर्गन्धता क च ? ॥ ११७ ॥

---

१ निर्वाहितस्वप्रतिज्ञान् । २ एकाग्रचित्तः । ३ इन्द्रः । * °थाऽनया ल ॥ ४ विशेषं जातम् । ५ उज्वलत्वम् । ६ चम्वा । ७ विश्रामस्थानम् । ८ उन्नतैः । ९ क्षुद्रनदीभिः । १० सुगन्धलक्ष्म्याः । ११ पत्रराहित्यम् । १२ मयूर-कोकिलादि । १३ काकपक्षिविशेषः । १४ कठोरध्वनिः । १५ काकः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रसूनरसनिस्यन्दस्तीमितां[1]वनिता क्व सा? । क्व ज्वलद्भ्राष्ट्रसिकतातुल्यसन्तापपांसुता? ॥ ११८ ॥
फलप्राग्भारभारावनम्रपादपता क्व सा? । मूलोप[2]देहिकाग्रस्तपतितद्रुमता क्व च? ॥ ११९ ॥
अनेकवल्लीवलयल[3]टभा वृतयः क्व ताः? । क्व चैताः सर्पनिर्मुक्तास्तोकनिर्मो[4]कदारुणाः? ॥ १२० ॥
तले तरूणां प्रचुरः, प्रसूनप्रकरः क्व सः? । उद्भूतस्थलैः[5]शृङ्गाटकण्टका उत्कटाः क्व च? ॥ १२१ ॥
मन्ये यथाऽयमारामो, जज्ञे सम्प्रत्यतादृशः । तथा संसारिणः सर्वे, संसारस्थितिरीदृशी ॥ १२२ ॥
सौन्दर्येण स्वकीयेन, य एव मदनायते । ग्रस्तो रोगेण घोरेण, कङ्का[6]लति स एव हि ॥ १२३ ॥
य एव छेक[7]ताभाजा, वाचा वाचस्पतीयते । कालान्मुहुःस्खलज्जिह्वः, सोऽपि मूकायतेतराम् ॥ १२४ ॥
चारुचङ्क्रमणशक्त्या, यो जात्यतुरगायते । वार्तादिभग्नगमनः, पङ्गू[8]यते स एव हि ॥ १२५ ॥
हस्तेनौजायमानेन, हस्तिमल्लायते च यः । रोगाद्यक्षमहस्तत्वात्, स एव हि कुणी[9]यते ॥ १२६ ॥
दूरदर्शनशक्त्या च, गृध्रायेत य एव हि । पुरोऽपि दर्शनाशक्तेरन्धायेत स एव हि ॥ १२७ ॥
क्षणाद् रम्यमरम्यं च, क्षणाच्च क्षममक्षमम् । क्षणाद् दृष्टमदृष्टं च, प्राणिनां वपुरप्यहो! ॥ १२८ ॥
इति चिन्तयतो धाराधिरूढमभवत् तदा । मम संसारवैराग्यं, जपतो मन्त्रशक्तिवत् ॥ १२९ ॥
महामुनीनामभ्यर्णे, कर्मक[10]क्षहुताशनम् । निर्वाणचिन्तामाणिक्यं, ततोऽहं व्रतमात्तवान् ॥ १३० ॥
पुनः प्रणम्य शिरसाऽऽचार्यवर्यमरिन्दमम् । विवेकवान् महीपालो, भक्तिमानभ्यधादिति ॥ १३१ ॥
निरीहा निर्ममाः सन्तः, पूज्यपादा अमी इमाम् । पुण्यैरस्मादृशामेव, विहरन्ते वसुन्धराम् ॥ १३२ ॥
इहाऽतिघोरे संसारे, जनो वैषयिकैः सुखैः । अन्धकूपे तटतृणैश्छन्ने पतति गौरिव ॥ १३३ ॥
तस्माच्च प्राणिनस्त्रातुं, विधत्ते भगवानिह । कारुण्यवानह[11]रहर्घोषणामिव देशनाम् ॥ १३४ ॥
न श्रियो न कलत्राणि, न पुत्रा न च बान्धवाः । अस्मिन्नसारे संसारे, सारं गुरुगिरः परम् ॥ १३५ ॥
पर्याप्तं सम्पदा तन्मे, विद्युल्लेखाविलोलया । कृतमापातमधुरैर्विषयैर्विषसन्निभैः ॥ १३६ ॥
कलत्र-पुत्र-मित्राद्यैरिहलोकसखैरलम् । भवाब्धितारणतरीं, देहि दीक्षां प्रसीद मे ॥ १३७ ॥
यावत कुमारं स्वे राज्ये, स्थापयित्वाऽभ्युपैम्यहम् । अलङ्कार्यमिदं स्थानं, तावत् पूज्यैः कृपापरैः ॥१३८॥
आचार्योऽप्याललापैवं, प्रोत्साहनकृता गिरा । इच्छा तव महेच्छस्य, भूपते! साधु साध्वसौ ॥१३९॥
राजन्! प्राग्जन्मसंस्काराज्ज्ञाततत्त्वः पुराऽप्यसि । हस्तालम्बो दृढस्येव, हेतुमात्रं तु देशना ॥ १४० ॥
प्रव्रज्या त्वादृशैरात्ता, फलत्यातीर्थकृच्छ्रियः । गौः पालकविशेषेण, कामं दुग्धे विशिष्यते ॥ १४१ ॥
स्थास्यामो वयमत्रैव, त्वदीहितचिकीर्षया । विहरामो वयं भव्योपकारायैव केवलम् ॥ १४२ ॥
उदीरिते सूरिणैवं, नृ[12]पसूरः प्रणम्य तम् । उत्तस्थौ निश्चिते कार्ये, नालसन्ति मनस्विनः ॥ १४३ ॥
पार्थिवोऽरिन्दमाचार्यपादलग्नस्य चेतसः । हठादपि ययौ वेश्म, दुर्भगां गृहिणीमिव ॥ १४४ ॥
सिंहासने निषद्याऽथ, समाहूय च मन्त्रिणः । स्वराज्यभवनस्तम्भानित्यभाषिष्ट भूपतिः ॥ १४५ ॥
भो भो! गृहेऽत्र राजानो, वयमा[13]म्नायतो यथा । मन्त्रिणोऽपि तथा यूयं, स्वाम्यर्थैकमहाव्रताः ॥ १४६ ॥
युष्मन्मन्त्रबलेनैषाऽसाधि विद्येव मेदिनी । निमित्तमात्रं तत्राऽभूद्, दोर्बलोपक्रमस्तु नः ॥ १४७ ॥
भवन्तो बिभराञ्चक्रुर्भूमिभारं पुराऽपि मे । घनवात-घनाम्भोधि-तनुवाता इवाऽभितः ॥ १४८ ॥
अहं तु विविधक्रीडारसमग्नो दिवानिशम् । अतिष्ठं विषयासक्त्या, सु[14]पर्वेव प्रम[15]द्वरः ॥ १४९ ॥
मयाऽद्य तु प्रमादोऽयमनन्तभवदुःखदः । गुरुप्रसादेनाऽज्ञायि, निशि दीपेन गर्त्तवत् ॥ १५० ॥

---

१ आर्द्रभूमिता । २ कीटविशेषः । ३ मनोहराः । ४ सर्पकञ्चुकः । ५ कण्टकवृक्षविशेषः । ६ अस्थिपञ्जरशेषवपुरिव भवति । ७ चातुर्ययुक्तया । ८ वातरोगनष्टपादः । ९ कुण्ठितकरो भवति । १० कर्मवनेषु वह्निसमम् । ११ निरन्तरम् । १२ राजा । १३ कुलपरम्परातः । १४ देवः । १५ प्रमत्तः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अज्ञानाद् वञ्चितोऽस्माभिश्चिरमात्माऽऽत्मनैव हि । चक्षुष्मानपि किं कुर्यादन्धकारे प्रसृत्वरे ? ॥१५१॥
अहो ! वयमियत्कालमदान्तैरेभिरिन्द्रियैः । उत्पथेनैव नीताः स्मः, शूकलैरिव वाजिभिः ॥ १५२ ॥
मया विषयसेवेयं, परिणत्यामनर्थदा । कृता बिभीतकतरुच्छायासेवेव दुर्धिया ॥ १५३ ॥
मया दिग्जययात्रायामन्यवीर्यासहिष्णुना । गजा गन्धगजेनेव, हताः क्ष्मापा निरागसः ॥ १५४ ॥
मम सन्ध्यादिषाड्गुण्यं, प्रयुञ्जानस्य राजसु । कियत्यवितथा वाणी, छाया तालतरोरिव ॥ १५५ ॥
आच्छिन्दता च राज्यानि, प्रसह्याऽन्यमहीभुजाम् । अदत्तादानमेवैकमाजन्माऽऽचरितं मया ॥ १५६ ॥
रतिसागरमध्यावगाढेन च निरन्तरम् । शिष्येणेव मन्मथस्याऽब्रह्मैवाऽनुष्ठितं मया ॥ १५७ ॥
प्राप्तैरर्थैरतृप्तस्याऽप्राप्यानर्थान् जिघृक्षतः । इयत्कालमहो ! मोहान्मूर्च्छा मेऽभूद् बलीयसी ॥ १५८ ॥
हिंसादीनामेकतमोऽपि हि दुर्गतिकारणम् । स्पृष्ट एकोऽपि चण्डालः, स्यादस्पृश्यत्वकारकः ॥ १५९ ॥
ततः प्राणातिपातादिपञ्चकात् सकलादपि । विरतिं प्रतिपत्स्येऽद्य, वैराग्याद् गुरुसन्निधौ ॥ १६० ॥
कुमारे कवचहरे, राज्यभारमिमं पुनः । निधास्यामि निजं तेजो, वह्नौ सायमिवाऽर्यमा ॥ १६१ ॥
भाव्यं मयीव युष्माभिः, कुमारेऽप्युरुभक्तिभिः । अनया शिक्षयाऽलं वा, जात्यानां शीलमप्यदः ॥१६२॥
अथैवं मन्त्रिणोऽप्यूचुः, स्वामिन्नेवंविधा धियः । न ह्यनासन्नमोक्षाणां, भवन्ति भविनां क्वचित् ॥१६३॥
युष्माकं पूर्वजन्मानोऽप्याजन्माखण्डशासनाः । अवनीं साधयामासुर्बिडौजस इवौजसा ॥ १६४ ॥
राज्यमुत्सृज्य निष्ठ्यूतमिवाऽनिष्ठितशक्तयः । व्रतमाददिरे सर्वे, रत्नत्रयपवित्रितम् ॥ १६५ ॥
इमं देवोऽपि भूभारं, बभार स्वभुजौजसा । शोभाभूता वयं तत्र, रम्भास्तम्भा इवौकसि ॥ १६६ ॥
इदं देवस्य साम्राज्यं, यथाक्रमसमागतम् । सावदानं निर्निदानं, व्रतादानमिदं तथा ॥ १६७ ॥
लीलाकमलवद् वोढुं, क्षमाभारमसौ क्षमः । कुमारोऽपि हि देवस्य, द्वितीय इव चेतनः ॥ १६८ ॥
यदि गृह्णाति गृह्णातु, दीक्षां मोक्षफलां विभुः । आरोहत्युच्चकैः काष्ठां, स्वामिन्यस्माकमुत्सवः ॥ १६९ ॥
निशातन्यायनिष्ठेन, सत्त्वशौण्डीर्यशालिना । देवेनेव कुमारेणाऽप्यस्तु राजन्वती मही ॥ १७० ॥
अनुज्ञावचनैस्तेषां, मुदितो मेदिनीपतिः । शीघ्रमाह्वाययामास, कुमारं वेत्रधारिणा ॥ १७१ ॥
सलीलचरणन्यासं, कुर्वाणो राजहंसवत् । मूर्त्या देवो मार इव, कुमारोऽपि समाययौ ॥ १७२ ॥
प्रणम्य नृपतिं भक्त्या, स पत्तिपरमाणुवत् । निषसाद यथास्थानं, तस्थौ च रचिताञ्जलिः ॥ १७३ ॥
अभिषिञ्चन्निव दृशा, पीयूषरससारया । पश्यन् कुमारं सानन्दं, व्याजहारेति भूपतिः ॥ १७४ ॥
अस्मद्वंश्या नृपाः पूर्वेऽप्युर्वीमेतामपालयन् । अग्रभवो दयाबुद्ध्या, गामिवैकाकिनीं वने ॥ १७५ ॥
क्षमीभूतेषु पुत्रेषु, क्षमाभारं क्रमेण ते । स्वयमारोपयामासुर्धौरेयवृषभेष्विव ॥ १७६ ॥
आतिष्ठमानाः सकलमप्यनित्यं जगत्त्रये । उत्तस्थिरे स्वयं तस्मै, शाश्वताय पदाय ते ॥ १७७ ॥
इयत्कालं न कोऽप्यस्थाद्, गृहवासेऽस्मदादिमः । अहो ! गार्हस्थ्यमूढस्य, प्रमादोऽभूत् कियान्मम ? ॥१७८॥
राज्यभारं गृहाणेमं, ग्रहीष्यामो वयं व्रतम् । भवाम्भोधिं तरिष्यामो, निर्भारा भवता कृताः ॥ १७९ ॥
तया नृपगिरा म्लायन्, हिमेनाऽम्भोजकोशवत् । उदस्रनेत्रकमलः, कुमारोऽप्येवमब्रवीत् ॥ १८० ॥
अकाण्डेऽप्यप्रसादोऽयं, देव ! केनाऽऽगसा मम ? । पदातिमानिनि मयि, स्वामिन् ! यदिदमादिशः ॥१८१॥
अपराधः कृतः कोऽपि, किं वा वसुधयाऽनया ? । चिरत्राताऽपि तृणवद्, यदियं त्यज्यतेऽधुना ॥१८२॥
तातपादैर्विना तात !, राज्येनाऽपि कृतं मम । पूर्णेनाऽप्यब्जहीनेन, सरसा भ्रमरस्य किम् ? ॥१८३॥
प्रतिकूलमहो ! दैवमहो ! मे मन्दभाग्यता । तातो यदादिशत्येवं, त्यजन् मामिह लोष्ठवत् ॥ १८४ ॥

१ अवशीकृतैः । २ उद्धतैः । ३ सूर्यः । ४ पूर्वजाः । ५ इन्द्राः । ६ सपराक्रमम् । ७ निदानरहितम् । ८ आत्मा । ९ तीक्ष्णः । १० कामदेवः । ११ अनासक्ताः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहमेतां ग्रहीष्यामि, कथञ्चिदपि नो महीम् । प्रायश्चित्तं चरिष्यामि, गुर्वादेश[1]व्यतिक्रमे ॥ १८५ ॥
सूनोर्गिरा तया स्वाज्ञालोपिन्या सत्त्वसारया । विषण्णश्च प्रसन्नश्च, जगादेति महीपतिः ॥ १८६ ॥
मत्पुत्रोऽसि समर्थोऽसि, विद्वानसि विवेक्यसि । किन्त्वज्ञानात् स्नेहमूलादविचार्यैवमभ्यधाः ॥ १८७ ॥
गुर्वाज्ञा हि कुलीनानां, विचारमपि नाऽर्हति । युक्तियुक्तेति मद्वाणी, विचार्यापि विधीयताम् ॥ १८८ ॥
भारं वोढुं क्षमे पुत्रे, निराभारः पिता ननु । बालेऽपि हि सुते हन्त!, सिंही स्वपिति निर्भरम् ॥ १८९ ॥
किञ्च त्वामप्यनापृच्छ्य, मोक्षकामः क्षमामिमाम् । मोक्ष्यामि यदहं वत्स!, परतन्त्रस्त्वया न हि ॥१९०॥
विलुलन्तीमनाथां क्ष्मां, ततोऽपि त्वं धरिष्यसि । अतिरिक्तं तु ते भावि, मदाज्ञालङ्घनादघम् ॥ १९१ ॥
एवं वत्स! विचारेणाऽविचारेणाऽपि मद्वचः । अनुष्ठेयं त्वया भक्तिनिष्ठेन सुखदं मम ॥ १९२ ॥
जगदुर्मन्त्रिणोऽप्येवं, निसर्गेण[2] विवेकिनः । देवकीयकुमारस्य, समीचीनमिदं वचः ॥ १९३ ॥
तथाऽपि देवपादा यदादिशन्ति तदाचर । गुर्वाज्ञाकरणं सर्वगुणेभ्यो ह्यतिरिच्यते ॥ १९४ ॥
देवेनाऽपि पितृवचः, कृतं जानीमहे वयम् । पितृतः कः परो लोकेऽनुलङ्घ्यवचनो भवेत् ? ॥ १९५ ॥
एवं मन्त्रिभिरप्युक्तः, कुमारो गद्गदस्वरम् । स्वाम्यादेशो मे प्रमाणमित्यूचे नतकन्धरः[3] ॥ १९६ ॥
कुमुदं कौमुदीनाथेने[4]वाऽब्देनेव[5] बर्हिणः । कुमारेणाऽऽदेशकर्त्रा, महीपतिरमोदत ॥ १९७ ॥
अथ भूमिपतिः प्रीतः, स्वयमादाय पाणिना । कुमारमासयामासाऽभिषेकार्हे निजासने ॥ १९८ ॥
पवित्राणि पवित्राणि, धरित्रीभर्तुराज्ञया । आनिन्यिरे तीर्थपाथांस्य[6]ब्दैरिव नियोगिभिः[7] ॥ १९९ ॥
वाद्यमानेषु मङ्गल्यतूर्येषूच्चैःस्वरेष्वथ । मूर्ध्नि मूर्धाभिषिक्तेन, कुमारः सिषिचे स्वयम् ॥ २०० ॥
उत्पत्योत्पत्य राजानोऽभ्यषिञ्चन्नपरेऽपि तम् । नन्त्रोदयमिवाऽऽदित्यं, नमश्चक्रुश्च भक्तितः ॥ २०१ ॥
नृपादेशेन सदशान्यंशुकानि स पर्यधात् । तैश्चाऽदभ्रैः शारदाभ्रैः, शुभ्रैर्गिरिरिवाऽबभौ ॥ २०२ ॥
गोशीर्षचन्दनैस्तस्याऽङ्गरागं वारयोषितः । सर्वाङ्गीणं[10] विदधिरे, ज्योत्स्नापूरैरिवाऽमलैः ॥ २०३ ॥
मुक्तामयानि सर्वाङ्गं, भूषणानि स पर्यधात् । निर्मितानि दिवः कृष्ट्वा, प्रोतैरुडुगणैरिव[11] ॥ २०४ ॥
ज्वलन्माणिक्यतेजस्कं, किरीटं तस्य मूर्धनि । स्वयं न्यवेशयद् राजा, स्वं प्रतापमिवोर्जितम् ॥ २०५ ॥
तस्य मूर्ध्नि धराधीशो, धारयामास निर्मलम् । सितच्छत्रं यश इव, प्रादुर्भूतं क्षणादपि ॥ २०६ ॥
पार्श्वतो वारनारीभिरवीज्यत स चामरैः । राज्यसम्पल्लतोतद्भूप्रसूनस्तबकैरिव ॥ २०७ ॥
चन्दनेन स्वयं भूपस्तद्भाले तिलकं व्यधात् । उदयाचलचूलास्थनिशाकरविडम्बिनम् ॥ २०८ ॥
राजा राज्ये निवेश्यैवं, कुमारं परया मुदा । लक्ष्म्या रक्षामन्त्रमिव, सम्यक् शिक्षां ददाविति ॥ २०९ ॥
क्षितेरसि त्वमाधारस्तवाऽऽधारो न कोऽपि तत् । त्यक्त्वा प्रमादमात्मानमात्मना वत्स! धारयेः ॥२१०॥
भ्रश्यत्याधारशैथिल्यादाधेयं ननु सर्वथा । विषयातिप्रसङ्गोत्थं, शैथिल्यं तस्य रक्ष तत् ॥ २११ ॥
यौवनं विभवो रूपं, स्वाम्यमेकैकमप्यतः[12] । प्रमादकारणं विद्धि, बुद्धिमत्कार्यसिद्धिभित् ॥ २१२ ॥
कुलक्रमागताऽप्येषा, लक्ष्मीश्छलगवेषिणी[13] । दुराराधा छलयति, राक्षसीव प्रमद्वरम्[14] ॥ २१३ ॥
चिरवासभवस्नेहो, नाऽस्याः स्थैर्याय किन्त्वसौ । प्रयाति लब्धावसरा, शारिकेवाऽन्यतो द्रुतम् ॥ २१४ ॥
कुलटेवाऽपवादेभ्यो, भीरुतामदधत्यसौ । सुप्तवज्जाग्रतमपि, प्रमत्तं पतिमुज्झति ॥ २१५ ॥
दाक्षिण्यं रक्षणभवं, नैतस्या जातु जायते । किन्तु क्षणात् प्लवङ्गीवो[15]त्प्लुत्य यात्याश्रयान्तरम् ॥ २१६ ॥
निर्लज्जता चपलता, निःस्नेहत्वमथाऽपरे । दोषाः प्रकृतिरेवाऽस्या, नीचैर्यान[16]मिवाऽम्भसः ॥ २१७ ॥

१ गुर्वाज्ञाया उल्लङ्घने । २ स्वभावेन । ३ नम्रग्रीवः । ४ चन्द्रेण । ५ मेघेन । ६ तीर्थजलानि । ७ अधिकारिभिः । ८ राज्ञा । ९ वस्त्रप्रान्तसहितानि । १० सर्वाङ्गव्यापकम् । ११ नक्षत्रसमूहैः । १२ स्वामिता । १३ छिद्रान्वेषिणी । १४ प्रमादिनम् । १५ वानरीव । १६ अधोगमनम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निःशेषदोषमय्याऽपि, सर्वः कोऽपि श्रियैधते । शक्रोऽपि हि श्रिया शक्रः, किं पुनर्मानवो जनः? ॥२१८॥
तस्याः प्राहरिक इव, स्थिरीकरणकर्मणि । नय-विक्रमसम्पन्नो, जागरूकः सदा भवेः ॥ २१९ ॥
श्रीकाङ्क्षिणाऽपि भवता, भूः पाल्येयमगृध्नुना । अगृध्नोरनुगा लक्ष्म्यः, सुभगस्येव योषितः ॥ २२० ॥
अतिचण्डत्वमालम्ब्य, निदाघस्य इवाऽर्यमा । त्वं दुःसहकराक्रान्तां, पृथिवीं जातु मा कृथाः ॥ २२१ ॥
एकदाऽपि कृतान्यायं, जनं निजमपि त्यजेः । त्यज्यते चैरवासोऽपि, मनागप्यग्निदूषितम् ॥ २२२ ॥
मृगया-द्यूत-पानानि, वारयेः सर्वतोऽपि यत् । तत्पापानां नृपो भागी, तपस्वितपसामिव ॥ २२३ ॥
अन्तरङ्गान् जयेः शत्रूंस्तेषामविजये सति । जिता अप्यजिता एव, शत्रवो यद् बहिर्भवाः ॥ २२४ ॥
धर्ममर्थं च कामं च, परस्परमबाधया । यथाकालं निषेवेथाः, पत्नीर्नैतेव दक्षिणः ॥ २२५ ॥
तथा भजेस्त्रीन् पुमर्थान्, यथा हि समये सति । पुरुषार्थे चतुर्थेऽपि, नोत्साहो हीयते तव ॥ २२६ ॥

अभिधायेति तूष्णीकीभूते विमलवाहने । बद्धाञ्जलिः कुमारस्तत्, तथेति प्रत्यपद्यत ॥ २२७ ॥
सिंहासनादथोत्थाय, विनीतः प्राग्वदेव सः । उत्तिष्ठासोस्तत्कृते, हस्तालम्बं ददौ पितुः ॥ २२८ ॥
दत्तहस्तः स पुत्रेण, वेत्रितोऽप्यल्पमानिना । जगाम स्नपनागारं, भूरिभृङ्गारभूषितम् ॥ २२९ ॥
मकराननसौवर्णभृङ्गारलुठदम्बुभिः । जीमूतधाराभिरिव, स सस्नौ भूभृतां वरः ॥ २३० ॥
कोमलेन दुकूलेनोन्मृष्टाङ्गो नृपतिस्ततः । सर्वाङ्गमपि गोशीर्षचन्दनेन व्यलिप्यत ॥ २३१ ॥
नीलोत्पलदलश्यामः, शशिगर्भ इवाऽम्बुदः । पुष्पगर्भः केशपाशो, राज्ञस्तज्ज्ञैररच्यत ॥ २३२ ॥
विशाले निर्मले स्वच्छे, मनोहरगुणे स्ववत् । संविव्यायाऽथ भूनाथो, मङ्गल्ये दिव्यवाससी ॥ २३३ ॥
ततः पुत्रोपनीतं स, नरेन्द्रमुकुटायितः । माणिक्यस्वर्णमुकुटं, धारयामास मूर्धनि ॥ २३४ ॥
हार-केयूर-ताडङ्कप्रभृतीन्यपराण्यपि । स सर्वाङ्गं भूषणानि, पर्यधाद् गुणभूषणः ॥ २३५ ॥
रत्नकाञ्चनरूप्याणि, वस्त्राण्यन्यदपीप्सितम् । अर्थिभ्यः स ददौ तत्र, कल्पद्रुम इवाऽपरः ॥ २३६ ॥
ततो नरशतोद्वाह्यां, शिबिकां नरकुञ्जरः । आरोहत् पुष्पकमिव, विमानं नरवाहनः ॥ २३७ ॥
राजन् श्वेतातपत्रेण, चामराभ्यां च तत्क्षणात् । साक्षाद् रत्नत्रयेणेवाऽभ्यागतेन निषेवितः ॥ २३८ ॥
बन्दिकोलाहलेनोच्चैस्तारस्तूर्यरवेण च । सुहृद्भ्यामिव मिलद्भ्यां, मुदमुद्बोधयन् नृणाम् ॥ २३९ ॥
श्रीमद्भिर्नृपसामन्तैः, पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः । आपतद्भिः शोभमानो, ग्रहराजो ग्रहैरिव ॥ २४० ॥
आवृत्तवृन्तपद्माभवलद्ग्रीवेण सूनुना । आदेशकाङ्क्षिणा द्वास्थेनेवाऽग्रस्थेन शोभितः ॥ २४१ ॥
सम्पूर्णपात्रकुम्भाभिर्नागरीभिः पदे पदे । मङ्गलानि क्रियमाणानीक्षमाणो यथाक्रमम् ॥ २४२ ॥
चित्रमञ्चशताकीर्णं, पताकामालधारिणम् । पवित्रयन् राजमार्गं, यक्षकर्दमपङ्किलम् ॥ २४३ ॥
मञ्चे मञ्चे च गन्धर्ववर्गसङ्गीतपूर्वकम् । प्रतीच्छन् पण्यवनिताकृतारात्रिकमङ्गलम् ॥ २४४ ॥
अदृष्टपूर्ववद् दूरात्, पौरैरुत्फुल्ललोचनैः । आलोक्यमानो निस्पन्दैरालेख्यलिखितैरिव ॥ २४५ ॥
*लोकैर्मन्त्रबलाकृष्टैरिव कार्मणितैरिव । वाग्बद्धैरिव परितोऽन्वीयमानो भृशायितैः ॥ २४६ ॥
उद्यानेऽरिन्दमाचार्यपादपद्मपवित्रिते । जगाम धाम पुण्यानां, राजा विमलवाहनः ॥ २४७ ॥
[दशभिः कुलकम्]

शिबिकातः समुत्तीर्य, पादाभ्यां मेदिनीपतिः । तत्र प्राविशदुद्याने, मनसीव तपस्विनाम् ॥ २४८ ॥
अथाऽऽभरणसम्भारं, विश्वं विश्वम्भरापतिः । अङ्गादुत्तारयामास, धराभारं भुजादिव ॥ २४९ ॥

---

१ यामिकः । २ अनुसारिण्यः । ३ श्रेष्ठवस्त्रम् । ४ सुरापानम् । ५ नायक इव । ६ विनयवान् । ७ उत्थातुमिच्छोः । ८ बहुकलशभूषितम् । ९ मेघः । १० केशपाशविधिज्ञैः । ११ आत्मवत् । १२ शोभमानः । १३ सूर्यः । १४ सुगन्धिद्रव्य-विशेषः । १५ गृह्णन् । * अयमर्द्धश्लोकः खंतापुस्तके पतितः ॥ १६ अतिशयेन सम्मिलितैः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कन्दर्पशासनमिव, चिराय शिरसा धृतम् । उज्झाञ्चकार स्रग्दाम, सद्यो वसुमतीपतिः ॥ २५० ॥
आचार्यवामपार्श्वस्थः, स कृत्वा चैत्यवन्दनाम् । तद्दत्तमादत्त रजोहरणादि ऋषिध्वजम् ॥ २५१ ॥
केशानुत्पाटयामास, मुष्टिभिः पञ्चभिर्नृपः । सावद्यं सकलं योगं, प्रत्याख्यामीत्युदीरयन् ॥ २५२ ॥
तत्कालमप्युपात्तेन, व्रतिलिङ्गेन तेन तु । आबाल्यव्रतधारीव, शुशुभे स महामनाः ॥ २५३ ॥
प्रदक्षिणात्रयीपूर्वं, विधाय गुरुवन्दनाम् । स्थिते तस्मिन् गुरुरेवं, विदधे धर्मदेशनाम् ॥ २५४ ॥
अस्मिन्नपारे संसारे, कथञ्चिज्जन्म मानुषम् । अवाप्यते पयोराशौ, दक्षिणावर्तशङ्खवत् ॥ २५५ ॥
मानुष्यकेऽपि सम्प्राप्ते, बोधिबीजं सुदुर्लभम् । तत्रापि पुण्ययोगेन, परिव्रज्योपलभ्यते ॥ २५६ ॥
तावद् भुवोऽर्कसन्तापो, न यावत् प्रावृडम्बुदः । भङ्गो वनस्य हस्तिभ्यस्तावद् यावन्न केसरी ॥ २५७ ॥
तमोभिरान्ध्यं जगतस्तावद् यावन्न भास्करः । देहिनां पन्नगभयं, तावद् यावन्न पक्षिराट् ॥ २५८ ॥
दारिद्र्यं प्राणिनां तावन्न यावत् कल्पपादपः । भविनां भवभीस्तावद्, यावन्नैवाऽऽप्यते व्रतम् ॥ २५९ ॥
आरोग्यं रूपलावण्ये, दीर्घायुष्यं महर्द्धिता । आज्ञैश्वर्यं प्रतापित्वं, साम्राज्यं चक्रवर्तिता ॥ २६० ॥
सुरत्वं सामानिकत्वमिन्द्रत्वमहमिन्द्रता । सिद्धत्वं तीर्थनाथत्वं, सर्वं व्रतफलं ह्यदः ॥ २६१ ॥
एकाहमपि निर्मोहः, प्रव्रज्यापरिपालकः । न चेन्मोक्षमवाप्नोति, तथापि स्वर्गभाग् भवेत् ॥ २६२ ॥
किं पुनः स महाभागस्त्यक्त्वा तृणमिव श्रियम् । यो गृह्णाति परिव्रज्यां, सुचिरं पालयत्यपि ॥ २६३ ॥
विधाय देशनामेवमरिन्दममहामुनिः । विहर्तुमन्यतोऽचालीत्, तिष्ठन्त्येकत्र नर्षयः ॥ २६४ ॥
ततो ग्राम-पुरारण्याकर-द्रोणमुखादिषु । स व्यहार्षीदविच्छिन्नं, छायेव गुरुणा सह ॥ २६५ ॥
लोकाक्रान्तेऽर्कभा[1]स्पृष्टे, जन्तुरक्षाकृते पथि । युगमात्रदत्तदृष्टिः, सोऽगादीर्याविचक्षणः ॥ २६६ ॥
निरवद्यां मितां सर्वजनीनां[2] भारतीं च सः । महामुनिरभाषिष्ट, भाषासमितिकोविदः ॥ २६७ ॥
द्विचत्वारिंशता भिक्षादोषैरपरिदूषितम् । पारणेष्वाददे पिण्डमेषणानिपुणो हि सः ॥ २६८ ॥
आसनादीनि संवीक्ष्य, यत्नतः प्रतिलिख्य च । अग्रहीन्न्यक्षिपच्चाऽपि, स आ[3]दानविशारदः ॥ २६९ ॥
कफ-मूत्र-मलप्रायं, निर्जन्तुजगतीतले । उत्ससर्ज महासाधुः, स प्राणिकरुणापरः ॥ २७० ॥
विमुक्तकल्पनाजालं, समत्वे सुप्रतिष्ठितम् । स गु[4]णक्ष्मारुहाराम, आत्मारामं मनो व्यधात् ॥ २७१ ॥
मौनेन तस्थौ स प्रायः, संज्ञादिपरिहारतः । अनुग्राह्योपरोधेन, यद्यवोचत् तदा मितम् ॥ २७२ ॥
स्तम्भबुद्ध्या महिषाद्यैः, स्कन्धकण्डूयनेच्छुभिः । बाढमुद्घृष्यमाणोऽपि, कायोत्सर्गं जहौ न सः ॥ २७३ ॥
शयनासननिक्षेपादानचङ्क्रमणादिषु । स्थाने च चेष्टानियमं, स चकार महामनाः ॥ २७४ ॥
इत्थं चारित्रगात्रस्य, जननत्राणशोधनैः । मातृभूताः स समितिगुप्ती[5]रष्टाऽप्यधारयत् ॥ २७५ ॥
क्षुधार्त्तः शक्तिसम्पन्न, एषणामविलङ्घयन् । सोऽदीनोऽविह्वलो विद्वान्, यात्रामात्रोद्यतोऽचरत् ॥२७६॥
पिपासितः पथिस्थोऽपि, तत्त्वविद् दैन्यवर्जितः । नैच्छच्छीतोदकं किन्तु, जग्राह प्रासुकोदकम् ॥ २७७॥
बाध्यमानोऽपि शीतेन, त्वक्त्रत्राणवर्जितः । *वासोऽकल्प्यं नाऽऽददे सोऽज्वालयज्ज्व[6]लनं न च ॥२७८॥
उष्णेन तप्तो नाऽनिन्ददुष्णं छायां च नाऽस्मरत् । वीजनं मज्ज[7]नं गात्राभिषेकादि च नाऽकरोत् ॥ २७९ ॥
दष्टोऽपि दंशैर्मशकैः, सर्वेषां भोज्यलौल्यवित् । त्रासं द्वेषं निरासं स, न चक्रेऽस्थादुपेक्षया ॥ २८० ॥
नाऽस्ति वासोऽशुभं चैतन्नेयेषोभयथाऽपि तत् । स नाम्यबाधितो जानन्, लाभालाभविचित्रताम् ॥२८१॥
न कदाप्यरतिं चक्रे, धर्मारामरतिर्यतिः । गच्छंस्तिष्ठन्नथाऽऽसीनः, स्वास्थ्यमेव स शिश्रिये ॥ २८२ ॥
†दुर्भावसंङ्ग[8]पङ्काश्च, मोक्षद्वारार्गलाः स्त्रियः । नाऽचिन्तयदसौ ता हि, धर्मनाशाय चिन्तिताः ॥ २८३ ॥

---

१ सूर्यकिरणैः स्पृष्टे । २ सर्वजनहिताम् । ३ आदाननिक्षेपणासमितिविशारदः । ४ गुणवृक्षोद्यानः । ५ पञ्च समितयः तिस्रो गुप्तयः मिलित्वा अष्टौ भवन्ति । *वासोऽकल्पं खंता, ल ॥ ६ अग्निम् । ७ स्नानम् । † दुर्वारस° खंता ॥ ८ दुःशालसंसर्गकर्दमाः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रामाद्यनियतस्थायी, स्थानाबन्धविवर्जितः । चर्यामेकोऽपि चक्रे स, विविधाभिग्रहैर्युतः ॥ २८४ ॥
आसनादौ निषद्यायां, स्त्र्यादिकण्टकवर्जिते । इष्टानिष्टानुपसर्गान्, स सेहे निःस्पृहोऽभयः ॥ २८५ ॥
शुभाशुभायां शय्यायां, स विषेहे सुखासुखे । रागद्वेषावकुर्वाणः, प्रातस्त्याज्येति चिन्तयन् ॥ २८६ ॥
आक्रुष्टोऽपि स नाऽक्रोशत्, क्षमाश्रमणतां विदन् । किन्तु प्रत्युत मेनेऽसावाक्रोष्टर्युपकारिताम् ॥ २८७ ॥
विषेहे हन्यमानोऽपि, न तु प्रतिजघान सः । जीवानाशात् क्रुधो दौष्ट्यात्, क्षमया च गुणार्जनात् ॥ २८८ ॥
नाऽयाचितं यतीनां यत्, परदत्तोपजीविनाम् । याच्ञादुःखं न चक्रे तन्नेयेष गृहितां च सः ॥ २८९ ॥
परात् परार्थं स्वार्थं वा, स लेभेऽन्नादिकं न वा । लाभेऽमाद्यन्न नाऽलाभेऽनिन्दत् स्वमथवा परम् ॥ २९० ॥
स रोगेभ्यो नोद्विविजे, न चकाङ्क्ष चिकित्सितम् । शरीरादात्मभेदज्ञोऽसहताऽदीनमानसः ॥ २९१ ॥
अभूताल्पाणुचेलत्वे, संस्तृतेषु तृणादिषु । सेहे तत्स्पर्शजं दुःखमियेष न च तान् मृदून् ॥ २९२ ॥
ग्रीष्मातपपरिक्लिन्नात्, सर्वाङ्गीणमलादपि । न स उद्विविजे स्नातुं, नैच्छन्नाऽप्युदवर्त्तयत् ॥ २९३ ॥
अभ्युत्थानेऽर्चने दाने, न सोऽभूदभिलाषुकः । न व्यषीददसत्कारे, सत्कारेऽपि जहर्ष न ॥ २९४ ॥
प्रज्ञां प्रज्ञावतां पश्यन्नात्मन्यप्रज्ञतां विदन् । न व्यषीदन्न चाऽमाद्यत्, प्रज्ञोत्कर्षमुपागतः ॥ २९५ ॥
ज्ञान-चारित्रयुक्तोऽस्मि, च्छद्मस्थोऽहं तथाऽपि हि । इत्यज्ञानं विषेहे स, ज्ञानस्य क्रमलाभवित् ॥ २९६ ॥
जिनास्तदुक्तं जीवो वा, धर्माधर्मौ भवान्तरम् । परोक्षत्वान्मृषा नैव, स मेने शुद्धदर्शनः ॥ २९७ ॥
शारीरान् मानसानेवं, स्वपरप्रेरितान् मुनिः । परीषहान् विषेहे स, वाक्कायमनसां वशी ॥ २९८ ॥
ध्यानैकतानः सततं, स्वामिनां श्रीमदर्हताम् । चक्रे चैत्यायमानं स, चेतः स्थिरतरं निजम् ॥ २९९ ॥
सिद्धेषु गुरुषु बहुश्रुतेषु स्थविरेषु च । तपस्विषु श्रुतज्ञाने, सङ्घे चाऽभूत् स भक्तिमान् ॥ ३०० ॥
एवं च तीर्थकृत्कर्मोपार्जनान्यपराण्यपि । स्थानकानि सिषेवेऽसौ, दुर्लभान्यमहात्मनाम् ॥ ३०१ ॥
तप एकावलिं रत्नावलिं च कनकावलिम् । सिंहनिःक्रीडितं ज्येष्ठं, कनिष्ठं च चकार सः ॥ ३०२ ॥
मासोपवासादारभ्य, स कर्तुं कर्मनिर्जराम् । अष्टमासोपवासान्तमुपवासतपो व्यधात् ॥ ३०३ ॥
एवं तीव्रं तपस्तप्त्वा, कृत्वा संलेखनाद्वयम् । चकाराऽनशनं प्रान्ते, समतैकपरायणः ॥ ३०४ ॥
स्मरन् पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारं समाहितः । स देहत्यागमकरोन्निलयत्यागलीलया ॥ ३०५ ॥
अनुत्तरविमानेषु, विमाने विजयाभिधे । त्रयस्त्रिंशत्सागरायुः, सोऽमरः समजायत ॥ ३०६ ॥
हस्तमात्रतनुस्तत्र, निशाकरकरोज्ज्वलः । अहमिन्द्रोऽनहङ्कारश्चारुभूषणभूषितः ॥ ३०७ ॥
सर्वदा निःप्रतीकारः, सुखशय्यामधिष्ठितः । स्थानान्तरमगामी चाऽनिर्मितोत्तरवैक्रियः ॥ ३०८ ॥
आलोकयँल्लोकनालिमवधिज्ञानसम्पदा । निर्वाणसुखदेशीयं, सोऽन्वभूत् सुखमुत्तमम् ॥ ३०९ ॥
[त्रिभिर्विशेषकम्]

आयुःसागरसङ्ख्यैः स, पक्षैर्निःश्वसितं व्यधात् । समासहस्रैस्तावद्भिर्विदधे भक्ष्यकामनाम् ॥ ३१० ॥
आयुःशेषे मासषट्के, न मोहोऽपरदेववत् । प्रत्युतासन्नपुण्यत्वात्, तस्य तेजो व्यवर्धत ॥ ३११ ॥
स एवमद्वैतसुखप्रपञ्चे, सुधाह्रदे हंस इवाऽवगाढः ।
आयुस्त्रयस्त्रिंशतमम्बुराशीनेकाहवन्निर्गमयाम्बभूव ॥ ३१२ ॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये द्वितीये पर्वणि श्रीअजितस्वामिपूर्वभववर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ॥

१ मोक्षसुखादीषन्न्यूनम् । २ त्रयस्त्रिंशता पक्षैः । ३ त्रयस्त्रिंशद्वर्षसहस्रैः । ४ भोजनेच्छाम् । ५ एकदिनवत् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीयः सर्गः ।

इतोऽस्य जम्बूद्वीपस्य, द्वीपस्य भरते पुरी । अस्ति नाम्ना विनीतेति, शिरोमणिरिवाऽवनेः ॥ १ ॥
तस्यां च त्रिजगद्भर्तुरादितीर्थकृतः प्रभोः । ऋषभस्वामिदेवस्य, मोक्षकालादनन्तरम् ॥ २ ॥
सिद्धिं सर्वार्थसिद्धं च, निरवच्छिन्नमावतः । गतेष्विक्ष्वाकुवंश्येषु, सङ्ख्यातीतेषु राजसु ॥ ३ ॥
अभूदिक्ष्वाकुवंशस्य, विततच्छत्रसन्निभः । विश्वसन्तापहरणो, जितशत्रुर्महीपतिः ॥ ४ ॥
[त्रिभिर्विशेषकम्]
यशसा विशदेनोच्चैस्तस्योत्साहादयो गुणाः । प्रपेदिरे सनाथत्वं, धिष्ण्यानीव हिमांशुना ॥ ५ ॥
सोऽलब्धमध्योऽब्धिरिव, शशीवाऽऽप्यायको दृशाम् । वज्राङ्कः शरणेच्छूनां, श्रीवल्लीमण्डपोऽभवत् ॥६॥
स सर्वनरदेवानां, हृदयेषु पदं दधत् । एकोऽप्यनेकतां प्राप, जलेष्विव निशाकरः ॥ ७ ॥
अभूदाक्रान्तदिक्चक्रैस्तेजोभिरतिदुःसहैः । जगतोऽपि स मूर्धन्यो, माध्याह्निक इवाऽर्यमा ॥ ८ ॥
वसुधां शासतस्तस्य, शासनं वसुधाधवाः । अनिशं धारयामासुः, किरीटमिव मूर्धनि ॥ ९ ॥
वसुधाया वल्गन्युच्चैराददे च ददे च सः । विश्वलोकोपकाराय, सलिलानीव वारिदः ॥ १० ॥
धर्मायाऽचिन्तयन्नित्यं, स धर्माय जगाद च । धर्माय व्यचरत् तस्य, सर्वं धर्मनिबन्धनम् ॥ ११ ॥
तस्याऽनुजन्मा नृपतेरसाधारणविक्रमः । सुमित्रविजयो नाम, यौवराज्यधरोऽभवत् ॥ १२ ॥
स[3]धर्मचारिणी चाऽऽसीज्जितशत्रुमहीपतेः । श्रीमती विजयादेवी, देवीव भुवमागता ॥ १३ ॥
पाणिभ्यां चरणाभ्यां च, नेत्राभ्यां च मुखेन च । चकासामास विकचाम्भोजखण्डमयीव सा ॥ १४ ॥
पृथिव्या भूषणं साऽभूत्, तस्याः शीलं तु भूषणम् । अन्यभूषणभारस्तु, प्रक्रियामात्रहेतुकः ॥ १५ ॥
कलाकलापकलनाद्, विश्वशोभानिबन्धनात् । देवी सरस्वती वाँ साऽवतीर्णा कमलाऽथवा ॥ १६ ॥
स नरेषूत्तमो राजा, सा नारीषु शिरोमणिः । सद्योगस्तयोरासीद्, गङ्गासागरयोरिव ॥ १७ ॥
इतश्च विजयाच्च्युत्वा, जीवो विमलभूभुजः । तस्याः श्रीविजयादेव्याः, कुक्षौ रत्नखनाविव ॥ १८ ॥
राधशुक्लत्रयोदश्यां, रोहिणीधिष्ण्यगे विधौ । ज्ञानत्रयधरः पुत्ररत्नत्वेनोदपद्यत ॥ १९ ॥
प्रभावात् स्वामिनस्तस्य, गर्भवासमुपेयुषः । क्षणं सुखं समुत्पेदे, नारकप्राणिनामपि ॥ २० ॥
तस्या एव हि यामिन्यास्तुर्ये यामेऽतिपावने । देव्या विजयया स्वप्ना, अदृश्यन्त चतुर्दश ॥ २१ ॥
आदौ तत्र मदामोदभ्रमद्भ्रमरमण्डलः । गर्जितेनाऽतिपर्जन्यो, गजः सुरगजोपमः ॥ २२ ॥
उत्तुङ्गशृङ्गरुचिरः, शरदम्भोदपाण्डुरः । रम्यपादोऽथ वृषभः, कैलास इव जङ्गमः ॥ २३ ॥
नखैरिन्दुकलावक्रैरतिकुङ्कुमकेसरैः । केसरैश्च भ्राजमानः, पञ्चाननयुवाऽपि च ॥ २४ ॥
उदस्तपूर्णकुम्भाभ्यां, कुम्भिभ्यां पार्श्वयोर्द्वयोः । क्रियमाणाभिषेका च, कमला कमलासना ॥ २५ ॥
विकासिकुसुमामोदाधिवासितदिगन्तरम् । दिवो ग्रैवेयकमिव, पुष्पदाम दिवि स्थितम् ॥ २६ ॥
सम्पूर्णमण्डलत्वेनाऽकाण्डे राकां प्रदर्शयन् । ज्योत्स्नातरङ्गितव्योमा, शीतधामा ततः परम् ॥ २७ ॥
ध्वस्तान्धकारपटलः, प्रसरद्भिर्मरीचिभिः । रजन्यामपि तन्वानो, दिनं दिनमणिस्ततः ॥ २८ ॥
शाखा कल्पद्रुमस्येव, शृङ्गं रत्नगिरेरिव । अभ्रंलिहपताकाङ्कस्तथा रत्नमयध्वजः ॥ २९ ॥
विकस्वरनवश्वेतसरोजपिहिताननः । मङ्गलस्यैकनिलयः, पूर्णकुम्भोऽतिशोभनः ॥ ३० ॥
पङ्कजैरङ्कितो विश्वक्, श्रीदेव्या विष्टरैरिव[10] । पद्माकरोऽथ स्वच्छाम्भोलहरीभिर्मनोहरः ॥ ३१ ॥

---

१ वज्रत्रायीव । २ आह्लादकः । ३ पत्नी । *वाऽसावुत्तीर्णा संता, पात. ॥ ४ वैशाखः । ५ रोहिणीनक्षत्रस्थिते । ६ रात्रेः । ७ सिंहः । ८ हस्तिभ्याम् । ९ पूर्णिमाम् । १० आसनैरिव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युपरि कल्लोलं, कल्लोलैरम्बुधिस्तथा । *नभःस्थितं चन्द्रमसमालिङ्गितुमना इव ॥ ३२ ॥
अनुत्तरविमानेभ्य, इवैकतमदागतम् । विचित्ररत्नरचितं, विमानप्रवरं तथा ॥ ३३ ॥
स्वररत्नसर्वस्वमिव, प्रसूतं रत्नगर्भया । अत्यद्भुतप्रभापुञ्जो, रत्नपुञ्जस्तथोच्चकैः ॥ ३४ ॥
तेजस्विनामशेषाणां, त्रैलोक्योदरवर्तिनाम् । तेजःपुञ्ज इवैकत्राऽऽहृतो निर्धूमपावकः ॥ ३५ ॥
एते च विजयादेव्या, परिपाट्याऽनया निजे । प्रविशन्तो मुखाम्भोजेऽदृश्यन्त भ्रमरा इव ॥ ३६ ॥
सिंहासनप्रकम्पोऽभूत्, तदानीं च दिवस्पतेः[1] । चक्षुःसहस्रादधिकं, चक्षुः प्रायुङ्क्त सोऽवधिम् ॥ ३७ ॥
अवधिज्ञानतोऽज्ञासीत्, तीर्थकृद्गर्भसम्भवम् । रोमाञ्चितवपुश्चैवं, चिन्तयामास वासवः ॥ ३८ ॥
असाविदानीं विजयादनुत्तरविमानतः । अच्योष्ट जगदानन्दनिदानं परमेश्वरः ॥ ३९ ॥
ततश्च जम्बूद्वीपाभिधाने द्वीपवरेऽधुना । याम्य[2]भारतवर्षार्धमध्यखण्डस्य मध्यतः ॥ ४० ॥
विनीतायां महापुर्यां, जितशत्रोर्महीपतेः । भार्याया विजयादेव्याः, कुक्षौ समवतीर्णवान् ॥ ४१ ॥
एतस्यामवसर्पिण्यां, करुणारससागरः । भगवांस्तीर्थनाथोऽयं, †द्वैतीयीको भविष्यति ॥ ४२ ॥
चेतसा चिन्तयि‡त्वैवं, शुनासीरः[3] ससम्भ्रमम् । सिंहासनं पादपीठं, पादुके अपि चाऽत्यजत् ॥ ४३ ॥
गत्वा पदानि सप्ताऽष्टान्युन्मुखं तीर्थकृद्दिशः । सद्यः कृतोत्तरासङ्गो, देवराजस्ततो भुवि ॥ ४४ ॥
विन्यस्य दक्षिणं जानुं, वामं च न्यञ्च्य किञ्चन । नमश्चक्रे शिरःपाणिसंस्पृष्टवसुधातलः ॥ ४५ ॥ [युग्मम्]
अवन्दिष्ट जिनं शक्रः, शक्रस्तवपुरःसरम् । जगाम च विनीतायां, जितशत्रुनृपौकसि ॥ ४६ ॥
ज्ञात्वाऽर्हतोऽवतारं च, तदैवाऽऽसनकम्पतः । भक्त्या समाययुस्तत्राऽपरेऽपि हि पुरन्दराः ॥ ४७ ॥
तत्र चाऽऽमलकस्थूलैरमलैः समवर्तुलैः । अनर्घ्यैर्मौक्तिकगणैर्विन्यस्तस्वस्तिकाजिरम् ॥ ४८ ॥
शातकुम्भमयैः[4] स्तम्भैर्नीलपाञ्चालिका[5]ङ्कितैः । पत्रैर्मरकतमयैर्द्वारे रचिततोरणम् ॥ ४९ ॥
परितो रचितोल्लोचमखण्डैः सूक्ष्मतन्तुभिः । दिव्यांशुकैः पञ्चवर्णैः, सन्ध्याभ्रैरिवाऽम्बरम् ॥ ५० ॥
सुवर्णधूपघटिकायन्त्रोद्यद्धूमवर्तिभिः । स्थाप[6]त्ययष्टिभिरिवोद्यताभिः परिशोभितम् ॥ ५१ ॥
स्वामिन्या विजयादेव्याः, शय्यासदनमुच्चकैः । कल्याणीभक्तयोऽभ्येयुरिन्द्राः शक्रादयोऽथ ते ॥ ५२ ॥
[पञ्चभिः कुलकम्]

उन्नते पार्श्वतः किञ्चित्, किञ्चिन्निम्ने च मध्यतः । हंसरोमलतातूलपूर्णोच्छीर्षकशालिनि ॥ ५३ ॥
विशदाच्छादनास्तीर्णे, तत्र तल्पे मनोरमे । ददृशुः स्वामिनीं गङ्गापुलिने हंसिकामिव ॥५४॥ [युग्मम्]
आत्मानं ज्ञापयित्वा ते, नत्वा च व्याचचक्षिरे । विजयायै स्वप्नफलं, तीर्थकृज्जन्मलक्षणम् ॥ ५५ ॥
आदिदेश ततः शक्रो, धनदं यदियं त्वया । ऋषभस्वामिराज्यादौ, रत्नाद्यैः पूरपूर्यत ॥ ५६ ॥
नवीकुरु पुरीमेतां, नूतनैस्तद्गृहादिभिः । मधुमास इवोद्यानं, प्रत्यग्रैः पल्लवादिभिः ॥ ५७ ॥
रत्नैः स्वर्णैर्धनैर्धान्यैर्वासोभिश्च समन्ततः । पूरयेमां पुरीं पृथ्वीं, जलैरिव बलाहकः ॥ ५८ ॥
इत्युक्त्वा सोऽपरेऽपीन्द्रा, मध्येनन्दीश्वरं ततः । गत्वा चक्रुः शाश्वतार्हत्प्रतिमाष्टाह्निकोत्सवम् ॥ ५९ ॥
ततो निजनिजं स्थानं, ययुः सर्वेऽपि वासवाः । यक्षोऽपि कृत्वेन्द्रादिष्टं, तत्पुर्याः स्वपुरीं ययौ ॥ ६० ॥
स्वर्णराशिभिरुत्तुङ्गैः, शृङ्गैर्मेरुगिरेरिव । कल§धौतोच्चयै[7]रुच्चैर्वैताढ्यशिखरैरिव ॥ ६१ ॥
रत्नाकरस्य सर्वस्वेनेव रत्नोत्करैरपि । धान्यैश्च सप्तदशभिर्बीजैरिव जगन्मुदः ॥ ६२ ॥
वासोभिः कल्पवृक्षेभ्यः, सर्वतोऽप्याहृतैरिव । ज्योतिष्काणामिव रथैर्वाहनैश्चाऽतिसुन्दरैः ॥ ६३ ॥

---

* इत आरभ्य ३३ पर्यन्तं पाठः खंतापुस्तके पतितः ॥ १ इन्द्रस्य । २ दक्षिणम् । † द्विती° खंता ॥ ‡ ° त्वेति ल ॥ ३ इन्द्रः । ४ सुवर्णमयैः । ५ पुत्तलिका । ६ अन्तःपुररक्षकः । § कलधूतो° खंता ॥ ७ रूप्यराशिभिः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवीकृता प्रतिगृहं, प्रत्यापणचतुष्पथम् । अलकापतिना पूर्णा, साऽलकेव पुरी बभौ ॥ ६४ ॥
[*चतुर्भिः कलापकम्]

सुमित्रस्याऽपि गृहिणी, स्वप्नांस्तानेव तन्निशि । वैजयन्ती निरैक्षिष्ट, यशोमत्यपराभिधा ॥६५॥
ततस्तद्रजनीशेषं, कुमुदिन्याविवोन्मुदौ । विजया-वैजयन्त्यौ ते, जाग्रत्यावेव निन्यतुः ॥ ६६ ॥
विजया स्वामिनी प्रातस्तान् स्वप्नान् जितशत्रवे । आचचक्षे वैजयन्ती, सुमित्रविजयाय तु ॥ ६७ ॥
तान् स्वप्नान् विजयादेव्या, विचार्य मनसर्जुना । आख्याति स्म स्वप्नफलमेवं वसुमतीपतिः ॥ ६८ ॥
एभिः स्वप्नैर्महादेवि!, यशोवृद्धिर्गुणैरिव । विशेषज्ञानसम्पत्तिरागमाभ्यसनैरिव ॥ ६९ ॥
जगदुद्योतनमिव, प्रद्योतन[1]मरीचिभिः । तव त्रिजगदुत्कृष्टो, नूनं सूनुर्भविष्यति ॥ ७० ॥
एवं स्वप्नफलं राज्ञो, यथाप्रज्ञं विविञ्चतः । सुमित्रविजयोऽभ्यागात्, प्रतीहारीनिवेदितः ॥ ७१ ॥
नृदेवं देववन्नत्वा, पञ्चाङ्गस्पृष्टभूतलः । निषसाद यथास्थानं, सुमित्रविजयस्ततः ॥ ७२ ॥
क्षणं स्थित्वा पुनर्नत्वा, भक्तितो वसुधापतिम् । एवं विज्ञपयामास, कुमारो रचिताञ्जलिः ॥ ७३ ॥

युष्मद्वध्वा[2] वैजयन्त्या, प्रहरेऽद्य निशोऽन्तिमे । निरीक्षाञ्चक्रिरे स्वप्नेऽमी मुखाब्जप्रवेशिनः ॥ ७४ ॥
तत्राऽऽदौ गज ऊर्जस्वी, गर्जिनिर्जितदिग्गजः । नदन्नुत्तुङ्गककुदः, ककुद्मान्[3] विशदाकृतिः ॥ ७५ ॥
उत्केसरततिर्व्यात्ताननः पञ्चाननोऽपि च । क्रियमाणाभिषेका श्रीर्हस्तिभ्यां पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ ७६ ॥
पञ्चवर्णं च सुमनोदामैन्द्रमिव कार्मुकम् । सुधाकुण्डमिवाऽऽपूर्णं, शशी सम्पूर्णमण्डलः ॥ ७७ ॥
विश्वस्याऽप्याहृत इव, प्रतापस्तपनस्ततः । दिव्यरत्नमयः प्रेङ्खत्पताकश्च महाध्वजः ॥ ७८ ॥
पूर्णकुम्भो नवश्वेताम्भोरुहच्छादिताननः । सहस्राक्षमिव स्मेरैः, पद्मैः पद्मसरोऽपि च ॥ ७९ ॥
आपिप्लावयिषु[4]रिव, द्यामप्यूर्मिभिरम्बुधिः । सामानिकविमानाभं, विमानं च महर्द्धिकम् ॥ ८० ॥
सारं रत्नाचलस्येव, रत्नपुञ्जः स्फुरत्प्रभः । धूमध्वजश्च निर्धूमः, शिखापल्लविताम्बरः ॥ ८१ ॥
एते ददृशिरे स्वप्नाः, फलमेषां तु तत्त्वतः । देव एव हि जानाति, फलभाग् देव एव च ॥ ८२ ॥

राजाऽप्युवाचाऽमी स्वप्ना, देव्या विजययाऽपि हि । अद्यैव यामे यामिन्यास्तुर्ये ददृशिरे स्फुटाः ॥८३॥
यद्यप्येते महास्वप्नाः, सामान्येन महाफलाः । आनन्दकारिणो राकानिशाकरकरा इव ॥ ८४ ॥
तथाऽपि तज्ज्ञाः प्रष्टव्याः, फलं ज्ञातुं विशेषतः । अमीषां कुमुदानन्दकृत्त्वं शशिरुचामिव ॥ ८५ ॥
आमित्युक्ते कुमारेण, राज्ञा सादरमीरितः[5] । आजुहाव प्रतीहारः, स्वप्नशास्त्रविचक्षणान् ॥ ८६ ॥

ते धौतश्वेतवसनावृताः स्नानामलत्विषः । पार्वणोडुपति[6]ज्योत्स्नाच्छादितास्तारका इव ॥ ८७ ॥
दूर्वाङ्कुरैः शिरोन्यस्तैरवतंसधरा इव । सपुष्पकेशा नद्योघाः, सहंसेन्दीवरा[7] इव ॥ ८८ ॥
गोरोचनाचूर्णकृतैस्तिलकैरलिक[8]स्थितैः । अविम्लानज्ञानदीपशिखाभिरिव शोभिताः ॥ ८९ ॥
अनर्घ्यस्वल्परुचिरालङ्काराङ्कितविग्रहाः । सुगन्धिस्तोककुसुमा, इव चैत्रमुखद्रुमाः ॥ ९० ॥
नैमित्तिकाः पुरो राज्ञो, विज्ञप्ता वेत्रधारिणा । साक्षादिव ज्ञानशास्त्ररहस्यानि समाययुः ॥ ९१ ॥
ते मन्त्रानार्यवेदोक्तान्, विश्वकल्याणकारकान् । प्रत्येकं युगपदपि, पेठुरग्रे महीपतेः ॥ ९२ ॥
क्षेमङ्करं क्षितिपतेर्मूर्ध्नि दूर्वाक्षतादिकम् । प्रचिक्षिपुस्ते कुसुमान्युद्यानपवना इव ॥ ९३ ॥
भद्रासनेषु रम्येषु, द्वाःस्थसन्दर्शितेषु ते । अथाऽऽसाञ्चक्रिरे हंसाः, पद्मिनीच्छद[9]नेष्विव ॥ ९४ ॥

जायां वधूं च तदनु, राजा यवनिकान्तरे । आसयामास शशिभृल्लेखा[10]मिव घनान्तरे ॥ ९५ ॥
साक्षात् स्वप्नफलमिवाऽञ्जलौ पुष्पफले दधत् । जायावध्वोर्महास्वप्नांस्तेषामकथयन्नृपः ॥ ९६ ॥

---

* इदं नास्ति पात, खंतापुस्तके ॥ १ सूर्यकिरणैः । २ मम पत्न्या । ३ वृषभः । ४ प्लावयितुमिच्छुः । ५ प्रेरितः । ६ पूर्णिमाचन्द्रः । ७ हंस-कमलसहिताः । ८ ललाटस्थितैः । ९ कमलिनीदलेषु । १० चन्द्रलेखामिव ।

जनान्तिकेन तत्रैव, पर्यालोच्य परस्परम् । स्वप्नशास्त्रानुसारात् ते, स्वप्नार्थं व्याचचक्षिरे ॥ ९७ ॥
देव ! द्वासप्ततिः स्वप्नाः, स्वप्नशास्त्रे प्रकीर्तिताः । तेषु च त्रिंशदुत्कृष्टा, ज्योतिष्केषु ग्रहा इव ॥ ९८ ॥
स्वप्नानां त्रिंशतस्तेषां, मध्यादेते चतुर्दश । उदीर्यन्ते महास्वप्नाः, स्वप्नशास्त्रविशारदैः ॥ ९९ ॥
एतान् गर्भस्थिते तीर्थकरे चक्रधरेऽपि च । तन्माता क्रमशो रात्रितुर्ययामे निरीक्षते ॥ १०० ॥
मध्यादमीषां स्वप्नानां, सप्त मातेक्षते हरेः[२] । चतुरः सीरिणो[३] माता, मातैकं मण्डलेशितुः ॥ १०१ ॥
न द्वौ युगपदर्हन्तौ, युगपच्चक्रिणौ न च । एकस्यास्तीर्थकृत् सूनुरन्यस्याश्चक्रभृत् ततः ॥ १०२ ॥
ऋषभे भरतश्चक्री, सौमित्रिः सगरोऽजिते । जितशत्रुसुते तीर्थङ्कर इत्यर्हदागमात् ॥ १०३ ॥
ज्ञातव्यो विजयादेव्याः, सूनुस्तीर्थंकरः खलु । षट्खण्डभरताधीशो, वैजयन्त्यास्तु नन्दनः ॥ १०४ ॥
परितुष्टस्ततस्तेषां, नृपतिः पारितोषिकम् । प्रददौ ग्रामखेटादि, वस्त्रालङ्करणादि च ॥ १०५ ॥
आजन्मदौस्थ्य[४]मगमत्, तेषां तज्जन्मशंसनात् । महापुमांसो गर्भस्था, अपि लोकोपकारिणः ॥ १०६ ॥
वस्त्रालङ्करणैः कल्पद्रुमा इव विराजिनः । ते राजानुज्ञया जग्मुस्ततः स्वं स्वं निकेतनम् ॥ १०७ ॥
विजया-वैजयन्त्यौ च, वासागारं निजं निजम् । जग्मतुर्मुदिते गङ्गा-सिन्धू इव पयोनिधिम् ॥१०८॥
ततः पुरन्दरादेशान्नित्यं देवासुरस्त्रियः । सेवितुं विजयादेवीमेवमारेभिरे भृशम् ॥ १०९ ॥
स्वामिनीसदनात् पांसुतृणकाष्ठादि सर्वतः । सदाऽपनिन्यिरे वायुकुमाररमणीजनाः ॥ ११० ॥
गन्धोदकेन सिषिचुस्तद्वेश्माङ्गणभूमिकाम् । भुजिष्याजनवन्[५]मेघकुमारकमृगीदृशः ॥ १११ ॥
ववृषुः पञ्चवर्णानि, पुष्पाणि ऋतुदेवताः । प्रभोर्गर्भस्थितस्याऽपि, दातुमर्घमिवोद्यताः ॥ ११२ ॥
प्रकाशमुपनिन्युश्च, ज्योतिष्काणां पुरन्ध्रयः । यथासुखं यथाकालं, स्वामिन्या भाववेदिकाः ॥ ११३ ॥
वनदेव्यो दास्य इव, चक्रिरे तोरणादिकम् । ता मागधस्त्रिय इव, तुष्टुवुश्च सुरस्त्रियः ॥ ११४ ॥
देवताभिरिति स्वाधिदेवतेव ततोऽपि वा । अधिकेव प्रतिदिनं, विजयादेव्यसेव्यत ॥ ११५ ॥
कालिके[६]वाऽंशुमद्बिम्बं, निधानमिव मेदिनी । विजया वैजयन्ती च, देवी गर्भमधारयत् ॥ ११६ ॥
निसर्गेणाऽपि राजन्त्यौ, ते गर्भेणाऽतिरेजतुः । सरस्याविव सम्पूर्णे, मध्ये स्वर्णाम्बुजन्मना ॥ ११७ ॥
स्वर्णप्रभागौरमपि, तयोर्वदनपङ्कजम् । पाण्डिमानं दधौ दन्तिदन्तच्छेदच्छविस्पृशम् ॥ ११८ ॥
तयोः कर्णान्तविश्रान्ते, स्वभावादपि लोचने । अधिकं सविकासे चाऽजायेतां शरदब्जवत् ॥ ११९ ॥
तयोर्लवणिमा[७] तादृगवर्धिष्टाऽधिकाधिकम् । सद्यो मार्जितयोः कान्तिर्हैम्योरिव शलाकयोः ॥ १२० ॥
अग्रेऽपि मन्थरं यान्त्यौ, विशेषादतिमन्थरम् । देव्यौ सञ्चेरतू राजहंसाविव मदालसे ॥ १२१ ॥
अतिगूढं ववृधाते, तयोर्गर्भौ सुखप्रदौ । नलिनीनालवन्मध्योः, शुक्त्योर्मौक्तिकरत्नवत् ॥ १२२ ॥
ततो नवसु मासेषु, दिनेष्वर्धाष्टमेषु च* । गतेषु माघमासस्य, शुक्लाष्टम्यां शुभे क्षणे ॥ १२३ ॥
ग्रहेषूच्चस्थितेष्वृक्षे[८], रोहिण्यां गजलाञ्छनम् । असूत विजया सूनुं, पुण्यं सूनृतवागिव ॥ १२४ ॥
प्रसूतिदुःखं नो देव्या, न सूनोरप्यजायत । स एष तीर्थनाथानां, प्रभावो हि स्वभावजः ॥ १२५ ॥
जज्ञे तदानीमुद्योतः, क्षणं त्रिभुवनेऽपि हि । अकाण्डोद्भूतनिर्मेघविद्युदुद्योतसोदरः ॥ १२६ ॥
नारकाणामपि सुखं, तदा क्षणमजायत । अभ्रच्छायासुखमिव, पान्थानां शरदागमे ॥ १२७ ॥
शरद्यपामिव तदा, प्रसादः ककुभामभूत् । अत्युल्लासश्च लोकानां, कमलानामिवोषसि ॥ १२८ ॥
प्रदक्षिणोऽनुकूलश्च, भूमिसर्पी च मारुतः । मन्दं मन्दं ववौ सद्यो, भूतलादुद्भवन्निव ॥ १२९ ॥
सञ्जज्ञिरे समन्ताच्च, शकुनाः शुभसूचकाः । सर्वं हि शुभमेव स्याज्जन्मतोऽपि शुभात्मनाम् ॥ १३० ॥

---

१ एकान्ते । २ वासुदेवस्य । ३ बलदेवस्य । ४ आजन्मदारिद्र्यम् । ५ दासीजनवत् । ६ मेघमाला । ७ लावण्यम् ।

* तु ल. पा ॥ ८ नक्षत्रे ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदा च दिक्कुमारीणामासनानि चकम्पिरे । उन्मनांसीवोत्पतितुं, जिनान्तिकयियासया ॥ १३१ ॥
चारुचूडामणिरुचिप्रसरव्यपदेशतः । रचितोदात्तकौसुम्भवस्त्रनीरङ्गिका इव ॥ १३२ ॥
शोभिताः स्वप्रभापूर्णान्तरैर्मौक्तिककुण्डलैः । सुधाकुण्डैरिव झलज्झलायितसुधोर्मिभिः ॥ १३३ ॥
ग्रैवेयकैः शोभमाना, विचित्रमणिनिर्मितैः । कुण्डलीकृतसुत्रामकोदण्डश्रीविडम्बिभिः ॥ १३४ ॥
अधिस्तनतटामुक्तैर्मुक्ताहारैर्मनोहराः । रत्नशैलतटीचञ्चन्निर्झरश्रीमलिम्लुचैः ॥ १३५ ॥
माणिक्यचूडावलयैर्विराजद्भुजवल्लयः । न्यासीकृतैरनङ्गेन, निषङ्गैरिव चारुभिः ॥ १३६ ॥
अनर्घ्यरत्नरचितां, दधाना रसनालताम् । जगज्जिगीषोः पञ्चेषोः, कृते ज्यामिव सज्जिताम् ॥ १३७ ॥
अङ्गांशुनिर्जितैः सर्वज्योतिष्काणामिवांऽशुभिः । लग्नैश्चरणपद्मेषु, शोभिता रत्ननूपुरैः ॥ १३८ ॥
काश्चिन्नीलाङ्गरुचयः, प्रियङ्गुलतिका इव । काश्चित् स्वभाभिस्तन्वन्त्यस्तालीवनमिवाऽम्बरे ॥ १३९ ॥
विकिरन्त्यो रुचीः काश्चिद्, बालारुणरुचीरिव । स्नपयन्त्यो रुचा काश्चित्, सितया ज्योत्स्नयेव खम् ॥१४०॥
काश्चिद् ददत्यः कनकस्थत्राणीव दिशां रुचा । काश्चिच्च कान्त्या वैडूर्यरत्नपाञ्चालिका इव ॥ १४१ ॥
सर्वाः कुचाभ्यां वृत्ताभ्यां, सचक्रा इव निम्नगाः । सर्वाः सलीलगामिन्यो, राजहंसाङ्गना इव ॥ १४२ ॥
सपल्लवा इव लताः, सर्वाः कोमलपाणयः । उन्निद्रपद्माः पद्मिन्य, इव सर्वाः सुलोचनाः ॥ १४३ ॥
सर्वा लावण्यपूरेण, सजला इव दीर्घिकाः । सर्वाः सौन्दर्यशालिन्यो, मन्मथस्येव देवताः ॥ १४४ ॥
सञ्जाताऽऽसनकम्पेन, किमेतदिति सम्भ्रमात् । षट्पञ्चाशदपि हि ताः, सद्यः प्रायुञ्जताऽवधिम् ॥१४५॥
[पञ्चदशभिः कुलकम्]

तत्कालमवधिज्ञानाद्, युगपद् दिक्कुमारिकाः । विविदुर्विजयादेव्यां*, तीर्थकृज्जन्म पावनम् ॥ १४६ ॥
एवं च चिन्तयामासुर्जम्बूद्वीप इहैव हि । याम्यभारतवर्षार्धमध्यखण्डस्य मध्यतः ॥ १४७ ॥
विनीतायां महापुर्यामिक्ष्वाकुकुलजन्मनः । विजयायां धर्मपत्न्यां, जितशत्रुमहीपतेः ॥ १४८ ॥
एतस्यामवसर्पिण्यां, भगवानेष तीर्थकृत् । ज्ञानत्रयधरः श्रीमान्, द्वितीय उदपद्यत ॥ १४९ ॥
विमृश्यैवं समुत्थायाऽऽसनेभ्यस्ताः ससम्मदाः । ददुः पदानि सप्ताऽष्टान्युन्मुखं तीर्थकृद्दिशः ॥ १५० ॥
पुरस्कृत्येव मनसा, नमस्कृत्य जिनेश्वरम् । शक्रस्तवेन ताः सर्वा, अवन्दन्तोरुभक्तयः ॥ १५१ ॥
वलित्वा पुनरध्यास्य, रत्नसिंहासनानि ताः । इत्यादिशन्निजनिजानमरानाभियोगिकान् ॥ १५२ ॥
हंहो! गन्तव्यमस्माभिर्भरतार्धेऽद्य दक्षिणे । समुत्पन्नद्वितीयार्हत्सूतिकाकर्महेतवे ॥ १५३ ॥
ततो विततगर्भाणि, नानामणिमयानि च । विकुरुध्वं विमानानि, महामानानि नः कृते ॥ १५४ ॥
दन्तुराणि ततः कुम्भैः, शातकौम्भैः सहस्रशः । वैमानिकविमानानामुत्पत्राणीव केतुभिः ॥ १५५ ॥
रुचिराणि मणिस्तम्भैः, शालभञ्जीविराजितैः । ताण्डवश्रमविश्रान्तनर्त्तकीनिचयैरिव ॥ १५६ ॥
संभ्रमेणानुकारीणि, घण्टानिर्घोषडम्बरैः । प्रक्वणत्किङ्किणीजालैर्वाचालानि निरन्तरम् ॥ १५७ ॥
रम्याणि वज्रवेदीभिः, श्रियामिव महासनैः । रुक्सहस्रैः सहस्रांशुबिम्बानीव प्रसारिभिः ॥ १५८ ॥
ईहामृगैः रत्नमयैर्ऋषभैस्तुरगैर्नरैः । रुरुभिर्मकरैर्हंसैः, शरभैश्चमरैर्गजैः ॥ १५९ ॥
किन्नरैर्वनलताभिस्तथा पद्मलतोच्चयैः । अङ्कितान्यभितो भित्तिवलभीस्तम्भमूर्धसु ॥ १६० ॥
आदेशेन समं तासां, ते देवा आभियोगिकाः । विकृत्य दर्शयामासुर्विमानान्युरुशक्तयः ॥ १६१ ॥
[सप्तभिः कुलकम्]

१ उत्सुकानीव । २ जिनसमीपं जिगमिषया । ३ इन्द्रधनुः । ४ करकङ्कणैः । ५ तूणीरैः । ६ कटिमेखलाम् । ७ कामदेवस्य । ८ चक्रवाकसहिताः । * °देव्यास्ती° संज्ञा ॥ ९ विस्तृतमध्यभागानि । १० हस्तिसदृशानि । ११ वृषभैः । १२ मृगैः । १३ अष्टापदैः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अथाऽधोलोकवास्तव्यास्तास्वष्टौ दिक्कुमारिकाः । देवदूष्यनिवसनाः, पुष्पालङ्कृतकुन्तलाः ॥ १६२ ॥
भोगङ्करा भोगवती, सुभोगा भोगमालिनी। तोयधारा विचित्रा च, पुष्पमालाऽप्यनिन्दिता
प्रत्येकं च सामानिकीचत्वारिंशच्छतावृताः । महत्तराभिः प्रत्येकं, तथा चतसृभिर्युताः ॥ १६४ ॥
प्रत्येकं च महानीकैः, सप्तभिः परिवारिताः । अनीकाधिपतिभिश्च, प्रत्येकमपि सप्तभिः ॥ १६५ ॥
आत्मरक्षीसहस्रैश्चैकैका षोडशभिर्युताः । अन्यैश्च व्यन्तरैर्देवैर्देवीभिश्च महर्द्धिभिः ॥ १६६ ॥
विमानानि समारुह्य, गीतनृत्तमनोहरम् । प्रति पूर्वोत्तरदिशं, सोत्कण्ठमुपचक्रमुः ॥ १६७ ॥
अथ कृत्वा समुद्घातं, वैक्रियं ताः क्षणादपि । योजनान्यपसङ्ख्यानि, यावद् दण्डं विचक्रिरे ॥ १६८ ॥
रत्न-वैडूर्य-वज्राणां, लोहिताक्षाङ्कयोरपि । अञ्जनाञ्जनपुलक-पुलकानां तथैव च ॥ १६९ ॥
ज्योतीरस-सौगन्धिक-रिष्टानां स्फटिकाश्मनाम् । जातरूपहंसगर्भरत्नानामपि सर्वतः ॥ १७० ॥
तथा मसारगल्लानां, मणीनां स्थूलपुद्गलान् । परितः शातयामासुर्जगृहुश्चाऽणुपुद्गलान् ॥ १७१ ॥
ततश्च चक्रिरे स्वं स्वं, रूपमुत्तरवैक्रियम् । देवतानां जन्मसिद्धाः, खलु वैक्रियलब्धयः ॥ १७२ ॥
उत्कृष्टया त्वरितया, चलया चण्डयाऽपि च । सिंहोद्धताभ्यां पतनाच्छेकाभ्यामथ दिव्यया ॥ १७३ ॥
देवगत्या तथा सर्वऋध्या सर्वबलेन च । ययुः पुर्यामयोध्यायां, जितशत्रुनृपौकसि ॥ १७४ ॥
ततो महाविमानैः स्वैर्ज्योतींषीवाऽमराचलम् । तास्त्रिः प्रदक्षिणीचक्रुस्तीर्थकृत्सूतिकागृहम् ॥ १७५ ॥
चतुरङ्गुलमात्रेणाऽसंस्पृशन्त्यो महीतलम् । अस्थापयन् विमानानि, पूर्वोदीच्यां ततश्च ताः ॥ १७६ ॥
प्रविश्य सूतिकागारं, जिनेन्द्रं जिनमातरम् । त्रिस्ताः प्रदक्षिणीकृत्य, बद्धाञ्जल्येवमूचिरे ॥ १७७ ॥
नमस्तुभ्यं जगन्मातः!, कुक्षिणा रत्नधारिणि! । सर्वनारीसारभूते!, जगद्दीपप्रदायिनि! ॥ १७८ ॥
त्वं धन्याऽसि पवित्राऽसि, त्वं चाऽसि जगदुत्तमा। मनुष्यलोके चैतस्मिन्, जन्मेदं सफलं तव ॥ १७९ ॥
यत् त्वं पुरुषरत्नस्य, कारुण्यक्षीरनीरधेः । त्रैलोक्यवन्दनीयस्य, स्वामिनो धर्मचक्रिणः ॥ १८० ॥
जगद्गुरोर्जगद्बन्धोर्विश्वानुग्रहकारिणः । द्वितीयस्याऽवसर्पिण्यां, जिनेन्द्रस्य जनन्यसि ॥ १८१ ॥
मातर्वयमधोलोकवास्तव्या दिक्कुमारिकाः । कर्तुं तीर्थकृतो जन्ममहिमानमिहाऽऽगताः ॥ १८२ ॥
तद् युष्माभिर्न भेतव्यमित्युदीर्य प्रणम्य च । पूर्वोत्तरस्यां ककुभि, तत्र ता व्यपचक्रमुः ॥ १८३ ॥
वैक्रियेण समुद्घातेनाऽथ ताः शक्तिसम्पदा । वातं संवर्त्तकं नाम, क्षणेनाऽपि विचक्रिरे ॥ १८४ ॥
शिवेन मृदुशीतेन, तेन तिर्यक्प्रवायिना । सर्वर्तुकुसुमाभोगगन्धसर्वस्ववाहिना ॥ १८५ ॥
मरुता सूतिकागारं, परितो योजनावधि । अपनीय तृणाद्युच्चैश्चोक्षीचक्रुः क्षमातलम् ॥ १८६ ॥
भगवद्भगवन्मात्रोरदवीयसि तास्ततः । मङ्गल्यगीतं गायन्त्यो, हर्षवत्योऽवतस्थिरे ॥ १८७ ॥
अथोर्ध्वरुचकसंस्था, नन्दनोद्यानकूटगाः। दिव्यालङ्कारधारिण्य, इत्यष्टौ दिक्कुमारिकाः ॥ १८८ ॥
मेघङ्करा मेघवती, सुमेघा मेघमालिनी। सुवत्सा वत्समित्रा च, वारिषेणा बलाहका ॥१८९॥
महत्तराभिः सामानिक्यङ्गरक्षीभिरेव च । अनीकानीकपतिभिः, पूर्ववत् परिवारिताः ॥ १९० ॥
एयुस्तत् सूतिकावेश्म, स्वामिजन्मपवित्रितम् । त्रिश्च प्रदक्षिणीचक्रुर्जिनेन्द्र-जिनमातरौ ॥ १९१ ॥
पूर्ववज्ज्ञापयित्वा स्वं, विजयायै प्रणम्य च। अभिष्टुत्य च तत्रोच्चैर्विचक्रुर्मेघदुर्दिनम् ॥ १९२ ॥
ततश्च भगवज्जन्मभवनाद् योजनावधि । नाऽतिस्तोकां नाऽतिबह्वीं, वृष्टिं गन्धोदकैर्व्यधुः ॥ १९३ ॥
तपसेवाऽंहसां राकाज्योत्स्नया तमसामिव । तया च रजसां शान्तिर्द्राग् वृष्ट्या समजायत ॥ १९४ ॥
ततो विचित्रमुन्निद्रं, पुष्पप्रकरमाशु ताः । तत्र रङ्गावनौ रङ्गाचार्या इव विचक्रिरे ॥ १९५ ॥
घनसारागुरुप्रायधूपधूमेन चोच्चकैः । तां भुवं वासयामासुर्वासागारमिव श्रियः ॥ १९६ ॥

१ ऐशानीम् । २ असङ्ख्यातानि । ३ मेरुम् । ४ अनतिदूरे । ५ पापानाम् । ६ विकसितम् । ७ सूत्रधाराः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थकृत्तीर्थकृन्मात्रोरनत्यासन्न-दूरतः । अथाऽमलान् स्वामिगुणांस्ता गायन्त्योऽवतस्थिरे ॥ १९७ ॥

अथ पूर्वरुचकाद्रिवास्तव्या दिक्कुमारिकाः । सहिताः सर्वया ऋद्ध्या, सकलेन बलेन च ॥ १९८ ॥

तत्र नन्दोत्तरानन्दे, आनन्दा-नन्दिवर्धने । विजया वैजयन्ती च, जयन्ती चाऽपराजिता॥१९९

पूर्ववत् सपरीवारास्तदेयुः सूतिकागृहम् । त्रिश्च प्रदक्षिणीचक्रुस्ताः स्वामि-स्वामिमातरौ ॥ २०० ॥

स्वं ज्ञापयित्वा स्वामिन्यै, नत्वा स्तुत्वा च पूर्ववत् । तत्पूर्वतोऽस्थुर्गायन्त्यो, रत्नदर्पणपाणयः ॥ २०१ ॥

अपाच्यरुचशैलवास्तव्याश्चारुभूषणाः । स्रग्विण्यो दिव्यवसना, इत्यष्टौ दिक्कुमारिकाः ॥ २०२ ॥

समहारा सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा यशोधरा । लक्ष्मीवती शेषवती, चित्रगुप्ता वसुन्धरा ॥२०३॥

प्राग्वत् परिच्छदभृतस्तस्मिन्नभ्येत्य वेश्मनि । नत्वा प्रदक्षिणापूर्वं, स्वामिन्यै स्वमजिज्ञपन् ॥ २०४ ॥

जिनेन्द्र-जिनजनन्योर्दक्षिणेन कलस्वनाः । ता मङ्गलानि गायन्त्यस्तस्थुर्भृङ्गारपाणयः ॥ २०५ ॥

तथा प्रत्यग्रुचकाद्रिवास्तव्या दिक्कुमारिकाः । पूर्ववज्ज्ञापयित्वा स्वं, तावन्मात्रपरिच्छदाः ॥ २०६ ॥

इलादेवी सुरादेवी, पृथिवी पद्मवत्यपि । एकनासा नवमिका, भद्रा सीता च नामतः॥२०७॥

कृत्वा प्रदक्षिणापूर्वं, नतिं जिन-जिनाम्बयोः । गायन्त्यः पश्चिमेनाऽस्थुश्चारुव्यजनपाणयः ॥ २०८ ॥

तथोदग्रुचकशैलवास्तव्या दिक्कुमारिकाः । निवेद्य प्राग्वदात्मानं, तथैव सपरिच्छदाः ॥ २०९ ॥

अलम्बुसा मिश्रकेशी, पुण्डरीका च वारुणी । हासा सर्वप्रभा चैव, ह्रीः श्रीरिति च नामतः॥२१०

नत्वा प्रदक्षिणापूर्वं, पादान् जिन-जिनाम्बयोः । गायन्त्य उत्तरेणाऽस्थुश्चारुचामरपाणयः ॥ २११ ॥

विदिग्रुचकवास्तव्याश्चतस्रो दिक्कुमारिकाः । चित्रा चित्रकनका सतेरा सौत्रामणी तथा ॥२१२॥

एत्य प्रदक्षिणापूर्वं, नमस्कारं विधाय च । जिनस्य जिनमातुश्च, स्वमायातं न्यवेदयन् ॥ २१३ ॥

स्वामिनः स्वामिमातुश्च, गायन्त्यो विपुलान् गुणान् । दीपिकापाणयस्तस्थुरैशान्यादिविदिक्षु ताः ॥२१४॥

रुचकद्वीपमध्यस्थाश्चतस्रो दिक्कुमारिकाः । रूपा रूपांशिका चैव, सुरूपा रूपकावती ॥२१५॥

प्रत्येकं पूर्ववत् सर्वपरिवारविराजिताः । महाविमानान्यारुह्याऽर्हज्जन्मगृहमाययुः ॥ २१६ ॥

तत् त्रिः प्रदक्षिणीचक्रुर्विमानेष्वेव ताः स्थिताः । अस्थापयन् विमानानि, देशे समुचिते ततः ॥ २१७ ॥

ततश्चरणचारिण्यो, जिनेन्द्र-जिनमातरौ । भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य, नत्वा चैवं बभाषिरे ॥ २१८ ॥

जय जीव चिरं नन्द, विश्वानन्दननन्दने! । सुमुहूर्त्तं जगन्मातरद्य त्वद्दर्शनेन नः ॥ २१९ ॥

रत्नाकरो रत्नशैलो, रत्नगर्भा सुधा क्षमी । त्वमेका रत्नभूः पुत्ररत्नं यत् सूतवत्यदः ॥ २२० ॥

वयं हि रुचकद्वीपमध्यस्था दिक्कुमारिकाः । अर्हतो जन्मकृत्यानि, कर्तुमत्र समागताः ॥ २२१ ॥

भवत्या तन्न भेतव्यमित्युक्त्वा परमेशितुः । चतुरङ्गुलवर्जं ता, नाभिनालमकल्पयन् ॥ २२२ ॥

खनित्वा †विदरं तत्र, नालं निधिमिव न्यधुः । §विदरं पूरयामासु, रत्नैर्वज्रैश्च तं ततः ॥ २२३ ॥

बबन्धुस्तत्र पीठं ताः, सद्यः प्रोद्भूतदूर्वया । अप्युद्यानान्युद्भवन्ति, देवतानां प्रभावतः ॥ २२४ ॥

सूतिकावेश्मनस्तस्य, ककुप्सु तिसृषु क्षणात् । विकुर्वन्ति स्म कदलीगृहाणि श्रीगृहाणि ताः ॥ २२५ ॥

प्रत्येकमेकं तन्मध्ये, चतुःशालं विचक्रिरे । मध्ये च तेषामेकैकं, रत्नसिंहासनं महत् ॥ २२६ ॥

ततश्च जगृहुस्तीर्थकरं करतलेन ताः । स्वामिनीं च भुजे निन्युश्चाऽपाच्यकदलीगृहे ॥ २२७ ॥

तत्र चाऽन्तश्चतुःशालं, रत्नसिंहासनोत्तमे । ताः सुखं स्वामिनं स्वामिमातरं च न्यवेशयन् ॥ २२८ ॥

स्वयं संवाहिकीभूय, पाणिन्यासैर्यथासुखैः । शतपाकादिभिस्तैलैरभ्यङ्गं च तयोर्व्यधुः ॥ २२९ ॥

गन्धद्रव्यैः सुरभिभिः, सूक्ष्मपिष्टैः क्षणेन ताः । उद्वर्त्तनं विदधिरे, रत्नदर्पणवत् तयोः ॥ २३० ॥

१ दाक्षिणात्यः । २ मधुरस्वराः । ३ नमस्कारम् । † विवरं ल, पात ॥ ४ गर्त्तम् । § विवरं पात ॥ ५ दिक्षु । ६ दक्षिणकदलीगृहे । ७ दासीभूय ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनेन्द्रं करतलेन, जिनेन्द्रजननीं भुजे । गृहीत्वा निन्यिरे ताश्च, पौरस्त्ये कदलीगृहे ॥ २३१ ॥
तत्र मध्येचतुःशालं, रत्नसिंहासनोत्तमे । आसयामासुरथ ता, जिनेन्द्र-जिनमातरौ ॥ २३२ ॥
ताश्च गन्धोदकैः पुष्पोदकैः शुद्धोदकैरपि । द्वावपि स्नपयामासुस्तदिवाऽऽजन्मशिक्षिताः ॥ २३३ ॥
विचित्ररत्नालङ्कारांस्तास्ताभ्यां पर्यधापयन् । चिरात् स्वशक्तेस्तादृश्या, मन्यमानाः कृतार्थताम् ॥ २३४ ॥
जिनेन्द्र-विजयादेव्यौ, देव्योऽथाऽऽदाय पूर्ववत् । मनोहारिणि ता जग्मुरुदीच्ये कदलीगृहे ॥ २३५ ॥
तत्राऽऽसयंश्चतुःशालमध्यसिंहासने च ताः । तौ गृह्णन्तौ नगासीनसिंही-तत्सुतयोः श्रियम् ॥ २३६ ॥
क्षणादानाययामासुस्त्रिदशैराभियोगिकैः । गोशीर्षचन्दनैधांसि, ताः क्षुद्रहिमवद्गिरेः ॥ २३७ ॥
पावकं पातयामासुर्मथित्वाऽरणिदारुणी । जायते घृष्यमाणाद्धि, दहनश्चन्दनादपि ॥ २३८ ॥
समिधीकृत्य गोशीर्षचन्दनानि समन्ततः । एधयामासुरग्निं तं, देव्यस्ता आहिताग्निवत् ॥ २३९ ॥
ततस्तेनाऽग्निहोमेन, भूतिकर्म विधाय ताः । रक्षाग्रन्थिं जिनेन्द्रस्य, बबन्धुर्भक्तिबन्धुराः ॥ २४० ॥
पर्वतायुर्भवेत्युच्चैर्वदन्त्यो जिनकर्णयोः । मिथ आस्फालयामासू, रत्नपाषाणगोलकौ ॥ २४१ ॥
तीर्थङ्करं करतलेनाऽऽदाय विजयां भुजे । ताः सूतिकागृहे निन्युः, शय्यायां चाऽध्यरोपयन् ॥ २४२ ॥
ततश्च स्वामिनः स्वामिजनन्याश्चोज्ज्वलान् गुणान् । गायन्त्यो मञ्जु तास्तस्थुरनत्यासन्न-दूरतः ॥ २४३ ॥
तदानीमेव सौधर्मे, कल्पेऽल्पेतरवैभवः । आवृतो देवकोटीभिरप्सरोभिश्च कोटिशः ॥ २४४ ॥
कोटिशश्चारणवरैः, स्तूयमानपराक्रमः । गन्धर्ववर्गेणाऽखर्वं, गीयमानगुणोच्चयः ॥ २४५ ॥
पार्श्वतो वारनारीभिर्वीज्यमानश्च चामरैः । मूर्ध्नि श्वेतातपत्रेण, राजमानोऽतिहारिणा ॥ २४६ ॥
दत्तास्थानः सुधर्मायामास्थान्यां प्राङ्मुखः सुखम् । शक्रो यावन्निषण्णोऽस्थाचकम्पे तावदासनम् ॥२४७॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥
तेन चाऽऽसनकम्पेन, कोपाटोपविसंस्थुलः । कम्पमानाधरदलः, स्फुरज्ज्वाल इवाऽनलः ॥ २४८ ॥
उत्कटभ्रुकुटीभीमो, व्योमेवोद्धूमकेतुकम् । आताम्रीभूतवदनो, मदाविष्ट इव द्विपः ॥ २४९ ॥
उत्तरङ्ग इवाऽम्भोधिस्त्रिवलीलाञ्छितालिकः । वज्रमालोकयामास, वज्रभृद् वैरिघातकम् ॥ २५० ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
तत्कोपमुपलक्ष्येत्थमुत्थायाऽग्रे कृताञ्जलिः । चमूपतिर्नैगमेषी, प्रोचे प्राचीनबर्हिषम् ॥ २५१ ॥
कं प्रति स्वयमावेशो, मय्यप्यादेशकारिणि । सुरा-ऽसुर-मनुष्येषु, नाऽधिको न समश्च ते ॥ २५२ ॥
हेतुरासनकम्पस्य, यस्ते सम्प्रत्यजायत । विमृश्याऽऽज्ञापय स्वामिंस्तत्र मां दण्डकारिणम् ॥ २५३ ॥
एवं च सेनापतिनाऽभिहितो दिविषत्पतिः । कृत्वाऽवधानमवधिज्ञानं प्रायुङ्क्त तत्क्षणात् ॥ २५४ ॥
जैनप्रवचनेनेव, धर्मं दीपेन वस्त्विव । द्वितीयतीर्थकृज्जन्माऽज्ञासीदवधिना हरिः ॥ २५५ ॥
स दध्यौ चेत्यहो ! जम्बूद्वीपे वर्षे च भारते । विनीतायां महापुर्यां, जितशत्रोर्महीपतेः ॥ २५६ ॥
जायायां विजयादेव्याः, सम्प्रत्ययमजायत । एतस्यामवसर्पिण्यां, द्वैतीयीको जिनेश्वरः ॥ २५७ ॥ युग्मम् ॥
तेन चाऽऽसनकम्पोऽयं, धिग् धिग् दुश्चिन्तितं मया । ऐश्वर्येणोन्मदिष्णोर्मे, मिथ्यादुष्कृतमस्तु तत् ॥२५८॥
चेतसा चिन्तयित्वैवं, रत्नसिंहासनं निजम् । पादपीठं पादुके च, त्यक्त्वोत्तस्थौ पुरन्दरः ॥ २५९ ॥
ससम्भ्रमः शतमखोऽभिमुखं तीर्थकृद्दिशः । ददौ पदानि कतिचित्, प्रस्थानमिव साधयन् ॥ २६० ॥
न्यस्योर्व्यां दक्षिणं जानुमन्यं न्यञ्च्य च किञ्चन । क्ष्मां स्पृशन् पाणि-शीर्षेण, ननाम स्वामिने हरिः ॥२६१
शक्रस्तवेन वन्दित्वा, स्वामिनं पाकशासनः । वेलानिवृत्तोऽब्धिरिव, भेजे भूयः स्वभूमिकाम् ॥ २६२ ॥

१ पूर्वदिक्सम्बन्धिनि । २ जन्मत आरभ्य शिक्षिता इव । ३ पर्वतोपविष्टसिंही-तत्पुत्रयोः । ४ अग्निः । ५ प्रभूतवैभवः । ६ सभायाम् । ७ ललाटम् । ८ इन्द्रम् । ९ दण्डकारकम् । १० इन्द्रः । ११ मत्तस्य । १२ इन्द्रः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ तत् तीर्थकृज्जन्म, सर्वान् ज्ञापयितुं सुरान् । तदुत्सवाय चाऽऽह्वातुं, गृहस्थः स्वजनानिव ॥ २६३ ॥
सद्यो रोमाञ्चितवपुर्वपुष्मानिव सम्मदः । आदिदेश शुनासीरः, सेनान्यं नैगमेषिणम् ॥२६४॥ युग्मम्॥
सादरं शिरसाऽऽदाय, पाकशासनशासनम् । सेनानीरपचक्राम, पीत्वेवाऽम्भः पिपासितः ॥ २६५ ॥
सुधर्मापरिषद्भव्याः, कण्ठघण्टामिवोद्भटाम् । सोऽताडयत् सुघोषां त्रिर्घण्टां योजनमण्डलाम् ॥२६६॥
तस्याश्च ताड्यमानाया, विश्वकर्णपथातिथिः । समुत्तस्थौ महान् नादो, मथ्यमानाम्बुधेरिव ॥ २६७ ॥
एकोनद्वात्रिंशल्लक्षा, घण्टा अन्या अपि स्फुटम् । प्रणेदुरथ तन्नादाद्, गोनादादिव तर्णकाः ॥ २६८ ॥
तासां शब्देन घण्टानां, जृम्भमाणेन भूयसा । सौधर्मकल्पः सर्वोऽपि, शब्दाद्वैतमयोऽभवत् ॥ २६९ ॥
नित्यप्रमादिनस्तेषु, विमानेषु दिवौकसः । नादेन तेनाऽबुध्यन्त, सिंहा इव गुहाशयाः ॥ २७० ॥
आज्ञया द्युसदांराज्ञो, मन्ये केनाऽपि नाकिना । घोषणानाट्यनान्दीयं, सुघोषा वादिताऽधुना ॥ २७१ ॥
श्रोतव्या घोषणाऽवश्यं, वासवाज्ञाप्रकाशिनी । इत्याशयाद् दत्तकर्णमवातिष्ठन्त नाकिनः ॥२७२॥ युग्मम्॥
शान्ते सुघोषानिर्घोषे, कण्ठनादेन भूयसा । पुरन्दरस्य सेनानीश्चकाराऽऽघोषणामिति ॥ २७३ ॥
भो भोः! शृण्वन्तु गीर्वाणाः!, सौधर्मस्वर्गवासिनः! । समादिशति वः सर्वानसौ दिविषदांपतिः ॥२७४॥
जम्बूद्वीपस्य भरतेऽयोध्यायां पुरि भूपतेः । जितशत्रोः सधर्मिण्यां, विजयायां जगद्गुरुः ॥२७५॥
भाग्योदयेन विश्वस्य, विश्वानुग्रहकारकः । द्वितीयस्तीर्थनाथोऽद्य, प्रभुः समुदपद्यत ॥ २७६ ॥
तत् पावयितुमात्मानमस्माभिः सपरिच्छदैः । जिनजन्माभिषेकाय, गन्तव्यं तत्र सम्प्रति ॥ २७७ ॥
भवद्भिरपि सर्वर्द्ध्या, सर्वैः सर्वबलेन च । तत्र गन्तुं मया सार्द्धमागन्तव्यमिह द्रुतम् ॥ २७८ ॥
तस्यैवमाघोषणया, स्तनितेनेव केकिनः । कलयामासुरानन्दममन्दं त्रिदिवौकसः ॥ २७९ ॥
सद्यो विमानान्यारुह्य,पोतानिव दिवौकसः । आक्रामन्तो नभोम्भोधिमाजग्मुः शक्रसन्निधौ ॥ २८० ॥
अन्तिके स्वामिनो गन्तुं, विमानं क्रियतामिति । आदिशत् पालकं नामाऽऽभियोगिकसुरं हरिः ॥२८१
उद्विद्रुममिवाऽम्भोधिं, रत्नभित्तिमरीचिभिः । शातकुम्भमयैः कुम्भैरुत्पद्ममिव मानसम् ॥ २८२ ॥
सर्वाङ्गीणं तिलकितमिव दीर्घैर्ध्वजांशुकैः । विचित्रै रत्नशिखरैरुच्छेखरमिवोच्छ्रितैः ॥ २८३ ॥
रत्नस्तम्भैः श्रीकरेणोरिवाऽऽलानैर्मनोरमम् । शालभञ्जीभिरन्याभिरप्सरोभिरिवाऽऽश्रितम् ॥ २८४ ॥
आत्ततालं नटमिव, *किङ्कणीजालमण्डितम् । सनक्षत्रं वियदिव, मौक्तिकस्वस्तिकाङ्कितम् ॥ २८५ ॥
ईहामृगा-ऽश्व-वृषभैर्नर-किन्नर-कुञ्जरैः । हंसैर्वनलता-पद्मलताभिश्च मनोरमम् ॥ २८६ ॥
लक्षयोजनविस्तीर्णं, जम्बूद्वीपमिवाऽपरम् । पञ्चयोजनशत्युच्चं, विमानं विचकार सः ॥ २८७ ॥
॥ षड्भिः कुलकम् ॥
तिसृष्वाशासु तस्याऽऽसंस्तिस्रः सोपानपङ्क्तयः । महागिरेरैवतरन्निर्झरोर्म्य इवाऽऽयताः ॥ २८८ ॥
अग्रे सोपानपङ्क्तीनामभूवन् रत्नतोरणाः । अखण्डाखण्डलधनुःश्रेणिश्रीसोदरा इव ॥ २८९ ॥
आलिङ्गिपुष्करमुखादर्शदीपकमल्लिवत् । मध्यभागः समतलस्तस्य मार्दण्यभागभूत् ॥ २९० ॥
सुस्पर्शैः सुप्रभैः पञ्चवर्णैश्चित्रैर्विचित्रितः । केकिपत्रैरिवाऽऽस्तीर्णो, भूमिभागो रराज सः ॥ २९१ ॥
अभवन्मध्यतस्तस्यैकः प्रेक्षागृहमण्डपः । क्रीडावेश्म श्रियामन्तर्नगर्या राजवेश्मवत् ॥ २९२ ॥
मध्ये च तस्य विष्कम्भा-ऽऽयामाभ्यामष्टयोजना । चतुर्योजनबाहल्या, बभूव मणिपीठिका ॥ २९३ ॥
तस्या उपर्येकमासीद्, रत्नसिंहासनोत्तमम् । महन्महत्यङ्गुलीये, माणिक्यमिव पावनम् ॥ २९४ ॥

---

१ सुधर्माख्यसभागव्याः । २ वत्साः । ३ हे देवाः ! । ४ मेघगर्जितेन । ५ मयूराः । ६ यानपात्राणि । ७ सुवर्णमयैः । ८ लक्ष्मीहस्तिन्याः । ९ बन्धनस्तम्भैः । १० पुत्तलिकाभिः । *किङ्किणी° पात ॥ ११ मृदुताभाक् । १२ मयूरपिच्छैः । १३ महत्यां मुद्रिकायाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्योपरिष्टादुल्लोचो, राजतोऽराजतोज्ज्वलः । स्त्या[1]नीभूतशरज्ज्योत्स्नाप्रसरभ्रमदायकः ॥ २९५ ॥
तन्मध्ये लम्बमानोऽभूदेको वज्रमयोऽङ्कुशः । तत्र प्रलम्ब्यभूदेकं, मुक्तादामैककुम्भिकम् ॥ २९६ ॥
तस्याऽनुजन्मान इव, ककुप्सु चतसृष्वपि । अर्धकुम्भप्रमैर्मुक्ताफलैर्हारस्रजोऽभवन् ॥ २९७ ॥
मन्दमन्दोल्यमानास्ते, वातेन मृदुनाऽद्युतन् । शुनासीरश्रियो लीलादोलालक्ष्मीमलिम्लुचाः ॥ २९८ ॥
महतस्तस्य शाक्रस्य, रत्नसिंहासनस्य तु । पूर्वोदीच्यामुदीच्यां चाऽपरोदीच्यां तथा दिशि ॥ २९९ ॥
चतुरशीतिसहस्रसामानिकदिवौकसाम् । भद्रासनानि तावन्ति, रत्नरम्याणि जज्ञिरे ॥ ३०० ॥
तत्राऽष्टानामिन्द्राणीनां, प्राच्यामष्टाऽऽसनानि च । कमलाकेलिमाणिक्यवेदिकासन्निभान्यभान् ॥ ३०१ ॥
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां, तत्राऽभ्यन्तरपर्षदः । देवद्वादशसहस्र्या, अभवन्नासनानि तु ॥ ३०२ ॥
दक्षिणस्यां दिश्यभूवन्, मध्यायाः शक्रपर्षदः । चतुर्दशामरसहस्र्यासनानि निरन्तरम् ॥ ३०३ ॥
दिशि याम्यप्रतीच्यां च, बभूवुर्बाह्यपर्षदः । षोडशानां सहस्राणामासनानि दिवौकसाम् ॥ ३०४ ॥
शक्रसिंहासनस्योच्चैस्तस्य पश्चिमतोऽभवन् । सप्तानामप्यनीकाधिपतीनामासनानि तु ॥ ३०५ ॥
शक्रासनस्य प्रत्येकं, ककुप्सु चतसृष्वपि । चतुरशीत्यात्मरक्षसहस्र्या आसनानि तु ॥ ३०६ ॥
ईदृग् विमानं शक्राज्ञासमकालमजायत । निष्पद्यन्ते सुमनसां, मनसा हीष्टसिद्धयः ॥ ३०७ ॥
सङ्क्र[2]न्दनो विचक्रे च, जिनाभिगमनोत्सुकः । विचित्रभूषणधरं, रूपमुत्तरवैक्रियम् ॥ ३०८ ॥
लावण्यामृतवल्लीभिर्महिषीभिः सहाऽष्टभिः । नाट्यानीकेन गन्धर्वानीकेन च महीयसा ॥ ३०९ ॥
हृष्टः प्रदक्षिणीकृत्य, तद् विमानवरं हरिः । अध्यारुरोह पूर्वेण, रत्नसोपानवर्त्मना ॥ ३१० ॥ युग्मम् ॥
रत्नसिंहासने पूर्वाभिमुखस्तत्र वासवः । आसाञ्चक्रे शैलचूलाशिलायामिव केसरी ॥ ३११ ॥
स्वान्यासनान्यलञ्चक्रुर्महिष्योऽपि बिडौजसः । यथाक्रमं कमलिनीदलानीव मरालिकाः ॥ ३१२ ॥
चतुरशीतिः सहस्राः, सामानिकदिवौकसाम् । अध्यारोहन् विमानं तदुदक्सोपानवर्त्मना ॥ ३१३ ॥
तत्राऽऽसाञ्चक्रिरे स्वेषु, स्वेषु भद्रासनेषु ते । रूपधेयान्तराणीवाऽप्रतिरूपाणि वज्रिणः ॥ ३१४ ॥
अन्येऽपि देवा देव्यश्चाऽपा[3]च्यसोपानवर्त्मना । तद् विमानं समारोहन्, निषेदुश्च यथासनम् ॥ ३१५ ॥
हरेः सिंहासनस्थस्य, पुरोऽभूदष्टमङ्गली । पत्नीभिरष्टाभिरिवैकैकमङ्गलकल्पनात् ॥ ३१६ ॥
तदनु च्छत्र-भृङ्गार-पूर्णकुम्भादयोऽभवन् । ते हि स्वाराज्यचिह्नानि, च्छायावत् सहचारिणः ॥ ३१७ ॥
सहस्रयोजनोत्से[4]धस्तदग्रेऽभून्महाध्वजः । युतो लघुध्वजशतैः, पल्लवैरिव पादपः ॥ ३१८ ॥
तदग्रे चाऽभवन् पश्चाऽनीकाधिपतयो हरेः । आभियोगिकदेवाश्च, स्वाधिकाराप्रमादिनः ॥ ३१९ ॥
इत्थं महर्द्धिभिः शक्रः, सुरकोटीभिरावृतः । चतुरैश्चारणगणैः, स्तूयमानमहर्द्धिकः ॥ ३२० ॥
नाट्यानीकेन गन्धर्वानीकेन च निरन्तरम् । प्रक्रान्तनाट्याभिनयसङ्गीतककुतूहलः ॥ ३२१ ॥
अनीकैः पञ्चभिश्चाऽग्रे, कृष्यमाणमहाध्वजः । पुरस्तूर्यनिनादेन, ब्रह्माण्डं स्फोटयन्निव ॥ ३२२ ॥
सौधर्मदेवलोकस्योदीचीने तिर्यगध्वनि । तेनाऽऽययौ विमानेनाऽवतितीर्षुर्महीतले ॥ ३२३ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥
आपूर्णो देवकोटीभिरवरोहन् व्यराजत । विमानः पालकः कल्पः, सौधर्म इव जङ्गमः ॥ ३२४ ॥
द्वीपा-ऽम्भोधीनसङ्ख्यातानलङ्घिष्ट क्षणादपि । तद् विमानवरं दिव्यं, वेगेनाऽतिमनोगति ॥ ३२५ ॥
सौधर्ममिव भूमिष्ठं, देवक्रीडानिकेतनम् । नन्दीश्वरमहाद्वीपं, तद् विमानमथाऽऽसदत् ॥ ३२६ ॥
तत्र दक्षिणपूर्वस्मिन्, शैले रतिकराभिधे । गत्वा पुरन्दरो वेगात्, तद् विमानं समक्षि[5]पत् ॥ ३२७ ॥
सङ्क्षिपन् सङ्क्षिपन्नेवं, विमानं क्रमशो हरिः । जम्बूद्वीपस्य भरते, विनीतामाययौ पुरीम् ॥ ३२८ ॥

१ घनीभूता । २ इन्द्रः । ३ दक्षिणसोपानमार्गेण । ४ उन्नतः । ५ सङ्क्षिप्तमकरोत् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र तेन विमानेन, स्वामिनः सूतिकागृहम् । स त्रिः प्रदक्षिणीचक्रे, स्वामिवत् स्वामिभूम्यपि ॥ ३२९ ॥
तस्योदक्पूर्वककुभि, स विमानमतिष्ठिपत् । हरिर्दूराद् यानमिव, सामन्तो राजवेश्मनि ॥ ३३० ॥
प्राविशत् सूतिकावेश्म, स्वामिनोऽथ पुरन्दरः । कुलीनकर्मकरवद्[1], भक्तितः सङ्कुचत्तनुः ॥ ३३१ ॥
तीर्थकृत्तीर्थकृन्मात्रोरप्यालोकितमात्रयोः । प्रणनाम सहस्राक्षो, धन्यमानी स्वचक्षुषाम् ॥ ३३२ ॥
तत्र प्रदक्षिणीकृत्य, स्वामिनं विजयां च सः । नमस्कृत्य च वन्दित्वा, चैवमूचे कृताञ्जलिः ॥ ३३३ ॥
नमस्ते कुक्षिणा रत्नधारिके! विश्वपावनि! । जगन्मातः! सदालोकजगद्दीपप्रदायिनि! ॥ ३३४ ॥
मातस्त्वमेका धन्याऽसि, द्वितीयस्तीर्थकृद् यया । विश्वोपकारी सुषुवे, पृथिव्या कल्पवृक्षवत् ॥ ३३५ ॥
अहं हि सौधर्मपतिः, स्वामिजन्ममहोत्सवम् । कर्तुमत्राऽऽगमं मातर्न भेतव्यमतस्त्वया ॥ ३३६ ॥
इत्युदीर्य सहस्राक्षस्तदाऽवस्वापनीं ददौ । विकृत्य तीर्थकृद्रूपं, देव्याः पार्श्वे न्यधत्त च ॥ ३३७ ॥
ततः शक्रः क्षणाच्छक्रान्, विचक्रे चाऽऽत्मपञ्चमान् । एकधाऽनेकधा च स्युः, कामरूपा दिवौकसः ॥३३८॥
एकः सुरपतिस्तेषु, प्रोद्भिन्नपुलकाङ्कुरः । मनसेव शुचिर्भूत्वा, शरीरेणाऽपि भक्तितः ॥ ३३९ ॥
नमस्कृत्याऽनुजानीहीत्यभिधाय जिनेश्वरम् । गोशीर्षरसलिप्ताभ्यां, कराब्जाभ्यामुपाददे ॥ ३४० ॥ युग्मम् ॥
द्वितीयः पृष्ठतः स्थित्वाऽऽतपत्रं स्वामिमूर्धनि । अधारयद् गिरिशिरःस्थितराका[2]केन्दुविभ्रमम् ॥ ३४१ ॥
बिभराञ्चक्रतुरुभौ, पार्श्वतश्चामरे हरी । स्वामिदर्शनतः साक्षादात्तौ पुण्यचयाविव ॥ ३४२ ॥
एक उल्लालयन् वज्रं, प्रतीहार इवाऽग्रतः । ससर्प स्वामिनं पश्यन्, किञ्चिद् वलितकन्धरः ॥ ३४३ ॥
सामानिकाः पारिषद्यास्त्रायस्त्रिंशास्तथाऽपरे । परिवव्रुर्दिविषदः[3], प्रभुं पद्ममिवाऽलयः[4] ॥ ३४४ ॥
भुवनस्वामिनं यत्नात्, पाणिभ्यां धारयन् हरिः । मेरुशैलं प्रत्यचालीज्जन्मोत्सवविधित्सया ॥ ३४५ ॥
अनुस्वामि दधावेऽथ, पर्यस्यद्भिः परस्परम् । अहम्पूर्विकया देवैरनुगीतं मृगैरिव ॥ ३४६ ॥
स्वामिनं पश्यतां दूराद्, दृष्टिपातैर्दिवौकसाम् । फुल्लनीलोत्पलवनाकीर्णेव द्यौरजायत ॥ ३४७ ॥
भूयो भूयो भगवन्तमुपेत्योपेत्य दूरतः । निरीक्षाञ्चक्रिरे देवाः, स्वधनं तद्धना[5] इव ॥ ३४८ ॥
समापतन्तो युगपत्, सम्मर्देन दिवौकसः । अन्योऽन्यमास्फलन्ति स्म, तरङ्गा इव वारिधेः ॥ ३४९ ॥
गगने शक्रयानेन[6], गच्छतः स्वामिनः पुरः । पुष्पप्रकरतां भेजुर्ग्रह-नक्षत्र-तारकाः ॥ ३५० ॥
पुरुहूतो[7] मुहूर्तान्तर्मेरुमूर्ध्नि ययौ शिलाम् । अतिपाण्डुकम्बलाख्यां, चूलादक्षिणतः स्थिताम् ॥ ३५१ ॥
रत्नसिंहासनोत्सङ्गे, स्वोत्सङ्गस्थापितप्रभुः । तत्र चोपाविशत् पूर्वाभिमुखः पूर्वदिक्पतिः ॥ ३५२ ॥
तदैवैशानकल्पेन्द्रोऽप्युद्भूतासनकम्पतः । अज्ञासीदवधिज्ञानाच्छ्रीमत्सर्वज्ञजन्म तत् ॥ ३५३ ॥
शक्रवत् सोऽपि सन्त्यज्य, रत्नसिंहासनादिकम् । दत्त्वा पदानि सप्ताऽष्टान्यनमज्जगदीश्वरम् ॥ ३५४ ॥
तस्याऽऽज्ञया च सेनानीर्नाम्नाऽलघुपराक्रमः । घण्टामास्फालयामास, महाघोषां महास्वनाम् ॥३५५॥
विमानलक्षास्तन्नादोऽष्टाविंशतिमपूरि सः । उद्वेलजलधिध्वानस्तटाचलदरीरिव[8] ॥ ३५६ ॥
देवास्तेषां विमानानां, तन्निनादेन चाऽबुधन् । प्रभातशङ्खध्वनिना, प्रसुप्ता इव भूभुजः ॥ ३५७ ॥
शान्ते तस्मिन् महाघोषाघण्टाघोषे चमूपतिः । पर्जन्यधीरध्वनितः, स एवं घोषणां व्यधात् ॥ ३५८ ॥
जम्बूद्वीपस्य भरते, विनीतायां पुरि प्रभुः । विजया-जितशत्र्वोस्तु, द्वितीयोऽजनि तीर्थकृत् ॥३५९॥
तस्य जन्माभिषेकाय, मेरौ यास्यति वः प्रभुः । तत्समं स्वामिना गन्तुं, त्वरध्वं हे दिवौकसः! ॥ ३६० ॥
इत्युच्चकैर्घोषणया, सर्वे देवास्तदैव हि । मन्त्राकृष्टा इवाऽऽजग्मुरैशानपतिसन्निधौ ॥ ३६१ ॥
शूलपाणिरथेशान, उत्तरार्धदिवस्पतिः । रत्नभूषणभृद् रत्नसानुमानिव[9] जङ्गमः ॥ ३६२ ॥

---

१ कुलवान् किङ्कर इव । २ पूर्णिमा । ३ देवाः । ४ भ्रमराः । ५ कृपणाः । ६ शक्रवाहनेन । ७ इन्द्रः ।
८ गिरिगुहा इव । ९ रत्नगिरिरिव ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

श्वेताम्बरधरः स्रग्वी, महावृषभवाहनः । सामानिकादिभिर्देवैः, कोटिशः परिवारितः ॥ ३६३ ॥
विमानं पुष्पकं नामाऽध्यारुह्य सपरिच्छदः । दक्षिणेनैशानकल्पस्याऽध्वना निरगाद् द्रुतम् ॥ ३६४ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
असङ्ख्यातान् समुल्लङ्घ्य, द्वीपा-ऽम्भोधीन् क्षणादपि । नन्दीश्वरमहाद्वीपं, प्रापैशानसुरेश्वरः ॥ ३६५ ॥
तत्र चोत्तरपूर्वस्मिन्, शैले रतिकरे निजम् । सञ्चिक्षेप विमानादि, हेमन्त इव वासरम् ॥ ३६६ ॥
क्रमेण सङ्क्षिपंस्तत् तद[1]कालक्षेपतो ययौ । सुमेरावन्तेवासीव[2], पादान्तं जगदीशितुः ॥ ३६७ ॥
सनत्कुमारो ब्रह्मा च, शुक्रश्च प्राणतः सुरः । घण्टां सुघोषामास्फाल्य, बोधितैर्नैगमेषिणा ॥३६८
शक्रवद् वर्त्मनोदीचा, नन्दीश्वरमुपेत्य च । अपाक्पूर्वे रतिकरे, विमानादि समक्षिपन् ॥ ३६९ ॥
ययुश्च मेरुशिरसि, शक्रोत्सङ्गे निषेदुषः । सन्निधाने भगवतो, नक्षत्राणि विधोरिव ॥ ३७० ॥
म*हेन्द्रो लान्तकश्चापि, सहस्रारोऽच्युतोऽपि च । महाघोषाऽलघुपराक्रमाभ्यां बोधितामराः ३७१
ईशानवद् दक्षिणेन, पथा नन्दीश्वरं ययुः । उदक्पूर्वे रतिकरे, विमानादि समक्षिपन् ॥३७२॥ युग्मम्॥
अधिस्वामि ततो जग्मुः, काञ्चनाचलमूर्धनि । पथिका इव सानन्दं, वनेऽधि[3]फलपादपम् ॥ ३७३ ॥
पुर्यां चमरचञ्चायां, दक्षिणश्रेणिभूषणे । सुधर्मायां चकम्पे च, चमरस्याऽऽसनं तदा ॥ ३७४ ॥
सोऽपि ज्ञात्वाऽवधिज्ञानात्, तीर्थकृज्जन्म पावनम् । गत्वा पदानि सप्ताष्टान्याननाम जिनेश्वरम् ॥३७५॥
आज्ञया तस्य सद्योऽपि, पत्त्यनीकपतिर्द्रुमः । घण्टामोघस्वरां नामाऽऽस्फालयामास सुस्वराम् ॥ ३७६ ॥
शान्ते चौघस्वराघोषे, तेन चाऽऽघोषणे कृते । असुराश्चमरं भेजुः, सायं द्रुमिव पक्षिणः ॥ ३७७ ॥
आभियोगिकदेवश्च[4], चमरेन्द्रस्य शासनात् । योजनार्धलक्षमानं, विमानं व्यकरोत् क्षणात् ॥ ३७८ ॥
पञ्चयोजनशत्युच्चमहेन्द्रध्वजमण्डितम् । पोतः सकूपक इव, तद् विमानमराजत ॥ ३७९ ॥
चतुःषष्टिसहस्रैः स, समं सामानिकासुरैः । त्रयस्त्रिंशित्रायस्त्रिंशैश्चतुर्भिर्लोकपालकैः ॥ ३८० ॥
परिवारसमेताभिर्महिषीभिश्च पञ्चभिः । तिसृभिः परिषद्भिश्च, महानीकैश्च सप्तभिः ॥ ३८१ ॥
सप्तभिश्चानीकनाथैः, सामानिकचतुर्गुणैः । आत्मरक्षैस्तथाऽन्यैरप्यसुराणां कुमारकैः ॥ ३८२ ॥
तद् विमानं समारुह्य, क्षणान्नन्दीश्वरं ययौ । विमानं स्वे रतिकरे, सञ्चिक्षेप च शक्रवत् ॥ ३८३ ॥
प्रवाह इव जाह्नव्या, वेगात् पूर्वपयोनिधिम् । स ययौ स्वामिपादान्तं, मेरुपर्वतमूर्धनि ॥ ३८४ ॥
नगर्यां बलिचञ्चायामुत्तरश्रेणिमण्डने । बलिश्चाऽऽसनकम्पेनाऽर्हज्जन्माऽवधिनाऽबुधत् ॥ ३८५ ॥
तस्याऽऽदेशात् पत्त्यनीकपतिर्नाम्ना† महाद्रुमः । द्राग् महौघस्वरां नाम, घण्टां त्रिः पर्यताडयत् ॥३८६॥
घण्टानादे च विश्रान्ते, प्राग्वदाघोषणामसौ । अकार्षीदसुरश्रोत्रसुधास्रोतःसहोदराम्[5] ॥ ३८७ ॥
तया घोषणयाऽभ्येयुः, सर्वतोऽप्यसुरा बलिम् । अम्बुदस्येव नादेन, मानसं मानसौकसः[6] ॥ ३८८ ॥
पूर्वसङ्ख्यैर्महिष्याद्यैर्युक्तः सामानिकैः पुनः । षष्टिसहस्रैस्तेभ्यश्चाऽऽत्मरक्षैस्तु चतुर्गुणैः ॥ ३८९ ॥
प्राग्मानेन विमानेन, प्राग्वदिन्द्रध्वजेन च । गत्वा नन्दीश्वररतिकरं मेरुशिरस्यगात् ॥ ३९० ॥
धरणेन्द्रो हरिर्वेणुदेवश्चाऽग्निशिखस्तथा । वेलम्ब-सुघोष-जलकान्ताः पूर्णोऽमितोऽपि च ॥३९१॥
नाग-विद्युत्-सुपर्णा-ऽग्नि-वायु-मेघ-सरस्वताम् । द्वीपानां च दिशां चेन्द्रा, दक्षिणश्रेणिगाः क्रमात् ॥
उदक्श्रेणेस्त्वमी भूतानन्दो हरिशिखस्तथा । वेणुदारी तथा चाऽग्निमाणवश्च प्रभञ्जनः ॥३९३॥
महाघोषो जलप्रभो, वशिष्ठोऽमितवाहनः । सर्वेऽप्यासनकम्पेनाऽर्हज्जन्माऽवधिनाऽबुधन् ॥३९४॥
ततश्च धरणादीनां, भद्रसेनैश्चमूधवैः । भूतानन्दादीनां दक्षाभिधैर्घण्टास्त्रिराहताः ॥ ३९५ ॥

१ कालक्षेपं विना । २ शिष्य इव । * माहेन्द्रो सङ्घ ३ संता० ॥ ३ अधिकानि फलानि यत्रैतादृशं पादपं प्रति । † नाम्नाऽऽ सङ्घ१ ॥ ४ सेवकस्थानीयो देवः । ५ असुरकर्णामृतप्रवाहसदृशाम् । ६ हंसाः । ७ पञ्चभिः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्र मेघस्वरा क्रौञ्च-हंस-मञ्जुस्वरास्तथा । नन्दिस्वरा नन्दिघोषा, सुस्वरा मधुरस्वरा ॥ ३९६ ॥
मञ्जुघोषा चेति घण्टा, नेदुस्तेषां यथाक्रमम् । नागादिकानां भवनपतीनां पक्षयोर्द्वयोः ॥ ३९७ ॥
द्वयोरपि ततः श्रेण्योः, सर्वे नागादयः क्षणात् । स्वं स्वमिन्द्रं समाजग्मुः, स्वस्थानमिव वाजिनः ॥३९८॥
तेषामप्याज्ञया स्वे स्वे, त्रिदशा आभियोगिकाः । रत्न-स्वर्णविचित्राणि, विमानानि तदैव हि ॥ ३९९ ॥
योजनानां पञ्चविंशतिसहस्रान् विस्तृतानि च । सार्धद्वियोजनशतेन्द्रध्वजानि विचक्रिरे ॥ ४०० ॥
प्रत्येकं महिषीभिस्ते, षड्भिः सामानिकैस्तथा । षट्सहस्रैश्च तेभ्यश्चाऽङ्गरक्षैस्तु चतुर्गुणैः ॥ ४०१ ॥
अन्यैश्चमर-बलिवत्, त्रायस्त्रिंशादिभिर्वृताः । विमानानि समारुह्य, मेरौ स्वाम्यन्तिके ययुः ॥ ४०२ ॥
पिशाचानां च भूतानां, यक्षाणां रक्षसामपि। किन्नर-किम्पुरुषा-ऽहि-गन्धर्वाणामधीश्वराः॥४०३
कालः सुरूपोऽथ पूर्णभद्रो भीमश्च किन्नरः। सत्पुरुषश्चाऽतिकायो, नाम्ना गीतरतिस्तथा ॥४०४॥
दक्षिणश्रेणिगा एते, ह्युत्तरश्रेणिगास्त्वमी । महाकालोऽप्रतिरूपो, माणिभद्राभिधोऽपि च ॥ ४०५ ॥
महाभीमः किम्पुरुषो, महापुरुष एव च । महाकायो गीतयशा, द्वयेऽप्यासनकम्पतः ॥४०६॥
ज्ञात्वाऽर्हज्जन्म ते स्वैः स्वैः, सैन्यनाथैर्निजां निजाम्। मञ्जुस्वरां मञ्जुघोषां, घण्टामास्फालयन् क्रमात् ४०७
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥
शान्ते नादे च घण्टानां, सेनान्या घोषणे कृते । व्यन्तरास्ते पिशाचाद्या, एयुरिन्द्रान्निजान्निजान् ॥४०८॥
इन्द्राः परिवृता देवैस्त्रायस्त्रिंश-लोकपैः । त्रायस्त्रिंश-लोकपा हि, नैषां चन्द्रा-ऽर्कयोरिव ॥ ४०९ ॥
सामानिकसहस्रैस्तु, ते चतुर्भिः पृथक् पृथक् । सहस्रैरात्मरक्षाणां, वृताः षोडशभिस्तथा ॥ ४१० ॥
विकृतानि विमानानि, स्वैर्देवैराभियोगिकैः । तेऽधिरुह्य समाजग्मुर्मेरौ भगवदन्तिके ॥ ४११ ॥
तथाऽणपन्निकादीनां, दक्षिणश्रेणिवर्तिनाम् । उत्तरश्रेणिभाजां च, पिशाचादिसुरेन्द्रवत् ॥४१२॥
व्यन्तराष्टनिकायानां, सुरनाथाश्च षोडश । प्राग्वदासनकम्पेन, ज्ञात्वा जन्म जिनेशितुः ॥ ४१३ ॥
मञ्जुस्वरां मञ्जुघोषां, पृथगास्फाल्य सैन्यपैः । घोषणां कारयित्वा च, स्वैः स्वैश्च व्यन्तरैर्युताः ॥४१४॥
अधिरुह्य विमानानि, विकृतान्याभियोगिकैः । सामानिकादिभिः प्राग्वत्, सम्भूयैयुर्जिनान्तिकम् ॥ ४१५ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥
चन्द्रा-ऽऽदित्यावसङ्ख्यातौ, तद्वदात्तपरिच्छदौ । आजग्मतुर्जिनं मेरौ, पितरं तनयाविव ॥ ४१६ ॥
एवमिन्द्राश्चतुःषष्टिः, स्वतन्त्राः परतन्त्रवत् । भक्त्या समापतन्ति स्म, स्वामिजन्मोत्सवेच्छया ॥ ४१७ ॥
एकादश-द्वादशयोः, कल्पयोरथ वासवः । स्नात्रोपकरणायाऽऽभियोगिकानादिशत् सुरान् ॥ ४१८ ॥
तैर्दिश्युत्तरपूर्वस्यामपक्रम्याऽऽभियोगिकैः । विधायोच्चैः समुद्घातमेवं कुम्भा विचक्रिरे ॥ ४१९ ॥
सौवर्णा राजता रात्नाः, स्वर्णरूप्यमया अपि । स्वर्णरत्नमयाश्चापि, रूप्यरत्नमया अपि ॥ ४२० ॥
स्वर्णरूप्यरत्नमयास्तथा मृत्स्नामया अपि । अष्टाधिकानि प्रत्येकं, शतानि दश सङ्ख्यया ॥ ४२१ ॥
एतावन्तश्च भृङ्गारा, दर्पणा भाजनानि च । पात्र्यश्च सुप्रतिष्ठाश्च, तथा रत्नकरण्डकाः ॥ ४२२ ॥
पुष्पचङ्गेरिकाश्चापि, प्रत्येकं तैर्विचक्रिरे । अकालक्षेपतः कोशागारादिव समाहृताः ॥ ४२३ ॥
आदाय तांश्च ते देवाः, कलसानलसेतराः । सरसीवाऽम्बुहारिण्यो, ययुः क्षीरोदसागरे ॥ ४२४ ॥
उद्बुदुदरवैः कुम्भैरुन्मङ्गलरवैरिव । स्वैरं क्षीरोदकं तत्र, तेऽगृह्णन् जलदा इव ॥ ४२५ ॥
पुण्डरीकाणि पद्मानि, कुमुदान्युत्पलानि च । सहस्रपत्राणि शतपत्राण्याददिरे च ते ॥ ४२६ ॥
उपेत्य पुष्करोदेऽपि, तेऽम्बुधौ पुष्करादिकम् । भृशायमाना जगृहुर्द्वीपे सांयात्रिका इव ॥ ४२७ ॥
भरतैरवतक्षेत्रवर्तिनामुदकादिकम् । तीर्थानां मागधादीनामप्युपाददिरे सुराः ॥ ४२८ ॥

* सेनानाथै° सङ्घ १ ॥ १ सेनापतिभिः । २ मृण्मयाः । ३ अप्रमादिनः । ४ नौव्यापारिणः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

गङ्गादिषु ह्रदिनीषु, पद्मादिषु ह्रदेषु च । मृदम्भोजानि जगृहुः, सन्तप्ताः पथिका इव ॥ ४२९ ॥
सर्वतः कुलशैलेभ्यो, वैताढ्येभ्यश्च सर्वतः । सर्वतो विजयेभ्यश्च, वक्षारेभ्यश्च सर्वतः ॥ ४३० ॥
देवोत्तरकुरुभ्यश्च, सुमेरुपरिधिस्थितात् । भद्रशालान्नन्दनाच्च, सौमनसाच्च पाण्डकात् ॥४३१॥
पर्वतेभ्यश्च मलय-दर्दुरादिभ्य ओषधीः । गन्धान् पुष्पाणि सिद्धार्थांस्तेऽगृह्णंस्तुवराणि च ॥ ४३२ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

तानि द्रव्याणि सर्वाणि, मेलयन्ति स्म नाकिनः । भेषजानीव भिषजो, गन्धानिव च गान्धिकाः ॥४३३॥
तदुपादाय ते सर्वमुपस्वामि समाययुः । अच्युतेन्द्रस्य मनसा, स्पर्द्धमाना इवाऽऽदरात् ॥ ४३४ ॥

ततश्च भक्तिभागिन्द्र, आरणा-ऽच्युतकल्पयोः । वृतः सहस्रैर्दशभिः, सामानिकदिवौकसाम् ॥४३५॥
त्रयस्त्रिंशत्रायस्त्रिंशैश्चतुर्भिर्लोकपालकैः । पर्षद्भिस्तिसृभिः सैन्यैः, सैन्यनाथैश्च सप्तभिः ॥ ४३६ ॥
चत्वारिंशता सहस्रैश्चाऽऽत्मरक्षदिवौकसाम् । उत्तरासङ्गवानग्रे, विमुच्य कुसुमाञ्जलिम् ॥ ४३७ ॥
कृतचर्चाश्चन्दनेन, स्मेराब्जपिहितानना्न् । अष्टोत्तरं सहस्रं स, कुम्भान् देवैः सहाऽग्रहीत् ॥ ४३८ ॥
तान् कुम्भान् लोठयामास, स्वामिमूर्धन्यथाऽच्युतः । भक्तिप्रकर्षतः कुर्वन्नात्मवन्नमितानना्न् ॥४३९ ॥
स्वामिसङ्गात् तदम्भोऽगात्, पुण्यमप्यतिपुण्यताम् । तापनीये ह्यलङ्कारे, सुतरां द्योतते मणिः ॥ ४४० ॥
पानीयधारोद्गिरणात्क्रन्दन्तः कलसाश्च ते । स्वामिस्नात्रविधौ मन्त्रान्, पठन्त इव रेजिरे ॥ ४४१ ॥
कुम्भेभ्यो निपतंस्तेभ्योऽम्भःप्रवाहो महांस्तदा । स्वामिलावण्यसरितावेणीसङ्गमतां ययौ ॥ ४४२ ॥
अङ्गेषु स्वामिनः स्वर्णगौरेषु प्रसरत् पयः । तद् गाङ्गमिव हैमेषु, पद्मखण्डेष्वराजत ॥ ४४३ ॥
आ सर्वाङ्गं प्रसरता, निर्मलेनाऽतिहारिणा । वारिणा शुशुभे तेन, ससंव्यान इव प्रभुः ॥ ४४४ ॥
तत्रेन्द्रेभ्यः सुरेभ्यश्च, केऽपि भक्तिभराकुलाः । उत्क्षिप्य स्नपयितृभ्यः, पूर्णकुम्भानुपानयन् ॥ ४४५ ॥
तस्थुश्छत्रधराः केचित्, केचिच्चामरपाणयः । उद्धूपदहनाः केचित्, पुष्प-गन्धभृतोऽपरे ॥ ४४६ ॥
पेठुः स्नात्रविधिं केऽपि, केऽपि चक्रुर्जयारवम् । केचिच्च ताडयामासुर्दुन्दुभीन् कोणपाणयः ॥ ४४७ ॥
केऽप्युत्फुल्लकपोला-ऽऽस्यास्तारं शङ्खानपूरयन् । मिथ आस्फालयामासुः, कांस्यतालानथाऽपरे ॥ ४४८ ॥
आजघ्नुर्झल्लरीः केऽपि, रत्नदण्डैरखण्डितैः । केचिदुन्मादचण्डिम्नो, डिण्डिमान् पर्यताडयन् ॥ ४४९ ॥
नर्तकीवत् केऽप्यनृत्यन्नुच्चैस्तालयानुगम् । ननृतुर्विकृतं केऽपि, हास्याय विटचेटवत् ॥ ४५० ॥
गायनीवत् केऽप्यगायन्, प्रबन्धैः करणादिभिः । जगुर्गोपालवत् केचिदुच्छृङ्खलगलस्वरम् ॥ ४५१ ॥
द्वात्रिंशत्पात्रकं केऽपि, नाटकाभिनयं व्यधुः । केचिदप्युत्पतन्ति स्म, निपतन्ति स्म केचन ॥ ४५२ ॥
रत्नानि ववृषुः केऽपि, ववृषुः केऽपि काञ्चनम् । अवर्षन् भूषणान्येकेऽवर्षंश्चूर्णानि केचन ॥ ४५३ ॥
ववृषुः केऽपि माल्यानि, पुष्पाणि च फलानि च । ववल्गुश्चतुरं केचित्, केचित् क्ष्वेडां च चक्रिरे ॥४५४॥
हेषां विदधिरे केऽपि, चक्रिरे केऽपि बृंहितम् । रथघोषं व्यधुः केऽपि, नादांस्त्रीन् केऽपि चक्रिरे ॥४५५॥
केऽपि चाचालयन् पाददर्दरैर्मन्दराचलम् । मेदिनीं दलयामासुश्चपेटाभिश्च केचन ॥ ४५६ ॥
केचिदानन्दबहलं, मुहुः कोलाहलं व्यधुः । भ्रमन्तो मण्डलीभूय, जगुः केऽपि च रासकान् ॥ ४५७ ॥
कृत्रिमं जज्वलुः केऽपि, प्रणेदुः केऽपि कौतुकात् । अगर्जन्नूर्जितं केऽपि, विद्युद्वत् केचिद्द्युतन् ॥४५८॥

एवं विचित्रमानन्दाच्चेष्टमानेषु नाकिषु । अच्युतेन्द्रो भगवतोऽभिषेकमकरोन्मुदा ॥ ४५९ ॥
शिरस्यञ्जलिमुत्तंससन्निभं विरचय्य सः । व्याजहार जय जयेत्युच्चैरव्याजभक्तिभाक् ॥ ४६० ॥

---

१ विकसितकमलाच्छादितमुखान् । २ सौवर्णे । ३ शब्दायमानाः । ४ सुवर्णकमलेषु गङ्गावारीव । ५ उत्तरीयेण सहित इव । ६ छत्रधारिणः । ७ यष्टिपाणयः । ८ हास्यकारकनटवत् । ९ गायकीवत् । १० सिंहनादम् । ११ अश्वनादम् । १२ हस्तिनादम् । १३ पादघातैः । १४ करतलघातैः । १५ शिरोभूषणसदृशम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्त्रेण देवदूष्येण, ममार्ज स्वामिनस्तनुम् । दक्षसंवाहक इव, सुखस्पर्शेन पाणिना ॥ ४६१ ॥
आनन्दं नाटयन्नुच्चैर्नाट्यं नट इवाऽच्युतः । पुरतस्त्रिजगद्भर्तुरभ्यनैषीत् सहामरैः ॥ ४६२ ॥
गोशीर्षचन्दनरसैः, स्वामिनोऽथ विलेपनम् । दिव्यैर्भौमैश्च कुसुमैरर्चां च विदधेऽच्युतः ॥ ४६३ ॥
कुम्भो भद्रासना-ऽऽदर्शौ, श्रीवत्स-स्वस्तिकावपि । नन्द्यावर्तो वर्धमानो, मत्स्य इत्यष्टमङ्गलीम् ॥ ४६४ ॥
अत्यच्छै रजतमयैरखण्डैरथ तण्डुलैः । आरणा-ऽच्युतकल्पेन्द्र, आलिलेखाऽग्रतः प्रभोः॥४६५॥ युग्मम्॥
भक्तिनिम्नो जानुदघ्नं, कुसुमप्रकरं ततः । अमुञ्चत् पञ्चवर्णं स, सन्ध्याभ्रकणिकोपमम् ॥ ४६६ ॥
उत्तोरणामिव दिवं, कुर्वाणो धूमवर्तिभिः । उद्धूपदहनो धूपमधूपायदथाऽच्युतः ॥ ४६७ ॥
उत्क्षिप्यमाणे धूपे च, वाद्यमानाऽमरोत्तमैः । सङ्क्षिप्तेव महाघोषा, घण्टा तारस्वरा बभौ ॥ ४६८ ॥
हरिरुत्तारयामासाऽऽरात्रिकं स्वामिने स्वयम् । उच्छिखामण्डलं ज्योतिर्मण्डलश्रीविडम्बकम् ॥ ४६९ ॥
ततः पदानि सप्ताष्टान्यपक्रम्य प्रणम्य च । रोमाञ्चितोऽच्युतपतिः, स्तोतुमेवं प्रचक्रमे ॥ ४७० ॥
जात्यजाम्बूनदच्छेदच्छविच्छन्ननभस्तल ! । प्रभो ! तवाधौतशुचिः, कायः कमिव नाऽऽक्षिपेत् ? ॥४७१॥
मन्दारदामवन्नित्यमवासितसुगन्धिनि । तवाऽङ्गे भृङ्गतां यान्ति, नेत्राणि सुरयोषिताम् ॥ ४७२ ॥
दिव्यामृतरसास्वादपोषप्रतिहता इव । समाविशन्ति ते नाथ !, नाऽङ्गे रोगोरगव्रजाः ॥ ४७३ ॥
त्वय्यादर्शतलालीनप्रतिमाप्रतिरूपके । क्षरत्स्वेदविलीनत्वकथाऽपि वपुषः कुतः ? ॥ ४७४ ॥
न केवलं रागमुक्तं, वीतराग ! मनस्तव । वपुःस्थितं रक्तमपि, क्षीरधारासहोदरम् ॥ ४७५ ॥
जगद्विलक्षणं किं वा, तवाऽन्यद् वक्तुमीश्महे ? । यदविस्रमबीभत्सं, शुभ्रं मांसमपि प्रभो ! ॥ ४७६ ॥
जल-स्थलसमुद्भूताः, सन्त्यज्य सुमनःस्रजः । तव निःश्वाससौरभ्यमनुयान्ति मधुव्रताः ॥ ४७७ ॥
लोकोत्तरचमत्कारकरी तव भवस्थितिः । यतो नाऽऽहार-नीहारौ, गोचरश्चर्मचक्षुषाम् ॥ ४७८ ॥
इति स्तुत्वा प्रभुं किञ्चिदपक्रम्य कृताञ्जलिः । शुश्रूषातत्परस्तस्थावच्युतोऽच्युतभक्तिभाक् ॥४७९॥
इन्द्रा द्वाषष्टिरन्येऽपि, क्रमेण सपरिच्छदाः । अभिषेकं जगद्भर्तुश्चक्रुरच्युतनाथवत् ॥ ४८० ॥
तद्वत् स्तुत्वा नमस्कृत्याऽपक्रम्य च कृताञ्जलि । उपासाञ्चक्रिरे नाथं, तत्पराः किङ्करा इव ॥ ४८१ ॥
अथ सौधर्मकल्पेन्द्र, इव द्रागतिभक्तितः । विचक्रे पञ्चधाऽऽत्मानं, द्वितीयस्वर्गवासवः ॥ ४८२ ॥
अतिपाण्डुकम्बलायामर्धचन्द्रसमाकृतौ । ऐशानकल्पवत् सिंहासनमेकोऽथ शिश्रिये ॥ ४८३ ॥
शक्रोत्सङ्गान्निजोत्सङ्गं, रथादिव रथान्तरम् । स समारोपयामास, यतमानो जगद्गुरुम् ॥ ४८४ ॥
आतपत्रं दधारैको, विशदं स्वामिमूर्धनि । धारयामासतुश्चान्यौ, चामरे प्रभुपार्श्वयोः ॥ ४८५ ॥
पञ्चमः शूलपाणिः सन्, पुरस्तस्थौ जगत्पतेः । प्रतीहार इवोदारेणाऽऽकारेण मनोरमः ॥ ४८६ ॥
ततः सौधर्मकल्पेन्द्रोऽप्यमरैराभियोगिकैः । अभिषेकोपकरणद्रव्याण्यानाययद् द्रुतम् ॥ ४८७ ॥
दिक्षु प्रभोश्चतसृषु, स्फटिकाद्रीनिवाऽपरान् । स्फाटिकान् सोऽतिचतुरश्चतुरो व्यकरोद् वृषान् ॥ ४८८ ॥
तेषां वृषाणां शृङ्गेभ्योऽष्टभ्य उत्पेतुरुज्ज्वलाः । अष्टाम्बुधारा धवला, रश्मिदण्डा इवैन्दवाः ॥ ४८९ ॥
समुत्पत्य मिलन्ति स्म, पुरो नद्य इवैकतः । निपतन्ति स्म पयसां, पत्याविव जगत्पतौ ॥ ४९० ॥
अभिषेकं जगद्भर्तुरेवङ्कारं चकार सः । भङ्ग्यन्तरेण कविवच्छक्ताः स्वं ज्ञापयन्ति हि ॥ ४९१ ॥
मार्ष्टिं विलेपनं पूजामष्टमङ्गलिकामपि । आरात्रिकं च विधिना, विदधे सोऽच्युतेन्द्रवत् ॥ ४९२ ॥
शक्रस्तवेन वन्दित्वा, प्रणम्य च जगत्पतिम् । हर्षगद्गदया वाचा, स स्तोतुं प्रास्तवीदिति ॥ ४९३ ॥

१ अङ्गसंवाहनकर्मणि चतुरः सेवक इव । २ अतिस्वच्छैः । ३ जानुप्रमाणम् । * उद्धूतदहनो सङ्घ १ ॥ ४ सुवर्णम् । ५ आदर्शतलप्रतिबिम्बितप्रतिमासदृशे । ६ दुग्धधारासदृशम् । ७ दुर्गन्धरहितम् । ८ कुसुममालाः । ९ अतिदक्षः । १० समुद्रे । ११ मार्जनम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जय त्रिभुवनाधीश !, जय विश्वैकवत्सल ! । जय पुण्यलतोद्भेदनवाम्बुद ! जगत्प्रभो ! ॥ ४९४ ॥
स्वामिन् ! विमानाद् विजयादवतीर्णोऽसि भूतले । इदं जगत् प्रीणयितुं, सरिदोघ इवाचलात् ॥ ४९५ ॥
बीजं मोक्षद्रुमस्येव, ज्ञानत्रितयमुज्ज्वलम् । स्वामिन्नाजन्मसिद्धं ते, शीतलत्वमिवाम्भसः ॥ ४९६ ॥
ये त्वां त्रिभुवनाधीश !, धारयन्ति सदा हृदि । सम्मुखीनाः श्रियस्तेषामादर्शप्रतिबिम्बवत् ॥ ४९७ ॥
उल्वणैर्बाध्यमानानां, कर्मरोगैः शरीरिणाम् । दिष्ट्या त्वमगदङ्कारप्रतीकारकरोऽभवः ॥ ४९८ ॥
त्वद्दर्शनसुधासारास्वादस्य त्रिजगत्पते ! । मरुपान्था इव वयं, न तृप्यामो मनागपि ॥ ४९९ ॥
रथः सारथिनेवाऽद्य, कर्णधारेण नौरिव । पथा व्रजतु लोकोऽयं, त्वया नेत्रा जगत्पते ! ॥ ५०० ॥
त्वत्पादपद्मशुश्रूषासमयाधिगमेन नः । भगवन्निदमैश्वर्यं, कृतार्थमधुनाऽभवत् ॥ ५०१ ॥
स्तुत्वैवमादिभिः श्लोकैरष्टोत्तरशतेन तम् । विचक्रे पञ्चधा रूपं, प्राग्वत् प्राचीनबर्हिषा ॥ ५०२ ॥
नाथमेकोऽग्रहीच्छत्रमेको द्वावथ चामरे । वज्रपाणिः पुरस्त्वस्थावेकः शक्रस्तु पूर्ववत् ॥ ५०३ ॥
ततो मनोवत् स यथाकामीनः सपरिच्छदः । विनीतात्मा विनीतायां, जितशत्रुगृहं ययौ ॥ ५०४ ॥
तीर्थकृत्प्रतिरूपं स, संवत्रे तत्र तत्क्षणात् । विजयास्वामिनीपार्श्वे, तीर्थनाथं न्यधत्त च ॥ ५०५ ॥
उच्छीर्षे कुण्डलद्वन्द्वं, न्यधादर्केन्दुसोदरम् । देवदूष्यं च मसृणं, कोमलं शीतलं प्रभोः ॥ ५०६ ॥
दिवोऽवतरदर्काभं, स्वर्णप्राकारमण्डितम् । बबन्ध भर्तुरुल्लोचे, शक्रः श्रीदामगण्डकम् ॥ ५०७ ॥
मणि-रत्नयुता हारा, अर्धहाराश्च हारिणः । हरिणा दधिरे तत्र, दृग्विनोदकृते प्रभोः ॥ ५०८ ॥
तत्राऽपस्वापनीं देव्या, विजयाया जहार सः । कुमुदिन्या इव शशी, पद्मिन्या इव चार्यमा ॥ ५०९ ॥
शक्रादिष्टवैश्रवणनिदेशेन दिवौकसः । जृम्भका नाम तत्रेयुर्जितशत्रुनिकेतने ॥ ५१० ॥
हिरण्य-स्वर्ण-रत्नानां, कोटीर्द्वात्रिंशतं पृथक् । ववृषुस्ते द्वात्रिंशतं, नन्दभद्रासनानि च ॥ ५११ ॥
व्यधुर्भूषणवृष्टिं च, मण्यङ्गा इव शाखिनः । वस्त्रवृष्टिमथाऽनग्ना, इव कल्पमहीरुहाः ॥ ५१२ ॥
वनानि भद्रशालादीन्यवचित्येव सर्वतः । पत्रवृष्टिं पुष्पवृष्टिं, फलवृष्टिं च ते व्यधुः ॥ ५१३ ॥
विचित्रवर्णसुमनोमाल्यवृष्टिं महीयसीम् । वितेनिरे च चित्राङ्गनामकल्पद्रुमा इव ॥ ५१४ ॥
विदधुर्गन्धवृष्टिं च, चूर्णवृष्टिं च पावनीम् । उत्क्षिप्तैलादिकक्षोदा, इव दक्षिणमारुताः ॥ ५१५ ॥
अत्युदारां वसुधारावृष्टिं च परितेनिरे । वारिधारावृष्टिमिव, पुष्करावर्तवारिदाः ॥ ५१६ ॥
सौधर्मशासिनः पाकशासनस्याऽनुशासनात् । अथाऽऽभियोगिका देवा, इत्थमाघोषणां व्यधुः ॥ ५१७ ॥
आकर्णयन्तु सर्वेऽपि, भो भो वैमानिकाः सुराः ! । भवनाधिपति-ज्योतिर्व्यन्तराश्चावधानतः ॥ ५१८ ॥
अर्हतोऽर्हज्जनन्याश्च, योऽशुभं चिन्तयिष्यति । तन्मूर्धा सप्तधा गच्छत्वर्जकस्येव मञ्जरी ॥ ५१९ ॥
तदा च मेरुशिखरात्, सेन्द्राः सर्वे सुरा-ऽसुराः । द्वीपं कन्दलितानन्दा, नन्दीश्वरमुपाययुः ॥ ५२० ॥
भगवन्तं नमस्कृत्य, जितशत्रुनिकेतनात् । ययौ नन्दीश्वरद्वीपं, सौधर्मेन्द्रोऽपि तत्क्षणात् ॥ ५२१ ॥
तत्राञ्जनाद्रौ पूर्वस्मिन्, शाश्वतायतनेषु सः । शाश्वतार्हत्प्रतिमानां, चकाराऽष्टाह्निकोत्सवम् ॥ ५२२ ॥
सौधर्मेन्द्रस्य चत्वारो, लोकपालाश्चतुर्ष्वपि । अष्टाह्निकोत्सवं हृष्टाश्चक्रुर्दधिमुखाद्रिषु ॥ ५२३ ॥
उत्तरस्मिन्नञ्जनाद्रौ, शाश्वतायतनेषु तु । ईशानेन्द्रः शाश्वतार्हत्प्रतिमाष्टाह्निकां व्यधात् ॥ ५२४ ॥
लोकपालाश्च तस्यापि, प्राग्वद् दधिमुखाद्रिषु । ऋषभादिप्रतिमानां, व्यधुरष्टाह्निकोत्सवम् ॥ ५२५ ॥
अष्टाह्निकां चमरेन्द्रश्चक्रेऽपाच्येऽञ्जनाचले । चतुर्षु तद्दधिमुखाद्रिषु तस्य तु लोकपाः ॥ ५२६ ॥
बलीन्द्रोऽष्टाह्निकां चक्रे, पश्चिमे त्वञ्जनाचले । तल्लोकपालाः शैलेषु, चक्रुर्दधिमुखेषु तु ॥ ५२७ ॥

---

* °ङ्कारः, प्रति° सङ्क २ सङ्क ३ ॥ १ इन्द्रेण । २ इन्द्रः । ३ नम्रात्मा । ४ स्निग्धम् । ५ मनोहराः । ६ सूर्यः । ७ सिंहासनविशेषाः । ८ सावधानतया । ९ पल्लवितानन्दाः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततश्च सङ्केतस्थानादिव द्वीपवरात् ततः । कृतकृत्या निजनिजं, स्थानं जग्मुः सुरा-ऽसुराः ॥ ५२८ ॥

इतश्च तस्यां यामिन्यामन्वर्हद् वैजयन्त्यपि । सुखेन सुषुवे सूनुं, गङ्गेव कनकाम्बुजम् ॥ ५२९ ॥

जाया-वध्वोस्तु विजया-वैजयन्त्योः परिच्छदः । पुत्रोत्पत्तिकिंवदन्त्या, जितशत्रुमवर्धयत् ॥५३०॥

तया च वार्तया तुष्टो, राजाऽदात् पारितोषिकम् । तथा यथा तत्कुलेऽपि, श्रीरभूत् कामधेनुवत् ॥ ५३१ ॥

घनागमे सिन्धुरिव, सिन्धुराडिव पर्वणि । स्फारीबभूव वपुषा, तदानीं मेदिनीपतिः ॥ ५३२ ॥

उच्छ्वासं सह मेदिन्या, प्रसादं नभसा सह । आप्यायकत्वं मरुता, सह भेजे महीपतिः ॥ ५३३ ॥

राज्ञा मुमुचिरे तेन, कारावन्धाद् द्विषोऽपि हि । अवाशिष्यत बन्धस्तु, तदेभादिषु केवलम् ॥ ५३४ ॥

चैत्येषु जिनबिम्बानां, पूजाश्च विदधेऽद्भुताः । शाश्वतार्हत्प्रतिमानामिव शक्रो नरेश्वरः ॥ ५३५ ॥

अर्थिनश्च स्वक-परानपेक्षं सोऽर्थिनोऽर्द् धनैः । सर्वसाधारणी वृष्टिर्वारिदस्योद्यतस्य हि ॥ ५३६ ॥

उपाध्यगुरुपाध्यायाः, पठन्तः सतमातृकाम् । उल्ललद्भिः समं छात्रैर्वत्सैः कीलोज्झितैरिव ॥ ५३७ ॥

ब्राह्मणानां गुरुर्वेदोदितमन्त्रध्वनिः क्वचित् । क्वचिल्लग्नादिविचारसारा मौहूर्तिकोक्तयः ॥ ५३८ ॥

क्वचिच्च कुलनारीणामुलूलध्वनिरुत्तमः । गीतध्वनिश्च मङ्गल्यः, क्वचिद् वारमृगीदृशाम् ॥ ५३९ ॥

कल्याणकल्पनाकल्पो, बन्दिकोलाहलः क्वचित् । क्वचित् पुनश्चारणानां, चारुद्विपथकाशिषः ॥ ५४० ॥

अन्योऽन्यं चेटवर्गाणां, हर्षोत्ताला गिरः क्वचित् । वेत्रिकोलाहलः क्वाऽपि, याचकाह्वानबन्धुरः ॥५४१॥

राजवेश्माङ्गणे प्राप, शब्द एकातपत्रताम् । नभस्तले गर्जैरिव, प्रावृषेण्याब्दसङ्कुले ॥ ५४२ ॥

॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥

व्यलिप्यन्त क्वचिल्लोकाः, कुङ्कुमादिविलेपनैः । क्षौमादिभिर्निवसनैः, पर्यधाप्यन्त च क्वचित् ॥ ५४३ ॥

सम्मान्यन्ते स्म च क्वापि, दिव्यमाल्यविभूषणैः । कर्पूरमिश्रताम्बूलैरप्रीयन्त क्वचित् पुनः ॥ ५४४ ॥

कुङ्कुमेन व्यधीयन्त, सेचनानि गृहाङ्गणे । स्वस्तिकाश्च व्यरच्यन्त, मौक्तिकैः कुवलप्रमैः ॥ ५४५ ॥

प्रत्यग्रकदलीस्तम्भैस्तोरणाश्च बबन्धिरे । स्वर्णकुम्भा न्यधीयन्त, तोरणानां च पार्श्वयोः ॥ ५४६ ॥

सुमनोगर्भधम्मिल्लाः, पुष्पस्रग्मौलिवेष्टनाः । कण्ठावलम्बिदामानः, साक्षादिव ऋतुश्रियः ॥ ५४७ ॥

रत्नताडङ्क-केयूर-निष्क-कङ्कण-नूपुरैः । आरोचमाना रुचिरैः, रत्नाद्रेरिव देवताः ॥ ५४८ ॥

उत्तरीयैरुभयतो, लम्बमानचलाञ्चलैः । श्रोणीबद्धपरिकराः, कल्पद्रुमलता इव ॥ ५४९ ॥

पौरगन्धर्ववनितागीततालमनोरमम् । सङ्गीतकानि विदधुर्विबुधानामिव स्त्रियः ॥ ५५० ॥

॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

कौसुम्भेनोत्तरीयेण, चारुनीरङ्गिकाजुषः । सन्ध्याभ्रच्छन्नपूर्वाशामुखलक्ष्मीमलिम्लुचाः ॥ ५५१ ॥

कौङ्कुमेनाङ्गरागेण, विशेषितवपुःश्रियः । विकस्वराम्भोजवनपरागेणेव निम्नगाः ॥ ५५२ ॥

ईर्यासमितिशालिन्य, इव न्यञ्चुख-लोचनाः । स्वशीलेनेवामलेन, नेपथ्येन विराजिताः ॥ ५५३ ॥

पुष्प-दूर्वासनाथानि, पूर्णपात्राणि पाणिषु । बिभ्राणाश्चाऽऽययुस्तत्र, पौरेभ्यकुलयोषितः ॥ ५५४ ॥

॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

अक्षतैरिव मुक्ताभिः, पात्राण्यापूर्य चारुभिः । सामन्ताः केचिदाजग्मुर्मङ्गलाय महीपतेः ॥ ५५५ ॥

रत्नाभरणसम्भारानपरे परमर्द्धयः । जितशत्रोरुपनिन्युः, शतमन्योरिवाऽमराः ॥ ५५६ ॥

महार्घाणि दुकूलानि, केचिदानिन्यिरे पुनः । व्यूतानि कदलीसूत्रैर्बिससूत्रैरिवाऽथवा ॥ ५५७ ॥

---

१ वृत्तान्तेन । २ तृप्तत्वम् । ३ अतर्पयत् । ४ कीलकबन्धान्मुक्तैः । ५ विवाहाद्युत्सवेषु स्त्रीणां हर्षावेदको ध्वनिविशेषः । ६ वेश्यानाम् । ७ दासवर्गाणाम् । ८ गर्जनेव । ९ बदरप्रमाणैः । १० नवीनकदलीस्तम्भैः । ११ केशपाशाः । १२ वक्षसि परिधानीयमाभूषणम् । १३ अवगुण्ठनम् । १४ नद्यः । १५ सहितानि । १६ इन्द्रस्य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केचिच्च ढौकयामासुः, स्वर्णराशिं महीपतेः । जृम्भकामरनिर्मुक्तवसुधारासहोदरम् ॥ ५५८ ॥
दिग्गजानां युवराजानिव शौडीर्यशालिनः । मत्ताननेकपानेकेऽनेकशः पर्यढौकयन् ॥ ५५९ ॥
बन्धूनिवोच्चैःश्रवसः, सूर्याश्वानामिवाऽनुजान् । आनिन्युर्वाजिनो वाजवरिष्ठानपरे नृपाः ॥ ५६० ॥
राज्ञो वेश्माङ्गणं जज्ञे, विशालमपि सङ्कटम् । नृपोपायनयानैस्तैर्हृदयं प्रमदैरिव ॥ ५६१ ॥
प्रतीयेषोपायनानि, तेषां च प्रीतये नृपः । किं हि न्यूनं तस्य यस्य, देवदेवः स्वयं सुतः ? ॥ ५६२ ॥
आदेशाद् भूपतेस्तस्य, तस्यां पुर्यां तु जज्ञिरे । स्थाने स्थाने महामञ्चा, विमानानीव नाकिनाम् ॥५६३॥
प्रत्यट्ट-गृहमासंश्च, तोरणा रत्नभाजनैः । स्थितैरायातदेवेभ्यो, ज्योतिष्कैरिव कौतुकात् ॥ ५६४ ॥
प्रतिरथ्यं रजःशान्त्यै, निषेकः कुङ्कुमाम्बुभिः । चक्रे विलेपनमिव, भुवो मङ्गलसूचकम् ॥ ५६५ ॥
पदे पदे नाटकानि, सङ्गीतानि पदे पदे । पदे पदे तूर्यनादाः, पौरैर्विदधिरे मुदा ॥ ५६६ ॥
अशुल्क-दण्डामभटप्रवेशामकरां च ताम् । महोत्सवमयीं राजा, दशाहं विदधे पुरीम् ॥ ५६७ ॥
शुभेऽहनि नरेन्द्रोऽथ, सुत-भ्रातृजयोस्तयोः । आदिशन्नामकरणोत्सवाय स्वनियोगिनः ॥ ५६८ ॥
पटैर्घनानेकपुटैस्तदाऽतन्यत मण्डपः । भानोः करैरनाविष्टः, पार्थिवाज्ञाभयादिव ॥ ५६९ ॥
स्तम्भे स्तम्भे च कदलीस्तम्भास्तत्राऽशुभन् भृशम् । पुष्पकोशैर्वितन्वानाः, पद्मखण्डमिवाऽम्बरे ॥ ५७०॥
विचित्रैश्चक्रिरे तत्र, पुष्पैः पुष्पगृहाणि च । आश्रितानि श्रियाऽश्रान्तं, मधुकर्येव रक्तया ॥ ५७१ ॥
हंसरोमाञ्चितैस्तूलपूर्णैर्दारुमयैरपि । स आसनैः सनाथोऽभून्मण्डपः खमिवोडुभिः ॥ ५७२ ॥
मण्डपो नृपतेरेवं, सद्यश्चक्रेऽधिकारिभिः । विमानमिव शक्रस्य, त्रिदशैराभियोगिकैः ॥ ५७३ ॥
हर्षान्नराश्च नार्यश्च, मङ्गल्यद्रव्यपाणयः । तत्राऽऽयाता यथास्थानमुपावेश्यन्त वेत्रिभिः ॥ ५७४ ॥
कौङ्कुमेनाङ्गरागेण, ताम्बूलैः कुसुमैरपि । सच्चक्रिरे नियुक्तास्तान्, स्वबन्धूनिव गौरवात् ॥ ५७५ ॥
नेदुर्मङ्गलतूर्याणि, वर्याणि मधुरैः स्वरैः । उच्चेरुर्मङ्गलगिरः, परितः कुलयोषिताम् ॥ ५७६ ॥
पवित्राः प्रादुरासंश्च, मन्त्रोद्गारा द्विजन्मनाम् । प्रारेभिरे च गन्धर्वैर्वर्द्धमानादिगीतयः ॥ ५७७ ॥
वैतालिकैरनुत्तालैश्चक्रे जयजयारवः । उदारैस्तत्प्रतिरवैर्मण्डपोऽपि जगाविव ॥ ५७८ ॥
गर्भस्थितस्य माताऽस्य, नाऽक्षद्यूते जिता मया । इति सूनोरजित इत्यकार्षीन्नाम भूपतिः ॥ ५७९ ॥
महेन महता भ्रातुष्पुत्रस्याऽपि स्वपुत्रवत् । नरेश्वरः सगर इत्यकरोन्नाम पावनम् ॥ ५८० ॥

उत्कृष्टलक्षणशतैरुपलक्ष्यमाणौ, क्षोणीसमुद्धरणकर्मसहौ कुमारौ ।
राजा भुजाविव निजावपरौ प्रपश्यन्, पीयूषमग्न इव सौख्यमखण्डमाप ॥ ५८१ ॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये द्वितीये पर्वणि
अजितस्वामितीर्थकर-सगरचक्रधरजन्मवर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः ॥

---

१ वेगोत्तमान् । २ प्रतिजग्राह । ३केयवस्तुग्राह्यकरदण्डरहिताम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीयः सर्गः

धात्रीभिः पञ्चभिः शक्रादिष्टाभिरजितप्रभुः । अपाल्यत नराधीशादिष्टाभिः सगरः पुनः ॥ १ ॥
स्वपाणिपङ्कजाङ्गुष्ठे, सुरसङ्क्रमितां सुधाम् । पिबति स्माऽजितस्वामी, न ह्यर्हन्तः स्तनन्धयाः ॥ २ ॥
सगरस्तु यथाकालं, धात्रीस्तन्यमनिन्दितम् । अपिबत् सारणीनीरमिवाऽऽराममहीरुहः ॥ ३ ॥
वृद्धिं शाखे इव तरोर्दन्ताविव च दन्तिनः । दिने दिने प्रपेदाते, तौ कुमारौ नरेशितुः ॥ ४ ॥
क्रमेण युगपच्चापि, तावुत्सङ्गं महीपतेः । समारुरुहतुः पञ्चाननपोतौ गिरेरिव ॥ ५ ॥
नितान्तमुग्धैः पितरौ, सिष्मियाते स्मितैस्तयोः । विसिष्मियाते सौजस्कैः, पादचङ्क्रमणैः पुनः ॥ ६ ॥
धात्रीभिर्धार्यमाणावप्युत्सङ्गे तौ न तस्थतुः । न केसरिकिशोराणां, पञ्जरे जात्ववस्थितिः ॥ ७ ॥
स्वच्छन्दं विचरन्तौ तौ, रभसादनुधाविनीः । खेदयामासतुर्धात्रीर्वयो गौणं महात्मनाम् ॥ ८ ॥
क्रीडाशुक-मयूरादीनाददाते विहङ्गमान् । राज्ञः कुमारौ तौ वेगादतिवायुकुमारकौ ॥ ९ ॥
गते प्रस्खलयामासुर्धात्र्यो विविधचाटुभिः । स्वच्छन्दचारिणौ बालौ, तौ भद्रकलभाविव ॥ १० ॥
दिव्यघर्घरका रेजुर्द्वयोरपि कुमारयोः । झणज्झणितिकुर्वाणाः, पदाब्जेष्वलयो यथा ॥ ११ ॥
तयोः कण्ठे निबद्धाऽभात्, स्वर्णरत्नलेलन्तिका । हृदि झलज्झलयन्ती, नभसीव तडिल्लता ॥ १२ ॥
तयोश्च क्रीडतोः स्वैरं, चले काञ्चनकुण्डले । दधतुर्वारिसङ्क्रान्तनूतनादित्यविभ्रमम् ॥ १३ ॥
चलतोश्चञ्चले चूले, चकासामासतुस्तयोः । कलापौ नूतनोद्भिन्नाविव बालकलापिनोः ॥ १४ ॥
अङ्कादङ्कं कौतुकेन, निन्याते राजभिश्च तौ । पद्मात् पद्मान्तरं राजहंसाविव महोर्मिभिः ॥ १५ ॥
उत्सङ्गे हृदये दोष्णोः, स्कन्धदेशे शिरस्यपि । तौ समारोपयामास, रत्नाभरणवन्नृपः ॥ १६ ॥
मधुव्रत इवाऽम्भोजं, भूयो भूयः शिरस्तयोः । आजिघ्रन् प्रीतिविवशो, नाऽतृप्यत् पृथिवीपतिः ॥ १७ ॥
राज्ञस्तावङ्गुलीलग्नावुभयोरपि पार्श्वयोः । विचरन्तौ विरेजाते, मेरोरिव दिवाकरौ ॥ १८ ॥
सततं चिन्तयामास, परमानन्दसुन्दरम् । तावात्म-परमात्मानौ, योगीव जगतीपतिः ॥ १९ ॥
तौ ददर्श मुहुर्वेश्मोद्भूतौ कल्पद्रुमाविव । मुहुश्च भाषयामास, राजा राजशुकाविव ॥ २० ॥
सहाऽऽनन्देन भूभर्तुः, सहेक्ष्वाकुकुलश्रिया । क्रमेण प्रतिपेदाते, तौ वृद्धिमधिकाधिकाम् ॥ २१ ॥
तत्राशेषाः कला न्यायं, शब्दशास्त्रादि चापरम् । स्वयं जज्ञेऽजितस्वामी, त्रिज्ञाना हि स्वतो जिनाः ॥२२॥
राज्ञा निर्दिष्टः सुदिने, महोत्सवपुरःसरम् । उपोपाध्यायमध्येतुमारेमे सगरः पुनः ॥ २३ ॥
शब्दशास्त्रादिशास्त्राणि, दिनैः कतिपयैरपि । अपिबत् सगरः सिन्धुसलिलानीव सागरः ॥ २४ ॥
साहित्यशास्त्रसर्वस्वमुपाध्यायादयत्नतः । सौमित्रिरादद ज्योतिर्दीपो दीपान्तरादिव ॥ २५ ॥
साहित्यवल्लीकुसुमैः, काव्यैः कर्णरसायनैः । स वीतरागस्तवनैः, स्वां वाचमकृतार्थयत् ॥ २६ ॥
सम्यक् प्रमाणशास्त्राणि, स प्रज्ञाप्रतिभार्णवः । अग्रहीदविलम्बेन, स्वयंन्यस्तनिधानवत् ॥ २७ ॥
स्याद्वादवादोपन्यासैरमोघैः प्रतिवादिनः । विजिग्ये सगरः शत्रून्, जितशत्रुरिवेषुभिः ॥ २८ ॥
षाड्गुण्योपायशक्त्यादिप्रयोगोर्मिभिराकुलम् । अगाहिष्ट स दुर्गाहमर्थशास्त्रमहोदधिम् ॥ २९ ॥
सर्वौषधीरस-वीर्य-विपाकज्ञानदीपकम् । अप्यायुर्वेदमष्टाङ्गमध्यैष्टाऽकष्टमेव सः ॥ ३० ॥
चतुर्वाद्यं चतुर्वृत्ति, चतुर्धाभिनयात्मकम् । स तूर्यत्रयविज्ञाननिदानं शास्त्रमाददे ॥ ३१ ॥
दन्तघात-मदावस्था-ऽङ्गलक्षणचिकित्सितैः । विनोपदेशैश्चाऽऽपूर्णं, सोऽज्ञासीद् गजलक्षणम् ॥ ३२ ॥

---

१ सिंहकिशोरकौ । २ आनाभि लम्बमाना माला । ३ शिखे । ४ पिच्छौ । ५ मयीनां अञ्जलीव । ६ सगरः ।

स वाहनविधिं चाश्वलक्षणं सचिकित्सितम् । पाठतोऽनुभवतश्च, विदधे हृदयङ्गमम् ॥ ३३ ॥
धनुर्वेदमथाऽन्येषां, शस्त्राणामपि लक्षणम् । श्रुतमात्रं लीलयाऽपि, स स्वनामेव ह्यधात् ॥ ३४ ॥
धनुषा फलका[1]-ऽसिभ्यां, छुर्या शल्येन पर्शुना । कुन्तेन भिन्दिपालेन, गदया कम्पणेन च ॥ ३५ ॥
दण्डेन शक्त्या शूलेन, हलेन मुशलेन च । यष्टि-पट्टिस-दुःस्फोट-मुषुण्ढी-गोफणैरपि ॥ ३६ ॥
कणयेन त्रिशूलेन, शङ्कुना चापरैरपि । शस्त्रैः शास्त्रानुमानेन, सोऽगात् सङ्ग्रामकौशलम् ॥ ३७ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

सोऽभूत् सर्वकलापूर्णः, शशाङ्क इव पार्वणः । भूषणैरिव च गुणैर्विनयाद्यैरभूष्यत ॥ ३८ ॥
श्रीमानजितनाथोऽपि, यस्मिंस्तस्मिन्नपि क्षणे । शक्रादिभिः सुरैर्भक्तिभाग्भिरेवमसेव्यत ॥ ३९ ॥
चिक्रीडुः केचिदागत्य, सवयोभूय नाकिनः । अजितस्वामिनस्तत्तच्छीलालोकनलालसाः ॥ ४० ॥
नर्मोक्तिभिर्विचित्राभिश्चाटुभिश्च मुहुर्मुहुः । तं केऽप्यभाषयंस्तद्वाक्सुधारसपिपासिताः ॥ ४१ ॥
आदेशाकाङ्क्षया भर्तुरसमादिशतः सतः । क्रीडाद्यूते पणीकृत्याऽऽदेशान् स्वं केऽप्यहारयन् ॥ ४२ ॥
प्रतीहार्यभवन् केचिन्मन्त्र्यभूवंश्च केचन । केऽप्युपानद्धर्यभूवंश्छ[2]त्र्यभूवंश्च केचन ॥ ४३ ॥
[3]स्थगीवाह्यभवन् केचित्, प्रेष्यभूवंश्च केचन । अस्त्रधार्यभवन् केचिदमराः क्रीडतः प्रभोः ॥ ४४ ॥
पाठं पाठं च शास्त्राणि, सगरोऽपि दिने दिने । स्वनियोगं नियोगीवाऽजितेशाय व्यजिज्ञपत् ॥४५॥
उपाध्यायेनाऽप्यभग्नान्, संशयान् सगरः सुधीः । पप्रच्छ स्वामिनं नाभिनन्दनं भरतेशवत् ॥४६॥
मति-श्रुता-ऽवधिज्ञानैरजितस्वाम्यपि द्रुतम् । चिच्छेद तस्य सन्देहांस्तमांसीवेन्दुरंशुभिः ॥ ४७ ॥
त्रिभिर्यतैः समाक्रामन्, दृढासनपरिग्रहः । प्रसार्याऽदर्शयत् तस्मै, स [5]व्यालमपि हस्तिनम् ॥ ४८ ॥
सपर्याणानपर्याणान्, शूक[6]लानपि वाजिनः । तत्पुरो वाहयामास, धाराभिरपि पञ्चभिः ॥ ४९ ॥
राधावेधं शब्दवेधं, जलान्तर्लक्षवेधनम् । चक्र-मृत्पिण्डवेधं च, बाणैः सोऽदर्शयत् प्रभोः ॥ ५० ॥
अदर्शयत् पादगतिं, फलका-ऽसिधरश्च सः । प्रविष्टः फलकमध्येऽभ्रमध्य इव चन्द्रमाः ॥ ५१ ॥
कुन्तं शक्तिं शर्वलां च, भ्रमयामास वेगतः । नभसि भ्राम्यदुद्दामविद्युल्लेखाभ्रमप्रदान् ॥ ५२ ॥
सर्वैरपि छुरीस्थानैः, सर्वचारीविचक्षणः । अदर्शयच्छुरीविद्यां, स नृत्यमिव नर्त्तकः ॥ ५३ ॥
अजितस्वामिनेऽन्येषां, शस्त्राणामपि कौशलम् । अदर्शयद् गुरुभक्त्या, त[7]च्छिक्षादित्सया च सः ॥५४॥
न्यूनं यत्किञ्चिदप्यासीत्, कलासु सगरस्य तु । स्वामी तदशिषत् तादृक्, तादृशस्य हि शिक्षकः ॥५५॥
एवमात्मानुरूपं तौ, चेष्टमानावुभावपि । आद्यं वयो ललङ्घाते, ग्रामसीमामिवाऽध्वगौ ॥ ५६ ॥
समानचतुरस्रेण, संस्थानेनोपशोभितौ । वज्रऋषभनाराचाख्येन संहननेन च ॥ ५७ ॥
हेमद्युती सार्धचतुर्धनुःशतसमुच्छ्रयौ । श्रीवत्सलाञ्छितोरस्कौ, रुचिरोष्णीषशालिनौ ॥ ५८ ॥
अथाऽऽपतुर्यौवनं तौ, वपुर्लक्ष्मीविशेषकम् । शरदं स्वप्रभाधिक्यकरीं सूर्य-विधू इव ॥ ५९ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

कुटिल-श्यामलैः केशैर्यमुनावीचिसोदरैः । तौ रेजाते ललाटेन, चाऽष्टमीचन्द्रबन्धुना ॥ ६० ॥
तयोः कपोलौ बभतुरादर्शौ काञ्चनाविव । नेत्रे च स्निग्ध-मधुरे, नीलोत्पलदलोपमे ॥ ६१ ॥
दृक्सरस्योरन्तराले, तयोः पालीव नासिका । शुशुभाते चोष्ठपुटे, युग्मबिम्बीफले इव ॥ ६२ ॥
तयोः श्रुती शुभावर्ते, रेजतुः शुक्तिके इव । रेखात्रयपवित्रश्च, कम्बुवत् कण्ठकन्दलः ॥ ६३ ॥
तयोश्च बाहुशिखरौ, कु[9]म्भिकुम्भाविवोन्नतौ । अभातामायतौ पीनौ, भुजौ भुजगराजवत् ॥ ६४ ॥

---

१ फलकं 'ढाल' इति लोके प्रसिद्धम् । २ छत्रधारका अभूवन् । ३ ताम्बूलकरण्डकः स्थगीत्युच्यते । ४ ताडनैः । ५ दुष्टम् । ६ उद्धतान् । ७ तच्छिक्षाग्रहणेच्छया । ८ शुशुभाते । ९ गजकुम्भौ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तयोरुरःस्थलमपि, स्वर्णशैलशिलानिभम् । मनोवदतिगम्भीरा, नाभिश्च प्रत्यभासत ॥ ६५ ॥
कृशश्च कुलिशस्येव, मध्यदेशस्तयोरभूत् । महाकरिकराकारावूरू सरल-कोमलौ ॥ ६६ ॥
ऐणीजङ्घाप्रतिरूपे, जङ्घाकाण्डे पुनस्तयोः । ऋज्वङ्गुलिदलौ पादौ, स्थलपद्मानुहारिणौ ॥ ६७ ॥
निसर्गेणापि तौ रम्यौ, यौवनेन विशेषतः । बभूवतुर्मधुनेवाऽऽरामौ रामाजनप्रियौ ॥ ६८ ॥
सगरः सर्वमर्त्येभ्यः, सुरेभ्य इव वासवः । उदकृष्यत रूपेण, विक्रमादिगुणैरपि ॥ ६९ ॥
अजितेशः पुनः सर्वकल्पदेवेभ्य उच्चकैः । ग्रैवेयकनिवासिभ्योऽनुत्तरेभ्यश्च सर्वतः ॥ ७० ॥
आहारकशरीरादप्यत्यरिच्यत रूपतः । शैलेभ्य इव सर्वेभ्यो, मानतो मेरुपर्वतः ॥ ७१ ॥ युग्मम् ॥
जितशत्रुर्नरेन्द्रोऽथ, महेन्द्रश्चाऽजितप्रभुम् । नीरागमपि वीवाहकर्मणे स्वयमूचतुः ॥ ७२ ॥
उपरोधात् तयोः स्वं च, कर्म भोगफलं विदन् । तद्वाचमजितस्वामी, तथेति प्रत्यपद्यत ॥ ७३ ॥
श्रियो मूर्त्यन्तराणीव, शतशोऽथ स्वयंवराः । तेन राज्ञा राजकन्या, महर्द्ध्या पर्यणाययत् ॥ ७४ ॥
देवकन्योपमा राजकन्यकाः सगरेण च । पुत्रोद्वाहोत्सवातृप्योदवाहयदिलापतिः ॥ ७५ ॥
अजितोऽपीन्द्रियै रेमे, रामाभिरजितप्रभुः । भोग्यकर्म क्षपयितुं, यथाव्याधि हि भेषजम् ॥ ७६ ॥
नानाविधाभिः क्रीडाभिः, क्रीडास्थानेष्वनेकशः । रामाभिः सगरोऽरंस्त, करेणुभिरिव द्विपः ॥ ७७ ॥
सम भ्रात्रा भवोद्विग्नो, जितशत्रुनृपोऽन्यदा । सम्पूर्णाष्टादशपूर्वलक्षौ पुत्रावदोऽवदत् ॥ ७८ ॥
वत्सौ ! सर्वेऽपि नः पूर्वे, पूर्वलक्षाणि कान्यपि । धरित्रीं विधिवत् त्रात्वा, पुत्रेषु च निधाय ताम् ॥७९॥
निर्वाणसाधने हेतुभूतमाददिरे व्रतम् । तदेव हि निजं कार्यं, परकार्यमतः परम् ॥ ८० ॥
आवामपि ग्रहीष्यावः, कुमारौ ! सम्प्रति व्रतम् । स्वकार्यस्य ह्ययं हेतुरेष वंशक्रमश्च नः ॥ ८१ ॥
ततो राज-युवराजावावामिव युवामिह । भवतं चाऽनुजानीतमद्य प्रव्रजनाय नौ ॥ ८२ ॥
अथोवाचाऽजितस्वामी, तात ! युक्तमिदं हि वः । ममापि युज्यते विघ्नः, कर्म भोगफलं न चेत् ॥८३॥
अन्यस्यापि व्रतादाने, न विघ्नाय विवेकिनः । किं पुनस्तातमिश्राणामहं समयसाधिनाम् ? ॥ ८४ ॥
पितुः पुमर्थं तुर्यं यो, भक्त्याऽपि हि निषेधति । सुतव्याजाद् द्विषन्नेव, स हि तस्योदपद्यत ॥ ८५ ॥
तथापि प्रार्थ्यसे तात !, लघुतातोऽस्तु राज्यभृत् । विनयी हि लघुभ्राता, पुत्रादप्यतिरिच्यते ॥ ८६ ॥
सुमित्रोऽप्यभ्यधादेवं, स्वामिपादानहं न हि । त्यजामि राज्यमादातुं, कोऽल्पहेतोर्बहु त्यजेत् ? ॥ ८७ ॥
राज्यादप्यतिसाम्राज्याच्चक्रवर्तिपदादपि । देवत्वादपि विदुषां, गुरुसेवा गरीयसी ॥ ८८ ॥
अथोचेऽजितनाथस्तं, राज्यमादित्ससे न चेत् । तात ! भावयतिर्भूत्वा, तथाप्यास्स्व सुखाय नः ॥ ८९ ॥
जितशत्रुरपि साऽऽह, बन्धो ! निर्बन्धकारिणः । सूनोर्मन्यस्व वचनं, भावतोऽपि यतिर्यतिः ॥ ९० ॥
साक्षादयं तीर्थकरोऽस्यैव तीर्थे तवेप्सितम् । सेत्स्यतीति प्रतीक्षस्वाऽत्युत्सुको वत्स ! मास्म भूः ॥ ९१ ॥
एकस्य धर्मचक्रित्वं, चक्रित्वमपरस्य च । सूनोः पश्यन् लप्स्यसे त्वं, सुखं सर्वसुखाधिकम् ॥ ९२ ॥
व्रतोत्सुकोऽपि तद्वाचं, सुमित्रः प्रत्यपद्यत । सतां ह्यलङ्घ्या गुर्वाज्ञा, मर्यादोदन्वतामिव ॥ ९३ ॥
जितशत्रुरथ प्रीत, उत्सवेन महीयसा । अजितस्वामिनो राज्याभिषेकमकरोत् स्वयम् ॥ ९४ ॥
मुमुदे मेदिनी सर्वा, तस्य राज्याभिषेकतः । विश्वत्राणक्षमे नेतर्यासि कः प्रीयते न हि ? ॥ ९५ ॥
यौवराज्ये च सगरमजितस्वाम्यपि न्यधात् । द्वैतीयीकीमिव निजां, तनूमतनुसौहृदः ॥ ९६ ॥
श्रीमानजितनाथोऽपि, जितशत्रोस्तदैव हि । ऋद्ध्या महत्या विधिवच्चक्रे निष्क्रमणोत्सवम् ॥ ९७ ॥
ऋषभस्वामितीर्थस्थस्थविराणामथान्तिके । जितशत्रुः परिव्रज्यां, शिश्रिये मुक्तिमातरम् ॥ ९८ ॥

---

१ वज्रस्येव । २ मृगीजङ्घासदृशे । ३ वसन्तेन । ४ अजितस्वामिना सह । ५ जितशत्रुः । ६ राजा । ७ न जितः । ८ रोगानुरूपम् । ९ मोक्षसाधने । १० सङ्केतितकाले आराधनाकारिणाम् । ११ पुत्रमिषात् । १२ समुद्राणां मर्यादा इव । १३ शरीरम् ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

बहिरङ्गानिव जयन्नन्तरङ्गानरींस्ततः । अखण्डितं राज्यमिव, पालयामास स व्रतम् ॥ ९९ ॥
उत्पन्नकेवलज्ञानः, शैलेशीध्यानमास्थितः । क्षीणाष्टकर्मा स प्राप, क्रमेण परमं पदम् ॥ १०० ॥

इतश्चाजितनाथोऽपि, सनाथः सकलर्द्धिभिः । सलीलं पालयामास, स्वापत्यमिव मेदिनीम् ॥१०१॥
तस्यावतो वसुमतीमपि दण्डादिभिर्विना । ययुः प्रजा वर्त्मनैव, रथ्या इव सुसारथेः ॥ १०२ ॥
धान्यानामेव निष्पेषः, पशूनामेव बन्धनम् । मणीनामेव वेधोऽपि, तूर्याणामेव ताडनम् ॥ १०३ ॥
स्वर्णानामेव सन्तापः, शस्त्राणामेव तेजनम् । शालीनामेवोत्खननं, स्त्रीभ्रुवामेव वक्रता ॥ १०४ ॥
शारीणामेव हननं, क्षेत्रोर्व्या एव दारणम् । पक्षिणामेव निक्षेपः, काष्ठपञ्जरमन्दिरे ॥ १०५ ॥
रुजामेव निग्रहश्चाऽब्जानामेव जडस्थितिः । अगरोरेव दहनं, श्रीखण्डस्यैव घर्षणम् ॥ १०६ ॥
दधिष्वेव प्रमथनमिक्षुष्वेव निपीडनम् । अलिष्वेव मधुपता, गजेष्वेव मदोदयः ॥ १०७ ॥
प्रणयेष्वेव कलहोऽपवादेष्वेव भीरुता । गुणगणेष्वेव लोभः, स्वदोषेष्वेव चाऽक्षमा ॥ १०८ ॥
प्रजामयूरीपर्जन्ये, प्रार्थनाकल्पपादपे । समभूदजितस्वामिनृपे शासति मेदिनीम् ॥ १०९ ॥

॥ सप्तभिः कुलकम् ॥

भेजिरे भूभुजः पत्तिमानिनो मानिनोऽपि तम् । दासन्ति ह्यन्यमणयः, सर्वे चिन्तामणेः पुरः ॥ ११० ॥
न दण्डनीतिं प्रायुङ्क्त, भ्रूभङ्गमपि न व्यधात् । वशगा भूरभूत् तस्य, सुभगस्येव कामिनी ॥ १११ ॥
आचकर्ष श्रियो राज्ञां, स स्वैस्तेजोभिरूर्जितैः । किरणैरुष्णकिरणो, वारीणि सरसामिव ॥ ११२ ॥
तस्य वेश्माङ्गणभुवो, बभूवुः प्रतिवासरम् । नरेन्द्रोपायनेभानां, पङ्किला मदवारिभिः ॥ ११३ ॥
चतुरं विक्रममाणैरीशितुस्तस्य वाजिभिः । वाह्यालीभूमिवत् सर्वाः, समाचक्रमिरे दिशः ॥ ११४ ॥
अजितस्वामिनः सैन्ये, पत्तीनामनसामपि । सङ्ख्यां कर्तुमलं कश्चिन्नोर्मीणामिव वारिधौ ॥ ११५ ॥
निषादिनः सादिनश्च, रथिनः पत्तयोऽपि च । बभूवुः प्रक्रियामात्रं, भर्तुर्दोर्वीर्यशालिनः ॥ ११६ ॥
अद्वैतेऽपि स ऐश्वर्ये, जातु नोत्सेकमादधे । न चाऽवलेपमकरोदतुलेऽपि हि दोर्बले ॥ ११७ ॥
रूपे चाप्रतिरूपेऽपि, नेशः सुभगमान्यभूत् । लाभेन विपुलेनापि, न भेजे चोन्मदिष्णुताम् ॥ ११८ ॥
अन्यैरपि मदस्थानैर्नाऽऽससाद मदं विभुः । तृणाय प्रत्युतामंस्त, सर्वं जानन्ननित्यताम् ॥ ११९ ॥

॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

एवं च पालयन् राज्यं, कौमारात् प्रभृति प्रभुः । त्रिपञ्चाशत्पूर्वलक्षीं, सुखमेवाऽत्यवाहयत् ॥ १२० ॥
विसृज्याऽन्येद्युरास्थानीं, रहःस्थानमुपेयिवान् । ज्ञानत्रयधरः स्वामी, स्वयमेवमचिन्तयत् ॥ १२१ ॥
अद्यापि हि कियद् भुक्तप्रायभोगफलैरपि । स्वकार्यविमुखैः स्थेयमस्माभिर्गृहवासिभिः ? ॥ १२२ ॥
त्रातव्योऽयं मया देशो, रक्षणीयमिदं पुरम् । वासनीयास्त्वमी ग्रामाः, पालनीया इमे जनाः ॥ १२३ ॥
वर्द्धनीया हस्तिनोऽमी, पोषणीया इमे हयाः । भरणीया अमी भृत्यास्तर्प्याश्चामी वनीपकाः ॥ १२४ ॥
पोष्या अमी सेवकाश्च, रक्ष्याश्चामी शरण्यगाः । सम्भाष्याः पण्डिताश्चामी, सत्कार्याः सुहृदस्त्वमी ॥ १२५ ॥
अनुग्राह्या मन्त्रिणोऽमी, उद्धार्या बन्धवोऽप्यमी । रञ्जनीयास्त्वमी दारा, लालनीयास्त्वमी सुताः ॥१२६॥
इति प्रतिक्षणमपि, परकार्यैः समाकुलः । क्षपयत्यखिलं जन्मी, मानुषं जन्म निष्फलम् ॥ १२७ ॥
पुमानेषां च कार्येण, युक्तायुक्तमचिन्तयन् । विमूढः पशुवन्नानापापानि विदधाति हि ॥ १२८ ॥
येषामर्थे च पापानि, विधत्ते मुग्धधीर्जनः । ते तं मृत्युपथे यान्तं, नानुयान्ति मनागपि ॥ १२९ ॥

---

१ सहितः । २ अश्वाः । ३ अब्जपक्षे जले स्थितिः । ४ न तु प्रजासु मधुपायित्वम् । ५ आत्मानं पत्तिं मन्यमानाः । ६ मानयुक्ताः । ७ सूर्यपक्षे चन्द्राणाम् । ८ सूर्यः । ९ रथानाम् । १० गजवाहाः । ११ अश्ववाराः । १२ अभिमानम् । १३ गर्वम् । १४ अनन्यसमाने । १५ सभाम् । १६ याचकाः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इहैव तेऽवतिष्ठन्ते, यदि तिष्ठन्तु तन्ननु । अहो ! शरीरमप्येतन्नाऽनुयाति पदात् पदम् ॥ १३० ॥
ततः शरीरकस्याऽपि, कृतघ्नस्य कृते मुधा । मुग्धैर्विधीयते हन्त !, पापकर्म शरीरिभिः ॥ १३१ ॥
एक उत्पद्यते जन्तुरेक एव विपद्यते । कर्माण्यनुभवत्येकः, प्रचितानि भवान्तरे ॥ १३२ ॥
अन्यैस्तेनाऽर्जितं वित्तं, भूयः सम्भूय भुज्यते । स त्वेको नरकक्रोडे, क्लिश्यते निजकर्मभिः ॥ १३३ ॥
दुःखदावाग्निभीष्मेऽस्मिन्, वितते भवकानने । बम्भ्रमीत्येक एवाऽसौ, जन्तुः कर्मवशीकृतः ॥ १३४ ॥
यद् दुःखं भवसम्बन्धि, यत् सुखं मोक्षसम्भवम् । एक एवोपभुङ्क्ते तन्न सहायोऽस्ति कश्चन ॥ १३५ ॥
यथैवैकस्तरन् सिन्धुपारं व्रजति तत्क्षणात् । न तु हृत्पाणि-पादादिसंयोजितपरिग्रहः ॥ १३६ ॥
तथैव धन-देहादिपरिग्रहपराङ्मुखः । स्वस्थ एको भवाम्भोधिपारमासादयत्यसौ ॥ १३७ ॥
इति चिन्तापरं नाथं, भवनिर्विण्णचेतसम् । सारस्वतादयो लोकान्तिका एत्याऽब्रुवन् सुराः ॥१३८॥
स्वयं बुद्धोऽसि भगवन्नस्माभिर्न हि बोध्यसे । किन्त्विदं स्मार्यते विश्वनाथ ! तीर्थं प्रवर्तय ॥ १३९ ॥
इत्युदीर्याऽजितस्वामिपादान् नत्वा च ते तदा । ब्रह्मलोकं ययुः सायं, स्वनीडमिव पक्षिणः ॥१४०॥
आत्मचिन्तानुकूलेन, तेन तद्वचसा प्रभोः । ववृधे भववैराग्यं, पौरस्त्यमरुताऽब्दवत् ॥ १४१ ॥
ततः सगरमाहूय, जगाद त्रिजगद्गुरुः । गृह्यतां राज्यभारो नः, संसाराब्धि तितीर्षताम् ॥ १४२ ॥
इत्युक्तोऽजितनाथेन, श्यामास्योऽश्रूणि पातयन् । एकैकबिन्दुवर्षीव, वारिदः सगरोऽब्रवीत् ॥ १४३ ॥
अभक्तिः किं मया देव !, विदधे देवपादयोः । आत्मनो मां पृथक् कर्तुमद्य येनैवमादिशः ? ॥१४४॥
अभक्तिर्वाऽस्तु विहिता, नाऽप्रसादाय साऽपि हि । पूज्यैरभक्तोऽपि शिशुः, शिष्यते न तु हीयते ॥१४५॥
किं नामाऽभ्रंलिहेनाऽपि, छायाहीनेन शाखिना ? । किं वा समुन्नतेनाऽपि, वृष्टिहीनेन वार्मुचा ? ॥१४६॥
किं वा निर्झरहीनेन, तुङ्गेनाऽपि महीभृता ? । किं वा लावण्यहीनेन, सुरूपेणाऽपि वर्ष्मणा ? ॥१४७॥
किं वा गन्धविहीनेन, पुष्पेणाऽपि विकासिना ? । अनेन त्वद्विहीनेन, राज्येनाऽपि हि किं मम ? ॥१४८॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
निर्ममस्य निरीहस्य, मुमुक्षोरपि ते सतः । प्रभो ! पादौ न मोक्ष्यामि, का राज्यादानसङ्कथा ? ॥ १४९ ॥
राज्यं पुत्राः कलत्राणि, मित्राण्यथ परिच्छदः । तृणवत् सुत्यजं सर्वं, त्वत्पादौ दुस्त्यजौ तु मे ॥१५०॥
राजीभवति नाथाऽहं, युवराजयभवं यथा । त्वयि व्रतधरे शिष्यीभविष्याम्यधुना तथा ॥ १५१ ॥
गुरुपादाम्बुजोपास्तितत्परस्य दिवानिशम् । शैक्षस्य भैक्षमपि हि, साम्राज्यादतिरिच्यते ॥ १५२ ॥
भवं तरिष्याम्यज्ञोऽपि, भवत्पादावलम्ब्यहम् । गोपुच्छलग्नो हि तरेन्नदीं गोपालबालकः ॥ १५३ ॥
दीक्षां सह त्वयाऽऽदास्ये, विहरिष्ये सह त्वया । दुःसहांश्च सहिष्येऽहं, त्वया सह परीषहान् ॥ १५४ ॥
त्वया सहोपसर्गांश्च, सहिष्ये त्रिजगद्गुरो ! । कथञ्चिदपि न स्थास्याम्यहमत्र प्रसीद मे ॥ १५५ ॥
अथेत्थमजितस्वामी, सेवाबद्धैकसङ्गरम् । सगरं व्याजहारातिपीयूषोद्गारया गिरा ॥ १५६ ॥
युक्त एवाऽऽग्रहो वत्स !, संयमग्रहणं प्रति । किन्तु भोगफलं कर्म, क्षीयतेऽद्यापि ते न हि ॥ १५७ ॥
भुक्त्वा भोगफलं कर्माहमिव त्वमपि स्वयम् । मोक्षस्य साधकतमं, गृह्णीयाः समये व्रतम् ॥ १५८ ॥
युवराज ! ततो राज्यं, गृहाणेदं क्रमागतम् । वयं संयमसाम्राज्यमुपादास्यामहे पुनः ॥ १५९ ॥
इत्युक्तः स्वामिना सोऽथ, मनस्येवमचिन्तयत् । भर्तुर्विरहभीराज्ञाभङ्गभीश्च दुनोति माम् ॥ १६० ॥
दुःखाय स्वामिविरहस्तदाज्ञातिक्रमश्च मे । इति द्वयं विमृशतो, गुर्वाज्ञापालनं वरम् ॥ १६१ ॥
इत्थं विचार्य मनसा, सगरो गद्गदस्वरः । तथेति स्वामिनो वाचं, प्रतिपेदे महामतिः ॥ १६२ ॥

१ सञ्चितानि । २ पुनः पुनः भ्रमति । ३ पूर्वदिग्वायुना मेघो यथा वर्धते तद्वत् । ४ शिक्ष्यते । ५ मेघेन । ६ शरीरेण । ७ शिष्यस्य । ८ सेवानिबद्धप्रतिज्ञम् ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

ततो नरेश्वरवरः, सगरस्य महात्मनः । सद्यो राज्याभिषेकार्थमादिदेश नियोगिनः ॥ १६३ ॥
अथाऽऽनीयत पानीयं, स्नानीयं तीर्थसम्भवम् । कुम्भैरम्भोरुहच्छन्नैर्लघूभूतैर्ह्रदैरिव ॥ १६४ ॥
अभिषेकोपकरणद्रव्याण्यन्यान्यपि क्षणात् । व्यापारिभिरढौकयन्त, प्राभृतानीव राजभिः ॥ १६५ ॥
प्रतापेष्विव मूर्तेषु, समायातेषु राजसु । आगतेषु च मन्त्रेणाऽतीन्द्रमन्त्रिषु मन्त्रिषु ॥ १६६ ॥
उपेतेषु चमूपालेष्वाशापालेष्विवाऽऽज्ञया । मिलितेष्वेककालं च, हर्षोत्तालेषु बन्धुषु ॥ १६७ ॥
हस्त्यश्वसाधनाध्यक्षप्रभृतिष्वपरेष्वपि । उपस्थितेषु युगपदुत्थायैकगृहादिव ॥ १६८ ॥
शङ्खेष्वापूर्यमाणेषु, नादनिर्झरसानुषु । आहतेषु मृदङ्गेषु, मेघसब्रह्मचारिषु ॥ १६९ ॥
कोणैराहन्यमानेषु, दुन्दुभिष्वानकेषु च । प्रतिशब्दैः सर्वदिशां, मङ्गलाध्यापकेष्विव ॥ १७० ॥
आस्फलत्सु मिथः कांस्यतालेषूर्मिष्विवाऽम्बुधेः । झणज्झणायमानासु, झल्लरीषु च सर्वतः ॥ १७१ ॥
अपरेष्वपि तूर्येषु, पूर्यमाणेषु केषुचित् । केषुचित् ताड्यमानेष्वास्फाल्यमानेषु केषुचित् ॥ १७२ ॥
गन्धर्वेषु च गायत्सु, शुद्धगीतानि सुस्वरम् । आशिषो भाषमाणेषु, ब्रह्मवैतालिकादिषु ॥ १७३ ॥
सौवस्तिकप्राग्रहरैरजितस्वामिशासनात् । राज्याभिषेको विधिवत्, सगरस्य व्यधीयत ॥ १७४ ॥
॥ नवभिः कुलकम् ॥
प्रणेमुः सगरं सर्वे, नृप-सामन्त-मन्त्रिणः । उदयन्तमिवाऽऽदित्यमुद्यताञ्जलयो जनाः ॥ १७५ ॥
उपेत्य पौरप्रवरा, वरोपायनपाणयः । भक्त्या तमुर्वीनेतारं, नवमिन्दुमिवाऽनमन् ॥ १७६ ॥
स्वामिना न वयं त्यक्ता, मूर्त्यन्तरमिदं निजम् । नेतारं कुर्वताऽस्माकमित्यूचुर्मुदिताः प्रजाः ॥ १७७ ॥
भगवानजितेशोऽपि, प्रारेभेऽथ कृपार्णवः । प्रदातुं वार्षिकं दानं, वर्षाब्द इव वर्षितुम् ॥ १७८ ॥
आज्ञप्ता वासवेनाऽथ, प्रेरिता धनदेन च । तिर्यग्जृम्भकनामानस्तत्रोपेयुर्दिवौकसः ॥ १७९ ॥
अथ भ्रष्टानि नष्टानि, प्रक्षीणस्वामिकानि च । परितो नष्टकेतूनि, प्रणष्टाधिपतीनि च ॥ १८० ॥
गिरिकन्दरवर्त्तीनि, श्मशानस्थानगानि च । भवनान्तरगुप्तानि, तत्राऽऽजहुर्धनानि ते ॥ १८१ ॥ युग्मम् ॥
शृङ्गाटेषु चतुष्केषु, चत्वरेषु त्रिकेषु च । प्रवेश-निर्गमोर्व्यां च, पुञ्जीचक्रुश्च तानि ते ॥ १८२ ॥
त्रिके त्रिके पथि पथि, चत्वरे चत्वरेऽपि च । एतद् गृह्णीत वस्वेवं, घोषणां स्वाम्यकारयत् ॥ १८३ ॥
यो यद् ययाचे तत् तस्मै, ददौ वसु जगत्पतिः । सूर्योदयात् समारभ्य, निषण्णो भोजनावधि ॥ १८४ ॥
कोटिरेका हिरण्यस्य,लक्षैः समधिकाऽष्टभिः । अर्थिभ्यो विश्वनाथेन, दीयते स्म दिने दिने ॥ १८५ ॥
ततश्चाऽदत्त वर्षेण, हेम्नः कोटिशतत्रयम् । अष्टाशीतिं तथा कोटीर्लक्षाशीतिं तथा प्रभुः ॥ १८६ ॥
अनुभावेन कालस्य, स्वामिनश्च प्रभावतः । यथेप्सितप्रदानेऽपि, नाऽधिकग्राहिणोऽभवन् ॥ १८७ ॥
कृपाधनो धिनोति स्म, धनैरेवं धरां प्रभुः । चिन्तामणिरिवाऽचिन्त्यमहिमा वत्सरावधि ॥ १८८ ॥
अथ वार्षिकदानान्ते, शक्रस्याऽचलदासनम् । अवधिज्ञानतोऽज्ञासीत्, स च दीक्षाक्षणं विभोः ॥ १८९ ॥
चचाल च हरिर्देवैः, समं सामानिकादिभिः । दीक्षाक्षणे भगवतः, कर्तुं निष्क्रमणोत्सवम् ॥ १९० ॥
विमानै रचयन्नाशाः, सञ्चरन्मण्डपा इव । उत्तुङ्गैर्वारणवरैरुत्पतत्पर्वता इव ॥ १९१ ॥
आक्रामन् व्योम तुरगैस्तरङ्गैरिव सागरः । आघट्टयन् रविरथं, रथैरस्खलितस्यदैः ॥ १९२ ॥
नभस्तलं तिलकयन्, किङ्कणीमालभारिभिः । ध्वजांशुकैश्च दिग्दन्तिकर्णतालानुहारिभिः ॥ १९३ ॥
गीयमानोऽमरैः कैश्चिद्, गान्धारग्रामबन्धुरम् । स्तूयमानस्तथा कैश्चित्, सत्काव्यकुलकैर्नवैः ॥ १९४ ॥
कैश्चिद् विज्ञप्यमानश्च, मुखदत्तपटाञ्चलैः । संस्मार्यमाणः कैश्चिच, प्राक्तनीस्तीर्थकृत्कथाः ॥ १९५ ॥

---

१ अतिक्रान्तबृहस्पतिषु । २ दिक्पालेषु । ३ सेनापतिः । ४ मेघसदृशेषु । ५ पुरोहितश्रेष्ठैः । ६ राजानम् । ७ नष्टस्वामिकानि । ८ नष्टचिह्नानि । ९ दीक्षासमयम् । १० द्वन्द्वः । ११ अकुण्ठितवेगैः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पवित्रितां स्वामिपादैर्मन्यमानोऽधिकां दिवः । दिवस्पतिरुपेयाय, विनीतानगरीं क्षणात् ॥ १९६ ॥*
अन्येऽप्यासनकम्पेन, ज्ञात्वा दीक्षाक्षणं विभोः । सुरेन्द्रा असुरेन्द्राश्च, विनीतां तद्ददाययुः ॥ १९७ ॥
तत्राऽच्युताद्या देवेन्द्रा, नरेन्द्राः सगरादयः । दीक्षाभिषेकं विदधुः, क्रमेण परमेशितुः ॥ १९८ ॥
वाससा देवदूष्येण, वपुः स्नानजलाविलम्[1] । ममार्ज शक्रो माणिक्यमिव वैकटिकाग्रणीः[2] ॥ १९९ ॥
गन्धकार इवाऽऽयुक्तो, वज्रपाणिः स्वपाणिना । चर्चयामास रुचिरैरङ्गरागैर्जगद्गुरुम् ॥ २०० ॥
देवदूष्याण्यदूष्याणि[3], जगन्नाथेन तत्क्षणे । वासांसि वासयामास, वासवो वासनावसुः[4] ॥ २०१ ॥
मुकुटं कुण्डले हारं, केयूरे कङ्कणे अपि । अपरानप्यलङ्कारान्, नाथेनाऽग्राहयद्धरिः ॥ २०२ ॥
प्रसूनदामभिर्दिव्यैः, सनाथीकृतकुन्तलः । तृतीयेनेव नेत्रेण, तिलकेनालिके[5] विभान् ॥ २०३ ॥
देवीभिर्दानवीभिश्च, मानवीभिश्च सर्वतः । विचित्रभाषामधुरं, गीतोपक्रान्तमङ्गलः ॥ २०४ ॥
सूतैरिव[6] स्तूयमानः, सुरा-ऽसुर-नरेश्वरैः । व्यन्तरैः कृतधूपार्घः, स्वर्णधूपघटीधरैः ॥ २०५ ॥
सकुरण्टकेन श्वेतातपत्रेण महीयसा । विराजमानः शिरसि, ह्रदेनेव हिमाचलः ॥ २०६ ॥
वीज्यमानोऽमरैश्चारुचामरैः पार्श्वयोर्द्वयोः । वेत्रिणेव विनीतेन, दत्तहस्तो बिडौजसा[7] ॥ २०७ ॥
हर्ष-शोकविमूढेन, सगरेण महीभुजा । अनुकूलानिलेनेवाऽन्वीयमानोऽश्रुवर्षिणा ॥ २०८ ॥
परितः पावयन् पादैः, स्थलाम्भोजनिभैर्भुवम् । सहस्रवाह्यामारोहच्छिबिकां सुप्रभां प्रभुः ॥ २०९ ॥
॥ सप्तभिः कुलकम् ॥

उदासे शिबिका पूर्वं, नरैर्विद्याधरैस्ततः । देवैस्तदनु खे खेट[8]विमानभ्रमदायिनी ॥ २१० ॥
तैरुत्क्षिप्ताऽम्बरतलेऽनुद्धात[9]गतिशालिनी । यानपात्रमिवाऽम्भोधौ, सा स्वामिशिबिका बभौ ॥ २११ ॥
तत्र सिंहासनासीनं, चामराभ्यां जगत्प्रभुम् । वीजयामासतुरुभौ, सौधर्मेशानवासवौ ॥ २१२ ॥
प्रचचाल जगन्नाथो, विनीतामध्यवर्त्मना । वरो वधूपाणिमिव, दीक्षामादातुमुत्सुकः ॥ २१३ ॥
चलन्तश्चलताडङ्का[10]श्चलहाराश्चलाञ्चलाः[11] । शिबिकावाहिनो रेजुश्चलाः कल्पद्रुमा इव ॥ २१४ ॥
काश्चन प्रस्खलन्तीषु, सदा सहचरीष्वपि । काश्चिद् वक्षःस्थलास्फालाद्धारेषु प्रत्रुटत्स्वपि ॥ २१५ ॥
अंसाद् विस्रंसमानेषूत्तरीयेष्वपि काश्चन । काश्चिच्छून्यीभवद्वारेष्वपि गेहाङ्गणेषु च ॥ २१६ ॥
काश्चिद् देशान्तरादिष्टातिथिष्वभ्यागतेष्वपि । पुत्रजन्मोत्सवे सद्यः, समुत्पन्नेऽपि काश्चन ॥ २१७ ॥
काश्चित् तत्कालमुद्वाहलग्नकालेऽप्युपस्थिते । काश्चन स्नानोपनतेष्वपि स्नानीयवस्तुषु ॥ २१८ ॥
गृहीताचमनाः काश्चिदर्धभुक्तेऽपि भोजने । काश्चिदर्धोपयुक्तेऽपि, कालप्राप्ते विलेपने ॥ २१९ ॥
कुण्डलादिष्वलङ्कारेष्वर्धामुक्तेषु[12] काश्चन । स्वामिनिष्क्रमणोदन्तेऽर्धश्रुतेऽपि हि काश्चन ॥ २२० ॥
धम्मिल्लान्तः[13] काश्चिदर्धबद्धे कुसुमदामनि । अधिभालस्थलं काश्चित्, तिलकेऽर्धकृतेऽपि हि ॥ २२१ ॥
गृहकर्तव्यमन्त्रेषु[14], काश्चिदर्धोदितेष्वपि । काश्चिदर्धकृतेष्वेव, नित्यनैमित्तिकेष्वपि ॥ २२२ ॥
सम्भ्रमात् पादचारेण, यानेषूपस्थितेष्वपि । उपेयुः स्वामिनं द्रष्टुं, पौर्यो भक्तिपवित्रिताः ॥ २२३ ॥
॥ नवभिः कुलकम् ॥

क्षणमग्रे क्षणं पृष्ठे, क्षणं चोभयपार्श्वयोः । यूथपस्येव[15] कलभाः, पौरास्तस्थुर्जगत्प्रभोः ॥ २२४ ॥
अट्टानारुरुहुः केचित्, कुट्टिमानि च केचन । प्रासादाग्राणि केचित् तु, मञ्चाग्राणि च केचन ॥ २२५ ॥
केऽपि प्राकारशृङ्गाणि, केऽपि द्रुशिखराणि च । केऽप्युच्चैः सिन्धुरस्कन्धान्[16], स्वामिदर्शनकाम्यया ॥२२६॥
॥ युग्मम् ॥

---

* षड्भिः कुलकम् सङ्घ १ सङ्घ ३॥ १ आर्द्रम् । २ मणिकारमुख्यः । ३ अदूषितानि । ४ धर्मरूपा वासना एव वसुर्यस्य सः । ५ ललाटे । ६ बन्दिजनैः । ७ इन्द्रेण । ८ देवविमानम् । ९ प्रतिघातवर्जितया गत्या राजमाना । १० चलकुण्डलाः । ११ चलवस्त्राञ्चलाः । १२ अर्धपरिहितेषु । १३ कबरीमध्ये । १४ गृहकार्यविचारेषु । १५ गजस्येव । १६ गजस्कन्धान ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अञ्चलांश्चालयामासुः, काश्चिच्चामरलीलया । लाजान् प्रचिक्षिपुः काश्चिद्धर्मबीजमिवाऽवनौ ॥ २२७ ॥
आरात्रिकं सप्तशिखं, काश्चिद् वह्निमिवोद्दधुः । पूर्णपात्राण्यधुः काश्चिद्, यशांसीव पुरः प्रभोः ॥ २२८ ॥
पूर्णकुम्भान् दधुः काश्चिन्मङ्गलानां निधीनिव । खे सन्ध्याभ्रनिभं चक्रुः, काश्चिद् वस्त्रावतारणम् ॥ २२९ ॥
मङ्गलानि जगुः काश्चिन्नृत्यन्ति स्म च काश्चन । रुचिरं जहसुः काश्चिन्मुदिताः पौरयोषितः ॥ २३० ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

व्योमापि व्यानशे भक्तैर्विद्याधर-सुरा-ऽसुरैः । इतस्ततो धावमानैः, सौपर्णेयकुलैरिव ॥ २३१ ॥
इन्द्राणां च चतुःषष्टेर्नाट्यानीकैरनेकशः । नाटकान्यभ्यनीयन्त, स्वाम्यग्रे धन्यमानिभिः ॥ २३२ ॥
सङ्गीतकानि गन्धर्वसैन्या अपि बिडौजसाम् । ओजायमाना युगपज्जायमानमुदो व्यधुः ॥ २३३ ॥
सगरानुजीविनोऽपि, जायाजीवाः पदे पदे । पात्रैर्विचित्रैर्नाट्यानि, दिविषत्स्पर्धया व्यधुः ॥ २३४ ॥
अयोध्यामण्डनं राजगन्धर्वरमणीजनाः । विश्वदृग्दृष्टिबन्ध(ध्न)न्ति, प्रेक्षणीयानि चक्रिरे ॥ २३५ ॥
तदा च दिव्यैर्भौमैश्च, नाट्य-सङ्गीतकस्वरैः । रोदःकुक्षिम्भरिरभूदुत्तालस्तुमुलध्वनिः ॥ २३६ ॥
अनेकनृप-सामन्त-महेभ्यानां प्रचारिणाम् । सम्मर्दत्रुटितैर्हारैरासन् शर्करिला भुवः ॥ २३७ ॥
दिव्यानामथ भौमानां, मत्तानां वरदन्तिनाम् । मदाम्भोभिरजायन्त, राजमार्गाश्च पङ्किलाः ॥ २३८ ॥
सुरा-ऽसुर-नरैः सर्वैर्मिलितैः स्वामिनोऽन्तिके । एकाधीशतया रेजे, त्रिलोक्यप्येकलोकवत् ॥ २३९ ॥
अत्यन्तदक्षिणो लोकदाक्षिण्येन जगत्पतिः । प्रतीयेष निरीहोऽपि, मङ्गलानि पदे पदे ॥ २४० ॥
सम्भूय गच्छतस्तत्र, सुरानपि नरानपि । समप्रसादया दृष्ट्याऽनुजग्राह जगद्गुरुः ॥ २४१ ॥
सुरा-ऽसुर-नरैरेवं, क्रियमाणमहोत्सवः । सहस्राम्रवणं नाम, प्रापोद्यानं क्रमात् प्रभुः ॥ २४२ ॥
कुसुमामोदमत्तालिश्रेणिदुःसञ्चरान्तरैः । परितः कृतवृतिकं, सन्ततैः केतकीद्रुमैः ॥ २४३ ॥
वैण्ठैरिव महेभ्यानां, नागराणां कुमारकैः । रिरंसुभिर्मार्ज्यमानमहीरुहलतान्तरम् ॥ २४४ ॥
मुहुः कुरुबका-ऽशोक-बकुलादिमहीरुहाम् । क्रीडाप्रसङ्गात् पौरीभिः, पूर्यमाणोरुदोहदम् ॥ २४५ ॥
विद्याधरकुमारैश्च, निषद्य पथिकैरिव । आचम्यमानसुस्वादुसारणीवारि कौतुकात् ॥ २४६ ॥
अभ्रंलिहेषु वृक्षेषु, कृतास्पदमनेकशः । क्रीडया खेचरद्वन्द्वैर्विहङ्गमिथुनैरिव ॥ २४७ ॥
परागैर्दिव्यकर्पूर-कस्तूरीक्षोदसोदरैः । अकर्कशैर्गुल्फदघ्नैर्विश्वक्सिकतिलावनि ॥ २४८ ॥
राजादन-नागरङ्ग-करुणक्ष्मारुहां तले । दुग्धेनोद्यानपालीभिः, पूर्यमाणालवालकम् ॥ २४९ ॥
विचित्रसन्दर्भविधौ, सस्पर्धाभिः परस्परम् । पुष्पैर्मालिकबालाभिरारब्धोद्दामदामकम् ॥ २५० ॥
दिव्यतल्पा-ऽऽसनामत्रेष्वपि सत्सु कुतूहलात् । शयाना-ऽऽसीन-भुञ्जानजनं रम्भादलेष्वलम् ॥ २५१ ॥
फलप्राग्भारभारावनम्रप्रालम्बमण्डलैः । चुम्ब्यमानावनितलं, विविधैरवनीरुहैः ॥ २५२ ॥
सहकाराङ्कुरास्वादादश्रान्तमवकोकिलम् । दाडिमास्वादनोन्मत्तशुककोलाहलाकुलम् ॥ २५३ ॥
एकच्छायं क्षितिरुहैर्वर्षाभ्रैरिव सन्ततैः । प्रविवेश तदुद्यानं, भगवानजितप्रभुः ॥ २५४ ॥
॥ द्वादशभिः कुलकम् ॥

ततश्च शिबिकारत्नादुत्ततार जगद्गुरुः । रथादिव रथी सिन्धुमुत्तरीतुं भवं स्वयम् ॥ २५५ ॥
उज्झाञ्चकार तदनु, रत्नालङ्करणादिकम् । रत्नत्रितयमादित्सुर्मुमुक्षुमुदामपि दुर्लभम् ॥ २५६ ॥
देवदूष्यं देवराजेनोपनीतमदूषितम् । सोपधिं धर्ममादेष्टुं, जगत्पतिरुपाददे ॥ २५७ ॥
कृतषष्ठतपा माघस्योज्ज्वले नवमीदिने । रोहिणिंऋक्षगे चन्द्रे, सप्तच्छदतरोस्तले ॥ २५८ ॥

१ गरुडसमूहैः । २ नर्तकाः । ३ शर्करायुक्ताः । ४ कृतवेष्टनम् । ५ विना यत्नेन कार्यकरा घण्टाः । ६ गुल्फप्रमाणैः । ७ मालाकारकन्याभिः । ८ अवकुष्टं कोकिलाभिः । ९ ज्ञानदर्शनचारित्ररूपम् । १० सप्तपर्णमिति भाषा । ११ नक्षत्रगे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सायाह्नयजितस्वामी, मुष्टिभिः पञ्चभिः कचान् । स्वयमुत्पाटयामास, रागादीनिव सर्वतः ॥ २५९ ॥
॥ युग्मम् ॥

सौधर्मेन्द्रः प्रतीयेषे, स्वोत्तरीयाञ्चलेन तान् । प्रसाददत्तार्थमिव, पुष्कलं वरिवस्यकः ॥ २६० ॥
सहस्राक्षः क्षणेनाऽपि, स्वामिनस्तान् शिरोरुहान् । क्षीरोदे प्राक्षिपत् पूजामिव सांयात्रिकः स्वयम् ॥२६१॥
तत्रैत्य वेगात् तुमुलं, सुरा-ऽसुर-नृणां हरिः । न्यषेधन्मुष्टिसंज्ञातो, मौनमन्त्रमिव स्मरन् ॥ २६२ ॥
कृत्वा सिद्धनमस्कारं, सामायिकमुदीरयन् । प्रभुश्चारित्रमारोहन्मोक्षमार्गमहारथम् ॥ २६३ ॥
सोदर्यमिव दीक्षाया, युग्मजातं तदैव हि । ज्ञानं तुरीयमुत्पेदे, मनःपर्ययमीशितुः ॥ २६४ ॥
अपि नारकजन्तूनां, क्षणं सुखमभूत् तदा । जगत्त्रये च प्रद्योत, उद्योत इव वैद्युतः ॥ २६५ ॥
नृपाः सहस्रं जगृहुस्ततो दीक्षामनुप्रभु । स्वामिपादानुगमनव्रतानामुचितं ह्यदः ॥ २६६ ॥

अथ प्रदक्षिणीकृत्य, जगन्नाथं प्रणम्य च । एवमारेभिरे स्तोतुमच्युताद्याः पुरन्दराः ॥ २६७ ॥
पटुभ्यासादरैः पूर्वं, तथा वैराग्यमाहरः । यथेहजन्मन्याजन्म, तत् सात्मीभावमागमत् ॥ २६८ ॥
दुःखहेतुषु वैराग्यं, न तथा नाथ ! निस्तुषम् । मोक्षोपायप्रवीणस्य, यथा ते सुखहेतुषु ॥ २६९ ॥
विवेकशाणैर्वैराग्यशस्त्रं शातं तथा त्वया । यथा मोक्षेऽपि तत् साक्षादकुण्ठितपराक्रमम् ॥ २७० ॥
यदा मरुन्नरेन्द्रश्रीस्त्वया नाथोपभुज्यते । यत्र तत्र रतिर्नाम, विरक्तत्वं तदापि ते ॥ २७१ ॥
नित्यं विरक्तः कामेभ्यो, यदा योगं प्रपद्यसे । अलमेभिरिति प्राज्यं, तदा वैराग्यमस्ति ते ॥ २७२ ॥
सुखे दुःखे भवे मोक्षे, यदौदासीन्यमीशिषे । तदा वैराग्यमेवेति, कुत्र नाऽसि विरागवान् ? ॥ २७३ ॥
दुःखगर्भे मोहगर्भे, वैराग्ये निष्ठिताः परे । ज्ञानगर्भं तु वैराग्यं, त्वय्येकायनतां गतम् ॥ २७४ ॥
औदासीन्येऽपि सततं, विश्वविश्वोपकारिणे । नमो वैराग्यनिघ्नाय, तायिने परमात्मने ॥ २७५ ॥

जगद्गुरुमिति स्तुत्वा, नमस्कृत्य च सामराः । तेऽमरस्वामिनो जग्मुर्द्वीपं नन्दीश्वरं ततः ॥ २७६ ॥
जन्माभिषेकवत् तत्र, पर्वतेष्वञ्जनादिषु । शाश्वतार्हत्प्रतिमाष्टाह्निकां शक्रादयो व्यधुः ॥ २७७ ॥
नाथं कदा नु भूयोऽपि, द्रक्ष्याम इति वादिनः । सदेवा देवपतयः, स्वं स्वं स्थानं ततो ययुः ॥ २७८ ॥

सगरोऽपि सभूपालः, प्रणम्य परमेश्वरम् । कृताञ्जलिर्गद्गदवागिति स्तोतुं प्रचक्रमे ॥ २७९ ॥
भगवन्नजितस्वामिन् !, विजयस्व जगद्गुरो ! । त्रैलोक्यपद्मिनीखण्डविकासनदिवाकर ! ॥ २८० ॥
मति-श्रुता-ऽवधि-मनःपर्ययैर्नाथ ! शोभसे । ज्ञानैश्चतुर्भिरुद्दामैरर्णवैरिव मेदिनी ॥ २८१ ॥
त्वं हेलयाऽपि कर्माणि, प्रोन्मूलयितुमीशिषे । अयं परिकरस्ते तु, लोकानां मार्गदर्शकः ॥ २८२ ॥
भगवन्नन्तरात्मा त्वं, मन्येऽहं सर्वदेहिनाम् । तेषामद्वैतसौख्याय, यतसे कथमन्यथा ? ॥ २८३ ॥
हित्वा कषायान् मलवत्, कृपाजलपरिप्लुतः । त्वमेवाऽसि विशुद्धात्मा, निर्लेपः पद्मपत्रवत् ॥ २८४ ॥
राज्येऽपि न्यायनिष्ठस्य, न स्वो न च परस्तव । प्रास्तावसरमेतत् तेऽधुना साम्यं किमुच्यते ? ॥ २८५ ॥
वितर्कयामि भगवन् !, दानं यद् वार्षिकं तव । त्रैलोक्याभयदानोरुनाटकस्याऽऽमुखं हि तत् ॥ २८६ ॥
धन्यास्ते विषया ग्रामा, नगर्यः पत्तनानि च । मलयानिलवद् यानि, प्रीणयन् विहरिष्यसे ॥ २८७ ॥
स्तुत्वेति स्वामिनं राजा, नमस्कृत्य च भक्तितः । मन्दं मन्दं ययौ बाष्पाक्लिन्ननेत्रो निजां पुरीम् ॥२८८॥

द्वितीयस्मिन् दिने स्वामी, ब्रह्मदत्तनृपौकसि । चकार षष्ठतपसः, परमान्नेन पारणम् ॥ २८९ ॥
ववृषुस्त्रिदशाः सार्धस्वर्णद्वादशकोटिकाम् । वसुधारां ब्रह्मदत्तनरेश्वरगृहाङ्गणे ॥ २९० ॥
उन्नमद्भाहवश्चेलाञ्चलानुच्चिक्षिपुः सुराः । अनिलान्दोलितलतापल्लवश्रीमलिम्लुचान् ॥ २९१ ॥

१ जग्राह । २ सेवकः । ३ सहजातम् । ४ उज्वलम् । ५ तीक्ष्णीकृतम् । ६ देवेन्द्राणां राज्ञां च श्रीः । ७ अतिशयितम् । ८ वैराग्याधीनाय । ९ रक्षित्रे । १० वितर्के । ११ क्रीडामात्रेण । १२ उपकरणम् । १३ प्रस्तावना ।

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

वेलाविलोलजलधिध्वानधीरध्वनिस्तथा । दध्वान दुन्दुभिर्व्योम्नि, सानन्दामरताडितः ॥ २९२ ॥
पर्यटत्स्वामियशसां, स्वेदवारिश्रमप्रदाम् । तत्र गन्धाम्बुवृष्टिं च, त्रिविष्टपसदो व्यधुः ॥ २९३ ॥
अन्वीयमानां परितो, मित्रैरिव मधुव्रतैः[2] । पञ्चवर्णपुष्पवृष्टिं, विदधुर्विबुधोत्तमाः ॥ २९४ ॥
अहो ! दानं महादानं, सुदानमिदमस्य हि । प्रभावात् तत्क्षणं दाता, भवत्यतुलवैभवः ॥ २९५ ॥
मुच्यते च भवेऽत्रैव, कश्चित् कश्चित् तृतीयके । द्वितीये कल्पातीतेषु, कल्पेषूत्पद्यतेऽथवा ॥ २९६ ॥
एवं कोलाहलं व्योम्नि, चक्रुर्मुदितचेतसः । दिवौकसो[1] जयजयारावपूर्वकमुच्चकैः ॥ २९७ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
दीयमानां प्रभोर्भिक्षां, ये प्रेक्षाञ्चक्रिरे जनाः । नीरोगास्ते समभवन्, वपुषा निर्जरा इव ॥ २९८ ॥
ब्रह्मदत्तनृपगृहाद्, भगवान् कृतपारणः । वारणः[3] सरसः पीतपानीय इव निर्ययौ ॥ २९९ ॥
मास कश्चिदतिक्रामत्, पदानीति प्रभोः पदे । ब्रह्मदत्तनृपस्तत्र, पीठं रत्नैरकारयत् ॥ ३०० ॥
ब्रह्मदत्तनृपः पीठं, त्रिसन्ध्यं कुसुमादिभिः । पूजयामास तत्रस्थं, मन्यमानो जिनेश्वरम् ॥ ३०१ ॥
चर्चा-कुसुम-वस्त्राद्यैः, पीठे तस्मिन्नपूजिते । आत्तवेल[4] इव स्वामिन्यभुक्ते न ह्यभुक्त च ॥ ३०२ ॥
भगवानप्रतिबद्धगमनः पवमानवत्[5] । अखण्डितेर्यासमितिर्विजहार वसुन्धराम् ॥ ३०३ ॥
प्रतिलाभ्यमानः क्वचित्, प्रासुकैः पायसादिभिः । चर्च्यमानपदाम्भोजः, क्वाऽपि हृद्यैर्विलेपनैः ॥ ३०४ ॥
प्रतीक्ष्यमाणः कुत्राऽपि, श्राद्धवन्दारुदारकैः[6] । अन्वीयमानः कुत्राऽपि, दर्शनातृप्तिभिर्जनैः ॥ ३०५ ॥
लोकैः क्वचित् क्रियमाणवस्त्रोत्तारणमङ्गलः । कुत्रचिद् दीयमानार्घो, दधि-दूर्वा-ऽक्षतादिभिः ॥ ३०६ ॥
स्ववेश्मनयनायोपरोध्यमानः क्वचिज्जनैः । क्वाऽपि भूलुठनागच्छज्जनेन प्रस्खलद्गतिः ॥ ३०७ ॥
मृज्यमानपदाम्भोजः, श्राद्धैः क्वाऽपि शिरोरुहैः । आदेशं याच्यमानश्च, मुग्धधीभिः क्वचिज्जनैः ॥३०८॥
निर्ग्रन्थो निर्ममोऽनीहः, स्वामी ग्रामान् पुराणि च । तीर्थीकुर्वन् स्वसंसर्गाद्, विजहार वसुन्धराम् ॥३०९॥
॥ षड्भिः कुलकम् ॥
घूकघूत्कारघोरेषु, स्फारफेत्कारफेरुषु[7] । फणिफूत्काररौद्रेषु, मार्यदुत्क्रोशदोतुषु[8] ॥ ३१० ॥
रटद्रुककरालेषु, चमूरु[9]त्क्रूरवृत्तिषु । शार्दूलकुलबूत्कार[10]प्रकारप्रतिनादिषु ॥ ३११ ॥
महेभभज्यमानद्रुविद्रुत[11]द्रोण[12]राविषु । सिंहपुच्छच्छटाच्छोटस्फोट्यमानाश्मभूमिषु ॥ ३१२ ॥
शरभो[13]त्पिष्टदन्तीन्द्रकीकसा[14]कुलवर्त्मसु । मृगयाव्यग्रशबरधनुर्नादानुनादिषु ॥ ३१३ ॥
भल्लूक[15]कर्णग्रहणव्यग्रभिल्लार्भकेषु च । अन्योऽन्यतरुशाखाग्रसङ्घर्षोच्छलदग्निषु ॥ ३१४ ॥
महागिरि-महारण्येष्वपि ग्राम-पुरेष्विव । निष्प्रकम्पमनाः कामं, व्यहार्षीदजितप्रभुः ॥ ३१५ ॥
॥ षड्भिः कुलकम् ॥
भूतलालोकमात्रेण, जायमानजनभ्रमौ । कदाचन गिरेर्मूर्ध्नि, शृङ्गान्तर[16]मिव स्थिरः ॥ ३१६ ॥
उत्फालमर्कटकुलभज्यमानास्थिसन्धिनि । कदाचन महासिन्धुरोधःसीमनि वृक्षवत् ॥ ३१७ ॥
क्रीडदुत्तालवेताल-पिशाच-प्रेतसङ्कुले । वात्यावर्तितधूलीके, श्मशाने च कदाचन ॥ ३१८ ॥
रौद्रेभ्योऽपि हि रौद्रेषु, स्थानेष्वन्येष्वपि प्रभुः । कायोत्सर्गं निसर्गैकधीरो व्यधित लीलया ॥ ३१९ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥
तपश्चतुर्थं कदाचित्, तपः षष्ठं कदाचन । तपोऽष्टमं कदाचिच्च, कदाऽपि दशमं तपः ॥ ३२० ॥
अन्यदा द्वादशतपश्चतुर्दशतपोऽन्यदा । अन्यदा षोडशतपस्तपोऽष्टादशमन्यदा ॥ ३२१ ॥

---

१ देवाः । २ भ्रमरैः । ३ गजः । ४ प्रतीक्षमाणः । ५ वायुवत् । ६ श्रावकाणां वन्दनशीलैः पुत्रैः । ७ शृगालः । ८ बिडालः । ९ मृगविशेषः । १० गर्जना । ११ उड्डीनः । १२ काकः । १३ अष्टापदः । १४ अस्थि । १५ ऋक्षः । १६ अन्यच्छिखरमिव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकदा मासिकं च द्विमासिकं च त्रिमासिकम् । चतुः-पञ्च-षण्मासिकान्यप्यथो सप्तमासिकम् ॥ ३२२ ॥
तपोऽष्टमासिकं यावद्, भगवानजितप्रभुः । विदधे विहरन्नार्यदेशेष्वक्षीणशक्तिकः ॥ ३२३ ॥
॥ *चतुर्भिः कलापकम् ॥
ललाटन्तपत[1]पनातपे ग्रीष्मऋतावपि । नाऽऽचकाङ्क्ष तरुच्छायामपि देहेऽपि निःस्पृहः ॥ ३२४ ॥
पतत्तुहिनसम्भारप्लुष्यमाणतरावपि । हेमन्ततौं प्रभुर्नैच्छद्, दीप्तपित्त इवाऽऽतपम् ॥ ३२५ ॥
झञ्झानिलोल्वणैर्धारासारैरपि पयोमुचाम् । [2]मतङ्गजो वारिचर, इव नोद्विविजे विभुः ॥ ३२६ ॥
परीषहानेवमन्यानपि सेहे सुदुःसहान् । सर्वंसहो धरणिवद्, धरणीतिलकः प्रभुः ॥ ३२७ ॥
उग्रैस्तपोभिर्विविधैर्विविधाभिग्रहैरपि । परीषहसहोऽब्दानि, द्वादशाऽलङ्घयत् प्रभुः ॥ ३२८ ॥
खड्गीव स्वाम्यनासीनः, खड्गिशृङ्गमिवैककः । सुमेरुरिव निष्कम्पः, पञ्चानन इवाऽभयः ॥ ३२९ ॥
वायुरिवाऽप्रतिबद्धो, भुजङ्गम इवैकदृक् । वह्निना काञ्चनमिव, तपसाऽतिशयानरुक् ॥ ३३० ॥
वृतिभिर्वरशाखीव, तिसृभिर्गुप्तिभिर्वृतः । समितीः पञ्च बिभ्राणो, धन्वी हस्त(स्ते) शरानिव ॥ ३३१ ॥
आज्ञा-ऽपाय-विपाकानां, संस्थानस्य च चिन्तनात् । ध्यायंश्चतुर्विधं ध्येयं, ध्येयरूपः स्वयं विभुः ॥३३२॥
प्रतिग्रामं प्रतिपुरं, प्रत्यरण्यं च पर्यटन् । समाययावुपवनं, सहस्राम्रवणं क्रमात् ॥ ३३३ ॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥
तत्र च्छत्रायमाणस्य, सप्तच्छदतरोस्तले । [3]तत्प्रकाण्डमिवाऽकम्पस्तस्थौ प्रतिमया प्रभुः ॥ ३३४ ॥
अप्रमत्तसंयताख्यगुणस्थानात् तदा विभुः । अपूर्वकरणं भेजे, गुणस्थानकमष्टमम् ॥ ३३५ ॥
श्रौतादर्थाद् व्रजन् शब्दं, शब्दादर्थं व्रजन् ययौ । नानात्वश्रुतवीचारं, शुक्लध्यानमथाऽऽदिमम् ॥३३६॥
अनिवृत्तिबादराख्यं, परिणामानिवृत्तिकृत् । आरुरोह गुणस्थानं, ततश्च नवमं विभुः ॥ ३३७ ॥
अथ लोभकषायस्य, किट्टीकरणतो ययौ । सूक्ष्मसम्परायं नाम, गुणस्थानं [4]नवोत्तरम् ॥ ३३८ ॥
अनन्तवीर्यस्त्रिजगत्सर्वकर्मक्षयक्षमः । क्षीणमोहं गुणस्थानं, प्राप मोहस्य सङ्क्षयात् ॥ ३३९ ॥
गुणस्थानस्य चैतस्य, द्वादशस्यान्तिमे क्षणे । एकत्वश्रुतमीशोऽगाच्छुक्लध्यानं द्वितीयकम् ॥ ३४० ॥
त्रिजगद्विषयं ध्यानेनाऽमुनाऽणौ दधौ मनः । सर्वाङ्गीणं विषं [5]दंशे, मन्त्रेणेव जगत्प्रभुः ॥ ३४१ ॥
अपनीतेन्धनभरः, शेषस्तोकेन्धनोऽनलः । ज्वलितो निर्वाति यथा, [6]निर्वाणं तन्मनस्तथा ॥ ३४२ ॥
ततश्च तस्मिन् ध्यानाग्नौ, दीप्यमाने जिनेशितुः । हिमानीव व्यलीयन्त, घातिकर्माणि सर्वतः ॥ ३४३ ॥
अथ पौषस्य शुक्लैकादश्यां चन्द्रेऽधिरोहिणि । स्वामिनः कृतषष्ठस्योत्पेदे केवलमुज्ज्वलम् ॥ ३४४ ॥
ईक्षाञ्चक्रे जगन्नाथस्त्रिकालविषयानपि । त्रैलोक्यवर्तिनो भावान्, [7]करोत्सङ्गगतानिव ॥ ३४५ ॥
उत्पन्ने स्वामिनो ज्ञाने, स्वाम्यवज्ञाभयादिव । सौधर्माधिपतेः सद्यः, सिंहासनमकम्पत ॥ ३४६ ॥
तत्कारणज्ञानकृते, प्रायुङ्क्त मघवाऽवधिम् । रज्जुं जलाशयपयोमानं ज्ञातुमना इव ॥ ३४७ ॥
स्वामिनः केवलज्ञानमुत्पन्नमिति वासवः । अज्ञासीदवधिज्ञानाद्, दीपालोकात् पदार्थवत् ॥ ३४८ ॥
रत्नसिंहासनं रत्नपादुके च पुरन्दरः । उज्झाञ्चकार बलवत्, स्वाम्यवज्ञाभयं सताम् ॥ ३४९ ॥
ददौ पदानि सप्ताऽष्टान्यर्हद्दिक्सम्मुखं हरिः । गीतार्थः शिष्य इवाऽनुज्ञापितावग्रहावनौ ॥ ३५० ॥
सव्यं किञ्चिन्नयञ्च जानुं, दक्षिणेन च जानुना । पाणिभ्यां शिरसा च क्ष्मां, स्पृशन्ननमदद्रिभित् ॥३५१॥
समुत्थाय व्यपक्रम्य, भूयोऽपि [8]बलसूदनः । सिंहासनमलञ्चक्रे, गिरीन्द्रमिव केसरी ॥ ३५२ ॥
पुरुहूतः समाहूताशेषदेवः क्षणादपि । ऋद्ध्या महत्या भक्त्येव, जिनेन्द्राभ्यर्णमाययौ ॥ ३५३ ॥

* सङ्ख ३ एव वर्त्तते । १ सूर्यः । २ हस्ती । ३ वृक्षकाण्डम् । ४ दशममित्यर्थः । ५ दंशस्थाने । ६ शान्तम् ।
७ हस्तमध्यगतान् । ८-९ इन्द्रः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वेऽन्येऽप्यासनकम्पाद्, विज्ञातस्वामिकेवलाः । अहम्पूर्विकयेवेयुः, सममिन्द्रा जिनान्तिके ॥ ३५४ ॥
क्षेत्रे योजनमात्रे च, देवा वायुकुमारकाः । अपनिन्युः शर्करादि, ते यदत्राऽधिकारिणः ॥ ३५५ ॥
तत्र गन्धाम्बुवृष्टिं च, सुरा मेघकुमारकाः । रजोमात्रप्रशमनीं, शरद्दृष्टिनिभां व्यधुः ॥ ३५६ ॥
स्वर्ण-रत्नशिलास्तोमैर्मसृणैस्तन्महीतलम् । बबन्धुर्बन्धुरतरं, चैत्यमध्यमिवाऽमराः ॥ ३५७ ॥
स्मेराणि जानुदघ्नानि, पञ्चवर्णान्यृतुश्रियः । ववृषुस्तत्र पुष्पाणि, प्रत्यूषपवना इव ॥ ३५८ ॥
अन्तः कृत्वा मणिस्तूपं, परितस्तमधो व्यधुः । रौप्यं भवनपतयो, वप्रं रैकपिशीर्षकम् ॥ ३५९ ॥
वप्रं द्वितीयं ज्योतिष्काः, सरत्नकपिशीर्षकम् । विदधुः काञ्चनैरात्मज्योतिर्भिरिव पिण्डितैः ॥ ३६० ॥
प्राकारं चोपरितनं, वैमानिकदिवौकसः । रत्नैर्विरचयाञ्चक्रुर्माणिक्यकपिशीर्षकम् ॥ ३६१ ॥
वप्रे वप्रे च चत्वारि, जगत्यामिव जज्ञिरे । मनोविश्रामधामानि, चारुद्वाराणि तत्र च ॥ ३६२ ॥
पत्रैर्मारकतैरासन्, द्वारे द्वारे च तोरणाः । अम्बरे विचरच्चारुश्रेणीभूतशुकोपमाः ॥ ३६३ ॥
तोरणानुभयतश्च, कुम्भा मुखकृताम्बुजाः । न्यास्यन्त सिन्धूरभितश्चक्रा इव दिनात्यये ॥ ३६४ ॥
द्वारे द्वारेऽभवद् वापी, काञ्चनाम्भोजशालिनी । स्वच्छ-स्वादुपयःपूर्णा, मङ्गल्यकलशोपमा ॥ ३६५ ॥
धूपघट्यः प्रतिद्वारं, हैम्यो मुमुचिरेऽमरैः । धूपधूमैर्मारकतांस्तन्वन्त्यस्तोरणानिव ॥ ३६६ ॥
प्राकारे मध्यमे पूर्वोदीच्यां दिशि दिवौकसः । देवच्छन्दं विदधिरे, स्वामिविश्रामहेतवे ॥ ३६७ ॥
तृतीयवप्रमध्योर्व्यां, चैत्यद्रुं व्यन्तरा व्यधुः । चतुर्दशधनुःशत्याऽधिकां गव्यूतिमुन्नतम् ॥ ३६८ ॥
ततः सिंहासनं देवच्छन्दकं चामरे अपि । छत्रत्रयं च रुचिरं, चक्रिरे व्यन्तरामराः ॥ ३६९ ॥
इत्थङ्कारं च समवसरणं विदधेऽमरैः । भवत्रस्तैकशरणं, हरणं निखिलापदाम् ॥ ३७० ॥
ततो जयजयारावकारिभिर्मागधैरिव । अमरैः कोटिसङ्ख्यातैः, परितः परिवारितः ॥ ३७१ ॥
सुरसञ्चार्यमाणेषु, सौवर्णेष्वम्बुजन्मसु । नवसु क्रमशो न्यस्य, पादाम्भोजे जगत्पतिः ॥ ३७२ ॥
प्रविश्य पूर्वद्वारेण, चैत्यवृक्षप्रदक्षिणाम् । चकाराऽऽवश्यकविधिर्ह्यलङ्घ्यो महतामपि ॥ ३७३ ॥
नमस्तीर्थायेति गिरा, कृत्वा तीर्थनमस्क्रियाम् । तत्र सिंहासने पूर्वाभिमुखो न्यषदत् प्रभुः ॥ ३७४ ॥
स्वामिनः प्रतिरूपाणि, दिक्ष्वन्यास्वपि तत्क्षणम् । विचक्रुर्व्यन्तरास्ते हि, शेषकर्माधिकारिणः ॥ ३७५ ॥
स्वामिरूपानुरूपाणि, तान्यासंस्तत्प्रभावतः । तादृंशि स्वामिबिम्बानि, न ते कर्तुं स्वयं क्षमाः ॥ ३७६ ॥
पृष्ठे भामण्डलं धर्मचक्र-शक्रध्वजौ पुरः । दिवि दुन्दुभिनादश्च, प्रादुरासंस्तदा क्षणात् ॥ ३७७ ॥
पूर्वद्वाराऽविशन् साधु-साध्वी-वैमानिकस्त्रियः । त्रिश्च प्रदक्षिणीकृत्य, नेमुस्त्रिभुवनेश्वरम् ॥ ३७८ ॥
पूर्वदक्षिणदिश्यासाञ्चक्रिरे तत्र साधवः । तत्पृष्ठे तस्थुरूर्द्ध्वास्तु, वैमानिक्योऽथ संयताः ॥ ३७९ ॥
अपाग्द्वारैत्य भवनेश-ज्योति-र्व्यन्तरस्त्रियः । प्रभुं प्रदक्षिणीकृत्योर्द्ध्वं नैर्ऋत्यां क्रमात् स्थिताः ॥ ३८० ॥
प्रत्यग्द्वारैत्य भवनेश-ज्योति-र्व्यन्तराः प्रभुम् । नत्वा प्रदक्षिणापूर्वं, वायव्ये न्यषदन् क्रमात् ॥ ३८१ ॥
प्रविश्योदीच्यद्वारेण, सेन्द्रा वैमानिकाः प्रभुम् । नत्वा प्रदक्षिणापूर्वमैशान्यां न्यषदन् क्रमात् ॥ ३८२ ॥
नाथं भूयो नमस्कृत्य, शक्रो विरचिताञ्जलिः । भक्त्या रोमाञ्चितवपुः, स्तोतुमित्युपचक्रमे ॥ ३८३ ॥
सर्वाभिमुख्यतो नाथ !, तीर्थकृन्नामकर्मजात् । सर्वेषां सम्मुखीनस्त्वमानन्दयसि यत् प्रजाः ॥ ३८४ ॥
यद् योजनप्रमाणेऽपि, धर्मदेशनसद्मनि । सम्मान्ति कोटिशस्तिर्यग्नृ-देवाः सपरिच्छदाः ॥ ३८५ ॥
तेषामेव स्वस्वभाषापरिणाममनोहरम् । अप्येकरूपं वचनं, यत् ते धर्मावबोधकृत् ॥ ३८६ ॥
साग्रेऽपि योजनशते, पूर्वोत्पन्ना गदाम्बुदाः । यदञ्जसा विलीयन्ते, त्वद्विहारानिलोर्मिभिः ॥ ३८७ ॥

१ स्निग्धैः । २ विकसितानि । ३ जानुप्रमाणानि । ४ ऋत्वधिष्ठायिका देव्यः । ५ मणिपीठम् । ६ सुवर्णमयकपिशीर्षकम् । ७ जम्बूद्वीपस्य दुर्गे । ८ नदीः । ९ पद्मेषु । १० साध्व्यः । ११ दक्षिणद्वारेण । १२ पश्चिमद्वारेण । १३ व्याधय एव मेघाः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाविर्भवन्ति यद् भूमौ, मूषिकाः शलभाः शुकाः । क्षणेन क्षितिपक्षिप्ता, अनीतय इवेतयः ॥ ३८८ ॥
स्त्री-क्षेत्र-पेंद्रादिभवो, यद् वैराग्निः प्रशाम्यति । त्वत्कृपापुष्करावर्तवर्षादिव भुवस्तले ॥ ३८९ ॥
त्वत्प्रभावे भुवि भ्राम्यत्यशिवोच्छेदडिण्डिमे । सम्भवन्ति न यन्नाथ !, मारयो भुवनारयः ॥ ३९० ॥
कामवर्षिणि लोकानां, त्वयि विश्वैकवत्सले । अतिवृष्टिरवृष्टिर्वा, भवेद् यन्नोपतापकृत् ॥ ३९१ ॥
स्वराष्ट्र-परराष्ट्रेभ्यो, यत् क्षुद्रोपद्रवा द्रुतम् । विद्रवन्ति त्वत्प्रभावात्, सिंहनादादिव द्विपाः ॥ ३९२ ॥
यत् क्षीयते च दुर्भिक्षं, क्षितौ विहरति त्वयि । सर्वाद्भुतप्रभावाढ्ये, जङ्गमे कल्पपादपे ॥ ३९३ ॥
यन्मूर्ध्नः पश्चिमे भागे, जितमार्त्तण्डमण्डलम् । मा भूद् वपुर्दुरालोकमितीवोत्पिण्डितं महः ॥ ३९४ ॥
स एष योगसाम्राज्यमहिमा विश्वविश्रुतः । कर्मक्षयोत्थो भगवन् !, कस्य नाऽऽश्चर्यकारणम् ? ॥ ३९५ ॥
अनन्तकालप्रचितमनन्तमपि सर्वथा । त्वत्तो नाऽन्यः कर्मकक्षमुन्मूलयति मूलतः ॥ ३९६ ॥
तथोपाये प्रवृत्तस्त्वं, क्रियासमभिहारतः । यथाऽनिच्छन्नुपेयस्य, परां श्रियमशिश्रियः ॥ ३९७ ॥
मैत्रीपवित्रपात्राय, मुदितामोदशालिने । कृपोपेक्षाप्रतीक्ष्याय, तुभ्यं योगात्मने नमः ॥ ३९८ ॥
इतश्च समवसृतं, जिनेन्द्रमजितप्रभुम् । उद्यानपालका गत्वाऽऽचख्युः सगरचक्रिणे ॥ ३९९ ॥
प्रभोः समवसरणोदन्तेन मुमुदे तथा । चक्रवर्ती चक्ररत्नोत्पत्तावपि यथा न हि ॥ ४०० ॥
तेभ्यश्च तपनीयस्य, सार्धा द्वादशकोटयः । भूभुजा परितुष्टेन, ददिरे पारितोषिके ॥ ४०१ ॥
ततः स्नात्वा कृतप्रायश्चित्त-कौतुकमङ्गलः । उदाराकाररत्नालङ्कारस्त्रिदशराडिव ॥ ४०२ ॥
दृढीकृतस्कन्धहारः, कराभ्यां नर्तयन् सृणिम् । सगरः कुञ्जरवरमासन्यारोहदग्रिमे ॥ ४०३ ॥ युग्मम् ॥
कुम्भिकुम्भस्थलेनोच्चेनाऽऽनाभि च्छन्नविग्रहः । अर्धोदित इवाऽऽदित्यो, दिद्युते मेदिनीपतिः ॥ ४०४ ॥
दिग्मुखप्रसृतैः शङ्ख-दुन्दुभिप्रभृतिस्वनैः । एयुः सैन्याः सुघोषादिघण्टाघोषैरिवाऽमराः ॥ ४०५ ॥
राज्ञां मुकुटबद्धानां, सहस्रैः परिवारितः । विरेजे वैक्रियानेकरूपधारीव चक्रभृत् ॥ ४०६ ॥
मूर्धाभिषिक्तमूर्धन्यो, मूर्ध्नि च्छत्रेण पाण्डुना । अशोभिष्ट नभोगङ्गावर्त्तभ्रमविधायिना ॥ ४०७ ॥
पार्श्वतः सञ्चरिष्णुभ्यां, चामराभ्यामरोचत । सगरश्चन्द्रबिम्बाभ्यामिव काञ्चनपर्वतः ॥ ४०८ ॥
वाजिभिः स्वर्णसन्नाहैः, स्वर्णपक्षैः खगैरिव । रथैस्तुङ्गध्वजस्तम्भैः, पोतैरिव सकूपकैः ॥ ४०९ ॥
क्षरन्मदैर्गजवरैः, शैलैरिव सनिर्झरैः । उदस्त्रैः पत्तिभिः सिन्धुतरङ्गैरिव सोरगैः ॥ ४१० ॥
परितश्छादयन्नुर्वीमुर्वीपतिरथ द्रुतम् । आससाद सहस्राम्रवणोपवनसन्निधिम् ॥ ४११ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
उद्यानद्वारसौवर्णवेद्यां सगरभूपतिः । उत्ततार द्विपात् तस्मान्मानादिव महामुनिः ॥ ४१२ ॥
उज्झाञ्चकार सगरः, स्वं छत्रं चामरे अपि । अप्यन्यराज्यचिह्नानि, विनीतानां क्रमो ह्ययम् ॥ ४१३ ॥
पादाभ्यां न ह्यलञ्चक्रे, विनयादप्युपानहौ । हस्तावलम्बनमपि, वेत्रिदत्तमुपैक्षत ॥ ४१४ ॥
ततः समवसरणाभ्यर्णे सगरभूपतिः । पद्भ्यां चलितवान् पौरनर-नारीगणैः समम् ॥ ४१५ ॥
उदग्द्वारेण समवसरणं प्राविशत् तदा । नृपो मकरसङ्क्रान्तौ, व्योमाङ्गणमिवाऽर्यमा ॥ ४१६ ॥
तत्र प्रदक्षिणीकृत्य, त्रिर्नत्वा च जगद्गुरुम् । सगरः स्तोतुमारेभे, सुधामधुरया गिरा ॥ ४१७ ॥
मिथ्यादृशां युगान्तार्कः, सुदृशाममृताञ्जनम् । तिलकं तीर्थकृल्लक्ष्म्याः, पुरश्चक्रं तवैधते ॥ ४१८ ॥
एकोऽयमेव जगति, स्वामीत्याख्यातुमुच्छ्रिता । उच्चैरिन्द्रध्वजव्याजात्, तर्जनी जम्भविद्विषा ॥ ४१९ ॥

१ क्षेत्रपाकविघ्नकरा उपद्रवाः । २ ग्रामः । ३ व्याधयः । ४ कर्मैव कक्षं वनम् । ५ प्रमोदभावनामोदशोभिताय । ६ कृपा-माध्यस्थ्ययोः मुख्याय । ७ सुवर्णस्य । ८ अङ्कुशम् । ९ मूर्धाभिषिक्ता राजानस्तेषां मुख्यः । १० प्रवहणैः । ११ ससर्पैः । १२ नम्राणाम् । १३ इन्द्रेण ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत्र पादौ पदं धत्तस्तव तत्र सुरा-ऽसुराः । किरन्ति पङ्कजव्याजाच्छ्रियं पङ्कजवासिनीम् ॥ ४२० ॥
दान-शील-तपो-भावभेदाद् धर्मं चतुर्विधम् । मन्ये युगपदाख्यातुं, चतुर्वक्त्रोऽभवद् भवान् ॥ ४२१ ॥
त्वयि दोषत्रयात् त्रातुं, प्रवृत्ते भुवनत्रयीम् । प्राकारत्रितयं चक्रुस्त्रयेऽपि त्रिदिवौकसः ॥ ४२२ ॥
अधोमुखाः कण्टकाः स्युर्धात्र्यां विहरतस्तव । भवेयुः सम्मुखीनाः किं, तामसास्तिग्मरोचिषः[1] ? ॥४२३॥
केश-रोम-नख-श्मश्रु, तवाऽवस्थितमित्ययम्[2] । बाह्योऽपि योगमहिमा, नाऽऽप्तस्तीर्थकरैः परैः ॥ ४२४ ॥
शब्द-रूप-रस-स्पर्श-गन्धाख्याः पञ्च गोचराः[3] । भजन्ति प्रातिकूल्यं न, त्वदग्रे तार्किका इव ॥ ४२५ ॥
त्वत्पादावृतवः सर्वे, युगपत् पर्युपासते । आकालकृतकन्दर्पसाहायकभयादिव ॥ ४२६ ॥
सुगन्ध्युदकवर्षेण, दिव्यपुष्पोत्करेण च । भावित्वत्पादसंस्पर्शां, पूजयन्ति भुवं सुराः ॥ ४२७ ॥
जगत्प्रतीक्ष्य[4] ! त्वां यान्ति, पक्षिणोऽपि प्रदक्षिणाम् । का गतिर्महतां तेषां, त्वयि ये वामवृत्तयः[5] ? ॥४२८॥
पञ्चेन्द्रियाणां दौःशील्यं, क्व भवेद् भवदन्तिके ? । एकेन्द्रियोऽपि यन्मुञ्चत्यनिलः प्रतिकूलताम् ॥४२९॥
मूर्ध्ना नमन्ति तरवस्त्वन्माहात्म्यचमत्कृताः । तत् कृतार्थं शिरस्तेषां, व्यर्थं मिथ्यादृशां पुनः ॥ ४३० ॥
जघन्यतः कोटिसङ्ख्यास्त्वां सेवन्ते सुरा-ऽसुराः । भाग्यसम्भारलभ्येऽर्थे, न मन्दा अप्युदासते ॥ ४३१ ॥
भगवन्तमिति स्तुत्वाऽपक्रम्य विनयक्रमात् । पृष्ठे मघवतस्तस्थौ, नर-नारीगणश्च सः ॥ ४३२ ॥
इत्थं समवसरणस्योर्द्ध्ववप्रान्तरावनौ । तस्थौ चतुर्विधः सङ्घो, ध्यानस्थ इव भक्तितः ॥ ४३३ ॥
द्वितीयवप्रमध्ये तु, भुजङ्ग-नकुलादयः । तिर्यञ्चोऽस्थुस्त्यक्तवैरा, मित्राणीव परस्परम् ॥ ४३४ ॥
तृतीयवप्रमध्ये च, स्वामिसेवार्थमेयुषाम् । सुरा-ऽसुर-मनुष्याणां, वाहनान्यवतस्थिरे ॥ ४३५ ॥
अथाऽऽयोजनगामिन्या, सर्वभाषास्पृशा गिरा । भगवानजितस्वामी, प्रारेभे धर्मदेशनाम् ॥ ४३६ ॥
असावसारः संसारः, सारबुद्ध्याऽवबुध्यते । काचो वैडूर्यबुद्ध्येव, धिगहो ! मुग्धबुद्धिभिः ॥ ४३७ ॥
प्रतिक्षणभवैर्देहभाजां विविधकर्मभिः । संवर्ध्यते च संसारः, पादपो दोहदैरिव ॥ ४३८ ॥
कर्माभावेन संसाराभावो न्यायभवः खलु । कर्मध्वंसाय सुधिया, यतितव्यं ततः सदा ॥ ४३९ ॥
कर्मध्वंसः शुभध्यानात्, तच्च ध्यानं चतुर्विधम् । आज्ञा-ऽपाय-विपाकानां, संस्थानस्य च चिन्तनात् ॥४४०॥
आज्ञा स्यादाप्तवचनं, सा द्विधैव व्यवस्थिता । आगमः प्रथमा तावद्धेतुवादोऽपरा पुनः ॥ ४४१ ॥
शब्दादेव पदार्थानां, प्रतिपत्तिकृदागमः[6] । प्रमाणान्तरसंवादाद्धेतुवादो निगद्यते ॥ ४४२ ॥
द्वयोरप्यनयोस्तुल्यं, प्रामाण्यमविगानतः[7] । अदुष्टकारणारब्धं, प्रमाणमिति लक्षणात् ॥ ४४३ ॥
दोषा राग-द्वेष-मोहाः, सम्भवन्ति न तेऽर्हति । अदुष्टहेतुसम्भूतं, तत् प्रमाणं वचोऽर्हताम् ॥ ४४४ ॥
नय-प्रमाणसंसिद्धं, पौर्वापर्याविरोधि च । अप्रतिक्षेप्यम[8]परैर्बलिष्ठैरपि शासनैः ॥ ४४५ ॥
अङ्गोपाङ्ग-प्रकीर्णादिबहुभेदापगाम्बुधि । अनेकातिशयप्राज्यसाम्राज्यश्रीविभूषितम् ॥ ४४६ ॥
सुदुर्लभं दूरभव्यैर्भव्यैस्तु सुलभं भृशम् । गणिपिटकतयोच्चैर्नित्यं स्तुत्यं नरा-ऽमरैः ॥ ४४७ ॥
इमामाज्ञां समालम्ब्य, स्याद्वादन्याययोगतः । द्रव्य-पर्यायरूपेण, नित्या-ऽनित्येषु वस्तुषु ॥ ४४८ ॥
स्वरूप-पररूपाभ्यां, सदसद्रूपशालिषु । यः स्थिरप्रत्ययो ध्यानं, तदाज्ञाविचयाह्वयम् ॥ ४४९ ॥
अस्पृष्टजिनमार्गाणामविज्ञातपरात्मनाम् । अपरामृष्टा[9]यतीनामपायाः स्युः सहस्रशः ॥ ४५० ॥
माया-मोहा-ऽन्धतमसविवशीकृतचेतसा । किं किं नाऽकारि कलुषं ?, कस्कोऽपायोऽप्यत्रापि न ? ॥४५१॥
यद् यद् दुःखं नारकेषु, तिर्यक्षु मनुजेषु च । मयाऽप्रापि प्रमादोऽयं, ममैव हि विचेतसः ॥ ४५२ ॥
प्राप्याऽपि परमां बोधिं, मनो-वाक्कायकर्मजैः । दुश्चेष्टितैर्मयैवाऽऽत्मशिरसि ज्वालितोऽनलः ॥ ४५३ ॥

१ सूर्यस्य । २ वृद्धिरहितम् । ३ इन्द्रियविषयाः । ४ हे जगत्पूज्य ! । ५ प्रतिकूलवृत्तयः । ६ प्रतिपादकः । ७ अविरोधितया । ८ अबाध्यम् । ९ अविचारितोत्तरकालानाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वाधीने मुक्तिमार्गेऽपि, कुमार्गपरिमार्गणैः । अहो ! आत्मंस्त्वयैवैष, स्वात्माऽपायेषु पातितः ॥४५४॥
यथा ग्रामेऽपि सौराज्ये, भिक्षां भ्राम्यति बालिशः[1] । आत्मायत्ते तथा मोक्षे, भवाय भ्रान्तवानसि ॥४५५॥
एवं राग-द्वेष-मोहैर्जायमानान् विचिन्तयेत् । यत्राऽपायांस्तदपायविचयध्यानमिष्यते ॥ ४५६ ॥
विपाकः फलमाम्नातः[2], कर्मणां स शुभा-ऽशुभः । द्रव्य-क्षेत्रादिसामग्र्या, चित्ररूपोऽनुभूयते ॥ ४५७ ॥
शुभस्तत्राङ्गना-माल्य-खाद्यादिद्रव्यभोगतः । अशुभस्त्वहि-शस्त्रा-ऽग्नि-विषादिभ्योऽनुभूयते ॥ ४५८ ॥
क्षेत्रे सौध-विमानोपवनादौ वसनाच्छुभः । श्मशान-जाङ्गला-ऽरण्यप्रभृतावशुभः पुनः ॥ ४५९ ॥
काले त्वशीतला-ऽनुष्णे, वसन्तादौ रतेः शुभः । उष्णे शीते ग्रीष्म-हेमन्तादौ भ्रमणतोऽशुभः ॥ ४६० ॥
मनःप्रसाद-सन्तोषादिभावेषु शुभो भवेत् । क्रोधा-ऽहङ्कार-रौद्रत्वादिभावेष्वशुभः पुनः ॥ ४६१ ॥
सुदेवत्व[3]-भोगभूमिमनुष्यादिभवे शुभः । कुमर्त्य-तिर्यग्नरकादिभवेष्वशुभः पुनः ॥ ४६२ ॥
अपि च—[*]उदय-क्षय-क्षयोपशमोपशमाः कर्मणां भवन्त्यत्र । द्रव्यं क्षेत्रं कालं, भावं च भवं च सम्प्राप्य॥४६३॥
इति द्रव्यादिसामग्रीयोगात् कर्माणि देहिनाम् । स्वं स्वं फलं प्रयच्छन्ति, तानि त्वष्टैव तद्यथा ॥४६४॥
जन्तोः सर्वज्ञरूपस्य, ज्ञानमाव्रियते सदा । येन चक्षुः पटेनेव, ज्ञानावरणकर्म तत् ॥ ४६५ ॥
मति-श्रुता-ऽवधि-मनःपर्यायाः केवलं तथा । पञ्चाऽऽव्रियन्ते ज्ञानानीत्येता ज्ञानावृतेर्भिदः[4] ॥ ४६६ ॥
पञ्च निद्रा दर्शनानां, चतुष्कस्याऽऽवृतिश्च या । दर्शनावरणीयस्य[5], विपाकः कर्मणः स तु ॥ ४६७ ॥
यथा दिदृक्षुः स्वामी स्वं, प्रतीहारनिरोधतः । न पश्यति तथाऽऽत्माऽपि, येन दृष्ट्यावृतिस्तु तत् ॥४६८॥
मधुलिप्तासिधाराग्रास्वादाभं वेद्यकर्म यत् । सुख-दुःखानुभवनस्वभावं तत् प्रकीर्तितम् ॥ ४६९ ॥
सुरापाणसमं प्राज्ञा, मोहनीयं प्रचक्षते । यदनेन विमूढात्मा, कृत्या-ऽकृत्येषु मुह्यति ॥ ४७० ॥
तत्राऽपि दृष्टिमोहाख्यं, मिथ्यादृष्टिविपाककृत् । चारित्रमोहनीयं तु, विरतिप्रतिषेधकम् ॥ ४७१ ॥
नृ-तिर्यङ्नारका-ऽमर्त्यभेदादायुश्चतुर्विधम् । स्वस्वजन्मनि जन्तूनां, धारकं गुप्ति[6]सन्निभम् ॥ ४७२ ॥
गति-जात्यादिवैचित्र्यकारि चित्रकरोपमम् । नामकर्म विपाकोऽस्य, शरीरेषु शरीरिणाम् ॥ ४७३ ॥
उच्चैर्नीचैर्भवेद् गोत्रं, कर्मोच्चैर्नीचगोत्रकृत् । क्षीरभाण्ड-सुराभाण्डभेदकारि कुलालवत् ॥ ४७४ ॥
दानादिलब्धयो येन, न फलन्ति विबाधिताः । तदन्तरायं कर्म स्याद्, भाण्डागारिक[7]सन्निभम् ॥ ४७५ ॥
इति मूलप्रकृतीनां, विपाकांस्तान् विचिन्वतः । विपाकविचयं नाम, धर्मध्यानं प्रवर्तते ॥ ४७६ ॥
अनाद्यन्तस्य लोकस्य, स्थित्युत्पत्ति-व्ययात्मनः । आकृतिं चिन्तयेद् यत्र, संस्थानविचयः स तु ॥४७७॥
कटिस्थकरवैशाख[8]स्थानकस्थनराकृतिः । द्रव्यैः पूर्णः स तु लोकः, स्थित्युत्पत्ति-व्ययात्मकैः ॥ ४७८ ॥
वेत्रासनसमोऽधस्तान्मध्यतो झल्लरीनिभः । अग्रे मुरज[9]सङ्काशो, लोकः स्यादेवमाकृतिः ॥ ४७९ ॥
स च त्रिजगदाकीर्णो, भुवः सप्ताऽत्र वेष्टिताः । घनाम्भोधि-घनवात-तनुवातैर्महाबलैः ॥ ४८० ॥
जगत्रयं त्वधस्तिर्यगूर्ध्वलोकविभेदतः । अधस्तिर्यगूर्ध्वभावो, रुचकापेक्षया पुनः ॥ ४८१ ॥
मेर्वन्तर्गोस्तनाकारचतुर्व्योमप्रदेशकः । रुचकोऽधस्तादूर्ध्व[10]मेवमष्टप्रदेशकः ॥ ४८२ ॥
तिर्यग्लोकस्तु रुचकस्योपरिष्टादधोऽपि च । योजनानां नव नव, शतानि भवति स्फुटम् ॥ ४८३ ॥
तिर्यग्लोकस्य त्वधस्तादधोलोकः प्रतिष्ठितः । नवयोजनशत्यूनसप्तरज्जुप्रमाणकः ॥ ४८४ ॥
तत्राऽधोभागमासाद्याधोऽधःस्थाः सप्त भूमयः । यासु नारक[11]षण्ढानां, निवासाः सन्ति भीषणाः ॥ ४८५ ॥
रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमःप्रभाः । महातमःप्रभा चाऽऽसां, बाहल्ये[12] लक्षयोजनी ॥ ४८६ ॥

---

१ मूर्खः । २ कथितः । ३ सुदेवत्वे भोगस्थानभूते मनुष्यादिभवे च । * इदं आर्यावृत्तम् । ४ ज्ञानावरणस्य भेदाः । ५ दर्शनावरणम् । ६ कारागृहसमानम् । ७ कोशागारिकतुल्यम् । ८ दधिमथकस्यासनभेदः । ९ मृदङ्गसदृशः । १० तादृक् चतुःप्रदेश इत्यर्थः । ११ जैनागमेषु नारकाणां नपुंसकत्वं स्वीकृतमित्येवं प्रयोगः । १२ स्थूलत्वे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशीतिर्द्वात्रिंशदष्टाविंशतिर्विंशतिस्तथा । अष्टादश षोडशाऽष्टौ, सहस्राश्च क्रमेण तु ॥ ४८७ ॥
रत्नप्रभाभुवोऽधोऽधः, क्रमात् पृथुतराश्च ताः । त्रिंशल्लक्षाणि नरकावासानां प्रथमावनौ ॥ ४८८ ॥
पञ्चविंशतिलक्षाणि, द्वितीयनरकावनौ । तृतीयायां पञ्चदश, तुरीयायां पुनर्दश ॥ ४८९ ॥
पञ्चम्यां त्रीणि पञ्चोनं, लक्षं षष्ठ्यां पुनर्भुवि । पञ्चैव नरकावासाः, सप्तम्यां नरकावनौ ॥ ४९० ॥
भुवां रत्नप्रभादीनामधस्ताच्च घनाब्धयः । मध्योत्सेधे योजनानां, सहस्राणि तु विंशतिः ॥ ४९१ ॥
तदधस्ताद् घनवाता, मध्योत्सेधे भवन्ति तु । योजनानामसङ्ख्यानि, सहस्राणि घनाब्धितः ॥ ४९२ ॥
तनुवातास्त्वसङ्ख्यानि, तानि स्युर्घनवाततः । आकाशं तनुवातेभ्योऽप्यसङ्ख्येयानि तानि च ॥ ४९३ ॥
मध्योत्सेधादमुष्मात् तु, हीयमानाः क्रमेण च । घनाम्भोध्यादयः प्रान्ते, वलयाकारधारिणः ॥ ४९४ ॥
रत्नप्रभाया मेदिन्याः, परिधिस्थितिशालिनः । घनाम्भोधिवलयस्य, विष्कम्भो योजनानि षट् ॥ ४९५ ॥
महावातस्य वलयविष्कम्भे योजनानि तु । सार्धानि चत्वारि तनुवायोः सार्धं तु योजनम् ॥ ४९६ ॥
रत्नप्रभाया वलयमानस्योपरि जायते । शर्कराया घनाम्भोधौ, त्रिभागो योजनस्य तु ॥ ४९७ ॥
महावाते च गव्यूतमेकं भवति निश्चितम् । गव्यूतस्य तृतीयांशस्तनुवातेऽपि वर्धते ॥ ४९८ ॥
शर्करावलयमानस्योपरि क्षेप एष च । तृतीयपृथ्वीवलयविष्कम्भेष्वपि जायते ॥ ४९९ ॥
एवं च प्राक्प्राग्वलयमानोर्द्धं क्षेप एष च । सप्तमीं पृथिवीं यावद्, वलयेषु विधीयते ॥ ५०० ॥
घनाम्भोधि-महावाता-ऽल्पवातवलयानि तु । स्वस्वपृथ्वीगतोत्सेधसमोत्सेधानि सर्वतः ॥ ५०१ ॥
इत्थं च भूमयः सप्त, घनाम्भोध्यादिधारिताः । तास्वेव नरकावासा, भोगस्थानं कुकर्मणाम् ॥ ५०२ ॥
यातना-रुक्शरीरा-ऽऽयु-र्लेश्या-दुःख-भयादिकम् । वर्धमानं विनिश्चेयमधोऽधःश्वभ्रभूमिषु ॥ ५०३ ॥
अथ रत्नप्रभाभूमेर्बाहल्ये जायते खलु । योजनानां लक्षमेकं, सहस्राशीतिसंयुतम् ॥ ५०४ ॥
त्यक्त्वा योजनसहस्रमेकमूर्द्धमधोऽपि च । तदन्तः सन्ति भवनपतीनां भवनानि तु ॥ ५०५ ॥
ते च भवनपतयो, दक्षिणोत्तरयोर्दिशोः । श्रेणीद्वयेन तिष्ठन्ति, राजमार्गेऽट्टपङ्क्तिवत् ॥ ५०६ ॥
तत्र चूडामणिचिह्ना, असुरा भवनाधिपाः । नागाः पुनः फणाचिह्ना, विद्युतो वज्रलाञ्छनाः ॥५०७॥
सुपर्णा गरुडचिह्ना, घटचिह्नाश्च वह्नयः । अश्वाङ्का वायवो वर्धमानाङ्काः स्तनिताः पुनः ॥५०८॥
मकराङ्का उदधयो, द्वीपाः केसरिलाञ्छनाः । भवन्ति दिक्कुमारास्तु, सर्वे कुञ्जरलाञ्छनाः ॥ ५०९ ॥
तत्राऽसुराणां द्वाविन्द्रौ, चमरो बलिरित्यपि । धरणो भूतानन्दश्च, नागानां तु पुरन्दरौ ॥ ५१० ॥
इन्द्रौ विद्युत्कुमाराणां, हरिर्हरिसहस्तथा । वेणुदेवो वेणुदारी, सुपर्णानां तु वासवौ ॥ ५११ ॥
ईशावग्निकुमाराणामग्निशिखा-ऽग्निमाणवौ । इन्द्रौ वायुकुमाराणां, वेलम्बोऽथ प्रभञ्जनः ॥५१२
सुघोषोऽथ महाघोषः, स्तनितानां तु वासवौ । इन्द्रावब्धिकुमाराणां, जलकान्त-जलप्रभौ ॥५१३॥
पूर्णो वशिष्ठश्च द्वीपकुमाराणामधीश्वरौ । अधिपौ दिक्कुमाराणाममिता-ऽमितवाहनौ ॥ ५१४ ॥
रत्नप्रभाया उपरि, योजनानां सहस्रतः । उपरिष्टादधस्ताच्च, त्यक्त्वैकां शतयोजनीम् ॥ ५१५ ॥
वसन्ति योजनशतेष्वष्टस्वष्टविधाः खलु । दक्षिणोत्तरयोः श्रेण्योर्व्यन्तराणां निकायकाः ॥ ५१६ ॥
पिशाचव्यन्तरास्तत्र, कदम्बतरुलाञ्छनाः । भूताः सुलसवृक्षाङ्का, यक्षास्तु वटलाञ्छनाः ॥ ५१७ ॥
राक्षसास्तु खट्वाङ्काङ्का, अशोकाङ्कास्तु किन्नराः । चम्पकाङ्काः किम्पुरुषा, नागद्र्वङ्का महोरगाः ॥५१८॥
गन्धर्वव्यन्तराश्चान्तुम्बुरुद्रुमलाञ्छनाः । तत्र काल-महाकालौ, पिशाचानामधीश्वरौ ॥ ५१९ ॥
सुरूपोऽप्रतिरूपश्च, भूतानामाधिपौ पुनः । यक्षाणां पूर्णभद्रश्च, माणिभद्रश्च वासवः ॥ ५२० ॥

१ रत्नप्रभावनौ । २ नरकभूमिषु । ३ वर्द्धमानं सम्पुटकः पुरुषारूढपुरुषो वा । ४ मेघकुमाराः । ५ नागद्रो• नागवृक्षस्य अङ्कं चिह्नं येषां ते नागद्र्वङ्काः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राक्षसानां पुनर्भीमो, महाभीमश्च नायकः । किन्नराणामधीशौ किन्नर-किम्पुरुषौ पुनः ॥ ५२१॥
तथा सत्पुरुष-महापुरुषौ किम्पुरुषपौ । अतिकाय-महाकायौ, महोरगपुरन्दरौ ॥ ५२२ ॥
गन्धर्वाणां प्रभुर्गीतरतिर्गीतयशा अपि । इत्थङ्कारं व्यन्तराणां, तत्रेन्द्राः सन्ति षोडश ॥ ५२३ ॥
रत्नप्रभायाः प्रथमे, योजनानां शते तथा । योजनानि परित्यज्य, दशाऽधो दश चोपरि ॥ ५२४ ॥
सन्त्यशीतौ योजनेषु, व्यन्तराष्टनिकायकाः । तत्राऽप्रज्ञप्तिकः पञ्चप्रज्ञप्तिर्ऋषिवादितः ॥ ५२५ ॥
भूतवादितः क्रन्दितो, महाक्रन्दित एव च । कूष्माण्डः पवकश्चेति, तेषु द्वौ द्वौ पुरन्दरौ ॥५२६॥
सन्निहितः समानश्च, तथा धातृ-विधातृकौ । ऋषिश्च ऋषिपालश्च, तथेश्वर-महेश्वरौ ॥५२७॥
सुवत्सक-विशालौ च, हास-हासरती तथा । तथा श्वेत-महाश्वेतौ, पवकः पवकाधिपः ॥५२८॥
रत्नप्रभातलादूर्द्ध्वं, योजनानां शतेषु च । अष्टासु दशहीनेषु, ज्योतिष्काणामधस्तलम् ॥ ५२९ ॥
तदूर्द्ध्वं दशयोजन्यां, सूर्यः सूर्यस्य चोपरि । भवत्यशीतियोजन्याः, प्रान्ते तुहिनदीधितिः ॥ ५३० ॥
ततो विंशतियोजन्याः, प्रान्ते तारा ग्रहा इति । बाहल्ये योजनशतं, ज्योतिर्लोको दशोत्तरम् ॥ ५३१ ॥
एकविंशैर्योजनानामत्रैकादशभिः शतैः । द्वीपस्य जम्बूद्वीपस्य, मेरुशैलमसंस्पृशत् ॥ ५३२ ॥
आस्थितं मण्डलिकया, दिक्षु सर्वासु सन्ततम् । ज्योतिश्चक्रं बम्भ्रमीति, ध्रुव एकस्तु निश्चलः ॥ ५३३ ॥
योजनानामेकादशशतैरेकादशोत्तरैः । लोकान्तमस्पृशत् तद्धि, मण्डलेनाऽवतिष्ठते ॥ ५३४ ॥
अत्र सर्वोपरि स्वातिः, सर्वेषां भरणी त्वधः । सर्वेभ्यो दक्षिणो मूलोऽभीचिः सर्वोत्तरः पुनः ॥ ५३५ ॥
तत्र जम्बूद्वीपेऽमुष्मिन्, द्वौ चन्द्रौ द्वौ च भास्करौ । लवणोदे च चत्वारश्चन्द्रा दिनकरास्तथा ॥५३६॥
द्वादश धातकीखण्डे, चन्द्रा द्वादश भानवः । कालोदे द्विचत्वारिंशच्चन्द्रा दिनकरास्तथा ॥ ५३७ ॥
द्वासप्ततिः पुष्करार्धे, चन्द्राश्च रवयोऽपि च । एवं द्वात्रिंशमिन्दूनां, शतं दिनकृतां तथा ॥ ५३८ ॥
एकस्यैकस्य चन्द्रस्य, जायते च परिग्रहः । अष्टाशीतिर्ग्रहाश्चैव, भान्यष्टाविंशतिस्तथा ॥ ५३९ ॥
षट्षष्टिश्च सहस्राणि, तथा नव शतानि च । तारकाकोटिकोटीनां, पञ्चसप्ततिरेव च ॥ ५४० ॥
इन्दोर्विमानं विष्कम्भा-ऽऽयामयोर्योजनस्य तु । एकषष्ट्यंशीकृतस्य, स्युः षट्पञ्चाशदंशकाः ॥ ५४१ ॥
अष्टचत्वारिंशदंशा, विमाने तु विवस्वतः । योजनार्धं ग्रहाणां तु, भानां गव्यूतमेककम् ॥ ५४२ ॥
सर्वोत्कृष्टायुपस्तारकायाः क्रोशार्धमेव तु । सर्वजघन्यायुष्कायाः, पञ्च धन्वशतानि तु ॥ ५४३ ॥
पिण्डः सर्वत्र दैर्घ्यार्धं, मर्त्यक्षेत्रे भवन्ति ते । पञ्चचत्वारिंशल्लक्षयोजनप्रमिते खलु ॥ ५४४ ॥
पुरः सिंहा दक्षिणतो, गजा अपरतो वृषाः । उत्तरतोऽश्वाश्चन्द्रादिविमानवाहनान्यमी ॥ ५४५ ॥
ते चाऽऽभियोगिकाश्चन्द्रांश्वोः सहस्राणि षोडश । ग्रह-नक्षत्र-ताराणामष्टौ चत्वार्युभे क्रमात् ॥ ५४६ ॥
चन्द्रादीनां गतिजुषां, स्वरसेनैव सन्ततम् । वाहनत्वेनाऽवतिष्ठन्त्याभियोग्येन कर्मणा ॥ ५४७ ॥
मानुषोत्तरपरतो, योजनानां सहस्रकैः । पञ्चाशतेन्दवोऽर्काश्च, तिष्ठन्त्यन्तरिता मिथः ॥ ५४८ ॥
मनुष्यक्षेत्रचन्द्रा-ऽर्कमानादर्धप्रमाणकाः । क्रमशः क्षेत्रपरिधिवृद्ध्या वर्धिष्णुसङ्ख्यकाः ॥ ५४९ ॥
सुलेश्या ग्रह-नक्षत्र-तारकापरिवारिताः । सङ्क्याविवर्जिता एवं, घण्टाकारमनोहराः ॥ ५५० ॥
स्वयम्भूरमणाम्भोधिमवधीकृत्य ते सदा । तिष्ठन्ति योजनलक्षान्तरिताभिश्च पङ्क्तिभिः ॥ ५५१ ॥
मध्यलोके जम्बूद्वीप-लवणाद्याः शुभाभिधाः । द्विगुणद्विगुणाभोगा, असङ्ख्या द्वीप-सागराः ॥ ५५२ ॥
पूर्वपूर्वपरिक्षेपकतो वलयसन्निभाः । अन्त्यः स्वयम्भूरमणो, नाम्ना तेषां महोदधिः ॥ ५५३ ॥
जम्बूद्वीपान्तरे मेरुः, काञ्चनस्थालवर्तुलः । अधो योजनसहस्रमवगाढो महीतले ॥ ५५४ ॥

१ चन्द्रः । २ परिवारः । ३ नक्षत्राणि । ४ सूर्यस्य । ५ नक्षत्राणाम् । ६ स्थूलत्वम् । ७ चन्द्र-सूर्ययोः । ८ पूर्व-पूर्वद्वीप-समुद्रपरिवृताः एकान्तरिता द्वीप-समुद्राः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवनवतिं योजनसहस्राणि समुच्छ्रितः । योजनानां सहस्राणि, भूतले दश विस्तृतः ॥ ५५५ ॥
एकं योजनसहस्रमुपरिष्टाच्च विस्तृतः । त्रिकाण्डश्च त्रिभिर्लोकैः, प्रविभक्तवपुश्च सः ॥ ५५६ ॥
शुद्धपृथ्वी-ग्राव-वज्र-शर्कराबहुलं खलु । एकं योजनसहस्रं, सुमेरोः काण्डमादिमम् ॥ ५५७ ॥
जातरूप-स्फटिका-ऽङ्क-रजतैर्बहुलावनि । योजनानां सहस्राणि, त्रिषष्टिस्तु द्वितीयकम् ॥ ५५८ ॥
षट्त्रिंशच्च तृतीयं तु, जाम्बूनदशिलामयम् । वैडूर्यरत्नबहुला, चूलिका तस्य शोभना ॥ ५५९ ॥
चत्वारिंशद्योजनानि, पुनस्तस्याः समुच्छ्रये । मूलविष्कम्भमाने तु, तस्या द्वादशयोजनी ॥ ५६० ॥
अष्टौ तन्मध्यविष्कम्भे, चत्वार्युपरिविस्तृतौ । मेरोर्मूले भद्रशालं, वनं वलयसन्निभम् ॥ ५६१ ॥
भद्रशालात् पञ्चशतयोजन्यामधिमेखलम् । नन्दनं विस्तृतं पञ्च, योजनानां शतानि तु ॥ ५६२ ॥
सार्धद्विषष्टिसहस्रयोजनेष्वथ तादृशम् । मेखलायां द्वितीयस्यां, तावत् सौमनसं वनम् ॥ ५६३ ॥
वनात् सौमनसात् षट्त्रिंशद्योजनसहस्रतः । भवेदूर्ध्वं तृतीयस्यां, मेखलाभुवि सुन्दरम् ॥ ५६४ ॥
चतुर्नवत्यग्रचतुःशतयोजनविस्तृतम् । वलयाकारमुद्यानं, मेरोः शिरसि पाण्डकम् ॥ ५६५ ॥
जम्बूद्वीपे त्विह द्वीपे, सप्त वर्षाणि भारतम् । हैमवतं हरिवर्षं, विदेहं रम्यकं तथा ॥ ५६६ ॥
हैरण्यवतैरवते, अमून्या दक्षिणोत्तरम् । विभागकारिणोऽमीषाममी वर्षधराद्रयः ॥ ५६७ ॥
हिमवन्महाहिमवन्निषधा नील-रुक्मिणौ । शिखरी चेति मूलोर्ध्वतुल्यविस्तारशालिनः ॥ ५६८ ॥
तत्राऽवगाढो मेदिन्यां, पञ्चविंशतियोजनीम् । हेममयोऽद्रिर्हिमवानुच्छ्रितः शतयोजनीम् ॥ ५६९ ॥
महाहिमवदद्रिस्तद्द्विगुणोऽर्जुननिर्मितः । ततोऽपि द्विगुणस्तापनीयो निषधपर्वतः ॥ ५७० ॥
नीलस्तु निषधतुल्यो, गिरिर्वैडूर्यनिर्मितः । महाहिमवता तुल्यो, रुक्मी रजतनिर्मितः ॥ ५७१ ॥
तापनीयस्तु शिखरी, समो हिमवदद्रिणा । सर्वेऽपि पार्श्वभागेषु, विचित्रमणिशालिनः ॥ ५७२ ॥
सहस्रयोजनायामस्तदर्धेन तु विस्तृतः । अद्रौ क्षुद्रहिमवति, पद्मनामा महाह्रदः ॥ ५७३ ॥
महाहिमवदद्रौ तु, महापद्माभिधो ह्रदः । विद्यते पद्महृदतो, द्विगुणायाम-विस्तृतिः ॥ ५७४ ॥
महापद्मात् तु द्विगुणस्तिगिञ्छिर्निषधे ह्रदः । तिगिञ्छितुल्यो नीलाद्रौ, ह्रदः केसरिसंज्ञकः ॥ ५७५ ॥
महापुण्डरीको महापद्मतुल्यस्तु रुक्मिणि । पद्मतुल्यः पुण्डरीकह्रदः शिखरिपर्वते ॥ ५७६ ॥
विकस्वराणि तिष्ठन्ति, पद्मादिषु ह्रदेषु तु । कमलान्यवगाढानि, जलान्तर्दशयोजनीम् ॥ ५७७ ॥
श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्यायुषोऽत्र तु । सामानिकपार्षद्याऽऽत्मरक्षानीकयुताः क्रमात् ॥ ५७८ ॥
तत्र च भरतक्षेत्रे, गङ्गा-सिन्धू महापगे । रोहिता-रोहितांशे तु, क्षेत्रे हैमवताभिधे ॥ ५७९ ॥
हरिद्धरिकान्ता नद्यौ, वर्षे तु हरिवर्षके । महाविदेहेषु शीता-शीतोदे सरिदुत्तमे ॥ ५८० ॥
नरकान्ता-नारीकान्ते, क्षेत्रे रम्यकनामनि । स्वर्णकूला-रूप्यकूले, हैरण्यवतवर्षके ॥ ५८१ ॥
नद्यौ तु रक्ता-रक्तोदे, क्षेत्र ऐरवताभिधे । आद्याः पूर्वाब्धिगामिन्यो, द्वितीयाः पश्चिमाब्धिगाः ॥ ५८२ ॥
आपगानां सहस्रैस्तु, चतुर्दशभिरुत्तमैः । गङ्गा-सिन्धु महानद्यौ, प्रत्येकं परिवारिते ॥ ५८३ ॥
द्विगुणद्विगुणनदीवृते द्वे द्वे परे अपि । यावच्च शीता-शीतोदे, उत्तरा दक्षिणोपमाः ॥ ५८४ ॥
प्रत्येकं ते पुनः शीता-शीतोदे परिवारिते । द्वात्रिंशत्सहस्राधिकैर्नदीलक्षैस्तु पञ्चभिः ॥ ५८५ ॥
भरतोरुत्वे षड्विंशा, पञ्चयोजनशत्यथ । एकोनविंशत्यंशस्य, योजनस्य षडंशकाः ॥ ५८६ ॥
ततो द्विगुणद्विगुणविष्कम्भाश्च यथोत्तरम् । विदेहान्ता वर्षधराचल-वर्षा भवन्ति तु ॥ ५८७ ॥
उत्तरे वर्षधराद्रि-वर्षास्तुल्यास्तु दक्षिणैः । वर्षधराद्रि-वर्षाणां, प्रमाणमिदमेव हि ॥ ५८८ ॥

---

१ उच्चत्वे । २ मेखलायाम् । ३ श्वेतसुवर्णनिर्मितः । ४ सुवर्णमयः । ५ जलमध्ये दशयोजनपर्यन्तमवगाह्य स्थितानि । ६ महानद्यौ । ७ भरतस्य पृथुत्वे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निषधाद्रेरुत्तरतो, मेरोर्दक्षिणतोऽपि च । विद्युत्प्रभ-सौमनसौ, गिरी पश्चिम-पूर्वकौ ॥ ५८९ ॥
गजदन्ताकृती मूर्ध्ना, स्तोकादस्पृष्टमेरुकौ । अनयोरन्तरे देवकुरवो भोगभूमयः ॥ ५९० ॥
तद्विष्कम्भो योजनानामेकादश सहस्रकाः । द्विचत्वारिंशदधिका, योजनाष्टशती तथा ॥ ५९१ ॥
तत्र च शीतोदाभिन्नह्रदपञ्चकपार्श्वतः । स्वर्णशैला दश दश, ते मिथो मीलनाच्छतम् ॥ ५९२ ॥
तत्र नद्याः शीतोदायाः, पूर्वापरतटस्थितौ । शैलौ विचित्रकूटश्च, चित्रकूटश्च नामतः ॥ ५९३ ॥
तयोः सहस्रमुत्सेधे[1], योजनानामधोऽपि च । तावानेव हि विस्तारस्तदर्धं चोर्ध्वविस्तृतौ ॥ ५९४ ॥
मेरोरुत्तरतो नीलगिरेर्दक्षिणतो गिरी । गजदन्ताकृती गन्धमादनो माल्यवानपि ॥ ५९५ ॥
तयोरन्तः शीताभिन्नह्रदपञ्चकपार्श्वगैः । स्वर्णशैलैः शतेनाऽतिरम्याः कुरव उत्तराः ॥ ५९६ ॥
तेषु नद्याश्च शीतायास्तटयोर्यमकाभिधौ । सौवर्णौ विचित्रकूट-चित्रकूटसमौ गिरी ॥ ५९७ ॥
देवोत्तरकुरुभ्यः प्राक्[2], प्राग्विदेहाः[3] स्मृताश्च ते । पश्चिमेऽपरविदेहा, मिथः क्षेत्रान्तरोपमाः ॥५९८॥
परस्परमसञ्चारा, विभक्ताः सरिदद्रिभिः । चक्रिविजेया[4] विजयास्तेषु षोडश षोडश ॥ ५९९ ॥
तत्र कच्छो महाकच्छः, सुकच्छः कच्छवानपि । आवर्तो मङ्गलावर्तः, पुष्कलः पुष्कलावती ॥
प्राग्विदेहोत्तरा ह्येते, दक्षिणास्त्वथ वत्सकः । सुवत्सोऽथ महावत्सो, रम्यवान् रम्य-रम्यकौ ॥
रमणीयो मङ्गलवानथाऽपरविदेहगाः । पद्मः सुपद्मोऽथ महापद्मः पद्मावती तथा ॥ ६०२ ॥
शङ्खः कुमुद-नलिने, नलिनवांश्च दक्षिणाः । वप्रः सुवप्रोऽथ महावप्रो वप्रावती तथा ॥६०३॥
अथ वल्गुः सुवल्गुश्च, गन्धिला गन्धिलावती । अपरेषु विदेहेषूत्तरस्था विजया अमी ॥ ६०४ ॥
मध्ये च भरतस्याऽपागुत्तरार्धविभागकृत् । वैताढ्याद्रिः प्रागपरपयोधी[5] यावदायतः ॥ ६०५ ॥
षड् योजनानि सक्रोशान्युर्व्यां मग्नः स विस्तृतः । पञ्चाशतं योजनानि, तदर्धं पुनरुच्छ्रितः ॥ ६०६ ॥
भूमितो दशयोजन्यां, दक्षिणोत्तरपार्श्वयोः । तत्र विद्याधरश्रेण्यौ, दशयोजनविस्तृते ॥ ६०७ ॥
तत्राऽपाच्यां[6] सराष्ट्राणि, पञ्चाशन्नगराणि तु । उत्तरस्यां पुनः षष्टिर्विद्याधरमहीभुजाम् ॥ ६०८ ॥
ऊर्ध्वं विद्याभृच्छ्रेणिभ्यां, दशयोजन्यनन्तरम् । उभे च व्यन्तरश्रेण्यौ, व्यन्तरावासशोभिते ॥ ६०९ ॥
उपरि व्यन्तरश्रेण्योर्योजनेषु तु पञ्चसु । कूटानि नव वैताढ्य, ईदृगैरवतेऽपि हि ॥ ६१० ॥
प्राकारभूता द्वीपस्य, जम्बूद्वीपस्य तिष्ठति । जगती वज्रमय्यष्टौ, योजनानि समुच्छ्रिता ॥ ६११ ॥
तस्याश्च मूले विष्कम्भमाने द्वादशयोजनी । मध्यभागे योजनानि, चाऽष्टौ चत्वारि मूर्धनि ॥ ६१२ ॥
तदूर्ध्वं जालकटको, गव्यूतद्वितयोच्छ्रयः । विद्याधराणामाक्रीडस्थानमेकं मनोहरम् ॥ ६१३ ॥
ततोऽपि जालकटकादूर्ध्वं पद्मवराभिधा । विद्यते वेदिका रम्या, भोगभूमिर्दिवौकसाम् ॥ ६१४ ॥
तस्या जगत्याः पूर्वादिदिक्षु द्वाराणि च क्रमात् । विजयं वैजयन्तं च, जयन्तमपराजितम् ॥६१५॥
अस्ति च क्षुद्रहिमवन्महाहिमवदन्तरे । शब्दापातीनामधेयाद्, वृत्तवैताढ्यपर्वतः ॥ ६१६ ॥
शैलस्तु विकटापाती, मध्ये शिखरि-रुक्मिणोः । गन्धापाती पुनर्महाहिमवन्निषधान्तरे॥६१७॥
माल्यवानन्तराले च, शैलयोर्नील-रुक्मिणोः । सर्वेऽपि पल्याकृतयः, सहस्रयोजनोच्छ्रयाः ॥ ६१८ ॥
जम्बूद्वीपपरिक्षेपी, विस्तारे द्विगुणस्ततः । अवगाहो योजनानां, सहस्रमवनीतले ॥ ६१९ ॥
पञ्चनवतियोजनसहस्रीं च क्रमात् क्रमात् । उभयतोऽप्युच्छ्रयेण, वर्धमानजलस्तथा ॥ ६२० ॥
मध्ये च योजनदशसहस्रीप्रमविस्तृतौ । योजनानां सहस्राणि, षोडशोच्छ्रयवच्छिखः ॥ ६२१ ॥
कालद्वये तदुपरि, गव्यूतद्वितयावधि । ह्रास-वृद्धिधरो नाम्ना, लवणोदः पयोनिधिः ॥ ६२२ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

१ उच्चत्वे । २ पूर्वस्यां दिशि । ३ पूर्वविदेहाः । ४ चक्रिणा विजेतुं योग्याः । ५ पूर्वपश्चिमसमुद्रौ । ६ दक्षिणस्याम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वादिदिक्षु तत्रान्तः, प्रमाणे लक्षयोजनाः । वडवामुख-केयूप-यूपकेश्वरसंज्ञकाः ॥ ६२३ ॥
सहस्रयोजनीमानवज्रनिर्मितकुड्यकाः । योजनानां सहस्राणि, दशाऽधोऽन्ते च विस्तृताः ॥ ६२४ ॥
वायुधृतैत्र्यंशजला, महालिञ्जरसन्निभाः । पातालकलसाः सन्ति, चत्वारः प्राक् क्रमादमी ॥ ६२५ ॥
तेषु कालो महाकालो, वेलम्बोऽथ प्रभञ्जनः । वसन्ति क्रीडावासेषु, क्रमेणैव दिवौकसः ॥६२६॥
सहस्रयोजनाश्चाऽन्ये, दशयोजनकुड्यकाः । अधस्ताच्च वदने च, शतयोजनसम्मिताः ॥ ६२७ ॥
वायूत्क्षिप्तमध्यमिश्रापाः शतान्यष्टसप्ततिः । चतुरशीतिश्च क्षुद्रपातालकलसा इह ॥ ६२८ ॥
द्विचत्वारिंशत्सहस्रसङ्ख्या नागकुमारकाः । अन्तर्वेलाधारिणोऽस्मिन्नायुक्ता इव सर्वदा ॥ ६२९ ॥
बाह्यवेलाधारिणां तु, सहस्राणि द्विसप्ततिः । तथा षष्टिः सहस्राणि, शिखावेलाप्रधारिणाम् ॥ ६३० ॥
गोस्तूप उदकाभासः, शङ्खोऽप्युदकसीमकः । हैमा-ऽङ्क-रौप्य-स्फाटिका, वेलाधारीन्द्रपर्वताः ६३१
गोस्तूप-शिवक-शङ्ख-मनोह्लदसुराश्रयाः । द्विचत्वारिंशत्सहस्रयोजन्यां दिग्भवाश्च ते ॥ ६३२ ॥
एकविंशसप्तदशशतयोजनिकोच्छ्रयाः । ते द्वाविंशयोजनानां, सहस्रं विस्तृतास्त्वधः ॥ ६३३ ॥
उपरिष्टाच्चतुर्विंशां, योजनानां चतुःशतीम् । तेषामुपरि सर्वेषां, प्रासादाः सन्ति शोभनाः ॥ ६३४ ॥
कर्कोटकः कार्दमकः, कैलाशश्चाऽरुणप्रभः । सर्वरत्नमयाश्चाणुवेलाधारीन्द्रपर्वताः ॥ ६३५ ॥
कर्कोटको विद्युज्जिह्वः, कैलाशोथाऽरुणप्रभः । वसन्ति देवतास्तेषु, सर्वदैव यथाक्रमम् ॥ ६३६ ॥
सहस्रेषु द्वादशसु, योजनानां विदिक्षु च । प्राच्यामिन्दुद्वीपौ तावद्विस्तारा-ऽऽयामशोभितौ ॥ ६३७ ॥
विद्येते सवितृद्वीपावपरेण च तावति । तथाऽस्ति गौतमद्वीपस्तावति सुस्थिताश्रयः ॥ ६३८ ॥
अन्तर्बाह्यलावणकचन्द्रा-ऽर्काणां तथाऽऽश्रयाः । प्रासादास्तेषु लवणरसस्तु लवणोदधिः ॥ ६३९ ॥
लवणोदपरिक्षेपी, ततो द्विगुणविस्तृतिः । धातकीखण्ड इत्यस्ति, नाम्ना द्वीपो द्वितीयकः ॥६४०॥
जम्बूद्वीपे च ये मेरु-वर्ष-वर्षधरादयः । धातक्यां द्विगुणास्ते तु, ख्यातास्तैरेव नामभिः ॥ ६४१ ॥
इष्वाकारपर्वताभ्यां, दीर्घाभ्यामुदग्याम्ययोः । विभक्ता जम्बूद्वीपस्थसङ्ख्याः पूर्वापरार्धयोः ॥ ६४२ ॥
चक्राराभा निषधोच्चाः, कालोद-लवणस्पृशः । वर्षधराः सेष्वाकारा, वर्षास्त्वरान्तरस्थिताः ॥ ६४३ ॥
धातकीखण्डद्वीपस्य, परिक्षेपी पयोनिधिः । कालोदाख्यो योजनानामष्टौ लक्षाणि विस्तृतः ॥६४४॥
धातक्यां सेष्वाकाराणां, मेर्वादीनामभाषि यः । सङ्ख्याविषयनियमः, पुष्करार्धे स एव हि ॥ ६४५ ॥
धातकीखण्डक्षेत्रादिविभागाद् द्विगुणः पुनः । क्षेत्रादिकविभागोऽत्र, पुष्करार्धे प्रकीर्तितः ॥ ६४६ ॥
चत्वारो मेरवः क्षुद्रा, धातकी-पुष्करार्धयोः । योजनानां पञ्चदशसहस्र्या मेरुतोऽर्वः ॥ ६४७॥
मेरोर्योजनषट्शत्या, हीनविष्कम्भकाः क्षितौ । तेषां च प्रथमं काण्डं, महामेरोरनूनकम् ॥ ६४८ ॥
द्वितीयं सप्तभिर्न्यूनं, योजनानां सहस्रकैः । तृतीयमष्टभिर्मेरुवद् भद्रशाल-नन्दने ॥ ६४९ ॥
सहार्धपञ्चपञ्चाशत्सहस्रयोजनोपरि । पञ्चयोजनशत्या च, पृथु सौमनसं वनम् ॥ ६५० ॥
अष्टाविंशतिसहस्र्या, योजनानामथोपरि । षड्रत्नयोजनपञ्चशतविस्तारि पाण्डकम् ॥ ६५१ ॥
उपरिष्टादधस्ताच्च, विष्कम्भोऽथाऽवगाहनम् । महामेरुगिरेस्तुल्यं, तत्तुल्या चूलिकाऽपि च ॥ ६५२ ॥
तदेवं मानुषं क्षेत्रं, द्वीपावर्धतृतीयकौ । द्वावब्धी पञ्चत्रिंशच्च, वर्षाः पञ्च च मेरवः ॥ ६५३ ॥
त्रिंशद् वर्षधरा देवकुरवः पञ्च पञ्च च । उत्तराः कुरवः षष्ट्युत्तरं च विजयाः शतम् ॥ ६५४ ॥
ततः परं पर्वतोऽस्ति, नामतो मानुषोत्तरः । मर्त्यलोकपरिक्षेपी, पुरप्राकारवर्तुलः ॥ ६५५ ॥

१ उपरि । २ तृतीयभागो वायुपूरितो भागद्वये च जलमस्तीति तात्पर्यम् । ३ अलिञ्जरो मृद्भाण्डविशेषः । ४ उपरि । ५ प्रमाणाः । ६ वायुनोत्क्षिप्ता मध्ये मिश्रा आपो येषां ते । ७ समुद्रे । ८ नियुक्ता इव । ९ सुस्थिताभिधानस्य देवस्याश्रयः । १० लघवः । ११ समानम् । * °शत्सह° सङ्घ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निविष्टः पुष्करस्याऽर्धे, सौवर्णः सैकविंशतिम् । योजनानां सप्तदशशतीं यावत् समुच्छ्रितः ॥ ६५६ ॥
चतुःशतीं योजनानां, त्रिंशां क्रोशं च भूमिगः । योजनानां सहस्रं द्वाविंशं विस्तीर्णवानधः ॥ ६५७ ॥
योजनानां सप्तशतीं, त्रयोविंशां च मध्यतः । उपरिष्टाच्चतुर्विंशां, योजनानां चतुःशतीम् ॥ ६५८ ॥
नोत्पद्यन्ते न म्रियन्ते, मर्त्यास्तत्परतः क्वचित् । न म्रियन्ते चारणाद्या, अपि तत्परतो गताः ॥ ६५९ ॥
मानुषोत्तरनामा च, तेनाऽयं परतोऽस्य च । बादराग्नि-मेघ-विद्युन्नदी-कालादयो न हि ॥ ६६० ॥
पञ्चत्रिंशति वर्षेषु, चैष्ववाग् मानुषोत्तरात् । मनुष्याः सान्तरद्वीपेषूत्पद्यन्ते हि जन्मतः ॥ ६६१ ॥
संहार-विद्य-र्द्धियोगान्मेर्वादिशिखरेषु च । द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु, समुद्रद्वितये च ते ॥ ६६२ ॥
ते च भारतका जम्बूद्वीप्या लावणका अपि । इत्येवमादयः क्षेत्र-द्वीपा-ऽम्भोधिविभागतः ॥६६३॥
द्विधाऽऽर्य-म्लेच्छभेदात् ते, तत्राऽऽर्याः षड्विधा इह । क्षेत्र-जाति-कुल-कर्म-शिल्प-भाषाविभेदतः ॥६६४॥
क्षेत्रार्याः पञ्चदशसु, जायन्ते कर्मभूमिषु । तत्रैव भारते सार्धपञ्चविंशतिदेशजाः ॥ ६६५ ॥
ते चाऽऽर्यदेशा नगरैरुपलक्ष्या इमे यथा । राजगृहेण मगधा, अङ्गदेशास्तु चम्पया ॥ ६६६ ॥
वङ्गाः पुनस्ताम्रलिप्त्या, वाराणस्या च काशयः । काञ्चनपुर्या कलिङ्गाः, साकेतेन च कोसलाः ॥
कुरवो गजपुरेण, शौर्येण च कुशार्तकाः । काम्पील्येन च पञ्चाला, अहिच्छत्रेण जाङ्गलाः ॥
विदेहास्तु मिथिलया, द्वारवत्या सुराष्ट्रकाः । वत्साश्च कौशाम्बीपुर्या, मलया भद्रिलेन तु ॥
नान्दीपुरेण सन्दर्भा, वरुणाः पुनरच्छया । वैराटेन पुनर्मत्स्याः, शुक्तिमत्या च चेदयः ॥६७०॥
दशार्णा मृत्तिकावत्या, वीतभयेन सिन्धवः । सौवीरास्तु मथुरया, सूरसेनास्तु पापया ॥६७१॥
भङ्ग्या मासपुरीवर्ताः, श्रावस्त्या च कुणालकाः । कोटीवर्षेण लाटाश्च, श्वेतव्या केतकार्धकम् ॥
आर्यदेशा अमी एभिर्नगरैरुपलक्षिताः । तीर्थकृच्चक्रभृत्कृष्ण-बलानां जन्म येषु हि ॥ ६७३ ॥
इक्ष्वाकवो ज्ञात-हरि-विदेहाः कुरवोऽपि च । उग्रा भोजा राजन्याश्च, जात्यार्या एवमादयः ॥ ६७४ ॥
कुलार्यास्तु कुलकराश्चक्रिणो विष्णवो बलाः । तृतीयात् पञ्चमात् सप्तमाद् वा ये शुद्धवंशजाः ॥ ६७५ ॥
यजनैर्याजनैः शास्त्राध्ययना-ऽध्यापनैरपि । प्रयोगैर्वार्त्तया वृत्तिमन्तः कर्मार्यकाः स्मृताः ॥ ६७६ ॥
शिल्पार्याः स्वल्पसावद्यवृत्तयस्तन्तुवायकाः । तुन्नवायाः कुलालाश्च, नापिता देवलादयः ॥ ६७७ ॥
भाषार्या नाम ते शिष्टभाषानियतवर्णकम् । पञ्चानामपि चाऽऽर्याणां, व्यवहारं वदन्ति ये ॥६७८॥
म्लेच्छास्तु शाका यवनाः, शबरा बर्बरा अपि । काया भुरुण्डा* उड्राश्च, गोड्राः पक्कणका अपि ॥
अरपाकाश्च हूणाश्च, रोमकाः पारसा अपि । खसाश्च खासिका डौम्बिलिकाश्च लकुसा† अपि ॥
भिल्ला अन्ध्रा बुक्कसाश्च, पुलिन्दाः क्रौञ्चका अपि । भ्रमररुताः कुञ्चाश्च, चीन-चञ्चुक-मालवाः ॥
द्रविडाश्च कुलक्षाश्च, किराताः कैकया अपि । हयमुखा गजमुखास्तुरगा-ऽजमुखा अपि ॥६८२॥
हयकर्णा गजकर्णा, अनार्या अपरेऽपि हि । मर्त्या येषु न जानन्ति, धर्म इत्यक्षराण्यपि ॥ ६८३ ॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥
धर्मा-ऽधर्मोज्झिता म्लेच्छा, अन्तरद्वीपजा अपि । भवन्ति चाऽन्तरद्वीपाः, षट्पञ्चाशदमी यथा ॥६८४॥
तेऽर्धे क्षुद्रहिमवतः, पूर्वा-ऽपरविभागयोः । पूर्वोत्तराप्रभृतिषु, विदिक्षु चतसृष्वपि ॥ ६८५ ॥
पूर्वोदीच्यां दिशि तत्राऽवगाढो लवणोदधिः । त्रियोजनशतीं तावानायामे विस्तृतावपि ॥ ६८६ ॥
प्रथमोऽस्त्यन्तरद्वीप, एकोरुरिति नामतः । पुरुषा द्वीपनाम्नेह, सर्वाङ्गोपाङ्गसुन्दराः ॥ ६८७ ॥
न खल्वेकोरुका एव, द्वीपेष्वित्यपरेष्वपि । ज्ञातव्या वक्ष्यमाणेषु, द्वीपनाम्नैव पूरुषाः ॥ ६८८ ॥
आग्नेय्यादिषु तन्मात्रावगाहा-ऽऽयाम-विस्तृताः । द्वीपा आभाषिको लाङ्गूलिको वैषाणिकः क्रमात् ॥

१ देवाजीवाः । * मुरण्डा सङ्क २ ॥ † लकुला सङ्क ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततः परं योजनानामवगाह्य चतुःशतीम् । तावदायामसहितास्तावद्विष्कम्भशोभिनः ॥ ६९० ॥
ऐशान्यादिविदिक्ष्वन्तर्द्वीपाश्च हयकर्णकः । गजकर्णश्च गोकर्णः, शष्कुलीकर्णकः क्रमात् ॥ ६९१ ॥
ततः परं योजनानां, पञ्चशत्यवगाहिनः । तावदायाम-विष्कम्भा, अन्तरद्वीपका इमे ॥ ६९२ ॥
तत्राऽऽदर्शमुखो मेषमुखो हयमुखस्तथा । गजमुखश्च चत्वार, ऐशान्यादिषु पूर्ववत् ॥ ६९३ ॥
ततः षड्योजनशतावगाहा-ऽऽयाम-विस्तृताः । अश्वमुखो हस्तिमुखः, सिंह-व्याघ्रमुखावपि ॥६९४॥
योजनानां सप्तशतावगाहा-ऽऽयाम-विस्तृताः । अश्व-सिंह-हस्तिकर्णाः, कर्णप्रावरणः क्रमात्॥६९५॥
ततोऽष्टयोजनशतीं, लवणोदेऽवगाहिनः । तावदायामसहितास्तावद्विष्कम्भशालिनः ॥ ६९६ ॥
द्वीपा उल्कामुखो विद्युज्जिह्वो मेषमुखोऽपि च । विद्युद्दन्तश्च चत्वार, ऐशान्यादिविदिक्क्रमात् ॥६९७
योजनानां नवशतीं, ततोऽपि लवणोदधेः । अवगाह्य स्थितास्तावद्विष्कम्भा-ऽऽयामशालिनः ॥ ६९८ ॥
नाम्ना गूढदन्तो घनदन्तकः श्रेष्ठदन्तकः । शुद्धदन्तश्च चत्वारोऽन्तरद्वीपा विदिक्क्रमात् ॥ ६९९ ॥
अष्टाविंशतिरेवं च, शिखरिण्यपि पर्वते । एकत्र मेलिताः सर्वे, षट्पञ्चाशद् भवन्ति ते ॥ ७०० ॥
मानुषोत्तरपरतः, पुष्कराधं द्वितीयकम् । पुष्करस्य परिक्षेपी, द्विगुणः पुष्करोदकः ॥ ७०१ ॥
ततोऽपि वारुणिवरौ, नाम्ना द्वीप-पयोनिधी । ततः परं क्षीरवरौ, नामतो द्वीप-सागरौ ॥ ७०२ ॥
ततो घृतवरौ द्वीपा-ऽम्बुधी इक्षुवरौ ततः । ततो नन्दीश्वरो नाम्नाऽष्टमो द्वीपो द्युसन्निभः ॥७०३॥
एतद्वलयविष्कम्भे, लक्षाशीतिश्चतुर्युता । योजनानां त्रिषष्टिश्च, कोट्यः कोटिशतं तथा ॥ ७०४ ॥
असौ विविधविन्यासोद्यानवान् देवभोगभूः । जिनेन्द्रपूजासंसक्तसुरसम्पातसुन्दरः ॥ ७०५ ॥
अस्य मध्यप्रदेशे तु, क्रमात् पूर्वादिदिक्षु च । अञ्जनवर्णाश्चत्वारस्तिष्ठन्त्यञ्जनपर्वताः ॥ ७०६ ॥
दशयोजनसहस्रातिरिक्तविस्तृतास्तले । सहस्रयोजनाश्चोर्द्धं, क्षुद्रा मेरूच्छ्रयाश्च ते ॥ ७०७ ॥
तत्र प्राग् देवरमणो, नित्योद्योतश्च दक्षिणः । स्वयम्प्रभः प्रतीच्यस्तु, रमणीय उदक्स्थितः ॥ ७०८ ॥
शतयोजन्यायतानि, तदर्धं विस्तृतानि च । द्विसप्ततियोजनोच्चान्यर्हच्चैत्यानि तेषु च ॥ ७०९ ॥
पृथग्द्वाराणि चत्वार्युच्चानि षोडशयोजनीम् । प्रवेशे योजनान्यष्ट, विस्तारेऽप्यष्ट तेषु तु ॥ ७१० ॥
तानि देवाऽसुर-नाग-सुपर्णानां दिवौकसाम् । समाश्रयास्तेषामेव, नामभिर्विश्रुतानि च ॥ ७११ ॥
षोडशयोजनायामास्तावन्मात्र्यश्च विस्तृतौ । अष्टयोजनिकोत्सेधास्तन्मध्ये मणिपीठिकाः ॥ ७१२ ॥
सर्वरत्नमया देवच्छन्दकाः पीठिकोपरि । पीठिकाभ्योऽधिकायामोच्छ्रयभाजश्च तेषु तु ॥ ७१३ ॥
ऋषभा वर्धमाना च, तथा चन्द्राननाऽपि च । वारिषेणा चेति नाम्ना, पर्यङ्कासनसंस्थिताः ॥ ७१४ ॥
रत्नमय्यो युताः स्वस्वपरिवारेण हारिणा । शाश्वतार्हत्प्रतिमाः प्रत्येकमष्टोत्तरं शतम् ॥ ७१५ ॥
द्वे द्वे नाग-यक्ष-भूत-कुण्डभृत्प्रतिमे पृथक् । प्रतिमानां पृष्ठतस्तु, च्छत्रभृत्प्रतिमैकिका ॥ ७१६ ॥
तेषु धूपघटी-दाम-घण्टा-ऽष्टमङ्गली-ध्वजाः । छत्र-तोरण-चङ्गेर्यः, पटलान्यासनानि च ॥ ७१७ ॥
षोडश पूर्णकलसादीन्यलङ्करणानि च । सुवर्णरुचिररजोवालुकास्तलभूमयः ॥ ७१८ ॥
आयतनप्रमाणेन, रुचिरा मुखमण्डपाः । प्रेक्षार्थमण्डपा अक्षवाटिका मणिपीठिकाः ॥ ७१९ ॥
रम्याश्च स्तूप-प्रतिमाश्चैत्यवृक्षाश्च सुन्दराः । इन्द्रध्वजाः पुष्करिण्यो, दिव्याः सन्ति यथाक्रमम् ॥ ७२० ॥
प्रत्येकमञ्जनाद्रीणां, ककुप्सु चतसृष्वपि । क्रमादमूः पुष्करिण्यो, मानतो लक्षयोजनाः ॥ ७२१ ॥
नन्दिषेणा चाऽमोघा च, गोस्तूपाऽथ सुदर्शना । तथा नन्दोत्तरा नन्दा, सुनन्दा नन्दिवर्धना
भद्रा विशाला कुमुदा, पुण्डरीकिणिका तथा । विजया वैजयन्ता च, जयन्ता चाऽपराजिता
प्रत्येकमासां योजनपञ्चशत्याः परत्र च । योजनानां पञ्चशतीं, यावद् विस्तारभाञ्जि तु ॥ ७२४ ॥

* °शत्यव° सङ्घ १ ॥ † मेघमु° ढंसं० ॥ १ पुष्करार्धाद् द्विगुणः । २ स्वर्गसदृशः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्षयोजनदीर्घाणि, महोद्यानानि तानि तु । अशोक-सप्तच्छदक-चम्पक-चूतसंज्ञया ॥ ७२५ ॥
मध्ये पुष्करिणीनां च, स्फाटिकाः पल्यमूर्त्तयः । ललाम-वेद्युद्यानादिचिह्ना दधिमुखाद्रयः ॥ ७२६ ॥
चतुःषष्टिसहस्रोच्चाः, सहस्रं चाऽवगाहिनः । *विस्तृता दशसहस्रीं, योजनानामुपर्यधः ॥ ७२७ ॥
अन्तरे पुष्करिणीनां, द्वौ द्वौ रतिकराचलौ । ततो भवन्ति द्वात्रिंशदेते रतिकराचलाः ॥ ७२८ ॥
शैलेषु दधिमुखेषु, तथा रतिकराद्रिषु । शाश्वतान्यर्हच्चैत्यानि, सन्त्यञ्जनगिरिष्विव ॥ ७२९ ॥
चत्वारो द्वीपविदिक्षु, तथा रतिकराचलाः । दशयोजनसहस्रायाम-विष्कम्भशालिनः ॥ ७३० ॥
योजनानां सहस्रं तु, यावदुच्छ्रयशोभिताः । सर्वरत्नमया दिव्या, झल्लर्याकारधारिणः ॥ ७३१ ॥
तत्र द्वयो रतिकराचलयोर्दक्षिणस्थयोः । शक्रस्यैशानस्य पुनरुत्तरस्थितयोः पृथक् ॥ ७३२ ॥
अष्टानां महादेवीनां, राजधान्योऽष्टदिक्षु ताः । लक्षाबाधा लक्षमाना, जिनायतनभूषिताः ॥ ७३३ ॥
सुजाता सौमनसा चाऽर्चिमाली च प्रभाकरा । पद्मा शिवा शुच्यञ्जने, भूता भूतावतंसिका
गोस्तूपा-सुदर्शने अप्यमला-ऽप्सरसौ तथा । रोहिणी नवमी चाऽथ, रत्ना रत्नोच्चयाऽपि च॥७३५॥
सर्वरत्ना रत्नसञ्चया वसुर्वसुमित्रिका । वसुभागाऽपि च वसुन्धरानन्दोत्तरे अपि ॥ ७३६ ॥
नन्दोत्तरकुरुर्देवकुरुः कृष्णा ततोऽपि च । कृष्णराजी-रामा-रामरक्षिताः प्राक्क्रमादमूः॥७३७॥
सर्वर्द्ध्यस्तासु देवाः, कुर्वते सपरिच्छदाः । चैत्येष्वष्टाह्निकाः पुण्यतिथिषु श्रीमदर्हताम् ॥ ७३८ ॥
नन्दीश्वरपरिक्षेपी, ततो नन्दीश्वरोऽर्णवः । ततः परोऽरुणद्वीपोऽस्त्यरुणोदश्च सागरः ॥ ७३९ ॥
ततोऽरुणवरो द्वीपस्तन्नामा च पयोनिधिः । ततः परोऽरुणाभासोऽरुणाभासश्च सागरः ॥ ७४० ॥
ततश्च कुण्डलद्वीपः, कुण्डलोदश्च वारिधिः । ततश्च रुचकद्वीपो, रुचकश्च पयोनिधिः ॥ ७४१ ॥
एवं प्रशस्तनामानो, द्विगुणद्विगुणाः क्रमात् । द्वीपाः समुद्रास्तेष्वन्त्यः, स्वयम्भूरमणोऽम्बुधिः ॥ ७४२ ॥
द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु, देवोत्तरकुरून् विना । भरतैरावत-महाविदेहाः कर्मभूमयः ॥ ७४३ ॥
कालोदः पुष्करोदश्च, स्वयम्भूरमणस्तथा । पानीयरसा लवणरसस्तु लवणोदधिः ॥ ७४४ ॥
वारुणोदश्चित्रपानहृद्यः क्षीरोदधिः पुनः । खण्डमिश्र-घृतचतुर्भागगोक्षीरसन्निभः ॥ ७४५ ॥
घृतोदः सद्यःक्कथितगोघृताभोऽपरे पुनः । चतुर्जातकवत्पर्वान्तच्छिन्नेक्षुरसोपमाः ॥ ७४६ ॥
लवणोदोऽथ कालोदः, स्वयम्भूरमणोऽपि च । मत्स्य-कूर्मादिसङ्कीर्णाः, सागरा नाऽपरे पुनः ॥७४७॥
चत्वारस्तत्र तीर्थेशाश्चक्रिणो विष्णवो बलाः । सदा भवन्ति द्वीपेऽस्मिन्, जम्बूद्वीपे जघन्यतः ॥७४८॥
उत्कर्षेण चतुस्त्रिंशज्जिनास्त्रिंशच्च पार्थिवाः । भवन्ति द्विगुणाश्चैते, धातकी-पुष्करार्धयोः ॥ ७४९ ॥
तिर्यग्लोकादितश्चोर्द्ध्वमूर्द्ध्वलोको महर्द्धिकः । नवयोजनशत्यूनसप्तरज्जुप्रमाणकः ॥ ७५० ॥
तत्र सौधर्म ईशानः, सनत्कुमार इत्यपि । माहेन्द्रो ब्रह्मलोकश्च, लान्तकः शुक्रसंज्ञकः ॥७५१॥
सहस्रारा-ऽऽनत-प्राणता-ऽऽरणा अच्युतोऽपि च । कल्पा इति द्वादशाऽमी, नवग्रैवेयका इमे॥७५२॥
आदौ सुदर्शनं नाम, सुप्रबुद्धं मनोरमम् । सर्वभद्रं सुविशालं, सुमनश्च ततः परम् ॥ ७५३ ॥
सौमनसं प्रीतिकरमादित्यमथ तत्परम् । अनुत्तराभिधानानि, पञ्च सन्ति ततः परम् ॥ ७५४ ॥
विजयं वैजयन्तं च, जयन्तं चाऽपराजितम् । प्राक्क्रमेण विमानानि, मध्ये सर्वार्थसिद्धकम् ॥७५५॥
ततो द्वादशयोजन्या, ऊर्द्ध्वं सिद्धिशिलाऽस्ति तु । पञ्चचत्वारिंशल्लक्षयोजनायाम-विस्तृता ॥ ७५६ ॥
ततोऽप्युपरि गव्यूतत्रितयात् समनन्तरम् । तुर्यगव्यूतषष्ठांशे, सिद्धा लोकाग्रतावधि ॥ ७५७ ॥
आ सौधर्मैशानकल्पं, सार्धा रज्जुः समावनेः । सनत्कुमार-माहेन्द्रौ, सार्धं रज्जुद्वयं पुनः ॥ ७५८ ॥

---

१ पल्याकृतयः । * योजनानि दशाधस्तादुपरिष्टाच्च विस्तृताः सङ्घ ३ विना ॥ २ रतिकराल्लक्षयोजनदूरे । ¶ चूता चूता° सङ्घ १ सङ्घ ३ ॥ ३ राजधानीषु । ४ देवलोकाः । ‡ °सिद्धिकम् सङ्घ २ ॥ § °धर्मैशा° सङ्घ २ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

रज्जवश्चाऽऽ सहस्रारं, पञ्च षट् चाऽच्युतावधि । लोकान्तमवधीकृत्य, जायन्ते सप्त रज्जवः ॥ ७५९ ॥
सौधर्मैशानकल्पौ तु, चन्द्रमण्डलवर्तुलौ । दक्षिणार्धे तत्र शक्र, †ऐशानश्चोत्तरार्धके ॥ ७६० ॥
सनत्कुमार-माहेन्द्रावप्येवं तत्समाकृती । सनत्कुमारोऽपाच्यार्धे, माहेन्द्रस्तूत्तरार्धके ॥ ७६१ ॥
लोकपुंस्कूर्परसमप्रदेशेऽतः परं पुनः । लोकमध्यभागे ब्रह्मलोको ब्रह्मा च तत्प्रभुः ॥ ७६२ ॥
प्रान्ते सारस्वता-ऽऽदित्या-ऽग्न्यरुण-गर्दतोयकाः । तुषिता-ऽव्याबाध-मरुद्रिष्टा लोकान्तिकामराः ॥
तदूर्ध्वं लान्तकः कल्पस्तन्नामा तत्र वासवः । तस्योपरि महाशुक्र, इन्द्रस्तन्नामकोऽत्र च ॥ ७६४ ॥
तदूर्ध्वं च सहस्रारस्तन्नामा तत्र वासवः । सौधर्मैशानसंस्थानावानत-प्राणतौ ततः ॥ ७६५ ॥
तयोः प्राणतकल्पस्थः, प्राणताख्यः पुरन्दरः । तदूर्ध्वं च तदाकारौ, द्वौ कल्पावारणा-ऽच्युतौ ॥ ७६६ ॥
तयोरच्युतवास्तव्य, एक इन्द्रोऽच्युताभिधः । ग्रैवेयका-ऽनुत्तरेषु, त्वहमिन्द्रा दिवौकसः ॥ ७६७ ॥
घनोदधिप्रतिष्ठानौ, कल्पौ तु प्रथमाविह । वायुकृतप्रतिष्ठानास्त्रयः कल्पास्ततः परम् ॥ ७६८ ॥
घनोदधि-घनवातप्रतिष्ठानास्ततस्त्रयः । ततस्तदूर्ध्वमाकाशप्रतिष्ठानाः सुरालयाः ॥ ७६९ ॥
इन्द्राः सामानिकास्त्रायस्त्रिंशाः पार्षद्य रक्षकाः । लोकपाला अनीकानि, प्रकीर्णा आभियोगिकाः ॥ ७७० ॥
किल्बिषिकाश्चेति तेषु, दशभेदा दिवौकसः । इन्द्राः सामानिकादीनामधिपाः सर्वनाकिनाम् ॥ ७७१ ॥
सामानिकाश्चेन्द्रसमाः, परमिन्द्रत्ववर्जिताः । त्रायस्त्रिंशा मन्त्रि-पुरोहितप्राया हरेः पुनः ॥ ७७२ ॥
वयस्यप्रायाः पार्षद्या, आत्मरक्षास्तु रक्षकाः । आरक्षकार्थनृचरस्थानीया लोकपालकाः ॥ ७७३ ॥
तन्त्रप्रायाण्यनीकानि, प्रकीर्णा ग्राम्य-पौरवत् । दासप्राया आभियोग्याः, किल्बिषाश्चान्त्यजोपमाः ॥ ७७४ ॥
ज्योतिष्क-व्यन्तरास्त्रायस्त्रिंश-लोकपवर्जिताः । विमानलक्षाः सौधर्मे, द्वात्रिंशत् त्रिदिवौकसाम् ॥ ७७५ ॥
ऐशान-सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्मणामपि । अष्टाविंशतिर्द्वादशाऽष्टौ चत्वारः क्रमेण तु ॥ ७७६ ॥
लक्षार्धं लान्तके शुक्रे, चत्वारिंशत् सहस्रकाः । षट् सहस्राः सहस्रारे, युगले तु चतुःशती ॥ ७७७ ॥
त्रिशत्यारणा-ऽच्युतयोराद्ये ग्रैवेयकत्रिके । शतमेकादशाग्रं तु, मध्ये सप्तोत्तरं पुनः ॥ ७७८ ॥
विमानानां शतं त्वेकमन्त्यग्रैवेयकत्रिके । अनुत्तरविमानानि, पञ्चैव हि भवन्ति तु ॥ ७७९ ॥
एवं देवविमानानां, लक्षाशीतिश्चतुर्युता । सप्तनवतिः सहस्रास्त्रयोविंशतिरेव च ॥ ७८० ॥
अनुत्तरविमानेषु, चतुर्षु विजयादिषु । देवा द्विचरमा एकचरमाः पञ्चमे पुनः ॥ ७८१ ॥
सौधर्मकल्पादारभ्य, सर्वार्थं यावदेषु च । स्थित्या दीप्त्या प्रभावेण, विशुद्ध्या लेश्यया सुखैः ॥ ७८२ ॥
इन्द्रियाणां विषयेणाऽवधिज्ञानेन चाऽमराः । भवन्ति पूर्वपूर्वेभ्योऽभ्यधिका उत्तरोत्तराः ॥ ७८३ ॥
परिग्रहा-ऽभिमानाभ्यां, वपुषा गमनेन च । हीनहीनतरा एते, भवन्ति तु यथाक्रमम् ॥ ७८४ ॥
जायते सर्वजघन्यस्थितीनां त्रिदिवौकसाम् । सप्तस्तोकान्त उच्छ्वास, आहारस्तु चतुर्थतः ॥ ७८५ ॥
पल्योपमस्थितीनां तु, भवति त्रिदिवौकसाम् । दिवसस्यान्तरुच्छ्वास, आहारोऽहःपृथक्त्वतः ॥ ७८६ ॥
यावन्तः सागरा यस्य, तावन्मासार्धकैः पुनः । उच्छ्वासस्तस्य तावद्भिराहारोऽब्दसहस्रकैः ॥ ७८७ ॥
देवाः सद्वेदनाः प्रायो, यद्यसद्वेदनाः पुनः । अन्तर्मुहूर्तकालं स्युर्मुहूर्तात् परतो न हि ॥ ७८८ ॥
आ ऐशानात् समुत्पत्तिर्देवीनां गतिराऽच्युतात् । उत्पद्यन्ते तापसास्तु, ज्योतिष्कत्रिदशावधि ॥ ७८९ ॥
आ ब्रह्मलोकाच्चरक-परिव्राजां तु सम्भवः । पञ्चेन्द्रियतिरश्चामा, सहस्रारं पुनर्जनिः ॥ ७९० ॥
श्राद्धानामाऽच्युतं मिथ्यादृशां तु जिनलिङ्गिनाम् । सामाचारीपालकानामन्त्यग्रैवेयकावधि ॥ ७९१ ॥
ब्रह्मलोकादिसर्वार्थसिद्धान्तं पूर्णपूर्विणाम् । साधु-श्राद्धानां सौधर्मे, संव्रतानां जघन्यतः ॥ ७९२ ॥

---

* °धर्मैशा° सङ्ग २ ॥ † ईशा° सङ्घ २ ॥ १ सौधर्मैशानकल्पसदृशौ । ‡ °कार्थचरपुंस्था° सङ्घ ३॥ २ आरक्षकार्थं चारपुरुषसदृशाः । ३ सेनासदृशानि । ४ लोकपालाः । ५ मनुष्यभवद्वयेन सिद्धिगामिनः । ६ चतुर्दशपूर्विणाम् । § सम्रता° सङ्घ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ ऐशानाच्च भवनवास्याद्यास्त्रिदिवौकसः । भवन्त्यङ्गप्रवीचारास्ते हि सङ्क्लिष्टकर्मकाः ॥ ७९३ ॥
तीव्रानुरागाः सुरते, लीयमाना मनुष्यवत् । सर्वाङ्गीणस्पर्शसुखात्, प्रीतिमासादयन्ति तु ॥ ७९४ ॥ युग्मम् ॥
शेषाः स्पर्श-रूप-शब्दप्रवीचारा द्वयोर्द्वयोः । मनःप्रवीचारभृतश्चतुर्षु चाऽऽनतादिषु ॥ ७९५ ॥
अमरेभ्यः प्रवीचारवद्भ्योऽनन्तसुखात्मकाः । अपरेष्वप्रवीचारा, देवा ग्रैवेयकादिषु ॥ ७९६ ॥
इत्यधस्तात्तिर्यगूर्द्ध्वभेदो लोकोऽस्य मध्यतः । त्रसनाड्यस्ति च चतुर्दशरज्जुप्रमाणिका ॥ ७९७ ॥
ऊर्द्ध्वा-ऽधोभागयो रज्जुप्रमाणायाम-विस्तृतिः । अन्तस्त्रसाः स्थावराश्च, स्थावरा एव तद्बहिः ॥ ७९८ ॥
विस्तारेऽधः सप्तरज्जुरेकरज्जुश्च मध्यतः । ब्रह्मलोके पञ्चरज्जुः, पर्यन्ते चैकरज्जुकः ॥ ७९९ ॥
सुप्रतिष्ठाकृतिर्लोको, न केनाऽपि कृतो धृतः । स्वयंसिद्धो निराधारो, व्योम्नि तिष्ठति किन्त्वसौ ? ॥ ८०० ॥
॥ युग्मम् ॥
अमुं लोकं समस्तं वा, व्यस्तं वाऽपि हि चिन्तयेत् । धीमान् शुभेतरध्यानप्रतिषेधनिबन्धनम् ॥ ८०१ ॥
धर्मध्याने भवेद् भावः, क्षायोपशमिकादिकः । लेश्याः क्रमविशुद्धाः स्युः, पीत-पद्म-सिताः पुनः ॥ ८०२ ॥
अस्मिन् नितान्तवैराग्यव्यतिषङ्ग[1]तरङ्गिते । जायते देहिनां सौख्यं, स्वसंवेद्यमतीन्द्रियम् ॥ ८०३ ॥
त्यक्तसङ्गास्तनुं त्यक्त्वा, धर्मध्यानेन योगिनः । ग्रैवेयकादिस्वर्गेषु, भवन्ति त्रिदशोत्तमाः ॥ ८०४ ॥
महामहिमसौभाग्यं, शरच्चन्द्रनिभप्रभम् । प्राप्नुवन्ति वपुस्तत्र, स्रग्भूषा-ऽम्बरभूषितम् ॥ ८०५ ॥
विशिष्टवीर्यबोधाढ्यं, कामार्तिज्वरवर्जितम् । निरन्तरायं सेवन्ते, सुखं चाऽनुपमं चिरम् ॥ ८०६ ॥
इच्छासम्पन्नसर्वार्थमनोहारिसुखामृतम् । निर्विघ्नमुपभुञ्जाना, गतं जन्म न जानते ॥ ८०७ ॥
दिव्यभोगावसाने च, च्युत्वा त्रिदिवतस्ततः । उत्तमेन शरीरेणाऽवतरन्ति महीतले ॥ ८०८ ॥
दिव्यवंशे समुत्पन्ना, नित्योत्सवमनोरमान् । भुञ्जते विविधान् भोगानखण्डितमनोरथाः ॥ ८०९ ॥
ततो विवेकमाश्रित्य, विरज्या[2]ऽशेषभोगतः । ध्यानेन ध्वस्तकर्माणः, प्रयान्ति पदमव्ययम् ॥ ८१० ॥
एवं विश्वजनीनेन[3], तीर्थनाथेन निर्ममे । त्रिजगत्कुमुदानन्दकौमुदी धर्मदेशना ॥ ८११ ॥
श्रुत्वा च देशनां भर्तुः, प्रतिबुद्धाः सहस्रशः । नरा नार्यश्च जगृहुर्दीक्षां मोक्षैकमातरम् ॥ ८१२ ॥
तदानीं च सुमित्रोऽपि, पिता सगरचक्रिणः । पुरा भावयतिर्दीक्षामाददे स्वामिनोऽन्तिके ॥ ८१३ ॥
ततश्च पञ्चनवतेर्गणभृन्नामकर्मणाम् । संयतानां सिंहसेनप्रभृतीनां सुमेधसाम् ॥ ८१४ ॥
उत्पत्ति-विगम-ध्रौव्यरूपामूचे पदत्रयीम् । सर्वाङ्गम[4]व्याकरणप्रत्याहारोपमां प्रभुः ॥ ८१५ ॥
तत्रिपद्यनुसारेण, द्वादशाङ्गीं सपूर्विकाम् । रेखानुसारेणाऽऽलेख्यमिव तेऽरचयन्नथ ॥ ८१६ ॥
चूर्णपूर्णमथ स्थालमादायोत्थाय वासवः । स्वामिनः पादपद्मान्ते, तस्थौ सुरगणावृतः ॥ ८१७ ॥
अथोत्थाय गणभृतां, चूर्णं मूर्धसु निक्षिपन् । क्रमेण सूत्रेणाऽर्थेन, तथा तदुभयेन[5] च ॥ ८१८ ॥
द्रव्यैर्गुणैः पर्ययैश्च, नयैरपि जगत्पतिः । ददावनुयोगानुज्ञां, गणानुज्ञामपि स्वयम् ॥ ८१९ ॥
उपरिष्टाद् गणभृतां, वासक्षेपं दिवौकसः । नरा नार्यश्च विदधुर्दुन्दुभिध्वानपूर्वकम् ॥ ८२० ॥
पीयूषनिःस्यन्दमिव, रचिताञ्जलिसम्पुटाः । स्वामिवाचं प्रतीच्छन्तस्तस्थुर्गणधरा अपि ॥ ८२१ ॥
भेजे सिंहासनं पूर्वाभिमुखः पूर्ववत् पुनः । अनुशिष्टिमयीं[6] तेभ्यो, देशनां विदधे विभुः ॥ ८२२ ॥
अत्रान्तरे च प्रथमा, पर्यपूर्यत पौरुषी । पारयामास भगवानपि तां धर्मदेशनाम् ॥ ८२३ ॥
तदा विशालस्थालस्थश्चतुःप्रस्थप्रमाणकः । आपूर्णः शालिभिः शुद्धैः, पद्मसौरभशालिभिः ॥ ८२४ ॥
उपसंवर्गिता[7]मोदो, दिविषद्गन्धमुष्टिभिः । कारितः सगरराजेनोत्क्षिप्तो वरपूरुषैः ॥ ८२५ ॥

१ सम्बन्धः । २ वैराग्यं प्राप्य । ३ विश्वहितकारिणा । ४ सर्वागमानां स्पष्टीकरणे प्रत्याहारसदृशीम् । ५ सूत्रार्थाभ्याम् । ६ शिक्षामयीम् । ७ संमिश्रित आमोदो यस्मिन् सः ।

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

उद्दामदुन्दुभिध्वानध्वनिताशेषदिङ्मुखः । उल्लुलुमुखरैश्चाऽनुगम्यमानो वधूजनैः ॥ ८२६ ॥
विष्वक् परिवृतः पौरैः, पद्मकोश इवाऽलिभिः । बलिः समवसरणं, पूर्वद्वाराध्वनाऽविशत् ॥ ८२७ ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य, जगत्त्रयपतिं बलिः । तैः पुरश्चिक्षिपे दिव्यपुष्पवृष्टिविडम्बकः ॥ ८२८ ॥
नभस्तः पततस्तस्याऽगृह्णन्नर्धं दिवौकसः । सगरो भूगतस्याऽर्धं, तच्छेषमपरे जनाः ॥ ८२९ ॥
बलेस्तस्य प्रभावेण, नश्यन्ति प्राग्भवा अपि । नोत्पद्यन्ते नूतनाश्च, षण्मासान् यावदामयाः ॥ ८३० ॥
सिंहासनात् समुत्थायाऽथोत्तरद्वारवर्त्मना । निर्वाणवर्त्मनोऽग्रेगूर्निर्जगाम जगत्पतिः ॥ ८३१ ॥
ऐशानदिश्यूर्द्ध-मध्यवप्रयोरन्तरस्थिते । देवच्छन्दे देवदेवो, विशश्राम ततः किल ॥ ८३२ ॥
सगरेणोपनीतेऽथ, तत्र सिंहासने स्थितः । अकरोद् देशनां सिंहसेनो गणधराग्रणीः ॥ ८३३ ॥
भगवत्स्थानमाहात्म्यात्, स तत्र गणभृद्वरः । सङ्ख्यातीतान् भवानाख्यद्, यच्च पप्रच्छ कश्चन ॥ ८३४ ॥
स्वामिपर्षदि तस्यां तं, सन्देहापोहकं तथा । छद्मस्थ इति नाऽज्ञासीद्, विना केवलिनं जनः ॥ ८३५ ॥
गुरोः खेदविनोदश्च, प्रत्ययश्च द्वयोरपि । गुरु-शिष्यक्रमश्चेति, गणभृद्देशनागुणाः ॥ ८३६ ॥
पौरुष्यां च द्वितीयायां, सम्पूर्णायां गणाग्रणीः । व्यरंसीद् देशनातः स, पथिको गमनादिव ॥ ८३७ ॥
देशनाविरते तस्मिन्, प्रणम्य परमेश्वरम् । चेलुर्निजनिजस्थानं, प्रति सर्वे दिवौकसः ॥ ८३८ ॥
गत्वा नन्दीश्वरद्वीपं, पर्वतेष्वञ्जनादिषु । शाश्वतार्हत्प्रतिमानां, चक्रुस्तेऽष्टाह्निकोत्सवम् ॥ ८३९ ॥
भूयो भूयोऽपि भूयान्नो, यात्रेदृगिति भाषिणः । ययुर्निजनिजं धाम, स्वधामानो यथागतम् ॥ ८४० ॥
भगवन्तं नमस्कृत्य, सगरश्चक्रवर्त्यपि । पुरं जगाम साकेतं, श्रीसङ्केतनिकेतनम् ॥ ८४१ ॥
ततश्च तीर्थे तत्रैवोत्पन्नो यक्षश्चतुर्मुखः । श्यामवर्णो गजरथो, महायक्षोऽभिधानतः ॥ ८४२ ॥
वरदेन मुद्गरिणा, साक्षसूत्रेण पाशिना । चतुर्भिर्दक्षिणैर्हस्तैर्वामैस्तावद्भिरेव च ॥ ८४३ ॥
बीजपूरधरेणाऽभीदायिनाऽङ्कुशधारिणा । सशक्तिना शोभितोऽभूत्, स्वामिनः पारिपार्श्विकः ॥ ८४४ ॥
देवताऽजितबला च, तदोत्पन्ना सुवर्णरुक् । भान्ती दक्षिणबाहुभ्यां, वरदेनाऽथ पाशिना ॥ ८४५ ॥
बीजपूरा-ऽङ्कुशभृद्भ्यां, वामदोर्भ्यां च शोभिता । लोहासनस्था पार्श्वेऽस्थाद्, भर्तुः शासनदेवता ॥८४६॥
चतुस्त्रिंशदतिशयशोभितो भगवानपि । व्यहार्षीत् सिंहसेनादिपरिवारवृतो महीम् ॥ ८४७ ॥
बोधयन् भव्यभविनः, प्रतिग्राम-पुरा-ऽऽकरम् । कृपारत्नाकरः प्राप, कौशाम्बीं प्रभुरन्यदा ॥ ८४८ ॥
तस्याः पूर्वोत्तरदिशि, क्षेत्रे योजनमात्रके । प्रभोः समवसरणं, पूर्ववद् विदधे सुरैः ॥ ८४९ ॥
तत्राऽशोकतले सिंहासनासीनो जगत्पतिः । ससुरा-ऽसुर-मर्त्यायां, देशनां पर्षदि व्यधात् ॥ ८५० ॥
एकं द्विजन्ममिथुनमथैत्य त्रिजगद्गुरुम् । प्रदक्षिणीकृत्य नत्वा, यथास्थानमुपाविशत् ॥ ८५१ ॥
कथान्तरे जगन्नाथं, द्विजन्ममिथुनाद् द्विजः । पप्रच्छ साञ्जलिरिदं, कथं नु भगवन्निति ॥ ८५२ ॥
शशंस प्रभुरप्येवं, सम्यक्त्वमहिमा ह्ययम् । सर्वानर्थनिषेधा-ऽर्थसिद्ध्योरेकं निबन्धनम् ॥ ८५३ ॥
तेन शाम्यन्ति वैराणि, वृष्ट्येव दववह्नयः । नश्यन्ति व्याधयोऽशेषाः, सर्पा इव गरुत्मता ॥ ८५४ ॥
दुष्कर्माणि विलीयन्ते, हिमानीवाऽहिमांशुना । सिध्यत्यभीप्सितं चिन्तामणिनेव क्षणादपि ॥ ८५५ ॥
नार्येव कुञ्जरवरो, देवायुःकर्म बध्यते । देवताः सन्निधीयन्ते, मन्त्रेणेव महौजसा ॥ ८५६ ॥
अथवा सर्वमप्येतत्, सम्यक्त्वफलमल्पकम् । महाफलं सिद्धिरपि, तीर्थकृत्त्वं च जायते ॥ ८५७ ॥
श्रुत्वेति मुदितो विप्रः, प्रणम्योचे कृताञ्जलिः । भगवन्नेवमेवेदं, न सर्वज्ञगिरोऽन्यथा ॥ ८५८ ॥
इत्युक्त्वा तत्र तूष्णीके, स्थिते गणधराग्रणीः । जानन्नपि जनज्ञानकृतेऽपृच्छज्जगद्गुरुम् ॥ ८५९ ॥

१ गीतादिध्वनिः । २ रोगाः । ३ अग्रेगामी । ४ सन्देहनाशकम् । ५ देवाः । ६ गजवाहनः । ७ फलविशेषः । ८ अभयमुद्राङ्कितेन । ९ वार्त्ताप्रस्तावे । १० महद् हिमम् । ११ सूर्येण । १२ गजबन्धनरज्जुना । १३ विप्रे ।

किमनेन प्रभो ! पृष्टं ?, प्रभुणा कथितं च किम् ? । सङ्केतवार्तासदृशमिदं बोधय नः स्फुटम् ॥ ८६० ॥
आचख्यौ प्रभुरप्यस्याः, पुर्या अनतिदूरतः । अग्रहारो महानस्ति, शालिग्रामाभिधानकः ॥ ८६१ ॥
तत्र दामोदरो नाम, वसति ब्राह्मणाग्रणीः । सधर्मचारिणी चाऽस्ति, तस्य सोमेति नामतः ॥ ८६२ ॥
शुद्धभट्टोऽभिधानेन, तयोश्च तनयोऽभवत् । दुहिता सिद्धभट्टस्य, तेन वोढा सुलक्षणा ॥ ८६३ ॥
सुलक्षणा-शुद्धभट्टौ, प्रतिपद्य च यौवनम् । बुभुजाते यथाकामं, भोगान् स्वविभवोचितान् ॥ ८६४ ॥
कालक्रमेण पितरौ, विपेदाते तयोरथ । परिक्षयमुपेयाय, विभवः सोऽपि पैतृकः ॥ ८६५ ॥
क्षपायां क्षुधितोऽशेत, सुभिक्षेऽपि कदाऽप्यसौ । निर्धनस्य सुभिक्षेऽपि, दुर्भिक्षं पारिपार्श्विकम् ॥ ८६६ ॥
जीर्णवासःखण्डधारी, पर्याट च कदाचन । पुरि राजपथे देशान्तरकर्पटिकोपमः ॥ ८६७ ॥
कदाचिच्चातक इव, चिरं तस्थौ पिपासितः । कदाचिन्मलमलिनः, पिशाच इव दुर्वपुः ॥ ८६८ ॥
लज्जितः सहवासिभ्योऽपीदृशेनाऽऽत्मना च सः । भार्याया अप्यनाख्याय, दूरं देशान्तरं ययौ ॥८६९॥
देशान्तरगतिं तस्य, भार्या कतिपयैर्दिनैः । वज्रपातसोदरया, जनश्रुत्याऽशृणोत् ततः ॥ ८७० ॥
पितृक्षया-ऽर्थक्षयाभ्यां, पत्युर्विगमनेन च । चिरं निर्लक्षणम्मन्या, ताम्यति स्म सुलक्षणा ॥ ८७१ ॥
उद्विग्ना यावदस्थात् सा, तावदागात् तपात्यये । गणिनी विपुला नाम, तद्गृहे वसतीच्छया ॥ ८७२ ॥
अर्पयामास वसतिं, विपुलायाः सुलक्षणा । शुश्राव च प्रतिदिनं, तन्मुखाद् धर्मदेशनाम् ॥ ८७३ ॥
ययौ तस्याश्च मिथ्यात्वं, धर्मदेशनया तया । अम्लस्य मधुरद्रव्यसम्बन्धेनाऽम्लता यथा ॥ ८७४ ॥
ततः परं साऽनवद्यं, सम्यक्त्वं प्रत्यपद्यत । कृष्णपक्षमतिक्रम्य, नैर्मल्यमिव शर्वरी ॥ ८७५ ॥
जीवा-ऽजीवादिपदार्थान्, सर्वानपि यथास्थितान् । वैद्यो दोषानिवाङ्गोत्थान्, यथावत् प्रत्यपद्यत ॥८७६॥
धर्मं जैनं च जग्राह, संसारोल्लङ्घनक्षमम् । सांयात्रिकः पोतमिव, सागरोत्तारणोचितम् ॥ ८७७ ॥
तस्या विषयवैराग्यमुपशान्तकषायता । निर्वेदो जन्म-मरणेष्वविच्छिन्नेषु चाऽभवत् ॥ ८७८ ॥
साध्वीशुश्रूषया सैवं, वर्षाकालमजीगमत् । रसाढ्यया जागरूकः, कथया रजनीमिव ॥ ८७९ ॥
तस्या दत्त्वाऽणुव्रतानि, गणिनी साऽन्यतो ययौ । प्रायः प्रावृष ऊर्द्ध्वं न, तिष्ठन्त्येकत्र संयताः ॥ ८८० ॥
अर्जितद्रविणः सोऽपि, शुद्धभट्टो दिगन्तरात् । प्रियाप्रेमसमाकृष्टः, पारापत इवाऽऽययौ ॥ ८८१ ॥
ऊचे विप्रः प्रियामेवमसहिष्ठाः कथं प्रिये ! । असोढपूर्विणी मद्वियोगं हिममिवाऽब्जिनी ? ॥ ८८२ ॥
सुलक्षणाऽप्याचचक्षे, श्रूयतां जीवितेश्वर ! । मरुस्थले मरालीव, शफरीवाऽल्पवारिणि ॥ ८८३ ॥
राहुवक्त्रे चन्द्रलेखेवैणिकेव दवानले । मृत्युद्वारे त्वद्विरहे, दुःसहे पतिताऽस्म्यहम् ॥ ८८४ ॥
अन्धकारे दीपिकेव, नौरिवाऽपारवारिणि । मरुस्थले वृष्टिरिव, दृष्टिरन्ध्य इवाऽनघा ॥ ८८५ ॥
मम त्वद्विरहे तस्मिन्, पतितायाः समाययौ । गणिनी विपुला नाम, विपुलैकदयानिधिः ॥ ८८६ ॥
तद्दर्शनेन मे दुःखं, भवद्विरहजं ययौ । मया प्राप्तं च सम्यक्त्वं, फलं मानुषजन्मनः ॥ ८८७ ॥
शुद्धभट्टोऽप्यभाषिष्ट, सम्यक्त्वं किं नु भद्रिके ! । जन्मनो मानुषस्याऽस्य, फलभूतं यदुच्यते ? ॥८८८॥
सुलक्षणाऽप्युवाचैवमार्यपुत्र ! निशम्यताम् । कथनीयं तदिष्टानामभीष्टः प्राणतोऽप्यसि ॥ ८८९ ॥
या देवे देवताबुद्धिर्गुरौ च गुरुतामतिः । धर्मे च धर्मधीः शुद्धा, सम्यक्त्वमिदमुच्यते ॥ ८९० ॥
अदेवे देवबुद्धिर्या, गुरुधीरगुरौ च या । अधर्मे धर्मबुद्धिश्च, मिथ्यात्वं तद्विपर्ययात् ॥ ८९१ ॥
सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः । यथास्थितार्थवादी च, देवोऽर्हन् परमेश्वरः ॥ ८९२ ॥
ध्यातव्योऽयमुपास्योऽयमयं शरणमिष्यताम् । अस्यैव प्रतिपत्तव्यं, शासनं चेतनाऽस्ति चेत् ॥ ८९३ ॥
ये स्त्री-शस्त्रा-ऽक्षसूत्रादिरागाद्यङ्ककलङ्किताः । निग्रहा-ऽनुग्रहपरास्ते देवाः स्युर्न मुक्तये ॥ ८९४ ॥

१ समीपस्थम् । २ भिक्षुकः । ३ साध्वीसमूहाग्रेसरा । * °पूर्विणं मद्वि° सङ्घ १ ॥ ४ ज्ञानम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाट्या-ऽट्टहास-सङ्गीताद्युपप्लवविसंस्थुलाः । लम्भयेयुः पदं शान्तं, प्रपन्नान् प्राणिनः कथम् ? ॥ ८९५ ॥
महाव्रतधरा धीरा, भैक्षमात्रोपजीविनः । सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मताः ॥ ८९६ ॥
सर्वाभिलाषिणः सर्वभोजिनः सपरिग्रहाः । अब्रह्मचारिणो मिथ्योपदेशा गुरवो न तु ॥ ८९७ ॥
परिग्रहाऽऽरम्भमग्नास्तारयेयुः कथं परान् ? । स्वयं दरिद्रो न परमीश्वरीकर्तुमीश्वरः ॥ ८९८ ॥
दुर्गतिप्रपतत्प्राणिधारणाद् धर्म उच्यते । संयमादिर्दशविधः, सर्वज्ञोक्तो विमुक्तये ॥ ८९९ ॥
अपौरुषेयं वचनमसम्भवि भवेद् यदि । न प्रमाणं भवेद् वाचां, ह्याप्ताधीना प्रमाणता ॥ ९०० ॥
मिथ्यादृष्टिभिराम्नातो, हिंसाद्यैः कलुषीकृतः । स धर्म इति वित्तोऽपि[1], भवभ्रमणकारणम् ॥ ९०१ ॥
सरागोऽपि हि देवश्चेद्, गुरुरब्रह्मचार्यपि । कृपाहीनोऽपि धर्मः स्यात्, कष्टं नष्टं हहा ! जगत् ॥ ९०२ ॥
शम-संवेग-निर्वेदा-ऽनुकम्पा-ऽऽस्तिक्यलक्षणैः । लक्षणैः पञ्चभिः सम्यक्, सम्यक्त्वमुपलक्ष्यते ॥ ९०३ ॥
स्थैर्यं प्रभावना भक्तिः, कौशलं जिनशासने । तीर्थसेवा च पञ्चाऽस्य, भूषणानि प्रचक्षते ॥ ९०४ ॥
शङ्का काङ्क्षा विचिकित्सा, मिथ्यादृष्टिप्रशंसनम् । तत्संस्तवश्च पञ्चाऽपि, सम्यक्त्वं दूषयन्त्यलम् ॥ ९०५ ॥
व्याजहार ब्राह्मणोऽपि, दयिते ! भाग्यवत्यसि । उपलब्धवती सम्यक्, सम्यक्त्वं यन्निधानवत् ॥ ९०६ ॥
शुद्धभट्टोऽपि तत्कालं, सम्यक्त्वं प्रत्यपद्यत । धर्मे धर्मोपदेष्टारः, साक्षिमात्रं शुभात्मनाम् ॥ ९०७ ॥
तौ सम्यक्त्वोपदेशेन, श्रावक्यभवतामुभौ[2] । स्वर्णीस्यातां सिद्धरसात्, सीसक-त्रपुणी अपि ॥ ९०८ ॥
तत्र ह्यग्रहारे साधुसंसर्गाभावतस्तदा । लोकोऽश्रावकधर्मोऽभून्मिथ्यादृष्टिः क्रमेण च ॥ ९०९ ॥
कुलक्रमागतं धर्ममिमौ सन्त्यज्य दुर्धियौ । श्रावक्यभूतामित्यासीदपवादो जने तयोः ॥ ९१० ॥
अपवादमवज्ञाय, श्राद्धत्वे तस्थुषोस्तयोः । जज्ञे कालक्रमात् पुत्रो, गार्हमेध्यतरोः फलम् ॥ ९११ ॥
शिशिरे ब्राह्मणोऽन्येद्युः, प्रातरादाय तं सुतम् । विप्रपर्षत्परिवृतां, धर्मार्थाग्निष्टिकां ययौ ॥ ९१२ ॥
श्रावकोऽसीति परतो, गच्छ गच्छेति सक्रुधः । प्रचण्डाश्चण्डालमिव, तं समाचुक्रुशुर्द्विजाः ॥ ९१३ ॥
तां धर्माग्निष्टिकां ते च, वेष्टयित्वा समन्ततः । तस्थुर्द्विजातयो जातिधर्मस्तेषां हि मत्सरः ॥ ९१४ ॥
ततो विलक्षः सङ्क्रुद्धो, विलक्षैर्वचनैः स तैः । समक्षं पर्षदस्तस्याश्चक्रे सत्यापनामिति[3] ॥ ९१५ ॥
जिनादिष्टो न चेद् धर्मः, संसाराम्भोधितारणः । आप्ता यदि न चाऽर्हन्तः, सर्वज्ञास्तीर्थकारिणः ॥ ९१६ ॥
ज्ञान-दर्शन-चारित्राण्यध्वा यदि न निर्वृतेः । सम्यक्त्वं भुवि चेन्नास्ति, तन्मे सूनुः प्रदह्यताम् ॥ ९१७ ॥
अथाऽस्ति सर्वमप्येतज्ज्वलनः प्रज्वलन्नपि । जलवच्छीतलस्तर्हि, मत्पुत्रस्य भवत्वसौ ॥ ९१८ ॥
इत्युदित्वा स रोषेण, ज्वलनोऽन्य इव ज्वलन् । ज्वलने तत्र चिक्षेप, पुत्रं राभसिको[4] द्विजः ॥ ९१९ ॥
अनार्येणाऽमुना बालो, दग्धो दग्धो हहा ! स्वकः । एवमाक्रोशिनी पर्षत्, तमाचुक्रोश सा तदा ॥ ९२० ॥
तत्रस्था देवता चैका, सम्यग्दर्शनशालिनी । सद्यश्चिक्षेप तं बालं, मध्येपद्मं द्विरेफवत् ॥ ९२१ ॥
ज्वालाजालकरालस्य, ज्वलतो ज्वलनस्य च । दाहशक्तिं जहाराऽऽशु, चित्रस्थमिव तं व्यधात् ॥ ९२२ ॥
पुरा विराद्धश्रामण्या[5], मृत्वा व्यन्तर्यभूद्धि सा । बोधिलाभं तया पृष्टो, व्याजहारेति केवली ॥ ९२३ ॥
भवत्याः सुलभा बोधिर्भवितव्यं त्वयाऽनघे ! । सम्यक्त्वभावनोद्योगनिष्ठया सुष्ठु तत्कृते ॥ ९२४ ॥
तद्वचो बिभ्रती नित्यं, हृदये हारयष्टिवत् । सम्यक्त्वमाहात्म्यकृते, सा जुगोप तमर्भकम् ॥ ९२५ ॥
प्रभावं तं तु सम्प्रेक्ष्य, विस्मयस्मेरचक्षुषः । जज्ञिरे ते द्विजन्मान, आजन्मादृष्टपूर्विणः ॥ ९२६ ॥
गत्वा वेश्मन्याचचक्षे, ब्राह्मण्यै ब्राह्मणः स तम् । जातप्रमोदः सम्यक्त्वानुभावानुभवं तदा ॥ ९२७ ॥
विपुलागणिनीगाढसंसर्गेण विवेकिनी । ब्राह्मणीत्यब्रवीद् धिग्धिक्, किमिदं विदधे त्वया ? ॥ ९२८ ॥
सम्यक्त्वभाजः कस्याश्चिद्, देवताया हि सन्निधेः । वक्रमप्यृजुतां प्राप्तमिदं ते कोपचापलम् ॥ ९२९ ॥

---

१ ज्ञातोऽपि । २ श्रावकौ जातौ । ३ प्रतिज्ञाम् । ४ साहसिकः । ५ संयमविराधिनी ।

तदा हि देवता काऽपि, सम्यक्त्वैकप्रभाविका । सन्निधौ नाऽभविष्यच्चेत्, तदधक्ष्यत ते सुतः ॥ ९३० ॥
जिनप्रणीतो धर्मोऽयं, न प्रमाणं तदा किमु ? । न प्रमाणमिति ब्रूयुस्ते तु पापा विशेषतः ॥ ९३१ ॥
बालिशोऽपीदृशं किंस्वित्, कुर्याद् यद् भवता कृतम् ? । ईदृग् नाऽतः परं कार्यमार्यपुत्राविचारितम्॥९३२॥
अभिधायेति सम्यक्त्वस्थिरीकरणहेतवे । इमं भर्तारमेषा स्वमनैषीदस्मदन्तिके ॥ ९३३ ॥
तदेतन्मनसिकृत्याऽनेन पृष्टं द्विजन्मना । सम्यक्त्वस्य प्रभावोऽयमित्यस्माभिश्च कीर्तितम् ॥ ९३४ ॥
आकर्ण्य तच्च भगवद्वचनं बहवोऽपरे । प्राणिनः प्रत्यबुध्यन्त, स्थिरधर्माश्च जज्ञिरे ॥ ९३५ ॥
शुद्धभट्टस्तु भट्टिन्या, समं भगवदन्तिके । परिव्रज्यामुपादत्त, क्रमेणाऽऽप च केवलम् ॥ ९३६ ॥

तां देशनां स भगवानपि पारयित्वा, स्थानात् ततो जगदनुग्रहणैकतानः ।
चक्रेण चक्रभृदिवाऽग्रचरेण धर्मचक्रेण भान् वसुमतीं विजहार नाथः ॥ ९३७ ॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये द्वितीये पर्वणि अजितस्वामिदीक्षाकेवलज्ञानवर्णनो नाम तृतीयः सर्गः ॥

---

१ शोभमानः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थः सर्गः

इतश्च सगरस्याऽस्त्रमन्दिरे मेदिनीभुजः । सुवर्णमयनेमीकं, लोहिताक्षमयारकम् ॥ १ ॥
विचित्र-स्वर्णमाणिक्यघण्टिकाजालमालितम् । सनान्दीघोषममलमणि-मौक्तिकमण्डितम् ॥ २ ॥
वज्रनिर्मितनाभीकं, किङ्किणीश्रेणिशोभितम् । सर्वर्तुकुसुमस्रग्भिरर्चितं सविलेपनम् ॥ ३ ॥
अन्तरिक्षस्थितं यक्षसहस्रसमधिष्ठितम् । नाम्ना सुदर्शनं चक्ररत्नं समुदपद्यत ॥ ४ ॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥
ज्वालामालाकरालं तच्चण्डांशोरिव मण्डलम् । आविर्भूतं प्रेक्ष्य चक्रमायुधागारिकोऽनमत् ॥ ५ ॥
अथ तच्चक्रमर्चित्वा, विचित्रैः पुष्पदामभिः । शशंस मुदितो गत्वा, सत्वरं सगराय सः ॥ ६ ॥
सिंहासनं पादपीठं, पादुके अपि तत्क्षणम् । उज्झाश्चकार सगरो, गुरुसन्दर्शनादिव ॥ ७ ॥
पदानि कतिचिद् दत्त्वा, चक्रं मनसिकृत्य सः । ननाम देवतीयन्ति, यदस्त्राण्यस्त्रजीविनः ॥ ८ ॥
सिंहासने स आसित्वा, चक्रोत्पत्तिनिवेदिने । सर्वं ददौ स्वाङ्गलग्नं, भूषणं पारितोषिकम् ॥ ९ ॥
ततश्च पावनैर्नीरैर्विधाय स्नानमङ्गलम् । दिव्यालङ्कार-वस्त्राणि, पर्यधत्त महीपतिः ॥ १० ॥
पद्भ्यां चचाल भूपालश्चक्ररत्नमथाऽर्चितुम् । पादचारेणोपस्थानं, पूजातोऽप्यतिरिच्यते ॥ ११ ॥
धावद्भिः प्रस्खलद्भिश्च, पतद्भिश्चाऽतिसम्भ्रमात् । सोऽन्वगामिनृपैः पादचारिभिः किङ्करैरिव ॥ १२ ॥
सोऽनुसस्रेऽप्यनाहूतैः, पूजाद्रव्यकरैर्नरैः । स्वाधिकारप्रमादित्वं, भीतये ह्यधिकारिणाम् ॥ १३ ॥
विमानमिव देवेन, दीव्यदुद्दामतेजसा । सनाथं तेन चक्रेणाऽस्त्रागारं सगरो ययौ ॥ १४ ॥
ननामाऽऽलोकमात्रेऽपि, पञ्चाङ्गस्पृष्टभूतलः । चक्ररत्नं नभोरत्नतुल्यं वसुमतीपतिः ॥ १५ ॥
सोऽमार्जद्धस्तविन्यस्तरोमहस्तस्तदञ्जसा । हस्त्यारोहो हस्तिवरमिव तल्पसमुत्थितम् ॥ १६ ॥
आनीयाऽऽनीय पानीयकुम्भैः पुम्भिः समर्पितैः । स चक्रं स्नपयामास, देवताप्रतिमामिव ॥ १७ ॥
चन्दनस्थासकांस्तत्र, स्थापयामास पार्थिवः । तदूरीकारदत्तस्वहस्तलक्ष्मीविडम्बिनः ॥ १८ ॥
नृपतिश्चक्ररत्नस्य, विचित्रैः पुष्पदामभिः । जयलक्ष्मीपुष्पगृहोपमां पूजां चकार च ॥ १९ ॥
गन्धांश्च चूर्णवासांश्च, चक्रे चिक्षेप चक्रभृत् । प्रतिमायामिवाऽऽचार्यः, प्रतिष्ठासमये स्वयम् ॥ २० ॥
देवतार्हैर्महामूल्यैर्वस्त्रालङ्करणैरपि । अलञ्चक्रे चक्ररत्नमात्मानमिव पार्थिवः ॥ २१ ॥
लिलेखाऽष्टौ मङ्गलानि, पुरोऽष्टाशाजयश्रियाम् । आकर्षणायाऽभिचारमण्डलानीव भूपतिः ॥ २२ ॥
अकरोदग्रतस्तस्य, कुसुमैः पञ्चवर्णकैः । सारगन्धैरुपहारं, राजर्तुरिव सप्तमः ॥ २३ ॥
घनसारा-ऽगुरुसारं, धूपं तस्याऽग्रतोऽदहत् । धूमैर्नरेन्द्रः कस्तूरीविलेपनमिवाऽऽदधत् ॥ २४ ॥
त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य, सोऽपसृत्य च किञ्चन । चक्रं चक्री नमश्चक्रे, जयश्रीजन्मसागरम् ॥ २५ ॥
विदधेऽष्टाह्निकां तस्य, चक्ररत्नस्य तत्र सः । देवताया इव नवप्रतिष्ठाया महीपतिः ॥ २६ ॥
ऋद्ध्या महत्या चक्रस्य, चक्रे पूजामहोत्सवः । पौरैरपि पुरीपद्रदेवताया इवाऽखिलैः ॥ २७ ॥
ततो वसुमतीनाथः, स्वं जगाम निकेतनम् । चक्रेणाऽऽमन्त्रित इव, दिग्यात्रायै समुत्सुकः ॥ २८ ॥
गत्वा स्नानगृहे स्नानं, पानीयैः पावनैरथ । चकार सगरो गङ्गास्रोतसीवेन्द्रकुञ्जरः ॥ २९ ॥
रत्नस्तम्भ इवोन्मृष्टदेहो दिव्येन वाससा । पर्यधाद् वसुधाधीशो, विशदे दिव्यवाससी ॥ ३० ॥
गोशीर्षचन्दनरसैरच्छैर्ज्योत्स्नारसैरिव । अङ्गरागं नरपतेर्विदधुर्गन्धकारिकाः ॥ ३१ ॥
अलङ्कारानलञ्चक्रे, स्वाङ्गसङ्गेन भूपतिः । प्रयान्ति ह्युत्तमस्थाने, भूषणान्यपि भूष्यताम् ॥ ३२ ॥

---

१ सुवर्णमयधारम् । २ रत्नविशेषः । ३ द्वादशतूर्यशब्दोपेतम् । ४ सम्मुखगमनम् । ५ सूर्यतुल्यम् । ६ हस्तधृतमयूरपिच्छमार्जनिकः । ७ हस्तिपकः । ८ सुप्तोत्थितम् । ९ अष्टदिग्जयलक्ष्मीणाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा मुहूर्ते मङ्गल्ये, पुरोधःकृतमङ्गलः । दिग्यात्रायै गजरत्नमारुरोहाऽसिरत्नभृत् ॥ ३३ ॥
अश्वरत्नं समारुह्य, दण्डरत्नं च पाणिना । बिभ्रत् सेनापती रत्नं, प्रतस्थे भूपतेः पुरः ॥ ३४ ॥
सर्वोपद्रवनीहारहरणे दिनरत्नवत् । पुरोधोरत्नमवनीनाथेन सह चाऽचलत् ॥ ३५ ॥
भोज्यदानक्षमः सैन्ये, प्रत्यावासं गृहाधिपः । सहाऽचलच्चित्ररसकल्पद्रुरिव जङ्गमः ॥ ३६ ॥
सद्यः पुरादिनिर्माणालङ्कर्मीणपराक्रमः । सहाऽगाद् विश्वकर्मेव, रत्नभूतोऽस्य वर्धकिः ॥ ३७ ॥
विस्तारिणी करस्पर्शाद्, रत्ने च च्छत्र-चर्मणी । अनुकूलानिलस्पर्शादभ्रवत् सह चेलतुः ॥ ३८ ॥
रत्ने च मणि-काकिण्यौ, तमिस्रक्षपणक्षमे । सहेयतुर्लघूभूतौ, जम्बूद्वीपरवी इव ॥ ३९ ॥
बहुदासीपरीवारं, स्त्रीराज्यत इवाऽऽगतम् । अन्तःपुरं सहाऽचालीद्, देहच्छायेव चक्रिणः ॥ ४० ॥
ककुभो द्योतयद् दूरादूरीकृतककुञ्जयम् । पुरोऽगात् प्राङ्मुखं चक्रं, प्रताप इव भूपतेः ॥ ४१ ॥
पुष्करावर्तकाम्भोदघटानिनदसोदरैः । यात्रातूर्यनिनादैर्दिग्गजानुत्कर्णतालयन् ॥ ४२ ॥
चक्रं विक्रममाणाश्वखुरोत्खातैश्च पांसुभिः । एकीकुर्वन् द्यावा-भूमी, द्राक् सम्पुटपुटाविव ॥ ४३ ॥
रथ-द्विप-ध्वजाग्रस्थपाठीन-मकरादिभिः । विदधानः सयादस्कमिव व्योममहार्णवम् ॥ ४४ ॥
सप्तधाप्रक्षरद्दानजलासारविराजिभिः । मतङ्गजघटास्तोमैर्दुर्दिनं दर्शयन्निव ॥ ४५ ॥
उत्साहादुत्प्लवमानैर्द्यामिवाऽध्यारुरुक्षुभिः । पदातिभिः कोटिसङ्ख्यैस्तिरयन्नभितो भुवम् ॥ ४६ ॥
अविपक्षप्रतापेन, सर्वत्राऽकुण्ठशक्तिना । सेनान्येव पुरोगेण, चक्ररत्नेन राजितः ॥ ४७ ॥
सेनान्या दण्डरत्नेन, स्थलादिस्थपुटामपि । मतेनेव क्षेत्रमहीं, वसुधां कारयन् समाम् ॥ ४८ ॥
एकयोजनमानेन, प्रयाणेन दिने दिने । भद्रद्विप इवाऽध्वानमाक्रामन् गतिलीलया ॥ ४९ ॥
दिनैः कतिपयैः प्राच्यां, तुल्यः प्राचीनबर्हिषा । गङ्गामुखैकतिलकं, मागधक्षेत्रमासदत् ॥ ५० ॥
॥ नवभिः कुलकम् ॥

अभ्रंलिहैभशालाभिर्विशालाभिरनेकशः । महागुहासोदराभिर्मन्दुराभिः सहस्रशः ॥ ५१ ॥
विमानमानिभिर्हर्म्यैर्मेघमन्यैश्च मण्डपैः । अट्टैः समानसंस्थानैरेकबिम्बकृतैरिव ॥ ५२ ॥
शृङ्गाटकादिरचनाराजिराजपथस्थितिम् । नवयोजनविस्तारं, दैर्घ्ये द्वादशयोजनम् ॥ ५३ ॥
स्कन्धावारं चक्रभृतः, सगरस्याऽऽज्ञया ततः । चकार वर्धकीरत्नं, विनीताया इवाऽनुजम् ॥ ५४ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

तत्र पौषधशालायां, चक्रेऽष्टमतपस्ततः । मागधतीर्थकुमारं, कृत्वा मनसि भूपतिः ॥ ५५ ॥
स मुक्ताशेषनेपथ्यः, कुशसंस्तरसंश्रयः । मुक्तशस्त्रो ब्रह्मचारी, प्रतिजाग्रदवास्थित ॥ ५६ ॥
महीपतिः परिणमत्यष्टमे च तपस्यथ । निर्गत्य पौषधगृहात्, सस्नौ पुण्येन वारिणा ॥ ५७ ॥
सपाण्डुरध्वज-च्छत्रं, नानाप्रहरणाकुलम् । सडिण्डीर-यादस्कमधिपं सरितामिव ॥ ५८ ॥
दिव्यघण्टाचतुष्केण, लम्बमानेन पार्श्वतः । चन्द्रा-ऽऽदित्यचतुष्केण, सुमेरुमिव शोभितम् ॥ ५९ ॥
उच्चैरुच्चैःश्रवःकल्पैरश्वैरुद्धुरकन्धरैः । सनाथं पृथिवीनाथोऽध्यारुरोह महारथम् ॥ ६० ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

सेनया हस्त्यश्व-रथ-पदातिचतुरङ्गया । विराजमानो नीत्येव, स्वैया चतुरुपायया ॥ ६१ ॥
राजंश्छत्रेण शिरसि, चामराभ्यां च पार्श्वतः । जगत्त्रयव्यापियशोवल्लीकन्दैरिव त्रिभिः ॥ ६२ ॥
आततज्यधनुःपाणिः, सगरः सागरं ततः । रथचक्रनाभिदघ्नं,जलं यावदगाहत ॥ ६३ ॥

---

१ हिमम् । २ सूर्यवत् । *°र्णतां नयन् सः॥१॥ ३ मत्स्यविशेषः । ४ छादयन् । ५ विषमाम् । ६ इन्द्रेण । ७ मदशालाभिः । ८ समानाकृतिभिः । ९ पूर्णे सति । १० समुद्रफेनजलचरजन्तुसहितम् । ११ राजनीत्या सामदानदण्डभेदरूपया । १२ विस्तारिता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयश्रीनाटिकानान्दीं, पाणिना ज्यामवीवदत् । निषङ्गाच्च चकर्षेषुं, राजा रत्नं निधेरिव ॥ ६४ ॥
निदधे च धनुर्मध्ये, तमिषुं पृथिवीपतिः । धातकीखण्डमध्यस्थेष्वाकाराद्रिविडम्बकम् ॥ ६५ ॥
आचकर्ष तमाकर्णं, यान्तं कर्णावतंसताम् । काञ्चनं निजनामाङ्कं, भूपतिर्बाणमुल्बणम् ॥ ६६ ॥
सूत्कारिपक्षमुखरं, नवं तार्क्ष्यमिवाम्बरे । अधिमागधतीर्थेशं, विससर्ज शरं नृपः ॥ ६७ ॥
योजनानि द्वादशाब्धेः, समुल्लङ्घ्य निमेषतः । मागधतीर्थकुमारसभायां निपपात सः ॥ ६८ ॥
तडिद्दण्डमिवाऽकाण्डे, काण्डं तं प्रेक्ष्य तत्क्षणात् । चुकोप मागधपतिर्भृकुटीभङ्गभीषणः ॥ ६९ ॥
किञ्चिद् विमृश्य तं शरमुत्थाय स्वयमाददे । तत्रेक्षाञ्चक्रे सगरचक्रिनामाक्षराणि च ॥ ७० ॥
आसाञ्चक्रे धृतशरो, भूयः सिंहासने निजे । गिरा गम्भीरया स्वस्यां, पर्षद्येवमुवाच च ॥ ७१ ॥
द्वीपस्य जम्बूद्वीपस्य, क्षेत्रे भरतनामनि । द्वितीयश्चक्रभृज्जज्ञे, सगरो नाम सम्प्रति ॥ ७२ ॥
अवश्यकृत्यं भूतानां, भाविनां च सतां तथा । मागधाधिपतीनां हि, प्राभृतं चक्रवर्तिषु ॥ ७३ ॥
स इत्युदीर्य निभृतं, प्राभृतैर्भृत्यकायितः । उपतस्थे सविनयः, सगरं चक्रवर्तिनम् ॥ ७४ ॥
तं शरं हार-केयूर-ताडङ्क-कटकादिकम् । नेपथ्यं देवदूष्याणि, राज्ञेऽदात् स नभःस्थितः ॥ ७५ ॥
अम्भो मागधतीर्थीयं, स मागधकुमारकः । नरेन्द्रस्याऽर्पयामास, रसेन्द्रमिव वार्तिकः ॥ ७६ ॥
अञ्जलिं रचयित्वोच्चैः, पद्मकोशविडम्बकम् । उवाच मागधपतिर्वसुधाधिपतिं ततः ॥ ७७ ॥
एतस्मिन् भरतक्षेत्रे, प्राच्यां दिशि तवाऽस्म्यहम् । प्रान्तवर्त्येकसामन्त, इवाऽऽदेशकरः सदा ॥ ७८ ॥
भृत्यत्वेन प्रतीयेष, ततस्तमवनीपतिः । विससर्ज च सत्कृत्य, दुर्गपालमिव स्वकम् ॥ ७९ ॥
उदयन्निव मार्तण्डः, सगरः सागराम्भसः । निर्जगाम निजेनोच्चैः, रुन्धानस्तेजसा दिशः ॥ ८० ॥
गत्वा च शिबिरं स्नान-देवार्चनपुरःसरम् । विदधे सपरीवारः, पारणं राजवारणः ॥ ८१ ॥
अथ मागधतीर्थाधिपतेरष्टाह्निकोत्सवम् । चक्रे चक्री स्वामिदत्तमाहात्म्याः खलु सेवकाः ॥ ८२ ॥
सर्वदिग्विजयश्रीणामर्पणप्रतिभूसमम् । चक्ररत्नं चक्रिणोऽथ, प्रतस्थे दक्षिणां प्रति ॥ ८३ ॥
अपाक्पश्चिममार्गेण, चक्री चक्रानुगस्ततः । प्रचचालाऽचलां सैन्यैः, साचलां चलयन्निव ॥ ८४ ॥
कानप्युन्मूलयन् राज्ञस्तरूनिव समीरणः । शालिस्तम्बानिवोत्खाय, कानपि प्रतिरोपयन् ॥ ८५ ॥
नवानारोपयन् कांश्चित्, कीर्तिस्तम्भानिवोच्चकैः । कांश्चिन्मुञ्चन् नमयित्वा, नद्योघो वेतसानिव ॥ ८६ ॥
कुर्वन् कृत्ताङ्गुलीन् कांश्चित्, कांश्चिद् रत्नानि दण्डयन् । हस्त्यश्वं त्याजयन् कांश्चित्, कांश्चिच्छत्राणि मोचयन् ॥
क्रमादासादयामास, रोधो दक्षिणवारिधेः । सर्वदिग्जयनिर्माणे, सगरो दृढसङ्गरः ॥ ८८ ॥*
अवतीर्य करिस्कन्धात्, स्कन्धावारे क्षणात् कृते । विमाने वज्रभृदिवोवास वेश्मनि चक्रभृत् ॥ ८९ ॥
तत्र पौषधशालायां, कृताष्टमतपा नृपः । उद्दिश्य वरदामानं, तस्थौ स्वीकृतपौषधः ॥ ९० ॥
सगरोऽष्टमभक्तस्य, प्रान्ते पारितपौषधः । आच्छिन्नमिव मार्तण्डादारुरोह महारथम् ॥ ९१ ॥
नाभिदघ्नो रथो यावदगाहत महोदधिम् । रथेन सगरस्तेन, मथेव दधिमन्थनीम् ॥ ९२ ॥
अधिरोप्य धनुर्मूर्ध्नि, ज्यां टङ्कारमकारयत् । आकर्ण्यमानं न्यत्कर्णैर्यादोभिस्त्रासविह्वलैः ॥ ९३ ॥
अथेषुमिषुधेर्मध्याद्, भीषणेभ्योऽपि भीषणम् । अग्रहीदवनीनाथो, वार्तिकोऽहिं बिलादिव ॥ ९४ ॥
विधाय लस्तकन्यस्तं, तं कर्णाभ्यर्णमानयत् । विज्ञप्तिकार्थिनमिव, सेवकं सायकं नृपः ॥ ९५ ॥
वरदामपतेर्धाम, प्रतीषुं विससर्ज तम् । चक्रभृद् वज्रभृदिव, वज्रं प्रति शिलोच्चयम् ॥ ९६ ॥

---

१ वादयामास । २ तूणीरात् । ३ वर्तमानानाम् । ४ भृत्य इवाचरितः । ५ सिद्धरसम् । ६ सिद्धपुरुषः । ७ साक्षी । ८ वसुधाम् । ९ पर्वतसहिताम् । १० छिन्नाङ्गुलीन् । ११ दृढप्रतिज्ञः । * इतोऽग्रे चतुर्भिः कलापकम् इति सङ्ग २॥ १२ इन्द्रः । १३ गृहीतम् । १४ तूणीरस्य । १५ गारुडिकः । १६ धनुर्मध्यदेशः । १७ विज्ञापनाचिकीर्षुम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वरदामकुमारस्य, सभायां तस्थुषः पुरः । निपपात शरोऽकाण्डमुद्गराघातसन्निभः ॥ ९७ ॥
अकाले कस्य कालेनोत्क्षिप्तं पत्रमिति ब्रुवन् । **वरदामपति**र्बाणमुत्थाय स्वयमाददे ॥ ९८ ॥
दृष्ट्वा **सगरराज**स्य, तत्र नामाक्षराणि सः । शशाम नागदमनीमवलोक्येव पन्नगः ॥ ९९ ॥
आख्यच्च पर्षदे स्वस्यै, **जम्बूद्वीपस्य भारते** । चक्रभृत् **सगरो** नाम, द्वितीय उदपद्यत ॥ १०० ॥
वस्त्रैश्चित्रैर्महामूल्यैः, रत्नालङ्करणैरपि । ततश्च पूजनीयोऽयं, देवतेव गृहागतः ॥ १०१ ॥
सोऽभिधायैवमुपदामुपादाय च सत्वरम् । उपतस्थेऽन्तरिक्षस्थो, रथस्थं पृथिवीपतिम् ॥ १०२ ॥
किरीट-रत्न-मुक्तास्रक्केयूर-कटकादि सः । कोशागारिकवद् राज्ञेऽर्पयामास शरं च तम् ॥ १०३ ॥
वरदामाधिपोऽथैवमूचे स्थास्याम्यतः परम् । तवाऽऽदेशकरः शक्रदेश्यदेशे निजेऽपि हि ॥ १०४ ॥
तत्प्राभृतमुपादाय, तद्वचः प्रतिपद्य च । तं सत्कृत्य च कृत्यज्ञो, विससर्ज महीपतिः ॥ १०५ ॥
ततश्च ववले चक्री, चक्रमार्गानुगस्तथा । हेषमाणस्यन्दनाश्वो, जलवाजिविलोकनात् ॥ १०६ ॥
स्कन्धावारमुपेत्याऽथ, स रथादवरुह्य च । स्नात्वा कृत्वा जिनार्चां च, चकाराऽष्टमपारणम् ॥ १०७ ॥
वरदामकुमारस्योद्दाममष्टाह्निकोत्सवम् । चकार **सगरो** भक्तेष्वीशा हि प्रतिपत्तिदाः ॥ १०८ ॥
ततः प्रतस्थे पृथ्वीशश्चक्ररत्नपथानुगः । पश्चिमाभिमुखं मुष्णन्नुष्णांशुं सैन्यरेणुभिः ॥ १०९ ॥
पन्नगानिव पक्षीन्द्रो, **द्रविडान्** द्रावयन् द्रुतम् । तेजसाऽन्ध्रानन्धीकुर्वन्नुलूकानिव भास्करः ॥ ११० ॥
त्याजयन् राज्यलिङ्गानि, **त्रिकलिङ्गै**रसूनिव । कुर्वन् **विदर्भान्** निःसत्त्वान्, दर्भसंस्तरणानिव ॥ १११ ॥
त्यक्तराष्ट्रान् **महाराष्ट्रान्**, कुर्वन् कर्पटिकानिव । कुर्वाणः **कौङ्कणान्** बाणैरङ्कितांस्तुरगानिव ॥ ११२ ॥
ललाटस्थाञ्जलींल्लाटान्, घटयन् सातपानिव । विष्वक् सङ्कोचयन् कच्छानतुच्छान् कच्छपानिव ॥११३॥
सुराष्ट्रान् नाष्ट्रवत् क्रूरान्, विदधानो वशंवदान् । पश्चिमाम्भोनिधे रोधः, क्रमेण प्राप पार्थिवः ॥११४॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥
स्कन्धावारमधिष्ठाय, **प्रभास**मधिकृत्य सः । कृताष्टमोऽथ जग्राह, पौषधं पौषधौकसि ॥ ११५ ॥
अष्टमान्ते रविरिवाऽऽरुह्य राजा महारथम् । नाभिदघ्नं जलं यावज्जगाहे **लवणोदधिम्** ॥ ११६ ॥
तत्राधिज्यं धनुः कृत्वा, ज्यानिर्घोषं ततान सः । बाणप्रयाणकल्याणजयातोद्यरवोपमम् ॥ ११७ ॥
अधिप्रभासतीर्थेशनिवासमथ सायकम् । स्वनामाङ्कं स सन्देशहरं दूतमिवाऽमुचत् ॥ ११८ ॥
अन्ते द्वादशयोजन्याः, **प्रभाससुर**सद्मनि । स तत्र न्यपतत् पत्री, पतत्रीव महाद्रुमे ॥ ११९ ॥
सोऽपि तं पत्रिणं प्रेक्ष्य, प्रेक्षापूर्वकृतां वरः । अवाचयत् तत्र नामवर्णान् **सगरचक्रिणः** ॥ १२० ॥
उपात्तोपायनः सोऽथ, तमुपादाय सायकम् । भक्त्याऽतिथिं गुरुमिवाऽभ्यागमत् **सगरं** नृपम् ॥ १२१ ॥
चूडामणिं निष्कोरस्के, कटकान् कटिसूत्रकम् । केयूरे चाऽऽर्पयद् राज्ञे, तं चेषुं स नभःस्थितः ॥ १२२ ॥
स विनीतो विनीतेशमित्यूचे विषयेऽत्र हि । चक्रवर्तिंस्त्वदादेशवर्ती वत्स्याम्यतः परम् ॥ १२३ ॥
उपायनमुपादाय, समालप्य च सादरम् । विससर्जाऽऽयुक्तमिव, **प्रभासं** भूमिवासवः ॥ १२४ ॥
सगरः शिबिरं गत्वा, स्नात्वा कृतजिनार्चनः । चकाराऽष्टमभक्तान्ते, पारणं सपरिच्छदः ॥ १२५ ॥
प्रभासतीर्थाधिपतेर्वरदामपतेरिव । अष्टाह्निकोत्सवं चक्रे, प्रीतो वसुमतीपतिः ॥ १२६ ॥
अनुचक्रं ततश्चक्री, **सिन्धो**र्दक्षिणरोधसा । प्रतीपगामिसिन्ध्वेव, सेनया प्राङ्मुखो ययौ ॥ १२७ ॥
सिन्धुदेवीसद्मनश्चाऽदूरतः शिबिरं न्यधात् । सद्योऽवतीर्णगन्धर्वपुरोपममिलापतिः ॥ १२८ ॥
सिन्धुदेवीं च मनसि, कृत्वाऽष्टमतपो नृपः । चकार **सिन्धुदेव्या**श्च, रत्नासनमकम्पत ॥ १२९ ॥

१ ओषधिभेदः । २ प्राभृतम् । ३ इन्द्रसदृशदेशे । ४ गौरवकारिणः । ५ सूर्यम् । ६ देशविशेषैः । ७ भिक्षुकानिव । ८ राक्षसवत् । ९ शरः । १० पक्षीव । ११ भृत्यमिव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदाञ्चकाराऽवधिना, सा च चक्रिणमागतम् । उपायनकरा भक्तिपराऽथ तमुपाययौ ॥ १३० ॥
अष्टोत्तरं रत्नकुम्भसहस्रं निधिसोदरम् । मणि-रत्नविचित्रं च, स्वर्णभद्रासनद्वयम् ॥ १३१ ॥
केयूर-कटकादीनि, रत्नालङ्करणानि च । देवदूष्याणि च ददौ, भूभुजे सा नभस्थिता ॥ १३२ ॥ युग्मम् ॥
इत्यभाषिष्ट सा देवी, नरदेववराऽधुना । [1]भवद्विषयवास्तव्या, किङ्करीवाऽस्मि शाधि माम् ॥ १३३ ॥
अतिपीयूषगण्डूषैर्वचोभिः प्रतिभाष्य ताम् । विससर्ज महीनाथश्चक्रे चाऽष्टमपारणम् ॥ १३४ ॥
विदधे सिन्धुदेव्याश्च, प्राग्वदष्टाह्निकोत्सवम् । महात्मनां महर्द्धीनामुत्सवा हि पदे पदे ॥ १३५ ॥
चक्रमायुधशालायाः, स्वशालाया इव द्विपः । निर्जगाम श्रियां धाम, [2]ककुभोत्तरपूर्वया ॥ १३६ ॥
नृपस्तदनुगच्छंश्च, दिनैः कतिपयैरपि । नितम्बं दक्षिणं प्राप, वैताढ्यस्य महागिरेः ॥ १३७ ॥
निधाय तत्र शिबिरं, विद्याधरपुरोपमम् । अधिवैताढ्यकुमारं, सोऽष्टमं विदधे तपः ॥ १३८ ॥
महीपतेः [3]परिणमत्यष्टमे च तपस्यथ । वैताढ्याद्रिकुमारस्य, सिंहासनमकम्पत ॥ १३९ ॥
वैताढ्याद्रिकुमारोऽपि, बुबुधेऽवधिना ततः । [4]भरतार्धावधावभ्युपेतं सगरचक्रिणम् ॥ १४० ॥
सोऽभ्येत्य राज्ञे रत्नानि, दिव्यानि वसनानि च । ददौ नभःस्थितो भद्रासन-वीरासनानि च ॥ १४१ ॥
चिरं जीव चिरं नन्द, चिरं जय जयेति च । [5]सौवस्तिक इव साऽऽह, स हृष्टः पृथिवीपतिम् ॥ १४२ ॥
स्वं बान्धवमिवाऽभीष्टं, तमाभाष्य सगौरवम् । सगरो विससर्जाऽथ, चकाराऽष्टमपारणम् ॥ १४३ ॥
वैताढ्याद्रिकुमारस्य, चक्रे चाऽष्टाह्निकोत्सवम् । निजप्रसादप्रासादसुवर्णकलसोपमम् ॥ १४४ ॥
ततश्चक्रानुगो गत्वा, तमिस्रां निकषा गुहाम् । पञ्चानन इवोवास, निधाय शिबिरं नृपः ॥ १४५ ॥
कृतमालाभिधं तत्र, देवं मनसिकृत्य सः । चक्रेऽष्टमतपः कृत्यं, महान्तो न त्यजन्ति हि ॥ १४६ ॥
राज्ञोऽष्टमे परिणमत्यकम्पत तदासनम् । तादृशाम[6]भियोगे हि, कम्पन्ते पर्वता अपि ॥ १४७ ॥
ज्ञात्वाऽवधिप्रयोगेण, कृतमालोऽपि चक्रिणम् । उपस्थितं प्रभुमिवोपतस्थे गगनस्थितः ॥ १४८ ॥
स्त्रीरत्नयोग्यं तिलकचतुर्दशमदत्त सः । नेपथ्यजातं वस्त्राणि, गन्ध-चूर्ण-स्रगादि च ॥ १४९ ॥
देवो जय जयेत्युक्त्वा, स सेवां प्रत्य[7]पद्यत । सेवनीयाश्चक्रिणो हि, देवैरपि नरैरिव ॥ १५० ॥
प्रसादपूर्वमालप्य, नृपतिर्विससर्ज तम् । चक्रे च सपरीवारोऽष्टमभक्तान्तपारणम् ॥ १५१ ॥
देवस्य कृतमालस्य, सादरः सगरस्ततः । अष्टाह्निकोत्सवं चक्रे, देवानां प्रीतिदं ह्यदः ॥ १५२ ॥
अष्टाह्निकान्ते सगरः, पश्चिमं सिन्धुनिष्कुटम् । *विजेतुमर्धसैन्येन, सैन्यनाथं समादिशत् ॥१५३॥
अथ तन्मेदिनीभर्तुः, शासनं रचिताञ्जलिः । शिरसा प्रतिजग्राह, मालामिव चमूपतिः ॥ १५४ ॥
विख्यातो भारते वर्षे, महाबल-पराक्रमः । [8]नभस्वानिव [9]विवस्वानिव चोग्रेण तेजसा ॥ १५५ ॥
समस्तम्लेच्छभाषाज्ञः, समस्तलिपिपण्डितः । विचित्रचारुभाषी च, सरस्वत्या इवाऽऽत्मजः ॥ १५६ ॥
निष्कुटानामशेषाणां, भरतक्षेत्रवर्तिनाम् । जल-स्थलजदुर्गाणां, विज्ञाताऽऽगम-निर्गमौ ॥ १५७ ॥
[10]अस्त्रवेदः शरीरीव, सर्वायुधविचक्षणः । कृतस्नानः कृतप्रायश्चित्त-कौतुकमङ्गलः ॥ १५८ ॥
[11]सितपक्ष इव स्वल्पनक्षत्रमणिभूषणः । शरासनधरो धीरः, सेन्द्रचाप इवाम्बुदः ॥ १५९ ॥
सविद्रुमवितानोऽब्धिरिव चर्माख्यरत्नभृत् । सरोवत् पुण्डरीकेणोद्दण्डेनोपरि शोभितः ॥ १६० ॥
[12]भ्राजच्चामराभ्यां श्रीखण्डस्यासकाभ्यामिवांसयोः । तूर्यनादैर्नादयन् द्यां, स्तनितैरिव वारिदः ॥ १६१ ॥
सैन्येन चतुरङ्गेण, सेनानीः परिवारितः । आरुह्येभवरं सिन्धुप्रवाहाभ्यर्णमाययौ ॥ १६२ ॥
॥ अष्टभिः कुलकम् ॥

१ स्वदेशवासिनी । २ दिशया । ३ पूर्णे । ४ भरतार्धस्य सीमनि । ५ स्वस्तिवाचको द्विजः । ६ उद्योगे । ७ स्वीकृतवान् ।
* निर्जेतु° सङ्घ २ ॥ ८ वायुः । ९ सूर्यः । १० धनुर्वेदः । ११ शुक्लपक्षः । १२ शोभमानः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ पस्पर्श सेनानीश्चर्मरत्नं स्वपाणिना । तदन्तःसिन्धु ववृधे, नावाकारं बभूव च ॥ १६३ ॥
तेनोत्ततार तां सिन्धुं, सह चम्वा चमूपतिः । अपारमिव संसारं, योगीन्द्रो योगलीलया ॥ १६४ ॥
सिन्धुतीरादथ स्तम्भादिव मत्तमतङ्गजः । प्रससार महासारोऽस्खलितं पृतनापतिः ॥ १६५ ॥
सिंहलकान् बर्बरकांष्टङ्कणानितरानपि । द्वीपं च यवनद्वीपमाचक्राम चमूपतिः ॥ १६६ ॥
कालमुखान् जोनकांश्च, तथा वैताढ्यसंश्रिताः । नानाविधा म्लेच्छजातीः, स स्वच्छन्दमदण्डयत् ॥१६७
समस्तदेशप्रवरं, कच्छदेशं च लीलया । महोक्ष इव सेनानीरुपदुद्राव विक्रमी ॥ १६८ ॥
तदन्तात् प्रतिनिवृत्य, तस्यैवोर्वीतले समे । अवतस्थे चमूनाथोऽम्भःक्रीडोत्तीर्णहस्तिवत् ॥ १६९ ॥
म्लेच्छा मडम्ब-नगर-ग्रामादीनामधीश्वराः । तं तत्रेयुः सर्वतोऽपि, पाशाकृष्टा इव द्रुतम् ॥ १७० ॥
भूषणानि विचित्राणि, रत्नानि वसनानि च । रजतं च सुवर्णं च, तुरङ्गान् कुञ्जरानपि ॥ १७१ ॥
स्यन्दनान्यन्यदपि यत्, प्रकृष्टं वस्तु किञ्चन । सेनान्ये तदुपनिन्युर्न्यासार्पितमिवाऽथ ते ॥ १७२ ॥
॥ युग्मम् ॥
कुटुम्बिका इव वयं, करदा वशगाश्च वः । स्थास्यामोऽत्रेति सेनान्यं, ते बद्धाञ्जलयोऽवदन् ॥ १७३ ॥
तत्प्राभृतमुपादाय, व्यसृजत् तांश्चमूपतिः । एत्योत्ततार सिन्धुं च, चर्मरत्नेन पूर्ववत् ॥ १७४ ॥
गत्वोपनिन्ये तत्सर्वं, सगराय स भूभुजे । कृष्टा इवाऽऽयान्ति, शक्त्या शक्तिमतां श्रियः ॥ १७५ ॥
दूरदूरादेत्य भूपैः, सरिद्भिरिव सागरः । उपास्यमानः सगरस्तत्राऽस्थाच्छिबिरे चिरम् ॥ १७६ ॥
तमिस्राद्क्षिणद्वारकपाटोद्घाटनाय सः । सेनान्यमन्यदाऽऽदिक्षद्, बिभ्राणं दण्डकुञ्चिकाम् ॥ १७७ ॥
स गत्वोपतमिस्रं च, कृतमालामरं प्रति । चक्रेऽष्टमतपः प्रायस्तपोग्राह्या हि देवताः ॥ १७८ ॥
अष्टमान्ते कृतस्नानः, शुचिवस्त्रविलेपनः । उपात्तधूपदहनोऽगाद् गुहां देवतामिव ॥ १७९ ॥
कृत्वा प्रणाममालोकमात्रेऽपि पृतनापतिः । तस्या द्वारे द्वाःस्थ इव, दण्डपाणिरवास्थित ॥ १८० ॥
विधायाऽष्टाह्निकां तस्या, लिखित्वा चाऽष्टमङ्गलीम् । दण्डरत्नेन सेनानीस्तत्कपाटावताडयत् ॥ १८१ ॥
सैरत्सरिति संरावं, कुर्वाणौ तत्क्षणादथ । व्यघटेतां तत्कपाटौ, शुष्कशिम्बापुटाविव ॥ १८२ ॥
कपाटोद्घाटनं तच्च, शशंस सगराय सः । सरत्सरिति निर्घोषकथितं पुनरुक्तवत् ॥ १८३ ॥
हस्तिरत्नं समारुह्य, चतुरङ्गचमूवृतः । दिक्पालानामेकतम, इव तत्राऽऽययौ नृपः ॥ १८४ ॥
निदधे दक्षिणे कुम्भे, कुम्भिरत्नस्य भूपतिः । मणिरत्नं मल्लिकायां, प्रदीपमिव भासुरम् ॥ १८५ ॥
ततश्चक्रानुगश्चक्री, केसरीवास्खलद्गतिः । पञ्चाशद्योजनायामां, तमिस्रां प्राविशद् गुहाम् ॥ १८६ ॥
गोमूत्रिकाक्रमेणाऽथ, गुहाभित्त्योर्द्वयोरपि । पञ्चधन्वशतीभाञ्जि, विष्कम्भा-ऽऽयाममानयोः ॥ १८७ ॥
योजनान्तरितान्येकहीनां पञ्चाशतं नृपः । ध्वान्तनाशाय काकिण्या, मण्डलान्यालिखन् ययौ ॥ १८८ ॥
उद्घाटितं गुहाद्वारं, गुहान्तर्मण्डलानि च । तावत् तान्यपि तिष्ठन्ति, यावज्जीवति चक्रभृत् ॥ १८९ ॥
मानुषोत्तरसीमस्थचन्द्र-सूर्यपरम्पराम् । विडम्बयद्भिरुद्योतो, गुहान्तस्तैरजायत ॥ १९० ॥
निर्यान्त्यौ गुहाप्राग्भित्तेः, प्रत्यग्भित्तेश्च मध्यतः । प्रापोन्मग्ना-निमग्नाख्ये, निम्नगे सोऽथ सिन्धुगे॥१९१॥
उन्मग्नायां विनिक्षिप्ता, प्रोन्मज्जति शिलाऽपि हि । निमग्नायां पुनः क्षिप्तमलाब्वपि निमज्जति ॥१९२॥
सद्यो वर्धकिरत्नेन, बद्धया पद्यया च ते । अलङ्घत गृहस्रोतोलीलया सबलो नृपः ॥ १९३ ॥
स क्रमेण तमिस्रायाः, उत्तरं द्वारमासदत् । व्यघटेतां तत्कपाटे, स्वयमेवाऽब्जकोशवत् ॥ १९४ ॥
निर्जगाम गुहामध्यादब्धिमध्यादिवाऽर्यमा । सगरः सपरीवारो, वारणस्कन्धमाश्रितः ॥ १९५ ॥

---

१ सेनापतिः । २ दास्यः । * ° पाणिरिवास्थि° सङ्क १ ॥ ३ सर सर इतिरूपं शब्दम् । ४ दीपिकायाम् । ५ नद्यौ ।
६ तरति । ७ तुम्बिका । ८ नद्यौ ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

न्यत्कारकारिणं भानोः, सर्वतोऽप्यस्त्रदीप्तिभिः । भूरजोभिः खेचरीणां, ह्यनिमेषविशेषदम् ॥ १९६ ॥
सैन्यप्राग्भारभारेण, भूमिकम्पविधायिनम् । दिवस्पृथिव्योस्तुमुलध्वानैर्बाधिर्यदायिनम् ॥ १९७ ॥
अप्यकाण्डे काण्डपटमध्यादिव विनिर्गतम् । नभस्तलादिवाऽऽयातं, पातालादिव चोत्थितम् ॥ १९८ ॥
अनन्तसैन्यगहनं, पुरश्चक्रेण भीषणम् । सगरं सागरमिवाऽऽपतन्तं प्रेक्ष्य तत्क्षणात् ॥ १९९ ॥
आपाता नाम दुष्पाताः, किराता दोर्मदोद्धुराः । सक्रोधं सोपहासं चाऽन्योऽन्यमेवं बभाषिरे ॥२००॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥
भो भोः सर्वेऽपि दोष्मन्तो, ब्रूत देशेऽत्र सम्प्रति । कोऽप्रार्थितप्रार्थकोऽयं, श्रीह्रीधीकीर्त्तिवर्जितः ॥ २०१ ॥
निर्लक्षणो वीरमानी, मानेनान्धम्भविष्णुकः । कासरो हा ! प्रविशति, वने केसर्यधिष्ठिते ? ॥ २०२ ॥
॥ युग्मम् ॥
इत्युदीर्य महावीर्या, अग्रानीकमुपाद्रवन् । म्लेच्छराजाश्चक्रपाणेर्वज्रपाणेरिवाऽसुराः ॥ २०३ ॥
नष्टद्विपं हतहयं, भग्नाक्षस्यन्दनं तथा । क्षणात् परावृत्तमिव, तदनीकमजायत ॥ २०४ ॥
स्वसैन्यं चक्रिसेनानीः, किरातैः प्रेक्ष्य विद्रुतम् । वैवस्वत इव क्रुद्धोऽध्यारोहद् रत्नवाजिनम् ॥ २०५ ॥
असिरत्नं समाकृष्य, धूमकेतुमिवोद्गतम् । प्रभञ्जन इवौजस्वी, प्रति म्लेच्छमधावत ॥ २०६ ॥
कानप्युन्मूलयामास, निष्पिपेष च कानपि । कानप्यपातयन्म्लेच्छान्, स वनेभ इव द्रुमान् ॥ २०७ ॥
तेन भग्नाः किरातास्ते, निःस्थामानोऽपचक्रमुः । बहूनि योजनान्याशु, पवनोद्धूततूलवत् ॥ २०८ ॥
दूरे गत्वाऽथ सम्भूय, सिन्धुनद्यास्तटावनौ । वालुकास्रस्तरेष्वस्थुरुत्ताना मुक्तवाससः ॥ २०९ ॥
देवान् मेघमुखान् नागकुमारान् कुलदेवताः । उद्दिश्याऽष्टमभक्तानि, जगृहुस्तेऽत्यमर्षणाः ॥ २१० ॥
तदष्टमान्ते देवानामासनानि चकम्पिरे । दृशेवाऽवधिनाऽपश्यन्, किरातांस्ते तथास्थितान् ॥ २११ ॥
कृपया पितृवत् तेषामर्त्या जातार्त्तयोऽथ ते । तानुपेत्यान्तरिक्षस्थाः, प्रोचुर्मेघमुखा इति ॥ २१२ ॥
हे वत्सा ! हेतुना केन, यूयमेवं हि तिष्ठथ ? । अविलम्बेन तं ब्रूत, यथा वः प्रतिकुर्महे ॥ २१३ ॥
ततः किराता इत्यूचुः, कोऽप्यसौ विषयेऽत्र नः । प्राविशद् दुःप्रवेशेऽपि, पयोधाविव वाडवः ॥ २१४ ॥
वयं तेन पराभूता, युष्मान् शरणमाश्रिताः । स यथा याति भूयोऽपि, नाऽऽयाति च तथाऽस्तु नः ॥२१५॥
तेऽप्यभ्यधुः सुरा एवं, कृशानोः शलभा इव । यूयमस्थाऽनभिज्ञाः स्थ, तेनेदमभिधत्थ भोः ! ॥ २१६ ॥
अयं हि सगरो नाम, चक्रवर्ती महाभुजः । सुराणामसुराणां चाऽविजय्यः शक्रविक्रमः ॥ २१७ ॥
शस्त्रा-ऽग्नि-विष-मन्त्रा-ऽम्बु-तन्त्र-विद्याद्यगोचरः । उपद्रोतुं वज्र इव, न हि केनाऽपि शक्यते ॥ २१८ ॥
तथापि वोऽनुरोधेन, चक्रिणोऽस्य महौजसः । मशकाः कुञ्जरस्येव, करिष्याम उपद्रवम् ॥ २१९ ॥
इत्युदित्वा तिरोभूय, ते मेघवदनाः सुराः । स्कन्धावारोपरि स्थित्वा, तेनिरे घोरदुर्दिनम् ॥ २२० ॥
नीरन्ध्रेणान्धकारेणाऽपूर्यन्त ककुभस्तथा । जनुषाऽन्धलवद् रूपं, नोपलेभे यथा जनः ॥ २२१ ॥
धाराभिस्तेऽथ मुसलमानाभिः शिबिरोपरि । ससरात्रं प्रववृषुरनिर्विण्णाः समीरवत् ॥ २२२ ॥
अरिष्टवृष्टिमच्छिन्नां, प्रेक्ष्य तां चक्रवर्त्यपि । स्वयं पाणिसरोजेन, चर्मरत्नं परामृशत् ॥ २२३ ॥
स्कन्धावारप्रमाणेन, ववृधे तत् क्षणादपि । तच्च तिर्यक् समास्तीर्णं, ततार सलिलोपरि ॥ २२४ ॥
महापोतमिवाऽऽरोहत्, ससैन्यस्तन्नरेश्वरः । छत्ररत्नं च संस्पृश्याऽतानयच्चर्मरत्नवत् ॥ २२५ ॥
चक्रे चर्मोपरि च्छत्रं, सोऽभ्रं भुव इवोपरि । मणिरत्नं न्यधाच्छत्रदण्डान्ते द्योतहेतवे ॥ २२६ ॥
छत्र-चर्मान्तरे तस्थौ, तद् राज्ञः शिबिरं सुखम् । असुर-व्यन्तरगण, इव रत्नप्रभान्तरे ॥ २२७ ॥

---

१ तिरस्कारकारिणम् । २ बधिरत्वदायिनम् । ३ दुःखदः पातो येषां ते । ४ महिषः । ५ यमः । ६ वायुरिव । ७ पीडया । ८ भग्नैः । ९ दिशः । १० जन्मान्धवत् । ११ मुसलप्रमाणाभिः । १२ अखण्डाम् । १३ परस्पर्श । १४ विस्तारितम् । १५ विस्तारयामास ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वधान्यानि शाकांश्च, फलादि च गृहाधिपः । प्रातरुप्त्वा ददौ सायं, रत्नमाहात्म्यमीदृशम् ॥ २२८ ॥
अखण्डिताभिर्धाराभिर्वर्षति स निरन्तरम् । तथैव ते मेघमुखा, दुर्वाग्भिरिव दुर्मुखाः ॥ २२९ ॥
क एते मामुपद्रोतुं, प्रवृत्ता हन्त! दुर्धियः? । एवं सकोपः सगरश्चिन्तयामास चेतसि ॥ २३० ॥
सान्निध्यकारिदेवानां, सहस्राः षोडशापि ते । कुपिता वर्मिताः सास्त्रास्तानुपेत्यैवमभ्यधुः ॥ २३१ ॥
अरे वराकाः! किमिमं, सगरं चक्रवर्तिनम् । देवादीनामप्यजय्यं, न जानीथाऽल्पमेधसः? ॥२३२॥
अपसर्पत तत् तूर्णं, चेदात्मकुशलेच्छवः । अन्यथा खण्डयिष्यामो, युष्मान् कूष्माण्डवद् वयम् ॥ २३३ ॥
इत्युक्तास्तैर्मेघमुखा, मेघान् संहृत्य तत्क्षणम् । त्रस्तास्तिरोदधुः क्वापि, शफरा इव वारिणि ॥ २३४ ॥
तदापातकिरातानां, गत्वा मेघमुखाः सुराः । आदिशंश्चक्रवर्त्येष, न जय्योऽस्मादृशामिति ॥ २३५ ॥
ततः किरातास्ते भीताः, स्त्रीवत् परिहितांशुकाः । रत्नोपायनमादाय, सगरं शरणं ययुः ॥ २३६ ॥
पतित्वा पादयोश्चक्रवर्तिनो वशवर्तिनः । आबद्धाञ्जलयो मूर्ध्नि, ते किराता व्यजिज्ञपन् ॥ २३७ ॥
स्वामिन्नस्माभिरज्ञानात्, त्वां प्रतीदमनुष्ठितम् । शरभैः प्रति पर्जन्यं, कालकर्मेव दुर्मदैः ॥ २३८ ॥
अविमृश्यविधायित्वं, तत् तितिक्षस्व नः प्रभो!। प्रणिपातावसानो हि, कोपाटोपो महात्मनाम् ॥२३९॥
कुटुम्बिनः पत्तयो वा, सामन्ता वा त्वदाज्ञया । अतः परं भविष्यामस्त्वदधीना हि नः स्थितिः ॥२४०॥
चक्र्यप्युवाच तानेवं, मदीयीभूय तिष्ठत । अपाग्भरतवर्षार्धसामन्ता इव दण्डदाः ॥ २४१ ॥
एवमालप्य सत्कृत्य, किरातान् व्यसृजन्नृपः । सेनान्यं चाऽऽदिशज्जेतुं, सिन्धोः पश्चिमनिष्कुटम्॥२४२॥
चर्मणा पूर्ववत् सिन्धुमुत्तीर्य पृतनापतिः । गिरि-सागरमर्यादानजयत् सिन्धुनिष्कुटान् ॥ २४३ ॥
म्लेच्छानां दण्डमादाय, दण्डेशश्चण्डविक्रमः । आययौ सगरं वारिसम्पूर्ण इव वारिदः ॥ २४४ ॥
भोगान् विचित्रान् भुञ्जानः, सोऽर्च्यमानो महीश्वरैः । तत्रैवाऽस्थाचिरं नास्ति, विदेशः कोऽपि दोष्मताम् ॥
अन्यदा चक्रिणश्चक्रं, निश्चक्रामाऽऽयुधौकसः । मार्गेणोत्तरपूर्वेण, ग्रीष्मे बिम्बमिवोष्णगोः ॥ २४६ ॥
गच्छंश्चक्रानुगो राजा, क्षुद्रस्य हिमवद्गिरेः । नितम्बं दक्षिणं प्राप, दत्तावासोऽध्युवास च ॥ २४७ ॥
उद्दिश्य क्षुद्रहिमवत्कुमारं तत्र सोऽकरोत् । तपोऽष्टमं पौषधं चोपादत्ते पौषधौकसि ॥ २४८ ॥
पौषधान्ते रथारूढोऽगात् क्षुद्रहिमवद्गिरिम् । जघान च रथाग्रेण, स त्रिर्दन्तेन दन्तिवत् ॥ २४९ ॥
नियम्य तुरगांस्तत्र, कृत्वाऽधिज्यं शरासनम् । निजनामाङ्कितं बाणं, विससर्ज नरेश्वरः ॥ २५० ॥
द्वासप्ततिं योजनानि, गत्वा क्रोशमिव क्षणात् । सोऽपतत् क्षुद्रहिमवत्कुमारस्य पुरो भुवि ॥ २५१ ॥
क्षणं चुकोप बाणेन, बाणनामाक्षरैः पुनः । क्षणादशाम्यत् स क्षुद्रहिमाचलकुमारकः ॥ २५२ ॥
गोशीर्षचन्दनं सर्वौषधीः पद्मह्रदोदकम् । देवदूष्याणि तं बाणं, रत्नालङ्करणानि च ॥ २५३ ॥
देवद्रुपुष्पमालाश्चोपनिन्ये सगराय सः । प्रत्यपद्यत सेवां च, जयेत्युक्त्वा नभःस्थितः ॥ २५४ ॥
तं विसृज्य ततो राजा, वालयित्वा निजं रथम् । ययावृषभकूटाद्रिं, त्रिर्जघान तथैव तम् ॥ २५५ ॥
अश्वान् नियम्य काकिण्या, प्राग्भागे तस्य भूभृतः । द्वितीयः सगरश्चक्रीत्यक्षराणि लिलेख सः ॥२५६॥
ततो रथं वालयित्वा, स्कन्धावारमुपेत्य च । विदधेऽष्टमभक्तान्तपारणं पृथिवीपतिः ॥ २५७ ॥
हिमाचलकुमारस्य, चक्रेऽथाऽष्टाह्निकोत्सवम् । ऋद्ध्या महत्या सगरः, पूर्णदिग्जयसङ्गरः ॥ २५८ ॥
मार्गेणोत्तरपूर्वेण, चक्ररत्नानुगस्ततः । गङ्गादेवीभवनाभिमुखं सुखमगान्नृपः ॥ २५९ ॥
निदधे शिबिरं गङ्गासद्मनोऽनतिदूरतः । विदधेऽष्टमभक्तं च, गङ्गामुद्दिश्य भूपतिः ॥ २६० ॥
सिन्धुदेवीव गङ्गाऽपि, विज्ञायाऽऽसनकम्पतः । उपतस्थेऽन्तरिक्षस्थाऽष्टमान्ते चक्रवर्तिनम् ॥ २६१ ॥
सहस्रं रत्नकुम्भानामष्टोत्तरमदत्त च । स्वर्ण-माणिक्यचित्रं च, रत्नसिंहासनद्वयम् ॥ २६२ ॥

१ भक्षसहिताः । २ मत्स्याः । ३ अष्टापदैः । ४ सूर्यस्य । ५ कल्पवृक्षपुष्पमालाः । ६ प्रतिज्ञा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसृज्य गङ्गां सगरो, विदधेऽष्टमपारणम् । अष्टाह्निकोत्सवं चाऽस्याः, प्रीतये प्रीतमानसः ॥ २६३ ॥
चक्रादिष्टेन मार्गेण, दिशा दक्षिणया ततः । सोऽखण्डविक्रमः खण्डप्रपाताभिमुखं ययौ ॥२६४॥
आरात् खण्डप्रपातायाः, स्कन्धावारं न्यधत्त सः । नाट्यमालकमुद्दिश्याऽष्टमभक्तं चकार च ॥२६५॥
अष्टमान्ते नाट्यमालो, विज्ञायाऽऽसनकम्पतः । सोपायन उपागच्छद्, ग्रामेश इव भूपतिम् ॥ २६६ ॥
नानाविधानलङ्कारान्, स ददौ चक्रवर्तिनः । प्रत्यपद्यत सेवां च, विनीतो मण्डलेशवत् ॥ २६७ ॥
विसृज्य तं च सगरः, पारणानन्तरं मुदा । अष्टाह्निकां तस्य चक्रे, कृतप्रतिकृतोपमाम् ॥ २६८ ॥
अथ चक्रधरादेशात्, सेनानीरर्धसेनया । सिन्धुनिष्कुटवद् गाङ्गं, प्राग्निष्कुटमसाधयत् ॥ २६९ ॥
वैताढ्यपर्वतश्रेणिद्वयविद्याधरानथ । पर्वतीयानिव नृपान्, सगरस्तरसाऽजयत् ॥ २७० ॥
रत्नालङ्कार-वासांसि, हस्तिनस्तुरगांश्च ते । चक्रनाथस्य ददिरे, सेवां च प्रतिपेदिरे ॥ २७१ ॥
विद्याधरान् धराधीशः, सत्कृत्य विससर्ज तान् । तुष्यन्ति हि महीयांसः, सेवामय्या गिराऽपि हि ॥२७२॥
नृपादेशेन सेनानीरष्टमादिपुरःसरम् । तमिस्रावद् गुहां खण्डप्रपातामुदघाटयत् ॥ २७३ ॥
सगरो गजमारुह्य, तत्कुम्भे दक्षिणे मणिम् । मेरुशृङ्ग इवाऽऽदित्यं, न्यस्य तां प्राविशद् गुहाम् ॥२७४॥
मण्डलान्यालिखन् प्राग्वत्, काकिण्या पार्श्वयोर्द्वयोः । उत्तीर्य प्राग्वदुन्मग्ना-निमग्ने निम्नगे अपि ॥२७५॥
गुहाया मध्यतस्तस्या, अपाग्द्वारेण भूपतिः । स्वयमुद्घाटितेनाऽथ, नद्योघ इव निर्ययौ ॥ २७६ ॥
गङ्गायाः पश्चिमे कूले, स्कन्धावारं न्यधान्नृपः । उद्दिश्य निधिरत्नानि, विदधे चाऽष्टमं तपः ॥ २७७ ॥
तदन्ते नैसर्प-पाण्डू, पिङ्गलः सर्वरत्नकः । महापद्मः काल-महाकालौ माणव-शङ्खकौ ॥२७८॥
इत्येते नव निधयः, कृतसन्निधयोऽमरैः । सहस्रसङ्ख्यैः प्रत्येकं, नरेन्द्रमुपतस्थिरे ॥ २७९ ॥
इत्यूचुस्ते वयं गङ्गामुखमागधवासिनः । आगतास्त्वां महाभाग !, त्वद्भाग्येन वशीकृताः ॥ २८० ॥
यथाकाममविश्रान्तमुपभुङ्क्ष्व प्रयच्छ च । अपि क्षीयेत पाथोऽब्धौ, न तु क्षीयामहे वयम् ॥ २८१ ॥
*नवभिर्यक्षसहस्रैः, किङ्करैरिव तावकैः । आपूर्यमाणाः सततं, चक्राष्टकप्रतिष्ठिताः ॥ २८२ ॥
द्वादशयोजनायामा, नवयोजनविस्तृताः । भूमध्ये सञ्चरिष्यामो, देव ! त्वत्पारिपार्श्विकाः ॥ २८३ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥
तद्वाचमनुमन्याऽथ, भूपतिः कृतपारणः । अष्टाह्निकोत्सवं तेषामकार्षीदातिथेयवत् ॥ २८४ ॥
सेनानीः सगरादेशाद्, द्वितीयमपि निष्कुटम् । प्राचीनं जाह्नवीदेव्याः, साधयामास खेटवत्[1] ॥२८५॥
चतुर्भिर्निष्कुटैर्गङ्गा-सिन्ध्वोर्मध्यस्थितेन च । खण्डद्वयेन षट्खण्डं, भारतं वर्षमित्यदः ॥ २८६ ॥
द्वात्रिंशताऽब्दसहस्रैः, सगरस्तदशात् सुखम् । अनुत्सुकानां शक्तानां, लीलापूर्वाः प्रवृत्तयः ॥२८७॥
चतुर्दशमहारत्नपतिर्नवनिधीश्वरः । द्वात्रिंशता सहस्रैश्च, सेव्यमानो महीभुजाम् ॥ २८८ ॥
जायानां राजपुत्रीणां, [2]तैः सहस्रैः समन्वितः । सहस्रैर्जानपदीनां, स्त्रीणां तावद्भिरन्वितः ॥ २८९ ॥
द्वात्रिंशतो जनपदसहस्राणामधीश्वरः । द्वासप्ततेः पुरवरसहस्राणां च शासिता ॥ २९० ॥
एकसहस्रोनद्रोणमुखलक्षस्य चाऽधिपः । पत्तनाष्टचत्वारिंशत्सहस्राणामधीश्वरः ॥ २९१ ॥
कर्बटानां मडम्बानां, चतुर्विंशसहस्रपः । चतुर्दशसहस्र्याश्च, सम्बाधानामपीश्वरः ॥ २९२ ॥
खेटकानां सहस्राणि, षोडशाऽपि च रक्षिता । तथाऽऽकरसहस्राणां, विंशतेरेक ईशिता ॥ २९३ ॥
पञ्चाशतः कुराज्यानामेकोनायाश्च नायकः । अन्[3]तरोदकषट्पञ्चाशतश्च परिपालकः ॥ २९४ ॥
ग्रामः षण्णवतिग्रामकोटीनां स्वामितां च ताम् । पत्तीनां षण्णवत्या च, कोटिभिः परिवारितः ॥ २९५ ॥
कुञ्जराणां वाजिनां च, रथानां च पृथक् पृथक् । लक्षाभिश्चतुरशीत्या, छादितावनिमण्डलः ॥ २९६ ॥

* सहस्रैर्नवभिर्यक्षैः, किङ्क° सङ्घ ३ ॥ १ क्षुद्रग्रामवत् । २ द्वात्रिंशता । ३ अन्तरद्वीपः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततो निववृते चक्री, चक्ररत्नपथानुगः । ऋद्ध्या महत्या सम्पूर्णः, पोतो द्वीपान्तरादिव ॥ २९७ ॥
॥ दशभिः कुलकम् ॥
ग्रामेशैर्दुर्गपालैश्च, मण्डलेशैश्च वर्त्मनि । क्रियमाणोचितार्घश्रीर्द्वितीयाचन्द्रमा इव ॥ २९८ ॥
प्रसारिभिरभिव्योम, पुरतः सैन्यरेणुभिः । शस्यमानागमो दूराद्, वर्धापकनरैरिव ॥ २९९ ॥
हेषितैर्बृंहितैर्बन्दिघोषैस्तूर्यारवैरपि । स्पर्धयेव प्रसृमरैर्दिशो बधिरयन्निव ॥ ३०० ॥
दिने दिने योजनिकैः, प्रयाणैः सुखमापतन् । सगरो नगरीं प्राप, विनीतां दयितामिव ॥ ३०१ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥
विनीतायाः परिसरे, सरित्पतिरिवावधौ । निवेश्य शिबिरं राजाऽवतस्थे क्षेमपर्वतः[1] ॥ ३०२ ॥
तत्राऽपरेद्युः सगरो, वाह्याल्यां[2] वाहकेलये[3] । एकं सैकलमारुह्य, ययौ सर्वकलानिधिः ॥ ३०३ ॥
तत्र विक्रमयामास, चतुरं तं तुरङ्गमम् । उत्तरोत्तरधारासु, क्रमेणाऽऽरोपयच्च सः ॥ ३०४ ॥
आरूढः पञ्चमीं धारामुत्पपात नभस्तले । वल्गादिसंज्ञानभिज्ञीभूतो भूतैरिवाश्रितः ॥ ३०५ ॥
सगरं सोऽपहृत्याऽश्वोऽश्वरूप इव राक्षसः । महारण्ये प्रचिक्षेप, कालाक्षेपेण रंहसा ॥ ३०६ ॥
वल्गां सामर्षमाकृष्योरुभ्यां चाऽऽक्रम्य पार्श्वयोः । दधार सगरोऽश्वं तं, झम्पां दत्त्वोत्ततार च ॥३०७॥
विधुरस्तुरगः सोऽपि, पपात पृथिवीतले । पृथ्वीनाथोऽपि पादाभ्यामेव गन्तुं प्रचक्रमे ॥ ३०८ ॥
यावत् किञ्चिद् ययौ तावद्, ददर्शैकं महासरः । आदित्यकरपर्यस्तां*, भूभ्रष्टामिव चन्द्रिकाम् ॥ ३०९ ॥
तत्र श्रमापनोदाय, सस्नौ वन्य इव द्विपः । स्वादु स्वच्छं पद्मगन्धि, शीतं च स पयः पपौ ॥ ३१० ॥
निर्ययौ सरसस्तस्मात्, स तस्थौ तीरसीमनि । ददर्श चैकां युवतिं, जलदेवीमिवाऽग्रतः ॥ ३११ ॥
तां नवाम्भोजवदनां, नीलोत्पलविलोचनाम् । तरङ्गायितलावण्यजलां चक्रयुगस्तनीम् ॥ ३१२ ॥
स्मेरकोकनदोद्दामपाणि-पादमनोरमाम् । शरीरिणीं सरोलक्ष्मीं, स पश्यन्नित्यचिन्तयत् ॥ ३१३ ॥
अप्सराः किं ? व्यन्तरी किं ?, किमथो नागकन्यका ? । विद्याधरी वा किमियं ?, न सामान्येदृशी भवेत् ॥
न तथा हृदयानन्दं, करोति सरसीजलम् । यथा दर्शनमेतस्याः, सुधावृष्टिसहोदरम् ॥ ३१५ ॥
तयाऽपि ददृशे राजा, राजीवदलचक्षुषा । ततः संवरितेनेवाऽनुरागेण तदैव हि ॥ ३१६ ॥
सद्योऽपि कामविधुरा, सा सखीभिः कथञ्चन । संस्थाप्याऽऽनीयताऽऽवासे, म्लाना सायमिवाऽब्जिनी ॥३१७॥
सगरोऽपि सरस्तीरे, शनैर्गच्छन् स्मरातुरः । एत्य कञ्चुकिना नत्वा, चैवमूचे कृताञ्जलिः ॥ ३१८ ॥
स्वामिन्निहैव भरतक्षेत्रवैताढ्यपर्वते । वल्लभं सम्पदामस्ति, पुरं गगनवल्लभम् ॥ ३१९ ॥
विद्याधरपतिस्तत्र, ख्यातो नाम्ना सुलोचनः । त्रिलोचनसखः पुर्यामलकायामिवाऽभवत् ॥ ३२० ॥
सहस्रनयनो नाम, तस्याऽस्ति तनयो नयी । सुकेशा दुहिता चेयं, विश्वस्त्रैणशिरोमणिः ॥ ३२१ ॥
नैमित्तिकेन चैकेन, जातमात्राऽपि वर्णिता । स्त्रीरत्नमेषा महिषी, भवित्री चक्रवर्तिनः ॥ ३२२ ॥
इतश्च पूर्णमेघेन, रथनूपुरभूभुजा । भूयो भूयो याचितेयमुद्वोढुमनुरागिणा ॥ ३२३ ॥
तां पितर्यददाने च, हर्तुकामो हठादपि । पूर्णमेघो मेघ इव, गर्जन् योद्धुमुपाययौ ॥ ३२४ ॥
पूर्णमेघश्चिरतरं, योधयित्वा सुलोचनम् । चक्रे दीर्घभुजो दीर्घनिद्रामुद्रितलोचनम् ॥ ३२५ ॥
स्वधनं वह्वन इवोपादाय भगिनीमिमाम् । सहस्रनयनोऽत्राऽऽगान्महात्मन् ! सपरिच्छदः ॥३२६॥
सरोवरे तया चेह, क्रीडन्त्या त्वमसीक्षितः । शिक्षिता चाऽऽशु कामेन, विकारं वेदनामयम् ॥ ३२७ ॥
घर्मार्तेव स्वेदवती, स्तब्धा पाञ्चालिकेव सा । शीतार्तेव सरोमाञ्चा, श्लेष्मलेव[11] स्खलत्स्वरा ॥ ३२८ ॥

१ पराक्रमगिरिः । २ अश्वक्रीडाभूमौ । ३ अश्वक्रीडायै । ४ उद्धताश्वम् । ५ अविलम्बेन । * °स्तभू° सङ्घ ३ ॥ ६ रक्तकमलम् । [७] कमलपत्रनेत्रया । ८ कामार्दिता । ९ कुबेरः । १० स्त्रीणां समूहः स्त्रैणम् । ११ श्लेष्मवतीव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भीतेव वेपथुमती, विवर्णा रोगभागिव । उदश्रुः शोकमग्नेव, योगिनीव लयस्थिता ॥ ३२९ ॥
क्षणादवस्थावैचित्र्यं, प्रपेदे तव दर्शनात् । तत् त्रायस्व जगत्त्रातर्न यावत् सा विपद्यते ॥ ३३० ॥
सौविदल्ले वदत्येवं, सहस्रनयनोऽपि सः । आययौ नभसा तत्र, नमश्चक्रे च चक्रिणम् ॥ ३३१ ॥
सोऽनुमान्य निजावासेऽनैषीत् सगरचक्रिणम् । स्त्रीरत्नस्य सुकेशाया, दानाच्च तमतोषयत् ॥ ३३२ ॥
ततश्च तौ विमानेन, सहस्रेक्षण-चक्रिणौ । वैताढ्यशैले ययतुः, पुरं गगनवल्लभम् ॥ ३३३ ॥
निवेश्य पैतृके राज्ये, सहस्रनयनं ततः । सर्वविद्याधराधीशं, व्यधत्त धरणीधवः ॥ ३३४ ॥
स्त्रीरत्नं तदुपादाय, सगरश्चक्रवर्त्यथ । जगाम साकेतपुरं, पुरन्दरपराक्रमः ॥ ३३५ ॥
समुद्दिश्य विनीतां च, चक्रेऽष्टमतपो नृपः । पौषधं पौषधागारे, प्रपेदे च यथाविधि ॥ ३३६ ॥
अष्टमान्ते च निष्क्रम्य, पौषधागारतस्ततः । समं परिजनैश्चक्रे, पारणं धरणीधवः ॥ ३३७ ॥
पदे पदे तोरणिनीं, भ्रूविकारवतीमिव । मुक्तास्वस्तिकसन्दोहकान्तिभिः सस्मितामिव ॥ ३३८ ॥
अट्टशोभापताकाभिर्नर्तनायोद्भुजामिव । धूपघट्युत्थधूमाल्या, कृतपत्रलतामिव ॥ ३३९ ॥
मञ्चस्थरत्नपात्रीभिर्नेत्रविस्तारिणीमिव । मञ्चैर्विचित्रैरचितशयनीयामिवोच्चकैः ॥ ३४० ॥
विमानकिङ्किणीकाणैर्मङ्गलोद्गायनीमिव । पुरीं वासकसज्जां तां, प्रविवेश विशांपतिः ॥ ३४१ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥
उत्तोरणमुत्पताकमुद्वैतालिकमङ्गलम् । विमानमिव शक्रः स्वं, गृहाङ्गणमगान्नृपः ॥ ३४२ ॥
सान्निध्यभाजां देवानां, स सहस्राणि षोडश । द्वात्रिंशतं सहस्राणि, तथा वसुमतीभुजाम् ॥ ३४३ ॥
महारत्नानि सेनानी-पुरोधो-गृहि-वर्धकीन् । त्रीणि त्रिषष्टियुक्तानि, सूपकारशतानि च ॥ ३४४ ॥
श्रेणिप्रश्रेणिका अष्टादश चाऽन्यानपि क्रमात् । दुर्गपाल-श्रेष्ठि-सार्थवाहादीन् व्यसृजत् स्वयम् ॥ ३४५ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
सान्तःपुरपरीवारः, स्त्रीरत्नेन समन्वितः । सतां मन इवोदारं, राजा वेश्माऽविशन्निजम् ॥ ३४६ ॥
तत्र स्नानगृहे स्नात्वा, देवतावसरौकसि । कृतदेवार्चनो राजा, बुभुजे भोजनौकसि ॥ ३४७ ॥
सङ्गीतकैर्नाटकैश्च, विनोदैरपरैरपि । ततश्चाऽरंस्त सगरः, साम्राज्यश्रीलताफलैः ॥ ३४८ ॥
एत्याऽपरेद्युः सगरं, देवाद्या एवमभ्यधुः । विदधे भारतं क्षेत्रं, वशंवदमिदं त्वया ॥ ३४९ ॥
युष्माकं चक्रवर्तित्वाभिषेकमधुना वयम् । करिष्यामोऽर्हतो जन्माभिषेकमिव वासवाः ॥ ३५० ॥
अनुजज्ञे च तांश्चक्री, लीलोन्नमितया भ्रुवा । महात्मानः प्रणयिनां, प्रणयं खण्डयन्ति न ॥ ३५१ ॥
अथाऽऽभियोगिका देवाः, पुर्या उत्तरपूर्वतः । विचक्रुरभिषेकाय, मण्डपं रत्नमण्डितम् ॥ ३५२ ॥
समुद्र-तीर्थ-ह्रदिनी-ह्रदेभ्यः पावनीरपः । गिरिभ्यश्चौषधीर्दिव्यास्तत्राऽऽनिन्युर्दिवौकसः ॥ ३५३ ॥
अथ सान्तःपुरः सस्त्रीरत्नश्चक्रधरोऽविशत् । तं रत्नमण्डपं रम्यं, रत्नाचलगुहामिव ॥ ३५४ ॥
समृगेन्द्रासनं तत्र, स्नानपीठं मणीमयम् । नृपः प्रदक्षिणीकृत्याऽऽहिताग्निरिव पावकम् ॥ ३५५ ॥
सान्तःपुरस्तदारुह्य, पूर्वसोपानवर्त्मना । सिंहासनमलश्चक्रे, प्राङ्मुखः पृथिवीपतिः ॥ ३५६ ॥
द्वात्रिंशद्राजसहस्राण्युदक्सोपानवर्त्मना । आरुह्य तत्र न्यषदन्, हंसाः कमलषण्डवत् ॥ ३५७ ॥
स्वस्वभद्रासनासीना, बद्धाञ्जलिपुटाश्च ते । तस्थुः स्वामिनि दत्ताक्षाः, शक्रे सामानिका इव ॥ ३५८ ॥
सेनापतिर्गृहपतिः, पुरोधा वर्धकिस्तथा । अपरे बहवः श्रेष्ठि-सार्थवाहादयोऽपि हि ॥ ३५९ ॥
स्नानपीठं तदारुह्याऽपाच्यसोपानवर्त्मना । निषेदुः स्वस्वस्थानेषु, ज्योतींषीव नभस्तले ॥३६०॥ युग्मम् ॥
तस्मिन् शुभे दिने वारे, नक्षत्रे करणेऽपि च । योगे चन्द्रे च लग्ने च, सर्वग्रहबलान्विते ॥ ३६१ ॥

१ म्रियते । २ कञ्चुकिनि । * °नुज्ञाप्य निजा° संद्व १ ॥ ३ प्रियसमागमवासरे सज्जाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिषेकं महीभर्तुश्चक्रुर्देवादयः क्रमात् । सौवर्णै राजतै रात्नैः, कलशैः कमलाननैः ॥ ३६२ ॥ युग्मम् ॥
वाससा देवदूष्येण, राज्ञोऽङ्गं ममृजुश्च ते । हस्तेन मृदुना सौधभित्तिं चित्रकरा इव ॥ ३६३ ॥
दर्दर-मलयभवैरथ गन्धैः सुगन्धिभिः । राज्ञोऽङ्गं छुरयामासुर्ज्योत्स्नयेव नभस्तलम् ॥ ३६४ ॥
दिव्यं च सुमनोदामोद्दामगन्धर्द्धिबन्धुरम् । स्वानुरागमिव दृढं, बबन्धुर्मूर्ध्नि भूपतेः ॥ ३६५ ॥
वासांसि देवदूष्याणि, रत्नालङ्करणानि च । ततस्तदुपनीतानि, पर्यधाद् वसुधाधवः ॥ ३६६ ॥
ततश्चक्रधरस्तत्र, मेघध्वनितधीरया । गिरा स्वनगराध्यक्षं, समादिक्षदिति स्वयम् ॥ ३६७ ॥
अदण्ड-शुल्कामभटप्रवेशामकरामिमाम् । महोत्सवां कुरु पुरीं, यावद् द्वादशवत्सरीम् ॥ ३६८ ॥
इत्याज्ञां नगराध्यक्षो, हस्त्यारूढैर्निजैर्नरैः । पुर्यामाघोषयामास, सद्यो डिण्डिमिकैरिव ॥ ३६९ ॥

इत्थं चक्रिपदाभिषेकपिशुनः षट्खण्डपृथ्वीपतेस्तस्य स्वर्नगरीविलासविभवस्तेयव्रतायां पुरि ।
प्रत्यट्टं प्रतिमन्दिरं प्रतिपथं चाऽऽनन्दमुन्मुद्रयन्नुच्चैर्द्वादश वत्सराणि समभूत् तस्यां महानुत्सवः ॥३७०॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये द्वितीये पर्वणि सगरदिग्जयचक्रवर्तित्वाभिषेकवर्णनो नाम चतुर्थः सर्गः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चमः सर्गः ।

अथ साकेतनगरोद्यानेऽजितजिनेश्वरः । भगवान् समवासार्षीत्, सेव्यमानः सुरा-ऽसुरैः ॥ १ ॥
वासवादिषु देवेषु, सगरादिषु राजसु । आसीनेषु यथास्थानं, विदधे देशनां विभुः ॥ २ ॥
तदा च वैताढ्यगिरौ, पूर्णमेघं सहस्रदृक् । स्मरन् पितृवधं क्रुद्धोऽवधीत् ताक्ष्र्य इवोरगम् ॥ ३ ॥
पूर्णमेघात्मजस्तस्मान्नष्टोऽथ घनवाहनः । तत्राऽऽजगाम समवसरणे शरणेच्छया ॥ ४ ॥
स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य, भगवन्तं प्रणम्य च । उपपादमुपाविक्षद्[1]पक्षमिवाऽध्वगः ॥ ५ ॥
समाकृष्याऽपि पातालाद्, भ्रंशयित्वा दिवोऽपि तम् । बलीयसो वा शरणात्, कृष्ट्वा हन्मीति विब्रुवन् ॥६॥
तस्याऽनुपदमेवाऽथ, सहस्राक्ष उदायुधः । आगात् समवसरणेऽपश्यच्च घनवाहनम् ॥ ७ ॥
प्रशान्तकोपस्त्यक्तास्त्रः, प्रभावात् परमेशितुः । नत्वा प्रदक्षिणापूर्वं, यथास्थानमुपाविशत् ॥ ८ ॥
सगरश्चक्रभृदथ, पप्रच्छ परमेश्वरम् । किं वैरकारणं स्वामिन् !, पूर्णमेघ-सुनेत्रयोः ॥ ९ ॥
आचख्यौ भगवानेवमादित्याभे पुरे पुरा । अभवद् भावनो नाम, द्रव्यकोटीश्वरो वणिक् ॥ १० ॥
स्वसूनोर्हरिदासस्य, सोऽर्पयित्वाऽखिलं धनम् । देशान्तरं वाणिज्यायै, जगाम श्रेष्ठिभावनः ॥ ११ ॥
विदेशे द्वादशाब्दानि, स्थित्वोपार्ज्य महद् धनम् । आययौ भावनश्रेष्ठी, तस्थौ च नगराद् बहिः ॥१२॥
तत्र मुक्त्वा परीवारमेकाक्यपि हि भावनः । निशायायौ निजे सद्मन्युत्कण्ठा हि बलीयसी ॥ १३ ॥
प्रविशन् हरिदासेन, चौरोऽसाविति शङ्कया । निहतः खड्गघातेन, विमर्शः[2] क्वाऽल्पमेधसाम् ? ॥ १४ ॥
स्वस्य व्यापादकं ज्ञात्वा, तदानीमपि भावनः । तत्कालकलितद्वेषः, कालधर्ममुपाययौ ॥ १५ ॥
स ज्ञात्वा पितरं पश्चात्, पश्चात्तापकदर्थितः । चकार प्रेतकार्याणि, सशल्य[3]स्तेन कर्मणा ॥ १६ ॥
विपेदे हरिदासोऽपि, गते काले कियत्यपि । दुःखदान् द्वावपि ततो, भ्रेमतुः कतिचिद् भवान् ॥१७॥
किञ्चिच्च सुकृतं कृत्वा, जीवोऽभूद् भावनस्य तु । पूर्णमेघो हरिदासजीवस्त्वासीत् सुलोचनः ॥१८॥
इति प्राग्जन्मसंसिद्धं, पूर्णमेघ-सुनेत्रयोः । वैरं प्राणान्तिकं राजन्नैहिकं त्वानुषङ्गिकम् ॥ १९ ॥
भूयोऽपि सगरोऽपृच्छत्, तत्सून्वोरनयोर्मिथः । को वैरहेतुः ? स्नेहश्च, सहस्राक्षे कुतो मम ? ॥२०॥
स्वाम्यूचे दानशीलस्त्वं, परिव्राड् रम्भकाभिधः । प्राग्भवेऽभूस्तवाऽभूतां, शिष्यौ शश्यावली त्विमौ ॥
अभूच्चाऽतिविनीतत्वादावलिस्तेऽतिवल्लभः । गोधेनुमेकामक्रीणादन्यदा द्रविणेन सः ॥ २२ ॥
भेदं गोस्वामिनः कृत्वा, कठोरहृदयः शशी । अन्तराले पतित्वैव, तां क्रीणाति स्म धेनुकाम् ॥ २३ ॥
केशाकेशि मुष्टामुष्टि, दण्डादण्डि तयोस्ततः । युद्धं प्रववृते घोरं, शशिना चाऽऽवलिर्हतः ॥ २४ ॥
शशी चिरं भवं भ्रान्त्वा, जज्ञेऽसौ मेघवाहनः । आवलिस्तु सहस्राक्षस्तदिदं वैरकारणम् ॥ २५ ॥
भ्रान्त्वा दानप्रभावेण, रम्भकोऽपि गतीः शुभाः । चक्रभृस्त्वं सहस्राक्षे, स्नेहः प्राग्जन्मभूश्च ते ॥२६॥
अथ रक्षःपतिर्भीमो, निषण्णस्तत्र पर्षदि । उत्थायाऽऽलिङ्ग्य रभसान्मेघवाहनमब्रवीत् ॥ २७ ॥
पुष्करद्वीपभरतक्षेत्रे वैताढ्यपर्वते । प्राग्भवे काञ्चनपुरे, विद्युद्दंष्ट्रो नृपोऽभवम् ॥ २८ ॥
तस्मिन् भवे ममाऽभूस्त्वं, तनयो रतिवल्लभः । अत्यन्तवल्लभो वत्स !, साधु दृष्टोऽसि सम्प्रति ॥ २९ ॥
तदेवं सम्प्रत्यपि मे, पुत्रोऽसि परिगृह्यताम् । सैन्यं मदीयं त्वदीयमथाऽन्यदपि यन्मम ॥ ३० ॥
लवणोदे पयोराशौ, दुर्जयो द्युसदामपि । योजनानां सप्तशतीं, दिक्षु सर्वासु विस्तृतः ॥ ३१ ॥
राक्षसद्वीप इत्यस्ति, सर्वद्वीपशिरोमणिः । तदन्तरे त्रिकूटाद्रिर्भूमिनाभौ सुमेरुवत् ॥ ३२ ॥
महर्द्धिर्वलयाकारो, योजनानि नवोन्नतः । पञ्चाशतं योजनानि, विस्तीर्णोऽस्त्यतिदुर्गमः ॥ ३३ ॥

---

१ कुक्षसमीपम् । २ विचारः । ३ दुःखसहितः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्योपरिष्टात् सौवर्णप्राकार-गृह-तोरणा । मया लङ्केति नाम्ना पूरधुनैवाऽस्ति कारिता ॥ ३४ ॥
षड् योजनानि भूमध्यमतिक्रम्य चिरन्तनी । शुद्धस्फटिकवप्राङ्का, नानारत्नमयालया ॥ ३५ ॥
सपादयोजनशतप्रमाणा प्रवरा पुरी । मम पातालल्ङ्केति, विद्यते चाऽतिदुर्गमा ॥ ३६ ॥
पुरीद्वयमिदं वत्साऽऽदत्स्व तन्नृपतिर्भव । भवत्वद्यैव ते तीर्थनाथदर्शनजं फलम् ॥ ३७ ॥
इत्युक्त्वा राक्षसपतिर्माणिक्यैर्नवभिः कृतम् । ददौ तस्मै महाहारं, सद्यो विद्यां च राक्षसीम् ॥ ३८ ॥
भगवन्तं नमस्कृत्य, तदैव घनवाहनः । आगत्य राक्षसद्वीपे, राजाऽभूल्लङ्कयोस्तयोः ॥ ३९ ॥
राक्षसद्वीपराज्येन, राक्षस्या विद्ययाऽपि च । तदादि तस्य वंशोऽपि, ययौ राक्षसवंशताम् ॥ ४० ॥
एवं स्थिते च सर्वज्ञो, विहरन्नन्यतो ययौ । स्वं स्वं स्थानं ययुस्तेऽपि, सुरेन्द्र-सगरादयः ॥ ४१ ॥
इतः पुनश्चतुःषष्टिसहस्रस्त्रीभिरन्वितः । रतिसागरनिमग्नो, नाकीवाऽरंस्त चक्रभृत् ॥ ४२ ॥
तस्याऽन्तःपुरसम्भोगजन्मा म्लानिरपास्यत । स्त्रीरत्नभोगाद्ध्वन्यश्रमोऽपाच्यनिलादिव ॥ ४३ ॥
एवं सुखं वैषयिकं, तस्याऽनुभवतोऽनिशम् । जह्नुप्रभृतयः षष्टिसहस्रा जज्ञिरे सुताः ॥ ४४ ॥
धात्रीभिः पाल्यमानास्ते, क्रमाद् ववृधिरे सुताः । उद्यानपालीभिरिवोद्यानजाता महीरुहाः ॥ ४५ ॥
ते कलाग्रहणं चक्रुः, शनै रंजनिजानिवत् । वपुःश्रीवल्ल्युपवनं, यौवनं च प्रपेदिरे ॥ ४६ ॥
ते निजं दर्शयामासुरस्त्रविद्यासु कौशलम् । ददृशुः परकीयं च, न्यूनाधिकदिदृक्षया ॥ ४७ ॥
वाह्याल्यां भ्रमिमानीय, समुद्रावर्त्तलीलया । दुर्दमानप्यदमयन्, शूकलांस्ते कलाविदः ॥ ४८ ॥
द्रुपत्रस्याऽप्यसहनान्, स्कन्धदेशविवर्त्तिनः । व्यालानपि वशीचक्रुः, कुञ्जरांस्तेऽतिनिर्जरा: ॥ ४९ ॥
उद्यानादिषु ते स्वैरं, रेमिरे सवयोवृताः । अवन्ध्यशक्तयो विन्ध्याटव्यां मदकला इव ॥ ५० ॥
अथ चक्रिणमन्येद्युः, सगरं सदसि स्थितम् । इति विज्ञपयामासुस्ते कुमारा महौजसः ॥ ५१ ॥
अमरो मागधपतिः, प्राचीमुखविभूषणः । दक्षिणाशैकतिलको, वरदामपतिस्तथा ॥ ५२ ॥
पश्चिमाशाकिरीटश्रीः, प्रभासाधिपतिः स च । भुजे इव भुवो गङ्गा-सिन्धू अपि सरिद्वरे ॥ ५३ ॥
वैताढ्याद्रिकुमारश्च, भरताम्भोजकर्णिका । कृतमालस्तमिस्राद्वाःक्षेत्रपाल इवोच्चकैः ॥ ५४ ॥
भरतावधिभूस्तम्भो, हिमाचलकुमारकः । खण्डप्रपाताधिष्ठानो, नाट्यमालः स चोत्कटः ॥५५॥
नैसर्पप्रमुखास्ते च, नवाऽपि निधिदेवताः । दिवौकसोऽप्येवममी, नृवत् तातेन साधिताः ॥ ५६ ॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥
षट्खण्डमरिषड्वर्गवदिदं वसुधातलम् । स्वयमेव पराजिग्ये, तातेनाऽमिततेजसा ॥ ५७ ॥
कृत्यशेषं न ते किञ्चिदस्ति दोर्विक्रमोचितम् । त्वत्पुत्रत्वं ज्ञापयामो, यत् कृत्वा देव ! सम्प्रति ॥ ५८ ॥
तातेन साधितेऽमुष्मिन्, भूतले सकलेऽपि तत् । स्वेच्छाविहरणेनैव, तात ! पुत्रत्वमस्तु नः ॥ ५९ ॥
ततस्तातप्रसादेन, भवनाङ्गणवद् भुवि । वयं विहर्तुमिच्छामः, स्वच्छन्दं वनहस्तिवत् ॥ ६० ॥
प्रणयप्रार्थनां तां च, स तेषां प्रत्यपद्यत । महत्सु याञ्चाऽन्यस्याऽपि, न मुधा किं पुनस्तुकाम् ? ॥ ६१ ॥
अथ ते पितरं नत्वा, निजावासानुपेत्य च । दुन्दुभींस्ताडयामासुर्यात्रामङ्गलसूचकान् ॥ ६२ ॥
धीराणामपि सङ्क्षोभदायीन्यशुभदानि च । उत्पाताशकुनान्येषां, तदानीमिति जज्ञिरे ॥ ६३ ॥
मार्तण्डमण्डलं केतुशताकुलमजायत । रसातलद्वारमिव, महोरगकुलाकुलम् ॥ ६४ ॥
सञ्जातमध्यच्छिद्रं च, रजनीकरमण्डलम् । अदृश्यत नवोत्कीर्णदन्तताडङ्कसन्निभम् ॥ ६५ ॥
वातान्दोलितवल्लीव, चकम्पे च वसुन्धरा । शिलाशकलवृष्ट्याभा, जाताः करकवृष्टयः ॥ ६६ ॥

१ कामक्रीडासक्तः । २ देवः । ३ ननाश । ४ दक्षिणपवनात् । ५ चन्द्रवत् । ६ दुष्टान् । ७ देवेभ्योऽप्यधिकाः । ८ मित्रैर्वृताः । ९ मत्तगजाः । १० यत् कार्यं कृत्वा वयं त्वत्पुत्रा इति ज्ञापयामः । ११ अपत्यानाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजायत रजोवृष्टिः, शुष्काभ्रक्षोदसोदरा । सम्मुखो वायुरुद्दण्डो, रुष्टो रिपुरिवाऽभवत् ॥ ६७ ॥
अशिवाश्च शिवाः कामं, दक्षिणस्था ववाशिरे । तत्स्पर्द्धयेव तत्रस्थाश्चुकुशुः कौशिका अपि ॥ ६८ ॥
चिल्लाश्च मण्डलीभूय, भ्रेमुर्नभसि नीचकैः । उच्चकैरापतत्कालचक्रक्रीडापरिस्पृशः ॥ ६९ ॥
अजायन्त च तत्कालं, गन्धेभा अपि निर्मदाः । स्रोतस्विन्य इव ग्रीष्मकाले निर्जलताजुषः ॥ ७० ॥
हयानां हेषमाणानां, धूमलेखा मुखान्तरात् । निर्ययुर्भीषणतरा, बिलेभ्य इव पन्नगाः ॥ ७१ ॥
तान्यवाजीगणन् सर्वाण्युत्पाताशकुनानि ते । तज्ज्ञानामपि हि नृणां, प्रमाणं भवितव्यता ॥ ७२ ॥
कृतस्नानाः कृतप्रायश्चित्त-कौतुकमङ्गलाः । चक्रिणः सर्वसैन्येन, ते कुमाराः प्रतस्थिरे ॥ ७३ ॥
स्त्रीरत्नवर्जं रत्नानि, सर्वाण्यपि महीपतिः । प्रजिघाय सुतैः सार्धमात्मैव हि सुतत्वभाक् ॥ ७४ ॥
केचिद् गजवरारूढा, दिक्पालाकारधारिणः । अश्वानधिष्ठिताः केचिदतिरेवन्तमूर्त्तयः ॥ ७५ ॥
अध्यासीना रथान् केचिदादित्याद्या इव ग्रहाः । किरीटधारिणः सर्वेऽप्यधीशा द्युसदामिव ॥ ७६ ॥
वक्षःस्थललुलद्धाराः, ससरित्का इवाऽद्रयः । देवता इव भूप्राप्ता, विविधायुधपाणयः ॥ ७७ ॥
छत्रलाञ्छितमूर्धानो, द्रुमाङ्का व्यन्तरा इव । आत्मरक्षैः परिवृता, वेलाधारैरिवाऽब्धयः ॥ ७८ ॥
अविहस्तोदस्तहस्तैः, स्तूयमानाश्च मागधैः । वसुन्धरां दारयन्तस्तुरङ्गमखुरैः खरैः ॥ ७९ ॥
तूर्यप्रणादैर्बधिरीकुर्वाणाः सर्वतो दिशः । अन्धीकुर्वन्त उत्क्षिप्तैर्भूरजोभिश्च भूरिभिः ॥ ८० ॥
उद्यानेषु विचित्रेषूद्यानानामिव देवताः । गिरिप्रस्थेषु च गिरिकुमारा इव हारिणः ॥ ८१ ॥
सरित्पुत्रा इव सरित्पुलिनेषु च चारुषु । स्वच्छन्दं रममाणास्ते, बभ्रमुर्भरतावनौ ॥८२॥ अष्टभिः कुलकम् ॥
ग्रामा-ऽऽकर-पुर-द्रोणमुख-खेटादिषु व्यधुः । जिनार्चां विचरन्तस्ते, माला विद्याधरा इव ॥ ८३ ॥
भुञ्जाना बहुधा भोगान्, ददाना बहुधा धनम् । सुहृज्जनान् प्रीणयन्तो, विनिघ्नन्तोऽसुहृज्जनान् ॥ ८४ ॥
दर्शयन्तः पथि चलल्लक्ष्यपातनकौशलम् । भृशमन्यापतच्छस्त्रग्रहणस्य च नैपुणम् ॥ ८५ ॥
शस्त्राशस्त्रिकथाश्चित्रास्तास्ता नर्मकथा अपि । यानाधिरूढैः कुर्वाणाः, सवयोभिः समं नृपैः ॥ ८६ ॥

अप्यालोकनमात्रेण, क्षुत्तृषाहरणौषधम् । तेऽन्यदाऽष्टापदं प्रापुरास्पदं पुण्यसम्पदाम् ॥ ८७ ॥
महासरोभिः पीयूषनिधानमिव नाकिनाम् । उपात्तनीलसंव्यानमिव सान्द्रार्द्रपादपैः ॥ ८८ ॥
महापक्षधरमिव, पयोदैः पारिपार्श्विकैः । लम्बमानपताकाङ्कमिव निर्झरवारिभिः ॥ ८९ ॥
विद्याधरविलासौको, वैताढ्यमिव नूतनम् । गायन्तमिव मुदितमयूरादिकलस्वनैः ॥ ९० ॥
चैत्यं सशालभञ्जीकमिव खेचर्यधिष्ठितम् । किरीटमिव मेदिन्या, रत्नोपलविनिर्मितम् ॥ ९१ ॥
नन्दीश्वरद्वीपमिव, चैत्यवन्दनकाम्यया । अभीयमानं सततं, चारणश्रमणादिभिः ॥ ९२ ॥

तं दृष्ट्वा नित्यपर्वाणं, पर्वतं स्फाटिकोपलम् । ते पप्रच्छुः स्वसचिवान्, सुबुद्धिप्रभृतीनिति ॥ ९३ ॥
वैमानिकानां स्वर्गस्थक्रीडाद्रिभ्य इवैककः । अवतीर्णो वसुमतीमयं को नाम पर्वतः ? ॥ ९४ ॥
केन चाऽभ्रंलिहमिह, विदधे चैत्यमद्भुतम् । इदं हिमवदद्रिस्थशाश्वतायतनोपमम् ? ॥ ९५ ॥

अथ ते मन्त्रिणोऽप्यूचुः, पुराऽभूदृषभः प्रभुः । युष्मद्वंशस्याऽऽदिकरस्तीर्थस्याऽप्यत्र भारते ॥ ९६ ॥
तत्सूनुर्नवनवतेर्भ्रातृणामग्रजोऽभवत् । भरतो नाम षट्खण्डभरतक्षेत्रशासिता ॥ ९७ ॥
क्रीडागिरिरयं तस्य, चक्रिणोऽष्टापदाभिधः । अनेकाश्चर्यसदनं, सुमेरुरिव वज्रिणः ॥ ९८ ॥
साधूनां दशसाहस्र्या, सहेह च महीधरे । भगवानृषभस्वामी, जगाम पदमव्ययम् ॥ ९९ ॥
ऋषभस्वामिनिर्वाणानन्तरं भरतेश्वरः । चैत्यं सिंहनिषद्याख्यं, चक्रे रत्नोपलैरिह ॥ १०० ॥

---

१ अशुभसूचकाः । २ अवगणयामासुः । ३ [illegible] । ४ सूर्यपुत्राधिकरूपाः । ५ अव्याकुलोर्द्धकरैः । ६ कठोरैः । ७ मनोहराः । ८ शत्रून् । ९ हास्यकथाः । १० [illegible] । ११ अभिगम्यमानम् । १२ नित्योत्सवम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभस्वामिनो बिम्बमर्हतां भाविनामपि । स त्रयोविंशते रत्नग्रावभिर्दोषवर्जितैः ॥ १०१ ॥
स्वस्वप्रमाणसंस्थानवर्णलाञ्छनभाञ्जि तु । बिम्बानि भक्त्या परया, व्यधत्तेह यथाविधि ॥१०२॥ युग्मम् ॥
चारणश्रमणैस्तानि, बिम्बानि प्रत्यतिष्ठिपत् । बाहुबल्यादिबन्धूनां, स्तूपान् मूर्तीश्च सोऽकृत ॥ १०३ ॥
स्थितोऽत्र वृषभस्वामी, तीर्थकृच्चक्रि-केशवान् । प्रतिकेशव-रामांश्च, भाविनस्तमजिज्ञपत् ॥ १०४ ॥
सोपानभूतानि पदान्यष्टाऽमुं परितो व्यधात् । भरतो येन तेनाऽयमष्टापद उदीर्यते ॥ १०५ ॥

असावसत्पूर्वजानामिति प्रादुर्भवन्मुदः । तं तेऽथाऽऽरुरुहुः शैलं, कुमाराः सपरिच्छदाः ॥ १०६ ॥
तत्र सिंहनिषद्यायां, चैत्ये प्रविविशुश्च ते । दूरादालोकमात्रेऽपि, नेमुश्चाऽऽदिजिनेश्वरम् ॥ १०७ ॥
अजितस्वामिबिम्बं च, बिम्बान्यन्यार्हतामपि । तुल्यया श्रद्धया नेमुर्गर्भश्राद्धा हि ते खलु ॥ १०८ ॥
अथ गन्धोदकैः शुद्धैर्मन्त्राकृष्टैरिव क्षणात् । कुमाराः स्नपयामासुर्बिम्बानि श्रीमदर्हताम् ॥ १०९ ॥
केऽप्यद्भिर्बिभराञ्चक्रुः, कलसान् केचिदार्पयन् । केचिच्च लोठयामासुः, प्रतीषुः केऽपि रेचितान् ॥११०॥
केऽपि स्नात्रविधिं पेठुर्जगृहुः केऽपि चामरान् । सौवर्णधूपदहनान्युपाददत चाऽपरे ॥ १११ ॥
चिक्षिपुर्धूपदहनेष्वपरे धूपमुत्तमम् । केऽपि शङ्खादितूर्याणि, वादयामासुरुच्चकैः ॥ ११२ ॥
स्नानगन्धोदकैस्तैश्च, पतद्भिस्तत्र वेगतः । अष्टापदगिरिर्जज्ञे, तदा द्विगुणनिर्झरः ॥ ११३ ॥
पक्ष्मलैः कोमलै रूक्षैर्देवदूष्योपमैः पटैः । तेऽमार्जन् रत्नबिम्बानि, तानि वैकटिका इव ॥ ११४ ॥
गोशीर्षचन्दनरसैश्चक्रुस्तेषां विलेपनम् । तेऽतिसैरन्ध्रयः स्वैरं, निर्भरं भक्तिशालिनः ॥ ११५ ॥
अर्चयामासुरर्चास्ता, विचित्रैः पुष्पदामभिः । रत्नालङ्करणैर्दिव्यैर्वस्त्रैरपि मनोहरैः ॥ ११६ ॥
पुरतः स्वामिबिम्बानामिन्दुरूपविडम्बिनः । अखण्डैस्तण्डुलैः पट्टेष्वालिखंस्तेऽष्टमङ्गलीम् ॥ ११७ ॥
आरात्रिकमथो चक्रुर्दिव्यकर्पूरवर्तिभिः । तेऽर्चित्वोत्तारयामासुर्दिवाकरसहोदरम् ॥ ११८ ॥
शक्रस्तवेन वन्दित्वा, रचिताञ्जलयोऽथ ते । जिनेन्द्रानृषभस्वामिप्रभृतीनिति तुष्टुवुः ॥ ११९ ॥

अपारघोरसंसारपारावारतरीसमाः ! । निर्वाणकारणीभूता, भगवन्तः ! पुनीत नः ॥ १२० ॥
स्याद्वादवाद्प्रासादप्रतिष्ठासूत्रधारताम् । नय-प्रमाणैर्बिभ्रद्भ्यो, युष्मभ्यमनिशं नमः ॥ १२१ ॥
आयोजनं गामिनीभिर्वाणीसारणिभिर्भृशम् । अशेषजगदुद्यानाप्यायकेभ्यो नमोऽस्तु वः ॥ १२२ ॥
युष्मद्दर्शनतोऽस्माभिरपि सामान्यजीवितैः । अवाप्तमापञ्चमारजीवितव्यफलं परम् ॥ १२३ ॥
कल्याणकैर्गर्भ-जन्म-प्रव्रज्या-ज्ञान-मुक्तिभिः । नारकाणामपि सुखप्रदेभ्यो वो नमो नमः ॥ १२४ ॥
मेघानामिव वायूनामिव चन्द्रमसामिव । अर्काणामिव भवतां, साधारण्यं श्रियेऽस्तु नः ॥ १२५ ॥
अष्टापदगिरावत्र, धन्यास्ते पक्षिणोऽपि हि । निरन्तरायाः पश्यन्ति, भवतो ये दिने दिने ॥ १२६ ॥
जीवितं चरितार्थं नः, कृतार्थो विभवश्च नः । युष्मदालोकना-ऽर्चाभिश्चिररात्राय सम्प्रति ॥ १२७ ॥
इति स्तुत्वा नमस्कृत्य, भूयोऽपि श्रीमदर्हतः । प्रासादान्निर्ययुस्तस्मान्मुदिताः सगरात्मजाः ॥ १२८ ॥
ववन्दिरे ते भरतभ्रातृस्तूपांश्च पावनान् । किञ्चिद् ध्यात्वा ततो जह्नुरुवाचाऽवरजानिति ॥ १२९ ॥

अष्टापदसमं स्थानं, मन्ये क्वाऽपि न विद्यते । कारयामो वयमत्र, चैत्यमेतदिवाऽपरम् ॥ १३० ॥
मुक्तोऽपि भरतक्षेत्रं, भुङ्क्ते भरतचक्र्यहो ! । गिरौ भरतसारेऽत्र, चैत्यव्याजादवस्थितः ॥ १३१ ॥
एतदेव कृतं चैत्यमस्माभिश्चेद् विधीयते । भाविभिर्लुप्यमानस्य, चैत्यस्याऽमुष्य रक्षणम् ॥ १३२ ॥
प्रवृत्ते दुःषमाकाले, भविष्यन्ति नरा यतः । अर्थलुब्धा हीनसत्त्वाः, कृत्या-ऽकृत्याविचारकाः ॥ १३३ ॥
प्रत्यग्रधर्मस्थानस्य, करणादधिकं ततः । चिरन्तनानां हि धर्मस्थानानां परिरक्षणम् ॥ १३४ ॥
आमित्युक्ते कनीयोभिर्दण्डरत्नमुपाददे । ततो जह्नुः सहस्रांशुरिव तेजोभिरुल्बणैः ॥ १३५ ॥

१ जगृहुः । २ रिक्तान् । ३ मणिकारा इव । ४ प्रीणयकाः । ५ साम्यभावः । ६ निर्विघ्नाः । ७ चिरम् । ८ कनुभ्रातॄन् ।

अष्टापदं पुरमिव, परितः परिखाकृते । स क्ष्मां खनितुमारेभे, दण्डरत्नेन सानुजः ॥ १३६ ॥
सहस्रयोजनां चोले, परिखां सगरात्मजाः । चख्नुस्तेऽथ तया नागसद्मानि च बभञ्जिरे ॥ १३७ ॥
नागलोकोऽखिल उपद्रूयमाणेषु सद्मसु । चुक्षोभ यादसां चक्रं, मथ्यमान इवाम्बुधौ ॥ १३८ ॥
परचक्र इवाऽऽयाते, प्रदीपन इवोद्यते । महावात इवोद्धूते, नागास्त्रेसुरितस्ततः ॥ १३९ ॥
आकुलं नागलोकं चाऽऽलोकयामास तं तथा । क्रुधा ज्वलन् ज्वलनवन्नागराड् ज्वलनप्रभः ॥१४०॥
दारितां चाऽवनीं प्रेक्ष्य, किमेतदिति सम्भ्रमात् । ततो निर्गत्य सगरकुमारानाजगाम सः ॥ १४१ ॥
उद्दामभ्रकुटीभीम, उत्तरङ्ग इवाऽर्णवः । प्रकोपस्फुरदधर, उदर्चिरिव पावकः ॥ १४२ ॥
तप्तायस्तोमरश्रेणीरिव ताम्रा दृशः क्षिपन् । स्फारयन् नासिकारन्ध्रे, वज्राग्निधमनीनिभे ॥ १४३ ॥
कृतान्त इव सङ्क्रुद्धो, दुरीक्षः प्रलयार्कवत् । ज्वलनप्रभनागेन्द्र, इत्यूचे सगरात्मजान् ॥ १४४ ॥
आः! किमेतदुपक्रान्तमहो! विक्रान्तमानिभिः । दुर्मदैर्दण्डरत्नास्या, दुर्गाप्त्या शबरैरिव ? ॥ १४५ ॥
शाश्वतानामप्यधुना, भवनाधिपवेश्मनाम् । अकार्युपद्रवः कोऽयमप्रेक्षापूर्वकारिभिः ? ॥ १४६ ॥
अजितस्वामिनो भ्रातुष्पुत्रैरपि किमीदृशम् । भवद्भिर्विदधे कर्म, पिशाचैरिव दारुणम् ? ॥ १४७ ॥
अथोचे जह्नुना नागराजेदं युक्तमभ्यधाः । अमुना वेश्मभङ्गेनास्मदुपज्ञेन पीडितः ॥ १४८ ॥
वेश्मनां युष्मदीयानां, भङ्गोऽस्त्विति मनीषया । वसुन्धरा न खातेयमस्माभिर्दण्डपाणिभिः ॥ १४९ ॥
किन्त्वष्टापदतीर्थस्याऽमुष्य रक्षणहेतवे । परिखारूपतोऽस्माभिरियं खाता वसुन्धरा ॥ १५० ॥
अत्र ह्यस्मद्वंशकन्दश्चक्रे भरतचक्रभृत् । चैत्यं रत्नमयं रत्नप्रतिमाश्चाऽर्हतां शुभाः ॥ १५१ ॥
भविष्यत्कालदोषेण, लोकेभ्यस्तदुपद्रवम् । शङ्कमानैः प्रयत्नोऽयमस्माभिर्विहितः खलु ॥ १५२ ॥
भङ्गो युष्मद्वेश्मनां तु, दूरत्वान्न हि शङ्कितः । दण्डशक्तिरमोघेयं, हन्त! तत्राऽपराध्यति ॥ १५३ ॥
अविमृश्यविधायित्वेनाऽर्हद्भक्त्या च यत् कृतम् । तत् सहस्वाऽतः परं तु, करिष्यामो न हीदृशम् ॥१५४॥
एवं जह्नुकुमारेणाऽनुनीतो नागराडपि । शशाम साम्भवागम्भः, कोपाग्नेः शमनं सताम् ॥ १५५ ॥
मा स्म कृढ्वं पुनर्यूयमीदृगित्यभिधाय सः । नागलोकं ययौ नागराजः सिंहो गुहामिव ॥ १५६ ॥
नागराजे गते जह्नुर्व्याजह्रे सोदरानिति । परिखा विहिता तावदष्टापदगिरेरियम् ॥ १५७ ॥
किन्तु पातालगम्भीराऽप्यम्भोरिक्ता न भात्यसौ । बुद्धिशून्या देहभाजो, महत्यप्याकृतिर्यथा ॥ १५८ ॥
किञ्च सम्भाव्यतेऽमुष्या, रजोभिरपि पूरणम् । स्थलीभवन्त्येव गर्ता, अपि कालेन गच्छता ॥ १५९ ॥
पूरणीया ततोऽवश्यमियं नीरेण भूरिणा । उत्तरङ्गां विना गङ्गां, तच्च कर्तुं न पार्यते ॥ १६० ॥
साधु साध्विति सोदर्यैर्व्याहृतो जह्नुरग्रहीत् । अमोघं दण्डरत्नं तद्, यमदण्डमिवाऽपरम् ॥ १६१ ॥
दण्डरत्नेन तेनाऽथ, गङ्गातटमदारयत् । जह्नुर्वज्रीव वज्रेण, महाशिखरिणस्तटीम् ॥ १६२ ॥
दण्डदारणमार्गेण, चचालाऽथ सरिद्वरा । नीयते यत्र तत्राऽम्भो, गच्छत्यृजुपुमानिव ॥ १६३ ॥
उत्क्षिप्तशैलशिखरेवाऽभ्रंलिहमहोर्मिभिः । दृढास्फालिततूर्येव, तटास्फालननिस्वनैः ॥ १६४ ॥
द्विगुणं दण्डभेदं च, कुर्वाणा स्वाम्बुरंहसा । अष्टापदाद्रिपरिखां, गङ्गा प्राप समुद्रवत् ॥ १६५ ॥
॥ युग्मम् ॥

योजनसहस्रदघ्नीं, पातालमिव भीषणाम् । सा प्रवृत्ता पूरयितुं, परिखां परितोऽपि ताम् ॥ १६६ ॥
अष्टापदाद्रिपरिखापूरणार्थमकृष्यत । जह्नुना यत् ततो गङ्गा, ततः प्रभृति जाह्नवी ॥ १६७ ॥
परिखां पूरयित्वा च, भूरिभिर्विवरैर्जलम् । धारायन्त्रैरिवाऽविक्षन्नागानां भवनेष्वथ ॥ १६८ ॥

१ परित इत्यर्थः । २ जलजन्तूनाम् । ३ अग्निवत् । ४ अविचारितकारिभिः । ५ असत्कृतेन । ६ सान्त्वनगर्भां वाण्येव जह्नुः । ७ जलशून्या । ८ योजनसहस्रप्रमाणाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयोभिः पूर्यमाणेषु, बिलवत् फणिवेश्मसु । फूत्कुर्वन्तः प्रतिदिशं, फणिनस्त्रेसुराकुलाः ॥ १६९ ॥
नागलोकस्य सङ्क्षोभं, दृष्ट्वा भूयोऽपि सोऽहिराट् । अकुप्यद् विकटाकार, आरास्पृष्ट इव द्विपः ॥ १७० ॥
अवोचच्च सगरजाः, पितृवैभवदुर्मदाः । न सामयोग्यास्ते किन्तु, दण्डार्हा रासभा इव ॥ १७१ ॥
एकोऽपराधो भवनभ्रंशरूपो व्यषह्यत । मयाऽकारि न शिक्षा यत्, तैस्तन्मन्तूयितं[2] पुनः ॥ १७२ ॥
आरक्ष इव दस्यूनां, तेषां शिक्षां करोम्यहो ! । अहमित्युद्भटं जल्पन्ननल्पाटोपभीषणः ॥ १७३ ॥
अकाल इव कालाग्निरुद्भ्रान्तो दीप्तिदारुणः । जगद् दग्धुमना वार्धेरौर्वाग्निरिव[3] निर्गतः ॥ १७४ ॥
वज्रानल इवोज्ज्वालः, स निर्गत्य रसातलात् । तत्राऽऽजगाम वेगेन, समं नागकुमारकैः ॥ १७५ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
ईक्षाञ्चक्रे च तान् मङ्क्षु, दृष्ट्या दृष्टिविषाधिपः । भस्मराशीवभूवुस्ते, वह्निना तृणपूलवत् ॥ १७६ ॥
जज्ञे हाहारवस्तत्र, रोदःकुक्षिम्भरिर्महान् । लोके स्यादनुकम्पायै, सागसामपि निग्रहः ॥ १७७ ॥

षष्टिं सहस्रान् सगरात्मजानां, स तान् कथाशेषतया विधाय ।
रसातलं नागपतिः सनागो, ययौ विवस्वानिव वासरान्ते ॥ १७८ ॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये द्वितीये पर्वणि सगरपुत्रनिधनो नाम पञ्चमः सर्गः ॥

---

१ अलविरोधाः । २ अपराद्धम् । ३ वडवाग्निः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठः सर्गः।

चक्रिसैन्येऽथ सैन्यानामाक्रन्द उदभून्महान्। महाजलाशय इव, रिक्तीभवति यादसाम् ॥ १ ॥
केऽप्यास्वादितकिम्पाका, इव पीतविषा इव। सर्पदष्टा इवोन्मूर्च्छाः, पेतुर्वसुमतीतले ॥ २ ॥
केचिदास्फालयामासुः, स्वशिरो नालिकेरवत्। केचिदाजघ्निरे वक्षः, कृतागस्क[1]मिवाऽसकृत् ॥ ३ ॥
पादान् प्रसार्य केऽप्यस्थुः, कृत्यमूढाः पुरन्ध्रिवत्। भृगूण्या[2]रुरुहुर्झम्पां, कपिवत् केऽपि दित्सवः[3] ॥ ४ ॥
कूष्माण्डदारमुदराण्येके स्वानि दिदीर्षवः। चकृषुः क्षुरिकां कोशाद्, यमजिह्वासहोदराम् ॥ ५ ॥
आत्मानं तरुशाखायामुद्बन्द्धुमनसोऽपरे। बबन्धुरुत्तरीयाणि, लीलादोलां यथा पुरा ॥ ६ ॥
शिरसोऽत्रोटयन् केऽपि, केशान् क्षेत्रात् कुशानिव। केऽप्यङ्गलग्नं नेपथ्यं, चिक्षिपुः स्वेदबिन्दुवत् ॥ ७ ॥
हस्तन्यस्तकपोलाः केऽप्यस्थुश्चिन्तापरायणाः। प्रदत्तोत्तम्भनस्तम्भजर्जराकारकुड्यवत् ॥ ८ ॥
असंवहन्तः केचिच्च, परिधानांशुकान्यपि। विशंस्थुलाङ्गं[4] व्यलुठन्नुन्मत्ता इव भूतले ॥ ९ ॥
विलापोऽन्तःपुर*स्त्रीणां, कुररीणामिवाऽम्बरे। हृदयाकम्पजनकः, पृथक् पृथगभूदिति ॥ १० ॥
प्राणेशान् गृह्णताऽस्माकं, प्राणानत्रैव मुञ्चता। किमर्धवैशस[5]मिदं, रे दैवाऽऽचरितं त्वया? ॥ ११ ॥
प्रसीद विवरं देहि, स्फुटित्वा देवि काश्यपि[6]!। अभ्रादपि पतितानां, शरणं धरणी खलु ॥ १२ ॥
अद्य चन्दनगोधानामिवाऽस्माकमुपर्यहो!। विद्युद्दण्डमकाण्डेऽपि, दैव! पातय निर्दयम् ॥ १३ ॥
प्राणाः! शिवा वः पन्थानः, सन्तु यात यथेप्सितम्। विमुञ्चताऽस्मच्छरीरमवक्रय[7]कुटीमिव ॥ १४ ॥
समायाहि महातन्द्रे!, सर्वदुःखापनोदिनि!। मन्दाकिनि! त्वमुत्प्लुत्य, जलमृत्युं प्रयच्छ वा ॥ १५ ॥
अस्यां गिरितलाटव्यां, प्रादुर्भव दवानल!। अनुयामः पतिगतिं, तव साहाय्यकाद् यथा ॥ १६ ॥
हा केशपाश! मुञ्चाऽद्य, सुमनोदाम[8]सौहृदम्। युवाभ्यां दीयतां नेत्रे!, कज्जलाय जलाञ्जलिः ॥ १७ ॥
पत्रलेखनकण्डूतिं, मा कृषाथां कपोलकौ!। अलक्तकव्यतिकर[9]श्रद्धामधर! मा धर† ॥ १८ ॥
गीताकर्णनवत् कर्णौ!, त्यजतं रत्नकर्णिकाम्। हे कण्ठ! कण्ठिकोत्कण्ठां, मा कार्षीस्त्वमतः परम् ॥१९॥
वक्षोजावद्य वां हारो, नीहारो[10]ऽम्भोरुहामिव। सद्यो हृदय! भूयास्त्वं, पक्वैर्वारुक[11]वद् द्विधा ॥ २० ॥
बाहू! कङ्कण-केयूरैर्भारैरिव कृतं च वाम्। नितम्ब! रसनां मुञ्च, प्रातश्चन्द्र इव प्रभाम् ॥ २१ ॥
अनाप्तैरिव पर्याप्तं, हे पादौ! पादभूषणैः। अलमङ्गा[12]ऽङ्गरागैस्तैः, कपिकच्छूमयैरिव ॥ २२ ॥
एवमन्तःपुरस्त्रीणां, रुदितैः करुणस्वरैः। वनान्यपि प्रतिरवै, रुरुदुः सह बन्धुवत् ॥ २३ ॥
सेनाधिपति-सामन्त-मण्डलेशादयोऽपि हि। शोक-ह्री-क्रोध-शङ्कादिविचित्रं प्रालपन्निति ॥ २४ ॥
हा स्वामिपुत्राः! क्व गताः?, न हि संविद्महे वयम्। ब्रूताऽनुयामोऽद्य यथा, स्वामिशासनतत्पराः ॥२५॥
किं तिरोधानविद्येह, भवतां काऽप्युपस्थिता?। सा तु खेदाय भृत्यानां, प्रयोक्तुं न हि युज्यते ॥ २६ ॥
युष्मान् नष्टान् विनष्टान् वा, हित्वा गतवतां मुखम्। कथं द्रक्ष्यति नः स्वामी, ऋषिहत्याकृतामिव? ॥२७॥
युष्मान् विना गतान् नो[13]ऽद्य, लोकोऽप्युपहसिष्यति। हृदय! स्फुट रे! सद्यः, पयःसिक्ताम[14]कुम्भवत् ॥२८॥
तिष्ठ तिष्ठाऽहिखेट! त्वं, छलेन श्वेव नः पतीन्। व्यग्रानष्टापदत्राणे, दग्ध्वाऽयासीः क्व रेऽधुना? ॥२९॥
खड्गः खड्गो धन्व धन्व, शक्तिः शक्तिर्गदा गदा। युद्धाय सज्जीभव रे!, कियद्गत्वा गमिष्यसि? ॥३०॥
अमी तावदिह त्यक्त्वा, ययुर्नः स्वामिसूनवः। हहा! तत्र गतानद्य, त्यक्ष्यति स्वाम्यपि द्रुतम् ॥ ३१ ॥

---

१ कृतापराधम्। २ छिन्नटङ्कानि अत्युच्चानि गिरिशिखराणि। ३ दातुमिच्छवः। ४ शिथिलाङ्गं यथा स्यात्तथा। * पुरे स्त्री° खं० २ खं० ३ संता० ॥ ५ अर्धमरणम्। ६ हे पृथ्वि। ७ भाटकगृहीतां कुटीमिव। ८ पुष्पमालामैत्रीम्। ९ सम्बन्धः। † धरः संता० खं० ३ ॥ १० हिमम्। ११ पक्वचिर्भटकवत्। १२ हे शरीर!। १३ अस्मान्। १४ अपक्वघटवत्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अगतानपि नस्तत्र, जीवतोऽत्रैव तिष्ठतः। श्रुत्वा लज्जिष्यते स्वामी, यदि वा निग्रहीष्यति ॥ ३२ ॥
एवं रुदित्वा विविधं, भूयः सम्भूय ते मिथः। सहजं धैर्यमालम्ब्य, मन्त्रयामासुरित्यथ ॥ ३३ ॥
पूर्वोदितविधानेभ्यः, परोक्तविधिवद् विधिः[1]। सर्वेभ्यो बलवांस्तस्मान्न कोऽपि बलवत्तरः ॥ ३४ ॥
तत्राऽशक्यप्रतीकारे, मुधा प्रतिचिकीर्षितम्। व्योम्नः प्रतिजिघांसेव[3], जिघृक्षेव[4] नभस्वतः ॥ ३५ ॥
एभिः प्रलापैस्तदलं, हस्त्यश्वाद्यखिलं प्रभोः। इदानीमर्पयामः स्वं, वयं न्यासधरा इव ॥ ३६ ॥
उचितं रुचितं वाऽपि, यत्किञ्चन ततः परम्। विदधातु तदस्मासु, स्वामी किं नो विचिन्तया? ॥३७॥
एवमालोच्य ते सर्वे, सर्वमन्तःपुरादिकम्। आदाय दीनवदनाः, प्रत्ययोध्यं प्रतस्थिरे ॥ ३८ ॥
मन्दं मन्दमथोत्साहहीना म्लानाननेक्षणाः। अयोध्यासन्निधिभुवं, प्रापुः सुप्तोत्थिता इव ॥ ३९ ॥
विषण्णास्तत्र च स्थित्वा, नीता वध्यशिलामिव। उपविश्य महीपीठेऽन्योऽन्यमेवं बभाषिरे ॥ ४० ॥
भक्ता बहुज्ञा दोष्मन्तो, दृष्टसाराः पुराऽपि च। इत्यादिष्टा वयं राज्ञा, सत्कृत्य तनयैः सह ॥ ४१ ॥
विना कुमारानभ्येत्य, स्वामिनोऽग्रे वयं कथम्। वदनं धारयिष्यामो, नासिकारहिता इव? ॥ ४२ ॥
कथं वा कथयिष्यामः, पुत्रवृत्तान्तमीदृशम्। अकाण्डाशनिसम्पातसदृशं वसुधापतेः? ॥ ४३ ॥
अतः परमहो! तत्राऽस्माकं गन्तुं न युज्यते। युज्यते किन्तु मरणं, शरणं सर्वदुःखिनाम् ॥ ४४ ॥
सम्भावनायाः प्रभुणा, कृताया भ्रंशभाजिनः। पुंसोऽशरीरिकस्येव, जीवितव्येन किं ननु? ॥ ४५ ॥
किञ्च पुत्रक्षयं श्रुत्वा, दुःश्रवं चक्रवर्त्यपि। चेद् विपद्येत तदपि, मृत्युरग्रेसरो हि नः ॥ ४६ ॥
मन्त्रयित्वेति ते सर्वे, मरणे कृतनिश्चयाः। यावत् तस्थुस्तावदागादेकः काषायभृद्द्विजः ॥ ४७ ॥
ब्राह्मणग्रामणीः सोऽथ, प्रोत्क्षिप्तकरपङ्कजः। जीवयंस्तानुवाचैवं, गिरा जीवातुकल्पया[6] ॥ ४८ ॥
भोः कृत्यमूढाः! किं यूयमेवं स्थाऽस्वस्थचेतसः?। उपर्यापतिते व्याधे, पतित्वा शशका इव ॥ ४९ ॥
यदि षष्टिसहस्रा वः, स्वामिपुत्रा विपेदिरे। युगपद् युग्मिवत् तत्र, विषादेन कृतं ननु ॥ ५० ॥
सहजाता अपि क्वाऽपि, विपद्यन्ते पृथक् पृथक्। पृथग्जाता अपि क्वाऽपि, विपद्यन्ते सहैव हि ॥ ५१ ॥
बहवोऽपि विपद्यन्ते, विपद्यन्तेऽल्पका अपि। सर्वेषामपि जीवानां, यन्मृत्युः पारिपार्श्विकः ॥ ५२ ॥
न हि केनाऽपि कस्यापि, मृत्युः शक्यो निषेधितुम्। अपि यत्नशतं कृत्वा, स्वभाव इव देहिनाम् ॥५३॥
निषेधितुं शक्यते चेत्, स[7] निषिद्धः कथं न हि। वज्रभृच्चक्रवर्त्याद्यैः, स्वस्य वा स्वजनस्य वा? ॥ ५४ ॥
मुष्टिना शक्यते धर्तुमपि वज्रं पतद् दिवः। सेतुनाऽवस्खलयितुमप्युद्भ्रान्तः पयोनिधिः ॥ ५५ ॥
निर्वापयितुमुद्दामो, युगान्तज्वलनोऽपि वा। कल्पान्तोत्पातजातो वा, मन्दीकर्तुं समीरणः ॥ ५६ ॥
उत्तम्भनेनाऽद्रिरपि, समुत्तम्भयितुं पतन्। न तूपायशतेनाऽपि, शक्यो मृत्युर्निषेधितुम् ॥ ५७ ॥
ते नः सम्पश्यमानानां, विपन्नाः स्वामिसूनवः। इत्येवं मास्म खिद्यध्वं, धीरीभवत सम्प्रति ॥ ५८ ॥
युष्माकं स्वामिनमपि, मज्जन्तं शोकसागरे। हस्तेनेव धरिष्यामि, प्रबोधवचसाऽञ्जसा ॥ ५९ ॥
एवमाश्वास्य तान् सर्वान्, मृतं किञ्चित् पथि स्थितम्। विप्रः सोऽनाथमादाय, विनीतां नगरीं ययौ ॥६०॥
सगरस्य नरेन्द्रस्य, स गत्वा सदनाङ्गणे। ऊर्ध्वीभूयोर्ध्वदोर्दण्डः, पूत्कारोच्चकैरिति ॥ ६१ ॥
चक्रवर्तिन्! न्यायवर्तिन्नखण्डभुजविक्रम!। अत्याहितमब्रह्मण्यमब्रह्मण्यमहो! इदम् ॥ ६२ ॥
स्वर्गे पुरन्दरेणेव, क्षेत्रे भरतनामनि। यत् त्वया रक्षितेऽप्यस्मिन्, मुषितो मुषितोऽस्म्यहम् ॥ ६३ ॥
शब्दमश्रुतपूर्वं तं, श्रुत्वा सगरचक्र्यपि। सङ्क्रान्ततद्दुःख इव, जगाद द्वारपालकम् ॥ ६४ ॥
केनैष मुषितः? कोऽयं?, कुतो वाऽयं समागतः?। सर्वं विज्ञायतामेतत्, स्वयं वाऽत्र प्रवेश्यताम् ॥६५॥

१ पूर्वविधिभ्यः परो विधिर्बलवानिति व्याकरणशास्त्रे न्यायः। २ दैवम्। ३ प्रतिहन्तुमिच्छा। ४ ग्रहीतुमिच्छा। ५ धनम्। ६ सञ्जीवनौषधतुल्यया। ७ मृत्युः। ८ रोद्धुम्। ९ जीवितापहार्यनर्थसम्पातः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारपालोऽथ पप्रच्छ, विप्रं क्षिप्रमुपेत्य तम् । अनाकर्णितकं कुर्वन्, पूत्कार तथैव सः ॥ ६६ ॥
व्याजहार प्रतीहारः, पुनरेवमहो द्विज ! । किं दुःखबधिरोऽसि त्वं ?, निसर्गबधिरोऽसि वा ? ॥ ६७ ॥
अजितस्वामिनो भ्राता, स्वयमेष महीपतिः । दीना-ऽनाथपरित्राता, शरणं शरणार्थिनाम् ॥ ६८ ॥
सादरः सोदरमिव, त्वां पृच्छति विराविणम् । मुषितः केन ? कश्चाऽसि ?, कुतस्त्योऽसीति शंस नः ॥ ६९ ॥
यदि वा स्वयमागत्य, स्वकीयं दुःखकारणम् । वैद्यायेव रुगुत्थानं, निवेदय महीभुजे ॥ ७० ॥
इत्युक्तः प्रतिहारेण, स द्विजः साश्रुलोचनः । नीहारकणिकाकीर्णसरोरुह इव ह्रदः ॥ ७१ ॥
प्रम्लानवदनेन्दुश्च, निशीथ इव हैमनः । अच्छभल्ल इवातुच्छप्रविकीर्णशिरोरुहः ॥ ७२ ॥
जरत्प्लवङ्गम इव, परिक्षामकपोलकः । मन्दमन्दपदन्यासं, प्राविशच्चक्रिणः सदः ॥ ७३ ॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
स्वयं कृपालुना सोऽथ, चक्रिणैवमपृच्छयत । कच्चित् ते काञ्चनं किञ्चिज्जह्रे कुत्राऽपि केनचित् ? ॥ ७४ ॥
किं वा रत्नानि केनाऽपि, हृतानि वसनानि वा ? । किं वाऽपालापि केनाऽपि, न्यासो विश्वस्तघातिना ? ॥ ७५ ॥
ग्रामरक्षादिना किं वा, केनाऽप्यसि कदर्थितः ? । भाण्डसर्वस्वहरणात्, पीडितः शौल्किकेन वा ? ॥ ७६ ॥
दायादेनाऽथ केनाऽपि, प्रापितोऽसि पराभवम् ? । उपदुद्राव कोऽपि त्वां, जायाविद्रवणेन वा ? ॥ ७७ ॥
बलवानथवा वैरी, त्वामास्कन्दति कश्चन ? । आधिर्वा बाधते कोऽपि, त्वां ? व्याधिरथवोत्कटः ? ॥ ७८ ॥
द्विजातिजातिसुलभं, दारिद्र्यं त्वां दुनोति वा ? । अन्यद्वा दुःखकृद् यत् ते, तदाख्याहि महाद्विज ! ॥ ७९ ॥
सद्यो नट इवाऽलीकं, मुञ्चन्नश्रान्तमश्रु सः । ब्राह्मणो व्याजहारैवं, राजानं रचिताञ्जलिः ॥ ८० ॥
द्यौरिवाऽमरराजेन, न्याय-विक्रमराजिना । त्वया राजन्वती राजन् !, षट्खण्डभरतावनिः ॥ ८१ ॥
नाऽऽच्छिन्त्ते कस्यचित् कोऽपि, स्वर्ण-रत्नादि किञ्चन । आढ्याः स्वगृहवद् ग्रामान्तरालेऽपि हि शेरते ॥ ८२ ॥
न्यासं नाऽपह्नुते कोऽपि, निजं कुलमिवोत्तमम् । स्वपुत्रमिव रक्षन्ति, ग्रामरक्षादयः प्रजाम् ॥ ८३ ॥
अर्थे लभ्येऽतिरिक्तेऽपि, शुल्कं भाण्डानुमानतः । गृह्णन्ति शौल्किका दण्डमिव मन्तुप्रमाणतः ॥ ८४ ॥
दायमादाय दायादा, विवदन्ते पुनर्न हि । अवाप्तोत्तमसिद्धान्ताः, शिष्या इव गुरुं प्रति ॥ ८५ ॥
भगिनीवद् दुहितृवत्, स्नुषावन्मातृवत् तथा । मन्यते परकीयाः स्त्रीर्न्यायनिष्ठोऽखिलो जनः ॥ ८६ ॥
नास्ति पत्याश्रम इव, त्वद्राज्ये वैरवागपि । सन्तोषशालिनि जने, नाऽऽधिः साऽम्भसि तापवत् ॥ ८७ ॥
भुवि सर्वौषधीमय्यां, न व्याधिः प्रावृषीव तृट् । त्वयि कल्पद्रुम इव, दारिद्र्यं च न कस्यचित् ॥ ८८ ॥
अस्ति दुःखाकरं लोके, न किञ्चिदपि कस्यचित् । किन्तूपनतमस्त्येतन्ममैव हि तपस्विनः ॥ ८९ ॥
अवन्तिर्नाम देशोऽस्ति, स्वर्गदेश्यो महानिह । नगरोद्यान-नद्याद्यैरनवद्यैर्मनोहरः ॥ ९० ॥
महासरः-कूप-वापी-विचित्रारामबन्धुरः । तत्राऽश्वभद्रो नामाऽस्ति, ग्रामस्तिलकवद् भुवः ॥ ९१ ॥
तत्र ग्रामेऽस्मि वास्तव्यो, वेदाध्ययनतत्परः । अग्निहोत्ररतो नित्यं, शुद्धब्रह्मकुलोद्भवः ॥ ९२ ॥
पत्न्याः प्राणप्रियं पुत्रमर्पयित्वाऽहमन्यदा । विशेषविद्याध्ययनहेतोर्ग्रामान्तरं गतः ॥ ९३ ॥
पठतस्तत्र चाऽन्येद्युरुदभूदरतिर्मम । अनिमित्तं महदेतदित्यक्षुभ्यमहं ततः ॥ ९४ ॥
भीतस्तेनाऽनिमित्तेन, स्वं ग्रामं पुनरागमम् । अहं पूर्वाश्रितां जात्यतुरङ्ग इव मन्दुराम् ॥ ९५ ॥
दूरादहमपश्यं च, श्रीविमुक्तं निजं गृहम् । किमेतदिति चित्ते च, चिरं यावदचिन्तयम् ॥ ९६ ॥
अमन्दं स्पन्दितं तावद्, दक्षिणेतरचक्षुषा । शुष्कवृक्षे चटित्वोच्चैः, रटितं करटेन च ॥ ९७ ॥
इत्यादिभिर्दुर्निमित्तैर्विद्धो हृदि शरैरिव । विमनाः प्राविशमहं, चञ्चापुरुषवद् गृहम् ॥ ९८ ॥

---

१ पूत्कारिणम् । २ रोगोत्पत्तिम् । ३ हेमन्तर्तौ रात्रिरिव । ४ यथा जीर्णकेशः भल्लूको भवति तादृशः । ५ सभाम् । ६ अपह्नुतः । ७ विश्वासघातिना । ८ शुल्काध्यक्षेण । ९ जायाया अपहारेण । १० नापहरति । ११ यथापराधम् । १२ भागम् । १३ प्राप्तम् । १४ दुःखम् । १५ स्वर्गसदृशः । १६ अपशकुनम् । १७ अश्वशालाम् । १८ वामनेत्रेण । १९ काकेन ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मामायतन्तं सम्प्रेक्ष्य, ब्राह्मणी विलुलत्कचा[1] । सद्यो हा पुत्र ! हा पुत्रेत्याक्रन्दन्त्यपतद् भुवि ॥९९॥
ध्रुवं विपन्नो मे पुत्र, इति निश्चित्य चेतसा । अहमप्यपतं सद्यो, गतप्राण इवाऽवनौ ॥ १०० ॥
मूर्च्छाविरामे भूयोऽपि, प्रलपन् करुणस्वरम् । अपश्यं गृहमध्येऽहं, सर्पदष्टमिमं सुतम् ॥ १०१ ॥
भोजनाद्यप्यकृत्वाऽस्थां, यावज्जाग्रदहं निशि । कुलदेवतया तावदिदमादेशि मे पुनः ॥ १०२ ॥
भोः ! किमेवं समुद्विग्नोऽस्यमुना पुत्रमृत्युना ? । सम्[2]पादयामि ते पुत्रं, यद्यादेशं करोषि मे ॥१०३॥
देव्याः प्रमाणमादेश, इत्यवोचमहं ततः । पुत्रार्थे शोकविधुरैः, किं वा न प्रतिपद्यते ? ॥ १०४ ॥
कुलदेवतयाऽ*थोक्तं, विप[3]न्नो यत्र कोऽपि न । ततोऽग्निं मङ्गलगृहात्, कुतोऽप्यानय सत्वरम् ॥ १०५ ॥
ततस्तनयलोभेन, प्रत्यहं प्रतिमन्दिरम् । तत् पृच्छन् हस्यमानोऽहं, भ्रान्तोऽर्भक इवाऽभ्रमम् ॥ १०६ ॥
पृच्छयमानो जनः सर्वोऽप्याचष्टे स्म गृहे गृहे । सङ्ख्यातीतान् मृतान् वेश्म, नाऽमृतं किञ्चिदप्यभूत्॥१०७॥
तदप्राप्त्या च भग्नाशः, प[4]रासुरिव नष्टधीः । व्यजिज्ञपमहं दीनस्तत् सर्वं कुलदेवताम् ॥ १०८ ॥
आदिशद् देवताऽप्येवं, न मङ्गलगृहं यदि । अमङ्गलं कथमहं, तव रक्षितुमीश्वरी ? ॥ १०९ ॥
तया च देवतावाचा, तोत्त्रे[5]णेवं प्रवर्तितः । प्रतिग्रामं प्रतिपुरं, भ्रमन्नहमिहाऽऽगमम् ॥ ११० ॥
अपि धात्र्याः समस्तायास्त्राता त्वमसि विश्रुतः । न कोऽपि प्रतिमल्लोऽस्ति, दोष्मदग्रेसरस्य ते ॥ १११ ॥
वैताढ्यगिरिदुर्गस्थश्रेणिद्वयगतास्तव । विद्याधरा अपि दधत्याज्ञां शिरसि माल्यवत् ॥ ११२ ॥
देवा अपि तवाऽऽदेशं, सदा कुर्वन्ति भृत्यवत् । वाञ्छितार्थं प्रयच्छन्ति, निधयश्च तवाऽनिशम् ॥११३॥
ततस्त्वां शरणं प्राप्तो, दीन[6]त्राणैकसत्रिणम् । तदग्निं मङ्गलगृहात्, कुतोऽप्यानय मत्कृते ॥ ११४ ॥
विपन्नमपि मे पुत्रं, सा यथा कुलदेवता । प्रत्यानयति येनाऽसि, दुःखितः पुत्रमृत्युना ॥ ११५ ॥

भवस्वरूपं नृपतिर्जानन्नपि कृपावशात् । तद्दुःखदुःखितः किञ्चिच्चिन्तयित्वैवमब्रवीत् ॥ ११६ ॥
एतस्यामवनौ तावद्, गृहेषु सकलेष्वपि । अस्माकं गृहमुत्कृष्टं, सुमेरुः पर्वतेष्विव ॥ ११७ ॥
आसीदस्मिन्नसामान्यस्त्रिजगन्मान्यशासनः । प्रथमस्तीर्थनाथानां, प्रथमः पृथिवीभुजाम् ॥ ११८ ॥
लक्षयोजनमुत्सेधे, दण्डीकृत्याऽमराचलम् । दोर्दण्डेन समुत्क्षिप्य, च्छत्रीकर्तुं क्षमः क्षमाम् ॥ ११९ ॥
चतुःषष्टीन्द्रमुकुटोत्तेजिताङ्घ्रिनखावलिः । भगवानृषभस्वामी, विपन्नः सोऽपि कालतः ॥ १२० ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

तस्य च प्रथमः सूनुः, प्रथमश्चक्रवर्तिनाम् । सुरा-ऽसुरैरपि सदा, शिरसोद्वाह्यशासनः ॥ १२१ ॥
भरतो नाम सौधर्मपुरुहूतासनार्धभाक् । कालेन गच्छता सोऽपि, समाप्तिं प्रापदायुषः ॥ १२२ ॥ युग्मम् ॥
तस्य चाऽवरजो धुर्यो, वर्यदोर्वीर्यशालिनाम् । अम्भोधीनामिवाऽम्भोधिः, स्वयम्भूरमणाभिधः ॥१२३॥
कण्डूयद्भिः सैरिभेभ[7]-शरभाद्यैरकम्पितः । वज्रदण्ड इव न्यस्तो, वत्सरं प्रतिमाधरः ॥ १२४ ॥
महाबाहुर्बाहुबलिर्बाहुदन्तेय[8]विक्रमः । नाऽधिकं किञ्चिदप्यस्मात्, सम्पूर्णे पुरुषायुषे ॥ १२५ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

उग्रेण तेजसाऽऽदित्यो, नाम्नाऽऽदित्ययशा इति । समभूदोजसाऽनूनः, सूनुर्भरतचक्रिणः ॥ १२६ ॥
आदित्ययशसः सूनुरासीन्नाम्ना महायशाः । दिगन्तसङ्गीतयशाः, सर्वदोष्मच्छिरोमणिः ॥ १२७ ॥
तस्य चाऽतिबलो नाम, सूनुः समुदपद्यत । आखण्डल इवाऽखण्डशासनोऽवनिशासनः ॥ १२८ ॥
बभूव तस्य तनयो, बलभद्रोऽभिधानतः । जग[9]न्मद्रङ्करः स्वाम्ना, धाम्ना दीधितिमा[10]निव ॥ १२९ ॥
बलवीर्यो महावीर्यः, शौर्य-धैर्यभृदग्रणीः । ग्रामणीर्नरनाथानामभवत् तस्य चाऽऽत्मजः ॥ १३० ॥

---

१ विकीर्णकेशा। २ जीवयामि। * ऽथोक्ते, विप° डं० ॥ ३ मृतः। ४ गतप्राणः। ५ गवादिताडनदण्डः। ६ दीनरक्षणैकदीक्षितम्। ७ महिषगजाष्टापदप्रभृतिभिः। ८ इन्द्रसमपराक्रमः। ९ जगन्माङ्गल्यकारकः। १० सूर्य इव।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शोभितः कीर्ति-वीर्याभ्यां, कीर्तिवीर्यश्च विश्रुतः । उदभूदङ्गभूस्तस्माद्, दीपो दीपादिवोज्ज्वलः ॥१३१॥
दन्तिभिर्गन्धदन्तीव, वज्रदण्ड इवाऽऽयुधैः । परैरवार्यवीर्योऽभूज्जलवीर्यश्च तत्सुतः ॥ १३२ ॥
अखण्डदण्डशक्तिश्च, दण्डपाणिरिवाऽपरः । अभूदुद्दण्डदोर्दण्डो, दण्डवीर्यस्तदात्मजः ॥ १३३ ॥
अपाच्यभरतार्धस्य, शासितारो महौजसः । इन्द्रोपनीतभगवन्महामुकुटधारिणः ॥ १३४ ॥
सुरा-ऽसुरैरप्यजय्यास्तेऽपि लोकोत्तरौजसः । सर्वेऽपि कालधर्मेण, कालेधर्ममुपाययुः ॥ १३५ ॥ युग्मम् ॥
ततः प्रभृति चाऽन्येऽपि, सङ्ख्यातीता महीभुजः । महाभुजा व्यपद्यन्त, कालो हि दुरतिक्रमः ॥ १३६ ॥
सर्वङ्कषः पिशुनवत्, सर्वभक्षी हुताशवत् । सर्वभेदी सलिलवत्, कृतान्तस्तदहो द्विज! ॥ १३७ ॥
मदीयेऽपि गृहे कालान्नाऽवशिष्टोऽस्ति पूर्वजः । का वार्ताऽन्यगृहेष्वस्ति ?, तन्मङ्गलगृहं कुतः ? ॥१३८॥
त्वत्पुत्रश्चेन्म्रियेतैकस्तदेवमुचितं तव । सर्वसाधारणे मृत्यौ, किं नाम द्विज! शोचसि ? ॥ १३९ ॥
अर्भके स्थविरे वाऽथ, दरिद्रे चक्रवर्तिनि । समं वर्तत इत्येष, कृतान्तः समवर्त्यहो! ॥ १४० ॥
संसारस्य स्वभावोऽयं, न स्थिरः कश्चिदत्र यत् । तरङ्गवत् तरङ्गिण्यां, शरदभ्रवदम्बरे ॥ १४१ ॥
किञ्चाऽसौ मे पिता माता, भ्राता पुत्रः स्वसा स्नुषा । इत्यादिरपि सम्बन्धो, न भवे पारमार्थिकः ॥१४२॥
केऽपि केऽपि कुतोऽप्येत्य, मिलन्त्येकत्र वेश्मनि । यतः शरीरिणः सर्वे, ग्रामकुट्यामिवाऽध्वगाः ॥ १४३ ॥
पृथक् पृथक् पथेनैव, स्वकर्मपरिणामतः । तेषु गच्छत्सु को नाम, सुधीः शोचेन्मनागपि ? ॥ १४४ ॥
मास्म शोकं कृथास्तेन, मोहचिह्नं द्विजोत्तम! । धेहि धैर्यं महासत्त्व !, विवेके स्वं निधेहि च ॥ १४५ ॥
अथावोचद् द्विजन्माऽपि,राजन्! जानामि जन्मिनाम् । भवस्वरूपं किन्त्वद्य,व्यसार्षं पुत्रशोकतः ॥१४६॥
तावत् सर्वोऽपि जानाति, तावत् सर्वोऽपि धैर्यभाक् । यावदिष्टवियोगं नाऽनुभवत्यात्मना भवी ॥ १४७ ॥
सदाऽर्हदादेशसुधापाननिर्धौतचेतसः । विरलास्त्वादृशाः स्वामिन्!, धैर्यवन्तो विवेकिनः ॥ १४८ ॥
विवेकिन्! भवता मुह्यन्, बोधितः साधु साध्वहम् । उपस्कार्यो विवेकोऽयमात्मनोऽपि कृते त्वया ॥ १४९ ॥
नश्यन्नयं रक्षणीयो, व्यसने समुपस्थिते । यतो विधुरवेलायै, ध्रियते ध्रुवमायुधम् ॥ १५० ॥
अयं च कालो रङ्के च, समश्चक्रधरेऽपि च । प्राणान् पुत्रादि वाऽऽच्छिन्दन्, बिभेति न कुतोऽपि हि ॥१५१॥
हन्त! पुत्रादि यस्याल्पमल्पं तस्य विपद्यते । भूयिष्ठं यस्य तत् तस्य, भूयिष्ठं हि विपद्यते ॥ १५२ ॥
द्वयोरपि तयोः पीडा, तुल्यैव हि भवत्यहो! । अल्पा-ऽनल्पप्रहाराभ्यां, कुन्थु-कुञ्जरयोरिव ॥ १५३ ॥
नाशेनैकस्य पुत्रस्य, न शोचिष्याम्यतः परम् । मद्वत् त्वमपि मा शोचीः, सर्वपुत्रक्षयेऽपि हि ॥ १५४ ॥
षष्टिसहस्रसङ्ख्यास्ते, दोर्विक्रमविराजिनः । राजन्! विपन्नास्तनया, युगपत् कालयोगतः ॥ १५५ ॥
अत्रान्तरे च सामन्ता-ऽमात्य-सेनाधिपादयः । अपरेऽपि कुमाराणां, जना आसन्नवर्तिनः ॥ १५६ ॥
उत्तरीयच्छन्नमुखाः, शालीना इव लज्जया । विवर्णदेहाः खेदेन, दवदग्धा इव द्रुमाः ॥ १५७ ॥
अत्यन्तशून्यमनसः, पिशाच-किन्नरा इव । उदश्रुलोचना दीना, मुषिताः कृपणा इव ॥ १५८ ॥
प्रस्खलच्चरणन्यासा, दष्टा इव भुजङ्गमैः । आस्थानं युगपद् राज्ञोऽविशन् सङ्केतिता इव ॥ १५९ ॥
राजानं ते नमस्कृत्य, यथास्थानमुपाविशन् । विविक्षव इव क्षोणीं, ते च तस्थुरधोमुखाः ॥ १६० ॥
तां विप्रवाचमाकर्ण्य, दृष्ट्वा तांश्च तथाविधान् । कुमारवर्जमायाताननिषादिद्विपानिव ॥ १६१ ॥
लिखितो नूल्लिखितो नु, सुप्तो नूत्तम्भितो नु वा । शून्यो निष्पन्दनयनो, द्रागभूदवनीपतिः ॥ १६२ ॥
॥ युग्मम् ॥
आसन्नमूर्च्छमधैर्येण, धैर्येण च *तथास्थितम् । पुनर्बोधयितुं विप्रः, प्रोवाच पृथिवीपतिम् ॥ १६३ ॥

१ अलौकिकपराक्रमवन्तः । २ मृत्युम् । ३ नद्याम् । ४ धर्मशालायाम् । ५ विवेकः । ६ दुःखवेलायै । ७ सभाम् । ८ प्रवेष्टुमिच्छवः । ९ हस्तिपकरहितगजानिव । * यथा° सह २ ॥ १० स्वस्थम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वमसि क्ष्मापते! विश्वमोहनिद्राविवस्वतः। ऋषभस्वामिनो वंश्यो, भ्राता चास्यजितप्रभोः॥१६४॥
इत्थं पृथग्जन इव, भवन् मोहवशंवदः । तयोः कलङ्कमाधत्सेऽधुना किं धरणीधव! ? ॥ १६५ ॥
राजाऽपि दध्यौ विप्रोऽयं, स्वपुत्रान्तापदेशतः । मत्पुत्रक्षयनाख्यस्य, जगौ प्रस्तावनामिमाम् ॥ १६६ ॥
व्यक्तं च शंसत्यधुना, कुमाराणामसौ क्षयम् । कुमारवर्जं चाऽऽयाताः, प्रधानपुरुषा अमी ॥ १६७ ॥
कुतः सम्भाव्यते तेषां, क्षयश्च मनसाऽपि हि । भुवि सञ्चरतां स्वैरं, वने केसरिणामिव ? ॥ १६८ ॥
महारत्नपरीवारा, दुर्वाराः स्वौजसाऽपि हि । केन शक्या निहन्तुं ते, हन्ताऽस्खलितशक्तयः ? ॥ १६९ ॥
चिन्तयित्वेति किमिदमिति पृष्टाः क्षमाभुजा । ज्वलनप्रभवृत्तान्तं, शशंसुः सचिवादयः ॥ १७० ॥
ताडितः कुलिशेनेव, तेनोदन्तेन भूपतिः । पपात मूर्च्छितः पृथ्व्यां, पृथिवीमपि कम्पयन् ॥ १७१ ॥
मातरश्च कुमाराणां, निपेतुर्मूर्च्छया क्षितौ । पितुर्मातुश्च तुल्यं हि, दुःखं सुतवियोगजम् ॥ १७२ ॥
राजवेश्मनि लोकानामाक्रन्दोऽथ महानभूत् । समुद्रतटगर्तान्तर्गतानां यादसामिव ॥ १७३ ॥
मन्त्र्यादयोऽपि ते स्वामिपुत्रव्यापत्तिसाक्षिणम् । आत्मानमतिनिन्दन्तो, रुरुदुः करुणस्वरम् ॥ १७४ ॥
तादृशीं स्वामिनोऽवस्थां, तां वीक्षितुमिवाऽक्षमाः । अञ्जलिच्छन्नवदनाः, पूच्चक्रुर्वेत्रपाणयः ॥ १७५ ॥
प्राणप्रियाण्यप्यस्त्राणि, त्यजन्तश्चाऽऽत्मरक्षकाः । प्रलपन्तोऽलुठन् भूमौ, वातभग्ना इव द्रुमाः ॥ १७६ ॥
स्वकञ्चुकान् कञ्चुकिनः, स्फाटयन्तोऽरटन् भृशम् । दवानलान्तः पतिता, इव तित्तिरिपक्षिणः ॥ १७७ ॥
हृदयं कुट्टयन्तः स्वं, चिरात् प्राप्तमिव द्विषम् । चेट्यश्चेटाश्च चक्रन्दुर्हताः स्म इति भाषिणः ॥ १७८ ॥
तालवृन्तानिलेनाऽम्बुसेकेन च महीपतिः । राज्यश्च संज्ञामासेदुर्दुःखशल्यप्रतोदनीम् ॥ १७९ ॥
मलिनीभूतवासस्का, नेत्रास्रजलकज्जलैः । छाद्यमानकपोला-ऽक्ष्यो, लुलितालकवल्लिभिः ॥ १८० ॥
उरःस्थलकराघातप्रत्रुटद्धारयष्टयः । निर्भरं भूमिलुठनस्फुटत्कङ्कणमौक्तिकाः ॥ १८१ ॥
धूमं शोकानलस्येवोज्झन्त्यो निःश्वासमुच्चकैः । शुष्यत्कण्ठा-ऽधरदला, राजपत्न्योऽरुदन्नथ ॥ १८२ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

धैर्यं लज्जां विवेकं च, विहायैकपदेऽपि हि । राज्ञीवच्छोकविधुरो, विललापेति भूपतिः ॥ १८३ ॥
हे कुमाराः! क्व यूयं स्थ?, निवर्तध्वं विहारतः। राज्यायाऽवसरो वोऽद्य, त्रताय सगरस्य तु ॥१८४॥
कथं न कोऽपि ब्रूते वः?, सत्यमुक्तं द्विजन्मना?। दस्युनेव च्छलज्ञेन, दैवेन मुषितोऽस्मि ही! ॥१८५॥
अरे रे दैव! कुत्राऽसि?, कुत्राऽसि ज्वलनप्रभ!? । अक्षत्रमिदमाचर्य, क्वाऽयासीर्नागपांशन!? ॥१८६॥
सेनापते! क्व तेऽगच्छद्दण्डदोर्दण्डचण्डिमा? । क्षेमङ्करत्वमगमत्, क्व पुरोहितरत्न! ते? ॥ १८७ ॥
गलितं वर्धके! किं ते, दुर्गनिर्माणकौशलम्?। गृहिन्! सञ्जीवनौषध्यः, किं ते कुत्राऽपि विस्मृताः? ॥१८८॥
गजरत्न! किमाप्तस्त्वं, तदा गजनिमीलिकाम्? । अश्वरत्न! समुत्पन्नं, शूलं किं भवतस्तदा? ॥ १८९ ॥
चक्र-दण्डा-ऽसयो! यूयं, किं तदानीं तिरोहिताः?। अभूतां मणि-काकिण्यौ!, निष्प्रभौ किं दिनेन्दुवत्?१९०
आतोद्यपुटवद् भिन्ने, किं युवां छत्र-चर्मणी!?। नवाऽपि निधयो! यूयं, ग्रस्ताः किमनया भुवा? ॥१९१॥
युष्मद्विश्वासतोऽशङ्कं, रममाणाः कुमारकाः । सर्वैरपि न यत् त्रातास्तसात् पन्नगपांसनात् ॥ १९२ ॥
करोम्येवं विनष्टे किमिदानीं ज्वलनप्रभम्? । सगोत्रमपि चेद्धन्मि, न हि जीवन्ति मे सुताः ॥ १९३ ॥
ऋषभस्वामिनो वंशे, नैवं कोऽप्यासदन्मृतिम् । त्रपाकरमिमं मृत्युं, हा वत्साः! कथमाप्नुत? ॥१९४॥
पूर्वे मदीयाः सर्वेऽपि, पुरुषायुषजीविनः । दीक्षामाददिरे स्वर्गमपवर्गं च लेभिरे ॥ १९५ ॥
स्वेच्छाविहारश्रद्धाऽपि, भवतां न ह्यपूर्यत । अरण्यानीसमुत्पन्नभूरुहामिव दोहदः ॥ १९६ ॥

---

१ साधारणजनः । २ ऋषभाजितस्वामिनोः । ३ स्वपुत्रमरणमिषात् । ४ वृत्तान्तेन । ५ मरणम् । * नेत्राश्रुजल° सङ्क २ ॥ ६ चौरेणेव । ७ खेदे । ८ नागाधम!। ९ गजवद् नेत्रनिमीलिकाम्। १० महदरण्यमरण्यानी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदियाय च पूर्णेन्दुर्दैवाद् ग्रस्तश्च राहुणा । फलेग्रहिश्च[1] सञ्जज्ञे, तरुर्भग्नश्च कुम्भिना[2] ॥ १९७ ॥
आगता च तरी[3] तीरं, भग्ना च तटभूभृता । उन्नतश्च नवाम्भोदो, विकीर्णश्च नभस्वता ॥ १९८ ॥
निष्पन्नं च व्रीहिवणं, दग्धं च दववह्निना । धर्मा-ऽर्थ-कामयोग्याश्च, जाता यूयं हताश्च हा ! ॥ १९९ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
प्राप्याऽपि मद्गृहं वत्सा !, अकृतार्था गता हहा ! । आढ्यस्य कृपणस्येव, वेश्मोपेत्य वनीपकाः[4] ॥ २०० ॥
तदद्य किं मे चक्राद्यै, रत्नैर्निधिभिरप्यलम् । युष्मान् विना विरहिणो, ज्योत्स्नोद्यानादिकैरिव ॥ २०१ ॥
षट्खण्डभरतक्षेत्रराज्येन यदि वाऽसुभिः[5] । असुभ्योऽपि प्रियैः पुत्रैर्विनाभूतस्य किं मम ? ॥ २०२ ॥
एवं विलापिनमथो, भूनाथं श्रावकद्विजः । स बोधयितुमित्यूचे, सुधामधुरया गिरा ॥ २०३ ॥
धात्र्याः परित्राणमिव, प्रबोधोऽपि तवाऽन्वये । मुख्याधिकारसम्प्राप्तो, मुधाऽन्यैर्देव ! बोध्यसे ॥ २०४ ॥
जगन्मोहार्यमा[6] यस्य, साक्षाद् भ्राताऽजितप्रभुः । अन्येन बोध्यमानस्य, तस्य लज्जा न किं तव ? ॥२०५॥
असावसारः संसारो, ज्ञाप्यतेऽन्यस्य ते पुनः । जन्म प्रभृति सर्वज्ञसेवकस्य किमुच्यते ? ॥ २०६ ॥
पितरो मातरो जायास्तनयाः सुहृदोऽपि च । स्वप्नदृष्टोपमं राजन् !, संसारे सर्वमप्यदः ॥ २०७ ॥
यत् प्रातस्तन्न मध्याह्ने, यन्मध्याह्ने न तन्निशि । निरीक्ष्यते भवेऽस्मिन् ही !, पदार्थानामनित्यता ॥ २०८ ॥
तत्त्ववित् स्वयमेवाऽसि, स्वं धैर्ये स्थापय स्वयम् । रविणा द्योत्यते विश्वं, नाऽपरो द्योतको रवेः ॥२०९॥
लवणोद इवाऽम्भोधिर्मणिभिर्लवणेन च । पक्षमध्यतमिस्रेवाऽऽलोकेन तिमिरेण च ॥ २१० ॥
राकानिशाकर[7] इव, ज्योत्स्नया लाञ्छनेन च । हिमाद्रिरिव दिव्याभिरोषधीभिर्हिमेन च ॥ २११ ॥
तद् विप्रवचनं शृण्वन्, पुत्रान्तं च मुहुः स्मरन् । बोधेन च विमोहेन, चाऽऽनशे पृथिवीपतिः ॥ २१२ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
यथा नैसर्गिकं धैर्यं, महत् तस्य महीपतेः । मोहोऽप्यागन्तुको जज्ञे, पुत्रक्षयभवस्तथा ॥ २१३ ॥
एककोश इव खड्गावेकस्तम्भ इव द्विपौ । प्रबोध-मोहौ युगपत्, तदा राज्ञि बभूवतुः ॥ २१४ ॥
अथ बोधयितुं भूपं, सुबुद्धिर्नाम बुद्धिमान् । वाचा पीयूषसध्रीच्येत्युवाच[8] सचिवाग्रणीः ॥ २१५ ॥
अम्भोधयोऽपि मर्यादां, लङ्घयेयुः कदाचन । आसादयेयुः कम्पं च, कदाचन कुलाचलाः ॥ २१६ ॥
अवाप्नुयात् तरलतां, कदाचिदपि मेदिनी । अपि जर्जरतां वज्रमश्नुवीत कदाचन ॥ २१७ ॥
त्वादृशास्तु महात्मानो, व्यसनेषु महत्स्वपि । उपस्थितेषु वैधुर्यं, न भजन्ते मनागपि ॥ २१८ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
क्षणाद् दृष्टं क्षणान्नष्टं, कुटुम्बाद्यखिलं भवे । विवेकिन इति ज्ञात्वा, न मुह्यन्ति यथा शृणु ॥ २१९ ॥
जम्बूद्वीप इह द्वीपे, क्षेत्रे भरतनामनि । कस्मिंश्चिन्नगरे कोऽपि, पुराऽभूत् पृथिवीपतिः ॥ २२० ॥
जिनधर्मसरोहंसः, सदाचारपथाध्वगः । प्रजामयूरीजलदो, मर्यादापालनाम्बुधिः ॥ २२१ ॥
सर्वव्यसनकक्षाग्निर्दयावल्ल्येकपादपः[9] । कीर्तिकल्लोलिनीशैलः, शीलरत्नैकरोहणः ॥ २२२ ॥
स एकस्मिन् दिने स्वस्यामास्थान्यां[10] सुखमास्थितः । यथाक्षणं विज्ञपयाम्बभूवे वेत्रपाणिना ॥ २२३ ॥
पुष्पदामकरो द्वारि, कलाविदिव कोऽपि ना । विज्ञीप्सुः किञ्चिदद्यैव, देवपादान् दिदृक्षते ॥ २२४ ॥
पण्डितः किं कविः किं वा, गन्धर्वः किं नटोऽथ किम् । छान्दसो वा नीतिविद् वाऽस्त्रविद् वाऽथैन्द्रजालिकः ॥
इति न ज्ञायते ज्ञातं, त्वाकृत्या गुणवानिति । यत्राऽऽकृतिस्तत्र गुणा, इत्यभो अप्यधीयते ॥ २२६ ॥
आदिदेश विशामीशोऽप्येनमानय सत्वरम् । यथा विज्ञपयत्येष, यथेच्छं स्वमभीप्सितम् ॥ २२७ ॥

१ फलवान् । २ गजेन । ३ नौः । ४ याचकाः । ५ प्राणैः । ६ जगतां मोहनाशने सूर्यसमः । ७ पूर्णिमाचन्द्रः । ८ अमृतसमानया । ९ सर्वव्यसनतृणवह्निः । १० सभायाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नृपादेशादनुज्ञातो, वेत्रिणा स तदा पुमान् । बुधोऽर्कमण्डलमिव, नृपास्थानीमथाऽविशत् ॥ २२८ ॥
रिक्तहस्तो[1] न कुर्वीत, स्वामिदर्शनमित्यसौ । भूभुजे सुमनोदाम, मालाकार इवाऽऽर्पयत् ॥ २२९ ॥
वेत्रिणा दर्शिते स्थाने, ततोऽसौ रचिताञ्जलिः । निषसादाऽऽसनायुक्तै[2]र्दत्ते तदुचितासने ॥ २३० ॥
किञ्चिदुन्नमितैकभ्रूः, सितस्तबकिताधरः । सप्रसादमभाषिष्ट,तमेवं पृथिवीपतिः ॥ २३१ ॥
विप्र-क्षत्रिय-विट्-शूद्रवर्णेभ्यः कतमोऽसि भोः! ? । अम्बष्ठ-मागधादिभ्यो, मिश्रेभ्यो वाऽसि कश्चन ?२३२
तत्र किं श्रोत्रियोऽसि त्वमसि पौराणिकोऽथवा ? । स्मार्तो वा ? मौहूर्तो वाऽसि ?, त्रिविद्या*[3]विदुरोऽसि वा ? ॥
चापाचार्योऽसि यदि वा ?,चर्मा[4]-ऽसिचतुरोऽसि वा ? । किं वा प्रासे[5] कृताभ्यासः ?,शल्ये वा प्राप्तकौशलः ?२३४
यद्वा गदायुधज्ञोऽसि ?, यदि वा दण्डपण्डितः ? । प्रकृष्टशक्तिः शक्तौ वा ?, मुसले कुशलोऽसि वा ? ॥२३५॥
निरर्गलो लाङ्गले वा ?, चक्रे वा प्राप्तविक्रमः ? । कृपाण्यां निपुणो वाऽसि ?, बाहुयुद्धेऽथ वा पटुः ? ॥ २३६ ॥
यद्वाऽश्वहृदयज्ञोऽसि ?, गजशिक्षाक्षमोऽसि वा ? । किं व्यूहरचनाचार्यः ?, किं वाऽसि व्यूहभेदकः ? ॥२३७॥
किं वा रथादिकर्ताऽसि ?, रथादिप्राजको[6]ऽसि वा ? । रजत-स्वर्ण-शुल्वा[7]दिधातूनां घटकोऽसि वा ? ॥२३८॥
चैत्य-प्रासाद-हर्म्यादिनिर्माणनिपुणोऽसि वा ? । विचित्रयन्त्र-दुर्गादिरचनाचतुरोऽसि वा ? ॥ २३९ ॥
सांयात्रिककुमारः[8] किं ?, सार्थवाहसुतोऽथवा ? । किं वा सौवर्णिकोऽसि त्वमसि वैकटिको[9]ऽथवा ? ॥२४०॥
किं वा वीणाप्रवीणोऽसि ?, किं वेणुनिपुणोऽसि वा ? । पटुः पटहवाद्ये वा ?, मर्दले वाऽसि दुर्मदः ? ॥२४१॥
यद्वा वाग्गेयकारो[10]ऽसि ?, किं शिक्षागायनोऽसि वा ? । रङ्गाचार्योऽथवाऽसि त्वं ?, किं नाटकनटोऽसि वा ? ॥
अथ वैतालिकोऽसि त्वं ?, नग्नाचार्यो[11]ऽथवाऽसि किम् ? । संशप्तको[12]ऽसि यदि वा ?, चारणो यदि वाऽप्यसि ? ॥
लिपिज्ञलेखको वा किमसि ? चित्रकरोऽथवा ? । अथ पुस्तकरो[13] वा त्वमन्यो वा कोऽपि शिल्प्यसि ? ॥ २४४ ॥
नदी-नद-नदीनाथतरणे वा कृतश्रमः ? । मायेन्द्रजाल-कुहकप्रयोगचतुरोऽसि वा ? ॥ २४५ ॥
एवं वसुमतीनाथेनाऽनुयुक्तः स सादरम् । भूयोऽपि हि नमस्कृत्य, सप्रश्रयमदोऽवदत् ॥ २४६ ॥
पाथसामिव पाथोधिरादित्यस्तेजसामिव । सर्वेषां पात्रभूतानां, त्वमाधारो धराधव ! ॥ २४७ ॥
वेदादिशास्त्रविज्ञेषु, सहाधीती[14]व तादृशः । धनुर्वेदादिविद्वत्सु, तदाचार्य इवाऽधिकः ॥ २४८ ॥
प्रत्यक्षो विश्वकर्मेव, विश्वंसिन्[15] शिल्पकर्मणि । सरस्वतीव पुंरूपा, गीतादिककलासु च ॥ २४९ ॥
रत्नादिव्यवहारेषु, पितेव व्यवहारिणाम् । बन्द्यादीनामुपाध्याय, इव वाग्मितयाऽसि च ॥ २५० ॥
नद्यादिवारितरणं, कलालेशः कियान् मम ? । इन्द्रजालप्रयोगार्थं, किन्त्वासि त्वामुपागतः ॥ २५१ ॥
अहं हि सद्य उद्यानवीथिकां दर्शयामि ते । मध्वादीनां परावर्तमृतूनां कर्तुमीश्वरः ॥ २५२ ॥
गन्धर्ववर्गसङ्गीतं, व्योमन्याविष्करोमि च । क्षणाददृश्यो दृश्यो वा, निमेषान्तर्भवाम्यहम् ॥ २५३ ॥
भक्षयाम्यहमङ्गारान्, खादिरानपि सक्तुवत् । चर्वयामि क्रमुकवत्[16], तप्तायस्तोमरानपि[17] ॥ २५४ ॥
अम्भश्चर-स्थलचर-खचराणां परेच्छया । भवामि रूपान्तरभृदेकधाऽनेकधाऽप्यहम् ॥ २५५ ॥
पदार्थमिष्टमाकृष्य, दूरादप्यानयामि च । सद्यो वर्णान्तराधानं, पदार्थानां करोमि च ॥ २५६ ॥
आश्चर्यभूतान्यन्यानि, सद्यो दर्शयितुं क्षमः । कलाभ्यासप्रयासं मे, तद् दृष्ट्वा सफलीकुरु ॥ २५७ ॥
एवमुच्चैः प्रतिज्ञाय, गर्जित्वेव बलाहकम्[18] । तस्थिवांसं पुमांसं तं, व्याजहारेति भूपतिः ॥ २५८ ॥
आखोराकर्षणकृते, मूलात् खात इवाऽचलः । मत्स्यादिग्रहणायेव, शोषितं विपुलं सरः ॥ २५९ ॥
सहकारोद्यानमिव, छिन्नमिन्धनहेतवे । चन्द्रकान्तोपल इव, निर्दग्धश्चूर्णमुष्टये ॥ २६० ॥

---

१ शून्यहस्तः । २ आसनाधिकारिभिः । * त्रैविद्यविदु° ढं० ॥ ३ ऋग्-यजुः-सामवेदेषु निपुणः । ४ फलका-ऽसिविद्याप्रवीणः । ५ कुन्तविद्यायाम् । ६ सारथिः । ७ ताम्रम् । ८ पोतवणिक्पुत्रः । ९ मणिकारः । १० मुखेन गायकः । ११ स्तुतिपाठकः । १२ युद्धादनिवर्तनप्रतिज्ञाकारी । १३ मृण्मयरूपघटकः । १४ सहाध्यायी । १५ सर्वंखिन् । १६ पूगफलवत् । १७ अस्त्रविशेषान् । १८ मेघम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाटितं व्रणपट्टाय, देवदूष्यमिवांऽशुकम् । उत्कीलितं देवकुलं, कीलिकार्थमिवोच्चकैः ॥ २६१ ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशः, परमार्थार्जनोचितः । अहो! त्वयाऽपविद्यायै[1], कियदात्मा कदर्थितः? ॥ २६२ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

तवाऽपविद्यामीदृक्षामवलोकयतामपि । धीभ्रंशो जायते प्राप्तसन्निपातरुजामिव ॥ २६३ ॥
याचकोऽसि गृहाणार्थमेवमेव यथेप्सितम् । आशाभङ्गो न कस्याऽपि, क्रियते मत्कुले यतः ॥ २६४ ॥
एवं स राज्ञाऽभिहितः, परुषं पुरुषस्ततः । सदा पुरुषमानीति, गूढरोषमभाषत ॥ २६५ ॥
अन्धोऽसि बधिरो वाऽसि, पङ्गुरस्म्यसि वा कुंणिः[2] । क्लीबो वाऽसि दयापात्रमपरः कश्चिदसि वा ॥२६६॥
अदर्शयित्वा स्वगुणमकृत्वा च चमत्कृतिम् । त्यागं[3] ते त्यागकल्पद्रोरपि गृह्णाम्यहं कथम्? ॥ २६७ ॥
स्वस्त्यस्तु तुभ्यं तुभ्यं च, नमस्कारो ममैषकः । अयमन्यत्र यास्यामीत्यभिधाय स उत्थितः ॥ २६८ ॥
भूभुजा स्वस्य कार्पण्यदोषारोपणभीरुणा । पुरुषैर्धार्यमाणोऽपि, निर्ययौ पुरुषोऽथ सः ॥ २६९ ॥
स्वामिनाऽर्थं दीयमानमसौ नाऽऽदत्त कोपतः । दातैवाऽसीति राज्ञो हीरपजह्रे स्वपूरुषैः ॥ २७० ॥
विप्रवेषमुपादाय, स एव पुरुषोऽन्यदा । उपायनकरस्तस्थौ, द्वारि तस्यैव भूपतेः ॥ २७१ ॥
तथैव राज्ञे विज्ञप्तः, स द्वाःस्थेन तथास्थितः । धर्मोऽसौ प्रतिहाराणां, द्वारागतनिवेदनम् ॥ २७२ ॥
आदेशाद् भूपतेस्तस्य, सभायां तत्र वेत्रभृत् । आयुक्तपुरुषैराशु, तं पुमांसमवीविशत् ॥ २७३ ॥
स स्थित्वा भूपतेरग्रे, समुन्नमितपाणिकः[4] । आर्यवेदोदितान् मन्त्रानपठत् सपदक्रमम् ॥ २७४ ॥
मन्त्रपाठावसाने च, वेत्रिसन्दर्शितासने । निषसाद प्रसादार्द्रदृशा राज्ञा निरीक्षितः ॥ २७५ ॥
कस्त्वं? किमागतोऽसीति, पृष्टश्च पृथिवीभुजा । कृताञ्जलिरुवाचैवमग्रणीः सोऽग्रजन्मनाम्[5] ॥ २७६ ॥
ज्ञानानामिव मूर्त्तानां, सद्गुरूणामुपासनात् । अवाप्तसम्यगाम्नायो, राजन्! नैमित्तिकोऽस्म्यहम् ॥२७७॥
अष्टाधिकरणीग्रन्थान्, फलग्रन्थानथाऽखिलान् । जातकं गणितग्रन्थान्, जानामि निजनामवत् ॥ २७८ ॥
सन्तं भूतं भविष्यन्तमर्थं सर्वं नरेश्वर! । तपःसिद्धो मुनिरिवाऽव्याहतं[6] कथयाम्यहम् ॥ २७९ ॥
अन्वयुङ्क्त ततो राजा, यदस्मिन् समये द्विज! । यद् भावि तत् कथय भो!, ज्ञानस्य प्रत्ययः फलम् ॥२८०॥
द्विजोऽपि कथयामास, वासरे सप्तमेऽर्णवः । जगदेकार्णवीकृत्य, प्रलयं प्रापयिष्यति ॥ २८१ ॥
तद्वाचा विस्मय-क्षोभौ, बिभ्राणो युगपन्नृपः । नैमित्तिकानामन्येषामीक्षाञ्चक्रे मुखान्यथ ॥ २८२ ॥
राज्ञा भ्रूसंज्ञया पृष्टा, रुष्टा दुर्घटया तया । द्विजवाचा सोपहासमूचुर्नैमित्तिकास्तु ते ॥ २८३ ॥
असावभिनवः कोऽपि, जज्ञे ज्योतिषिको यदि । ज्योतिःशास्त्राण्यपि स्वामिन्!, जज्ञिरे नूतनानि किम्? ॥२८४
एष येषां प्रमाणेन, विश्वमेकार्णवं जगत् । करिष्यत्यर्णव इति, ब्रूते श्रवणदुःश्रवम् ॥ २८५ ॥
बभूवुर्ग्रह-नक्षत्र-तारा अपि हि किं नवाः? । येषां वक्रातिचारादिप्रमाणादेष वक्त्यदः ॥ २८६ ॥
सर्वज्ञशिष्यगणभृद्ग्रथितद्वादशाङ्गतः । ज्योतिःशास्त्राणि यानीह, नैवं तदनुमानतः ॥ २८७ ॥
अमी तच्छास्त्रसंवादभाजो येऽर्कादयो ग्रहाः । तेषामप्यनुमानेन, मन्महे नेदृशं वयम् ॥ २८८ ॥
जम्बूद्वीपपरिक्षेपी, यश्चाऽयं लवणार्णवः । सोऽपि त्वमिव मर्यादां, जातुचिन्न हि लङ्घते ॥ २८९ ॥
आकाशाद् भूमिमध्याद् वा, कश्चिदुत्पद्य नूतनः । करिष्यत्यर्णवो विश्वमिदमेकार्णवं यदि ॥ २९० ॥
अयं साहसिकः किं वा, पिशाचाधिष्ठितोऽथवा? । मत्तो वा यदि वोन्मत्तो, वातूलो वा निसर्गतः? ॥२९१॥
अकालं चाऽऽगमेऽधीती, किमपस्मारवानथ? । यदीदृशमसम्बद्धमभिधत्ते निरर्गलः ॥ २९२ ॥ युग्मम् ॥
स्थिरः सुमेरुवत् स्वामी, भूवत् सर्वंसहश्च यत् । दुष्टैः प्रकटमीदृक्षं, स्वच्छन्दैस्तदुदीर्यते ॥ २९३ ॥
सामान्यस्याऽपि पुरतो, नेदृशं वक्तुमीश्यते । कोप-प्रसादशक्तस्य, किं पुनः स्वामिनः पुरः? ॥ २९४ ॥

१ पापविद्याकृते । २ हस्तरहितः । ३ दानम् । ४ ऊर्ध्वबाहुः । ५ ब्राह्मणानाम् । ६ अस्खलितम् । ७ कुशलः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वचसो दुर्वचसाऽस्य, वक्ता धीरः किमेष वा? । धीरः किमथवा श्रोता, यः श्रुत्वाऽपि न कुप्यति ? ॥२९५॥
ईदृक्षमपि चेत् स्वामी, श्रद्धत्ते श्रद्दधातु तत् । विना विप्रतिपत्तिं च, प्रत्येतव्यमदोऽपि हि ॥ २९६ ॥
पर्वता उत्पतन्त्युच्चैराकाशे कुसुमानि च । वैश्वानरः शीतरुचिर्वन्ध्यायाश्च स्तनन्धयः ॥ २९७ ॥
चक्रीवतो विषाणं च, दृषदस्तरणं जले । अवेदना नारकाश्च, नो चेदस्याऽपि वाक् तथा ॥२९८॥ युग्मम् ॥
ततो युक्तमयुक्तं च, विदन्नपि महीपतिः । तस्य नैमित्तिकस्याऽभिमुखमैक्षिष्ट कौतुकात् ॥ २९९ ॥
अथ नैमित्तिकः सोऽपि, सोपहासगिरा तया । नुन्नः प्रवयणेनेव, सावष्टम्भमदोऽवदत् ॥ ३०० ॥
राजन्! सभायां भवतः, किं नर्मसचिवा अमी? । वासन्तिकाः किमथवा?, किमथ ग्रामपण्डिताः? ॥३०१॥
सभ्याः सभाया भवतोऽप्येवंप्रायाः प्रभो! यदि । निराश्रया सती हन्त!, तदा दग्धा विदग्धता ॥ ३०२ ॥
तव विश्वविदग्धस्य, मुग्धैरेभिः समं कथम् । गोष्ठी हा! मृगराजस्य, मृगधूर्तैरिवोचिता? ॥ ३०३ ॥
समं कुलक्रमेणैव, समायाता अमी यदि । स्त्रीवत् पोषणमात्रं तदर्हन्त्यल्पधियोऽपि हि ॥ ३०४ ॥
न सभायामासयितुं, सभ्यत्वेनोचिता अमी । स्वर्ण-माणिक्यघटिते, किरीटे काचखण्डवत् ॥ ३०५ ॥
रहस्यं न हि जानन्ति, शास्त्रवाचां मनागपि । गर्विताः पाठमात्रेण, किन्त्वमी शुकवत् सदा ॥ ३०६ ॥
वाच उत्फुल्लगल्लानां, पल्लवग्राहिणामिमाः । ये जानन्ति रहस्यार्थं, परिभाव्य वदन्ति ते ॥ ३०७ ॥
उष्ट्रपृष्ठसमारूढः, कुतुपः सार्थवाहिनः । देशाद् देशान्तरं याति, पन्थानं किमु वेत्ति सः? ॥ ३०८ ॥
तुम्बैः कक्षाविनिक्षिप्तैर्निम्नगायां सरस्यथ । तरत्यतारकोऽप्यम्भस्तरीतुं किं नु वेत्ति सः? ॥ ३०९ ॥
गुरुवागनुवादेन, शास्त्राण्येतेऽप्यधीयते । रहस्यभूतमर्थं तु, न जानन्ति मनागपि ॥ ३१० ॥
अश्रद्धेयं मम ज्ञानममीषां यदि दुर्धियाम् । मज्ज्ञानप्रत्ययाघाटः, किं दूरे सप्तवासरी? ॥ ३११ ॥
जगदेकार्णवीकृत्य, पर्यस्तैर्निजवारिभिः । सत्यापयति मद्वाचं, भगवांश्चेन्महार्णवः ॥ ३१२ ॥
तदमी पारिषद्यास्ते, ज्योतिर्ग्रन्थार्थवेदिनः । उत्पतिष्णून् पक्षिवत् किं, दर्शयिष्यन्ति पर्वतान्? ॥ ३१३ ॥
द्रुमवद् दर्शयिष्यन्ति,खे पुष्पाण्यग्निमम्बुवत् । किं नु स्त्रक्ष्यन्ति वन्ध्या या,लप्स्यन्ते धेनुवत् सुतम्? ॥३१४॥
विषाणिनं महिषवत्, किमानेष्यन्ति रासभम्? । तरीवत् तारयिष्यन्ति, किं पाषाणान् जलाशये? ॥३१५॥
अवेदनान् नारकांश्च, भाषमाणा इमे जडाः । किमन्यथा करिष्यन्ति, ग्रन्थान् सर्वज्ञभाषितान्? ॥३१६॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥

धृतस्त्वत्पुरुषैरत्राऽवस्थास्ये सप्त वासरान् । न खल्वेवमवष्टम्भं, कुर्वन्त्यनृतभाषिणः ॥ ३१७ ॥
सत्यं न चेन्मम वचः, सप्तमेऽह्नि भवेन्नृप! । निग्राहणीयः श्वपचैरहं तस्करवत् तदा ॥ ३१८ ॥
राजाऽपि स्वानुवाचैवं, ब्राह्मणस्याऽस्य गीरियम् । अनिष्टा दुर्घटा वा संवादिन्यपि च यद्यपि ॥ ३१९ ॥
तथाऽपि सप्ताहोरात्रान्, मनः सन्देग्धि हन्त! नः । भविष्यति तदन्तेऽस्य,सत्या-ऽसत्यविवेचनम् ॥३२०॥
॥ युग्मम् ॥

इत्युक्त्वा न्यासमिव तं, नृपतिः स्वाङ्गरक्षिणाम् । द्विजं समर्पयामास, पर्षदं विससर्ज च ॥ ३२१ ॥
महत् कुतूहलमहो!, द्रष्टव्यं सप्तमे दिने । उन्मत्तभाषी विप्रोऽयं, तदहो! निहनिष्यते ॥ ३२२ ॥
ही! स्याद् युगान्तः को ह्येवमन्यथा मृत्यवे वदेत्? । एवं तदानीमभवद्, विचित्रा नागरोक्तयः ॥३२३॥
॥ युग्मम् ॥

आश्चर्यं दर्शयिष्यामि, सम्प्राप्तेऽहनि सप्तमे । इत्युत्सुको द्विजः कष्टं, षड् दिनान्यत्यवाहयत् ॥ ३२४ ॥
राजाऽपि संशयच्छेदोत्कण्ठितो गणयन् मुहुः । कथञ्चिदतिचक्राम, षण्मासानिव षड् दिनान् ॥ ३२५ ॥

---

१ अग्निः । २ पुत्रः । ३ गर्दभस्य । ४ प्रतोदेन प्रेरितः । ५ विदूषकाः । ६ शृगालैः । ७ पल्लवग्राहिणाम् । ८ चर्मपात्रम् ।
* न ज्ञान° सं ॥ ९ सीमा । १० स्थिरताम् । ११ चाण्डालैः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रशालास्थितो राजा, सप्तमेऽहन्युवाच तम् । पूर्णोऽवधिस्त्वदीयस्य, वचसो जीवितस्य च ॥ ३२६ ॥
प्रलयाय त्वयाऽऽख्यातः, समुद्भ्रान्तो महार्णवः । स दूरे तावदद्याऽपि, जललेशोऽपि नेक्ष्यते ॥ ३२७ ॥
सर्वप्रलयशंसित्वात्, तव सर्वोऽपि वैर्यहो! । अनृतायां प्रतिज्ञायां, निग्रहाय यतिष्यते ॥ ३२८ ॥
भवता जन्तुमात्रेण, निगृहीतेन किं मम? । इदानीमपि गच्छ त्वमुन्मत्तेन त्वयोदितम् ॥ ३२९ ॥
वराको मुच्यतामेष, मेषवद् यात्वसौ सुखम् । इत्यात्मरक्षकानुच्चैरादिदेश विशाम्पतिः ॥ ३३० ॥
विप्रोऽपि प्रत्युवाचैवं, स्मितविच्छुरिताधरः । युक्तं प्राणिषु कारुण्यं, सर्वेष्वपि महात्मनाम् ॥ ३३१ ॥
किन्तु नाऽद्यापि करुणापात्रमस्मि महीपते! । न यावदनृतीस्यान्मे, प्रतिज्ञा सा तदोदिता ॥ ३३२ ॥
अनृतायां प्रतिज्ञायां, मद्वधस्य त्वमीशिषे । वधार्हं मां तदा मुञ्चन्, कृपावानुच्यसे नृप! ॥ ३३३ ॥
मुक्तोऽपि नाऽहं यास्यामि, स्थास्यामि धृतवत् पुनः । स्तोकमेवान्तरं विद्धि, प्रतिज्ञापूरणे मम ॥ ३३४ ॥
क्षणमात्रं प्रतीक्षस्वाऽत्रैव प्रेक्षस्व च क्षणात् । उदस्तोदन्वदुल्लोलान्, यमस्येवाऽग्रसैनिकान् ॥ ३३५ ॥
नैमित्तिकसदस्यान् स्वान्, कुरुष्व क्षणसाक्षिणः । भविष्यामः क्षणादूर्ध्वं, नाऽहं न त्वं न चापि ते ॥ ३३६ ॥
अभिधायेति तूष्णीकस्तस्थौ नैमित्तिकोऽथ सः । अव्यक्तः शुश्रुवे चोच्चैर्मृत्युगर्जिरिव ध्वनिः ॥ ३३७ ॥
आकस्मिकं महाध्वानं, तमातङ्कविधायिनम् । आकर्ण्य तस्थुरुत्कर्णाः, सर्वे वनमृगा इव ॥ ३३८ ॥
किञ्चिदुन्नमितग्रीवः, किञ्चिदुच्छ्वस्य चाऽऽसनात् । किञ्चिद् वक्रोष्ठिकां कुर्वन्नित्यूचे स पुनर्द्विजः ॥ ३३९ ॥
ध्वनिराकर्ण्यतां राजन्!, रोदसी पूरयन्नयम् । भम्भाध्वनिस्तवेवाम्भोनिधेः प्रस्थानसूचकः ॥ ३४० ॥
यस्य वारिलवेनाऽपि, गृहीतेन घनाघनाः । प्लावयन्ति महीं सर्वां, पुष्करावर्तकादयः ॥ ३४१ ॥
स मर्यादां समुल्लङ्घ्य, स्वयं प्रचलितोऽधुना । अम्भोधिः प्लावयन्नुर्वीमवार्यः प्रेक्ष्यतामयम् ॥ ३४२ ॥
बिभर्ति गर्तान् मध्नाति, वृक्षान् स्थगयति स्थलीः । गिरीनप्यन्तरयति, दुर्वारो हन्त! वारिधिः ॥ ३४३ ॥
वायोर्वेश्मप्रवेशादि, ज्वलनस्य पुनर्जलम् । प्रतीकारोऽस्ति जलधेश्चलितस्य पुनर्न हि ॥ ३४४ ॥
इति ब्रुवाणं ब्रह्माणं, पश्यतस्तं महीपतेः । मृगतृष्णाम्बुवद् दूराद्, विष्वगाविरभूज्जलम् ॥ ३४५ ॥
सौप्तिकेनेव विश्वस्तं, विश्वं संहृतमब्धिना । हा हेत्याक्रोशिनो दीनाः, सर्वे ददृशुरुन्मुखाः ॥ ३४६ ॥
अथ राज्ञः पुरोभूय, सोऽङ्गुल्या दर्शयन् द्विजः । प्लाव्यमानं प्लाव्यमानं, शशंसेति नृशंसवत् ॥ ३४७ ॥
निरीक्षन्ताममी भो भोः!, सर्वे प्रत्यन्तपर्वताः । पिधीयन्ते पयोराशेः, पयोभिस्तिमिरैरिव ॥ ३४८ ॥
मन्ये प्रोन्मूलितान्यद्भिः, सर्वाण्यपि वनानि तु । दृश्यन्ते यत् तरन्तोऽमी, तरवो नक्रचक्रवत् ॥ ३४९ ॥
अधुना प्लावयत्युच्चैर्ग्रामा-ऽऽकर-पुरादिकम् । इदमम्भोनिधेरम्भो, धिगहो! भवितव्यता ॥ ३५० ॥
पुरीपरिसरोद्यानान्यपीदानीं निरर्गलैः । पिहितान्यम्बुधेस्तोयैः, पिशुनैरिव सद्गुणाः ॥ ३५१ ॥
प्राकारवलयेऽमुष्मिन्नालवाल इवाऽधुना । धुनीपतेर्ध्वनन्नीरमास्फलत्युच्चकैर्नृप! ॥ ३५२ ॥
अयमुल्लङ्घ्यते वप्रः, क्षिप्रं प्रसृमराम्भसा । रभसादश्ववारेणाऽश्व इवाऽतितरस्विना ॥ ३५३ ॥
पश्यैतत् पूर्यते सर्वं, सप्रासादं समन्दिरम् । अम्भोधेरेवमम्भोभिः, प्रचण्डैः कुण्डवत् पुरम् ॥ ३५४ ॥
वेश्मद्वारे तवेदानीमश्वसैन्यमिवोल्ललत् । शब्दायमानमुद्दामं, देवाऽऽपतति वार्यदः ॥ ३५५ ॥
मग्नस्य पत्तनस्याऽस्याऽवशेषः पृथिवीपते! । अन्तरीप इवाऽयं ते, प्रासादः प्रेक्ष्यतेऽधुना ॥ ३५६ ॥
अध्यारोहति सोपानवीथीषु च पयोऽस्खलत् । तव प्रसाददुर्मत्तमिव सेवक-राजकम् ॥ ३५७ ॥
पूरिता प्रथमा भूमिर्द्वितीयाऽप्यद्य पूर्यते । तामापूर्य तृतीयाऽपि, पूर्यते भूमिरम्भसा ॥ ३५८ ॥
चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी, चाऽपि भूः पश्यतोऽपि हि । अहो! क्षणार्धमात्रेण, पूरिता वार्धिवारिभिः ॥३५९॥

---

१ हास्यव्याप्ताधरः । २ महाकल्लोलान् । ३ पीडाकरम् । ४ मन्दहास्यम् । ५ रात्रियुद्धेन । ६ वारिभिः । ७ समुद्रस्य ।
८ अतिवेगवता । ९ द्वीप इव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषवेगैरिवाऽम्भोभिराक्रान्तस्याऽस्य सद्मनः । शिरोगृहं शिर इव, शरीरस्याऽवशिष्यते ॥ ३६० ॥
उपस्थितो युगान्तोऽयमुक्तपूर्वमिदमस्म्यहम् । क्व ते[1] सदस्यास्ते राजन्!, ये मां हसितपूर्विणः[2] ? ॥ ३६१ ॥
ततश्च विश्वसंहारशोकाद् राजाऽपि सत्वरम् । झम्पादानार्थमुत्थायाऽबध्नात् परिकरं दृढम् ॥ ३६२ ॥
प्लवङ्गम इवोत्पत्य, ददौ झम्पां महीपतिः । स्वं च सिंहासनासीनं, तं चाऽपश्यत् तथास्थितम् ॥ ३६३ ॥
ययौ च क्वचिदप्यम्भस्तदम्भोधेः क्षणादपि । तस्थौ च विस्मयस्मेरलोचनः स महीपतिः ॥ ३६४ ॥
अभग्नाभ्रंलिह[3]वृक्षा-ऽद्रि-प्राकार-भवनादिकम् । ईक्षाञ्चक्रे तथावस्थं, विश्वं विश्वम्भरापतिः ॥ ३६५ ॥
मायानैमित्तिकः सोऽपि, कक्ष्यामाबध्य मर्दलम् । आस्फालयन् स्वपाणिभ्यां, पपाठेति ससम्मदः ॥३६६॥
इन्द्रजालप्रयोगादौ, नमामि चरणाम्बुजे । इन्द्रजालकलास्रष्टुर्वज्रिणः शम्बरस्य[4] च ॥ ३६७ ॥
निजसिंहासनासीनस्ततः स पृथिवीपतिः । किमेतदिति साश्चर्यो, द्विजन्मानमभाषत ॥ ३६८ ॥
अवदद् ब्राह्मणोऽप्येवं, निःशेषाणां कलाविदाम् । गुणप्रकाशी राजेति, पुराऽस्मि त्वामुपस्थितः ॥३६९॥
इन्द्रजालं मतिभ्रंशकारीति न्यक्कृत[5]स्त्वया । प्रदीयमानमप्यर्थमनादाय गतोऽस्म्यहम् ॥ ३७० ॥
अर्थे भूयस्यपि प्राप्ते, गुणार्जनभवः श्रमः । न याति गुणिनां किन्तु, गुणज्ञानेन गच्छति ॥ ३७१ ॥
अद्य नैमित्तिकीभूय, च्छलेनाऽप्यमुना मया । इन्द्रजालकलाभ्यासं, ज्ञापितोऽसि प्रसीद मे ॥ ३७२ ॥
सदस्या न्यक्कृतास्ते यच्चिरं यत् त्वं च मोहितः । राजन्! सहस्व तत् सर्वं, नाऽपराधोऽस्ति तत्त्वतः ॥ ३७३ ॥
इत्युदित्वा स्थिते तस्मिन्, पार्थिवः परमार्थवित् । निजगादेति पीयूषस्यन्दसोदरया[6] गिरा ॥ ३७४ ॥
राजानं राजसभ्यांश्च, न्यकार्षमिति चेतसि । मास्म भैषीरहो! विप्रोपकारी परमोऽसि मे ॥ ३७५ ॥
इन्द्रजालमिदं ह्यद्य, दर्शयित्वा त्वया द्विज ! । तत्तुल्यमेतं संसारमसारं ज्ञापितोऽस्म्यहम् ॥ ३७६ ॥
दृष्टनष्टमिदं यद्वत्, त्वयाऽऽविर्भावितं जलम् । तद्वत् पदार्थाः सर्वेऽपि, संसारेऽद्यापि का रतिः ? ॥ ३७७ ॥
चिरमित्यादिसंसारदोषान् व्याहृत्य भूपतिः । कृतार्थीकृत्य तं विप्रं, प्रव्रज्यामाददे स्वयम् ॥ ३७८ ॥
तदिन्द्रजालरूपोऽयं, भवोऽस्माभिरनूद्यते । प्रभो ! वेत्सि स्वयं हि त्वं, सर्वज्ञकुलचन्द्रमाः ॥ ३७९ ॥
वाचस्पतिमतिर्वाचा, शोकशल्यविशल्यया[7] । इत्युवाच द्वितीयोऽपि, मन्त्री नृपतिपुङ्गवम् ॥ ३८० ॥
इहैव भरतक्षेत्रे, कस्मिन्नपि पुरे पुरा । बभूव नृपतिः कोऽपि, विवेकादिगुणाकरः ॥ ३८१ ॥
तमास्थानस्थमन्येद्युः, पार्थिवं कोऽपि पूरुषः । मायाप्रयोगनिष्णं स्वं, ज्ञापयामास वेत्रिणा ॥ ३८२ ॥
प्रवेशं नृपतिस्तस्य, नानुजज्ञे[8] विशुद्धधीः । न मायिनामृजूनां चाऽजर्यं[9] शाश्वतवैरिवत् ॥ ३८३ ॥
प्रतिषेधविलक्षः सन्, स नीत्वाऽहानि कानिचित् । चक्रे रूपपरावर्तं, कामरूप इवाऽमरः ॥ ३८४ ॥
स तमेवाऽन्यदा भूपमुपतस्थे विहायसा । कृपाणपाणिः फलकी[10], वरनारीसमन्वितः ॥ ३८५ ॥
असि कस्त्वमियं का च ?, हेतुना केन चाऽऽगमः ? । इति राज्ञा स्वयं पृष्टः, स पुमानब्रवीदिति ॥ ३८६ ॥
अहं विद्याधरो विद्याधरी चेयं मम प्रिया । विद्याधरेण केनाऽपि, जातवैरोऽस्मि भूपते! ॥ ३८७ ॥
इयं हि पूर्वं तेन स्त्रीलम्पटेन दुरात्मना । सुधा विधुन्तुदे[11]नेवाऽपहृता च्छलकर्मणा ॥ ३८८ ॥
प्रत्याहार्यमहं तस्मादिमां प्राणप्रियां प्रियाम् । नारीपरिभवं राजन्!, सहन्ते पशवोऽपि न ॥ ३८९ ॥
चरितार्थौ प्रचण्डौ ते, दोर्दण्डौ क्षितिधारणात् । अर्थिनां दौःस्थ्यघातेन, सम्पच्च सफला तव ॥ ३९० ॥
भीतानामभयदानात्, कृतार्थो विक्रमश्च ते । विदुषां संशयच्छेदादमोघा शास्त्रवैदुषी ॥ ३९१ ॥
विश्वस्य कण्टकोद्धारात्, फलवच्छस्त्रकौशलम् । अन्येऽप्यन्योपकारेण, कृतार्थास्ते पृथग्गुणाः ॥ ३९२ ॥
परस्त्रीसोदरत्वं च, तवेदं विश्वविश्रुतम् । अस्तु मय्युपकारेण, विशिष्टफलवन्नृप ! ॥ ३९३ ॥

---

१ तव इत्यर्थः । २ पूर्वं हसितवन्तः । ३ अभ्रुभ्रा अनताः । ४ देवविशेषः । ५ तिरस्कृतः । ६ अमृतरससमानया । ७ शोक एव शल्यं तदर्थं विशल्यौषधितुल्यया । ८ नानुमेने । ९ मैत्री । १० फलकधरः । ११ राहुणा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रियया पार्श्ववर्तिन्या, सन्दानित इवाऽनया । नाऽलम्भविष्णुर्योद्धुं हि, परैश्छलपरैरहम् ॥ ३९४ ॥
नाऽहं हस्तिबलं याचे, याचे वाजिबलं न वा । न वा रथबलं याचे, याचे पत्तिबलं न वा ॥ ३९५ ॥
आत्मसाहायिके त्वत्तः, किन्तु याचे नराधिप ! । एतस्या न्यासवत् त्राणं, परनारीसहोदर ! ॥ ३९६ ॥
स्वयं स्त्रीलम्पटः कोऽपि, परित्राणसहोऽपि सन् । कोऽप्यस्त्रीलम्पटः स्वेन, परित्राणासहः परम् ॥३९७॥
त्वमस्त्रीलम्पटस्त्राणसहश्चाऽसि महीपते ! । तेन दूरादुपेत्याऽपि, त्वमसि प्रार्थितो मया ॥ ३९८ ॥
अयं मत्प्रेयसीरूपो, न्यासश्चेत् स्वीकृतस्त्वया । ज्ञायतां हत एवाऽरिः, स मया बलवानपि ॥ ३९९ ॥

अथोल्लसत्स्मितज्योत्स्नापवित्रमुखचन्द्रमाः । उदारचरितः पृथ्वीपतिरेवमवोचत ॥ ४०० ॥
कल्पद्रुरिव पत्राणि, रत्नाकर इवोदकम् । कामधेनुरिव क्षीरं, रोहणाद्रिरिवोपलम् ॥ ४०१ ॥
अन्नमात्रमिव श्रीदश्छायामात्रमिवाऽम्बुदः । दूरादुपेत्य भवता, कियदसीदमर्थितः ? ॥४०२॥ युग्मम् ॥
तमेव दर्शय निजं, रिपुं येन निहन्म्यहम् । निर्विशङ्कं ततो भोगान्, भुङ्क्ष्व मङ्क्षु विचक्षण ! ॥ ४०३ ॥

नृपवागमृताप्लावपूर्णश्रवणकोटरः । मुदितः पुरुषः सोऽपि, जगादेति महीपतिम् ॥ ४०४ ॥
रजतं जातरूपं च, समस्ता रत्नजातयः । पितरो मातरः पुत्राः, सर्वं चाऽन्यद् गृहादिकम् ॥ ४०५ ॥
विश्वासेनाऽल्पकेनाऽपि, न्यासेऽर्पयितुमीश्यते । विश्वासेनाऽपि महता, न पुनः प्रेयसी क्वचित् ॥ ४०६ ॥
राजन्नीदृशविश्वासस्थानं त्वमसि नाऽपरः । चन्दनास्पदमेको हि, मलयः सानुमानिह ॥ ४०७ ॥
विश्राणेन त्वया न्यासे, मदीयां प्रेयसीमिमाम् । त्वयैव निहतो मन्ये, द्विषन्तप ! स मे द्विषन् ॥ ४०८ ॥
भार्यान्यासे त्वयोपात्ते, त्वद्विश्वाससमाहितः । विश्वस्तभार्यान् द्विषतः, करिष्याम्यधुना ननु ॥ ४०९ ॥
क्षोणीनाथ ! तवाऽत्रैव, तिष्ठतो नचिरादहम् । केसरीव समुत्पत्य, दर्शयिष्यामि विक्रमम् ॥ ४१० ॥
अनुमन्यस्व गच्छामि, स्वच्छन्दं पक्षिराडिव । एषोऽहमन्तरिक्षेण, क्षणादस्खलितस्यदः ॥ ४११ ॥

राजाऽप्यूचे व्रज स्वैरं, विद्याधर ! महाभट ! । तिष्ठत्वेषा तु ते भार्या, मद्धाम्नि पितृधामवत् ॥ ४१२ ॥
अथोत्पपात स पुमान्, विहायोवद् विहायसा । निस्त्रिंशदण्ड-फलके, पक्षाविव विजृम्भयन् ॥ ४१३ ॥
तद्भार्या तु स्वदुहितृप्रतिपत्तिपुरःसरम् । राज्ञा सम्भाषिता तस्थौ, तत्रैव स्वस्थमानसा ॥ ४१४ ॥
तत्रैव तिष्ठन् नृपतिर्जायमानां नभस्तले । क्ष्वेडामाकर्णयामास, स्तनितं वार्मुचामिव ॥ ४१५ ॥
विचित्रखड्ग-फलकप्रहारध्वनितान्यपि । तडत्तडितिविस्फूर्जत्तडित्ताडानिवाऽशृणोत् ॥ ४१६ ॥
सोऽसि सोऽसि नासि नासि, तिष्ठ तिष्ठ व्रज व्रज । एष त्वां हन्मि हन्मीति, व्योम्नि शुश्रुविरे गिरः ॥ ४१७ ॥
नृपतिः पर्षदासीनः, पार्षद्यैः सह विस्मितः । उपरागेक्षण इव, तस्थौ सुचिरमुन्मुखः ॥ ४१८ ॥
इत्थं सम्पश्यमानस्य, भूपतेः पुरतो भुवि । भुजदण्डः पपातैको, रत्नकङ्कणभूषणः ॥ ४१९ ॥
उपलक्षयितुं तं च, बाहुदण्डं दिवश्च्युतम् । विद्याधरी पुरोभूय, साऽपश्यच्च जगाद च ॥ ४२० ॥
गण्डयोरुपधानत्वं, कर्णयोरवतंसताम् । कण्ठे च निष्कतां योऽगात्, सोऽयं मत्प्रेयसो भुजः ॥ ४२१ ॥
एवं वदन्त्यां पश्यन्त्यामेव तस्यां मृगीदृशि । भुवि पादः पपातैको, दोष्णः प्रीत्येव तस्य तु ॥ ४२२ ॥
सपादकटकं पादमुपलक्ष्य तमप्यथ । उदश्रुवदना पद्मवदना साऽवदत् पुनः ॥ ४२३ ॥
चिरमभ्यक्त उन्मृष्टः, क्षालितोऽथ विलेपितः । स्वहस्तेन मया यो हि, स पादो मत्पतेरयम् ॥ ४२४ ॥
एवं तस्या ब्रुवाणायाः, पुरो गीर्वाणवर्त्मनः । वातोद्धूतद्रुशाखेव, द्वितीयोऽपि भुजोऽपतत् ॥ ४२५ ॥
तमप्यालोक्य दोर्दण्डं, रत्नकेयूर-कङ्कणम् । सोवाच स्पन्दमानाक्षी, धारायन्त्रवधूरिव ॥ ४२६ ॥
सोऽयं सीमन्तरचनाचतुरः केशकङ्कतः । विचित्रपत्रलतिकालीलालिपिकरः करः ॥ ४२७ ॥

---

१ बद्ध इव । २ शत्रुभिः । * आत्मा साहा° संता० सङ्क ३ ॥ ३ सद्यः । ४ गरुड इव । ५ वेगः । ६ पक्षिवत् । ७ मेघानामिव । ८ उपरागे ग्रहणे ईक्षणे नेत्रे यस्य सः । ९ भुजाभूषणम् । १० करस्य । ११ आकाशात् । १२ केशप्रसाधनसाधनम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्यास्तत्रैव तिष्ठन्त्या, एवाऽग्रे गगनाङ्गणात् । पपाताङ्घ्रिर्द्वितीयोऽपि, साऽपि भूयोऽब्रवीदिदम् ॥ ४२८ ॥
स एष मत्पतेः पादो, मत्कराम्भोजलालितः । अनारतं मदुत्सङ्गशय्यादुर्ललितो हहा! ॥ ४२९ ॥
अथ तत्रैव तत्कालं, मुण्ड-रुण्डौ निपेततुः । हृदयेन समं तस्याः, कम्पयन्तौ महीतलम् ॥ ४३० ॥
अथ सा विललापैवं, बलिना च्छलिना द्विषा । हा! हतो मत्पतिरसौ, हा! हताऽस्मि तपस्विनी ॥४३१॥
एतत् तदेव वदनं, मत्पतेः पद्मसोदरम् । यन्मया परया प्रीत्या, कुण्डलाभ्यामभूष्यत ॥ ४३२ ॥
तदेतत् तस्य हृदयं, विपुलं हन्त! मत्पतेः । अन्तर्बहिश्च यद् वासस्थानमेकं ममैव हि ॥ ४३३ ॥
हा! नाथाऽहमनाथाऽस्मि, त्वां विना नन्दनाद् वनात् । पुष्पाण्यानीय को नाम, ममोत्तंसीकरिष्यति? ४३४
एकासनसमासीना, विचरन्ती नभोऽङ्गणे । यथासुखं केन समं, वादयिष्यामि वल्लकीम्[2]? ॥ ४३५ ॥
वल्लकीमिव को वा मामुत्सङ्गे धारयिष्यति? । शय्याविशंस्थुलान्[3] को वा, स्थापयिष्यति मेऽलकान्? ॥४३६॥
कोपिष्यामि मुहुः कस्मै, प्रौढप्रणयलीलया? । मत्पादघातोऽस्तु मुदे, कस्याऽशोकतरोरिव? ॥ ४३७ ॥
हा प्रिय! स्तबकीभूतकौमुदीभिरिवाऽद्य मे । गोशीर्षचन्दनरसैः, कोऽङ्गरागं करिष्यति? ॥ ४३८ ॥
कपोलपाल्योर्ग्रीवायां, ललाटे कुचकुम्भयोः । कोऽद्य मे पत्ररचनां, सैरन्ध्रीव[4] विधास्यति? ॥ ४३९ ॥
अप्यलीकव्यलीकेन, मानमौनधरां च माम् । आलापयिष्यत्यथ कः, क्रीडाराजशुकीमिव? ॥ ४४० ॥
प्रिये! प्रिये! देवि! देवीत्यादिचाटुगिरा मुहुः । को वा कैतकसुप्तां[5] मां, स्वयमुद्बोधयिष्यति? ॥ ४४१ ॥
विलम्बेनाऽद्य पर्याप्तममुनाऽऽत्मविडम्बिना । महापथमहापान्थं[6], नाथ! त्वामनुयाम्यहम् ॥ ४४२ ॥
प्राणनाथपथे गन्तुकामा कामं कृताञ्जलिः । सा पावकं यानमिव, ययाचे वसुधाधवात् ॥ ४४३ ॥
तामभाषिष्ट भूपोऽपि, वत्से! स्वच्छाशये! त्वया । पत्युः सम्यगविज्ञाय, कथां किमिदमुच्यते? ॥४४४॥
रक्षो-विद्याधरादीनां, मायाऽपि भवतीदृशी । तन्मुहूर्तं प्रतीक्षस्व, स्वाधीनं ह्यात्मसाधनम् ॥ ४४५ ॥
सा भूयो भूपतिं स्माऽऽह, साक्षादेष पतिर्मम । प्रधने[7] निधनं नीतः, पतितश्चेह दृश्यते ॥ ४४६ ॥
सन्ध्या सहोदयं याति, सहाऽस्तं च विवस्वता । जीवन्ति च म्रियन्ते च, समं पत्या पतिव्रताः ॥ ४४७ ॥
पितुरम्लानवंशस्य, स्वस्य पत्युरपीदृशः । कुले कलङ्कं किमहं, जीवन्त्यारोपयाम्यतः? ॥ ४४८ ॥
धर्मपुत्रीं च मां पश्यन्, विना पतिमवस्थिताम् । न किं लज्जिष्यसे तात!, कुलस्त्रीधर्मकोविद! ? ॥४४९॥
विनेन्दुमिव कौमुद्या, विनाऽब्दमिव विद्युतः । विना नाथमवस्थानं, युक्तं नाऽतः परं मम ॥ ४५० ॥
आयुक्तानादिशैधांसि[10], समानायय मत्कृते । समं पतिशरीरेण, वह्नौ वेक्ष्यामि वारिवत् ॥ ४५१ ॥
तया साग्रहमित्युक्तः, क्ष्मापतिः[11] करुणापरः । शोकगद्गदया वाचा, पुनरेवमुवाच ताम् ॥ ४५२ ॥
तिष्ठ तिष्ठ कियत्कालं, न मर्तव्यं पतङ्गवत् । विमृश्य हि विधातव्यमल्पीयोऽपि प्रयोजनम् ॥ ४५३ ॥
कुपिता भामिनी साऽथ, भूनाथमिदमभ्यधात् । अतः परं धारयन् मां, ज्ञातं तातो न खल्वसि ॥ ४५४ ॥
परस्त्रीसोदर इति, नाम यत् प्रथितं तव । तद् विश्वविश्वासकृते, न पुनः परमार्थतः ॥ ४५५ ॥
तत् सत्यं यदि तातोऽसि, सत्त्वं स्वदुहितुस्ततः । पश्याऽनुयान्त्या भर्तारं, कृष्णवर्त्मैकवर्त्मना[12] ॥ ४५६ ॥
राजाऽपि व्याजहारैवं, वत्से! कुरु समीहितम् । नातः परं निरोद्धास्मि, पवित्रय सतीव्रतम् ॥ ४५७ ॥
ततः प्रमुदिता राजादेशादुपनते रथे । भर्तुरङ्गानि सत्कृत्याऽऽरोपयामास सा स्वयम् ॥ ४५८ ॥
अङ्गे कृताङ्गरागा सा, संवीत[13]विशदांशुका । सपुष्पकुन्तला पत्युः, पार्श्वमध्यास्त पूर्ववत् ॥ ४५९ ॥
अन्वीयमाना न्यग्ग्रीवं[14], सशोकेन महीभुजा । साश्चर्यैर्वीक्ष्यमाणा च, पौरैः सा सरितं ययौ ॥ ४६० ॥

---

१ शीर्ष-कबन्धौ । २ वीणाम् । ३ शय्यायां विप्रकीर्णान् । ४ निपुणा दासीव । ५ अलीकसुप्ताम् । ६ मृत्युमार्गपथिकम् । ७ युद्धे । ८ सूर्येण । ९ पञ्चैकवचनमिदम् । १० सेवकान् । ११ नृपः । १२ अग्निमार्गेण । १३ परिहितस्वच्छवस्त्रा । १४ नम्रकन्धरं यथा स्यात् तथा ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

आजह्रुश्चन्दनैधांसि, तत्राऽऽयुक्ताः क्षणादपि । चितां च रचयाञ्चक्रुस्तल्पं[1] पितृपतेरिव[2] ॥ ४६१ ॥
पित्रेव पृथिवीशेन, तेन सम्पूरितं वसु । याचकेभ्यो यथाकामं, ददौ कल्पलतेव सा ॥ ४६२ ॥
पयःपूर्णाञ्जलिपुटा, तत्र त्रिः साऽऽशुशुक्षणिम्[3] । चक्रे प्रदक्षिणं जातदक्षिणावर्त्तरोचिषम् ॥ ४६३ ॥
सतीसत्यापनां[4] कृत्वा, पत्युरङ्गैः सहैव तैः । वासागार इव स्वैरं, चितान्तः प्रविवेश सा ॥ ४६४ ॥
प्राज्याभिराज्यधाराभिराहुतोऽथ[5] हुताशनः । जज्वालाऽभ्यधिकं ज्वालाजालपल्लविताम्बरः ॥ ४६५ ॥
तानि विद्याधराङ्गानि, सा चैधांसि च तत्क्षणम् । अभवद् भस्मसात् सर्वं, जलं लवणसादिव[6] ॥ ४६६ ॥
तत्र तस्या निवापादि, कृत्वा शोकसमाकुलः । आजगाम निजं धाम, ततः स जगतीपतिः ॥ ४६७ ॥
यावत् सशोकः परिषद्यासाञ्चक्रे महीपतिः । आययौ स पुमांस्तावन्नभस्तः फलका-ऽसिभृत् ॥ ४६८ ॥
भूभुजा पारिषद्यैश्च, वीक्ष्यमाणः सविस्मयम् । मायाविद्याधरः सोऽथ, पुरोभूयेदमब्रवीत् ॥ ४६९ ॥
दिष्ट्या प्रवर्द्धसे देव!, परस्त्री-धननिःस्पृह! । दुरोदर[7] इव द्वन्द्वे, यथाऽजैषं तथा शृणु ॥ ४७० ॥
तदा ह्यहमितः स्थानाच्छरण्य! शरणे तव । विमुच्य दारान् निर्भार, इवोदपतमम्बरे ॥ ४७१ ॥
समापतन्तं साटोपं, तमपश्यं नभस्तले । दुष्टविद्याधरमहं, रुष्टो बभ्रुरिवोरगम्[8] ॥ ४७२ ॥
ऋषभाविव गर्जन्तावूर्जितं दुर्जयावुभौ । अहं च स च युद्धार्थमाह्वास्वहि परस्परम् ॥ ४७३ ॥
दिष्ट्या दृष्टोऽसि दोर्दृप्त!, प्रहर प्रहरादितः । कौतुकं पूरयाम्यद्य, स्वदोष्णोर्द्युसदामपि ॥ ४७४ ॥
नो वा शस्त्रं परित्यज्याऽऽदाय दन्तैर्दशाङ्गुलीः । भक्ष्यं रङ्क इवाऽशङ्को, व्रज जीवितकाम्यया ॥ ४७५ ॥
साक्षेपमिति जल्पन्तौ, द्वावप्यावां परस्परम् । चर्मा-ऽसिपक्षौ धुन्वन्तौ, मिलितौ कुक्कुटाविव ॥ ४७६ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
चारी-प्रचारचतुरौ, रङ्गाचार्याविवाम्बरे । प्रहारान् वञ्चयमानौ, न्यचराव चिरं नृप! ॥ ४७७ ॥
आवाभ्यां खड्गशृङ्गेण, प्रहरद्भ्यां मुहुर्मुहुः । खड्गिभ्यामिव[9] विहिते, अभिसर्पा-ऽपसर्पणे[10] ॥ ४७८ ॥
क्षणेनाऽपि मया तस्य, दोर्दण्डो दक्षिणेतरः । निकृत्य पातितो राजन्!, प्रवर्धक इवेह ते ॥ ४७९ ॥
युष्मदानन्दहेतोश्च, कदलीस्तम्भलीलया । मया निकृत्य तस्यैकश्चरणः पातितो भुवि ॥ ४८० ॥
दक्षिणोऽपि भुजस्तस्य, नलिनीनाललीलया । विलूय क्षितिपृष्ठेऽस्मिन्, क्षिप्तः क्षितिपते! मया ॥ ४८१ ॥
ततो द्वितीयस्तस्याङ्घ्रिरङ्घ्रिपस्य[11] प्रकाण्डवत् । खड्गदण्डेन निष्कृत्य, तवाऽग्रे परिपातितः ॥ ४८२ ॥
ततो रुण्डश्च मुण्डश्च, पृथक् कृत्वेह पातितः । तमित्यकार्षं षट्खण्डं, रिपुं भरतवर्षवत् ॥ ४८३ ॥
कलत्रं त्रायमाणेन, न्यासीभूतमपत्यवत् । त्वयैव सोऽरिर्निहतो, हेतुमात्रमहं त्विह ॥ ४८४ ॥
त्वत्साहाय्यं विना सोऽरिर्न हन्तुं शक्यते मया । नाऽलं दग्धुं कक्षमग्निर्विना वायुं ज्वलन्नपि ॥ ४८५ ॥
इयत्कालमहं स्त्री वाऽथवाऽभूवं नपुंसकः । पुंस्त्वं मेऽद्य त्वया दत्तं, द्विषन्निग्रहहेतुना ॥ ४८६ ॥
ममाऽसि माता तातो वा, गुरुर्वा देवताऽथवा । एवंविधोपकारी हि, नाऽन्यो भवितुमर्हति ॥ ४८७ ॥
प्रद्योतनो[12] द्योतयते, विश्वं प्रीणाति चोडुपः[13] । काले वर्षति पर्जन्यः, प्रसूते भूमिरोषधीः ॥ ४८८ ॥
मर्यादां लङ्घते नाऽब्धिर्मेदिनी चाऽवतिष्ठते । परोपकारनिष्ठानां, प्रभावेण भवादृशाम् ॥ ४८९ ॥
न्यासीकृतं कलत्रं मे, तत् सम्प्रति समर्पय । महीनाथ! गमिष्यामि, स्वां क्रीडाभूमिकामहम् ॥ ४९० ॥
वैताढ्य-जगतीजालकटकादिषु सप्रियः । विहरिष्ये निराशङ्कस्त्वत्प्रसादाद्धतद्विषन् ॥ ४९१ ॥
आक्रान्तो युगपल्लज्जा-चिन्ता-निर्वेद-विस्मयैः । एवं वसुमतीनाथः, पुरुषं तमभाषत ॥ ४९२ ॥
न्यासीकृत्य कलत्रं स्वं, तदानीं त्वयि जग्मुषि । अम्बरे शुश्रुवेऽस्माभिः, क्ष्वेडा-ऽसि-फलकध्वनिः ॥४९३॥

---

१ शय्याम् । २ यमस्य । ३ अग्निम् । ४ सतीत्वसत्यतां समर्थ्य । ५ घृतधाराभिः । ६ लवणाधीनम् । ७ द्यूते । ८ नकुलः । ९ गण्डकाभ्याम् । १० अभिगमनं दूरगमनं च । ११ वृक्षस्य । १२ सूर्यः । १३ चन्द्रः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाहु-पाद-शिरो-रुण्डं[*] चाऽपतन्नभसः क्रमात् । मत्पतेरिदमित्युच्चैस्त्वत्पत्न्यकथयच्च नः[†] ॥ ४९४ ॥
पत्युरङ्गैः समं वह्नौ, प्रवेक्ष्यामीति भाषिणीम् । अवारयाम सुचिरं, पुत्रीप्रेम्णा तव प्रियाम् ॥ ४९५ ॥
वह्निप्रवेशादस्माभिर्वार्यमाणा तु ते प्रिया । अस्मान् सम्भावयामासाऽन्यथैवेतरलोकवत् ॥ ४९६ ॥
तूष्णीकेषु ततोऽस्मासु, सा साहसवती नदीम् । गत्वा लोकसमक्षं तैः, सहाऽङ्गैः प्राविशच्चिताम् ॥ ४९७ ॥
अधुनैव निवापादि, तस्याः कृत्वाऽहमागमम् । तस्याः शोके न्यषीदं च, त्वं चाऽगाः किमिदं ननु ? ॥ ४९८ ॥
तान्यङ्गानि न किं ते वा ?, स वा त्वं नेति संशयः । अज्ञानमुद्रितमुखाः, किमिह ब्रूमहे वयम् ? ॥४९९॥
व्याजहार कृतव्याजकोपः[1] सोऽपि पुमानिति । परस्त्रीसोदरो मिथ्या, जनश्रुत्या श्रुतोऽसि हा ! ॥ ५०० ॥
तेन नाम्ना वयं भ्रान्ताः, प्रियान्यासमकृष्महि । अयोवत्[2] पुष्करैर्ज्ञातस्त्वं वृत्तैरीदृशैरसि ॥ ५०१ ॥
दुराचारस्य यत् कृत्यं, तस्य मद्विषतोऽभवत् । तच्चक्रे भवता राजन् !, द्वयोर्हन्त ! किमन्तरम् ? ॥ ५०२ ॥
नारीष्वलुब्धंमन्यश्चेदपवादाद् बिभेषि वा । तदर्पय प्रियां तां मे, न हि निह्नोतुमर्हसि ॥ ५०३ ॥
अलुब्धपूर्वा लुभ्यन्ति, यद्येवं त्वादृशा अपि । ततः कृष्णोरग इव, कोऽस्तु विश्वासभाजनम् ? ॥ ५०४ ॥
भूयो बभाषे भूपालस्तवाङ्गान्युपलक्ष्य सा । त्वत्प्रेयस्यविशद् वह्निमत्र तावन्न संशयः ॥ ५०५ ॥
अत्राऽर्थे साक्षिणः सर्वे, पौरा जानपदा अपि । जगच्चक्षुरयं व्योम्नि, भगवांश्च दिवाकरः ॥ ५०६ ॥
लोकपालाश्च चत्वारो, ग्रह-नक्षत्र-तारकाः । इयं च भगवत्युर्वी, धर्मश्च त्रिजगत्पिता ॥ ५०७ ॥
तन्न भाषितुमीदृक्षं, रूक्षाक्षरमिहाऽर्हसि । अमीषां मध्यतः कञ्चित्, प्रमाणीकुरु साक्षिणम् ॥ ५०८ ॥
अलीकरोषपरुषं[3], पुरुषः सोऽवदत् पुनः । न हि प्रमाणे प्रत्यक्षे, प्रमाणान्तरकल्पना ॥ ५०९ ॥
तव पश्चादियं का नु, स्थिताऽस्ति ? प्रेक्ष्यतां ननु । कक्षाप्रक्षिप्तलोप्त्रस्य[4], कोशपानमिदं नृप ! ॥ ५१० ॥
ततश्च वलितग्रीवो, यावत् पश्चाद्ददौ दृशम् । ईक्षाञ्चक्रे नृपस्तावत्, तत्प्रियां तां निषेदुषीम् ॥ ५११ ॥
पारदारिकदोषेण, दूषितोऽस्मीति शङ्कया । ग्लानिं प्रपेदे नृपतिर्म्लानिं तापेन पुष्पवत् ॥ ५१२ ॥
नृपं ग्लानिं प्रपेदानं, निर्दोषं दोषशङ्कया । बद्धाञ्जलिः कथयितुं, प्रारेभे स पुमानिति ॥ ५१३ ॥
कच्चित् स्मरसि भूनाथ !, चिरेणाभ्यस्य यन्मया । मायाप्रयोगचातुर्यं, त्वं दर्शयितुमर्थितः ? ॥५१४॥
देवेन मेघवद् विश्वसाधारण्यजुषाऽप्यहम् । भाग्यदोषादपूर्णेच्छो, द्वारादपि निवारितः ॥ ५१५ ॥
ततो रूपं परावर्त्य, कृत्वा कपटनाटकम् । मयेदं दर्शितं देव !, कृतार्थोऽस्मि प्रसीद मे ॥ ५१६ ॥
यथा तथा वा महतां, दर्शनीयो निजो गुणः । गुणार्जनभवः क्लेशः, प्रणश्यत्यन्यथा कथम् ? ॥ ५१७ ॥
तदद्याऽस्मि गतक्लेशो, व्रजिष्यामि समादिश । सर्वत्राऽपि महार्घोऽस्मि[5], त्वदग्रे गुणदर्शनात् ॥ ५१८ ॥
कृतार्थीकृत्य भूयिष्ठैरर्थैस्तमवनीपतिः । विससर्ज ततः किञ्चिच्चिन्तयित्वेदमब्रवीत् ॥ ५१९ ॥
यादृग् मायाप्रयोगोऽस्य, संसारोऽप्येष तादृशः । दृष्टनष्टं वस्तु सर्वमस्मिन् बुद्बुदवद् यतः ॥५२०॥
चिन्तयित्वा नैकधैवं, विरक्तो भववासतः । उत्सृज्य राज्यं प्रव्रज्यां, स जग्राह ततो नृपः ॥ ५२१ ॥
मायाप्रयोगसदृशे, संसारेऽस्मिंस्ततः प्रभो ! । मा शोकविवशो भूस्त्वं, यतस्व स्वार्थसिद्धये ॥ ५२२ ॥
चक्रिणो भवनिर्वेदः, पदे शोकस्य तावतः । महाप्राण इव महाप्राणस्थानेऽभवत् ततः ॥ ५२३ ॥
उदाजहार सगरो, गिरं तत्त्वगरीयसीम् । युष्माभिरभ्यधायीदं, साधु साधु विवेकिनः ! ॥ ५२४ ॥
जीवन्ति च म्रियन्ते च, जन्तवः स्वस्वकर्मणा । बालो युवा वा वृद्धो वेत्यप्रमाणं वयः खलु ॥ ५२५ ॥
सङ्गमा बान्धवादीनां, स्वप्नसब्रह्मचारिणः[6] । लक्ष्मीर्निसर्गतो दन्तिकर्णतालचलाचला[7] ॥ ५२६ ॥

* सङ्घ ३ विनाऽन्यत्र-°रुण्डश्चाऽप° सङ्घ १ सङ्घ २ संता० । °रुण्डाश्चाऽप° दं० ॥ † °त्पत्न्यकथयत् ततः सङ्घ १ । °त्पत्नी नः शशंस च दं० ॥ १ विहितकपटकोपः । २ लोहवत् । ३ कृत्रिमकोपकठोरम् । ४ लोप्त्रम् स्तेयधनम् । ५ मूल्यवान् । ६ स्वप्नसदृशाः । ७ चञ्चला ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यौवनश्रीरपि गिरिनदीपूरसहोदरा । जीवितं च कुशाग्रस्थजलबिन्दुविडम्बकम् ॥ ५२७ ॥
न यावद् यौवनं याति, वारीव मरुभूमिगम् । न यावदायाति जरा, राक्षसीवायुरन्तकृत् ॥ ५२८ ॥
भवतीन्द्रियवैकल्यं, न यावत् सन्निपातवत् । वेश्येवोपात्तसर्वस्वा, यावच्छ्रीर्न विरज्यति ॥ ५२९ ॥
छलयित्वा तावदमून्यखिलान्यपि हि स्वयम् । प्रव्रज्योपायलभ्याय, स्वार्थाय प्रयतामहे ॥ ५३० ॥
काचखण्डेन स मणिं, कृष्णकाकेन केकिनम् । मृणालमालया हारं, कदन्नेन च पायसम् ॥ ५३१ ॥
कालेयेन च क्षीरं, रासभेन च वाजिनम् । क्रीणाति योऽर्जयेन्मोक्षमसारेणेह वर्ष्मणा ॥५३२॥ युग्मम् ॥

एवमाभाषमाणस्य, तदा सगरचक्रिणः । द्वार्यायर्युर्विषयिणोऽष्टापदाभ्यर्णवासिनः ॥ ५३३ ॥
असांस्त्रायस्व त्रायस्वेत्युच्चैःपूत्कारकारिणः । आजूहवत् तान् सगरचक्रभृद् वेत्रपाणिना ॥ ५३४ ॥
हंहो ! किमिदमित्युच्चैर्भाषिताश्चक्रवर्तिना । कृतप्रणामाः सम्भूय, ग्रामीणास्ते व्यजिज्ञपन् ॥ ५३५ ॥
अष्टापदाद्रिपरिखापूरणाय सरिद्वरा । या कृष्टा दण्डरत्नेन, कुमारैस्तैर्नरेश्वर ! ॥ ५३६ ॥
पातालमिव दुष्पूरां, पूरयित्वा क्षणेन ताम् । साऽतिक्रामत्युभे कूले, कुलटेव कुलद्वयम् ॥ ५३७ ॥
अष्टापदाभ्यर्णवर्ति, ग्रामा-ऽऽकर-पुरादिकम् । आप्लावयितुमारब्धा, पर्यस्त इव सागरः ॥ ५३८ ॥
अधुनाऽपि युगान्तोऽयमस्माकं समुपस्थितः । तदादिश वयं कुत्र, तिष्ठामो निरुपद्रवाः ? ॥ ५३९ ॥

ततश्च सगरश्चक्री, निजं पौत्रं भगीरथम् । वात्सल्यसारया वाचा, समाहूयेदमादिशत् ॥ ५४० ॥
पूरयित्वाऽष्टापदाद्रिपरिखां तां सरिद्वरा । उन्मत्तेव भ्रमन्त्यस्ति, सा ग्रामादिषु सम्प्रति ॥ ५४१ ॥
तां दण्डेन समाकृष्य, क्षिप पूर्वपयोनिधौ । अदर्शितपथं याति, पयो ह्यन्धवदुत्पथे ॥ ५४२ ॥
बाहुवीर्यमसामान्यमैश्वर्यं भुवनोत्तरम् । अत्युल्बणं हस्तिबलमश्वीयं विश्वविश्रुतम् ॥ ५४३ ॥
पादातमतिविक्रान्तं, महद् रथबलं तथा । अत्युत्कटः प्रतापश्च, निःसीमं शस्त्रकौशलम् ॥ ५४४ ॥
दैवतानामायुधानां, सम्पत्तिश्चेत्यमून्यलम् । दर्पं यथा द्विषां घ्नन्ति, जनयन्त्यात्मनस्तथा ॥ ५४५ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

अग्रणीः सर्वदोषाणामापदामेकमास्पदम् । सम्पदामपहर्तैकः, कर्ता दुर्यशसामपि ॥ ५४६ ॥
अपि वंशस्य संहर्ता, हर्ता निखिलशर्मणाम् । प्रहर्ता परलोकस्य, दर्पो वैरी शरीरजः ॥ ५४७ ॥ युग्मम् ॥
तद् दर्पः परिहर्तव्यः, सर्पवत् सत्पथस्थितैः । सामान्यैरपि पुरुषैर्मत्पौत्रेण विशेषतः ॥ ५४८ ॥
यथापात्रं विनीतेन, भवितव्यं ततस्त्वया । गुणप्रकर्षो विनयादशक्तस्याऽपि जायते ॥ ५४९ ॥
शक्तस्य पुंसो विनयः, सुवर्णस्येव सौरभम् । निष्कलङ्कवपुष्टेव, पार्वणस्य हिमद्युतेः ॥ ५५० ॥
सुराणामसुराणां च, नागादीनामपि त्वया । उपचारो यथाक्षेत्रं, कार्यः कार्ये सुखेऽपि हि ॥ ५५१ ॥
उपचारार्हणीयेषु, नोपचारो हि दोषकृत् । अपचारस्तु दोषाय, पित्तात्मन इवाऽऽतपः ॥ ५५२ ॥
ऋषभस्वामिपुत्रेण, भरतेनापि चक्रिणा । वशंवदा देव-दैत्या, उपचारेण चक्रिरे ॥ ५५३ ॥
शक्तेनाऽपि सता तेनोपचारो देवतादिषु । दर्शितो यस्तथा कार्यः, स कुलाचार इत्यपि ॥ ५५४ ॥
तथेति प्रतिपेदे स, महाभागो भगीरथः । निसर्गेण विनीतस्य, शिक्षा सद्भित्तिचित्रवत् ॥ ५५५ ॥
अर्पयित्वा दण्डरत्नं, स्वं प्रतापमिवोर्जितम् । चुम्बित्वा मूर्ध्नि सगरो, विससर्ज भगीरथम् ॥ ५५६ ॥

चक्रिणश्चरणाम्भोजे, प्रणम्याऽथ भगीरथः । सदण्डरत्नो निरगात्, सविद्युदिव वारिदः ॥ ५५७ ॥
महता चक्रिसैन्येन, वृतो जानपदैश्च तैः । रेजे भगीरथः शक्र, इवाऽनीकप्रकीर्णकैः ॥ ५५८ ॥
आससाद क्रमेणाऽथाऽष्टापदाद्रिं भगीरथः । मन्दाकिन्या वलयितं, त्रिकूटाद्रिमिवाऽब्धिना ॥५५९॥

१ उपात्तं गृहीतं सर्वस्वं यया सा । २ मयूरम् । ३ तक्रेण । ४ शरीरेण । ५ जनपदवासिनो जनाः । ६ अश्वसैन्यम् । ७ पदातिसैन्यम् । ८ निष्कलङ्कशरीरता इव । ९ पित्तप्रकृतेर्जनस्य । १० अङ्गीचक्रे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्दिश्य तत्र तं नागकुमारं ज्वलनप्रभम् । तपोऽष्टमं स विदधे, विधिवेदी भगीरथः ॥ ५६० ॥
अष्टमे च परिणमत्युपतस्थे भगीरथम् । पतिर्नागकुमाराणां, प्रसन्नो ज्वलनप्रभः ॥ ५६१ ॥
गन्धैर्धूपैश्च माल्यैश्च, तेनोपचरितो[1] भृशम् । स्वामी नागकुमाराणां, किं करोमीत्यभाषत ॥ ५६२ ॥
अथो भगीरथोऽप्यम्भोधरध्वानगभीरगीः । उवाच विनयेनाऽपि, सप्रभो ज्वलनप्रभम् ॥ ५६३ ॥
अष्टापदाद्रिपरिखामापूर्येयं सरिद्वरा । निरर्गलं प्रसरति, पन्नगीव बुभुक्षिता ॥ ५६४ ॥
क्षेत्राण्येषा हि खनति, प्रोन्मूलयति पादपान् । सदृशीकुरुते सर्वान्, स्थपुटान[2]वटानपि[3] ॥ ५६५ ॥
प्रभ्रंशयति वप्रांश्च, प्रासादान् दलयत्यलम् । प्रपातयति हर्म्याणि, निगृह्णाति गृहाणि च ॥ ५६६ ॥
तां पिशाचीमिवोन्मत्तां, देशविध्वंसकारिणीम् । दण्डेनाऽऽकृष्य पूर्वाब्धौ, क्षिपामि त्वदनुज्ञया ॥५६७॥
ततः प्रसन्नो ज्वलनप्रभनागस्तमभ्यधात् । निजं समीहितं कुर्या, निर्विघ्नं भवतोऽस्त्विति ॥ ५६८ ॥
येऽमुष्मिन् भरतक्षेत्रे, नागास्ते मम शासने । मदनुज्ञाप्रवृत्तः सन्, मा भैषीस्तदुपद्रवात् ॥ ५६९ ॥
अभिधायेति नागेन्द्रः, प्रविवेश रसातलम् । विदधेऽष्टमभक्तान्ते, पारणं च भगीरथः ॥ ५७० ॥
वैरिणीमिव भिन्नक्ष्मां, स्वच्छन्दां स्वैरिणीमिव । मन्दाकिनीमथ क्रष्टुं, दण्डरत्नं स आददे ॥ ५७१ ॥
मालामङ्कटकेनेव[4], दण्डेनाऽऽकर्षति स ताम् । निनदन्तीं नदीं चण्डभुजदण्डो भगीरथः ॥ ५७२ ॥
कुरूणां मध्यभागेन, नगरं हस्तिनापुरम् । दक्षिणेन पश्चिमेन, पुनः कोशलनीवृतः ॥ ५७३ ॥
उत्तरेण प्रयागं च, कासीनां दक्षिणेन च । विन्ध्यान्तर्दक्षिणेनाङ्गान्, मगधानुत्तरेण च ॥५७४॥
वात्येव तृण्याः[5] कर्षन्ती, वर्तनीवर्तिनीर्नदीः[6] । भगीरथेन पूर्वाम्भोनिधिं गङ्गाऽवतारिता ॥ ५७५ ॥
ततः प्रभृति तत् तीर्थं, गङ्गासागर इत्यभूत् । कृष्टा भगीरथेनेति, गङ्गा भागीरथीति च ॥५७६॥
यत्र यत्र बभञ्जाऽहिभवनानि[7] व्रजन्त्यसौ । भगीरथस्तत्र तत्र, नागेभ्यः प्रददौ बलिम् ॥ ५७७ ॥
तेषां सगरपुत्राणां, शरीरास्थीनि तानि च । तेन गङ्गाप्रवाहेण, निन्यिरे पूर्वसागरम् ॥ ५७८ ॥
दध्यौ भगीरथश्चैवं, साधु जातमिदं ह्यहो ! । मत्पितॄणां यदस्थीनि, गङ्गयेयुः पयोनिधिम् ॥ ५७९ ॥
गृध्रादिचञ्चू-चरणविलग्नान्यन्यथा पुनः । पतेयुरशुचिस्थानेष्वनिलोद्धूतपुष्पवत् ॥ ५८० ॥
एवं विचिन्तयन् प्रीतैर्जलापातापदुज्झितैः[8] । लोकैर्लोकम्पृणोऽसीति, प्रशशंसे चिरं हि सः ॥ ५८१ ॥
तदा पितॄणामस्थीनि, तेन क्षिप्तानि यज्जले । क्षिपत्यद्यापि तल्लोकः, सोऽध्वा यो महदाश्रितः ॥ ५८२ ॥
ततः स्थानान्निववृते, रथारूढो भगीरथः । रथप्रचारेण भुवं, रासयन्[9] कांस्यतालवत् ॥ ५८३ ॥
स आगच्छन्नथ पथि, कल्पद्रुममिव स्थितम् । ददर्शैकं भगवन्तं, केवलज्ञानिनं मुनिम् ॥ ५८४ ॥
उदयाद्रेरिवाऽऽदित्यो, गरुत्मानम्बरादिव । सानन्दः स्यन्दनवरात्, तस्मादवततार सः ॥ ५८५ ॥
आलोकमात्रे तं नत्वा, भक्त्या केवलिनं मुनिम् । स त्रिः प्रदक्षिणीचक्रे, भक्तिदक्षोऽतिदक्षिणः ॥५८६॥
तं प्रणम्य पुरः स्थित्वा, पप्रच्छैवं भगीरथः । ममाऽम्रियन्त पितरो, युगपत् केन कर्मणा ? ॥ ५८७ ॥
त्रिकालवेदी भगवान्, करुणारससागरः । एवं गदितुमारेभे, मधुरोद्गारया गिरा ॥ ५८८ ॥
श्रावकैर्विपुलश्रीकैः, श्रीदश्रीसंश्रितैरिव[10] । पूर्णः सङ्घश्चचालैकस्तीर्थयात्राकृते पुरा ॥ ५८९ ॥
प्रत्यन्तग्राममेकं तु, सङ्घः सायमवाप सः । निशायां चाऽध्युवासोपकुम्भकारनिकेतनम् ॥ ५९० ॥
सङ्घं समृद्धं तं दृष्ट्वा, हृष्टो ग्रामजनोऽखिलः । तल्लुण्टनार्थमुत्तस्थे, दण्ड-कोदण्ड-खड्गभृत् ॥ ५९१ ॥
प्रबोध्य वचनैश्चाटुगर्भैरमृतसोदरैः । सशूकः[11] कुम्भकारस्तं, ग्रामलोकं न्यवारयत् ॥ ५९२ ॥

---

१ पूजितः । २ स्थपुटान् उच्चप्रदेशान् । ३ अवटान् निम्नप्रदेशान् । ४ मालाकारप्रतिबद्धमणिकरूपाङ्कोटकवत् । ५ तृणसमूहान् । ६ मार्गान्तर्वर्त्तमानाः । ७ नागभवनानि । ८ जलस्य आपातस्तेन या आपत् तदुज्झितैः । ९ रासक्रीडां कारयन् । १० कुबेरलक्ष्म्याश्रितैरिव । ११ दयासहितः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुम्भकारस्य तस्योपरोधाद् ग्रामजनोऽखिलः । भूतः पात्रमिव प्राप्तं, तं सङ्गमुचत् तदा ॥ ५९३ ॥
अन्येद्युरेकवास्तव्यदस्युदोषान्महीभुजा । सबाल-वृद्धः स ग्रामो, दाहितः परराष्ट्रवत् ॥ ५९४ ॥
मित्रेणाऽऽमन्त्रितः कुम्भकारो ग्रामान्तरं गतः । दाहात् तेनावशिष्टोऽभूत्, सर्वत्र कुशलं सताम् ॥ ५९५ ॥
ततः स कालयोगेन, कालधर्ममुपागतः । वणिग् विराटदेशेऽभूद्, द्वितीय इव यक्षराट् ॥ ५९६ ॥
स तु ग्रामजनो मृत्वा, विराटविषयेऽपि हि । जनो जानपदो जज्ञे, तुल्या भूस्तुल्यकर्मणाम् ॥ ५९७ ॥
मृत्वा च कुम्भकृज्जीवस्तत्राऽभूत् पृथिवीपतिः । ततोऽपि मृत्वा कालेन, देवोऽभूत् परमर्द्धिकः ॥ ५९८ ॥
च्युत्वा च देवसदनाज्जातोऽसि त्वं भगीरथः । ते च ग्राम्या भवं भ्रान्त्वा, जह्नुप्रभृतयोऽभवन् ॥ ५९९ ॥
मनस्कृतेन सङ्घोपद्रवरूपेण कर्मणा । युगपद् भस्मसादासन्, निमित्तं ज्वलनप्रभः ॥ ६०० ॥
तन्निवारणरूपेण, त्वं पुनः शुभकर्मणा । तस्मिन्निव भवेऽत्राऽपि, न दग्धोऽसि महाशय ! ॥ ६०१ ॥

केवलज्ञानिनस्तस्मादाकर्ण्येत्थं भगीरथः । परं संसारनिर्वेदं, विवेकोदधिरादधे ॥ ६०२ ॥
गण्डोपरि स्फोट इव, दुःखं दुःखोपरि प्रभोः । मा भूत् पितामहस्येति, न प्राव्राजीत् तदैव सः ॥ ६०३ ॥
केवलज्ञानिनः पादान्, वन्दित्वाऽथ भगीरथः । रथमारुह्य भूयोऽपि, साकेतनगरं ययौ ॥ ६०४ ॥

आज्ञां कृत्वाऽभ्युपेतं तं, प्रणमन्तं पितामहः । मुहुः शिरसि जघ्रौ च, पृष्ठेऽस्प्राक्षीच्च पाणिना ॥ ६०५ ॥
भगीरथमथोवाच, सगरः स्नेहगौरवात् । बालोऽप्यसि वयो-बुद्धिस्थविराणां त्वमग्रणीः ॥ ६०६ ॥
बालोऽस्मीति स मा वादी, राज्यभारं गृहाण नः । तरामो येन निर्भाराः, सन्तः संसारसागरम् ॥ ६०७ ॥
भवः स्वयम्भूरमणाब्धिवद् यद्यपि दुस्तरः । तीर्णस्तथापि मत्पूर्वैरिति श्रद्धा ममाऽप्यभूत् ॥ ६०८ ॥
वत्स ! तेषामप्यपत्यै, राज्यभार उपाददे । ततस्तद्दर्शितः पन्थाः, पाल्यतां ध्रियतां मही ॥ ६०९ ॥

नत्वा भगीरथोऽप्येवमभाषत पितामहम् । युक्तमादित्सते तातः, प्रव्रज्यां भवतारणीम् ॥ ६१० ॥
स्वामिन् ! व्रतायाऽयमपि, जनः किन्तूत्सुकायते । राज्यदानप्रसादेनाऽप्रसादं मा कृथास्ततः ॥ ६११ ॥
चक्रवर्त्यप्युवाचैवं, युक्तमस्मत्कुले व्रतम् । ततोऽपि किन्त्वभ्यधिकं, गुर्वाज्ञापालनव्रतम् ॥ ६१२ ॥
गृह्णीयाः समये मद्वत्, परिव्रज्यां महाशय ! । स्वापत्ये कवचहरे, निदधीथाश्च मेदिनीम् ॥ ६१३ ॥
श्रुत्वा भगीरथोऽप्येवं, गुर्वाज्ञाभङ्गकातरः । भवभीरुश्च मौन्यस्थाद्, दोलायितमनाश्चिरम् ॥ ६१४ ॥
ततः सिंहासने स्वस्मिन्नुपवेश्य भगीरथम् । राज्येऽभ्यषिञ्चत् सगरस्तदैव परया मुदा ॥ ६१५ ॥

तदानीं चक्रिणोऽभ्येत्य, शीघ्रमुद्यानपालकाः । शशंसुः समवसृतं, बाह्योद्यानेऽऽजितप्रभुम् ॥ ६१६ ॥
पौत्रराज्याभिषेकेणाऽजितस्वाम्यागमेन च । तदानीं चक्रिणो जज्ञे, हर्षोत्कर्षो यथोत्तरम् ॥ ६१७ ॥
तत्रस्थोऽपि स उत्थाय, नमश्चक्रे जगत्पतिम् । पुरःस्थमिव च शक्रस्तवेनोच्चैरवन्दत ॥ ६१८ ॥
तेषामुद्यानपालानां, स्वाम्यागमनशंसिनाम् । ददौ चक्री हिरण्यस्य, कोटीरर्धत्रयोदश ॥ ६१९ ॥
समं भगीरथेनाऽथ, सामन्तादिभिरावृतः । ययौ समवसरणं, सगरो गुरुसम्भ्रमः ॥ ६२० ॥
उत्तरद्वारमार्गेण, तत्र च प्रविवेश सः । प्रविष्टमानी हर्षेण, सिद्धिक्षेत्र इवोच्चकैः ॥ ६२१ ॥
तत्र प्रदक्षिणीचक्रे, त्रिश्चक्री धर्मचक्रिणम् । नमस्कृत्य पुरोभूय, स्तोतुं चेति प्रचक्रमे ॥ ६२२ ॥

मत्प्रसत्तेस्त्वत्प्रसादस्त्वत्प्रसादादियं पुनः । इत्यन्योऽन्याश्रयं भिन्द्धि, प्रसीद भगवन् ! मयि ॥ ६२३ ॥
निरीक्षितुं रूपलक्ष्मीं, सहस्राक्षोऽपि न क्षमः । स्वामिन् ! सहस्रजिह्वोऽपि, शक्तो वक्तुं न ते गुणान् ॥ ६२४ ॥
संशयान् नाथ ! हरसेऽनुत्तरस्वर्गिणामपि । अतः परोऽपि किं कोऽपि, गुणः स्तुत्योऽस्ति वस्तुतः ? ॥
इदं विरुद्धं श्रद्धत्तां, कथमश्रद्धधानकः ? । आनन्दसुखश(स)क्तिश्च, विरक्तिश्च समं त्वयि ॥ ६२६ ॥

---

१ कुबेरः । २ अस्पृशन् । ३ संसारः । ४ ग्रहीतुमिच्छति । ५ महार्घः । ६ आत्मानं प्रविष्टं मन्यते । ७ अजितस्वामिनम् । ८ मम प्रसन्नतायाः । ९ मम प्रसन्नता । १० इन्द्रोऽपि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नार्थेयं घट्यमानाऽपि, दुर्घटा घटतां कथम् ? । उपेक्षा सर्वसत्त्वेषु, परमा चोपकारिता ॥ ६२७ ॥
द्वयं विरुद्धं भगवंस्तव नाऽन्यस्य कस्यचित् । निर्ग्रन्थता परा या च, या चोच्चैश्चक्रवर्तिता ॥ ६२८ ॥
नारका अपि मोदन्ते, यस्य कल्याणपर्वसु । पवित्रं तस्य चारित्रं, को वा वर्णयितुं क्षमः ? ॥ ६२९ ॥
शमोऽद्भुतोऽद्भुतं रूपं, सर्वात्मसु कृपाऽद्भुता । सर्वाद्भुतनिधीशाय, तुभ्यं भगवते नमः ॥ ६३० ॥
इति स्तुत्वा जगन्नाथं, यथास्थानं निषद्य च । सुधानिस्यन्दसध्रीचीं, सोऽश्रौषीद् धर्मदेशनाम् ॥६३१॥
देशनान्ते च सगरो, नमस्कृत्य पुनः प्रभुम् । रचिताञ्जलिरित्यूचे, गद्गदाक्षरया गिरा ॥ ६३२ ॥
न स्वो न च परः कोऽपि, तीर्थेश ! तव यद्यपि । तथाप्यज्ञानतो नाथ !, मया पर्यनुयुज्यसे ॥ ६३३ ॥
विश्वमप्युत्तारयसि, भवाम्भोधेर्दुरुत्तरात् । नाथ ! तत्र निमज्जन्तं, कथं मां त्वमुपेक्षसे ? ॥ ६३४ ॥
संसारगर्तपतनादनेकक्लेशसङ्कुलात् । रक्ष रक्ष जगन्नाथ !, दीक्षां देहि प्रसीद मे ॥ ६३५ ॥
संसारसुखमूढेन, मयाऽऽयुरियदात्मनः[1] । निष्फलं क्षपितं स्वामिन् !, बालेनेवाऽविवेकिना ॥ ६३६ ॥
विज्ञाप्यैवं तस्थिवांसं, सगरं रचिताञ्जलिम् । भगवानप्यनुजज्ञे[2], दीक्षाग्रहणकर्मणि ॥ ६३७ ॥
अथोत्थाय नमस्कृत्य, भगवन्तं भगीरथः । एवमभ्यर्थयाञ्चक्रेऽभ्यर्थनाकल्पभूरुहम्[3] ॥ ६३८ ॥
दीक्षां दास्यन्ति तातस्य, स्वामिपादाः परं क्षणम् । प्रतीक्षणीयं कुर्वेऽहं, यावन्निष्क्रमणोत्सवम् ॥ ६३९ ॥
काऽप्यपेक्षा मुमुक्षूणां, न यद्यप्युत्सवादिषु । तथापि मेऽनुरोधेन[4], तातोऽप्येवं करिष्यति ॥ ६४० ॥
ततस्तदनुरोधेन, सगरोऽत्युत्सुकोऽपि सन् । जगाम नगरीं भूयः, प्रणिपत्य जगद्गुरुम् ॥ ६४१ ॥
सिंहासननिषण्णस्य, सगरस्य भगीरथः । दीक्षाभिषेकमकरोत्, पुरुहूत इवाऽर्हतः ॥ ६४२ ॥
उन्मृष्टो गन्धकाषाय्या, लिप्तो गोशीर्षचन्दनैः । मङ्गल्ये पर्यधत्ताऽथ, सगरो दिव्यवाससी ॥ ६४३ ॥
ततो देवोपनीतानि, दिव्यालङ्करणानि च । अलञ्चक्रे शरीरेण, गुणालङ्करणोऽपि सः ॥ ६४४ ॥
यथाकाममथाऽर्थिभ्यः, प्रदाय सगरो वसु । शिबिकामारुरोहोच्चैर्विशदच्छत्र-चामरः ॥ ६४५ ॥
प्रत्यापणं प्रतिगृहं, प्रतिरथ्यं च नागरैः । नगर्यां विदधे मञ्च-पताका-तोरणादिकम् ॥ ६४६ ॥
स्थाने स्थाने नागरैश्च, जनैर्जानपदैरपि । पूर्णपात्रादिना हर्षात्, प्रकृतानेकमङ्गलः ॥ ६४७ ॥
पुनः पुनः प्रेक्ष्यमाणः, स्तूयमानः पुनः पुनः । पुनः पुनः पूज्यमानोऽन्वीयमानः पुनः पुनः ॥ ६४८ ॥
विनीतामध्यतश्चक्री, द्युमध्येनेव[5] चन्द्रमाः । भृशायमानोऽपि जनोपरोधाच्छनकैर्ययौ ॥ ६४९ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
भगीरथेन सामन्तैरमात्यैः सपरिच्छदैः । खेचरैश्चाऽन्वीयमानः, सगरोऽगाज्जिनान्तिकम् ॥ ६५० ॥
तत्र प्रदक्षिणीकृत्य, भगवन्तं प्रणम्य च । भगीरथोपनीतं स, यतिवेषमुपाददे ॥ ६५१ ॥
समक्षं सर्वसङ्घस्य, स्वामिवाचनयोच्चकैः । पठन् सामायिकं दीक्षां, चतुर्यामां स आददे ॥ ६५२ ॥
कुमारैः सह ये जग्मुर्नृप-सामन्त-मन्त्रिणः । सगरेण समं तेऽपि, भवोद्विग्नाः प्रवव्रजुः ॥ ६५३ ॥
चक्रे चक्रिमुनेस्तस्य, मनःकुमुदकौमुदीम् । अनुशिष्टिमयीं धर्मदेशनां धर्मसारथिः[6] ॥ ६५४ ॥
पूर्णायामथ पौरुष्यां, देशनां विससर्ज ताम् । देवच्छन्दमलञ्चक्रे, ततश्चोत्थाय तीर्थकृत् ॥ ६५५ ॥
स्वाम्यङ्घ्रिपीठमध्यास्य[7], चक्रे गणधराग्रणीः[8] । स्वामिप्रभावात् स्वामीव, देशनां संशयच्छिदम् ॥ ६५६ ॥
द्वितीयस्यां च पौरुष्यां, पूर्णायां सोऽपि देशनाम् । संवव्रे स्तनितमिव, प्रवृष्टः प्रावृडम्बुदः ॥ ६५७ ॥
ततः स्थानादथाऽन्यत्र, विहर्तुं प्राचलत् प्रभुः । देवा भगीरथाद्याश्च, स्थानं निजनिजं ययुः ॥ ६५८ ॥
विहरन् स्वामिना सार्धं, सगरोऽपि महामुनिः । अध्यैष्ट द्वादशाङ्गानि, मातृकामिव[9] लीलया ॥६५९॥

१ एतावदायुष्यम् । २ अनुज्ञां ददौ । ३ प्रार्थनापूरणे कल्पवृक्षसदृशम् । ४ आग्रहेण । ५ गगनमध्येन । ६ अजितप्रभुः । ७ तीर्थकराध्यासितसिंहासनपादपीठमित्यर्थः । ८ प्रथमो गणधरः । ९ द्वादशाक्षरीवर्णानिव ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

स पञ्च समितीस्तिस्रो, गुप्तीश्चारित्रमातृकाः । सम्यगाराधयामास, प्रमादरहितः सदा ॥ ६६० ॥
स नित्यं भगवत्पादशुश्रूषोद्भूतया मुदा । परीषहभवं क्लेशं, न विवेद मनागपि ॥ ६६१ ॥
त्रैलोक्यचक्रिणो भ्राता, चक्रयस्मि स्वयमित्यपि । नाऽहंश्चक्रे किन्तु चक्रे, विनयं संयतेषु सः ॥ ६६२ ॥
पश्चादुपात्तदीक्षोऽपि, तपसाऽध्ययनेन च । चिरप्रव्रजितेभ्योऽपि, राजर्षिः सोऽत्यरिच्यत ॥ ६६३ ॥
घातिकर्मक्षयात् तस्य, केवलज्ञानमुज्ज्वलम् । उदभूद् दुर्दिनच्छेदात्, प्रताप इव भास्वतः ॥ ६६४ ॥
आरभ्य केवलोत्पत्तेरुर्व्यां विहरतः सतः । अजितस्वामिनः पञ्चनवतिर्गणभृद्वराः ॥ ६६५ ॥
लक्षं मुनीनां साध्वीनां, पुनस्त्रिंशत्सहस्रयुक् । लक्षत्रयं पूर्वभृतां, सप्तत्रिंशच्छतानि तु ॥ ६६६ ॥
मनःपर्ययिसहस्राः, सहसार्धचतुःशताः । द्वादशाऽवधिभाजां तु, चतुर्णवतिशत्यथ ॥ ६६७ ॥
उत्पन्नकेवलानां तु, द्वाविंशतिसहस्र्यभूत् । द्वादश वादलब्धीनां, सहस्राः सचतुःशताः ॥ ६६८ ॥
वैक्रियलब्धिसहस्रा, विंशतिः सचतुःशताः । ऊना द्वाभ्यां सहस्राभ्यां, श्रावकाणां त्रिलक्ष्यथ ॥ ६६९ ॥
पञ्चचत्वारिंशत्सङ्ख्यैः, सहस्रैरधिकानि तु । श्राविकाणां पञ्चलक्षाण्यजायन्त जगद्गुरोः ॥ ६७० ॥
एकाङ्गोने पूर्वलक्षे, दीक्षाकल्याणकाद् गते । निर्वाणसमयं ज्ञात्वा, सम्मेताद्रिं विभुर्ययौ ॥ ६७१ ॥
लोकाग्रस्येव सोपानं, सम्मेतमधिरूढवान् । द्वासप्ततिपूर्वलक्षसङ्ख्यायुरजितप्रभुः ॥ ६७२ ॥
श्रमणानां सहस्रेण, समं तत्र जगद्गुरुः । पादपोपगमं नामाऽनशनं प्रत्यपद्यत ॥ ६७३ ॥
तदा युगपदिन्द्राणामासनानि चकम्पिरे । अनिलान्दोलितोद्यानवृक्षशाखा इवाऽभितः ॥ ६७४ ॥
प्रयुक्तावधयस्ते तु, निर्वाणसमयं प्रभोः । विदाञ्चक्रुरुपेयुश्च, सम्मेतगिरिमूर्धनि ॥ ६७५ ॥
तत्र प्रदक्षिणीचक्रुः, सामरास्ते जगद्गुरुम् । शुश्रूषमाणास्तस्थुश्च, पादान्तेऽन्तिषदो यथा ॥ ६७६ ॥
पादपोपगमस्याऽथ, मासे पूर्णे जगद्गुरुः । चैत्रस्य शुक्लपञ्चम्यां, चन्द्रे मृगशिरःस्थिते ॥ ६७७ ॥
पर्यङ्कस्थः काययोगे, बादरेऽवस्थितोऽरुणत् । बादरौ चित्त-वाग्योगौ, रथस्थ इव वाजिनौ ॥ ६७८ ॥
सूक्ष्मेण काययोगेन, काययोगं च बादरम् । ततो रुरोध भगवान्, दीपेन ध्वान्तपूरवत् ॥ ६७९ ॥
काययोगे स्थितः सूक्ष्मे, योगी वाक्चित्तयोरपि । सूक्ष्मौ रुरोध भेजे च, ध्यानं सूक्ष्मक्रियं ततः ॥६८०॥
शुक्लध्याने चतुर्थे च, शैलेशीकरणं प्रभुः । पञ्चलघ्वक्षरोच्चारमात्रकालं समाश्रयत् ॥ ६८१ ॥
क्षीणावशिष्टकर्मा च, सिद्धानन्तचतुष्टयः । परमात्मा प्रभुः प्राप, लोकाग्रमृजुना पथा ॥ ६८२ ॥
अष्टादश पूर्वलक्षी, कौमारेऽगाज्जगत्पतेः । पूर्वलक्षास्त्रिपञ्चाशद्, राज्ये पूर्वाङ्गसंयुताः ॥ ६८३ ॥
व्रते छद्मस्थभावेऽगाद्, द्वादशाब्द्यथ केवले । पूर्वलक्षं द्वादशाब्द्या, पूर्वाङ्गेण च वर्जितम् ॥ ६८४ ॥
ततश्चर्षभनिर्वाणान्निर्वाणमजितप्रभोः । पञ्चाशत्कोटिलक्षेषु, सागराणां गतेष्वभूत् ॥ ६८५ ॥
सहस्रं मुनयस्तेऽपि, पादपोपगमस्थिताः । उत्पन्नकेवला रुद्धयोगास्तद्वद् ययुः शिवम् ॥ ६८६ ॥
तत्र कृत्वा समुद्घातं, सगरोऽपि महामुनिः । स्वामिप्राप्तं पदं प्रापाऽनुपदीव क्षणादपि ॥ ६८७ ॥
तदा च स्वामिनिर्वाणपर्वणा समजायत । अदृष्टशर्मणां शर्म, नारकाणामपि क्षणम् ॥ ६८८ ॥
अथाऽङ्गं स्वामिनः शक्रो, दिव्यैरस्नपयज्जलैः । गोशीर्षचन्दनरसैः, सशोको विलिलेप च ॥ ६८९ ॥
स्वाम्यङ्गं वासयामास, वाससा हंसलक्ष्मणा । भूषयामास च हरिर्विचित्रैर्दिव्यभूषणैः ॥ ६९० ॥
मुनीनामपरेषां तु, शरीरेषु दिवौकसः । स्नानाऽङ्गराग-नेपथ्या-ऽऽच्छादनानि वितेनिरे ॥ ६९१ ॥
आरोप्य दिव्यशिबिकां, स्वामिदेहं पुरन्दरः । गोशीर्षचन्दनमयीमानैषीदुचितां चिताम् ॥ ६९२ ॥
आरोप्य शिबिकामन्यमुन्यङ्गान्यपरे पुनः । गोशीर्षकाष्ठरचितां, चितां निन्युर्दिवौकसः ॥ ६९३ ॥

---

१ न अहङ्कारं चकार । २ मुनिषु । ३ एकपूर्वाङ्गोने इत्यर्थः । ४ शिष्याः । ५ अनुगामीव । ६ सुखम् ।
७ आच्छादयामास ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चितान्तश्चक्रिरे देवा, अग्निमग्निकुमारकाः । झगित्यज्वालयंस्ते च, देवा वायुकुमारकाः ॥ ६९४ ॥
शक्रादेशेन कर्पूर-कस्तूरीभारशोऽमराः । सर्पिष्कुम्भांश्च[1] शतशश्चितान्तः परिचिक्षिपुः ॥ ६९५ ॥
विमुच्याऽस्थीनि दग्धेषु, स्वामिनोऽन्येषु धातुषु[2] । व्यध्यापयंश्चितावह्निं[3], देवा मेघकुमारकाः ॥ ६९६ ॥
शक्रेशानौ स्वामिदंष्ट्रे, दक्षिण-दक्षिणेतरे । ऊर्ध्वस्थे चमर-बली, त्वगृह्णीतामधःस्थिते ॥ ६९७ ॥
अपरानपरे त्विन्द्रा, दशनान् जगृहुः प्रभोः । विभज्य भक्तितस्त्वन्ये, कीकसानि[4] दिवौकसः ॥ ६९८ ॥

यत् किञ्चिदन्यदपि तत्र विधेयमासीत्[5], सर्वं विधाय विधिवद् विबुधाधिपास्तत् ।
नन्दीश्वरं समधिगम्य च शाश्वतार्हदष्टाह्निकां विदधिरे महतोत्सवेन ॥ ६९९ ॥
जग्मुस्ततो निजनिजं सदनं सुरेन्द्रा, मध्येसुधर्ममथ माणवकाभिधेषु ।
स्तम्भेषु वज्रमयवृत्तसमुद्गकान्तर्विन्यस्य[6] ताश्च दधिरे जिननाथदंष्ट्राः ॥ ७०० ॥
ताः पूजयन्ति सततं वरगन्धधूपैर्माल्यैश्च शाश्वतजिनप्रतिमावदिन्द्राः ।
अव्याहतं तदनुभाववशेन तेषां, सञ्जायते विजयमङ्गलमद्वितीयम् ॥ ७०१ ॥
सगरनृपचरित्रेणान्तरस्थेन कामं, सर इव रसपूर्णं पद्मखण्डेन हृद्यम् ।
चरितमजितनाथस्यैहिकामुष्मिकाणि, प्रवितरतु सुखानि श्रोतृसामाजिकानाम् ॥ ७०२ ॥

॥ इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये द्वितीये पर्वणि अजितस्वामि-सगरदीक्षा-निर्वाणवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः ॥

॥ समाप्तं चेदमजितस्वामि-सगरचक्रवर्तिप्रतिबद्धं द्वितीयं पर्वेति ॥

१ घृतकुम्भान् । २ त्वचादिषु । ३ निरवापयन् । ४ अस्थीनि । ५ करणीयम् । ६ वज्रनिर्मितवृत्ताकारमञ्जूषायाम् ।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ अर्हम् ॥

॥ नमः श्रीधर्मकथानुयोगव्याख्यातृभ्यः स्थविरेभ्यः ॥

कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्यविनिर्मितं

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितम् ।

श्रीसम्भवजिनादिशीतलजिनपर्यन्तजिनाष्टकचरितप्रतिबद्धं तृतीयं पर्व ।

प्रथमः सर्गः ।

श्रीसम्भवजिनचरित्रम् ।

त्रैलोक्यप्रभवे पुण्यसम्भवाय भवच्छिदे । श्रीसम्भवजिनेन्द्राय मनोभवभिदे नमः ॥ १ ॥
धात्रीपवित्रीकरणं लवित्रं कर्मवीरुधाम् । चरित्रमथ वक्ष्यामि श्रीसम्भवजिनेशितुः ॥ २ ॥
धातकीखण्डद्वीपस्य क्षेत्रे ऐरावताभिधे । पुरी क्षेमपुरी नामा क्षेमधामाऽस्ति विश्रुता ॥ ३ ॥
तस्यामासीत् समायात इवोर्व्यां मेघवाहनः । महीपतिर्विपुलधीर्नाम्ना विपुलवाहनः ॥ ४ ॥
आरामिक इवाऽऽराममविराममसौ प्रजाः । विधिवत् पालयामास च्छिन्दन् शल्यानि सर्वतः ॥ ५ ॥
प्रीणयन्ती जनपदान् परितः पथिकानिव । नीतिकल्लोलिनी तस्य प्रससार निरन्तरम् ॥ ६ ॥
अपराधं परस्येव स्वस्यापि न्यायतत्परः । असह्यशासनधरः स न सेहे मनागपि ॥ ७ ॥
उपायं प्रायुङ्क्त तुर्यं दोषमानेन दोषिषु । सोऽगदं गदमानेनाऽऽतुरेष्विव चिकित्सकः ॥ ८ ॥
गुणानुरूपमकरोदर्चनां गुणिनामसौ । विवेकिनां विवेकस्य फलं ह्यौचित्यवर्तनम् ॥ ९ ॥
मदस्थानानि तस्याऽऽसन् न मदायाऽन्यलोकवत् । नदीवन्न नदीभर्तुरुत्सेकाय घनागमः ॥ १० ॥
तस्य चित्ते चैत्य इव सर्वज्ञो देवता सदा । वाचि जैनागम इव सर्वज्ञगुणशंसनम् ॥ ११ ॥
देवाय तीर्थनाथाय गुरवे च सुसाधवे । स शिरोऽनमयत् पृथ्व्यां सर्वोऽप्यन्यस्तमानमत् ॥ १२ ॥
अनार्त्त-रौद्रध्यानेन स्वाध्यायेन जिनार्चया । उपाददे स परमं मनो-वाग्-वपुषां फलम् ॥ १३ ॥

---

१ भवनविनाशकाय । २ पृथ्वी । ३ छेदकम् । ४ कर्मलतानाम् । * °मकरी ना° संवृ० ॥ ५ प्रसिद्धा । ६ इन्द्रः । ७ दुःखानि । ८ नदी । ९ उद्यानपालकः । १० तुर्यं उपायो दण्डः । ११ अपराधानुसारेण । १२ यथा वैद्यः रोगिषु रोगानुसारेण औषधं प्रयुङ्क्ते ॥ † °स्तवर्जनम् संवृ० ॥ १३ गर्वाय वृद्धये च । १४ प्रशंसा । १५ आर्त-रौद्राख्याशुभध्यानयुगलवर्जितेन, धर्म-शुक्लध्यानसहितेनेत्यर्थः । १६ सूत्रार्थतदुभयवाचना-प्रच्छनादिरूपेण । १७ लेभे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्मिन् श्रावकधर्मोऽभूत् स द्वादशविधोऽपि हि । अनारतमपि [1]स्थेयान् नीलीराग इवां[2]शुके ॥ १४ ॥
राजचक्रे [3]जागरूको यथा द्वादशधा स्थिते । तथा श्रावकधर्मेऽपि स बभूव महामनाः ॥ १५ ॥
[4]धर्मप्ररोहबीजानि [5]द्रविणानि यथोचितम् । [6]सप्तक्षेत्र्यां पवित्रात्मा निरन्तरमुवाप सः ॥ १६ ॥
दीना-ऽनाथैकशरणादेककारुणिकात् ततः । न [7]रिक्तो निर्ययावर्[8]थी समुद्रादिव वारिदः ॥ १७ ॥
याचकेषु ववर्षाऽर्थं स [9]पर्जन्य इवोदकम् । केवलं निरहङ्कारो न जगर्ज [10]मनागपि ॥ १८ ॥
कण्टकोच्छेदपरशौ [11]त्यागकल्पमहीरुहे । नाभवद् दुःस्थितः कोऽपि तस्मिन् शासति मेदिनीम् ॥ १९ ॥
तस्मिन्नपि महीनाथे कदाचिदथ भीषणम् । महादुर्[12]भिक्षमभवद् दुर्लङ्घ्या भवितव्यता ॥ २० ॥
अन्धकारीकृतदिशामम्भोदानामभावतः । वर्षाकालः समजनि, रौद्रो ग्रीष्म इवाऽपरः ॥ २१ ॥
शोषयन्तोऽशेषतोयान्यङ्[13]घ्रिपोन्मूलनोन्मदाः । कल्पान्तानिलसोदर्या नैर्ऋता वायवो ववुः ॥ २२ ॥
मेघा बभूवुर्नभसि [14]काकोदरसहोदराः । [15]कांस्यतालसमानश्रीरदृश्यत दिवाकरः ॥ २३ ॥
धान्याभावादजायन्त पौर-[16]जानपदा जनाः । तापसा इव वृक्षत्वक्-कन्द-मूल-फलाशिनः ॥ २४ ॥
कथञ्चिदपि लब्धेन [17]ग्रासेन महताऽपि हि । न तृप्यन्ति स्म सञ्जात[18]भस्मका इव मानवाः ॥ २५ ॥
भिक्ष[*]या लज्जमानः सन् भिक्षाग्रहणहेतवे । बभूव लोकः प्रायेण [19]मायातापसवेषभृत् ॥ २६ ॥
पितरो मातरः पुत्रा मिथस्त्यक्त्वाऽ[20]शनायया । अन्यतश्चाऽन्यतश्चाऽ[21]गुर्दिक्सम्मोहवशादिव ॥ २७ ॥
अपि सम्पश्यमानस्य क्रन्दतोऽतिबुभुक्षया । लब्धं कथञ्चिदन्नादि पुत्रस्य न ददौ पिता ॥ २८ ॥
विक्रीणीते स्म चणकप्र[22]सृत्या निजबालकम् । माता भ्रमन्ती रथ्यासु शूर्पादि [23]श्वपची यथा ॥ २९ ॥
प्रातरी[24]श्वरहर्म्याणां पतितानङ्गणे कणान् । [25]वराकाश्चिक्यिरे रङ्का गृहपारापता इव ॥ ३० ॥
अपि कान्दविकादीनामापणे[26]षु मुहुर्मुहुः । लब्ध्वा च्छलं श्वान इव भोज्यमाचिच्छिदुर्जनाः ॥ ३१ ॥
अप्यहः सकलं भ्रान्त्वा कथञ्चिदह[27]रत्यये । ग्रासमात्रमपि प्राप्य सुदिनं मेनिरे नराः ॥ ३२ ॥
रङ्कैः [28]करङ्कसङ्काशैर्लुठितैरतिभीषणैः । श्मशानादत्यरिच्यन्त पुरराजपथा अपि ॥ ३३ ॥
[29]रलैरोलैरविरलैः प्रसरद्भिः पदे पदे । अदूयन्त सतां कर्णाः क्षिप्ताभिरिव सूचिभिः ॥ ३४ ॥
कल्पान्त[30]कल्पे दुष्काले तस्मिन् सङ्घं चतुर्विधम् । क्षीयमाणं नृपः प्रेक्ष्य, दध्याविति महामनाः ॥३५॥
इयं खलु धरित्री मे त्रातव्या सकलाऽपि हि । किं करोमि परं? पापः कालोऽयं नाऽस्त्रगो[31]चरः ॥३६॥
तथाप्यवश्यं त्रातव्यः सङ्घोऽयमखिलोऽपि हि । [32]पात्रोपकारे प्रथमं महतां यदु[33]पक्रमः ॥ ३७ ॥
चिन्तयित्वैवमुर्वी[34]शः सू[35]दानिति समादिशत् । सङ्घभुक्तावशेषं भो! भोक्ष्येऽहं खल्वतः परम् ॥ ३८ ॥
मत्कृते कृतमन्नादि दातव्यं [36]व्रतिनामतः । श्रावका भोजयितव्याः पृथक् सिद्धौदनेन तु ॥ ३९ ॥
तथेति प्रतिपद्याऽऽज्ञां राज्ञस्ते सूदपुङ्गवाः । तथैव विदधुर्नित्यं स्वयं चैक्षिष्ट पार्थिवः ॥ ४० ॥
नासिकापेयसौरभ्याः कलमाः [37]कमला इव । स्थूला माषकणेभ्योऽपि मुद्गा रससमु[38]द्गकाः ॥ ४१ ॥

---

१ अत्यन्तं स्थिरः । २ वस्त्रे । ३ जागरणशीलः । ४ धर्माङ्कुरस्य बीजानि हेतव इत्यर्थः । ५ द्रव्याणि । ६ जिनचैत्यं जिनप्रतिमा पुस्तकं साधुः साध्वी श्रावकः श्राविका चेति सप्तक्षेत्री । ७ शून्यहस्तः । ८ अर्थी–याचकः । ९ मेघः । १० अल्पमपि । ११ दानकल्पवृक्षे । १२ दुष्कालः । १३ वृक्षोन्मूलनोन्मत्ताः । १४ काकोदरसर्पसमानाः श्वेता इत्यर्थः । १५ कांस्यपृष्ठसमानकान्तिः पीत इत्यर्थः । १६ नगरवासिनो देशवासिनश्च । १७ कवलेन । १८ जातभस्मकाभिधानरोगा इव । * भिक्षाया संवृ० ॥ १९ कृत्रिमतापसवेषधरः । २० बुभुक्षया । २१ जग्मुः । २२ चणकार्द्धाञ्जलिना । २३ चाण्डाली । २४ धनाढ्यगृहाणाम् । २५ दीनाः । २६ हट्टेषु । २७ दिनान्ते । २८ अस्थिपञ्जरसदृशैः । २९ प्रकृष्टरुदितकोलाहलैः, 'रडारोल' इति भाषायाम् । ३० कल्पान्तसदृशे । ३१ अस्त्रघात्यः । ३२ गुणवदुपकारे । ३३ प्रारम्भः । ३४ राजा । ३५ पाचकान् । ३६ मुनीनाम् । † °न च संवृ० ॥ ३७ पुंनपुंसकोऽयं शब्दः । ३८ समुद्गकः सम्पुटः 'डबो' इति भाषायां प्रसिद्धः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घृतोदस्य पयांसीव प्रचुराणि घृतानि च । सुधाया इव मित्राणि चित्राणि व्यञ्जनानि च ॥ ४२ ॥
मण्डकाः खण्डसम्मिश्रा मोदकाश्च प्रमोदकाः । खाद्यानि स्वादहृद्यानि मण्डिकाः खण्डमण्डिताः ॥४३॥
सुकुमारा मर्मराला वटकाश्चाऽतिपेशलाः । तीमनं च मनोहारि *पिच्छिलानि दधीनि च ॥ ४४ ॥
दुग्धानि क्वाथसिद्धानि मार्जिता शुभ्रमार्जनी । राजभोजनवत् तत्राऽभवन् श्रावकभोजने ॥ ४५ ॥
पञ्चभिः कुलकम् ॥

एषणीय-कल्पनीय-प्रासुकानि पुनः स्वयम् । महामुनीनां स ददौ महाराजो महामनाः ॥ ४६ ॥
दुर्भिक्षकालं सकलमेवं स वसुधाधवः । ददौ सकलसङ्घाय भोजनादि यथाविधि ॥ ४७ ॥
वैयावृत्यं समाधिं च सर्वसङ्घस्य कुर्वता । अर्जितं तीर्थकृन्नाम कर्म तेन महीभुजा ॥ ४८ ॥
निषण्णश्चन्द्रशालान्तरपरेद्युः स उर्ध्वतम् । नभस्यपश्यदम्भोदमातपत्रमिवाऽवनेः ॥ ४९ ॥
नीलीरक्तांशुकमयः स व्योम्न इव कञ्चुकः । तडिल्लतामण्डनभृत् समन्ताद् व्यानशे दिशः ॥ ५० ॥
अत्रान्तरे समुत्तस्थावामूलान्दोलितद्रुमः । पातालकुम्भसर्वस्वमिवोच्चण्डः समीरणः ॥ ५१ ॥
वातेन तेन महता स महानपि वारिदः । अर्कतूलमिवोद्धूय दिशोदिशमनीयत ॥ ५२ ॥
आविर्भूतं क्षणान्मेघं विनष्टं च क्षणादपि । तं प्रेक्ष्य स क्षमानाथः सुधीरेवमचिन्तयत् ॥ ५३ ॥
असौ सम्पश्यमानानां दृष्टनष्टो यथाऽम्बुदः । ज्ञातं तथाऽन्यदपि हि संसारे सर्वमीदृशम् ॥ ५४ ॥
तथाहि स्वेच्छया जल्पन् गायन् नृत्यन् हसन्नथ । दीव्यन् विचित्रान् द्रविणार्जनोपायान् विचिन्तयन् ॥
गच्छंस्तिष्ठन् शयानो वाऽधिरूढो वाहनेऽपि वा । कुप्यन् वा विलसन् वाऽपि गृहे वा बहिरेव वा ॥५६॥
कालादिष्टेन सद्योऽपि दन्दशूकेन दश्यते । विद्युद्दण्डेन चण्डेन विनिपत्य निपात्यते ॥ ५७ ॥
मतङ्गजेन मत्तेन पिष्यते वा रदादिभिः । जीर्णवप्रादिभित्त्या वा विनिपत्य पिधीयते ॥ ५८ ॥
व्याघ्रेण भक्ष्यते वाऽपि बुभुक्षाक्षामकुक्षिणा । दोषेण वैक्रियेणाऽथ दुश्चिकित्सेन गृह्यते ॥ ५९ ॥
अकस्मादुन्मदेनाऽथ पात्यते तुरगादिना । वैरि-चौरादिना वाऽपि हन्यते क्षुरिकादिना ॥ ६० ॥
दह्यते वा प्रदीप्तेन प्रदीपनकवह्निना । कृष्यते वा महावृष्टिसरित्पूरादिरंहसा ॥ ६१ ॥
बलवद्वातदोषेण सर्वाङ्गं भज्यतेऽथवा । आश्लिष्यते श्लेष्मणा वा शान्ताशेषतनूष्मणा ॥ ६२ ॥
यदि वा पित्तदोषेण प्रबलेन विलुप्यते । सद्यस्कसन्निपातेन यदि वा परिभूयते ॥ ६३ ॥
लूतया भक्ष्यते वाऽथ प्राप्यते राजयक्ष्मणा । विसूचिकोपद्रवेण यदि वाऽपि कदर्थ्यते ॥ ६४ ॥
आसाद्यते दुरन्तेनाऽर्बुदाख्येन व्रणेन वा । मोह्यते वा प्रवाहेण ग्रहण्या गृह्यतेऽथवा ॥ ६५ ॥
रुध्यते वाऽपि विद्रध्या कासेन क्लिश्यतेऽथवा । श्वासेन पूर्यते वाऽपि शूलेनोन्मूल्यतेऽथवा ॥ ६६ ॥
सदा सन्निहितैर्दोषैरित्यादिभिरनेकशः । दूतैरिव कृतान्तस्य जन्तुः पञ्चत्वमाप्यते ॥ ६७ ॥
॥ §त्रयोदशभिः कुलकम् ॥

तथापि शाश्वतम्मन्यः पशुवन्मन्दधीर्जनः । प्रवर्त्तते न ग्रहीतुं जीवितव्यतरोः फलम् ॥ ६८ ॥
हा! दुःस्थिता भ्रातरो मे बाला मेऽद्यापि सूनवः । अनूढा कन्यका चेयं पाठ्यश्चायं कुमारकः ॥ ६९ ॥

१ तत्राम्नः समुद्रस्य । २ शाकानि । ३ भक्ष्यविशेषा भाषायां "मांडा" । ४ भक्ष्यविशेषा भाषायां "खाजा" । ५ मर्मरशब्दवन्तः । ६ 'वडा' इति भाषायां प्रसिद्धिः । ७ क्वथिका 'कढी' इति भाषायाम् । * पिच्छला° संवृ० मो० ॥ ८ चिक्कणानि । † °थशुद्धा° संवृ० संल० मो० ॥ ९ रसाला 'श्रीखंड' इति भाषायां प्रसिद्धिः । ‡ तत्र जाता श्राव° सङ्घ० मो० ॥ § त्रिभिर्विशेषकम् सङ्घ० मो० ॥ १० निर्दोषं साधुयोग्यमचित्तं च । ११ प्रासादतलं 'अगासी' इति लोके ख्यातम् । १२ ऊर्ध्वम् । १३ छत्रम् । १४ प्रचण्डः । १५ वायुः । १६ सर्पेण । १७ दन्तादिभिः । ¶ क्वापि संवृ० संल० ॥ १८ मत्तेन । १९ एते रोगविशेषाः । २० मृत्युः । $ सङ्घ० प्रतावेवं दृश्यते ॥ २१ अविवाहिता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवोढैव हि भार्येयं वृद्धौ च पितराविमौ । दुःस्थितौ श्वशुरौ चैतौ विधवा भगिनी त्वियम् ॥ ७० ॥
इत्यजस्रं जनं पाल्यं विचिन्तयति मुग्धधीः । हृदि बद्धशिलाकल्पं न तु वेत्ति भवार्णवे ॥ ७१ ॥
न तृप्तोऽद्यापि दयितावपुराश्लेषशर्मणः । न घ्रातः पयसश्चापि माल्येच्छा न ह्यपूर्यत ॥ ७२ ॥
न चाऽपूरि मनोहारिपदार्थेक्षामनोरथः । वीणा-वेण्वादिगीतानां न प्रीतोऽस्मि मनागपि ॥ ७३ ॥
अद्यापि च कुटुम्बाय भाण्डागारं न पूरितम् । नवीकृतं समुद्धृत्य जीर्णमेतन्न मन्दिरम् ॥ ७४ ॥
गमितेषु परां शिक्षां नाऽऽरूढोऽस्म्येषु वाजिषु । नोक्षाणो वाहिताश्चाऽमी सुखदाः स्यन्दनोत्तमैः ॥ ७५ ॥
करोतीत्यन्तकालेऽपि पश्चात्तापं जडो जनः । धर्मश्चक्रे मया नेति नानुशेते मनागपि ॥ ७६ ॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥

इतः सदोद्यतो मृत्युरितो नानापमृत्यवः । व्याधयोऽवस्थिताश्चेत इतो बहव आधयः ॥ ७७ ॥
राग-द्वेषादयश्चेतो द्विषन्तो नित्यमुद्यताः । इतः कषायाः प्रबलाः खला इव विपत्प्रदाः ॥ ७८ ॥
न किञ्चन सुखायेह संसारे मरुदेशवत् । सुखवासेन तिष्ठामीत्याः! प्राणी न विरज्यति ॥ ७९ ॥
सुखाभासविमूढस्य प्रसुप्तस्येव सौप्तिकम् । कालपाशः पतत्याशु सद्यः प्राणापहारकृत् ॥ ८० ॥
तदमुष्य शरीरस्य नश्वरस्य यथा तथा । फलं हि धर्माचरणं सिद्धान्नस्येव भोजनम् ॥ ८१ ॥
नश्वरेण शरीरेणाऽविनश्वरपदार्जनम् । अहो! सुकरमप्येतद् विमूढैः क्रियते न हि ॥ ८२ ॥
वपुषा तदनेनाऽद्य क्रेतुं निर्वाणसम्पदम् । भृशमेषोऽहमुत्थास्ये निधास्ये राज्यमात्मजे ॥ ८३ ॥
इति निश्चित्य रभसादाजूहवदिलापतिः । द्वारपालेन विमलकीर्तिं कीर्तिप्रियं सुतम् ॥ ८४ ॥
प्रकृष्टदैवतस्येव भक्त्या परमया पितुः । पादौ नत्वा कुमारः स बद्धाञ्जलिरदोऽवदत् ॥ ८५ ॥
महताऽपि निदेशेन प्रसीदाऽनुगृहाण माम् । पुत्रभाण्डमसौ बाल इति शङ्कां च मा कृथाः ॥ ८६ ॥
प्रत्यर्थिनः पार्थिवस्य कस्याऽऽच्छिन्देऽद्य मेदिनीम्? । सपर्वतं पर्वतीयं नृपं कं साधयामि च? ॥ ८७ ॥
सजलं जलदुर्गस्थमन्तयामि रिपुं च कम्? । यो वः शैल्यायतेऽन्योऽपि तमप्याशूत्खनाम्यहम् ॥ ८८ ॥
बालोऽपि तव पुत्रोऽस्मि क्षमो दुःसाधसाधने । तातस्यैव प्रभावोऽयं न भटम्मन्यताऽत्र मे ॥ ८९ ॥
राजाऽपि व्याजहारैवं प्रत्यर्थी पार्थिवो न मे । पर्वतीयो न वा कोऽपि व्यतिक्रामति मद्वचः ॥ ९० ॥
न च द्वीपाधिपः कोऽपि ममाज्ञां व्यतिलङ्घते । यत्साधनाय वत्स! त्वां प्रहिणोमि महाभुज! ॥ ९१ ॥
एकः शल्यायते किन्तु भववासो ममाऽनिशम् । तदुद्धर कुलोत्तंस! धराभारं धुरन्धर! ॥ ९२ ॥
मयेव गृह्यतामेतत् त्वया राज्यं क्रमागतम् । आत्तदीक्षो यथाऽभीक्ष्णं भववासं त्यजाम्यहम् ॥ ९३ ॥
अलङ्घनीयां गुर्वाज्ञां स्वसन्धां चाऽधुना कृताम् । संसरन् वत्स! भक्त्याऽपि नाऽन्यथा कर्तुमर्हसि ॥ ९४ ॥
दध्याविति कुमारोऽपि तातेनाऽऽज्ञां प्रयच्छता । मत्सन्धां सारयता च हा! कृतोऽस्मि निरुत्तरः ॥ ९५ ॥
इत्यादि चिन्तयन् राजपुत्रो राज्ञा स्वपाणिना । आदाय राज्ये निदधे साभिषेकमहोत्सवम् ॥ ९६ ॥
राजाऽपि कृतदीक्षाभिषेको विमलकीर्तिना । शिबिकाधिरूढश्चाऽगात् सूरिं नाम्ना स्वयम्प्रभम् ॥ ९७ ॥
तस्य चाऽऽचार्यवर्यस्य समीपे स नृपाग्रणीः । प्राव्राजीत् सर्वसावद्यप्रत्याख्यानपुरःसरम् ॥ ९८ ॥
साम्राज्यवन् परिव्रज्यामन्तरङ्गद्विषज्जयात् । स संयमरथारूढो विधिवत् पर्यपालयत् ॥ ९९ ॥
विंशतेः स्थानकानां च स्थानकैरपरैरपि । स पुपोष निजं कर्म तीर्थकृन्नामनामकम् ॥ १०० ॥
उपसर्गैरनुद्विग्नो मोदमानः परीषहैः । स आयुः क्षपयामास स्वयाममिव यामिकः ॥ १०१ ॥

१ सततम् । २ वृषभाः । ३ वेगवन्तः । ४ नानुतप्यते । ५ मानसिक्यः पीडाः । ६ रात्रियुद्धम् । ७ मोक्षपदोपार्जनम् । ८ राजा । ९ शत्रोः । १० गिरिवासिनम् । *वा संवृ० संल० सक्ष० ॥ ११ नाशयामि । १२ शल्यवदाचरति । १३ उवाच । १४ उल्लङ्घते । १५ गृहवास इत्यर्थः । १६ गृहीतदीक्षः । १७ आत्मीयप्रतिज्ञाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहितानशनो मृत्वा कल्पं स प्रापदानतम् । निर्वाणफल*दायिन्या दीक्षायाः स्तोकमीदृशम् ॥ १०२ ॥

इतश्च जम्बूद्वीपेऽपाग्[1]भरतार्धस्य भूषणम् । श्रावस्तीत्यस्ति विस्तीर्णा नगरी श्रीगरीयसी ॥ १०३ ॥
बभूव तस्यामिक्ष्वाकुकुलक्षीरोदचन्द्रमाः[2] । जितारिरित्यरिजयाद् यथार्थाख्यः क्षमापतिः ॥ १०४ ॥
मृगेष्विव मृगेन्द्रस्य पक्षीन्द्रस्येव पक्षिषु । न समो नाऽधिको वाऽपि तस्याऽभूत् कोऽपि राजसु ॥ १०५ ॥
स रेजे राजभी राजा पचीकृत्य प्रवेशितैः । ग्रहैरिव ग्रहपतिमण्डलान्तःप्रवेशिभिः ॥ १०६ ॥
नाऽधर्म्यं[3] किञ्चिदप्यूचे नाऽऽचचार च तादृशम् । नाऽचिन्तयच्च तादृक्षं स धर्म इव मूर्त्तिमान् ॥ १०७ ॥
विनेतरि दुराचारानर्थिभ्योऽर्थांश्च दातरि । अधार्मिको दुःस्थितो वा तस्मिन् राज्ञि न कोऽप्यभूत् ॥ १०८ ॥
सोऽस्त्रपाणिः कृपालुश्च शक्तिमांश्च क्षमापरः । विद्वांश्च गतमात्सर्यो युवा चाऽऽसीज्जितेन्द्रियः ॥ १०९ ॥
बभूव महिषी तस्याऽनुरूपा रूपसम्पदा । सेनानीर्गुणसैन्यानां सेनादेवीति नामतः ॥ ११० ॥
अबाधमान इतरान् पुरुषार्थान् यथाक्षणम् । अरंस्त स तया देव्या रोहिण्येव हिम[4]द्युतिः ॥ १११ ॥

इतश्च नवमे कल्पे स्वमायुः पर्यपूरयत् । जीवस्तदानीं विपुलवाहनस्य महीपतेः ॥ ११२ ॥
फाल्गुनस्य सिताष्टम्यां चन्द्रे मृगशिरःस्थिते । आनतात् स परिच्युत्य सेनाकुक्षाववातरत् ॥ ११३ ॥
क्षणं सुखं तदा जज्ञे नारकप्राणिनामपि । लोकत्रयेऽपि चोद्योतो विद्युदुद्योतसोदरः ॥ ११४ ॥
शयानया रात्रिशेषे प्रविशन्तो मुखाम्बुजे । सेनादेव्या ददृशिरे महास्वप्नाश्चतुर्दश ॥ ११५ ॥
गर्जन् गजपतिर्गौरः शरन्मेघ इवोच्चकैः । वृषः स्फटिकशैलस्य ग[5]ण्डशैल इवाऽमलः ॥ ११६ ॥
केसरी केसरभरेणाऽतिकुङ्कुमकेसरः । क्रियमाणाभिषेका च करिभ्यां कम[6]लालया ॥ ११७ ॥
पञ्चवर्णप्रसू[7]नस्रक् सन्ध्याभ्र[8]च्छवितस्करा । राजतो दर्पण इव सम्पूर्णो रज[9]नीकरः ॥ ११८ ॥
विध्वं[10]सितान्धकारं च चण्डदीधितिमण्डलम्[11] । प्रक्वणत्किङ्किणीजालपताकश्च महाध्वजः ॥ ११९ ॥
ता[12]पनीय†ः पयस्कुम्भः पयोजपिहिताननः । विकासिभिः स्मयमानमिव पद्मैर्महासरः ॥ १२० ॥
उद्वीचिहस्तकैर्नृत्यन्निव क्षीरमहोदधिः । अदृष्टप्रतिमानं च विमानं रत्ननिर्मितम् ॥ १२१ ॥
रत्नपुञ्जो मणिगणः पातालफणिनामिव । वि[13]भावसुश्च निर्धूमः प्र[14]त्यूषतपनोपमः ॥ १२२ ॥
देवी प्रबुद्धा तान् स्वप्नान् नृपायाख्यन्नृपोऽपि च । व्याख्यात् त्रैलोक्यवन्द्यस्ते नूनं सूनुर्भविष्यति ॥ १२३ ॥

इन्द्राश्चासनकम्पेन विज्ञायोपेत्य तत्र च । सेनादेवीं नमस्कृत्य स्वप्नार्थं व्याचचक्षिरे ॥ १२४ ॥
एतस्यामव[15]सर्पिण्यां तृतीयस्तीर्थनायकः । भविष्यति जगत्स्वामी तव स्वामिनि! नन्दनः ॥ १२५ ॥
तेन स्वप्नविचारेण स्तनितेनेव केकि[16]नी । मुदिता तं निशाशेषं देव्यनैषीत् प्रजाग्रती ॥ १२६ ॥
वज्रं व[17]ज्राकरोर्वीव कृशानुमिव चाऽरणिः । महासारं पवित्रं च गर्भं देवी बभार तम् ॥ १२७ ॥
देव्याः स उदरे गर्भो निर्गू[18]ढं ववृधे ततः । गङ्गाया इव पानीये त[19]पनीयपयोरुहम् ॥ १२८ ॥
तदाऽभूतां दृशौ देव्याः सविकाशे विशेषतः । सरस्या हि सरोजानि विशिष्यन्ते शरत्क्षणे ॥ १२९ ॥
लावण्यमङ्गे कुचयोः पीनत्वं मन्दता गतौ । देव्याः प्रतिदिनं गर्भानुभावादत्यरिच्यं[20]त ॥ १३० ॥
फाल्गुनस्य सिताष्टम्यां‡ द्यौरिवाम्भोदलक्षणम् । गर्भं तं बिभ्रती साऽभूज्जगतोऽपि मुदे तदा ॥ १३१ ॥
ततो नवसु मासेषु दिनेष्वर्धाष्टमेषु च । मार्गशुक्लचतुर्दश्यां चन्द्रे मृगशिरःस्थिते ॥ १३२ ॥

---

* °स्मभूताया दी° संवु० मो० ॥ १ दक्षिणभरतार्धस्य । २ चन्द्रः । ३ धर्मादनपेतं धर्म्यम् न तथा अधर्म्यम् । ४ चन्द्रः । ५ शिरोमुखः स्थूलोष्ठः । ६ लक्ष्मीः । ७ पुष्पमाला । ८ सन्ध्यासमयाभ्रकान्तिलुण्टाका । ९ चन्द्रः । १० कृतान्धकारम् । ११ सूर्यमण्डलम् । १२ सौवर्णः । † °नीयप° संवु० संल० ॥ १३ अग्निः । १४ प्रातःकालीनसूर्यसमानः । १५ तच्चाख्ये कालविशेषे । १६ मयूरी । १७ हीरकखनिः । १८ गुप्तं यथा स्यात् तथा । १९ रक्तकमलम् । २० ववृधे । ‡ सङ्घसं० विनाऽन्यत्र—माघस्य सितसप्तम्यां संवु० संक० मो० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जरायु-रक्तप्रभृतिवर्जितं वाजिलाञ्छनम्[*] । प्राचीवाऽर्कं स्वर्णवर्णं सुखं सा सुषुवे सुतम् ॥ १३३ ॥
ध्वान्तध्वंसकृदुद्योतस्त्रैलोक्येऽपि तदा क्षणम् । क्षणं च सौख्यं सञ्जज्ञे नारकप्राणिनामपि ॥ १३४ ॥
ग्रहाः स्वोच्चं ययुः स्थानं प्रसेदुः सकला दिशः । ववौ वायुः सुखं लोकश्चिक्रीड निखिलस्तदा ॥ १३५ ॥
गन्धाम्बुवृष्टिरभवद् दिवि दध्वान दुन्दुभिः । रजोऽपनिन्ये पवनो मही चोच्छ्वासमासदत् ॥ १३६ ॥
अथाऽधोलोकतो भोगङ्कराद्या दिक्कुमारिकाः । अष्टैयुः स्वामिसदनमर्हज्जन्मविदोऽवधेः ॥ १३७ ॥
ताभिः प्रदक्षिणीकृत्य जिनं तज्जननीमथ । नत्वा स्वं ज्ञापयामासुर्मा भैषीर्वादपूर्वकम् ॥ १३८ ॥
दिश्यैशान्यां स्थिताः कृत्वा समुद्घातं च वैक्रियम् । जह्रुः संवर्तवातेनाऽऽयोजनं कण्टकादि च ॥१३९॥
भगवन्तं ततो नत्वा तदासन्ने निषद्य च । गायन्त्यस्तद्गुणांस्तस्थुर्गोत्रस्त्रिय इवोच्चकैः ॥ १४० ॥
अथोर्ध्वलोकतो मेघङ्कराद्या दिक्कुमारिकाः । अष्टैयुस्तद्वदानेमुः स्वामिनं स्वामिमातरम् ॥ १४१ ॥
विकृत्याऽभ्राणि तद्वेश्मपार्श्वतो योजनावधि । रजांसि शमयामासुस्ता गन्धोदकवृष्टिभिः ॥ १४२ ॥
जानुदघ्नीं पञ्चवर्णपुष्पवृष्टिं विधाय ताः । नत्वा जिनं जिनगुणान् गायन्त्योऽस्थुर्यथोचितम् ॥ १४३ ॥
दिक्कुमार्यः प्राग्रुचकादष्ट नन्दोत्तरादयः । एत्य नत्वा तथैवाऽस्थुर्गायन्त्यो धृतदर्पणाः ॥ १४४ ॥
दिक्कुमार्योऽपाग्रुचकात् समहारादयोऽष्ट च । एत्य नत्वा दक्षिणेऽस्थुः सभृङ्गारप्रपाणयः ॥ १४५ ॥
प्रत्यग्रुचकतोऽष्टैयुर्दिक्कुमार्य इलादयः । नत्वाऽस्थुर्व्यजनभृतो गायन्त्यः पश्चिमेन तु ॥ १४६ ॥
अष्टोदग्रुचकादेयुर्देव्यश्चाऽलम्बुसादयः । नत्वा चोत्तरतस्तस्थुर्गायन्त्यो धृतचामराः ॥ १४७ ॥
एयुश्चतस्रश्चित्राद्या विदिग्रुचकतोऽप्यथ । नत्वा विदिक्षु तस्थुश्च गायन्त्यो दीपपाणयः ॥ १४८ ॥
एयुश्चतस्रो रूपाद्या देव्यो रुचकमध्यतः । चतुरङ्गुलवर्जं ता नालं निचिच्छिदुः प्रभोः ॥ १४९ ॥
ताः कृत्वा विवरं भूमौ न्यधुर्नालं निधानवत् । वज्रै रत्नैश्च सम्पूर्य दूर्वया पीठिकां व्यधुः ॥ १५० ॥
प्रत्यग्वर्जं प्रतिदिशं जिनजन्मगृहस्य ताः । विचक्रुः कदलिगृहं चतुःशालसमन्वितम् ॥ १५१ ॥
पाणिभ्यां जिनमादाय जिनाम्बां दत्तबाहवः । अपाग्रम्भाचतुःशाले नीत्वा सिंहासने न्यधुः ॥ १५२ ॥
उभावभ्यज्य तैलेन लक्षपाकेण तास्ततः । सुगन्धिनोद्वर्तनेनोद्वर्तयामासुराशु च ॥ १५३ ॥
नीत्वोभौ प्राक्चतुःशाले न्यस्य सिंहासने च ताः । गन्धोदकैरस्नपयन् देवदूष्येण चाऽमृजन् ॥ १५४ ॥
गोशीर्षेण व्यलिम्पंश्च देवदूष्यांशुकान्यथ । भूषणानि च दिव्यानि ता द्वाभ्यां पर्यधापयन् ॥ १५५ ॥
उदग्रम्भाचतुःशाले जिनं तज्जननीं च ताः । नीत्वोपवेशयामासू रत्नसिंहासनोपरि ॥ १५६ ॥
अथाऽभियोग्यैरानाय्य भूरि गोशीर्षचन्दनम् । समिन्धीकृत्य जुहुवुर्वह्नावरणिनिर्मिते ॥ १५७ ॥
स्वामिनः स्वामिमातुश्च रक्षापोट्टलिकामथ । तद्वह्निभस्मना कृत्वा बबन्धुस्ता यथाविधि ॥ १५८ ॥
पर्वतायुर्भवेत्युच्चैरुच्चारितगिरोऽथ ताः । कर्णाभ्यर्णे भगवतो ग्रावगोलाववताडयन् ॥ १५९ ॥
शय्याजुषं सूतिगृहेऽर्हन्तं तन्मातरं च ताः । कृत्वाऽवतस्थिरे तारं गायन्त्यो मङ्गलान्यथ ॥ १६० ॥
स्वामिपादाम्बुजाभ्यर्णे यियासूनीव सर्वतः । तदा च पुरुहूतानामासनानि चकम्पिरे ॥ १६१ ॥
जिनजन्मावधेर्ज्ञात्वोत्थाय शक्रोऽपपादुकः । दत्त्वा पदानि सप्ताऽष्टान्यवन्दत जिनेश्वरम् ॥ १६२ ॥
घण्टानिर्घोष-सेनानीघोषणामिलितैः सुरैः । परिवव्रे सुरेन्द्रोऽथ जिनजन्मोत्सवोत्सुकैः ॥ १६३ ॥
आरुह्य पालकं शक्रः सामरः सपरिच्छदः । मध्येनन्दीश्वरं गत्वा स्वामिवेश्माऽऽययौ ततः ॥ १६४ ॥

---

*०लाञ्छितम् संबृ० ॥ १ अन्धकारनाशकः प्रकाशः । २ कथनपूर्वकम् । ३ योजनपर्यन्तम् । ४ जानुप्रमाणाम् । ५ तालवृन्तधराः । ६ चिच्छिदुः । ७ गर्त्तम् । ८ स्थापयामासुः । ९ दक्षिणकदलिगृहे । १० शीघ्रम् । ११ उत्तरदिक्स्थिते कदलीगृहे । १२ सेवकदेवैः । १३ ज्वालयित्वा । १४ भाषायां 'रक्षापोटली' । १५ पाषाणगोलकौ । १६ उच्चैःस्वरम् । १७ इन्द्राणाम् । १८ पादुकारहितः । १९ एतन्नामकं विमानम् । २० देवैः सहितः । २१ सपरिवारः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स प्रदक्षिणयामास स्वामिवेश्म विमानगः । मुक्त्वा विमानं चैशान्यां ततो हरिरवातरत् ॥ १६५ ॥
अथ तत् स्वामिनो वेश्म प्रविवेश पुरन्दरः । तमालोकनमात्रेऽपि प्रणनाम च भक्तितः ॥ १६६ ॥
स त्रिः प्रदक्षिणीचक्रे भगवन्तं समातरम् । पञ्चाङ्गस्पृष्टभूपीठो भूयोऽपि प्रणनाम च ॥ १६७ ॥
अपस्वापनिकां दत्त्वा देव्याः पार्श्वे निधाय च । प्रतिच्छन्दं विभोः शक्रः पञ्चमूर्त्तिरभूत् स्वयम् ॥१६८॥
तत्र चैको दधौ नाथं शक्रश्छत्रमथाऽपरः । चामरे द्वावथैकोऽगाद् वज्रमुल्लालयन् पुरः ॥ १६९ ॥
सुरैर्जयजयारावकारिभिः परिवारितः । गृहीत्वा स्वामिनं शक्रः क्षणान्मेरुशिरो ययौ ॥ १७० ॥
अतिपाण्डुकम्बलायां शिलायां तत्र वासवः । सिंहासने निषसाद कृत्वोत्सङ्गे जगद्गुरुम् ॥ १७१ ॥
तदैवाऽऽसनकम्पेनाऽवधिज्ञानमनाहतम् । प्रयुज्य तत्क्षणादेवाऽच्युतेन्द्रः प्राणतोऽपि च ॥ १७२ ॥
सहस्रारो महाशुक्रो लान्तको ब्रह्मवासवः । माहेन्द्रः सनत्कुमार ईशानश्चमरो बलिः ॥१७३॥
धरणो भूतानन्दश्च हरिर्हरिसहस्तथा । वेणुदेवो वेणुदारी चाऽग्निशिखोऽग्निमाणवः ॥ १७४ ॥
वेलम्बः प्रभञ्जनश्च सुघोषाभिध एव च । महाघोषो जलकान्ताभिधानोऽथ जलप्रभः ॥ १७५ ॥
अथ पूर्णोऽवशिष्टश्चाऽमितोऽथामितवाहनः । तथा काल-महाकालौ सुरूप-प्रतिरूपकौ ॥१७६॥
पूर्णभद्रस्तथा माणिभद्रो भीमाभिधोऽपि च । महाभीमः किन्नरश्च तथा किम्पुरुषाभिधः ॥१७७॥
सत्पुरुषाभिधानश्च महापुरुष एव च । अतिकाय-महाकायावपि गीतरतिस्तथा ॥ १७८ ॥
तथा गीतयशोनामा संनिहितः समानकः । तथा धातृ-विधातारावृषिश्च ऋषिपालकः ॥ १७९ ॥
ईश्वरो महेश्वरश्च सुवत्सक-विशालकौ । हास-हासरती श्वेतो महाश्वेतस्तथैव च ॥ १८० ॥
पवक-पवकपती सूर्याचन्द्रमसावपि । इन्द्रास्त्रिषष्टिरेतेऽपि सर्वर्द्ध्या सपरिच्छदाः ॥ १८१ ॥
जिनजन्माभिषेकाय मेरुपर्वतमूर्धनि । त्वरमाणाः सहाऽऽजग्मुः प्रतिवेश्मस्थिता इव ॥ १८२ ॥
॥ एकादशभिः कुलकम् ॥

अच्युतेन्द्राज्ञया कुम्भांस्त्रिदशा आभियोगिकाः । हैमान् रूप्यमयान् रात्नान् हेमरूप्यमयानपि ॥१८३॥
हेमरत्नमयांश्चैव रूप्यरत्नमयानपि । हेमरूप्यरत्नान् भौमान् सहस्रं साष्टकं पृथक् ॥ १८४ ॥
भृङ्गारान् दर्पणांश्चापि सुप्रतिष्ठान् करण्डकान् । स्थालानि पात्रीश्चङ्गेरीर्विचक्रुस्तावतीरपि ॥ १८५ ॥
क्षीरोदादिसमुद्रेभ्योऽन्यतीर्थेभ्योऽपि वारि ते । मृत्स्नां पद्मादि चाऽऽनिन्युः शतमन्युमनोमुदे ॥१८६॥
हिमाद्रेरोषधीर्भद्रशालादेस्तुवरानपि । गन्धद्रव्यमन्यदपि तत्राऽऽनिन्युर्दिवौकसः ॥ १८७ ॥
गन्धद्रव्याणि सर्वाणि क्षिप्रं प्रक्षिप्य तानि ते । ततः सुरभयामासुस्तीर्थवारीणि भक्तितः ॥ १८८ ॥
अच्युतः पारिजातादिकुसुमाञ्जलिपूर्वकम् । स्वामिनं स्नपयामास तैः कुम्भैरमरार्पितैः ॥ १८९ ॥
चारुवाद्य-गीत-नृत्तप्रवृत्तमुदितामरम् । अजनि स्वामिनः स्नात्रमच्युतेन्द्रविनिर्मितम् ॥ १९० ॥
दिव्याङ्गराग-पूजादि भक्त्या जिनपतेर्व्यधात् । स आरणाऽच्युतपतिर्ववन्दे च यथाविधि ॥ १९१ ॥
इन्द्रा द्वाषष्टिरन्येऽपि शक्रवर्जं तथा व्यधुः । जगत्पवित्रीकरणं स्नात्रं त्रिभुवनेशितुः ॥ १९२ ॥
भूत्वाऽथ पञ्चधेशान एकोऽङ्के नाथमग्रहीत् । अन्यश्छत्रं चामरे द्वावन्योऽग्रेऽस्थाच्च शक्रवत् ॥१९३॥
शक्रः प्रभोश्चतसृषु दिक्षूक्ष्णः स्फाटिकानथ । उत्तुङ्गशृङ्गांश्चतुरो भक्त्यैकचतुरोऽकरोत् ॥ १९४ ॥
तेषां शृङ्गेभ्य उत्पेतुर्वारिधारा मनोरमाः । मूले भिन्नाः प्रान्ते मिश्राः पेतुश्च स्वामिमूर्धनि ॥ १९५ ॥

---

१ जानुयुगं करयुगं उत्तमाङ्गं चेति पञ्चाङ्गम् । २ प्रतिबिम्बम् । ३ अप्रतिहतम् । * समाऽऽज° संङ्ग० ॥ ४ भाषायां 'पडोश' । † संङ्ग० पुस्तकं विनाऽन्यत्र नास्ति ॥ ५ मृण्मयान् । ६ लघुपात्राणि । ७ पुष्पपात्राणि, भाषायाम् 'चङ्गेरी' । ८ मृत्तिकाम् । ‡ °त्स्ना-प° मो० ॥ ९ इन्द्रः । १० देवाः ११ अच्युतेन्द्रः । § °वर्जास्तथा संङ्ग० ॥ १२ बलिवर्दान् । १३ भक्त्या-मेक एव चतुरः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकरोदित्थमन्येन्द्रकृतस्नात्रविलक्षणम् । स्नात्रं सौधर्मकल्पेन्द्रो जिनेन्द्रस्यातिभक्तितः ॥ १९६ ॥
उक्ष्णस्तानुपसंहृत्य चर्चा[1]-ऽर्चादि जगद्गुरोः । चक्रे शक्रः सप्रमोदं प्रणम्यैवमथाऽस्तवीत् ॥ १९७ ॥
नमो भगवते तुभ्यं विश्वनाथाय तायिने[2] । तृतीयतीर्थनाथाय सनाथाय[3] महर्द्धिभिः ॥ १९८ ॥
ज्ञानैस्त्रिभिश्चतुर्भिश्चातिशयैः सहजन्मभिः । जगद्विलक्षणोऽस्यष्टसहस्रस्फुटलक्षणः ॥ १९९ ॥
सदैव हि प्रमत्तानां प्रमादच्छेदकारणम् । इदं त्वज्जन्मकल्याणं कल्याणायाऽद्य मादृशाम् ॥ २०० ॥
सकलाऽपि श्लाघनीया यामिनीयं जगत्पते! । अकलङ्कस्तनुर्यस्यामुदगास्त्वं सुधाकरः ॥ २०१ ॥
अमर्त्यलोकवन्[4]मर्त्यलोकोऽप्यस्त्वधुना प्रभो! । देवैस्त्वद्वन्दनाहेतोरेहिरेयाहिरापरैः[5] ॥ २०२ ॥
देव! त्वद्दर्शनसुधास्वादसन्तुष्टचेतसाम् । पर्याप्तं जीर्णसुधयाऽतः परेण सुधान्धसाम्[6] ॥ २०३ ॥
भगवन्! भरतक्षेत्रसरोवरसरोरुह! । भूयान्मधुव्रत[7]स्येव त्वयि मे परमो लयः ॥ २०४ ॥
मानवा अपि ते धन्या ये त्वां पश्यन्ति नित्यशः । त्वद्दर्शनोत्सवोऽधीश! स्वाराज्या[8]दतिरिच्यते ॥ २०५ ॥
स्तुत्वैवं पञ्चधा भूत्वेशानात् स्वामिनमाददे । मूर्त्यैकया परांभिश्च[9] प्राग्वत् कर्माणि सोऽकरोत् ॥ २०६ ॥
सेनादेव्याः क्षणात् पार्श्वे वस्त्रा-ऽलङ्कारभूषितम् । मुमोच प्रभुमुल्लोचे[10]ऽबध्नाच्छ्रीदामगण्डकम्[11] ॥ २०७ ॥
कुण्डले च दुकूले च प्रभोरुच्छीर्षके[12]ऽमुचत् । तामपस्वापनीमर्हत्प्रतिबिम्बं च सोऽहरत् ॥ २०८ ॥
अथाऽऽभियोगिकान् देवान् दिवस्पति[13]रघोषयत् । कल्पवासिषु देवेषु भवनाधिपतिष्वपि ॥ २०९ ॥
व्यन्तरेषु ज्योतिष्केषु प्रभोर्देव्याश्च योऽशुभम् । चिन्तयिष्यति तन्मूर्धा[14] सप्तधैव स्फुटिष्यति ॥२१०॥युग्मम्
सोऽथ सङ्क्रमयामासाङ्गुष्ठे भर्तुः सुधारसम् । अर्हन्तोऽस्तन्धया[15] यस्मात् क्षुधि स्वाङ्गुष्ठपायिनः ॥ २११ ॥
सर्वाणि धात्रीकर्माणि† सदा कारयितुं विभोः । समादिदेशाऽप्सरसः पञ्च धात्रीः सुरेश्वरः ॥ २१२ ॥
एवमासूत्र्य सूत्रामा[16] नत्वाऽर्हन्तं ततो ययौ । मेरुतः पुनरन्येन्द्राः द्वीपं नन्दीश्वराभिधम् ॥ २१३ ॥
शाश्वतार्हत्प्रतिमानां तत्र चाऽष्टाह्निकोत्सवम् । कृत्वा निजनिजस्थानं ययुः सर्वे सुरा-ऽसुराः ॥ २१४ ॥
प्रातर्जितारिणा राज्ञा पुत्रीभूयमुपेयुषः[17] । अर्हतो जगदर्हस्य चक्रे जन्मोत्सवो महान् ॥ २१५ ॥
गृहे गृहे पथि पथि विपणौ विपणावपि । पुर्यां तत्रोत्सवो जज्ञे सर्वस्यां राजवेश्मवत् ॥ २१६ ॥
यद्गर्भस्थेऽत्र सम्भूतं धान्यं [18]शं चाऽभवत्ततः । सम्भवः शम्भवश्चेति पिता नाम विभोर्व्यधात् ॥२१७॥
मुहुर्मुहुरुदैक्षिष्ट[19] बालरूपं जगत्पतिम् । सुधामग्नमिवाऽऽत्मानं मन्यमानो महीपतिः ॥ २१८ ॥
भूपतिर्धारयामासोत्सङ्गे हृदि शिरस्यपि । प्रकृष्टमिव माणिक्यं प्रभुं तत्स्पर्शलालसः ॥ २१९ ॥
धात्र्यः शक्रकृताः पञ्च ताः प्रपञ्चितभक्तयः[20] । कदाऽपि देहच्छायावत् पार्श्वं न मुमुचुः प्रभोः ॥२२०॥
स धात्रीं खेदयामासाङ्कादुत्तीर्य परिभ्रमन् । अपेतसाध्वसः[21] सिंहीमिव सिंहकिशोरकः ॥ २२१ ॥
रत्नाश्मभूमिसङ्क्रान्ते[22] चन्द्रे स ज्ञानवानपि । करं चिक्षेप लोकस्य दर्शयन् बालचापलम् ॥ २२२ ॥
आगतैः सवयोभूय[23] मर्त्यरूपधरैः सुरैः । सहाऽक्रीडत् प्रभुः कोऽन्यस्तत्क्रीडायामपि क्षमः? ॥ २२३ ॥
क्रीडया धावतो भर्तुर्वेलद्ग्रीवा दिवौकसः । प्रतिकारा[24] इवेभस्य धावन्ति स्म पुरः पुरः ॥ २२४ ॥
लीलया पातितेष्वेषु रक्ष रक्षेति वादिषु । तदापि विदधे स्वामी परिणामोचितां कृपाम् ॥ २२५ ॥
एवं विचित्रक्रीडाभिश्चित्रैः क्रीडनकैश्च सः । शैशवं व्यतिचक्राम प्रदोषमिव चन्द्रमाः ॥ २२६ ॥

---

१ चर्चा विलेपनम्, अर्चा पूजनम् । २ रक्षणकर्त्रे । ३ युक्ताय । ४ स्वर्गलोकवत् । ५ 'रे आगच्छ रे गच्छ' इत्यादिभाषणतत्परैः । ६ देवानाम् । * °धुकरस्ये° संवृ० ॥ ७ भ्रमरस्येव । ८ स्वर्गसाम्राज्यात् । ९ अन्याभिः मूर्तिभिः । १० विताने । ११ पुष्पदामगुच्छकम् । १२ उपधाने, भाषायाम् 'ओशीकुं' । १३ इन्द्रः । १४ तन्मस्तकम् । १५ न मातुः स्तन्यपायिनः । † °णि कर्माणि सदा तदा कार° संवृ० ॥ १६ इन्द्रः । १७ पुत्र रूपतां प्राप्तस्य । १८ सुखम् । १९ दृष्टवान् । २० विस्तारितभक्तयः । २१ अपगतभयः । २२ रत्नोपलनिबद्धभूमिप्रतिबिम्बिते । २३ मित्राणि भूत्वा । २४ भटाः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्धन्वशतोत्तुङ्गः स्वर्णवर्णो जगद्गुरुः । बभासे कौतुकान्मेरुरिव पुंस्त्वमुपागतः ॥ २२७ ॥
छत्रवृत्तोन्नतोष्णीषः स्निग्ध-श्यामलकुन्तलः । अष्टमीन्दुललाटश्रीः कर्णविश्रान्तलोचनः ॥ २२८ ॥
स्कन्धावलम्बिश्रवणो वृषस्कन्धो महाभुजः । विशालभुजमध्यश्च सिंहोदरकृशोदरः ॥ २२९ ॥
करीन्द्रकरकल्पोरुरेणीजङ्घोऽल्पगुल्फकः । कूर्मपृष्ठोन्नत-समतलांह्रिः सरलाङ्गुलिः ॥ २३० ॥
असम्पृक्तोद्गतश्याम-मृदुल-स्निग्धरोमकः । पद्मामोदिमुखश्वासः सदा मालिन्यवर्जितः ॥ २३१ ॥
एवं निसर्गसर्वाङ्गसुभगोऽपि जगत्पतिः । पार्वणः शरदेवेन्दुर्यौवनेनाधिकं बभौ ॥ २३२ ॥
पितृभ्यामुत्सवात्तस्याऽपरेद्युः प्रार्थितः प्रभुः । परिणेतुं नृपकन्याः सुरकन्यासहोदराः ॥ २३३ ॥
जानन् भोगफलं कर्म पित्रोराज्ञां च पालयन् । कन्यानामुपयमनं सोऽनुमेने महामनाः ॥ २३४ ॥
राज्ञा जितारिणा साक्षाच्छक्रेण च समेयुषा । हाहा-हूहूप्रभृतिषु गायत्सु मधुरस्वरम् ॥ २३५ ॥
गन्धर्वेषु मृदङ्गादि गम्भीरं वादयत्सु च । रम्भा-तिलोत्तमाद्यासु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च ॥ २३६ ॥
धवलानुद्गृणन्तीषु कुलनारीषु चोच्चकैः । कारितः सम्भवस्वामी कन्योद्वाहमहोत्सवम् ॥ २३७ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

नन्दनोद्यानकल्पासु कदाप्युद्यानवीथिषु । रत्नाद्रिशृङ्गतुल्येषु क्रीडाद्रिषु कदापि च ॥ २३८ ॥
सुधाकुण्डसदृक्षासु कदाचित् केलिवापिषु । कदाचिच्चित्रशालासु द्युविमानसनाभिषु ॥ २३९ ॥
वैदग्ध्यरमणीयाभी रमणीभिः सहस्रशः । रेमे श्रीसम्भवस्वामी करिणीभिरिव द्विपः ॥ २४० ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

भुञ्जानो विविधान् भोगान् कौमारे परमेश्वरः । गमयामास पूर्वाणां लक्षाणि दश पञ्च च ॥ २४१ ॥
राजाऽथ भवनिर्विण्णः सम्भवस्वामिनं तदा । उपरुध्य न्यधाद् राज्येऽङ्गुलीये वररत्नवत् ॥ २४२ ॥
सद्गुरोः पादपद्मान्ते जितारिनृपतिः स्वयम् । उपादाय परिव्रज्यां निजमर्थमसाधयत् ॥ २४३ ॥
तातोपरोधादादाय राज्यं प्राज्यपराक्रमः । ररक्ष सम्भवस्वामी पृथिवीं पुष्पदामवत् ॥ २४४ ॥
निरीतयो निरातङ्काः पुरुषायुषजीविताः । सम्भवस्वामिनो राज्ये प्रभावादभवन् प्रजाः ॥ २४५ ॥
न कस्याप्युपरि स्वामी भ्रुवमप्यध्यरोपयत् । चापारोपणवार्त्ताया अवकाशोऽपि कीदृशः? ॥ २४६ ॥
भोग्यं कर्म क्षिपन् राज्ये सपूर्वाङ्गचतुष्टयम् । चतुश्चत्वारिंशत्पूर्वलक्षीं स्वाम्यत्यवाहयत् ॥ २४७ ॥
ज्ञानत्रयपरीतात्मा स्वयम्बुद्धो जगत्प्रभुः । तदा च चिन्तयामास संसारस्थितिमीदृशीम् ॥ २४८ ॥
संसारे विषयास्वादसुखं सविषभोज्यवत् । आपातमात्रमधुरं परिणामे त्वनर्थदम् ॥ २४९ ॥
असिन्नसारे संसारे कथञ्चिद्धि शरीरिभिः । अवाप्यते मानुषत्वमूषरे स्वादुवारिवत् ॥ २५० ॥
मानुषत्वमवाप्याऽपि मूढैर्विषयसेवया । मुधा निर्गम्यते पादशौचेनेव सुधारसः ॥ २५१ ॥
इति चिन्तयतो भर्तुरेयुर्लोकान्तिकामराः । नत्वा व्यज्ञपयंश्चैव स्वामिंस्तीर्थं प्रवर्त्तय ॥ २५२ ॥
गतेषु तेषु देवेषु दीक्षादानोत्सवोत्सुकः । सांवत्सरिकमारेभे दानं दातुं जगत्पतिः ॥ २५३ ॥
देवाश्च जृम्भकाः शक्रादिष्टवैश्रवणेरिताः । क्षीणस्वामीनि निर्नष्टसेतून्यद्रिगतानि च ॥ २५४ ॥

१ उन्नतमस्तकशिखः । २ दीर्घलोचन इत्यर्थः । ३ अल्पौ गुल्फौ घुटिके यस्य । ४ स्वभावसर्वाङ्ग-। ५ पूर्णिमाचन्द्रो यथा शरदृतुना तथा । * °तृभ्यां परया प्रीत्याऽपरे° संवृ० ॥ ६ समाना इत्यर्थः । ७ विवाहम् । ८ समागतेन । ९ भाषायां 'घोळ' । १० गायन्तीषु । ११ उद्यानराजिषु । १२ देवविमानसदृशासु । १३ चातुर्येण रमणीया-। १४ षट्पंचाशत्सहस्राधिक-ससतिलक्षकोटिवर्षात्मकः कालविशेषः पूर्वम् । १५ मुद्रिकायाम् । १६ अङ्गीकृत्य । १७ पितुराग्रहात् । १८ अतिप्रौढपराक्रमवान् । १९ अतिवृष्टि-अनावृष्टिप्रमुख-ईतिरहिताः । २० रोगरहिताः । २१ चतुरशीतिलक्षवर्षपरिमितं पूर्वाङ्गम् । २२ शुद्धात्मा । २३ आरम्भ एव मधुरम् । २४ क्षारभूमौ । २५ वार्षिकम् ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

श्मशानस्थानवर्तीनि निगूढानि गृहान्तरे । चिरभ्रष्टानि नष्टानि स्वर्णादीनि धनान्यथ ॥ २५५ ॥
आनीय पुर्यां श्रावस्त्यां चत्वरेषु[1] त्रिकेषु[2] च । अन्येष्वपि प्रदेशेषु राशींश्चक्रुर्गिरीन्द्रवत् ॥ २५६ ॥
यो येनाऽर्थी स तद् द्रव्यं स्वैरमर्थयतामिति । आयुक्तैर्[3]घोषणामुच्चैः श्रावस्त्यां स्वाम्यकारयत् ॥२५७॥
स्वामी कोटिं साष्टलक्षां हाटकस्या[4]ऽन्वहं ददौ । अर्थिनस्तावतोऽर्थस्य भवन्ति ददतोऽर्हतः ॥ २५८ ॥
कोटीशतत्रयं स्वर्णस्याऽष्टाशीतिश्च कोटयः । लक्षाशीतिश्च ददिरे स्वामिना वत्सरेण तु ॥ २५९ ॥
सांवत्सरिकदानान्ते वासवाश्[5]चलितासनाः । सान्तःपुरपरीवाराः स्वामिवेश्म समाययुः ॥ २६० ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य स्वामिवेश्म विमानतः । अवतेरुश्चास्पृशन्तः पृथिवीं चतुरङ्गुलम् ॥ २६१ ॥
धुंसनाथा जगन्नाथमथो विनयशालिनः । सर्वे प्रदक्षिणीचक्रुर्नमश्चक्रुश्च भक्तितः ॥ २६२ ॥
जन्माभिषेकवद् भर्तुरभिषेकमथाऽच्युतः । आभियोग्याहृतैस्[6]तीर्थाम्भस्कुम्भैर्विधिवद् व्यधात् ॥ २६३ ॥
क्रमेण तद्वदन्येऽपि विदधुर्विबुधाधिपाः । दीक्षाकल्याणकस्नात्रं भक्तिकल्या[7] जगत्पतेः ॥ २६४ ॥
सुरा-ऽसुरेन्द्रवद् भक्त्या नरेन्द्रा अपि तत्क्षणम् । सम्भवस्वामिनश्चक्रुः पवित्रैः स्नात्रमम्बुभिः ॥२६५॥
वपुर्देवाधिदेवस्य देवदूष्यैर्दिवौकसः । ममृजुः स्नानतोयार्द्रमादर्शमिव काञ्चनम् ॥ २६६ ॥
गोशीर्षचन्दनेनाऽथ नाथं विलिलिपुः सुराः । दिव्यानि च दुकूलानि भक्तितः पर्यधापयन् ॥ २६७ ॥
किरीटं[8] मूर्ध्नि सर्वस्वमिव वज्राकरावनेः । कुण्डले कर्णयोरभ्रमुक्तामणिमये इव ॥ २६८ ॥
कण्ठे हारं नीहाराद्रिभ्रश्यद्गङ्गानुहारकम्[9]* । केयूर-कङ्कणान् बाह्वोः सूर्यज्योतिर्मयानिव[10] ॥ २६९ ॥
कुण्डलीभूतनालाभान् कटकान् पादपद्मयोः । एवं निदधिरे देवा भूषणानि जगद्विभोः ॥ २७० ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

सिद्धार्थां नामतः सांहिपीठसिंहासनां[11] ततः । शिबिकां रचयाञ्चक्रुर्भूभुजः स्वामिनः कृते ॥ २७१ ॥
अच्युतेन्द्रोऽप्याभियोग्यैः शिबिकां तां व्यकारयत् । वैमानिकविमानानामधिदेवीमिवोच्चकैः ॥२७२॥
स्वयंकृतां तां शिबिकां नरेन्द्रशिबिकान्तरे । श्रीचन्दनेऽगरुमिवाऽच्युतेन्द्रोऽन्तरभावयत् ॥ २७३ ॥
अथाऽऽरुरोह भगवान् दत्तहस्तो बिडौजसा[12] । शिबिकायां तत्र सिंहासनं हंस इवाऽम्बुजम् ॥ २७४ ॥
आदौ तामुद्दधुर्मर्त्या†[13] रथ्या इव महारथम् । अनन्तरं दिविषदो घनवाता[14] इवावनिम् ॥ २७५ ॥
ध्वनत्सु तूर्यवर्येषु समन्ताद् वारिदेष्विव । गन्धर्वेषु च कुर्वत्सु गीतिं कर्णसुधोपमाम् ॥ २७६ ॥
चित्राङ्गहारकरणं[15] नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च । पठत्सु बन्दिवृन्देषु ब्रह्मसु ब्रह्मगेषु च ॥ २७७ ॥
आशंसन्तीषु माङ्गल्यं कुलवृद्धासु चोच्चकैः । धवलांश्च कुलस्त्रीषु गायन्तीषु मनोरमम् ॥ २७८ ॥
अग्रे पृष्ठे पार्श्वयोश्चाश्ववद् वल्गत्सु नाकिषु[16] । दृश्यमानः स्मेरनेत्रैर्[17]दर्श्यमानोऽङ्गुलीदलैः ॥ २७९ ॥
स्थाने स्थाने नागराणां प्रतीच्छन् मङ्गलानि च । पीयूषवृष्टिभिरिव दृग्भिरानन्दयन् जगत् ॥ २८० ॥
दोधूयमानचमरो[18] धृतच्छत्रश्च नाकिभिः । श्रावस्तीमध्यतः स्वामी सहस्राम्रवणं ययौ ॥ २८१ ॥
॥ षड्भिः कुलकम् ॥

तस्माच्च शिबिकारत्नात् पादपादिव बर्हिणः[19] । दीक्षां हारमिवाऽऽदित्सुरुत्ततार जगद्गुरुः ॥ २८२ ॥
मुमोच तत्र भगवान् माल्या-ऽलङ्करणादिकम् । इन्द्रन्यस्तं देवदूष्यं स्कन्धदेशे दधार च ॥ २८३ ॥

---

१ चतुष्पथेषु । २ मार्गत्रयसंयोगेषु । ३ सेवकजनैः । ४ सुवर्णस्य । ५ इन्द्राः । ६ आनीतैः । ७ भक्तिचतुराः । ८ मुकुटम् । ९ हिमगिरिपतद्गङ्गामनुकुर्वन्तम् । * °नुकार° संवृ० ॥ १० सूर्यकान्तमणिमयानिव । ११ पादपीठेन सहितं सिंहासनं यस्यां ताम् । १२ इन्द्रेण । † °मुद्दधु° सङ्घ० संल० ॥ १३ अश्वाः । १४ एतन्नामानो वायवः । १५ चित्राभिनयाङ्गमोटनयुक्तं यथा स्यात् तथा । १६ देवेषु । १७ विकसितचक्षुर्भिः । १८ अतिशयेन वीज्यमाने चामरे यस्य । १९ बर्हिणशब्दस्य प्रथमैकवचनम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्गशीर्षस्य राकायां[1] चन्द्रे मृगशिरःस्थिते । अह्नश्च पश्चिमे भागे कृतषष्ठतपास्ततः ॥ २८४ ॥
पञ्चभिर्मुष्टिभिर्मूर्ध्नो लीलयैव जगत्पतिः । उत्पाटयामास केशान् क्लेशान् पूर्वार्जितानिव ॥२८५॥ युग्मम् ॥
शक्रस्तान् स्वामिनः केशान् स्वकीयवसनाञ्चले[2] । शेषामिव प्रतीयेष क्षीरोदे चाक्षिपत् क्षणात् ॥ २८६ ॥
सुरा-ऽसुर-नृणामाशु तुमुलं[3] मुष्टिसंज्ञया । निषिषेध द्वाःस्थ इव क्षीरोदादेत्य वासवः ॥ २८७ ॥
सावद्यं[4] योगमखिलं प्रत्याख्यामीत्युदीरयन् । देवादिपर्षत्प्रत्यक्षं चारित्रं शिश्रिये प्रभुः ॥ २८८ ॥
मनःपर्ययमुत्पेदे ज्ञानं तुर्यं[5] प्रभोरथ । ज्ञानस्य केवलस्येव सत्यङ्कार उपस्थितः ॥ २८९ ॥
एकान्तदुःखदग्धानां प्रक्षिप्तानामिवानले । अपि नारकजन्तूनां तदा सुखमभूत् क्षणम् ॥ २९० ॥
उत्सृज्य तृणवद् राज्यं सहस्रं पृथिवीभुजः । सह त्रैलोक्यनाथेन दीक्षामाददिरे स्वयम् ॥ २९१ ॥
अथ शक्रो नमस्कृत्य भगवन्तं कृताञ्जलिः । स्तोतुमेवं समारेभे भक्तिनिर्भरया गिरा ॥ २९२ ॥

चतुर्ज्ञानधर! चतुर्यामधर्मप्रदर्शक[6]! । चतुर्गतिप्राणिगणप्रीतिदायिन्! जय प्रभो! ॥ २९३ ॥
धन्यास्त्रिजगन्नाथ! भरतक्षेत्रभूमयः । तीर्थेश! जङ्गमं तीर्थं यासु त्वं विहरिष्यसे ॥ २९४ ॥
अस्मिन् वससि संसारे संसारेण न लिप्यसे । पङ्कजं[7] पङ्कजमपि[8] याति पङ्किलतां[9] न हि ॥ २९५ ॥
तवाऽसिधारासोदर्यं[10] जयतीदं महाव्रतम् । कर्मपाशच्छेदनाय प्रभविष्णु[11] जगत्प्रभो! ॥ २९६ ॥
निर्ममोऽपि कृपालुस्त्वं निर्ग्रन्थो[12]ऽपि महर्द्धिकः । तेजस्व्यपि सदा सौम्यो धीरोऽपि भवकातरः[13] ॥२९७॥
नितान्तं पूजनीयः स नाकिनां[14] मानवोऽपि सन् । विहरन् कार्यसे येन पारणं विश्वतारण*! ॥ २९८ ॥
महोपकारजनकं स्वामिन्नविरतस्य[15] मे । औषधं व्याधितस्येव भवद्दर्शनमीदृशम् ॥ २९९ ॥
त्रिजगन्नाथ! नाथामि[16] त्वयि भूयान्मनो मम । अनुस्यूतमिवो[17]त्कीर्णमिव[18] श्लिष्टमिवाऽनिशम् ॥ ३०० ॥
इति स्तुत्वा प्रभुं शक्रोऽन्येऽपीन्द्रा अच्युतादयः । स्थानं निजनिजं जग्मुः स्मरन्तः प्रभुसन्निधिम् ॥३०१॥

द्वितीयस्मिन् दिने पुर्यां तस्यामेव जगत्पतिः । राज्ञः सुरेन्द्रदत्तस्य गृहेऽगात् पारणेच्छया ॥३०२॥
सोऽभ्युत्थाय जगन्नाथं नमस्कृत्य च भक्तितः । परमान्नमुपादाय गृह्यतामित्यभाषत ॥ ३०३ ॥
एषणीयं कल्पनीयं प्रासुकं[19] पायसं[20] च तत् । पाणिपात्रेण विश्वैकपात्रं प्रभुरुपाददे ॥ ३०४ ॥
कल्याणकारणं दातुः प्राणमात्रकधारणम् । चकार पारणं तेन स्वादाऽगर्द्धमनाः[21] प्रभुः ॥ ३०५ ॥
तदाऽभूद् दुन्दुभेर्नादो दिग्गजस्येव गर्जितम् । वसुधाराऽपतद् दिव्या दिवः शीर्णेव कण्ठिका ॥ ३०६ ॥
नन्दनस्येव सर्वस्वं पुष्पवृष्टिः पपात खात्[22] । गन्धाम्बुवृष्टिरभवद् दिग्दन्तिमदसोदरा ॥ ३०७ ॥
ऐकरश्मिधृतानीव[23] चेलान्युचि[24]क्षिपुः सुराः । अहो! दानं महादानं सुदानं चेति गीरभूत् ॥ ३०८ ॥
भगवान् पारयामास यत्र तत्र तदैव हि । सुरेन्द्रदत्तो विदधे पीठं स्वर्ण-मणीमयम् ॥ ३०९ ॥
त्रिसन्ध्यं पूजयामास तत् पीठं स्वामिपादवत् । सुरेन्द्रदत्तोऽसम्पूज्य बुभुजे जातुचिन्न हि ॥ ३१० ॥

स्थानात् ततश्च भगवान् ग्रामे द्रोणमुखे[25] पुरे । आकरे[26] कर्बटे[27] खेटे[28] मडम्बे[29] पत्तने[30] वने ॥ ३११ ॥
नवे नवेऽनवस्थानो[31] विविधाभिग्रहोद्यतः । द्वाविंशतिमनुद्विग्नः सहमानः परीषहान् ॥ ३१२ ॥

---

१ पूर्णिमायाम् । २ वस्त्रप्रान्तभागे । ३ कोलाहलम् । ४ हिंसा-असत्यप्रभृतिदोषरूपं सपापं व्यापारम् । ५ चतुर्थम् ६ चतुर्व्रतात्मकधर्मप्रदर्शक! । ७ कमलम् । ८ पङ्के जातमपि । ९ मलिनताम् । १० सदृशम् । ११ समर्थम् । १२ परिग्रहरहितः । १३ संसारभीरुः । १४ देवानाम् । * °रणम् सङ्घ० ॥ १५ व्रतप्रत्याख्यानरहितस्य । १६ याचे । १७ प्रोतम् । १८ खचितम् । १९ अचित्तम् । २० क्षीरान्नम् । २१ रसलोलुपतारहितचित्तः । २२ आकाशात् । २३ एकरज्जुबद्धानीव । २४ वस्त्राणि । २५ जलपथ-स्थलपथोपेतम् । २६ लोहाद्युत्पत्तिस्थानम् । २७ कुनगरम् । २८ धूलीप्राकारम्, अथवा "खेटः पुरार्धविस्तरः" अभिधान-चिन्ता० काण्ड ४ श्लो० ३८ । २९ सर्वतो दूरवर्त्ति सन्निवेशान्तरम् । ३० विविधदेशागतपण्यस्थानम् । तच्च द्विधा—जलपत्तनं स्थलपत्तनं च । अथवा "रत्नभूमिः" इति व्याख्याप्रज्ञप्तिवृत्तौ श्रीअभयदेवसूरयः । ३१ नित्यविहरणशीलः । † °धमः संघु० मो० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

त्रिगुप्तिः पञ्चसमितिर्मौनभाग् निर्भयः स्थिरः । एकाग्रदृग् विजहार वत्सराणि चतुर्दश ॥ ३१३ ॥
तदानीं च सहस्राम्रवणे सालतरोस्तले । द्वितीयशुक्लध्यानस्थस्तस्थौ प्रतिमया प्रभुः ॥ ३१४ ॥
ध्यानान्तरे तिष्ठतश्च घातिकर्मचतुष्टयम् । सम्भवस्वामिनोऽत्रुट्यच्छाखिनः शुष्कपत्रवत् ॥ ३१५ ॥
ततश्च कार्तिके मासि पक्षे च धवलेतरे[1] । पञ्चम्यां च तिथौ शीतरश्मौ[2] मृगशिरःस्थिते ॥ ३१६ ॥
स्वामिनः कृतषष्ठस्योत्पेदे केवलमुज्ज्वलम्[3] । सद्-भावि-भूतवस्तूनां दर्शनप्रतिभूरिव[4] ॥ ३१७ ॥
परमाधार्मिककृत-क्षेत्रजा-ऽन्योऽन्यजन्मनः । दुःखस्यान्तात् क्षणं सौख्यं तदा निरयिणाम[5]भूत् ॥ ३१८ ॥
सुरा-ऽसुरेन्द्राः सर्वेऽपि तदानीं चलितासनाः । केवलज्ञानमहिम[6] कर्तुं तत्र समाययुः ॥ ३१९ ॥
ततः समवसरणकृते[7] क्ष्मामेकयोजनाम्[8] । ममृजुर्वायुकुमाराः सिषिचुश्च पयोमुचः[9] ॥ ३२० ॥
बबन्धुर्व्यन्तरास्तां च स्वर्ण-रत्ना-ऽश्मभिः शुभैः । पञ्चवर्णानि पुष्पाणि विकिरन्ति स्म तत्र च ॥ ३२१ ॥
श्वेतच्छत्र-ध्वज-स्तम्भ-मकरास्यादिभूषितान् । प्रत्याशं[10] चतुरस्तत्र तोरणांस्ते विचक्रिरे ॥ ३२२ ॥
रत्नपीठं विकृत्यान्तः परितस्तं विचक्रिरे । रौप्यं वप्रं भवनेशाः[11] सौवर्णकपिशीर्षकम् ॥ ३२३ ॥
ज्योतिष्का मध्यमं वप्रं सरत्नकपिशीर्षकम् । तापनीयं[12] विदधिरे भूवधूवलयोपमम् ॥ ३२४ ॥
अथ रत्नमयं वप्रं माणिक्यकपिशीर्षकम् । तत्रोपरितनं चक्रुर्विमानपतयोऽमराः ॥ ३२५ ॥
बभूव प्रतिवप्रं च गोपुराणां चतुष्टयम् । द्वितीयवप्रे चैशान्यां देवच्छन्दं व्यधुः सुराः ॥ ३२६ ॥
ऊर्द्ध्ववप्रान्तरावन्या मध्ये चैत्यतरुं व्यधुः । साष्टधन्वशतक्रोशद्वयोच्चं व्यन्तरास्ततः ॥ ३२७ ॥
तस्याऽधो मणिभिर्बद्धे पीठे ते च्छन्दकं व्यधुः । तन्मध्ये प्राक् सांह्रिपीठं रत्नसिंहासनं ततः ॥ ३२८ ॥
छन्दकोपरि चक्रुश्च ते च्छत्रत्रितयं शुभम् । दधाते पार्श्वयोर्यक्षौ चामरे चेन्दुपाण्डुरे ॥ ३२९ ॥
चक्रे समवसृत्यग्रे धर्मचक्रं च भासुरं । व्यन्तरैर्धर्मचक्रित्वसूचकं परमेशितुः ॥ ३३० ॥
सुरैः सञ्चार्यमाणेषु सौवर्णेष्वम्बुजन्मसु[13] । नवस्वारोपयन् पादौ सुरकोटीभिरावृतः ॥ ३३१ ॥
प्रातः समवसरणं पूर्वद्वारा[14]ऽविशद् विभुः । त्रिः प्रदक्षिणयामास तत्र तं चैत्यपादपम् ॥३३२॥
नमस्तीर्थायेति जल्पंश्छन्दकान्तर्निवेशितम् । सिंहासनमथाऽध्यास्त प्राङ्मुखः परमेश्वरः ॥ ३३३ ॥
प्रभावात् स्वामिनः स्वामिप्रतिबिम्बानि चक्रिरे । रत्नसिंहासनस्थानि व्यन्तरा अन्यदिक्ष्वपि ॥ ३३४ ॥
शिरसः पश्चिमे भागेऽभवद् भामण्डलं प्रभोः । इन्द्रध्वजः पुरस्ताच्च दुन्दुभिश्चाऽध्वनद् दिवि ॥ ३३५ ॥
प्रविश्य प्राग्द्वाराऽर्हन्तं नत्वाऽऽग्नेय्यामुपाविशन् । साधवोऽथ वैमानिक्यः साध्व्यश्चोर्द्ध्वा* वितष्ठिरे ॥३३६॥
अपाग्द्वारा[15] प्रविश्याऽर्हत्पादान् नत्वा च नैर्ऋते । अतिष्ठन् भवनपति-ज्योतिष्क-व्यन्तरस्त्रियः ॥ ३३७ ॥
प्रत्यग्द्वारेण प्रविश्याऽर्हन्तं नत्वा मरुद्दिशि[16] । तस्थुः क्रमाद् भवनेश-ज्योतिष्क-व्यन्तराः सुराः ॥ ३३८ ॥
उदग्द्वारा प्रविश्याऽथ जिनं नत्वा क्रमेण तु । वैमानिका नरा नार्य ऐशान्यामवतस्थिरे ॥ ३३९ ॥
आद्यवप्रेऽवास्थितैवं श्रीमान् सङ्घश्चतुर्विधः । वप्रे द्वितीये तिर्यञ्चस्तृती . वाह ...न तु† ॥ ३४० ॥
अथ शक्रो नमस्कृत्य स्वामिनं रचिताञ्जलिः । इति प्रचक्रमे स्तोतुं [ ]चा भक्तिसनाथया[17] ॥ ३४१ ॥
अनाहूतसहायस्त्वं त्वमकारणवत्सलः । अनभ्यर्थितसाधुस्त्वं त्वमसम्ब.न्धबान्धवः ॥ ३४२ ॥
अनक्तस्निग्धमनसममृंजोज्ज्वलवाक्पथम्[18][19] । अधौतामलशीलं त्वां शरण्यं शरणं श्रये ॥ ३४३ ॥
अचण्डवीरव्रतिना शमिना समवर्त्तिना । त्वया काममकुट्यन्त कुटिलाः कर्मकण्टकाः ॥ ३४४ ॥

---

१ कृष्णे । २ चन्द्रे । ३ केवलज्ञानम् । ४ साक्षिभूतः । ५ नारकाणाम् । ६ महिमानम् । ७ समवसरणार्थम् । ८ पृथ्वीम् । ९ स्तनितकुमाराभिधानादेवा इत्यर्थः । १० प्रतिदिशम् । ११ भवनपतिदेवाः । १२ सुवर्णमयम् । १३ सुवर्णमयेषु कमलेषु । १४ पूर्वद्वारेण । * °श्चोर्द्ध्वमवस्थिताः संल० सङ्घ० ॥ १५ दक्षिणद्वारेण । १६ वायव्यां दिशि । † च सङ्घ० मो० ॥ १७ भक्तियुक्तया । ‡ °ध्वमध्वा° संघ० ॥ १८ अभ्यङ्गरहितमपि । १९ मार्जनरहितमपि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभवाय महेशायाऽगदाय नरकच्छिदे । अराजसाय ब्रह्मणे कस्मैचिद् भवते नमः ॥ ३४५ ॥
अनुक्षितफलोदग्रादनिर्पातगरीयसः । असङ्कल्पितकल्पद्रोस्त्वत्तः फलमवाप्नुयाम् ॥ ३४६ ॥
असङ्गस्य जिनेशस्य निर्ममस्य कृपात्मनः । मध्यस्थस्य जगत्त्रातुरनङ्कस्तेऽस्मि किङ्करः ॥ ३४७ ॥
अगोपिते रत्ननिधावधृते कल्पपादपे । अचिन्त्यचिन्तारत्ने च त्वय्यात्माऽयं मयाऽर्पितः ॥ ३४८ ॥
फलानुध्यानवन्ध्योऽहं फलमात्रतनुर्भवान् । प्रसीद यत्कृत्यविधौ किङ्कर्तव्यजडे मयि ॥ ३४९ ॥
स्तुत्वैवं विरते शक्रे विश्वस्योपचिकीर्षया । भगवान् सम्भवस्वामी विदधे देशनामिमाम् ॥३५०॥
अनित्यं सर्वमप्यस्मिन् संसारे वस्तु वस्तुतः । मुधा सुखलवेनाऽपि तत्र मूर्च्छा शरीरिणाम् ॥ ३५१ ॥
स्वतोऽन्यतश्च सर्वाभ्यो दिग्भ्यश्चाऽऽगच्छदापदः । कृतान्तदन्तयन्त्रस्थाः कष्टं जीवन्ति जन्तवः ॥ ३५२ ॥
वज्रसारेषु देहेषु यद्यास्कन्दत्यनित्यता । रम्भागर्भसगर्भेषु का कथा तर्हि देहिनाम्? ॥ ३५३ ॥
असारेषु शरीरेषु स्थेमानं यश्चिकीर्षति । जीर्ण-शीर्णपलालोत्थे चञ्चापुंसि करोतु सः ॥ ३५४ ॥
न मन्त्र-तन्त्र-भैषज्यकरणानि शरीरिणाम् । त्राणाय मरणव्याघ्रमुखकोटरवासिनाम् ॥ ३५५ ॥
प्रवर्द्धमानं पुरुषं प्रथमं ग्रसते जरा । ततः कृतान्तस्त्वरते धिगहो! जन्म देहिनाम् ॥ ३५६ ॥
यद्यात्मानं विजानीयात् कृतान्ते वशवर्तिनम् । को ग्रासमपि गृह्णीयात्? पापकर्मसु का कथा? ॥३५७॥
समुत्पद्य समुत्पद्य विपद्यन्तेऽप्सु बुद्बुदाः । यथा तथा क्षणेनैव शरीराणि शरीरिणाम् ॥ ३५८ ॥
आढ्यं निःस्वं नृपं रङ्कं ज्ञं मूर्खं सज्जनं खलम् । अविशेषेण संहर्तुं समवर्ती प्रवर्तते ॥ ३५९ ॥
न गुणेष्वस्य दाक्षिण्यं द्वेषो दोषेषु वाऽस्ति न । दावाग्निवदरण्यानीं विलुम्पत्यन्तको जनम् ॥ ३६० ॥
इदं तु मास्म शङ्कध्वं कुशास्त्रैरपि मोहिताः । कुतोऽप्युपायतः कायो निरपायो भवेदिति ॥ ३६१ ॥
ये मेरुं दण्डसात् कर्तुं पृथ्वीं वा छत्रसात् क्षमाः । तेऽपि त्रातुं स्वमन्यं वा न मृत्योः प्रभविष्णवः ॥ ३६२ ॥
आ कीटादा च देवेन्द्रात् प्रभावत्यन्तकशासने । अनुन्मत्तो न भाषेत कथञ्चित् कालवञ्चनाम् ॥ ३६३ ॥
पूर्वेषां चेत् क्वचित् कश्चिज्जीवन् दृश्येत कैश्चन । न्यायपथातीतमपि स्यात् तदा कालवञ्चनम् ॥ ३६४ ॥
अनित्यं यौवनमपि प्रतियन्तु मनीषिणः । बल-रूपापहारिण्या जरसा जर्जरीभवत् ॥ ३६५ ॥
यौवने कामिनीभिर्ये काम्यन्ते कामलीलया । निकामकृतथूत्कारं त्यज्यन्ते तेऽपि वार्द्धके ॥ ३६६ ॥
यदर्जितं बहुक्लेशैरभुक्त्वा यच्च पालितम् । तद् याति क्षणमात्रेण निधनं धनिनां धनम् ॥ ३६७ ॥
उपमानपदं किं स्यात् फेन-बुद्बुद-विद्युताम्? । धनस्य नश्यतोऽवश्यं पश्यतामपि तद्वताम् ॥ ३६८ ॥
समागमाः सापगमाः सुहृद्भिर्बन्धुभिर्जनैः । स्वस्य वाऽन्यस्य वा नाशे विकृतेऽप्रकृतेऽपि वा ॥ ३६९ ॥
ध्यायन्ननित्यतां नित्यं मृतं पुत्रं न शोचति । नित्यताग्रहमूढस्तु कुड्यभङ्गेऽपि रोदिति ॥ ३७० ॥
शरीर-यौवन-धन-बान्धवादि न केवलम् । अनित्यं किन्तु भुवनमप्येतत् सचराचरम् ॥ ३७१ ॥
इत्यनित्यं विदन् सर्वं शरीरी निष्परिग्रहः । नित्याय नित्यसौख्याय पदाय प्रयतेत तत् ॥ ३७२ ॥
श्रुत्वा तां देशनां भर्तुः पादपद्मान्तिके ततः । नरा नार्यश्च बहवो दीक्षामाददिरे तदा ॥ ३७३ ॥
तदा चारुप्रभृतीनां गणभृन्नामकर्मणाम् । स्वाम्युद्दिदेश त्रिपदीं स्थित्युत्पाद-व्ययात्मिकाम् ॥ ३७४ ॥
द्व्यग्रं शतं गणधरास्ते त्रिपद्यनुसारतः । असूत्रयन् द्वादशाङ्गीं सचतुर्दशपूर्विकाम् ॥ ३७५ ॥
उत्थायाऽऽदाय शक्रोपनीतं चूर्णं क्षिपन् प्रभुः । अनुयोग-गणानुज्ञे तेषां द्रव्यादिभिर्ददौ ॥ ३७६ ॥

१ संसारवर्जिताय । २ रजोगुणरहिताय । ३ जलसेकवर्जितोऽपि फलैः सम्भृतः तस्मात् ॥ ४ पत्राद्यगलनाद् गुरुतमः तस्मात् ॥ ५ त्रिशूलादिचिह्नरहितः । ६ आगच्छन्त्यः आपदः येषां ते आगच्छदापदो जन्तवः ॥ ७ रम्भा कदली, सगर्भैः समानः ॥ ८ पलालः बुसम्, 'भूसु' इति प्रसिद्धम् ॥ ९ चञ्चा तृणमयः पुरुषः, स च क्षेत्रे धान्यादिरक्षणार्थं लोकैः स्थाप्यते । 'चाडियो' इति प्रसिद्धम् ॥ १० बुद्बुदाः जलस्फोटाः, परपोटा इति प्रसिद्धम् ॥ ११ समवर्ती–समं सर्वैः सह वर्त्तते इत्येवं शीलः समवर्त्ती यमः यमराज इति यावत्॥ १२ विशालम् अरण्यम् अरण्यानी ॥ † °ञ्चनम् संबृ० मो० ॥ १३ जर्जरीभवत् वर्त्तमानकृदन्तम् । न जर्जरम् अजर्जरम्, अजर्जरं जर्जरं भवति इति जर्जरीभवत् ॥ १४ वृद्धस्य भावः वार्द्धकं–वृद्धत्वमिति ॥ ‡ °द्युताम् संबृ० सङ्घ० ॥ १५ कुड्यं भित्तिः ॥ १६ अनुयोगः शास्त्रवाचना ॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

वासान् सुरादयस्तेषु ध्वनद्दुन्दुभि चिक्षिपुः । स्वामिवाचं प्रतीच्छन्तस्तस्थुर्गणभृतश्च ते ॥ ३७७ ॥
दिव्यसिंहासनं भूयोऽप्यध्यास्य प्राङ्मुखः* प्रभुः । अनुशिष्टिमयीं तेषां विदधे धर्मदेशनाम् ॥ ३७८ ॥
पूर्णायामथ पौरुष्यां व्यस्राक्षीद् देशनां विभुः । शाल्याढकबली राजभवनादाजगाम च ॥ ३७९ ॥
क्षिप्तस्य तस्य खाद् भ्रश्यदर्धं देवैश्च्युतस्य तु । नृपैरर्धं जनैरर्धं विभज्य जगृहे मुदा ॥ ३८० ॥
अथोत्थायोत्तरद्वारा विनिर्गत्य जगद्गुरुः । देवच्छन्दे विशश्रामाऽश्रान्तोऽपि स्थितिरीदृशी ॥ ३८१ ॥
स्वाम्यङ्घ्रिपीठमध्यास्य चारुर्गणधराग्रणीः । स्वामिप्रभावाद् विदधे देशनां संशयच्छिदम् ॥ ३८२ ॥
द्वितीयस्यां स पौरुष्यां पूर्णायां देशनाविधेः । व्यरंसीत्[1] कालवेलायामागमाध्ययनादिव ॥ ३८३ ॥
ततश्च स्वामिनं नत्वा सुरा-ऽसुर-नृपादयः । स्वं स्वं स्थानं ययुः सर्वे मुदा वीतोत्सवा इव ॥ ३८४ ॥
तीर्थे तत्र समुत्पन्नस्त्रिमुखो नाम यक्षराट् । त्रिनेत्रस्त्रिमुखः श्यामः षड्बाहुर्बर्हिवाहनः ॥ ३८५ ॥
दक्षिणैर्नकुलधर-गदाभृदभयप्रदैः† । युतो वामैर्भुजैर्मातुलिङ्ग‡-नागा-ऽक्षसूत्रिभिः ॥ ३८६ ॥
तीर्थे तत्रैव चोत्पन्ना दुरितारिरभिख्यया । चतुर्भुजा गौरवर्णा मेषवाहनगामिनी ॥ ३८७ ॥
दक्षिणाभ्यां भुजाभ्यां तु वरदेनाऽक्षसूत्रिणा । वामाभ्यां शोभमाना तु फणिनाऽभयदेन च ॥ ३८८ ॥
त्रिमुखो दुरितारिश्च ततः शासनदेवते । सन्निधाने सदा भर्तुरभूतामात्मरक्षवत् ॥ ३८९ ॥
ततः स्थानात् प्रभुरपि साधुभिः परिवारितः । चतुस्त्रिंशदतिशयान्वितो व्यहरदन्यतः ॥ ३९० ॥
विभोर्विहरतोऽभूवन् द्वे लक्षे व्रतिनामथ । व्रतिनीनां तु षट्त्रिंशत् सहस्राणि त्रिलक्ष्यपि ॥ ३९१ ॥
सर्वपूर्वभृतां सार्धा शतानामेकविंशतिः । शतानि च षण्णवतिरवधिज्ञानशालिनाम् ॥ ३९२ ॥
तुर्यज्ञानिनां[2] द्वादश सहस्राः सार्धकं शतम् । सहस्राणि पञ्चदश केवलज्ञानिनां पुनः ॥ ३९३ ॥
वैक्रियलब्धिसहस्रा विंशतिर्द्विशतोनिता । द्वादशैव सहस्राणि वादलब्धिमतां पुनः ॥ ३९४ ॥
सहस्रैः सप्तभिन्यूना श्रावकाणां त्रिलक्ष्यथ । श्राविकाणां च षड्लक्षी सषट्त्रिंशत्सहस्रिका ॥ ३९५ ॥
आरभ्य केवलात् पूर्वलक्षं व्यहरत प्रभुः । चतुर्दशाब्द्या च चतुःपूर्वाङ्ग्या च विवर्जितम् ॥ ३९६ ॥
ज्ञात्वाऽऽत्मनो मोक्षकालं सर्वज्ञो भगवानथ । सम्मेतशैलशिखरं जगाम सपरिच्छदः ॥ ३९७ ॥
समं मुनिसहस्रेण तत्र च प्रत्यपद्यत । पादपोपगमं नामानशनं सम्भवप्रभुः ॥ ३९८ ॥
सुरा-ऽसुराणामधिपास्तदानीं सपरिच्छदाः । तत्रैत्य भक्तितस्तस्थुः सेवमाना जगत्प्रभुम् ॥ ३९९ ॥
मासान्ते सम्भवस्वामी सर्वयोगनिरोधिनीम् । शैलेशीं शैलनिष्कम्पः प्रपेदे ध्यानमन्तिमम् ॥ ४०० ॥
चैत्रस्य सितपञ्चम्यां विधौ मृगशिरःस्थिते । सिद्धानन्तचतुष्कोऽगादव्याबाधं पदं प्रभुः ॥ ४०१ ॥
सहस्रं मुनयस्तेऽपि स्वामिनोऽशा इवामलाः । तेनैव विधिना प्रापुस्तदैव परमं पदम् ॥ ४०२ ॥
पूर्वलक्षाः कुमारत्वे ययुः पञ्चदश प्रभोः । चतुश्चत्वारिंशद् राज्ये सपूर्वाङ्गचतुष्टयाः ॥ ४०३ ॥
प्रव्रज्यायां पूर्वलक्षं चतुष्पूर्वाङ्गवर्जितम् । इत्यायुः पूर्वलक्षाणि षष्टिः श्रीसम्भवप्रभोः ॥ ४०४ ॥
अजितस्वामिनिर्वाणात् कोटिलक्षेषु त्रिंशति । सागराणां गतेष्वासीन्निर्वाणं सम्भवप्रभोः ॥ ४०५ ॥

तत्राऽथ सम्भवजिनाधिपतेः शरीरसंस्कारमन्यदपि कर्म यथावदिन्द्राः ।
चक्रुर्विभज्य जगृहुश्च यथार्हमेते, दंष्ट्रा रदान् दिविषदः पुनरस्थिजातम् ॥ ४०६ ॥
स्वं स्वं स्थानं जग्मुरिन्द्राः सुराश्च, स्वाम्यस्थीनि स्थापयामासुरुच्चैः ।
अर्चाहेतोर्माणवस्तम्भमूर्ध्नि, तीर्थेशानामर्चनीयं न किं वा ? ॥ ४०७ ॥

॥ इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये
तृतीये पर्वणि श्रीसम्भवस्वामिचरितवर्णनो
नाम प्रथमः सर्गः ॥

* °ङ्मुखो विभुः सङ्घ० ॥ † °ढके ब° संद्व० ॥ ‡ °राद् वि° संद्व० ॥ १ व्यरंसीद् विरराम ॥ * § °ङ्गा-गदा-ऽक्ष° संल० मो० सङ्घ० ॥ २ तुर्यं चतुर्थं मनःपर्यायज्ञानम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीयः सर्गः ।

श्रीअभिनन्दनजिनचरितम् ।

गुणद्रुनन्दनं श्रीमत्संवरोर्वीशनन्दनम् । जगदानन्दनं वन्दे जिनेन्द्रमभिनन्दनम् ॥ १ ॥
तस्य प्रभोर्भव्यजैनमोहनिद्रादिवामुखम् । तत्त्वज्ञानसुधाकुम्भं वक्ष्ये चरितमुज्ज्वलम् ॥ २ ॥
अस्यैव जम्बूद्वीपस्य प्राग्विदेहेषु सुन्दरी । अस्ति श्रीमङ्गलकुलं विजयो मङ्गलावती ॥ ३ ॥
तस्यामस्ति समस्तानां रत्नानामाकरोऽब्धिवत् । वसुन्धराशिरोरत्नं पूरत्नं रत्नसञ्चया ॥ ४ ॥
तस्यामासीन्महाराजो राजराज इव श्रिया । महाबलो नाम बलान्महाबल इवाऽपरः ॥ ५ ॥
उत्साह-मन्त्र-प्रभुताशक्तिभिः स व्यभासत । गङ्गा-सिन्धु-रोहितांशानदीभिर्हिमवानिव ॥ ६ ॥
स उपायैश्चतुर्भिश्च द्विषद्वर्गविजित्वरैः । चकासामास दशनैरिव निर्जरकुञ्जरः ॥ ७ ॥
देवमर्हन्तमेवैकं साधुमेव गुरुं पुनः । धर्मं जिनोपज्ञमेवाऽऽतिष्ठते स स धीनिधिः ॥ ८ ॥
दान-शील-तपो-भावभेदाद् धर्मे चतुर्विधे । सोऽरंस्त महतां यस्मात् पुण्यं पुण्यानुबन्धकम् ॥ ९ ॥
स विवेकी भवोद्विग्नः सर्वत्रानित्यतां विदन् । नाऽतुष्यच्छ्रावकधर्मे देशमात्रविरामिणि ॥ १० ॥
ततो विमलसूरीणां पादान्ते दान्तपुङ्गवः । सोऽग्रहीत् सर्वविरतिं व्रतोच्चारणपूर्वकम् ॥ ११ ॥
दुर्जनैर्निन्द्यमानः सन् हृदये मुमुदे चिरम् । साधुभिः पूज्यमानस्तु प्रत्युत त्रपते स सः ॥ १२ ॥
न मनागप्युद्विविजे क्लिश्यमानोऽपि पापिभिः । महद्भिः पूज्यमानोऽपि स नोत्सेकमशिश्रियत् ॥ १३ ॥
उद्यानादिषु रम्येषु नाऽरज्यद् विहरन्नसौ । सिंह-व्याघ्रादिघोरेषु नाऽरण्येषु व्यरज्यत ॥ १४ ॥
हेमन्ते हिमगहनाः क्षपयामास स क्षपाः । बहिः प्रतिमया तिष्ठन्नालानमिव निश्चलः ॥ १५ ॥
ग्रीष्मे सूर्योष्मभीष्मेऽपि कृतोत्सर्गः स आतपे । नाऽम्लायद् दिद्युते किन्तु वह्निशौचमिवांऽशुकम् ॥ १६ ॥
प्रावृषि क्ष्मारुहतले तस्थौ प्रतिमया च सः । मतङ्गज इव ध्याननिष्पन्दनयनद्वयः ॥ १७ ॥
तपांस्येकावली-रत्नावलीप्रभृतिकानि सः । सर्वाण्यनेकशोऽकार्षीदर्तस्मोऽर्थार्जनं यथा ॥ १८ ॥
विंशतेः स्थानकानां च मध्यात् कतिपयैरपि । स्थानकैरर्जयामास तीर्थकृन्नामकर्म सः ॥ १९ ॥
चिरं व्रतं पालयित्वा प्रपन्नानशनः स तु । मृत्वा विमाने विजये महर्द्धिरभवत् सुरः ॥ २० ॥
इतश्च जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य भरताभिधे । क्षेत्रेऽस्त्ययोध्येति पुरी पुरन्दरपुरीसमा ॥ २१ ॥
प्रतिवेश्म मणिस्तम्भसङ्क्रान्तो रजनीकरः । तत्र स्थावरशृङ्गारादर्शलक्ष्मीं प्रपद्यते ॥ २२ ॥
तत्र क्रीडामयूरीभिराकृष्याऽऽकृष्य लम्बितैः । हारैः कल्पद्रुमायन्ते गृहाणामङ्गणद्रुमाः ॥ २३ ॥
चन्द्रकान्ताश्मनिःस्यन्दैस्तत्रोच्चैश्चैत्यपङ्क्तयः । उदारनिर्झरोद्गारगिरिलीलां वितन्वते ॥ २४ ॥

---

* °जन्तुमो° संवृ० ॥ १ दिवामुखं प्रातःकालः ॥ २ पूर्षु–नगरेषु रत्नं पूरत्नम् ॥ † °नः । अकर्तृकं जगदिवाति° संवृ० मो० ॥ ३ आतिष्ठते प्रतिजानीते, तदेव सत्यमिति प्रतिज्ञां करोति ॥ ४ अरंस्त रतिं चकार ॥ ५ त्रपते लज्जते ॥ ६ उत्सेकं गर्वम् ॥ ७ अरज्यद् रागं चकार॥ ८ व्यरज्यत विरागं चकार॥ ९ प्रतिमया विशिष्टध्यानधारणरूपया क्रियया ॥ १० आलानं हस्तिबन्धनस्तम्भः ॥ ११ कृतोत्सर्गः कृतकायोत्सर्गःध्यानप्रवृत्तये कृतनिश्चलकायः॥ * °पे । धाम्ना यद् संवृ० ॥ १२ वह्निशौचम् अग्नितापेन पवित्रम् । यथा अंशुकं वस्त्रं वह्निजन्यउष्णोदकेन अधिकं द्योतते स्म तथा अयमपि ध्यानस्थितः महाबल श्रमणः ग्रीष्मतापेन न म्लायति स्म किन्तु द्योतते स्म ॥ १३ एकावली-रत्नावलीशब्दौ तपोविशेषवाचकौ । अनयोश्च वृत्तान्तं तपोरत्नमहोदधिनामकग्रन्थतो बोध्यम् ॥ १४ स्थावरः स्थिरः । तत्र मणिस्तम्भसङ्क्रान्तः चन्द्रः स्थिरदर्पण इव जातः इति भावः ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

चैत्याग्रे रत्नबद्धोर्व्यस्तत्र सङ्क्रान्ततारकाः । विभान्ति देवतामुक्तकुसुमाञ्जलिविभ्रमाः[1] ॥ २५ ॥
तत्र खेलायमानाढ्यललना गृहदीर्घिकाः । निर्यदप्सरसो[2*] लक्ष्मीं हरन्ति क्षीरनीरधेः ॥ २६ ॥
तत्र चाऽऽकण्ठमग्नानां गौराङ्गीणां मुखैः क्षणम् । कनकाम्भोजमालिन्यो राजन्ते गृहदीर्घिकाः ॥ २७ ॥
उद्यानैर्विपुलैस्तत्र श्यामायन्ते बहिर्भुवः । अधित्यका[3] भुव इव गिरेर्वारिधरैर्नवैः ॥ २८ ॥
वप्रो वलयितस्[4]तत्र महादीर्घिकया भृशम् । द्युसदीर्घिकयेवा[5]ऽष्टापदशैलो विराजते ॥ २९ ॥
तत्राऽनुवेश्म दातारो दिवि कल्पद्रुमा इव । सर्वदा सुलभा एव दुर्लभाः पुनरर्थिनः ॥ ३० ॥
बभूव तस्यामिक्ष्वाकुकुलक्षीरोदचन्द्रमाः । नृपतिः संवरो नाम सर्वारिश्रीस्वयंवरः[6] ॥ ३१ ॥
तस्याऽऽज्ञासाधिताशेषभूतलस्यैकभूभुजः । द्रविणं कृपणस्येव न कोशान्[7]निर्ययावसिः ॥ ३२ ॥
महाभुजेन तेनोग्रप्रतापप्रभविष्णुना । एकच्छत्रा मही चक्रे द्यौरिवैकनिशाकरा ॥ ३३ ॥
स दृढं वसुधां दध्रे दिग्यात्रा[8]यायिनोऽन्यथा । अस्य सेनाभरेणैषा विशीर्येत सहस्रशः ॥ ३४ ॥
दासीरिव समाकृष्य समाकृष्य दिगन्ततः । श्रियो निगडयामास[9] स गुणैश्चपला अपि ॥ ३५ ॥
स राज्ञामाहृतैर्दण्डैर्नोत्सेकं जातु शिश्रिये । सरिदम्भोभिरम्भोधिः किं माद्यति मनागपि? ॥ ३६ ॥
प्रसन्नचेताः सततमगृध्नुः सोऽप्रमद्वरः[10] । ईश्वरे च दरिद्रे च समो मुनिरिवाभवत् ॥ ३७ ॥
प्रजाः शशास धर्माय न पुनः सोऽर्थकाम्यया । द्विषोऽशिषत् प्रजात्राणकृते द्वेषधिया न तु ॥ ३८ ॥
एकतः सर्वकृत्यानि धर्मकृत्यमथैकतः । युगपद् धारयामास स तुलायामिवाऽऽत्मनि ॥ ३९ ॥
सिद्धार्था नाम शुद्धान्त[11]मण्डनं शुद्धवंशजा । सधर्मचारिणी तस्य बभूव गुणहारिणी ॥ ४० ॥
विलासमन्दया गत्या भृशं मधुरया गिरा । चकासामास सा राजहंसीव मधुराकृतिः ॥ ४१ ॥
तस्यां च पुण्यलावण्यनिम्नगायां मनोरमम् । वक्त्रनेत्रं पाणिपादं पद्मखण्डमिवाऽशुभत् ॥ ४२ ॥
इन्द्रनीलमयोवान्तर्विलोचनकुशेशयम्[12] । मुक्तामयीव दन्तेषु वैद्रुमीवौ[13]ष्ठपत्रयोः ॥ ४३ ॥
नखेषु शोणाश्ममयीवाङ्गे स्वर्णमयीव च । बभासे चारुसर्वाङ्गमपि रत्नमयीव सा ॥ ४४ ॥ युग्मम् ॥
नगरीणां विनीतेव विद्यानामिव रोहिणी[14] । मन्दाकिनी[15]व सरितां सा सतीनामभूद् धुरि ॥ ४५ ॥
नाऽकुप्यत् प्रणयेनाऽपि सा पत्ये यत् कुलस्त्रियः । पतिव्रतात्वे व्रतवदतीचारस्य[*] भीरवः ॥ ४६ ॥
तस्यामात्मानुरूपायां प्रेयस्यां प्रेम भूपतेः । अजायताऽविसंवादि नीलीरागसहोदरम् ॥ ४७ ॥
अबाधितौ मदस्थानैः सर्वैर्धर्माविबाधया । दम्पती बुभुजाते तौ तत् तद् वैषयिकं सुखम् ॥ ४८ ॥
इतो विमाने विजये त्रयस्त्रिंशतमर्णवान् । जीवो महाबलस्याऽऽयुः सुखमग्नोऽत्यवाहयत् ॥ ४९ ॥
वैशाखसितचतुर्थ्यामभीचिस्थे[16] निशाकरे । ततश्च्युत्वा स सिद्धार्थादेवीकुक्षाववातरत् ॥ ५० ॥
ज्ञानत्रयधरे तत्राऽवतीर्णे त्रिजगत्यपि । उद्योतोऽभूत् सुखं चाऽऽसीन्नारकप्राणिनामपि ॥ ५१ ॥
सुखसुप्ता तु सा देवी निशायाः प्रहरेऽन्तिमे । मुखे प्रविशतोऽद्राक्षीन्महास्वप्नांश्चतुर्दश ॥ ५२ ॥

---

१ विभ्रमः शोभा सौन्दर्यम् । २ निर्यन्त्यः निस्सरन्त्यः अप्सरसः यस्मात् स निर्यदप्सराः तस्मात् । क्षीरनीरधिविशेषणमिदम् ॥ * °रसो (सः) क्रीडां ह° संबृ० ॥ ३ अधित्यकाः पर्वतस्य ऊर्द्धभूमयः ॥ ४ वलयितः वर्तुलीभूतः ॥ ५ द्युसदीर्घिका देववापी ॥ ६ सर्वारीणां श्रियं स्वयं परानपेक्षया वृणोतीति सर्वारिश्रीस्वयंवरः ॥ ७ कोशः खड्गावरणम्, 'म्यान' इति प्रसिद्धम्, निधिश्च इति द्व्यर्थः ॥ ८ दिग्यात्रा विजययात्रा ॥ ९ निगडयामास बन्धनबद्धां चकार ॥ १० अप्रमद्वरः अल्पविषयकषायः ॥ ११ शुद्धान्तः अन्तःपुरम्, राजराज्ञीनिवासस्थानम्, 'रणवास' इति प्रसिद्धम् ॥ १२ कुशे जले शेते इति व्युत्पत्त्या कुशेशयं कमलम् ॥ १३ विद्रुमनिर्मिता वैद्रुमी । विद्रुमः 'परवाळां' इति प्रसिद्धम् ॥ १४ रोहिणीनाम्नी विद्याधिष्ठात्री देवता ॥ १५ मन्दाकिनी गङ्गा ॥ * °व्रतिचा° मुद्रिते ॥ १६ अभीचिनामके नक्षत्रे स्थिते निशाकरे ॥

श्वेतवर्णश्चतुर्दन्तः करी कुन्दद्युतिर्वृषः । व्यात्तवक्त्रो हरिर्लक्ष्मीरभिषेकमनोरमा ॥ ५३ ॥
पञ्चवर्णा च पुष्पस्रक् पूर्णश्च रजनीकरः । द्योतमानश्च मार्त्तण्डः किङ्किणीमालितो ध्वजः ॥५४॥
पूर्णकुम्भश्च सौवर्णः पद्मच्छन्नं महासरः । उत्तरङ्गः सरिन्नाथो विमानं च मनोरमम् ॥ ५५ ॥
रुचिरो रत्नपुञ्जश्च निर्धूमश्च विभावसुः । प्रबुद्धा स्वामिनी स्वप्नानेतान् राज्ञे शशंस च ॥ ५६ ॥
एभिः स्वप्नैस्तव देवि! भावी त्रिजगदीश्वरः । नूनं सूनुरिति स्वप्नान् पार्थिवोऽपि व्यचारयत् ॥ ५७ ॥
इन्द्रा अपि समेत्यैवं स्वप्नार्थं व्याचचक्षिरे । चतुर्थस्तीर्थनाथस्ते देवि! सूनुर्भविष्यति ॥ ५८ ॥
तं देव्यपि निशाशेषं जाग्रत्येवाऽत्यवाहयत् । निद्रा दूरं ययौ तस्या हर्षेणेवाऽपहस्तिता ॥ ५९ ॥
सिद्धार्थास्वामिनीकुक्षौ गर्भः सोऽथ दिने दिने । पद्मकोशे बीजकोश इव गूढमवर्धत ॥ ६० ॥
सिद्धार्था स्वामिनी गर्भं सुखेन तमधारयत् । तादृशानामवतारः सुखाय जगतोऽपि हि ॥ ६१ ॥
ततो नवसु मासेषु दिनेष्वर्धाष्टमेषु च । माघशुक्लद्वितीयायामभीचिस्थे क्षपाकरे ॥ ६२ ॥
सिद्धार्था स्वामिनी सूनुमनूनं तेजसा रवेः । सुखेन सुषुवे स्वर्णवर्णं प्लवगलाञ्छनम् ॥ ६३ ॥
लोकत्रयेऽपि युगपदुद्योतोऽभूत् तदा क्षणम् । क्षणं च सौख्यमुत्पेदे नारकप्राणिनामपि ॥ ६४ ॥
षट्पञ्चाशद् दिक्कुमार्यः स्वस्वस्थानादुपेत्य ताः । देव्याः सूनोश्च विदधुः सूतिकर्म यथोचितम् ॥ ६५ ॥
विज्ञायाऽऽसनकम्पेन शक्रोऽर्हज्जन्म तत् तदा । आययौ पालकारूढः स्वामिवेश्माऽमरैः सह ॥ ६६ ॥
शक्रो विमानादुत्तीर्य प्राविशत् स्वामिवेश्म तत् । तत्र च स्वामिनं स्वामिजननीं च नमोऽकरोत् ॥ ६७ ॥
दत्त्वाऽवस्वापनीं देव्याः पार्श्वे सौधर्मवासवः । निधायाऽर्हत्प्रतिच्छन्दं पञ्चरूपोऽभवत् स्वयम् ॥ ६८ ॥
एकः शक्रः प्रभुं दध्रेऽन्यश्छत्रं द्वौ च चामरे । कुलिशं नर्तयन्नन्यो नृत्यन्निव ययौ पुरः ॥ ६९ ॥
प्राप मेरावतिपाण्डुकम्बलां स क्षणाच्छिलाम् । तत्सिंहासनमध्यास्त शक्रोऽङ्कारोपितप्रभुः ॥ ७० ॥
तत्राऽच्युतादयोऽपीन्द्रास्त्रिषष्टिः सपरिच्छदाः । समेत्याऽस्नपयन् नाथमम्भस्कुम्भैर्यथाविधि ॥ ७१ ॥
पञ्चमूर्त्तीभूयेशानोऽप्यङ्के स्वामिनमादधे । एकश्छत्रं चामरे द्वौ शूलमन्यः पुरःसरः ॥ ७२ ॥
विचक्रे स्फाटिकानुक्ष्णश्चतुरो दिक्चतुष्टये । तच्छृङ्गोत्थैर्जलैः शक्रोऽस्नपयत् परमेश्वरम् ॥ ७३ ॥
प्रभुं विलिप्य सम्पूज्य वस्त्रालङ्करणादिना । उत्तार्याऽऽरात्रिकं चेत्थं शक्रः प्राञ्जलिरस्तवीत् ॥ ७४ ॥
स्वामिंश्चतुर्थतीर्थेश! चतुर्थारनभोरवे! । चतुर्थपुरुषार्थश्रीप्रकाशक! जय प्रभो! ॥ ७५ ॥
चिरं* नाथेन भवता सनाथमधुना जगत् । विवेकचौरैर्मोहाद्यैर्नैवोपद्रोष्यते क्वचित् ॥ ७६ ॥
पादपीठलुठन्मूर्ध्नि मयि पादरजस्तव । चिरं निविशतां† पुण्यपरमाणुकणोपमम् ॥ ७७ ॥
मद्दृशौ त्वन्मुखासक्ते हर्षबाष्पजलोर्मिभिः । अप्रेक्ष्यप्रेक्षणोद्भूतं क्षणात् क्षालयतां मलम् ॥ ७८ ॥
त्वत्पुरो लुठनैर्भूयान्मद्भालस्य तपस्विनः । कृतासेव्यप्रणामस्य प्रायश्चित्तं किणावलिः ॥ ७९ ॥
मम त्वद्दर्शनोद्भूताश्चिरं रोमाञ्चकण्टकाः । नुदन्तां चिरकालोत्थामसद्दर्शनवासनाम् ॥ ८० ॥
त्वद्वक्त्रकान्तिज्योत्स्नासु निपीतासु सुधास्विव । मदीयैर्लोचनाम्भोजैः प्राप्यतां निर्निमेषता ॥ ८१ ॥
त्वदास्यलासिनी नेत्रे त्वदुपास्तिकरौ करौ । त्वद्गुणश्रोतृणी श्रोत्रे भूयास्तां सर्वदा मम ॥ ८२ ॥
कुण्ठाऽपि यदि सोत्कण्ठा त्वद्गुणग्रहणं प्रति । ममैषा भारती तर्हि स्वस्त्येतस्यै किमन्यया? ॥ ८३ ॥
तव प्रेष्योऽस्मि दासोऽस्मि सेवकोऽस्म्यस्मि किङ्करः । ओमिति प्रतिपद्यस्व नाथ! नातः परं ब्रुवे ॥ ८४ ॥
स्तुत्वैवं पञ्चधाभूयेशानादादाय च प्रभुम् । प्राग्वच्छत्रादिभृच्छक्रः स्वामिवेश्म क्षणाद् ययौ ॥८५॥

---

१ मालितः शोभितः ॥ २ उत्तरङ्गः ऊर्ध्वतरङ्गः ॥ ३ विभावसुः अग्निः ॥ ४ जाग्रती निद्रारहिता ॥ ५ अपहस्तिता तिरस्कृता ॥ पञ्चरूपाणि कृत्वा । ७ उक्ष्णः बलीवर्दान् । * चिरं ना° संवु० ॥ † निवसतां संवु० ॥ ८ अप्रेक्ष्यप्रेक्षणम्–अदर्शनीयदर्शनम् । "रूढव्रणपदं किणः" । १० उपास्तिः–उपासना, करौ–कर्त्तारौ । ११ कर्णौ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्रापस्वापनीमर्हत्प्रतिबिम्बं च सोऽहरत् । देव्याः पार्श्वे च निदधे तया स्थित्वा जगत्पतिम् ॥ ८६ ॥
स्वामिहर्म्यात् ततः शक्रो मेरुतोऽन्ये तु वासवाः । पथा यथाऽऽगतेनैव स्वं स्वं लोकं ययुः क्षणात् ॥ ८७ ॥
राज्ञाऽपि विदधे प्रातः सूनुजन्मोत्सवो महान् । हर्षस्यैकातपत्रत्वजनकः सकले जने ॥ ८८ ॥
कुलं राज्यं पुरी चाऽत्राऽभ्यनन्दद् गर्भगे हि तत् । अभिनन्दन इत्यस्य पितरौ नाम चक्रतुः ॥ ८९ ॥
शक्रसङ्क्रमितसुधां स्वस्वादङ्गुष्ठकात् पिबन् । पाल्यमानो धुधात्रीभिः क्रमेण ववृधे प्रभुः ॥ ९० ॥
सुरा-ऽसुरकुमारैश्च चित्रक्रीडनपाणिभिः । विचित्रक्रीडया क्रीडन् बाल्यं स्वाम्यत्यवाहयत् ॥ ९१ ॥
उद्यानपादप इव वसन्तमिव यौवनम् । सर्वाङ्गशोभाजनकं प्राप स्वाम्यभिनन्दनः ॥ ९२ ॥
सार्धधन्वत्रिशत्युच्चो जानुलम्बिभुजो बभौ । सदोलाद्रुरिवाऽऽबद्धदोलायष्टिद्वयः श्रियः ॥ ९३ ॥
भालगण्डस्थलेनाऽर्धचन्द्रशोभाभिभाविना । मुखेन च बभौ स्वामी पूर्णेन्दुश्रीविडम्बिना ॥ ९४ ॥
स्वर्णशैलशिलोरस्कः पीनस्कन्धः कृशोदरः । एणीजङ्घो जगन्नाथः कूर्मोन्नतपदोऽशुभत् ॥ ९५ ॥
विषयेषु निरीहोऽपि भोग्यं कर्म निजं विदन् । पितृभ्यां प्रार्थितो राजपुत्रीः प्रभुरुपायत ॥ ९६ ॥
क्रीडोद्यान-सरो-वापी-शिलादिषु यदृच्छया । स रामाभिः समं रेमे ताराभिरिव चन्द्रमाः ॥ ९७ ॥
इत्थं च जन्मतः स्वामी सौख्यमग्नोऽहमिन्द्रवत् । पूर्वलक्षद्वादशकं गमयामास सार्धकम् ॥ ९८ ॥
अनुनीय न्यधाद् राज्येऽभिनन्दनविभुं ततः । स्वयं तु संवरनृपः प्रव्रज्याराज्यमाददे ॥ ९९ ॥
शशास लीलया स्वामी ग्राममेकमिवावनिम् । त्रिजगत्त्राणशौण्डस्य तस्योर्वीशासनं कियत्? ॥ १०० ॥
सार्धाः षट्त्रिंशतं पूर्वलक्षा अष्टाङ्गसंयुताः । निनाय राज्यं कुर्वाणो जगन्नाथोऽभिनन्दनः ॥ १०१ ॥
अथेयेष प्रभुर्दीक्षां ते च लोकान्तिकामराः । सचिवा इव भावज्ञा एत्य व्यज्ञपयन्निति ॥ १०२ ॥
अलं संसारवासेन नाथ! तीर्थं प्रवर्तय । संसारसिन्धुं येनाऽन्येऽप्युत्तरन्ति दुरुत्तरम् ॥ १०३ ॥
लोकान्तिकेषु देवेषु विज्ञपय्य गतेष्विति । प्रारेभे वार्षिकं दानं निर्निदानं जगत्पतिः ॥ १०४ ॥
स्वामिनो ददतो द्रव्यमानीयाऽऽनीय जृम्भकाः । शक्रादिष्टकुबेरेण प्रेरिताः पर्यपूरयन् ॥ १०५ ॥
सांवत्सरिकदानान्ते चतुःषष्ट्याऽपि वासवैः । दीक्षाभिषेको विदधे विधिवज्जगदीशितुः ॥ १०६ ॥
कृताङ्गराग आमुक्तदिव्यांशुकविभूषणः । आरोहच्छिबिकां नाथोऽर्थसिद्धां स्वार्थसिद्धये ॥ १०७ ॥
आदावुत्क्षिप्तया मर्त्यैरमर्त्यैस्तदनन्तरम् । तया शिबिकया नाथः सहस्राम्रवणं ययौ ॥ १०८ ॥
तत्र चोत्तीर्य तत्याज भगवान् भूषणादिकम् । तदंसदेशे निदधे देवदूष्यं च वासवः ॥ १०९ ॥
माघस्य शुक्लद्वादश्यामभीचौ पश्चिमेऽहनि । कृतषष्ठः प्रभुः केशानुदध्रे पञ्चमुष्टिना ॥ ११० ॥
शक्रः प्रतीष्य चिकुरानुत्तरीयाञ्चलेन तान् । क्षणेन गत्वा क्षीरोदेऽक्षिपद् भूयोऽपि चाऽऽगमत् ॥१११॥
सुरा-ऽसुर-नृणां शक्रस्तुमुलं निषिषेध च । प्रतिपेदे च चारित्रं स्वामी सामायिकं पठन् ॥ ११२ ॥
मनःपर्ययसंज्ञं च तुर्यं ज्ञानमभूद् विभोः । नारकाणामपि सुखं तदा क्षणमजायत ॥ ११३ ॥
त्यक्त्वाऽङ्गमलवद् राज्यं सहस्रं पृथिवीभुजः । जगृहुः स्वामिना सार्धं प्रव्रज्यां मोहशातनीम् ॥ ११४ ॥

---

१ अपस्वापनी नाम विशेषरूपा निद्रा, यया जनः प्रत्यक्षमपि न किमपि जानाति, मूर्छित इव भाति । * स्वं स्थानं य० सङ्घ० ॥ २ चित्राणि विविधानि क्रीडनानि रमणकानि पाणौ करे येषां तैः सह । रमणकं रमणसाधनम्, भाषायां 'रमकडुं' । ३ दोलासहितो वृक्षः सदोलाद्रुः । दोला हिन्दोलनकः, भाषायां 'हिंडोळो–हिंचको' । ४ निरीहः–आशातृष्णारहितः । ईहा नाम लोभः गृद्धिः आसक्तिः । ५ उपायत विवाहं चकार । ६ इयेष अभिलाषं चकार । ७ निर्निदानम् आशंसारहितम् । निदानं नाम आकाङ्क्षा आसक्तिः । ८ मुक्तं नाम शरीरे यथास्थानं योजितम् । आ समन्ताद् मुक्तं शरीरे धारितं-परिहितम् । ९ उत्क्षिप्ता धृता, भाषायां 'धरेली–वहन करेली' । १० तद्+अंस=तदंस, अंसो नाम स्कन्धः बाहुमूलम् । ११ दूष्यं वस्त्रम् । १२ उदध्रे उत्पाटयामास । १३ प्रतीष्य प्रतिगृह्य । १४ चिकुराः केशाः । १५ तुर्यं चतुर्थं मनःपर्यायज्ञानम् । १६ मोहशातनीं मोहनीयकर्मनाशनीम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुं नत्वा ततः शक्रोऽन्येऽपीन्द्राः सपरिच्छदाः । स्थानं निजनिजं जग्मुः प्रावृषि प्रोषिता इव ॥ ११५ ॥

द्वितीयेऽहन्ययोध्यायामिन्द्रदत्तस्य भूभुजः । सदने विदधे स्वामी परमान्नेन पारणम् ॥ ११६ ॥

वसुधारा पुष्पवृष्टिर्वृष्टिर्गन्धोदकस्य च । खे दुन्दुभिध्वनिश्चेलोत्क्षेपश्च विदधेऽमरैः ॥ ११७ ॥

अहो! दानमहो! दानं सुदानमिति चोच्चकैः । जुघुषे हर्षविवशैः सुरा-ऽसुर-नरैस्तदा ॥ ११८ ॥

ततोऽन्यत्र ययौ स्वामी स्थाने च स्वामिपादयोः । रत्नपीठं व्यधादिन्द्रदत्तोऽर्चितुमनाः सदा ॥ ११९ ॥

छद्मस्थो व्यहरत् स्वामी सहमानः परीषहान् । अष्टादश समा यावद् विविधाभिग्रहोद्यतः ॥ १२० ॥

विहरन्नन्यदा नाथः सहस्राम्रवणं ययौ । कृतषष्ठः प्रियालस्याऽधोऽस्थात् प्रतिमया ततः ॥ १२१ ॥

द्वितीयशुक्लध्यानान्ते घातिकर्मक्षये सति । पौषशुक्लचतुर्दश्यामभीचिस्थे निशाकरे ॥ १२२ ॥

अमलं केवलज्ञानमाविरासीज्जगत्पतेः । नारकाणामपि बाधानिषेधनमहौषधम् ॥ १२३ ॥

चतुःषष्टिरथैत्येन्द्रा विधिवद् विदधुः प्रभोः । उच्चैः समवसरणं देशे योजनमात्रके ॥ १२४ ॥

देवैः सञ्चार्यमाणेषु स्वर्णाब्जेषु क्रमौ दधत् । स्वामी समवसरणं प्रागृद्वारा प्राविशत् ततः ॥ १२५ ॥

स धनुर्द्विशतीकं तु गव्यूतद्वयमुच्छ्रितम् । तत्र प्रदक्षिणीचक्रे चैत्यवृक्षं जिनेश्वरः ॥ १२६ ॥

नमस्तीर्थायेति वदन् देवच्छन्दस्य मध्यतः । सिंहासनमलञ्चक्रे प्राङ्मुखः परमेश्वरः ॥ १२७ ॥

ततश्चतुर्विधः सङ्घः ससुरा-ऽसुर-मानुषः । सम्प्रविश्य यथाद्वारं यथास्थानमुपाविशत् ॥ १२८ ॥

भगवन्तं नमस्कृत्य शक्रो विरचिताञ्जलिः । रोमाञ्चितवपुः स्वामिस्तवनं प्रास्तवीदिति ॥ १२९ ॥

मनो-वचः-कायचेष्टाः कष्टाः संहृत्य सर्वथा । श्लथत्वेनैव भवता मनःशल्यं वियोजितम् ॥ १३० ॥

संयतानि न चाऽक्षाणि नैवोच्छृङ्खलितानि च । इति सम्यक्प्रतिपदा त्वयेन्द्रियजयः कृतः ॥ १३१ ॥

योगस्याऽष्टाङ्गता नूनं प्रपञ्चः कथमन्यथा । आबालभावतोऽप्येष तव सात्म्यमुपेयिवान् ? ॥ १३२ ॥

विषयेषु विरागस्ते चिरं सहचरेष्वपि । योगे सात्म्यमदृष्टेऽपि स्वामिन्निदमलौकिकम् ॥ १३३ ॥

तथा परे न रज्यन्त उपकारपरे परे । यथाऽपकारिणि भवानहो! सर्वमलौकिकम् ॥ १३४ ॥

हिंसका अप्युपकृता आश्रिता अप्युपेक्षिताः । इदं चित्रं चरित्रं ते के वा पर्यनुयुञ्जताम् ? ॥ १३५ ॥

तथा समाधौ परमे त्वयाऽऽत्मा विनिवेशितः । सुखी दुःख्यस्मि नास्मीति यथा न प्रतिपन्नवान् ॥ १३६ ॥

ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं त्रयमेकात्मतां गतम् । इति ते योगमाहात्म्यं कथं श्रद्धीयतां परैः ? ॥ १३७ ॥

स्तुत्वैवं विरते शक्रे स्वामी गम्भीरया गिरा । आयोजनविसर्पिण्या प्रारेभे देशनामिति ॥ १३८ ॥

संसारोऽयं विपत्खानिरस्मिन् निपततः सतः । पिता माता सुहृद् बन्धुरन्योऽपि शरणं नहि ॥ १३९ ॥

इन्द्रोपेन्द्रादयोऽप्यत्र यन्मृत्योर्यान्ति गोचरम् । अहो! तदन्तकातङ्के कः शरण्यः शरीरिणाम् ? ॥ १४० ॥

पितुर्मातुः स्वसुर्भ्रातुस्तनयानां च पश्यताम् । अत्राणो नीयते जन्तुः कर्मभिर्यमसद्मनि ॥ १४१ ॥

शोचन्ति स्वजनानन्तं नीयमानान् स्वकर्मभिः । नेष्यमाणं तु शोचन्ति नाऽऽत्मानं मूढबुद्धयः ॥ १४२ ॥

संसारे दुःखदावाग्निज्वलज्ज्वालाकरालिते । वने मृगार्भकस्येव शरणं नास्ति देहिनः ॥ १४३ ॥

अष्टाङ्गेनाऽऽयुर्वेदेन जीवातुभिरथाऽगदैः । मृत्युञ्जयादिभिर्मन्त्रैस्त्राणं नैवाऽस्ति मृत्युतः ॥ १४४ ॥

खड्गपञ्जरमध्यस्थश्चतुरङ्गचमूवृतः । रङ्कवत् कृष्यते राजा हठेन यमकिङ्करैः ॥ १४५ ॥

यथा मृत्युप्रतीकारं पशवो नैव जानते । विपश्चितोऽपि हि तथा धिक् प्रतीकारमूढताम् ॥ १४६ ॥

येऽसिमात्रोपकरणाः कुर्वते क्ष्मामकण्टकाम् । यमभ्रूभङ्गभीतास्तेऽप्यास्ये निदधतेऽङ्गुलीः ॥ १४७ ॥

---

१ प्रोषिताः प्रवासिनः । २ चेलं वस्त्रम्, उत्क्षेपः ऊर्ध्वतः क्षेपणम् । * °दानं महादानं संबृ० ॥ ३ जुघुषे उच्चैः घोषणा विहिता । † °वलं श्चा° संबृ० ॥ ४ आविः प्रकटम् आसीद् बभूव । ५ अथ अनन्तरम् एत्य आगत्य । ६ प्राग्द्वारा पूर्वदिशास्थितेन द्वारेण । ७ पर्यनुयुञ्जताम् आचरितुं शक्नुयुः । ८ विसर्पिणी प्रसरणशीला । ९ त्राणरहितः अशरणः निराधारः । १० जीवातुः जीवनौषधम् जीवनोपायः । ११ अगदो नाम औषधम् । गदो रोगः, तन्नाशकारी अगदः । * °स्ति देहिनः संल० ॥ १२ विपश्चितो विद्वांसः । ४ प्रतीकारः प्रत्युपायः दुःखहेतुनिराकरणम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनीनामप्यपापानामसिधारोपमैर्व्रतैः । न शक्यते कृतान्तस्य प्रतिकर्तुं कदाचन ॥ १४८ ॥
अशरण्यमहो! विश्वमराजकमनायकम् । यदेतदप्रतीकारं ग्रसते यमरक्षसा ॥ १४९ ॥
योऽपि धर्मप्रतीकारो न सोऽपि मरणं प्रति । शुभां गतिं ददानस्तु प्रतिकर्तेति कीर्त्यते ॥ १५० ॥
प्रव्रज्यालक्षणोपायमादायाक्षय्यशर्मणे । चतुर्थपुरुषार्थाय यतितव्यमहो! ततः ॥ १५१ ॥
तया देशनया प्रायो नरा नार्यः प्रवव्रजुः । गणेशा वज्रनाभाद्याः षोडशाग्रमभूच्छतम् ॥ १५२ ॥
अनुयोग-गणानुज्ञे तेषां दत्त्वा यथाविधि । अनुशिष्टिमयीं धर्मदेशनां विदधे प्रभुः ॥ १५३ ॥
जन्म-व्यय-ध्रौव्यमयीं स्वाम्येभ्यस्त्रिपदीं जगौ । जग्रन्थुर्द्वादशाङ्गीं ते तत्रिपद्यनुसारतः ॥ १५४ ॥
देशनां पूर्णपौरुष्यां व्यसृजत् स्वाम्यथो वलिम् । राजानीतं क्षिप्त्वाऽगृह्णन् देवा भूपा जनाः क्रमात् ॥ १५५ ॥
अथोत्तस्थौ जगन्नाथो मध्यवप्रमुपेत्य च । ईशानदिक्स्थि*ते देवच्छन्दके समुपाविशत् ॥ १५६ ॥
स्वाम्यङ्घ्रिपीठस्थो वज्रनाभो गणधरो व्यधात् । लोकैः केवलिवज्ज्ञातो देशनां श्रुतकेवली ॥ १५७ ॥
पूर्णद्वितीयपौरुष्यां व्यसृजत् सोऽपि देशनाम् । नत्वाऽर्हन्तं ययुः स्वं स्वं स्थानं सर्वे सुरादयः ॥ १५८ ॥
तीर्थे यक्षेश्वरस्तत्र श्यामो द्विरदवाहनः । दोर्दण्डौ दक्षिणौ बिभ्रन्मातुलिङ्ग-ऽक्षसूत्रिणौ ॥ १५९ ॥
वामौ च धारयन् बाहू नकुला-ऽङ्कुशधारिणौ । सदा सन्निहिता भर्तुरभूच्छासनदेवता ॥१६०॥ युग्मम् ॥
कालिका च तथोत्पन्ना श्यामवर्णा-ऽम्बुजासना । दक्षिणौ धारयन्ती तु भुजौ वरद-पाशिनौ ॥ १६१ ॥
नागा-ऽङ्कुशधरौ बाहू दधाना दक्षिणेतरौ । पारिपार्श्विक्यभून्नित्यं भर्तुः शासनदेवता ॥१६२॥ युग्मम् ॥
ततः स्वाम्यप्यतिशयैश्चतुस्त्रिंशद्भिरन्वितः । व्यहरद् बोधयन् जन्तून् ग्रामा-ऽऽकर-पुरादिषु ॥१६३॥
साधुत्रिलक्षी साध्वीषड्लक्षी त्रिंशत्सहस्रयुक् । शतानि चाऽष्टनवतिरवधिज्ञानशालिनाम् ॥ १६४ ॥
सहस्रं पूर्विणां सार्धं मनःपर्ययिणां पुनः । एकादश सहस्राणि सपञ्चाशच्च षट्शती ॥ १६५ ॥
चतुर्दश सहस्राणि केवलज्ञानधारिणाम् । सहस्रा वैक्रियलब्धिमतामेकोनविंशतिः ॥ १६६ ॥
एकादश सहस्राणि वादलब्धिमतां पुनः । लक्षद्वयं श्रावकाणामष्टाशीतिसहस्रयुक् ॥ १६७ ॥
श्राविकाणां पञ्चलक्षी सप्तविंशतिसहस्रयुक् । अजायन्त जगद्भर्तुरुर्व्यां विहरतः सतः ॥ १६८ ॥
अष्टाङ्ग्याऽष्टादशाब्दोने पूर्वलक्षे*ऽथ केवलात् । ज्ञात्वा निर्वाणकालं स्वं सम्मेताद्रिं ययौ विभुः ॥१६९॥
समं मुनिसहस्रेण प्रपन्नानशनः प्रभुः । मासं तस्थौ सुरैः सेन्द्रैः सेव्यमानो नृपैरपि ॥ १७० ॥
शैलेशीध्यानमास्थाय भवोपग्राहिकर्मभित् । सिद्धानन्तचतुष्कः सन् भगवानभिनन्दनः ॥ १७१ ॥
वैशाखस्य सिताष्टम्यां पुष्यस्थे रजनीकरे । समं मुनिसहस्रेणाऽपुनरावृत्त्यगात् पदम् ॥१७२॥ युग्मम् ॥
कौमारे पूर्वाणां लक्षाः सहार्धा द्वादशाऽगमन् । लक्षाणि सार्धषट्त्रिंशद् राज्येऽष्टाङ्गयुतानि च ॥ १७३ ॥
अष्टाङ्गोनं पूर्वलक्षं प्रव्रज्यायामिति प्रभोः । पञ्चाशत्पूर्वलक्षाणि यावदायुरजायत ॥ १७४ ॥
सम्भवस्वामिनिर्वाणादभिनन्दननिर्वृतिः । समुद्रकोटिलक्षेषु व्यतीतेषु दशस्वभूत् ॥ १७५ ॥
शक्रश्चक्रेऽङ्गसंस्कारं स्वामिनो व्रतिनामपि । दंष्ट्रा-रदा-ऽस्थि जगृहुः पूजनाय सुरा-ऽसुराः ॥ १७६ ॥
कुर्वन्तोऽथाऽष्टाह्निकां शाश्वतार्हद्बिम्बानां तेऽभ्येत्य नन्दीश्वरान्तः
स्वं स्वं लोकं सामरा जग्मुरिन्द्रास्ते च स्वां स्वां राजधानीं नरेन्द्राः ॥ १७७ ॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये तृतीये पर्वणि अभिनन्दनस्वामिचरितवर्णनो नाम द्वितीयः सर्गः ॥

---

१ असिधारोपमं महातीक्ष्णं दुष्करम् । २ अक्षय्यं नाम क्षेतुं नाशयितुम् अशक्यम् ,यन्न कदापि क्षीणं कर्तुं शक्यते। ३ स्वामी एभ्यः गणधरेभ्यः । * °दिक्स्थितो दे° संघृ० ॥ १ पारिपार्श्विकी पार्श्वस्था समीपवासिनी । * °लक्षे च के° संघृ० ॥ ४ यतः पुनरागमनं न जायते तद् अपुनरावृत्ति । अपुनरावृत्तिपदं-मोक्षः । ५ समुद्रकोटिलक्षेषु सागरोपमकोटिलक्षेषु । समुद्रः-सागरोपमं कालविशेषः । † °रदादि ज° खंता० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीयः सर्गः ।

सुमतिस्वामिचरितम् ।

नमः सुमतिनाथाय प्रकृष्टज्ञानहेतवे । अपारसंसारमहासागरोत्तारसेतवे ॥ १ ॥
तत्प्रसादात् तच्चरित्रं यथावत् कीर्तयिष्यते । भव्यसंसारिकल्याणतरु[1]कुल्याम्बुसन्निभम् ॥ २ ॥

अत्रैव जम्बूद्वीपेऽस्ति प्राग्विदेहविशेषकः । ऋद्ध्या [2]पुष्कलया [3]राजन् विजयः पुष्कलावती ॥ ३ ॥
विचित्रचैत्य-हर्म्यादिध्वजदन्तुरिताम्बरम् । तत्र शङ्खपुरं नाम पुरमस्त्यतिसुन्दरम् ॥ ४ ॥
विजयी तत्र विजयसेन इत्यभवन्नृपः । शोभामात्रमभूत् सेना यस्य [4]दोर्वीर्यशालिनः ॥ ५ ॥
सकलान्तःपुरस्त्रैणभूषणं तस्य चाऽभवत् । प्रिया सुदर्शना नामेन्दुलेखेव सुदर्शना ॥ ६ ॥
रममाणस्तया सार्धं रत्येव कुसुमायुधः । निनाय कालं विजयसेनः प्रथितवैभवः ॥ ७ ॥

ययावन्येद्युरुद्यानमुद्यते क्वचिदुत्सवे । सर्वर्द्ध्या सपरीवारो जनः सर्वोऽपि नागरः ॥ ८ ॥
वपुष्मतीव राज्यश्रीश्छत्र-चामरलाञ्छिता । आरुह्य हस्तिनीं तत्राऽगाद् देव्यपि सुदर्शना ॥ ९ ॥
अपश्यत् तत्र चाऽनर्घ्यभूषणश्रीभिरष्टभिः । दिक्कन्याभिरिवोपेतां वधूभिः कामपि स्त्रियम् ॥ १० ॥
उपास्यमानां तां ताभिरप्सरोभिः शचीमिव । दृष्ट्वा सुदर्शना देवी भृशं चित्ते विसिष्मिये ॥ ११ ॥
इयं का? पारिपार्श्विक्यः काश्चैतस्या अमूरिति । ज्ञातुं सुदर्शना देवी [5]सौविदल्लं समादिशत् ॥ १२ ॥
तत् पृष्ट्वा सौविदल्लोऽपि समेत्यैवं व्यजिज्ञपत् । श्रेष्ठिनो नन्दिषेणस्य प्रेयसीयं सुलक्षणा ॥ १३ ॥
सुलक्षणाया द्वौ पुत्रौ प्रत्येकं च तयोरिमाः । वध्वश्चतस्रो दासीवच्छ्वश्रूशुश्रूषणोद्यताः ॥ १४ ॥
श्रुत्वा सुदर्शना तच्च चेतस्येवमचिन्तयत् । इयं हि श्रेष्ठिनी श्रेष्ठा या पुत्रमुखमीक्षते ॥ १५ ॥
यस्याश्चैताः [6]स्नुषीभूय रूपवत्यः कुलस्त्रियः । नागकन्या इवाऽष्टाऽपि सेवां कुर्वन्ति सर्वदा ॥ १६ ॥
न सूनुर्न स्नुषा यस्या धिग् धिग् मां तामपुण्यकाम् । पत्युर्हृदयभूताया अपि मे जीवितं वृथा ॥ १७ ॥
इतस्ततः क्षिपन् पाणी समन्ताद् धूलिधूसरः । अङ्के क्रीडति धन्यानां पुत्रो वृक्षे प्लवङ्गवत् ॥ १८ ॥
असञ्जातफला वल्ल्य इवाऽतोया इवाऽऽपगाः । निन्दनीयाः शोचनीया योषितस्तनयं विना ॥ १९ ॥
किमन्यैरुत्सवैस्तासां? न यासां स्युर्महोत्सवाः । सूनुजन्म-नाम-चूला-विवाहकरणादयः ॥ २० ॥

विचिन्त्यैवं म्लानमुखी* पद्मिनीव [7]हिमार्दिता । ययौ सुदर्शना देवी सखेदा सदनं निजम् ॥ २१ ॥
अपि प्रियसखीस्तत्र विसृज्य शयनीयके । निःसहा मुक्तनिःश्वासा [8]व्याधितेव पपात सा ॥ २२ ॥
नाऽभुक्त न बभाषे च प्रतिकर्म च नाऽकरोत् । तस्थौ किन्तु मनःशून्या [9]रत्नपाञ्चालिकेव सा ॥ २३ ॥
तां तथावस्थितां ज्ञात्वा परिवारमुखान्नृपः । उपेत्यैवमभाषिष्ट प्रेमपेशलया गिरा ॥ २४ ॥
स्वाधीने मय्यपि सदा किमपूर्णं समीहितम्? । देवि! ताम्यसि येनैवं हंसीव पतिता [10]मरौ ॥ २५ ॥
किमाधिर्बाधते कोऽपि? व्याधिर्वा कोऽपि नूतनः? । किं कोऽप्याज्ञां लंलङ्के†? किं दुःस्वप्नं दृष्टवत्यसि? ॥२६॥
बाह्यमाभ्यन्तरं वाऽपि दुर्निमित्तमथाऽभवत्? । खेदस्य कारणं ब्रूहि रहस्यं न हि ते मयि ॥ २७ ॥

सुदर्शनाऽपि निःश्वस्येत्यवदद् गद्गदाक्षरम् । त्वत्प्रसादात् तवेवाऽऽज्ञां न मे कश्चिदखण्डयत् ॥ २८ ॥

---

१ कुल्या नाम नदी, अथवा कुल्या जलवाहिनी सारणी । भाषायां 'नीक धोरियो' इति । २ पुष्कलया अतिप्रभूतया । ३ राजन् शोभमानः । ४ दोर्-भुजाद्वयम् । ५ सौविदल्लम् अन्तःपुररक्षकं कर्मकरम् । ६ स्नुषा पुत्रवधूः । * °मुखा प° संछ० ॥ ७ हिमार्दिता शीतपीडिता । ८ व्याधिता व्याधिपीडिता । ९ रत्ननिर्मिता पुत्तलिका इव । १० मरुदेशे जलरहिते शुष्के । † लङ्घते किं संछ० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाऽऽधि-व्याधी न दुःस्वप्न-दुर्निमित्ते न चाऽपरम् । तादृक् किमपि बाधायै किन्त्वेकं नाथ! बाधते ॥ २९ ॥
वृथैव राज्यसम्पत्तिर्वृथा वैषयिकं सुखम् । वृथैव चाऽऽवयोः प्रीतिरदृष्टसुतवक्त्रयोः ॥ ३० ॥
श्रद्धाति श्रियः पश्यन् दरिद्रः श्रीमतां यथा । पुत्रान् पुत्रवतां पश्यन्त्यहमप्येवमस्मि हा! ॥ ३१ ॥
एकतः सर्वसौख्यानि पुत्राप्तिसुखमन्यतः । मनस्तुलातोलनतो द्वितीयमतिरिच्यते ॥ ३२ ॥
वरं मृगादयोऽरण्ये ये पुत्रपरिवारिताः । अस्माकं पुत्रहीनानां धिक् तेभ्योऽप्यल्पभाग्यताम् ॥ ३३ ॥
अथोचे पृथिवीशोऽपि देवि! धीरा भवाऽचिरात् । मनोरथं पूरयिष्ये देवताराधनेन ते ॥ ३४ ॥
विक्रमेण न यत् साध्यं यद् बुद्धीनामगोचरः[*] । यन्मन्त्राणामविषयस्तन्त्राणां यच्च दूरतः ॥ ३५ ॥
अन्येषामप्युपायानां यदगम्यं तदप्यलम् । साधयन्ति नृणामर्थं प्रसन्ना देवि! देवताः ॥ ३६ ॥
तद् विद्धि सिद्धमेवाऽर्थममुं मानिनि! किं शुचा? । कुलदेव्याः पुरः स्थास्याम्येष प्रायेण सूनवे ॥ ३७ ॥
राज्ञीं राजैवमाश्वास्य जगाम निजधामतः । कृतशौचः शुचिवेषः कुलदेव्या निकेतनम् ॥ ३८ ॥
अर्चित्वा देवतां तत्र भूपतिर्दृढनिश्चयः । आपुत्रलाभं त्यक्तान्न-पानवृत्तिरुपाविशत् ॥ ३९ ॥
उपवासे ततः षष्ठे प्रत्यक्षीभूय देवता । प्रसन्ना व्याजहारैवं वरं वृणु महीपते! ॥ ४० ॥
राजा विजयसेनोऽपि देवीं नत्वैवमब्रवीत् । समस्तपुरुषोत्कृष्टं पुत्रं देहि प्रसीद मे ॥ ४१ ॥
च्युत्वा दिवः सुरवरस्तव सूनुर्भविष्यति । एवं वरमदाद् देवी तत्क्षणाच्च तिरोदधे ॥ ४२ ॥
आख्यद् राजाऽपि तं देव्या देव्या दत्तं वरं वरम् । स्तनितेन[1] बलाकेव मुमुदे[†] तेन देव्यपि ॥ ४३ ॥
देव्याः सुदर्शनायास्तु स्नाताया[2] अपरेऽहनि[‡] । दिवो महर्द्धिको देवश्च्युत्वा कुक्षाववातरत् ॥ ४४ ॥
तदा च ददृशे देव्या सुप्तया प्रविशन् मुखे । एकः केसरिकिशोरः कुङ्कुमारुणकेसरः ॥ ४५ ॥
उत्थाय शयनीयाच्च सत्वरं भीतभीतया । तया निजगदे राज्ञे स्वास्ये सिंहप्रवेशनम् ॥ ४६ ॥
राजाऽप्यूचे विक्रमी ते भावी सिंह इवाऽऽत्मजः । स्वप्नेनाऽनेनैतदुक्तं देवीवरतरोः फलम् ॥ ४७ ॥
तेन स्वप्नविचारेण राज्ञी भृशममोदत । जजागार च तं रात्रिशेषं शुभकथापरा ॥ ४८ ॥
देव्याः कुक्षाववर्धिष्ट गर्भः सोऽपि दिने दिने । मध्येसरिद्वरावारि[3] सौवर्णमिव वारिजम् ॥ ४९ ॥
अन्यदा दोहदान् देवी समुत्पन्नान् महीभुजे । शशंसेत्यभयं दित्साम्यहं निःशेषदेहिनाम् ॥ ५० ॥
अमारि[4]माघोषयितुमिच्छामि च पुरादिषु । अष्टाहिकाश्चिकीर्षामि निखिलायतनेषु च ॥ ५१ ॥
राजाऽप्यूचे देवि! देवीवर-स्वप्नार्थयोरयम् । साधु सत्यापको[5] गर्भप्रभावाद् दोहदस्तव ॥ ५२ ॥
महेच्छस्य हि गर्भस्य वशादिच्छेयमीदृशी । प्रतिमायाः प्रभावोऽधिष्ठातृदेवोचितः खलु ॥ ५३ ॥
इत्युक्त्वा भूपतिः सद्यो भीतानामभयं ददौ । घोषयामास चाऽमारिं डिण्डिमास्फालपूर्वकम् ॥ ५४ ॥
अष्टप्रकारपूजाभिर्दिव्यैः सङ्गीतकैरपि । अष्टाहिकोत्सवानुच्चैः प्रतिचैत्यं चकार च ॥ ५५ ॥
हृष्टा तैर्दोहदैः पूर्णैः पूर्णेन्दुविशदानना । फलं वल्लीव समये पुत्ररत्नमसूत[6] सा ॥ ५६ ॥
यथाकाममथाऽर्थिभ्यश्चिन्तामणिरिवाऽर्थितम् । ददावाघोषणापूर्वं नरेश्वरशिरोमणिः ॥ ५७ ॥
राज्ञा महोत्सवश्चक्रे हृदयाब्धिनिशाकरः । नागरैरपि तदनु स्वतोऽपि स्वजनैरिव ॥ ५८ ॥
राज्ञीस्वप्नानुसारेण कुमारस्य महीभुजा । विदधे पुरुषसिंह इति नाम मनोरमम् ॥ ५९ ॥

---

* ० चरम् संवृ० ॥ १ स्तनितं मेघगर्जितम् । † मुदिता तेन सङ्घ० ॥ २ स्नाता नाम रजस्वलाधर्मं प्राप्य तदनन्तरं स्नाता । ‡ अपरेद्यवि संवृ० ॥ ३ सरिद्वरा उत्तमनदी, सरिद्वरावारिणः मध्ये इति मध्येसरिद्वरावारि, अव्ययीभावसमासः । ४ अमारिम् अभयम् अद्य सर्वत्र सर्वे भयरहिता भवन्तु इतिरूपाम् । ५ सत्यापकः सत्यकारकः गर्भप्रभावसंवादकः । ६ असूत जनयामास ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाल्यमानः स धात्रीभिः कुमारो ववृधे क्रमात् । मातुः पितुः प्रजानां च सममेव मनोरथैः ॥ ६० ॥
कला जग्राह सकलाः स इन्दुरिव पार्वणः । प्राप च यौवनं लीलावनं मकरलक्ष्मणः ॥ ६१ ॥
आत्मानुरूपा रूपेण कलाभिश्च कुलेन च । उपायताऽऽयतभुजः सोऽष्टौ कन्याः क्षमाभुजाम् ॥ ६२ ॥
सुखं वैषयिकं ताभिरप्सरोभिरिवामरः । यथाक्षणं रममाणोऽन्वभूद् विजयसेनभूः ॥ ६३ ॥
ऋतुः साक्षादिव मधुः साक्षान्मधुसखोऽथवा । सोऽगात् क्रीडितुमन्येद्युः क्रीडोद्यानं यदृच्छया ॥६४॥
तत्रापश्यच्च समवसृतं विनयनन्दनम् । नाम सूरिं जितानङ्गं रूपेण च शमेन च ॥ ६५ ॥
तं तस्य पश्यतः पीतामृतस्येव विलोचने । हृदयं चापराण्यङ्गान्यपि च व्यकसन्निव ॥ ६६ ॥
सोऽथेति दध्यौ वेश्यान्ते सतीत्वस्येव पालनम् । तस्कराणां सन्निधाने निधानस्येव गोपनम् ॥ ६७ ॥
मार्जारयूनामभ्यर्णे पीयूषस्येव रक्षणम् । शाकिन्याः प्रातिवेश्मिक्ये स्वस्येव क्षेमकारिता ॥ ६८ ॥
रूपस्याप्रतिरूपस्य वयसो मध्यमस्य च । उन्मादहेतावुदयेऽमुष्याहो ! व्रतधारणम् ॥ ६९ ॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
हिमं सहेत हेमन्ते ग्रीष्मे च तपनातपः । झञ्झावातोऽपि वर्षासु न पुनर्यौवने स्मरः ॥ ७० ॥
तदद्य दिष्ट्या दृष्टोऽयं पुण्यैः पुण्यानुबन्धिभिः । प्रीतिदायी गुरुरिव मातेव च पितेव च ॥ ७१ ॥
कुमारश्चिन्तयित्वैवमुपसृत्य च सत्वरम् । ववन्दे हृदयानन्दं मुनिं विनयनन्दनम् ॥ ७२ ॥
कल्याणकन्दलोद्भेदमेघवृष्टिसमानया । मुनिरानन्दयामास धर्मलाभाशिषाऽथ तम् ॥ ७३ ॥
भूयः कुमारस्तं नत्वा मुनिमेवमभाषत । चित्रीयसे व्रतधरो नवयौवनवानपि ॥ ७४ ॥
विषयाणां विमुखोऽसि वयस्यत्रापि यत् ततः । विज्ञस्तेषां दुर्विपाकं किम्पाकानामिव ध्रुवम् ॥ ७५ ॥
सारमत्र हि संसारे किञ्च मन्ये न किञ्चन । इत्थं तत्परिहारायोच्चेष्टन्ते यद् भवादृशाः ॥ ७६ ॥
संसारतरणोपायं तन्ममापि समादिश । मां नय त्वं स्वेन पथा सार्थवाह इवाध्वगम् ॥ ७७ ॥
क्रीडार्थमागतेनेह त्वं प्राप्तोऽसि महामुने ! । कर्करान्वेषकेणेव माणिक्यं पर्वतावनौ ॥ ७८ ॥
एवमुक्तः कुमारेण मारारिः स महामुनिः । आबभाषे नवाम्भोदघोषगम्भीरया गिरा ॥ ७९ ॥
यौवनैश्वर्य-रूपादिमदस्थानानि शान्तये । मान्त्रिकस्येव भूतानि पदातित्वाय साधनात्* ॥ ८० ॥
संसारसिन्धुतरणे यानपात्रमनर्गलम् । भगवद्भिः समाम्नातो यतिधर्मोऽयमुच्चकैः ॥ ८१ ॥
संयमः सूनृतं शौचं ब्रह्माकिञ्चनता तपः । क्षान्तिर्मार्दवमृजुता मुक्तिश्च दशधेति सः ॥ ८२ ॥
प्राणातिपातव्यावृत्तिरूपः संयम ईरितः । मृषावादपरीहारस्वरूपं सूनृतं पुनः ॥ ८३ ॥
शौचं संयमसंशुद्धिरदत्तादानवर्जनात् । उपस्थसंयमो ब्रह्म नवगुप्तिसमन्वितम् ॥ ८४ ॥
निर्ममत्वं शरीरादावप्यकिञ्चनता मता । तपस्तु द्विविधं बाह्यमान्तरं चेति तद् यथा ॥ ८५ ॥
अनशनमौनोदर्यं[11] वृत्तेः संक्षेपणं तथा । रसत्यागस्तनुक्लेशो [12]लीनतेति बहिस्तपः ॥ ८६ ॥
प्रायश्चित्तं वैयावृत्त्यं स्वाध्यायो विनयोऽपि च । [13]व्युत्सर्गोऽथ शुभध्यानं षोढेत्याभ्यन्तरं तपः ॥ ८७ ॥
क्षान्तिः शक्तावशक्तौ वा सहनं क्रोधनिग्रहात् । मददोषपरीहारो मार्दवं माननिर्जयात् ॥ ८८ ॥
मायाजयादार्जवं वाङ्मनः-कायैरवक्रता । मुक्तिश्च तृष्णाविच्छेदो बाह्या-ऽऽभ्यन्तरवस्तुषु ॥ ८९ ॥
इत्थं दशविधो धर्मः संसारोत्तारणक्षमः । जगत्यवाप्यते पुण्यैश्चिन्तामणिरिवानघः ॥ ९० ॥

---

१ मनोरथसमकालमेव, यथा मनोरथा वर्धमानाः तथा पुत्रोऽपि वर्धमानः । २ मकरलक्ष्मा कामदेवः । ३ 'उपायत' इति क्रियापदम् । ४ आयतभुजः दीर्घभुजः । ५ मधुः वसन्तसमयः । ६ मधुः सखा यस्य स मधुसखः कामदेवः । ७ विकसितानि जातानि । ८ नवप्रसूतगवीक्षीरं पीयूषम्, धारोष्णं पयः अमृतम्, अतः पीयूषं दुग्धम् । ९ आश्चर्यं करोषि । १० चेष्टन्ते, प्रयतन्ते इत्यर्थः । * साधु ते संवृ० । साधने सङ्घ० ॥ ११ उदरस्य ऊनता–भोजनसमये एकद्व्यादिभिः कवलैः उदरं ऊनं रक्षणीयम् । १२ लीनता अङ्गोपाङ्गानां अचञ्चलता । १३ व्युत्सर्गः आत्मशुद्धिप्राप्तये देहादिकं सहायकरूपं आत्मसाधनहेतुं मत्वाऽपि देहादिपरभावं प्रति उपेक्षावृत्तिः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुत्वा पुरुषसिंहोऽपि सप्रश्रयमदोऽवदत् । रोरस्येव निधानं मे धर्मोऽयं साधु दर्शितः ॥ ९१ ॥
किन्त्वसौ गृहवासस्थैरनुष्ठातुं न शक्यते । गृहवासो हि संसारतरोर्दोहदमुत्तमम् ॥ ९२ ॥
प्रव्रज्यां धर्मराजस्य राजधानीं प्रयच्छ मे । भगवन्! भवदुर्ग्रामवासादुद्विग्नवानहम् ॥ ९३ ॥
अथोचे भगवानेवं सूरिर्विनयनन्दनः । मनोरथोऽपि ते साधुः साधकः पुण्यसम्पदाम् ॥ ९४ ॥
महासत्त्व ! महाबुद्धे ! विवेकिन्! दृढनिश्चय! । योग्योऽसि व्रतभारस्य दास्यामस्त्वत्समीहितम् ॥ ९५ ॥
आपृच्छस्व परं गत्वा पितरौ पुत्रवत्सलौ । यतस्तावेव जगति गुरू प्रथमतो नृणाम् ॥ ९६ ॥
ततः स गत्वा पितरौ प्रणम्य च कृताञ्जलिः । मां व्रतायानुमन्येथामेवमुच्चैर्व्यजिज्ञपत् ॥ ९७ ॥
इत्यूचतुश्च तौ युक्ता प्रव्रज्या वत्स! किन्त्विह । उद्वोढव्यः पञ्चमहाव्रतभारोऽतिदुर्वहः ॥ ९८ ॥
निर्ममत्वं स्वदेहेऽपि विरती रात्रिभोजनात् । द्विचत्वारिंशता दोषैर्मुक्तः पिण्डश्च भोजने ॥ ९९ ॥
नित्योद्युक्तो निर्ममश्चाकिञ्चनो गुणतत्परः । धारयेत् समितीः पञ्च तिस्रो गुप्तीश्च सर्वदा ॥ १०० ॥
मासादिकाश्च प्रतिमा विधातव्या यथाविधि । अभिग्रहा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानुगा अपि ॥ १०१ ॥
यावज्जीवितमस्नानं भूशय्या केशलुञ्चनम् । शरीरस्याप्रतिकर्म वासो गुरुकुले सदा ॥ १०२ ॥
परीषहोपसर्गाणां सहनं सानुमोदनम् । अष्टादशानां शीलाङ्गसहस्राणां च धारणम् ॥ १०३ ॥
प्रव्रज्यायामुपात्तायां सुकुमार कुमारक! । तदेते लोहचणकाश्चर्वणीया निरन्तरम् ॥ १०४ ॥
बाहुभ्यां तरणीयोऽयमपारो मकराकरः । निशातखड्गधारासु कार्यं चङ्क्रमणं क्रमैः ॥ १०५ ॥
पातव्या ज्वलनज्वाला मेरुस्तोल्यस्तुलाधृतः । उत्पूरा च प्रतिश्रोतस्तरणीया सरिद्वरा ॥ १०६ ॥
एकाकिना च जेतव्यं बलवद्विद्विषद्बलम् । विधातव्यो भ्रमच्चक्रे राधावेधश्च खल्वहो! ॥ १०७ ॥
॥ दशभिः कुलकम् ॥
महत् सत्त्वं महद् धैर्यं महती धीर्महद् बलम् । प्रव्रज्याया उपात्ताया यदाऽऽजन्मापि पालनम् ॥१०८॥
तदाकर्ण्य कुमारोऽपि ससौष्ठवमभाषत । पूज्यपादा एवमेतत् प्रव्रज्येयं यदीदृशी ॥ १०९ ॥
किन्तु विज्ञपयाम्येकमंशः शततमोऽपि किम् । भववाससमुत्थानां कष्टानामिह दृश्यते? ॥ ११० ॥
तथाहि दूरे तिष्ठन्तु साक्षान्नरकवेदनाः । वचनैर्दुर्वचा एव दुःश्रवाः श्रवणैरपि ॥ १११ ॥
इहापि दृश्यते लोके तिरश्चामकृतागसाम् । नितान्तं बन्धन-च्छेद-तर्जनाद्यतिदुःसहम् ॥ ११२ ॥
कुष्ठादिव्याधिजा बाधा गुप्तिवासोऽङ्गकर्तनम् । त्वचनं ज्वालनं शीर्षच्छेदादि च नृणामपि ॥ ११३ ॥
विप्रयोगः प्रियजनैः शत्रुतश्च पराभवः । च्यवनज्ञानजं दुःखं दुःसहं नाकिनामपि ॥ ११४ ॥
तेनैवमुक्तौ पितरौ साधु साध्विति वादिनौ । मुदितावनुमेनाते व्रतादानाय तं ततः ॥ ११५ ॥
सप्रमोदं ततः पित्रा कृतनिष्क्रमणोत्सवः । दीक्षार्थी तं मुनिं सोऽगात् फलार्थीव वनस्पतिम् ॥ ११६ ॥
आददे मुनिपादान्ते सामायिकमुदीरयन् । प्रव्रज्यां पुरुषसिंहो भवाब्धितरणे तरीम् ॥ ११७ ॥
प्रमादपरिहारेण रक्षेच्छुः सर्वदेहिनाम् । स दृढं पालयामास प्रव्रज्यां राज्यवन्नृपः ॥ ११८ ॥
विंशतिस्थानकानां च स्थानैः कतिपयैरपि । अर्जयामास विशदं तीर्थकृन्नामकर्म सः ॥ ११९ ॥
चिरं विहृत्य कालं च कृत्वाऽनशनकर्मणा । विमाने वैजयन्ते स महर्द्धिरमरोऽभवत् ॥ १२० ॥
इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन् क्षेत्रे भरतनामनि । विनीतेत्यस्ति नगरी गरीयःसम्पदास्पदम् ॥ १२१ ॥

१ रोरः रङ्कः, भाषायां 'रांक'। २ वहनीयः । ३ भिक्षाचर्यायाः द्विचत्वारिंशद् दोषाः, तद्यथा--आधाकर्मिकम्, औद्देशिकम् इत्यादि । ४ असंस्कारः । ५ संयमसाधनायां बाधकरूपाः द्वाविंशतिः परीषहाः क्षुधापिपासादयः ; * °श्चक्रा° संवृ० ॥ † चतुर्भिः कलापकम् संवृ० मो० ॥ ६ आ जन्म जीवितपर्यन्तम् ॥ ७ निष्क्रमणं प्रव्रज्या । ८ नावम् । ९ उत्तमसम्पदां स्थानम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजते राजतैस्तत्र प्राकारः कपिशीर्षकैः । सर्वद्वीपान्तरानीतेन्दुबिम्बरचितैरिव ॥ १२२ ॥
नानारत्ननिधानं सा रूप्यवप्रेण राजति । रक्षार्थं कुण्डलीभूतशेषेणेव निषेविता ॥ १२३ ॥
सौधेषु रत्नवलभीसङ्क्रान्तस्तत्र चन्द्रमाः । लिह्यते गृहमार्जारैर्दधिपिण्डधिया मुहुः ॥ १२४ ॥
अर्हन् देवो गुरुः साधुरिति क्रीडाशुका अपि । पठन्ति तस्यां शृण्वन्तस्तदेव हि गृहे गृहे ॥ १२५ ॥
प्रतिवासगृहं तत्र दह्यमानागरूद्भवाः । धूमलेखा वितन्वन्ति तमालवनमम्बरे ॥ १२६ ॥
तत्रोद्यानेष्वरघट्टशीकरासारमालिषु । शीतभीत्येव नो जातु प्रविशन्त्यर्करश्मयः ॥ १२७ ॥
इक्ष्वाकुवंशतिलकस्तस्यामासीन्महीपतिः । मेघो नाम महामेघ इव विश्वाभिनन्दकः ॥ १२८ ॥
सदैवोदच्यमानाऽपि कृतार्थीकर्तुमर्थिनः । सिरावारीव ववृधे तस्य श्रीरतिशायिनी ॥ १२९ ॥
देवतामिव तं नेमुः पञ्चाङ्गस्पृष्टभूतलाः । वस्त्रा-ऽलङ्कार-रत्नाद्यैरानर्चुश्च महीभुजः ॥ १३० ॥
प्रतापः प्रसरंस्तस्य माध्यन्दिन इवाऽर्यमा । द्विषां सङ्कोचयामास देहच्छायामिव श्रियम् ॥ १३१ ॥
शुद्ध्या महत्या शक्त्या च प्रभावेण च भूयसा । चतुष्षष्टेः स इन्द्राणां पञ्चषष्टितमोऽनैरभात् ॥ १३२ ॥
तस्याऽऽसीन्मङ्गला नाम मङ्गलानां निकेतनम् । सच्छीलकेतना पत्नी कुललक्ष्मीरिवाङ्गिनी ॥१३३॥
पत्युः सा हृदयेऽवात्सीत् तस्याश्च हृदये पतिः । बहिरङ्गस्तयोरासीद् वासो वासगृहादिषु ॥ १३४ ॥
उद्यानादिप्रदेशेऽपि सञ्चरन्ती गृहेऽपि वा । अधिकं देवतातोऽपि भर्त्तारं ध्यायति स्म सा ॥ १३५ ॥
रूप-लावण्य-सौभाग्यदासीकृतसुराङ्गना । दासीचक्रे मुखेनेन्दुमपि सा वरलोचना ॥ १३६ ॥
विशदे रूप-लावण्ये तस्याश्चातिशयान्विते । परस्परमभूष्येतामङ्गुलीय-मणी इव ॥ १३७ ॥
पौलोम्येव महेन्द्रस्य नरेन्द्रस्य तया समम् । उपभुञ्जानस्य भोगानभवत् प्रीतिरक्षया ॥ १३८ ॥
इतः पुरुषसिंहस्य वैजयन्तविमानगः । जीवः स्वायुस्त्रयस्त्रिंशदब्धिसङ्ख्यमपूरयत् ॥ १३९ ॥
श्रावणस्याथ शुक्लायां द्वितीयायां मघागते । मृगाङ्के मङ्गलादेव्याः कुक्षाववततार सः ॥ १४० ॥
ईक्षाञ्चक्रे तदानीं च तीर्थकृज्जन्मसूचकान् । गजादीन् मङ्गलादेवी महास्वप्नांश्चतुर्दश ॥ १४१ ॥
भुवनत्रितयाधारभूतं गर्भं दधार तम् । निगूढं मङ्गला देवी निधानमिव मेदिनी ॥ १४२ ॥
इतश्च कश्चिदप्याढ्यस्ततः पुर्या वणिज्यया । सदृग्भार्याद्वययुतो दूरदेशान्तरं ययौ ॥ १४३ ॥
तस्य मार्गस्थितस्यैकस्यां समभवत् सुतः । उभाभ्यां च सपत्नीभ्यां निर्विशेषमवर्ध्यत ॥ १४४ ॥
अर्जयित्वा धनं देशान्तराद् व्यावृत्तवानथ । वर्त्मन्येव विपेदे स दैवस्य विषमा गतिः ॥ १४५ ॥
तस्य द्वे अपि ते भार्ये उदश्रुवदने शुचा । विरचय्याग्निसंस्कारं चक्राते और्ध्वदेहिकम् ॥ १४६ ॥
ततः पुत्रश्च वित्तं च मदीये इति भाषिणी । पुत्रमात्रा सहान्या तु मायिन्यकलहायत ॥ १४७ ॥
क्षेममेकाऽपरा योगमिच्छन्त्यौ पुत्र-वित्तयोः । अयोध्यामीयतुः शीघ्रं सूनोर्मातृ-विमातरौ ॥ १४८ ॥
तत्र च स्वा-ऽन्यकुलयोर्धर्माधिकरणेऽपि च । ढुढौकाते उभे छिन्नो न तद्वादो मनागपि ॥ १४९ ॥
ततस्ते उपतस्थाते विवदन्त्यौ नरेश्वरम् । उपवेश्य सभां राज्ञा पृष्टे ते वादकारणम् ॥ १५० ॥
ऊचे विमाता वादोऽयमाख्यातः सकले पुरे । किन्त्वेनं नाच्छिदत् कोऽपि कः परव्यसनेऽर्तिमान् ? ॥१५१॥
सुखिनं परसौख्येन परदुःखेन दुःखिनम् । पृथिव्यां धर्मराजं त्वामिदानीमस्म्युपस्थिता ॥ १५२ ॥

---

१ शोभने । २ अरघट्टो नाम कूपाद् जलनिस्सारणसाधनम् । ३ उदच्यमाना वारंवारं व्याप्रियमाणा, भाषायां 'उलेचाती' । ४ सिरा 'सेर' इति भाषायाम् । ५ द्विर्दीपे । ६ देवादपि । ७ भूपितो । ८ इन्द्राणी । ९ अक्षया प्रीतिः । * °मानतः संवृ० ॥ † °णस्य च शु° संवृ० ॥ १० दृष्टवती । ११ सुखं यथा स्यात् तथा । १२ अश्रुपूर्णमुखे, द्विवचनमेतत् । १३ मृतस्य मरणतिथौ दीयमानं पिण्डोदकादि । १४ कलहं चकार । १५ न्यायमन्दिरे । १६ न्यायलिप्सया समागते । ‡ सुखितं संवृ० ॥ § दुःखितम् संवृ० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ममौरसोऽयं तनयः सदृग् मे वर्द्धितो मया । वित्तं ममैतद् यस्या हि पुत्रस्तस्या धनादिकम् ॥ १५३ ॥
पुत्रमाताऽप्युवाचैवं पुत्रोऽसौ मे धनं च मे । सपत्नी मेऽनपत्याऽसौ लोभेन कलहायते ॥ १५४ ॥
प्राक् पुत्रं पालयन्त्येषा न निषिद्धा मयाऽऽर्जवात् । पादान्ते शायिता स्नेहादुच्छीर्षग्राहिणी ह्यसौ ॥१५५॥
तदुत्तिष्ठस्व निर्णेतुं विवादस्त्वयि तिष्ठते । राज्ञा दृष्टः कुदृष्टो वा निर्णयो ह्यपुनर्भवः ॥ १५६ ॥
उभाभ्यामिति विज्ञप्तो जगाद जगतीपतिः । द्वे अप्येते सुसदृश्यावेकवृन्तच्युते इव ॥ १५७ ॥
अन्योऽन्यं वैसदृश्ये हि यस्याः सादृश्यभाग् भवेत् । तस्याः पुत्रोऽनुमीयेत द्वयोः सदृश एष नु ॥ १५८ ॥
न वक्तुमपि जानाति बाल्यादेषोऽपि दारकः । असौ माता विमाताऽसाविति ज्ञाने तु का कथा ? ॥१५९॥
दुर्निर्णयोऽद्य चकितस्येत्थं निगदतोऽपि हि । जज्ञे राज्ञोऽथ मध्याह्नो नित्यकृत्यान्तरोचितः ॥ १६० ॥
पारिषद्यैरथेत्यूचे मासैः षड्भिरपि प्रभो ! । विवादोऽभेदि नास्माभिर्वज्रग्रन्थिरिवाऽनयोः ॥ १६१ ॥
इदानीं नित्यकृत्यानां क्षणो वो माऽतिवर्तताम् । क्षणान्तरे विवादोऽयं विचार्यः स्वामिना पुनः ॥ १६२ ॥
एवमस्त्वित राजाऽपि निगद्य व्यसृजत् सभाम् । कृत्वाऽनन्तरकृत्यानि चान्तैरन्तःपुरं ययौ ॥ १६३ ॥
विज्ञप्तो मङ्गलादेव्या तत्र चैवं महीपतिः । स्वामिन् ! मध्याह्नकृत्यानामतिवेलाऽभवत् कुतः ? ॥ १६४ ॥
तयोर्विवादवृत्तान्तो राज्यै राज्ञाऽप्यकथ्यत । गर्भप्रभावात् सुमती राज्यप्येवमभाषत ॥ १६५ ॥
स्त्रीणां विवादो निर्णेतुं स्त्रीभिरेव हि युज्यते । तत् करिष्याम्यहं देव ! विवादच्छेदनं तयोः ॥ १६६ ॥
राज्ञा सविस्मयं देव्या सममागत्य पर्षदि । आनायिते ततस्ते तु पृष्टे पूर्ववदूचतुः ॥ १६७ ॥
राज्ञी भाषामुत्तरं च विचार्यैवमवोचत । ज्ञानत्रयधरस्तीर्थकरोऽस्त्येष ममोदरे ॥ १६८ ॥
स प्रसूतो जगन्नाथोऽमुष्याशोकतरोस्तले । निर्णयं दास्यते तस्मात् प्रतीक्षेथामुभे अपि ॥ १६९ ॥
ओमित्यूचे विमाता तु माता त्वेवमवोचत । अहमागमयिष्ये न महादेवि ! मनागपि ॥ १७० ॥
सर्वज्ञमाता भवती करोत्वद्यैव निर्णयम् । सपत्नीसात् करिष्यामि नेयत्कालं स्वमात्मजम् ॥ १७१ ॥
ततश्च मङ्गलादेवी निर्णीयैवमभाषत । कालक्षेपासहत्वेन नूनमस्या अयं सुतः ॥ १७२ ॥
विदधात्युभयाधीने परपुत्र-धने यतः । तेनेह कालहरणं विमाता सहते खलु ॥ १७३ ॥
आत्मपुत्रमुभयसात् क्रियमाणं तितिक्षितुम् । अक्षमा कालहरणं सहते जननी कथम् ? ॥ १७४ ॥
भद्रे ! न कालहरणं सहसे यन्मनागपि । तज्ज्ञातं तव पुत्रोऽयं गृहाण स्वगृहं व्रज ॥ १७५ ॥
एतस्यास्तनयो नायं पालितो लालितोऽपि हि । कोकिलायाः खल्वपत्यं काक्या पुष्टोऽपि कोकिलः ॥१७६॥
गर्भप्रभावाद् देव्यैवं विहिते तत्र निर्णये । विसिष्मिये स्मेरनेत्रा परिषत् सा चतुर्विधा ॥ १७७ ॥
तदा ते जग्मतुर्वेश्म स्वनोर्मातृ-विमातरौ । हृष्ट-म्लाने कमलिनी-कुमुदिन्याविवोषसि ॥ १७८ ॥
पाधामजनयन् देव्या लघूकर्णवानिव । क्रमेण ववृधे गर्भः शुक्लपक्ष इवोडुपः ॥ १७९ ॥
ततो नवसु मासेषु दिनेष्वर्धाष्टमेषु च । वैशाखविशदाष्टम्यां मघास्थे च निशाकरे ॥ १८० ॥
सुवर्णवर्णं क्रौञ्चाङ्कं मृगाङ्कमिव पूर्वदिक् । मङ्गलास्वामिनी स्नुरत्नं प्रसुषुवे सुखम् ॥ १८१ ॥

१ रक्षन्ती । २ यस्या मया पादान्ते स्थानं दत्तं सा मम उच्छीर्षं ग्रहीतुमुद्यता । ३ चेष्टस्व । * °भ्यामपि वि° संवृ० ॥ ४ वृन्तं भाषायां 'बींट' । ५ असमानतायाम् । ६ मा गच्छतु । ७ अन्तःपुरमध्ये । ८ योग्यसमयातिक्रमणम् । ९ 'सुमतिः' इति भगवन्मातुः सुमङ्गलाया विशेषणम् । † स्त्रीणामेव संल० मो० ॥ १० भाषा पूर्वपक्षः, उत्तरम् उत्तरपक्षः । ११ प्रतीक्षां करिष्ये । १२ सपत्नीवशे करिष्यामि । १३ उभयाधीनम् । १४ क्षत्रियपरिषद् गृहपतिपरिषद् ब्राह्मणपरिषद् ऋषिपरिषद् इत्येवं चतुर्विधा परिषत् सभा । राजप्रश्नीयोपाङ्गे पृ० ३२१ कण्डिका १८४ (गूर्जर.) । १५ प्रातःकाले । १६ चातुर्यवानिव । ‡ शुभम् संवृ० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रैलोक्ये क्षणमुद्द्योतो नारकाणां क्षणं सुखम् । तदानीमभवच्छक्रादीनां चाऽऽसनकम्पनम् ॥ १८२ ॥
दिक्कुमार्यस्तत्र चक्रुः सूतिकर्म यथोचितम् । शक्रश्च मङ्गलातल्पात् सुमेरावनयत् प्रभुम् ॥ १८३ ॥
शक्राङ्कवर्तिनं नाथमिन्द्रास्तत्राऽच्युतादयः । त्रिषष्टिः स्नपयामासुस्तीर्थाम्भोभिर्यथाक्रमम् ॥ १८४ ॥
ईशानाङ्के निवेश्येशं शक्रोऽप्यस्नपयज्जलैः । विकृतस्फाटिकचतुर्वृषशृङ्गविनिर्गतैः ॥ १८५ ॥
विलिप्य पूजयित्वा च वस्त्रा-ऽलङ्करणैः प्रभुम् । आरात्रिकं च प्रोत्तार्य शक्रो भक्त्यैवमस्तवीत् ॥ १८६ ॥
देव ! त्वज्जन्मकल्याणेनापि कल्याणभाग् मही । किं पुनः पादकमलैर्यत्र त्वं विहरिष्यसे ॥ १८७ ॥
त्वद्दर्शनसुखप्राप्त्या कृतकृत्या दृशोऽधुना । कृतार्थाः पाणयश्चैते भगवन् ! पूजितोऽसि यैः ॥ १८८ ॥
जिननाथ ! तव स्नात्र-चर्चा-ऽर्चादिमहोत्सवः । मन्मनोरथचैत्यस्य चिरात् कलशतां ययौ ॥ १८९ ॥
जगन्नाथ ! प्रशंसामि संसारमपि सम्प्रति । यत्र त्वद्दर्शनं देव ! मुक्तेरेकं निबन्धनम् ॥ १९० ॥
ऊर्मयोऽपि हि गण्यन्ते स्वयम्भूरमणोदधेः । तवातिशयपात्रस्य न पुनर्मादृशैर्गुणाः ॥ १९१ ॥
धर्मैकमण्डपस्तम्भ ! जगदुद्योतभास्कर ! । कृपावल्लीमहावृक्ष ! रक्ष विश्वं जगत्पते ! ॥ १९२ ॥
निर्वृतेः संवृतद्वारसमुद्घाटनकुञ्चिका । धन्यैः शरीरिभिर्देव ! श्रोष्यते तव देशना ॥ १९३ ॥
मन्मनस्युज्ज्वलादर्शसन्निभे भुवनेश्वर ! । त्वन्मूर्तिर्नित्यसङ्क्रान्ता भूयान्निर्वृतिकारणम् ॥ १९४ ॥
इति स्तुत्वा हरिर्नाथमादायोत्प्लुत्य च क्षणात् । मङ्गलास्वामिनीपार्श्वे मुक्त्वा च स्वाश्रयं ययौ ॥ १९५ ॥
जनन्यास्तत्र गर्भस्थे यदभूच्छोभना मतिः । स्वामिनो नाम सुमतिरित्यकार्षीत् पिता ततः ॥ १९६ ॥
धात्रीभिरिन्द्रादिष्टाभिर्लाल्यमानो जगत्पतिः । शैशवं व्यतिचक्राम प्रतिपेदे च यौवनम् ॥ १९७ ॥
धनुःशतत्रयोत्तुङ्गः पीनस्कन्धो बभौ विभुः । आजानुलम्बिदोः[1]शाखः कल्पशाखीव जङ्गमः ॥ १९८ ॥
स्वामिनः स्वच्छलावण्यकल्लोलिन्यां निरन्तरम् । ललनानां लुलन्ति स्म दृशः शफरिका इव ॥ १९९ ॥
भोग्यं कर्म निजं जानन् पित्रोरप्युपरोधतः । राज्ञां कन्याश्चारुरूपाः पर्यणैषीदथ प्रभुः ॥ २०० ॥
जन्मतः पूर्वलक्षेषु गतेषु दशसु प्रभुः । भूभुजाऽप्यर्थितोऽत्यर्थं राज्यभारमुपाददे ॥ २०१ ॥
एकोनत्रिंशतं पूर्वलक्षाः सद्वादशाङ्गिकाः[2] । राज्येऽनैषीत् सुखं स्वामी वैजयन्त[3] इव स्थितः ॥ २०२ ॥
स्वयम्बुद्धो बोधितश्च ततो लोकान्तिकामरैः । दीक्षेच्छुर्वार्षिकं दानमदत्त सुमतिः प्रभुः ॥ २०३ ॥
अन्ते वार्षिकदानस्य वासवैश्चलितासनैः । दीक्षाभिषेको विदधे स्वामिनः पार्थिवैरपि ॥ २०४ ॥
अथाऽभयकरां नामाऽध्यारुह्य शिबिकां विभुः । सुरा-ऽसुर-नृपोपेतः सहस्राम्रवणं ययौ ॥ २०५ ॥
वैशाखसित*नवम्यां पूर्वाह्ने स मघासु भे । प्राव्राजीन्नित्यभक्तेन सहस्रेण नृपैः सह ॥ २०६ ॥
उत्पेदे स्वामिनो ज्ञानं मनःपर्ययसंज्ञकम् । अनुज[4]न्मेव दीक्षायाः प्रियमित्रमिवाथवा ॥ २०७ ॥
दिने द्वितीये विजयपुरे पद्मस्य भूपतेः । सदने विदधे स्वामी परमान्नेन पारणम् ॥ २०८ ॥
वसुधारादीनि पञ्चाद्भुतदिव्यानि चक्रिरे । तत्र देवा रत्नपीठं त्वर्चायै पद्मपार्थिवः ॥ २०९ ॥
विविधाभिग्रहधरः सहमानः परीषहान् । वर्षाणि विंशतिं स्वामी विजहार ततो महीम् ॥ २१० ॥
ग्रामा-ऽऽकर[5]प्रभृतिषु विहरन् प्रभुरन्यदा । सहस्राम्रवणं दीक्षाग्रहणस्थानमाययौ ॥ २११ ॥
प्रियङ्गुमूले ध्यानस्थस्यापूर्वकरणात् प्रभोः । क्षपकश्रेण्यारूढस्य घातिकर्माणि तुत्रुटुः ॥ २१२ ॥
चैत्रस्य शुक्लैकादश्यां मघास्थे च निशाकरे । स्वामिनः कृतषष्ठ[6]स्योत्पेदे केवलमुज्ज्वलम् ॥ २१३ ॥

---

१ दोःशाखः भुजशाखः । २ द्वादशपूर्वाङ्गसहिताः । चतुरशीतिलक्षवर्षमितं पूर्वाङ्गम् । ३ विजयन्तनामकविमाने स्थितो देव इव । * °तपञ्चम्यां संवृ० मो० ॥ ४ लघुभ्राता इव । ५ आकराः खनीप्रदेशाः । ६ यत्र तपसि षड्वेला भोजनं न क्रियते । षड्वेलाः भाषायां 'छ टंक' इति । एका वेला तपसः पूर्वम्, चतस्रो वेलाः तपोदिवसद्वये, एका च पारणकदिवसे, इति एवं तपसो नाम 'षष्ठः' इति सार्थकम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तज्ज्ञात्वाऽऽसनकम्पेनाऽऽगत्येन्द्राः ससुरा-ऽसुराः । चक्रुः समवसरणं स्वामिनो देशनाकृते ॥ २१४ ॥
तत्र प्रविश्य प्राग्द्वारा प्रदक्षिण्यकृत प्रभुः । धनुःषोडशशत्यग्रक्रोशोच्चं चैत्यपादपम् ॥ २१५ ॥
तीर्थाय नम इत्युक्त्वाऽध्यास्त सिंहासनं प्रभुः । प्राङ्मुखो दिक्षु चान्यासु तद्रूपाणि व्यधुः सुराः ॥ २१६ ॥
सङ्घोऽप्यस्थाद् यथास्थानं ससुरा-ऽसुर-मानुषः । नमस्कृत्य जगन्नाथं वज्रभृच्चैवमस्तवीत् ॥ २१७ ॥
गायन्निवालिविरुतैर्नृत्यन्निव चलैर्दलैः । त्वद्गुणैरिव रक्तोऽसौ मोदतेऽशोकपादपः ॥ २१८ ॥
आयोजनं सुमनसोऽधस्तान्निक्षिप्तबन्धनाः । जानुदघ्नीः सुमनसो देशनोर्व्यां किरन्ति ते ॥ २१९ ॥
मालव-कैशिकीमुख्यग्राम-रागपवित्रितः । तव दिव्यो ध्वनिः पीतो हर्षोद्ग्रीवैर्मृगैरपि ॥ २२० ॥
तवेन्दुधामधवला चकास्ति चमरावली । हंसालिरिव वक्त्राब्जपरिचर्यापरायणा ॥ २२१ ॥
मृगेन्द्रासनमारूढे त्वयि तन्वति देशनाम् । श्रोतुं मृगाः समायान्ति मृगेन्द्रमिव सेवितुम् ॥ २२२ ॥
भासां चयैः परिवृतो ज्योत्स्नाभिरिव चन्द्रमाः । चकोराणामिव दृशां ददासि परमां मुदम् ॥ २२३ ॥
दुन्दुभिर्विश्वविश्वेश ! पुरो व्योम्नि प्रतिध्वनन् । जगत्याप्तेषु ते प्राज्यं साम्राज्यमिव शंसति ॥ २२४ ॥
तवोर्ध्वमूर्ध्वं पुण्यर्द्धिक्रमसब्रह्मचारिणी । छत्रत्रयी त्रिभुवनप्रभुत्वप्रौढिशंसिनी ॥ २२५ ॥
एतां चमत्कारकरीं प्रातिहार्यश्रियं तव । चित्रीयन्ते न के दृष्ट्वा नाथ ! मिथ्यादृशोऽपि हि ॥ २२६ ॥
स्तुत्वैवं विरते शक्रे भगवान् सुमतिप्रभुः । सर्वभाषानुगामिन्या प्रारेभे देशनां गिरा ॥ २२७ ॥
कृत्याकृत्यपरिज्ञानयोग्यतामभ्युपेयुषा । इह स्वकार्यमूढेन न स्थातव्यं शरीरिणा ॥ २२८ ॥
पुत्र-मित्र-कलत्रादेः शरीरस्यापि सत्क्रिया । परकार्यमिदं सर्वं न स्वकार्यं मनागपि ॥ २२९ ॥
एक उत्पद्यते जन्तुरेक एव विपद्यते । कर्माण्यनुभवत्येकः प्रचितानि भवान्तरे ॥ २३० ॥
अन्यैस्तेनार्जितं वित्तं भूयः सम्भूय भुज्यते । स त्वेको नरकक्रोडे क्लिश्यते निजकर्मभिः ॥ २३१ ॥
दुःखदावाग्निभीष्मेऽस्मिन् विस्तीर्णे भवकानने । बम्भ्रमीत्येक एवासौ जन्तुः कर्मवशीकृतः ॥ २३२ ॥
इह जीवस्य मा भूवन् सहाया बान्धवादयः । शरीरं तु सहायश्चेत् सुख-दुःखानुभूतिदम् ॥ २३३ ॥
नाऽऽयाति पूर्वभवतो न याति च भवान्तरम् । ततः कायः सहायः स्यात् संफेटमिलितः कथम् ? ॥ २३४ ॥
धर्मा-ऽधर्मौ समासन्नौ सहायाविति चेन्मतिः । नैषा सत्या न मोक्षेऽस्ति धर्मा-ऽधर्मसहायता ॥ २३५ ॥
तस्मादेको बम्भ्रमीति भवे कुर्वन् शुभा-ऽशुभे । जन्तुर्वेदयते चैतदनुरूपे शुभा-ऽशुभे ॥ २३६ ॥
एक एव समादत्ते मोक्षश्रियमनुत्तराम् । सर्वसम्बन्धिविरहाद् द्वितीयस्य न सम्भवः ॥ २३७ ॥
यद् दुःखं भवसम्बन्धि यत् सुखं मोक्षसम्भवम् । एक एवोपभुङ्क्ते तन्न सहायोऽस्ति कश्चन ॥ २३८ ॥
यथा चैकस्तरन् सिन्धुं पारं व्रजति तत्क्षणात् । न तु हृत्पाणि-पादादिसंयोजितपरिग्रहः ॥ २३९ ॥
तथैव धन-देहादिपरिग्रहपराङ्मुखः । स्वस्थ एको भवाम्भोधेः पारमासादयत्यसौ ॥ २४० ॥
तत् सांसारिकसम्बन्धं विहायैकाकिना सता । यतितव्यं हि मोक्षाय शाश्वतानन्दशर्मणे ॥ २४१ ॥
तां प्रभोर्देशनां श्रुत्वा प्रबुद्धा बहवस्तदा । नरा नार्यश्च निःसङ्गीभूयोपाददिरे व्रतम् ॥ २४२ ॥
चमराद्या गणभृतोऽभूवन् शतमनुत्तमाः । ते भर्तुस्त्रिपदीं प्राप्य द्वादशाङ्गीमसूत्रयन् ॥ २४३ ॥
पूर्णायामादिपौरुष्यां व्यसृजद् देशनां विभुः । चक्रे स्वाम्यङ्घ्रिपीठस्थो देशनां गणभृद्वरः ॥ २४४ ॥

---

१ पूर्वदिशास्थितेन द्वारा । २ प्रदक्षिणां चकार । ३ अलयः भ्रमरास्तेषां विरुतैः गुञ्जनैः । ४ देवाः । ५ जानुप्रमाणाः । ६ कुसुमानि । ७ सिंहासनम् । ८ भासां चयैः भामण्डलेनेत्यर्थः । ९ नेत्राणाम् । १० म्रियते । ११ सञ्चितानि । १२ विस्तीर्णे । १३ पुनः पुनः भृशं च भ्रमति । * सहायस्तु सुख° संघ० । सहास्त्वे[त]त् सुख° मो० ॥ १४ विमसनस्वरूपेण मिलित इत्यर्थः । १५ परिग्रहः शरीरम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीयपौरुषीप्रान्ते व्यसृजत् सोऽपि देशनाम् । नत्वाऽर्हन्तं ततो जग्मुः स्वं स्वमिन्द्रादयः पदम् ॥२४५॥

तत्तीर्थे तुम्बुरुर्नाम श्वेताङ्गस्तार्क्ष्य[1]वाहनः । दक्षिणौ वरद-शक्तिधरौ बाहू समुद्वहन् ॥ २४६ ॥

वामौ बाहू गदाधार-पाशयुक्तौ च धारयन् । सदा सन्निहितो* भर्तुरभूच्छासनदेवता ॥ २४७॥ युग्मम् ॥

तथोत्पन्ना महाकाली स्वर्णरुक्[2] पद्मवाहना । दधाना दक्षिणौ बाहुदण्डौ वरद-पाशिनौ ॥ २४८ ॥

मातुलिङ्गा-ऽङ्कुशधरौ परौ† बाहू च बिभ्रती । भर्तुः शासनदेव्यासीत् सदा सन्निधिवर्तिनी ॥ २४९ ॥

वचनातिशयैः पञ्चत्रिंशता शोभितः प्रभुः । बोधयन् भव्य[3]भविनो विजहार वसुन्धराम् ॥ २५० ॥

साधूनां त्रीणि लक्षाणि सहस्राणि च विंशतिः । साध्वीनां पञ्चलक्षी च सहत्रिंशत्सहस्रिका ॥ २५१ ॥

चतुर्दशपूर्विणां द्वे सहस्रे सचतुःशते । एकादश सहस्राणि त्ववधिज्ञानशालिनाम् ॥ २५२ ॥

मनोज्ञानिनामयुतं सपञ्चाशच्चतुःशती । त्रयोदश सहस्राणि केवलज्ञानिनां पुनः ॥ २५३ ॥

वैक्रियलब्धिसहस्राण्यष्टादश चतुःशती । अयुतं वादलब्धीनां सपञ्चाशच्चतुःशती ॥ २५४ ॥

श्रावकाणामुभे लक्षे सैकाशीतिसहस्रके । श्राविकाणां पञ्चलक्षी सहस्राणि च षोडश ॥ २५५ ॥

चतुस्त्रिंशदतिशयान्वितस्य सुमतिप्रभोः । उर्व्यां विहरमाणस्य बभूवेति परि[4]च्छदः ॥ २५६ ॥

पूर्वलक्षं द्वादशाङ्ग्या विंशत्यब्द्या च वर्जितम् । आरभ्य केवलोत्पत्तेर्व्यहरत् सुमतिः प्रभुः ॥ २५७ ॥

स्वं मोक्षकालं ज्ञात्वाऽथ सम्मेताद्रिं ययौ विभुः । समं मुनिसहस्रेण तत्रावनशनेन च ॥ २५८ ॥

मासान्ते‡ क्षत[5]भवोपग्राहिकर्मा जगत्पतिः । सम्प्राप्तानन्तचतुष्कः शैलेशीध्यानमास्थितः ॥ २५९ ॥

चैत्रस्य सितनवम्यां पुनर्वसु[6]गते विधौ । समं तैर्मुनिभिः स्वामी प्रपेदे पदमव्ययम् ॥ २६० ॥ युग्मम् ॥

कौमारेऽयुः पूर्वलक्षा दश राज्ये पुनः प्रभोः । पूर्वलक्षैकोनत्रिंशद् द्वादशाङ्गसमन्विता ॥ २६१ ॥

पूर्वलक्षं द्वादशाङ्गन्यूनं व्रतधरस्य तु । चत्वारिंशत्पूर्वलक्षा इत्यायुः सुमतिप्रभोः ॥ २६२ ॥

अभिनन्दननिर्वाणात् सुमतिस्वामिनिर्वृतिः । कोटिलक्षेषु नवसु सागराणां गतेष्वभूत् ॥ २६३ ॥

भर्तुः सहस्रयतिनां च तदा शरीरसंस्कारमग्निजनितं विधिवद् विधाय ।
निर्वाणपर्वमहिमानमकार्षुरिन्द्रा नन्दीश्वरान्तरगमंश्च पुनः स्वलोकम् ॥ २६४ ॥

॥ इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये तृतीयपर्वणि सुमतिस्वामिचरितवर्णनो नाम तृतीयः सर्गः ॥

---

१ तार्क्ष्यः गरुडः । * °सन्निहिता भ° संवृ० ॥ २ सुवर्णकान्तिः । † °रौ वामबा° संवृ० सङ्घ० ॥ ३ भव्यजीवान् । ४ परिवारः । ‡ °न्ते क्षित° संवृ० मो० ॥ ५ क्षतं क्षीणम् । ६ पुनर्वसुनक्षत्रम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थः सर्गः ।

श्रीपद्मप्रभस्वामिचरित्रम् ।

वन्दामहे पद्मवर्णं पद्मप्रभजिनेश्वरम् । लीलानिवासं पद्मायाः[1] पद्मराशिमिव स्थितम् ॥ १ ॥

पद्मप्रभजिनेन्द्रस्य चरितं दुरितापहम्[2] । तत्प्रभावादसामान्याद् वक्ष्यामि क्षामधीरपि[3] ॥ २ ॥

धातकीखण्डद्वीपस्य प्राग्विदेहैकमण्डने । वत्साभिधाने विजये सुसीमेत्यस्ति पूर्वरा[4] ॥ ३ ॥

तत्राऽपराजितो नाम द्विपद्भिरपराजितः । जितेन्द्रियः समभवद् भूपो धर्म इवाङ्गवान् ॥ ४ ॥

तस्य न्यायः सुहृदभूद् धर्मो बन्धुर्गुणा धनम् । सुहृद्बन्धु-धनान्यासन् बहिरङ्गानि केवलम् ॥ ५ ॥

तस्याऽऽर्जवं च शीलं च *सत्त्वं चेत्यूर्जिता गुणाः । मिथो भूषणतां जग्मुः पादपस्येव पल्लवाः ॥ ६ ॥

अकोपनोऽरीनशिषद्[5]नासक्तोऽन्वभूत् सुखम् । अलुब्धश्च श्रियं दध्रे स विवेकिशिरोमणिः ॥ ७ ॥

अर्हत्प्रवचनसुधां पिबन् देव इवान्यदा । स एवं चिन्तयामास तत्त्वनिष्ठेन चेतसा ॥ ८ ॥

सम्पदो यौवनं रूपं शरीरं हरिणीदृशः । पुत्र-मित्राणि हर्म्याणि दुस्त्यजानि शरीरिणाम् ॥ ९ ॥

जीवन्नप्यदशां[6] प्राप्तः कालधर्मं गतोऽपि वा । एभिस्तु त्यज्यते जन्तुर्विनष्टाण्डमिवाण्डजैः[7] ॥ १० ॥

एकपादेन फालाभं[8] स्नेहं तेष्वेकपक्षकम् । कुर्वाणो भ्रश्यति स्वार्थाद् धिगहो ! मन्दधीर्जनः ॥ ११ ॥

त्यजन्त्येते न यावन्मां पुण्यपाकक्षयादिह । तावत् पौरुषमालम्ब्य त्यजाम्येतानसंशयम् ॥ १२ ॥

एवं विचिन्त्य सुचिरं विवेकमणिरोहणः[9] । धारा[10]धिरूढवैराग्यो राज्यं पुत्राय दत्तवान् ॥ १३ ॥

पिहिताश्रवसूरीणां पादपद्मान्तमेत्य सः । उपाददे परिव्रज्यां मोक्षव्रज्या[11]महारथीम् ॥ १४ ॥

त्रिगुप्तिः पञ्चसमितिर्निर्ममो निष्परिग्रहः । निशितं खड्गधारावच्चिरं सोऽपालयद् व्रतम् ॥ १५ ॥

स विंशतिस्थानकेभ्यः स्थानैः कतिपयैरपि । आर्जयत्[12] तीर्थकृन्नाम कर्म निर्मलमानसः ॥ १६ ॥

शुभध्यानपरः स्वायुः क्षपयित्वा महामनाः । ग्रैवेयकेऽऽभून्नवमे महर्द्धिरमरोऽथ सः ॥ १७ ॥

इतश्च जम्बूद्वीपान्तर्वर्षेऽत्र भरताभिधे । कौशाम्बीत्यस्ति नगरी वत्सदेशस्य मण्डनम् ॥ १८ ॥

तत्रोच्चतरचैत्याग्रसिंहाभ्यर्णे परिभ्रमन् । त्रस्*ता[13]ऽङ्कुरङ्गेण यातीन्दुर्निष्कलङ्कताम् ॥ १९ ॥

†तत्रावासगृहेषूच्चैर्धूपधूमा वितन्वते । युग्मे[14]यूनां रतभ्रष्टांशुकानामंशुकश्रियम् ॥ २० ॥

स्वस्तिकन्यस्तमुक्तासु तत्र प्रतिगृहं शुकाः । चञ्च्वाघातं वितन्वन्ति दाडिमीबीजशङ्कया ॥ २१ ॥

श्रीमान् सर्वो जनस्तत्र नान्यस्वं कोऽपि लुण्टति । उद्यानकुसुमामोदस्योल्लुण्टाकः परं मरुत् ॥ २२ ॥

आसीत् तत्र धरो राजा धरायास्तापनोदनात्[15] । ‡धारणा[16]च्चाप्यधरयन् धारा[17]धर-धराधरान् ॥ २३ ॥

न भूपाः खण्डयामासुस्तस्याऽऽज्ञां क्षितिमण्डले । पुष्पस्रजमिवाखण्डां दधुः शिरसि किन्तु ते ॥ २४ ॥

कोदण्डोद्दण्डदोर्दण्डोऽप्येष नो दण्डचण्डताम् । अदर्शयत् किन्तु सौम्यस्तस्थौ भद्र इव द्विपः ॥ २५ ॥

---

१ लक्ष्म्याः । २ पापनाशकम् । ३ क्षामा क्षीणा । ४ वरा पूः नगरी । * सत्यं चे° सङ्घ० ॥ ५ अशिषत् शासयाञ्चकार । ६ अदशां दुर्दशाम् । ७ पक्षिभिः । ८ फालः उत्प्लवनम्, भाषायाम् 'फाळ' । ९ मणिरोहणः मणिपर्वतः । १० प्रवर्तमाना धारा यथा उत्तरोत्तरं वर्धते तथा धाराम् अधिरूढम् वैराग्यं यस्य । ११ व्रज्या–मार्गः । १२ उपार्जयामास । * °ताङ्कु° संवृ० ॥ १३ अङ्कस्थहरिणेन, अङ्को नाम लाञ्छनम् उत्सङ्गो वा । † तत्र वा° संवृ० सङ्घ० ॥ १४ दम्पतीनाम् । रतं रतिक्रीडा, अंशुकं वस्त्रम् । १५ नोदनं दूरीकरणम् । ‡ धरणा° संवृ० सङ्घ० ॥ १६ धारणं च यथास्थानं व्यवस्थापनम् । १७ धाराधरो मेघः, धराधरः पर्वतः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यशो-ऽनुरागैर्युगपद् विस्तीर्णैः ककुभो[1]ऽभितः । अचर्चयचिरं सोऽर्धश्रीखण्ड-घुसृणै[2]रिव ॥ २६ ॥
तस्मिन् महीपतौ लक्ष्मीदेव्या लीलानिकेतने । गुणराशिरभूद् वास्तुदेवतेव[3] सहोत्थितः ॥ २७ ॥
सतीनां सीमभूताऽभूत् **सुसीमा** नाम तस्य तु । सधर्मचारिणी देवकन्यासब्रह्मचारिणी ॥ २८ ॥
पाणि-पादा-ऽधरेणावि[4]:पल्लवा पुष्पिता रदैः[5] । दोर्भ्यां सशाखा शुशुभे कल्पद्रुमलतेव सा ॥ २९ ॥
नीरङ्गी[6]च्छन्नवदना पश्यन्ती भुवमेव हि । ईर्यासमितिलीनेव मन्थरं[7] सञ्चचार सा ॥ ३० ॥
तस्याः शरीरं कान्त्येव ह्रिया शीलमभूष्यत । आर्जवेन मन इव वचनं सूनृतेन च ॥ ३१ ॥
वदन्ती साऽतिविशदैर्दन्तांशु[8]भिरशोभत । रजनीरमणज्योत्स्नाप्लवै[9]रिव विभावरी ॥ ३२ ॥
इतो ग्रैवेयके जीवः सोऽपराजितभूपतेः । एका*ग्रत्रिंशदम्भोधिमितमायुरपूरयत् ॥ ३३ ॥
माघस्य षष्ठ्यां कृष्णायां चित्रास्थे[10] रजनीकरे । च्युत्वा **सुसीमा**स्वामिन्याः कुक्षाववततार च ॥ ३४ ॥
तदा मुखे प्रविशतस्तीर्थकृज्जन्मसूचकान् । चतुर्दश महास्वप्नान् **सुसीमा** देव्युदैक्षत ॥ ३५ ॥
वर्धमाने क्रमाद् गर्भे पद्मशय्यासु दोहदः । अभूद् देव्या देवताभिः पर्यपूर्यत तत्क्षणात् ॥ ३६ ॥
ततो नवसु मासेषु दिनेष्वर्धाष्टमेषु च । कार्तिककृष्णद्वादश्यां चन्द्रे चि§त्रागते सति ॥ ३७ ॥
सद्यो वक्रा-ऽतिचाराभ्यां ग्रहेषूच्चगतेषु च । पद्मवर्णं पद्मचिह्नं सा देवी सुषुवे सुतम् ॥ ३८ ॥
षट्पञ्चाशद् दिक्कुमार्यः सूतिकर्मैत्य[11] चक्रिरे । अथाऽऽगत्य प्रभुं शक्रोऽनैषीत् स्वर्णाद्रि[12]मूर्धनि ॥ ३९ ॥
शक्रोत्सङ्गस्थितं नाथमिन्द्रास्तत्राऽच्युतादयः । क्रमेणास्नपयन् सर्वेऽनुज्येष्ठं सोदरा इव ॥ ४० ॥
ईशानाङ्कस्थितं नाथं शक्रोऽपि हि यथाविधि । स्नपयामास पूजादि कृत्वा चेत्यभितुष्टुवे[13] ॥ ४१ ॥
अस्मिन्नपारे संसारमरौ सञ्चारिणां चिरात् । त्वद्दर्शनमभूद् देव ! देहभाजां सुधाप्रपा[14] ॥ ४२ ॥
रूपेणाप्रतिरूपं त्वामश्रान्तं[15] पश्यतां सताम् । कृतार्थेयं समभवद् देवानां निर्निमेषता ॥ ४३ ॥
नित्यान्धकारे प्रद्योतः सुखं [16]निरयिणामपि । अभूत् ते तीर्थनाथत्वरूपकस्याऽऽमुखं[17] ह्यदः ॥ ४४ ॥
पुण्यैः संसारिणां देव ! कृपासारणिवारिणा । सिक्त्वा नयसि वृद्धिं त्वं चिराद् धर्ममहीरुहम् ॥ ४५ ॥
जगत्त्रितयनाथत्वं ज्ञानत्रितयधारिता । इदमाजन्म सिद्धं ते शीतलत्वमिवाम्भसाम्† ॥ ४६ ॥
पद्मवर्ण ! पद्मचिह्न ! पद्मगन्धिमुखानिल ! । पद्मानन ! पद्माद्वैत[18] ! पद्मासद्म ! जय प्रभो ! ॥ ४७ ॥
अपारो दुस्तरश्चायं सदा संसारसागरः । जानुदघ्नोऽधुना नाथ ! त्वत्प्रसादाद् भविष्यति ॥ ४८ ॥
न कल्पान्तरसाम्राज्यं नानुत्तरनिवासिताम् । वाञ्छामि किन्तु शुश्रूषां भवतः पादपद्मयोः ॥ ४९ ॥
स्तुत्वैवं नाथमादाय शक्रो द्रुतमुपेत्य च । सुसीमास्वामिनीपार्श्वे मुमोच द्यां[19] जगाम च ॥ ५० ॥
पद्मशय्यादोहदोऽस्मिन् यन्मातुर्गर्भगेऽभवत् । पद्माभश्चेत्यमुं **पद्मप्रभ** इत्याह्वयत् पिता ॥ ५१ ॥
लाल्यमानो द्युधात्रीभिः क्रीडन् सुरकुमारकैः । क्रमेण ववृधे स्वामी [20]द्वितीयं चा‡ऽऽसदद् वयः ॥ ५२ ॥
सार्धधन्वद्विशत्युच्चः पृथूरस्को[21] बभौ प्रभुः । पद्मरागशिलाक्लृप्तक्रीडाशैल इव श्रियः ॥ ५३ ॥
तित्यक्षु[22]रपि संसारं स्वामी लोकानुवर्तनात् । माता-पित्रनुरोधाच्च चक्रे दारपरिग्रहम् ॥ ५४ ॥

१ ककुप् दिशा। २ श्रीखण्डम् चन्दनम्, घुसृणम् केसरम्। ३ वास्तुदेवता गृहदेवता। ४ आविः प्रकटितम्। ५ रदाः दन्ताः। ६ नीरङ्गी शिरोऽवगुण्ठनम्, भाषायाम् 'लाज घुमटो'। 'नीरङ्गी' शब्दो देश्यप्राकृतरूपः। ७ मन्दं मन्दम्। ८ अंशवः किरणाः। ९ प्लवः पूरम्। * एकोनत्रिं° संवृ० ॥ १० 'चित्रा' नाम नक्षत्रम्। ११ कर्म एत्य=कर्मैत्य। एत्य आगम्य। १२ स्वर्णाद्रिः मेरुः। १३ स्तुतिं चकार। १४ प्रपा सर्वसाधारणो जलपानमण्डपः, भाषायाम् 'परब'। १५ श्रमरहितम् यथा स्यात् तथा। १६ निरयो नरकः। १७ आमुखं प्रथमः प्रारम्भः तीर्थनाथस्वरूपनाटकस्य प्रारम्भिकं फलम्। † °वाम्भसः संवृ० सङ्घ० ॥ १८ अद्वैतेन पद्मरूपाभेदेन सर्वत्र पद्ममयत्वात्। १९ स्वर्गम्। २० द्वितीयं वयः यौवनम्, आसदत् प्राप। ‡ चाभवद् संवृ० मो० ॥ २१ पृथु विशालम्, उरः वक्षः। २२ त्यक्तुम् इच्छुः। § °कातिव° संवृ० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्मतः पूर्वलक्षेषु गतेष्वर्धाष्टमे*ष्वथ । उपरोधात्[1] पितुः स्वामी राज्यभारमुपाददे ॥ ५५ ॥
राज्यं† च पालयन् सार्धां पूर्वलक्षैकविंशतिम् । तथा षोडश पूर्वाङ्गाण्यत्यक्रामज्जगत्पतिः ॥ ५६ ॥
भवपारं जिगमिषुः स्वामी लोकान्तिकामरैः । दीक्षायै प्रेरितो गत्यै पथिकः शकुनैरिव ॥ ५७ ॥
ददौ च वार्षिकं दानं ददतश्च प्रभोर्वसु । कुबेरप्रेरिताः सन्तो जृम्भकाः[2] पर्यपूरयन् ॥ ५८ ॥
अथेन्द्र-भूपैर्विहिताभिषेकः शिबिकां प्रभुः । आरुह्य निर्वृतिकरां सहस्राम्रवणं ययौ ॥ ५९ ॥
चित्रायां कार्तिके कृष्णत्रयोदश्यां च षष्ठकृत् । समं राजसहस्रेणापराह्णे प्राव्रजत् प्रभुः ॥ ६० ॥
द्वितीयदिवसे स्वामी पुरे ब्रह्मस्थलेऽकरोत् । पारणं परमान्नेन सोमदेवनृपौकसि ॥ ६१ ॥
अमरा विदधुस्तत्र पञ्चदिव्याद्भुतान्यथ । स तु चक्रे नृपो रत्नपीठं यत्र स्थितो विभुः ॥ ६२ ॥
विजहार च षण्मासांश्छद्मस्थः परमेश्वरः । आगाद् भूयः[3] सहस्राम्रवणं दीक्षैकसाक्षिकम् ॥ ६३ ॥
षष्ठेन प्रतिमास्थस्य विभोर्वटतरोस्तले । प्रणेशुर्[4]घातिकर्माणि वातोद्धूता[5]भ्रजालवत् ॥ ६४ ॥
ततश्चैत्रस्य राकायां[6] चन्द्रे चित्रामुपेयुषि । अम्लानं केवलज्ञानमभूत् पद्मप्रभप्रभोः ॥ ६५ ॥
सुरा-ऽसुरेन्द्राः समवसरणं तत्र चक्रिरे । प्राग्द्वारा प्रविवेशाथ तत्र त्रिभुवनेश्वरः ॥ ६६ ॥
सार्धक्रोशोन्नतं चैत्यपादपं परमेश्वरः । तत्र प्रदक्षिणीचक्रे तमिव त्रिदिवेश्वरः ॥ ६७ ॥
'तीर्थाय नम' इत्येवमुच्चैरुच्चारितस्तुतिः । रत्नसिंहासने पूर्वाभिमुखो न्यषदत् प्रभुः ॥ ६८ ॥
प्रभोश्च प्रतिबिम्बानि दिक्ष्वन्यास्वपि नाकिनः[7] । तत्प्रभावेण तद्रूपनिर्विशेषाणि[8] चक्रिरे ॥ ६९ ॥
तत्र चास्थाद् यथास्थानं श्रीमान् सङ्घश्चतुर्विधः । स्वामिन्युत्कण्ठयोत्कण्ठः केकिव्रज इवाम्बुदे ॥ ७० ॥
अथ सौधर्मकल्पेन्द्रः प्रणम्य परमेश्वरम् । यथार्थसारया वाचा तुष्टाव[9] स्पष्टभक्तितः ॥ ७१ ॥
निघ्नन् परीषहचमूमुपसर्गान् प्रतिक्षिपन् । प्राप्तोऽसि शमसौहित्यं महतां काऽपि वैदुषी ॥ ७२ ॥
अरक्तो भुक्तवान् मुक्तिमद्विष्टो हतवान् द्विषः । अहो ! महात्मनां कोऽपि महिमा लोकदुर्लभः ॥ ७३ ॥
सर्वथा [10]निर्जिगीषेण भीतभीतेन चागसः[11] । त्वया जगत्त्रयं जिग्ये महतां काऽपि चातुरी ॥ ७४ ॥
दत्तं न किञ्चित् कस्मैचिन्नाऽऽत्तं किञ्चित् कुतश्चन । प्रभुत्वं ते तथाप्येतत् कला काऽपि विपश्चिताम् ॥ ७५ ॥
यद्देहस्यापि दानेन सुकृतं नार्जितं परैः । उदासीनस्य तन्नाथ ! पादपीठे तवालुठत् ॥ ७६ ॥
रागादिषु नृशंसेन[12] सर्वात्मसु कृपालुना । भीम-कान्तगुणेनोच्चैः साम्राज्यं साधितं त्वया ॥ ७७ ॥
सर्वे सर्वात्मनाऽन्येषु दोषास्त्वयि पुनर्गुणाः । स्तुतिस्तवेयं चेन्मिथ्या तत् प्रमाणं सभासदः ॥ ७८ ॥
महीयसामपि महान् महनीयो महात्मनाम् । अहो ! मे स्तुवतः स्वामी स्तुतेर्गोचरमागमत् ॥ ७९ ॥
भूयो भूयो भवत्पाददर्शनं मे भवत्विति । आशंसामि जगन्नाथ ! निर्वाणमपि नापरम् ॥ ८० ॥
एवं स्तुत्वा स्थिते शक्रे प्रारेभे धर्मदेशनाम् । पञ्चत्रिंशदतिशयान्वितया भगवान् गिरा ॥ ८१ ॥
पारावार इवापारः संसारो‡ घोर एष भोः ! । प्राणिनश्चतुरशीतियोनि¶लक्षेषु पातयन् ॥ ८२ ॥
श्रोत्रियः[13] श्वपचः स्वामी पत्तिर्ब्रह्मा कृमिश्च सः । संसारनाट्ये नटवत् संसारी हन्त ! चेष्टते ॥ ८३ ॥
न याति कतमां योनिं ? कतमां वा न मुञ्चति ? । संसारी कर्मसम्बन्धादवक्रय[14]कुटीमिव ॥ ८४ ॥

---

* °मेषु च संवृ० सङ्घ० ॥ १ आग्रहात् । † °ज्यं प्रपालयन् सार्धपू° संवृ० सङ्घ० ॥ २ तन्नामकाः कुबेराज्ञावशवर्तिनो देवविशेषाः । ३ भूयः पुनः । ४ नाशं प्रापुः । ५ उद्धूतं विनाशितम् । ६ पूर्णिमायाम् । ७ देवाः नाकवासिनः, कम् सुखम्, अकम् असुखम् दुःखम्, नास्ति अकं यत्र असौ नाकः स्वर्गः । ८ निर्विशेषम् समानम् । ९ स्तुतिं चकार । १० जिगीषा विजयेच्छा । ११ आगः पापम् । १२ क्रूरो नृशंसः । ‡ °सारोऽप्येष एव भोः ! संवृ० मो० ॥ ¶ °योन्यावर्तेषु संवृ० मो० ॥ १३ श्रोत्रियोऽपि वेदज्ञब्राह्मणोऽपि चण्डालो भवति । एवं स्वामी अपि पत्तिः भाषायाम् 'पगी' भवति । १४ भाटकेन प्राप्तां कुटीम्, भाटकम् भाषायाम् 'भाडुं' ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्तलोकाकाशेऽपि नानारूपैः स्वकर्मतः । वालाग्रमपि तन्नास्ति यन्न स्पृष्टं शरीरिभिः ॥ ८५ ॥
संसारिणश्चतुर्भेदाः श्वभ्रि[1]-तिर्यङ्-नरा-ऽमराः । प्रायेण दुःखबहुलाः कर्मसम्बन्धबाधिताः ॥ ८६ ॥

आद्येषु त्रिषु नरकेषूष्णं शीतं परेषु च । चतुर्थे शीतमुष्णं च दुःखं क्षेत्रोद्भवं त्विदम् ॥ ८७ ॥
नरकेषूष्णशीतेषु चेत् पतेल्लोहपर्वतः । विलीयेत विशीर्येत तदा भुवमनाप्नुवन् ॥ ८८ ॥
उदीरितमहादुःखा अन्योऽन्येनासुरैश्च ते । इति त्रिविधदुःखार्ता वसन्ति नरकावनौ ॥ ८९ ॥
समुत्पन्ना घटीयन्त्रेष्वधार्मिकसुरैर्बलात् । आकृष्यन्ते लघुद्वारा[2] यथा सीसशलाकिका[3] ॥ ९० ॥
गृहीत्वा पाणि-पादादौ वज्रकण्टकसङ्कटे । आस्फाल्यन्ते शिलापृष्ठे वासांसि रजकैरिव ॥ ९१ ॥
दारुदारं[4] विदार्यन्ते दारुणैः क्रकचैः[5] क्वचित् । तिलपेषं[6] च पिष्यन्ते चित्रयन्त्रैः क्वचित् पुनः ॥ ९२ ॥
पिपासार्त्ताः पुनस्तप्तत्रपु-सीसकवाहिनीम्* । नदीं वैतरणीं नामावतार्यन्ते वराककाः ॥ ९३ ॥
छायाभिकाङ्क्षिणः क्षिप्रमसिपत्रवनं गताः । पत्रशस्त्रैः[7] पतद्भिस्ते छिद्यन्ते तिलशोऽसकृत्[8] ॥ ९४ ॥
संश्लेष्यन्ते च शाल्मल्यो वज्रकण्टकसङ्कटाः । तप्तायःपुत्रिकाः[9] क्वापि सारितान्यवधूरतम्[10] ॥ ९५ ॥
संस्मार्य मांसलोलत्वमाश्यन्ते[11] मांसमङ्गजम् । प्रख्याप्य मधुलौल्यं च पाय्यन्ते तापितं त्रपु ॥ ९६ ॥
भ्राष्ट्र[12]-कण्डू[13]-महाशूल-कुम्भीपाकादिवेदनाः । अश्रान्तमनुभाव्यन्ते भृज्ज्यन्ते[14] च भटित्रवत्[15] ॥ ९७ ॥
छिन्न-भिन्नशरीराणां भूयो मिलितवर्ष्मणाम्[16] । नेत्राद्यङ्गानि† कृष्यन्ते[17] बक-कङ्कादिपक्षिभिः ॥ ९८ ॥
एवं महादुःखहताः सुखांशेनापि वर्जिताः । गमयन्ति बहुं कालम् आ त्रयस्त्रिंशसागरम् ॥ ९९ ॥

तिर्यग्गतिमपि प्राप्ताः सम्प्राप्यैकेन्द्रियादिताम् । तत्रापि पृथिवीकायरूपतां समुपागताः ॥ १०० ॥
हलादिशस्त्रैः पाट्यन्ते मृद्यन्तेऽश्व-गजादिभिः । वारिप्रवाहैः प्लाव्यन्ते दह्यन्ते च दवाग्निना ॥ १०१ ॥
व्यथ्यन्ते लवणा-ऽचाम्ल[18]-मूत्रादिसलिलैरपि । लवणक्षारतां प्राप्ताः क्वथ्यन्ते चोष्णवारिणा ॥ १०२ ॥
पच्यन्ते कुम्भकाराद्यैः कृत्वा कुम्भेष्टकादिसात् । चीयन्ते भित्तिमध्ये च नीत्वा कर्दमरूपताम् ॥ १०३ ॥
केचिच्छाणैर्निघृष्यन्ते विपच्य क्षारमृत्पुटैः । टङ्काण्डकैर्विदार्यन्ते पाट्यन्तेऽद्रिसरित्प्लवैः ॥ १०४ ॥
अप्कायतां पुनः प्राप्तास्ताप्यन्ते तपनांशुभिः । घनीक्रियन्ते[19] तुहिनैः संशोष्यन्ते च पांसुभिः ॥ १०५ ॥
क्षारेतररसाश्लेषाद् विपद्यन्ते परस्परम् । स्थाल्यन्तस्था विपच्यन्ते पीयन्ते च पिपासितैः ॥ १०६ ॥
तेजःकायत्वमाप्ताश्च विध्याप्यन्ते जलादिभिः । घनादिभिः[20] प्रकुट्यन्ते ज्वाल्यन्ते चेन्धनादिभिः ॥ १०७ ॥
वायुकायत्वमप्याप्ता हन्यन्ते व्यजनादिभिः[21] । शीतोष्णादिद्रव्ययोगाद् विपद्यन्ते क्षणे क्षणे ॥ १०८ ॥
प्राचीनाद्यास्तु सर्वेऽपि विराध्यन्ते परस्परम् । मुखादिवातैर्बाध्यन्ते पीयन्ते चोरगादिभिः ॥ १०९ ॥
वनस्पतित्वं दशधा प्राप्ताः कन्दादिभेदतः । छिद्यन्ते वाऽथ भिद्यन्ते पच्यते वाऽग्नियोगतः ॥ ११० ॥
संशोष्यन्ते निपिष्यन्ते प्लुष्यन्तेऽन्योन्यघर्षणैः । क्षारादिभिश्च दह्यन्ते सन्धीयन्ते च भोक्तृभिः ॥ १११ ॥
सर्वावस्थासु खाद्यन्ते भज्यन्ते च प्रभञ्जनैः । क्रियन्ते भस्मसाद् दावैरुन्मूल्यन्ते सरित्प्लवैः ॥ ११२ ॥
सर्वेऽपि वनस्पतयः सर्वेषां भोज्यतां गताः । सर्वैः शस्त्रैः सर्वदाऽनुभवन्ति क्लेशसन्ततिम् ॥ ११३ ॥

---

१ श्वभ्रम् नरकम्, श्वभ्री नरकवासी । २ बहूनि लघूनि छिद्राणि यस्मिन् तेन लघुच्छिद्रेण साधनेन, भाषायाम् 'जतरडो' इति सुवर्णकारप्रसिद्धम् उपकरणम् । ३ शलाकिका भाषायाम्–'सळी' । ४ काष्ठविदारणवत् । ५ क्रकचं करपत्रम्, भाषायाम् 'करवत' । ६ तिलपेषणवत् । * पुनस्तत्र त्र° संवृ० ॥ ७ पत्ररूपशस्त्रैः । ८ असकृद् वारंवारम् । ९ अयःपुत्रिकाः लोहपुत्तलिकाः । १० क्रियाविशेषणम्, परस्त्रीरमणं स्मारयित्वा इति भावः । ११ खाद्यन्ते । १२ भ्राष्ट्रम् 'भट्ठि' इति भाषायाम् । १३ कण्डु भ्राष्ट्रसमानम् । १४ 'भ्रस्जींत् पाके' इत्यस्य, पच्यन्ते इत्यर्थः । १५ भटित्रम् भाषायाम्—'भडथुं' । १६ वर्ष्म शरीरम् । † °ङ्गानि क्लिश्यन्ते संवृ०मो० ॥ १७ कृष्यन्ते आकृष्यन्ते । १८ आचाम्लम् अम्लम्, भाषायाम् 'खाटुं' । १९ घनीक्रियन्ते हिमैः । २० घन इति भाषायाम् 'घण' । २१ तालवृन्तादिव्यजनैः, व्यजनम् भाषायाम् 'वीजणो' ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वीन्द्रियत्वे च ताप्यन्ते पीयन्ते पूतरादयः । चूर्ण्यन्ते कृमयः पादैर्भक्ष्यन्ते चटकादिभिः ॥ ११४ ॥
शङ्खादयो निखन्यन्ते निष्कृष्यन्ते जलौकसः । गण्डूपदाद्याः पात्यन्ते जठरादौषधादिभिः ॥ ११५ ॥
त्रीन्द्रियत्वेऽपि सम्प्राप्ते षट्पदी[1]-मत्कुणादयः । विमृद्यन्ते शरीरेण ताप्यन्ते चोष्णवारिणा ॥ ११६ ॥
पिपीलिकास्तु तुद्यन्ते पादैः सम्मार्जनेन च । अदृश्यमानाः कुन्थ्वाद्या मर्थ्यन्ते[*] चाऽऽसनादिभिः ॥ ११७ ॥
चतुरिन्द्रियताभाजः सरघा[2]-भ्रमरादयः । मधुभक्षैर्विराध्यन्ते यष्टि-लोष्टादिताडनैः ॥ ११८ ॥
ताड्यन्ते तालवृन्ताद्यैर्द्राग् दंश-मशकादयः । ग्रस्यन्ते गृहगोधाद्यैर्मक्षिका-मर्कटादयः[3] ॥ ११९ ॥
पञ्चेन्द्रिया जलचराः खाद्यन्तेऽन्योन्यमुत्सुकाः । धीवरैः परिगृह्यन्ते गिल्यन्ते च बकादिभिः ॥ १२० ॥
उत्कील्यन्ते त्वचयद्भिः प्राप्यन्ते च भटित्रताम् । भोक्तुकामैर्विपच्यन्ते निगाल्यन्ते वसार्थिभिः ॥ १२१ ॥
स्थलचारिषु चोत्पन्ना अबला बलवत्तरैः । मृगाद्याः सिंहप्रमुखैर्मार्यन्ते मांसकाङ्क्षिभिः ॥ १२२ ॥
मृगयासक्तचित्तैस्तु क्रीडया मांसकाम्यया । नरैस्तत्तदुपायेन हन्यन्तेऽनपराधिनः ॥ १२३ ॥
क्षुधा-पिपासा-शीतोष्णा-ऽतिभारारोपणादिना । कशा-ऽङ्कुश-प्रतोदैश्च वेदनां प्रसहन्त्यमी ॥ १२४ ॥
खेचरास्तित्तिर-शुक-कपोत-चटकादयः । श्येन-सिञ्चान-गृध्राद्यैर्ग्रस्यन्ते मांसगृध्नुभिः ॥ १२५ ॥
मांसलुब्धैः शाकुनिकैर्[4]नानोपायप्रपञ्चतः । सङ्गृह्य प्रतिहन्यन्ते नानारूपैर्[†]विडम्बनैः ॥ १२६ ॥
जला-ऽग्नि-शस्त्रादिभवं तिरश्चां सर्वतो भयम् । कियद् वा वर्ण्यते स्वस्वकर्मबन्धनिबन्धनम् ? ॥ १२७ ॥
मनुष्यत्वेऽनार्यदेशे समुत्पन्नाः शरीरिणः । तत् तत् पापं प्रकुर्वन्ति यद् वक्तुमपि न क्षमम् ॥ १२८ ॥
उत्पन्ना आर्यदेशेऽपि चाण्डाल-श्वपचादयः । तत् तत् पापं प्रकुर्वन्ति दुःखान्यनुभवन्ति च ॥ १२९ ॥
आर्यदेशे समुद्भूता अप्यनार्यविचेष्टिताः । दुःख-दारिद्र्य-दौर्भाग्यनिर्दग्धा दुःखमासते[5] ॥ १३० ॥
परसम्पत्प्रकर्षेणापकर्षेण स्वसम्पदाम् । परप्रेष्यतया[6] दग्धा दुःखं जीवन्ति मानवाः ॥ १३१ ॥
रुग्-जरा-मरणैर्ग्रस्ता नीचकर्मकदर्थिताः । तां तां दुःखदशां दीनाः प्रपद्यन्ते दयास्पदम् ॥ १३२ ॥
जरा रुजा मृतिर्दास्यं न तथा दुःखकारणम् । गर्भे वासो यथा घोरनरकावाससन्निभः ॥ १३३ ॥
सूचीभिरग्निवर्णाभिर्भिन्नस्य प्रतिरोम यत् । दुःखं नरस्याष्टगुणं तद् भवेद् गर्भवासिनः ॥ १३४ ॥
योनियन्त्राद् विनिष्क्रामन् यद् दुःखं लभते भवी । गर्भवासभवाद् दुःखात् तदनन्तगुणं खलु ॥ १३५ ॥
बाल्ये मूत्र-पुरीषेण यौवने रतचेष्टितैः । वार्धके श्वास-कासाद्यैर्जनो जातु न लज्जते ॥ १३६ ॥
पुरीषसूकरः पूर्वं ततो मदनगर्दभः । जराजरद्गवः पश्चात् कदाऽपि न पुमान् पुमान् ॥ १३७ ॥
स्याच्छैशवे मातृमुखस्[7]तारुण्ये तरुणीमुखः[8] । वृद्धभावे सुतमुखो[9] मूर्खो नान्तर्मुखः क्वचित् ॥ १३८ ॥
सेवा-कर्षण-वाणिज्य-पाशुपाल्यादिकर्मभिः । क्षपयत्यफलं जन्म धनाशाविह्वलो जनः ॥ १३९ ॥
क्वचिच्चौर्यं क्वचिद् द्यूतं क्वचिन्नीचैर्भुजङ्गता[10] । मनुष्याणामहो ! भूयो भवभ्रमनिबन्धनम्[‡] ॥ १४० ॥
सुखित्वे कामललितैर्दुःखित्वे दैन्य-रोदनैः । नयन्ति जन्म मोहान्धा न पुनर्धर्मकर्मभिः ॥ १४१ ॥
अनन्तकर्मप्रचयक्षयक्षममिदं क्षणात् । मानुषत्वमपि प्राप्ताः पापाः पापानि कुर्वते ॥ १४२ ॥
ज्ञान-दर्शन-चारित्ररत्नत्रितयभाजने । मनुजत्वे पापकर्म स्वर्णभाण्डे सुरोपमम्[11] ॥ १४३ ॥

---

१ षट्पदी यूका, भाषायाम् 'जू' । * मर्थ्य(र्द)न्ते संवृ० मो० ॥ २ सरघा मधुमक्षिका, भाषायाम् 'मधमाख' । ३ मर्कट ऊर्णनाभः, भाषायाम् करोळीयो । ४ पक्षिघातकाः शाकुनिकाः । † °रूपविड° संवृ० ॥ ५ दुःखपूर्वकम् आसते तिष्ठन्ति । ६ परदासतया । ७ मातृमुखः मातृपरतन्त्रः । ८ तरुणीपरवशः । ९ सुतपराधीनः । १० भुजङ्गो गणिकापतिः । ‡ °भ्रमनि° संवृ० ॥ ११ मद्यसदृशम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसारसागरगतैः शमिलायुगयोगवत् । लब्धं कथञ्चिन्मानुष्यं हा ! रत्नमिव हार्यते ॥ १४४ ॥
लब्धे मानुष्यके स्वर्ग-मोक्षप्राप्तिनिबन्धने । हा ! नरकास्युपायेषु कर्मसूच्चिष्टते जनः ॥ १४५ ॥
आशास्यते यत् प्रयत्नादनुत्तरसुरैरपि । तत् सम्प्राप्तं मनुष्यत्वं पापैः पापेषु योज्यते ॥ १४६ ॥
परोक्षं नरके दुःखं प्रत्यक्षं नरजन्मनि । तत्प्रपञ्चः प्रपञ्चेन किमर्थमुपवर्ण्यते ? ॥ १४७ ॥
शोका-ऽमर्ष-विषादेर्ष्या-दैन्यादिहतबुद्धिषु । अमरेष्वपि दुःखस्य साम्राज्यमनुवर्तते ॥ १४८ ॥
दृष्ट्वा परस्य महतीं श्रियं प्राग्जन्मजीवितम् । अर्जितस्वल्पसुकृतं शोचन्ति सुचिरं सुराः ॥ १४९ ॥
चिराद् वा बलिनाऽन्येन प्रतिकर्तुं तमक्षमाः । तीक्ष्णेनामर्षशल्येन दोर्दूयन्ते निरन्तरम् ॥ १५० ॥
न कृतं सुकृतं किञ्चिदाभियोग्यं ततो हि नः । दृष्टोत्तरोत्तरश्रीका विषीदन्तीति नाकिनः ॥ १५१ ॥
दृष्ट्वाऽन्येषां विमान-स्त्री-रत्नोपवनसम्पदम् । यावज्जीवं विपच्यन्ते ज्वलदीर्ष्यानलोर्मिभिः ॥ १५२ ॥
हा प्राणेश ! प्रभो ! देव ! प्रसीदेति सगद्गदम् । परैर्मूषितसर्वस्वा भाषन्ते दीनवृत्तयः ॥ १५३ ॥
प्राप्तेऽपि पुण्यतः स्वर्गे काम-क्रोध-भयातुराः । न स्वस्थतामश्नुवते सुराः कान्दर्पिकादयः ॥ १५४ ॥
अथ च्यवनचिह्नानि दृष्ट्वा दृष्ट्वा विमृश्य च । विलीयन्तेऽथ जल्पन्ति क्व निलीयामहे वयम् ? ॥ १५५ ॥
तथाहि–अम्लाना अपि हि मालाः सुरद्रुमसमुद्भवाः । म्लानीभवन्ति देवानां वदनाम्भोरुहैः समम् ॥१५६॥
हृदयेन समं विश्वग्विश्लिष्यत्सन्धिबन्धनाः । महाबलैरप्यकम्प्याः कम्पन्ते कल्पपादपाः ॥ १५७ ॥
आकालप्रतिपन्नाभ्यां प्रियाभ्यां च सहैव हि । श्री-ह्रीभ्यां परिमुच्यन्ते कृतागस इवामराः ॥ १५८ ॥
अम्बरश्रीरपमला मलिनीभवति क्षणात् । अप्यकस्माद् विसृमरैरघौघैर्मलिनैर्घनैः ॥ १५९ ॥
अदीना अपि दैन्येन विनिद्रा अपि निद्रया । आश्रीयन्ते मृत्युकाले पक्षाभ्यामिव कीटिकाः ॥ १६० ॥
विषयेष्वतिरज्यन्ते न्यायधर्मविबाधया । अपथ्यान्यपि यत्नेन स्पृहयन्ति मुमूर्षवः ॥ १६१ ॥
नीरुजामपि भज्यन्ते सर्वाङ्गोपाङ्गसन्धयः । भाविदुर्गतिपातोत्थवेदनाविवशा इव ॥ १६२ ॥
पदार्थग्रहणेऽकस्माद् भवन्त्यपटुदृष्टयः । परेषां सम्पदुत्कर्षमिव प्रेक्षितुमक्षमाः ॥ १६३ ॥
गर्भावासनिवासोत्थदुःखागमभयादिव । प्रकम्पतरलैरङ्गैर्भापयन्ति परानपि ॥ १६४ ॥
निश्चितच्यवनाश्चिह्नैर्लभन्ते न रतिं क्वचित् । विमाने नन्दने वाप्यामङ्गारालिङ्गिता इव ॥ १६५ ॥
हा प्रियाः ! हा विमानानि ! हा वाप्यो ! हा सुरद्रुमाः ! । क्व द्रष्टव्याः पुनर्यूयं हतदैववियोजिताः? ॥१६६॥
अहो ! स्मितं सुधावृष्टिरहो ! बिम्बाधरः सुधा । अहो ! वाणी सुधावर्षिण्यहो ! कान्ता सुधामयी ॥१६७॥
हा रत्नघटिता स्तम्भाः ! हा श्रीमन्मणिकुट्टिमाः ! । हा वेदिका रत्नमय्यः ! कस्य यास्यथ संश्रयम् ? ॥ १६८ ॥
हा ! रत्नसोपानचिताः कमलोत्पलमालिताः । भविष्यन्त्युपभोगाय कस्येमाः पूर्णवापयः ? ॥ १६९ ॥
हे पारिजात ! मन्दार ! सन्तान ! हरिचन्दन ! । कल्पद्रुम ! विमोक्तव्यः किं भवद्भिरयं जनः ? ॥१७०॥
हहा ! स्त्रीगर्भनरके वस्तव्यमवशस्य मे । हहाऽशुचिरसास्वादः कर्तव्यो मयका मुहुः ? ॥ १७१ ॥

---

१ शमिला भाषायां 'समोल', यत्र छिद्रे योक्त्रधारणाय रज्जुः निक्षिप्यते। युगं च भाषायां 'धोसरुं'। शमिलायुगयोगश्चेत्थम्—यथा समुद्रे एकतः शमिला क्षिप्ता, अन्यतः युगम् क्षिप्तम्। तौ द्वौ प्रवाहेण वाह्यमानौ पुनः कदा सम्बन्धयुक्तौ भविष्यतः अर्थात् युगच्छिद्रे शमिला कदा कथं प्रविशेत्? इति न ज्ञायते। यथा च तयोर्द्वयोः सम्बन्धो दुःशकः एवमेव मनुजभवः सुदुर्लभः। २ उद्यमशीलो भवति। ३ विस्तारेण। ४ पुनः पुनः भृशं वा दूनाः क्षीणाः भवन्ति। ५ किङ्करदेवत्वम्। ६ मूषित-चोरित। ७ प्राप्नुवन्ति। कान्दर्पिकाः अधमदेवाः। ८ समन्तात्। ९ वस्त्रम्। *°रप्यम° संमू०॥ १० विसृमरं प्रसरणशीलम्। ११ निद्रारहिताः। १२ न्यायो नीतिमार्गः। १३ मरणाभिलाषिणः। १४ रोगरहितानाम् अपि। १५ पदार्थप्रत्यक्षीकरणे अपटुदृष्टयः मन्ददृष्टयः। १६ भयं जनयन्ति। १७ अङ्गारैर्दग्धा इव। १८ कुट्टिमम् भूमितलम्। १९ आश्रयम्। २० मालिताः शोभिताः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हहा हा ! जठराङ्गारशकटीपाकसम्भवम् । मया दुःखं विषोढव्यं बद्धेन निजकर्मणा ? ॥ १७२ ॥
रतेरिव निधानानि क तास्ताः सुरयोषितः ? । काऽशुचिस्यन्दबीभत्सा भोक्तव्या नरयोषितः ? ॥ १७३ ॥
एवं स्वर्लोकवस्तूनि सारं सारं दिवौकसः । विलपन्तः क्षणस्यान्तर्विध्यायन्ति प्रदीपवत् ॥ १७४ ॥
॥ नवभिः कुलकम् ॥

असारमित्थं संसारं चिन्तयित्वा विमुक्तये । प्रयतेत परिव्रज्योपायेन शुभधीर्जनः ॥ १७५ ॥

भर्तुस्तया देशनया प्रतिबुद्धाः सहस्रशः । केचिदाददिरे दीक्षां सम्यक्त्वमपरे पुनः ॥ १७६ ॥
सुव्रताद्या गणभृतोऽभूवन् सप्तोत्तरं शतम् । जग्रन्थुर्द्वादशाङ्गीं ते प्रपद्य त्रिपदीं प्रभोः ॥ १७७ ॥
देशनाविरते नाथे सुव्रतो देशनां व्यधात् । शिष्या गुरूणां कूपानामाहावा इव तत्क्रियाः ॥ १७८ ॥
विरते देशनातोऽस्मिन्नपि सर्वे सुरादयः । प्रणिपत्य जगन्नाथं स्थानं निजनिजं ययुः ॥ १७९ ॥

तत्तीर्थजन्मा कुसुमो नीलाङ्गो मृगवाहनः । सफलं चाभयदं च बिभ्राणो दक्षिणौ करौ ॥ १८० ॥
बिभ्रत् पाणी नकुला-ऽक्षसूत्रिणौ दक्षिणेतरौ । सदा सन्निधिवर्त्यासीद् भर्तुः शासनदेवता ॥ १८१ ॥
युग्मम् ॥

तथोत्पन्नाऽच्युता नाम श्यामाङ्गी नरवाहना । बिभ्राणा दक्षिणौ बाहुदण्डौ वरद-पाशिनौ ॥ १८२ ॥
वामौ च कार्मुकधरा-ऽभयदौ बिभ्रती भुजौ । पद्मप्रभजिनेन्द्रस्याभवच्छासनदेवता ॥ १८३ ॥
अमुक्तसन्निधिस्ताभ्यां विश्वानुग्रहकाम्यया । विजहार जगत्स्वामी ग्रामा-ऽऽकर-पुरादिषु ॥१८४॥ युग्मम् ॥

साधूनां त्रीणि लक्षाणि सहस्रास्त्रिंशदेव च । साध्वीनां च चतुर्लक्षी सहस्राणि च विंशतिः ॥ १८५ ॥
चतुर्दश*पूर्वभृतां द्वे सहस्रे शतत्रयम् । अवधिज्ञानवतां च सहस्राणि पुनर्दश ॥ १८६ ॥
मनःपर्ययिणां त्रीणि शतान्ययुतमेव च । सहस्राणि द्वादश तु केवलज्ञानशालिनाम् ॥ १८७ ॥
वैक्रियलब्धिसहस्राः षोडशाष्टोत्तरं शतम् । वादलब्धिधराणां तु सहस्रा नव षट्शती ॥ १८८ ॥
श्रावकाणामुभे लक्षे षट्सप्ततिसहस्र्यपि । श्राविकाणां पुनः पञ्च लक्षाः पञ्च सहस्र्यपि ॥ १८९ ॥
परिवारेऽभवद् भर्तुः केवलज्ञानकालतः । षण्मास्या षोडशाङ्गोनं पूर्वलक्षं विहारिणः ॥ १९० ॥

मोक्षकालमथाऽऽसन्नं विदित्वा परमेश्वरः । सम्मेताद्रिं जगामाथानशनं मासिकं व्यधात् ॥१९१॥
मार्गशीर्षे च कृष्णैकादश्यां चित्रास्थिते विधौ । क्षीणशेषचतुष्कर्मा सिद्धानन्तचतुष्टयः ॥ १९२ ॥
मुनीनामनशनिनां शतैस्त्र्यग्रैः सहाष्टभिः । ध्यानाचतुर्थाचतुर्थं पुमर्थमगमत् प्रभुः ॥ १९३ ॥ युग्मम् ॥
अर्धाष्टमाः पूर्वलक्षाः कौमारे षोडशाङ्गयुक् । पूर्वलक्षाणां सार्धैकविंशती राज्यपालने ॥ १९४ ॥
अङ्गैः षोडशभिर्न्यूनं पूर्वलक्षं पुनर्व्रते । इति त्रिंशत्पूर्वलक्षाण्यायुः पद्मप्रभप्रभोः ॥ १९५ ॥
सुमतिस्वामिनिर्वाणान्मोक्षः पद्मप्रभप्रभोः । गतायामब्धिकोटीनां सहस्रनवतावभूत् ॥ १९६ ॥

इन्द्राश्चतुःषष्टिरुपेत्य तत्र प्रभोर्मुनीनामपि भक्तिभाजः ।
शरीरसंस्कारमकार्षुरुच्चैर्निर्वाणकल्याणमहोत्सवं च ॥ १९७ ॥

॥ इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये तृतीये पर्वणि श्रीपद्मप्रभस्वामिचरितवर्णनो नाम चतुर्थः सर्गः ॥

१ अङ्गारशकटी भाषायाम्—'सगडी'। २ आहावाः कूपसमीपवर्तिनः गर्ताः। * °पूर्वधरा द्वे सं१ मो० ॥ ३ षोडशाङ्गोनम्। ४ पुरुषार्थम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चमः सर्गः ।

श्रीसुपार्श्वनाथचरित्रम् ।

श्रीसुपार्श्वजिनेन्द्रस्य पान्तु वो देशनागिरः । उद्वेलकेवलज्ञानसमुद्रस्येव वीचयः ॥ १ ॥
चरितं श्रीसुपार्श्वस्य वक्ष्येऽहं सप्तमार्हतः । कुबोधध्वान्तसुदिनमशेषाणां शरीरिणाम् ॥ २ ॥
धातकीखण्डद्वीपस्य प्राग्विदेहविशेषके । विजये रमणीयेऽस्ति नाम्ना क्षेमपुरी पुरी ॥ ३ ॥
तत्राऽऽसीज्जगदानन्दी नन्दिषेणो नरेश्वरः । दिनेश्वर इव श्रीमांस्तेजसामेकमास्पदम् ॥ ४ ॥
अशेषराज्यव्यापारे जागरूकस्य सर्वदा । तस्य प्रधान्यभूद्[1] धर्मो दोर्दण्ड इव दक्षिणः ॥ ५ ॥
निघ्नतः कण्टकीभूतान् जनतासुखहेतवे । तस्य कोपोऽपि धर्माय किं पुनः प्रस्तुताः क्रियाः ? ॥ ६ ॥
अहो ! आश्चर्यमनिशं स्मृतिगोचरतां गतः । श्रीवीतरागो भगवांस्तस्य हृच्छयतां* ययौ ॥ ७ ॥
आर्त्तानामर्त्तिहरणे[2] स शरण्यः सदाऽभवत् । स्मरातुरपरस्त्रीणां न कदापि कथञ्चन ॥ ८ ॥
कालेन गच्छता सोऽभूद् भवोद्विग्नो[3] महामनाः । गत्वाऽरिदमनाचार्यान्तिके दीक्षामुपाददे ॥ ९ ॥
स व्रतं पालयंस्तीक्ष्णं स्थानकैः कैश्चिदप्यथ । तीर्थकृन्नामकर्मोपार्जयामास महामुनिः† ॥ १० ॥
ततो विधायानशनं समये स महामतिः । मृत्वा ग्रैवेयके षष्ठे महर्द्धिरमरोऽभवत् ॥ ११ ॥

इतश्च जम्बूद्वीपस्यामुष्य क्षेत्रेऽत्र भारते । पुरी वाराणसीत्यस्ति काशिदेशस्य मण्डनम् ॥ १२ ॥
रत्नभित्तिषु गेहेषु तस्यामुद्द्योतशालिषु । अष्टप्रकारपूजायां दीपो देवाग्रतो यदि ॥ १३ ॥
चैत्येषु तस्यामुद्दण्डैरैर्दण्डोपरि[4] चन्द्रमाः । धर्मस्यैकातपत्रस्याऽऽतपत्रश्रियमश्नुते ॥ १४ ॥
विद्याधर्यो रममाणास्तद्वप्रा-ऽट्टालकोपरि[5] । जगतीजालकटकान् विस्मृत्य सुखमासते ॥ १५ ॥
वासागारेषु कूजन्ति[6] तस्यां पारापता निशि । रतिभर्तुः प्रबोधार्थमिव मङ्गलपाठकाः ॥ १६ ॥
सतां प्रतिष्ठाकल्पद्रुः प्रतिष्ठाभाक् सुरेन्द्रवत् । प्रतिष्ठो नाम तत्राऽऽसीन्न्यायनिष्ठो महीपतिः ॥ १७ ॥
मेरोरिव महत्त्वेनाप्रतिरूपस्य सर्वदा । तस्यैव पादच्छायायामतिष्ठदखिलं जगत् ॥ १८ ॥
श्वेतातपत्रैर्मायूरातपत्रैश्च‡ निरन्तरैः । द्यौर्बलाकाघनाङ्केव तस्मिन् दिग्विजयिन्यभूत् ॥ १९ ॥
सोऽभूत् प्रत्यर्थिनां[7] युद्धे न कदापि पराङ्मुखः । अर्थिनामिव निःसीमपुरुषव्रतभूषणः ॥ २० ॥
आजन्मानन्यसाहाय्यो लीलयैव महाभुजः । स सदा धारयामास लीलाकमलवन्महीम् ॥ २१ ॥
तस्य पृथ्वीपतेः पृथ्वी नाम पृथ्वीव[8] जङ्गमा । सधर्मचारिण्यभवत् स्थैर्यादिगुणभाजनम् ॥ २२ ॥
तस्याः शीलं च रूपं च नित्यं भूषणतां ययौ । भूषणानि तु बाह्यानि भूष्यतां प्रतिपेदिरे ॥ २३ ॥
निसर्गनैर्मल्यजुषो गुणास्तस्यामनेकशः । उत्पेदिरे ताम्रपर्णीनद्यां मुक्ताकणा इव ॥ २४ ॥
लावण्यसलिलं वक्त्र-नेत्र-पाण्यङ्घ्रिपङ्कजम् । तद्रूपमाभाच्छ्रीदेव्याः पद्महृद इवापरः ॥ २५ ॥
तीर्थकृज्जननीत्वेन भावि दासीत्वमस्तु तत् । रूपेणापि जितास्तस्या दास्योऽभूवन् सुराङ्गनाः ॥ २६ ॥

इतश्च नन्दिषेणस्य जीवो ग्रैवेयके स्थितः । षष्ठेऽपूरयदायुः स्वमष्टाविंशतिसागरम् ॥ २७ ॥
च्युत्वा भाद्रपदे कृष्णाष्टम्यां राधागते[9] विधौ । स जीवो नन्दिषेणस्य पृथ्व्याः कुक्षाववातरत् ॥ २८ ॥

१ प्रधान्यभूत्–प्रधानो बभूव । * कामरूपताम् संवृ० टिप्पणी ॥ २ अर्त्ति–पीडा । ३ संसाराद् उद्विग्नः ।
† °हामुनिः । मृ° मो० ॥ ४ –रै–सुवर्णम् । ५ वप्रो दुर्गः, अट्टालकः भाषायाम् 'अटारी' । ६ अव्यक्तं शब्दायन्ते ।
‡ °पत्रमायू° संवृ० ॥ ७ रिपूणाम् । ¶ °तमीप° संवृ० मो० ॥ ८ भूमिरिव । ९ विशाखानक्षत्रगते चन्द्रे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुखसुप्ता निशाशेषे पृथ्वीदेवी तदैक्षत । तीर्थकृज्जन्मपिशुनान् महास्वप्नांश्चतुर्दश ॥ २९ ॥
सुप्तमेकफणे पञ्चफणे नवफणेऽपि च । नागतल्पे ददर्श स्वं देवी गर्भे प्रवर्धिनि ॥ ३० ॥
ज्येष्ठस्य शुद्धद्वादश्यां विशाखास्थे निशाकरे । स्वर्णवर्णं स्वस्तिकाङ्कं सुतं सा सुषुवे सुखम् ॥ ३१ ॥
जिनजन्मावधिज्ञानाज्ज्ञात्वा तत्रैत्य सत्वरम् । षट्पञ्चाशद् दिक्कुमार्यः सूतिकर्माणि चक्रिरे ॥ ३२ ॥
तथैवाऽऽगत्य शक्रोऽपि समादाय जगत्पतिम् । मेरुमूर्धन्यतिपाण्डुकम्बलाम[1]गमच्छिलाम् ॥ ३३ ॥
बालधार इवोत्सङ्गे निधाय परमेश्वरम् । रत्नसिंहासने तत्र निषसाद पुरन्दरः ॥ ३४ ॥
तीर्थनाथं तीर्थतोयैस्त्रिषष्टिरथ वासवाः । क्रमेणास्नपयन्नब्धिवेला इव तटाचलम् ॥ ३५ ॥
ईशानाङ्के निवेश्येशं शक्रोऽप्यस्नपयज्जलैः । स्फाटिकोक्ष[2]विषाणोत्थैर्धारायन्त्रोत्थितैरिव ॥ ३६ ॥
विलिप्य पूजयित्वा च वस्त्रालङ्करणादिना । जगत्पतिमिति स्तोतुं सौधर्मेन्द्रः प्रचक्रमे ॥ ३७ ॥

अविज्ञेयस्वरूपे त्वय्यर्थवादाग्रहो मम । आदित्यमण्डलादाने फ[3]लादानं कपेरिव ॥ ३८ ॥
तथापि त्वत्प्रभावेण स्तोष्ये त्वां परमेश्वर ! । स्यन्दन्ते चन्द्रकान्ता हि चन्द्रकान्तिप्रभावतः ॥ ३९ ॥
दत्से समस्तकल्याणैर्यत् सुखं श्व[4]भ्रिणामपि । तिर्यग्-नरा-ऽमराणां तत् कथं नासि सुखप्रदः ? ॥ ४० ॥
अप्युद्द्योतो जगत्त्रय्यामस्मिन् जन्मोत्सवे तव । उदेष्यत्केवलज्ञानतरणेररु[5]णायते ॥ ४१ ॥
त्वत्प्रसादस्य सम्प[6]र्कादिवैताः ककुभोऽखिलाः । प्र[7]सादं कलयामासुरधुना परमेश्वर ! ॥ ४२ ॥
अमी च वान्ति सुखदाः पवनाः पा*[8]वनाकृते ! । सुखदे त्वयि नाथे हि जगतां कः प्रतीपकृत् ? ॥ ४३ ॥
धिग् नः प्र[9]मादिनो धन्यान्यासनान्यपि तानि नः । देव ! त्वज्जन्मकल्याणं चलित्वाऽज्ञापि यैः क्षणात् ॥४४॥
निदानं देव ! बध्नामि निषिद्धमपि सम्प्रति । त्वद्दर्शनफलं मेऽस्तु त्वयि भक्तिर्निरन्तरा ॥ ४५ ॥

स्तुत्वैवं प्रभुमादाय शक्रः सत्वरमेत्य च । मुमोचालक्षितं पृथ्वीदेव्याः पार्श्वे यथास्थिति ॥ ४६ ॥
प्राणिनः प्रीणयन् का[10]रामोक्षणादिभिरद्भुतैः । महोत्सवं नृपोऽकार्षीदानन्दफलपादपम् ॥ ४७ ॥
गर्भस्थेऽस्मिन् सुपार्श्वाऽभूज्जननी यत् ततः प्रभोः । सुपार्श्व इत्यभिधानं प्रतिष्ठः प्र[11]त्यतिष्ठिपत् ॥४८॥
शक्रसङ्क्रमिताङ्गु[12]ष्ठसुधापो ववृधे प्रभुः । सु[13]धान्धसामपि वन्द्या अर्हन्तोऽस्त[14]न्यपा यतः ॥ ४९ ॥
उत्तीर्योत्तीर्य चोत्सङ्गाच्चापलाच्छैशवोचितात् । बभ्रंबभ्रं मुहुर्धात्रीश्चिक्रीडेतस्ततः प्रभुः ॥ ५० ॥
पणपूर्वं क्रीडतश्च मर्त्यरूपान् सुरान् प्रभुः । जिगाय लीलया शक्ताः क्रीडायामपि केऽर्हताम् ? ॥ ५१ ॥
शैशवं व्यतिचक्राम क्रमेण परमेश्वरः । क्रीडन् विचित्रक्रीडाभिस्त्रि[15]यामामिव कामुकः ॥ ५२ ॥
धनुःशतद्वयोत्तुङ्गः सर्वलक्षणलक्षितः । प्रपेदे यौवनं स्वामी भूषणं रूपसम्पदः ॥ ५३ ॥
दाक्षिण्येन प्रभुः पित्रोर्नृपपुत्रीरु[16]पायत । अपि त्रिलोकनाथानां मान्यं हि पितृशासनम् ॥ ५४ ॥
भोग्यं कर्म क्षपयितुं रमणीभिः समं विभुः । अरंस्त भगवन्तो हि कर्मच्छेदाय तत्पराः ॥ ५५ ॥
ततो गतेषु कौमारे पूर्वलक्षेषु पञ्चसु । अभ्यर्थ्याऽऽरोपितं पित्रा प्रभुर्भूभारमु[17]द्दधे ॥ ५६ ॥
विंश[18]त्यङ्कैः समधिकाः पूर्वलक्षाश्चतुर्दश । व्य[19]तीयाय जगन्नाथः पृथिवीं परिपालयन् ॥ ५७ ॥

उपलक्ष्येव संसारविरक्तं स्वामिनो मनः । उपस्वा[20]म्याययुर्ब्रह्मलोकाल्लौकान्तिकामराः ॥ ५८ ॥

---

१ अगमत्–जगाम । २ स्फाटिकोक्षविषाणोत्थैः–स्फाटिकबलीवर्दशृङ्गनिर्गतैः ॥ ३ कूर्दनम्, भाषायाम्–'फाल भरवी, कूदको मारवो' । ४ नारकाणाम् । ५ अरुणोदय इव । ६ कृपायाः सम्बन्धात् । ७ प्रसन्नताम्–निर्मलताम् । * पवनाकृते संवृ० । पवित्रीकरणार्थम् इति संवृ० टिप्पणी ॥ ८ पवित्राकृतियुक्त ! । ९ द्वितीयाबहुवचनम् । १० कारा–कारागृहम् । ११ स्थापयामास । १२ यः अङ्गुष्ठे शक्रसंक्रमितां सुधां पिबति । १३ सुधाभक्षका देवाः । १४ अर्हन्तो न मातरं धयन्ते अतः अस्तन्यपाः । १५ त्रियामा–रात्रिः । १६ विवाहं चकार । १७ धारयाञ्चकार । १८ विंशत्यङ्कैः–विंशतिपूर्वाङ्कैरित्यर्थः । १९ व्यतीतानि । २० स्वामिनः समीपम् उपस्वामि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न बोध्यसे स्वयम्बुद्धः स्वभक्त्या स्मार्यसे पुनः । तीर्थं प्रवर्तय स्वामिन्नित्युक्त्वा ते दिवं ययुः ॥ ५९ ॥
सुपार्श्वस्वाम्यपि ततो दीक्षादानोत्सवोत्सुकः । दानचिन्तामणिर्दानं ददौ संवत्सरावधि ॥ ६० ॥
सांवत्सरिकदानान्ते वासवैश्चलितासनैः । दीक्षाभिषेको विदधे सुपार्श्वस्वामिनस्ततः ॥ ६१ ॥
अथो मनोहरां नाम नानारत्नमनोहराम् । अध्यारुरोह शिबिकां शिवगामी जगत्पतिः ॥ ६२ ॥
अन्वीयमानो भगवान् सुरा-ऽसुर-नरेश्वरैः । सहस्राम्रवणं नाम जगामोपवनोत्तमम् ॥ ६३ ॥
त्रिजगद्भूषणं स्वामी तत्रौज्झद् भूषणादिकम् । शक्रन्यस्तं देवदूष्यं स्कन्धदेशे दधार च ॥ ६४ ॥
ज्येष्ठशुद्धत्रयोदश्यां राधायां पश्चिमेऽहनि । समं नृपसहस्रेण षष्ठेन प्राव्रजत् प्रभुः ॥ ६५ ॥
मनःपर्ययमुत्पेदे तुर्यं ज्ञानं जगत्पतेः । नारकाणामपि तदा सुखं क्षणमजायत ॥ ६६ ॥
पाटलीखण्डनगरे महेन्द्रनृपसद्मनि । द्वितीयेऽह्नि प्रभुश्चक्रे परमान्नेन पारणम् ॥ ६७ ॥
विदधुर्वसुधारादि देवाश्चाद्भुतपञ्चकम् । रत्नपीठं महेन्द्रस्तु यत्र तस्थौ जगत्पतिः ॥ ६८ ॥
जयन् परीषहचमूतापं गिरिरिवाभवत् । निराकाङ्क्षः शरीरेऽपि समः स्वर्ण-तृणादिषु ॥ ६९ ॥
एकाकी मौननिरतो नित्यमेकान्तदत्तदृक् । विविधाभिग्रहरतोऽनासीनो निर्भयः स्थिरः ॥ ७० ॥
विविधाः प्रतिमाः कुर्वंश्छद्मस्थो ध्यानमास्थितः । नव मासान् जगन्नाथो विजहार वसुन्धराम् ॥ ७१ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
विहरंश्चाऽऽययौ भूयः सहस्राम्रवणं प्रभुः । शिरीषमूले षष्ठेन तत्रास्थात् प्रतिमाधरः ॥ ७२ ॥
द्वितीयशुक्लध्यानान्ते वर्तमानो जगद्गुरुः । संसारस्येव मर्माणि घातिकर्माण्यघातयत् ॥ ७३ ॥
फाल्गुनस्य कृष्णषष्ठ्यां विशाखास्थे निशाकरे । केवलज्ञानमुत्पेदे सुपार्श्वस्वामिनस्तदा ॥ ७४ ॥
सुरा-ऽसुरेन्द्राः सद्योऽपि समागत्य नियुक्तवत् । चक्रुः समवसरणं स्वामिनो देशनाकृते ॥ ७५ ॥
पूर्वद्वारेण तत्राथ मोक्षद्वारं जगद्गुरुः । प्रविवेश यथार्हंस्तु द्वारैः सुर-नरादयः ॥ ७६ ॥
चतुर्धन्वशताग्रैकक्रोशोच्चं चैत्यपादपम् । तत्र प्रदक्षिणीचक्रे प्रभुर्भूकल्पपादपः ॥ ७७ ॥
'तीर्थाय नम' इत्युक्त्वा तत्र सिंहासनोत्तमे । उपाविशज्जगन्नाथोऽतिशयैरुपशोभितः ॥ ७८ ॥
पृथ्वीदेव्या तदा स्वप्ने दृष्टं तादृग्महोरगम् । शक्रो विचक्रे भगवन्मूर्ध्नि च्छत्रमिवापरम् ॥ ७९ ॥
तदादि चाभूत् समवसरणेष्वपरेष्वपि । नाग एकफणः पञ्चफणो नवफणोऽथवा ॥ ८० ॥
स्वामिनः प्रतिरूपाणि देवा दिक्ष्वपरास्वपि । विकुर्वन्ति स्म तादृंशि तत्प्रभावेण भूयसा ॥ ८१ ॥
सङ्घोऽपि भगवांस्तत्र यथास्थानमवास्थित । न स्थानव्यत्ययो जातु सामान्यस्यापि पर्षदि ॥ ८२ ॥
अथ सौधर्मकल्पेन्द्रः प्रणम्य परमेश्वरम् । विरचय्याञ्जलिं मूर्ध्नि स्तोतुमेवं प्रचक्रमे ॥ ८३ ॥
निःशेषभुवनकोशपद्मकोशविवस्वते । तुभ्यं नमो भगवते श्रीमते सप्तमार्हते ॥ ८४ ॥
गतं दुःखेन विश्वस्याऽऽविर्भूतं च मुदा प्रभो ! । विश्वं तीर्थपरावृत्त्या परावृत्तमिवाधुना ॥ ८५ ॥
धर्मचक्रिंस्तव वचोरत्नदण्डेन भास्वता । निर्वाणवैताढ्यगिरेर्द्वारमद्योद्घटिष्यते ॥ ८६ ॥
उन्नतस्येव मेघस्य भगवन् ! दर्शनं तव । विश्वस्य जीवलोकस्य सन्तापच्छेदनान्मुदे ॥ ८७ ॥
अनन्तज्ञान भगवन् ! देशनावचनं तव । दरिद्रैर्द्रविणमिव चिरादस्माभिराप्स्यते ॥ ८८ ॥
कृतार्था दर्शनेनापि तवाद्य वचनेन तु । विशेषतो भविष्यामो मुक्तिद्वारप्रकाशिना ॥ ८९ ॥

१ तीर्थङ्करा हि दीक्षाग्रहणात् पूर्वं संवत्सरपर्यन्तं भूरि भूरि दानं कुर्वन्ति अत उक्तं दीक्षादानोत्सवोत्सुकः । २ सिद्धिगतिं गन्ता । ३ औज्झत् मुमोच । ४ विशाखानामके नक्षत्रे । ५ अनुपविशन्–ऊर्ध्वं तिष्ठन्नेव इत्यर्थः । ६ नियुक्तः आज्ञानुसारी दास इव । ७ समवसरणमित्यर्थः । ८ उपविवेश । ९ हर्षेण, हर्षः प्रकटो भूत इत्यर्थः । १० हे धर्मचक्रवर्तिन् ! ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तदर्शन-ज्ञान-वीर्या-ऽऽनन्दमयात्मने । सर्वातिशयपात्राय तुभ्यं योगात्मने नमः ॥ ९० ॥
इन्द्रादिपदवीप्राप्तिः कियदेतज्जगत्पते ! । तव शुश्रूषया यस्मात् त्वादृशैरपि भूयते ॥ ९१ ॥
इति स्तुत्वा द्युसन्नाथे तूष्णीकत्वमुपेयुषि । प्रारेभे भगवानेवं सर्वज्ञो धर्मदेशनाम् ॥ ९२ ॥
आत्मनः सर्वमप्येतदन्यत् तदिह तत्कृते । कृत्वा कर्म भवाब्धौ स्वं पातयत्यबुधो जनः ॥ ९३ ॥
यत्रान्यत्वं शरीरस्य वैसदृश्याच्छरीरिणः । धन-बन्धु-सहायानां तत्रान्यत्वं न दुर्वचम् ॥ ९४ ॥
यो देह-धन-बन्धुभ्यो भिन्नमात्मानमीक्षते । क्व शोकशङ्कुना तस्य हन्ताऽऽतङ्कः प्रतन्यते ? ॥ ९५ ॥
इहान्यत्वं भवेद् भेदः स वैलक्षण्यलक्षणः । आत्म-देहादिभावानां साक्षादेव प्रतीयते ॥ ९६ ॥
देहाद्या इन्द्रियग्राह्या आत्माऽनुभवगोचरः[1] । तदेतेषामनन्यत्वं कथं नामोपपद्यते ? ॥ ९७ ॥
आत्म देहादिभावानां यद्यन्यत्वं स्फुटं ननु । ततो देहप्रहारादौ कथमात्मा प्रपीड्यते ? ॥ ९८ ॥
सत्यं येषां शरीरादौ भेदबुद्धिर्न विद्यते । तेषां देहप्रहारादौवात्मपीडोपजायते ॥ ९९ ॥
ये तु देहा-ऽऽत्मनोर्भेदं सम्यगेव प्रपेदिरे । तेषां देहप्रहारादावपि* नाऽऽत्मा प्रपीड्यते ॥ १०० ॥
[2]भेदं विद्वान् न पीड्येत पितृदुःखेऽप्युपस्थिते । आत्मीयत्वाभिमानेन भृत्यदुःखेऽपि मुह्यति ॥ १०१ ॥
[3]अस्वत्वेन गृहीतः सन् पुत्रोऽपि पर एव हि । स्वकीयत्वेन भृत्योऽपि स्वपुत्रादतिरिच्यते ॥ १०२ ॥
सम्बन्धानात्मनो जन्तुर्यावतः कुरुते प्रियान् । तावन्तो हृदये तस्य जायन्ते शोकशङ्कवः ॥ १०३ ॥
सर्वमन्यदिदं तस्माज्जानीयात् पटुधीर्जनः† । कस्यापि हि विनाशात् तन्न मुह्येत् तत्त्ववर्त्मनि ॥ १०४ ॥
[4]अस्यन् ममत्वमृल्लेपं तुम्बीफलमिवाचिरात् । भवं तरति शुद्धात्मा परिव्रज्याधरो नरः ॥ १०५ ॥
एवं च देशनां श्रुत्वाऽबुध्यन्त बहवो जनाः । प्रव्रज्यां जगृहुः केऽपि श्रावकत्वमथापरे ॥ १०६ ॥
विदर्भाद्या गणभृतः पञ्चनवतिरभूवन् । ते चक्रुर्द्वादशाङ्गीं च स्वामिवागनुसारतः[5] ॥ १०७ ॥
स्वामिनो देशनान्ते च विदर्भो गणभृद्वरः । स्वाम्यङ्घ्रिपीठाध्यासीनो विदधे धर्मदेशनाम् ॥ १०८ ॥
विदर्भेऽपि गणधरे देशनाविरते सति । नमस्कृत्य प्रभुं जग्मुः स्वं स्वं स्थानं सुरादयः ॥ १०९ ॥
तत्तीर्थजन्मा मातङ्गो नीलाङ्गो गजवाहनः । बिल्वधरं पाशधरं बिभ्राणो दक्षिणौ करौ[6] ॥ ११० ॥
दधद् वामौ च दोर्दण्डौ नकुला-ऽङ्कुशधारिणौ । सुपार्श्वस्वामिनः पार्श्वेऽभवच्छासनदेवता ॥ १११ ॥
तथोत्पन्ना शान्तादेवी स्वर्णरुग्[7] गजवाहना । वरदं साक्षसूत्रं[8] च बिभ्राणा दक्षिणौ भुजौ ॥ ११२ ॥
सशूला-ऽभयदौ बाहू दधाना दक्षिणेतरौ । भर्तुः शासनदेव्यासीत् सदा सन्निधिवर्तिनी ॥ ११३ ॥
विजहार ततोऽन्यत्र स्वामी ग्राम-पुरादिषु । बोधयन् भव्यभविनः[9] पङ्कजानीव भास्करः ॥ ११४ ॥
साधुत्रिलक्षी साध्वीनां सहत्रिंशत्सहस्रिका । चतुर्लक्षी पूर्विणां तु सहस्रौ त्रिंशदन्वितौ ॥ ११५ ॥
सहस्राणि नव पुनरवधिज्ञानधारिणाम् । सार्धैकनवतिशती मनःपर्ययशालिनाम् ॥ ११६ ॥
एकादश सहस्राणि केवलज्ञानिनां पुनः । वैक्रियलब्धिसहस्राः पञ्चदश त्रिशत्यपि ॥ ११७ ॥
अष्टौ च वादलब्धीनां सहस्राः सचतुःशताः । द्वे लक्षे सप्तपञ्चाशत् सहस्राः श्रावकाः पुनः ॥ ११८ ॥
श्राविकाणां पञ्चलक्षी सहस्रैः सप्तभिर्वियुक्[10] । परिवारेऽभवद् भर्तुः पृथ्वीं विहरतः सतः ॥ ११९ ॥

---

१ 'आत्मा अनुभवगोचरः' इति पदविभागः । * °दावपि पी° सङ्घ ॥ २ भेदस्य ज्ञाता । ३ अनिजत्वेन । † °ज्ञानस्न्यत्र धी° सङ्घ ॥ ४ ममत्वरूपं मृत्तिकालेपम् अस्यन्-दूरीकुर्वन् । ५ स्वामिवचनानुसारेण । ६ करयोः विशेषणम् । ७ सुवर्णकान्तिः । ८ अक्षसूत्रेण सहितम् । ९ भव्याः योग्याः, भविनः प्राणिनः । १० वियुक् रहिता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ केवलान्नवमास्या विंशत्यङ्ग्या च वर्जिते । पूर्वलक्षे गते स्वामी गत्वा सम्मेतपर्वतम् ॥ १२० ॥
जगत्स्वामी समं तत्र मुनीनां पञ्चभिः शतैः । तपः प्रपेदेऽनशनं सेव्यमानः सुरा-ऽसुरैः ॥१२१॥ युग्मम्॥
मासान्ते फाल्गुने कृष्णसप्तम्यां मूलगे विधौ । समं तैर्मुनिभिः स्वामी जगाम पदमव्ययम् ॥ १२२ ॥
पञ्च लक्षाणि कौमारे पृथिवीपालने पुनः । युक्ता विंशतिपूर्वाङ्ग्या पूर्वलक्षाश्चतुर्दश ॥ १२३ ॥
न्यूनं विंशतिपूर्वाङ्ग्या पूर्वलक्षं पुनर्व्रते । इत्यायुः श्रीसुपार्श्वस्य पूर्वलक्षाणि विंशतिः ॥ १२४ ॥
श्रीपद्मप्रभनिर्वाणात् सुपार्श्वस्वामिनिर्वृतिः । गतेष्वर्णवकोटीनां सहस्रेषु नवस्वभूत् ॥ १२५ ॥

अच्युतप्रभृतयोऽथ सुरेन्द्राः स्वामिनो मुनिजनस्य च तस्य ।
अग्निसंस्करणपूर्वमकुर्वन् मोक्षपर्वमहिमानमखर्वम् ॥ १२६ ॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये तृतीये पर्वणि श्रीसुपार्श्वस्वामिचरितवर्णनो नाम पञ्चमः सर्गः ॥

---

१ चन्द्रे मूलनक्षत्रं गते ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

षष्ठः सर्गः ।

श्रीचन्द्रप्रभजिनचरित्रम् ।

वन्दे ध्वस्तमहामोहध्वान्ता[1]मानन्ददायिनीम् । चन्द्रप्रभामिव गिरं चन्द्रप्रभजिनप्रभोः ॥ १ ॥
चरितं कीर्तयिष्यामि चन्द्रप्रभजिनेशितुः । भव्यानां भविनां मोहहिमान्य[2]र्कातपोपमम् ॥ २ ॥
धातकीखण्डद्वीपस्य प्राग्विदेहस्य मण्डने । विजये मङ्गलावत्यामस्ति पू रत्न[3]सञ्चया ॥ ३ ॥
[*]पद्मो राजाऽभवत् तस्यां पद्मायाः पद्मवद् गृहम् । भोगा[4]वत्यां भोगिराज इवोर्जितपराक्रमः ॥ ४ ॥
सेव्यमानोऽपि गन्धर्वैर्दिव्यसङ्गीतकारिभिः । अत्य[5]प्सरोभिर्वारस्त्रीजनैश्च परिवारितः ॥ ५ ॥
दिव्याङ्ग[6]रागनेपथ्यदुकूलैश्च मनोरमैः । विभूष्यमाणसर्वाङ्गश्रीविशेषोऽपि सर्वदा ॥ ६ ॥
भूमिपालैः पाल्यमानशासनोऽपि दिवानिशम् । नित्यमक्षीणकोशोऽपि सदा सुस्थप्रजोऽपि हि ॥ ७ ॥
सर्वथा दुःखलेशस्याप्यनास्प[7]दतया स्थितः । संसारवासवैराग्यं स भेजे तत्त्वविद्वरः ॥ ८ ॥
चतुर्भिः कलापकम् ।

भवस्य च्छेदनायाथ गिरेरिव पविं हरिः । अग्रहीत् स परिव्रज्यां युगन्धरगुरोः पुरः ॥ ९ ॥
विविधाभिग्रहो दान्तो विहितेन्द्रियनिग्रहः । स्वविग्र[8]हेऽप्यनाकाङ्क्षश्चिरं सोऽपालयद् व्रतम् ॥ १० ॥
महारत्नं महामूल्यैरिव स्थानैस्तु कैरपि । दु[9]रर्जमर्जयामास तीर्थकृन्नाम कर्म सः ॥ ११ ॥
कालेन क्षपयित्वाऽऽयुर्व्रत[10]द्रोः प्रथमं फलम् । विमानं वैजयन्ताख्यं स जगाम महातपाः ॥ १२ ॥
इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन् क्षेत्रे च भरताभिधे । पुरी चन्द्राननेत्यस्ति क्षितेराननसन्निभा ॥ १३ ॥
तस्यामनेकरत्नाढ्या विभात्यापणवीथिका । उद्रेचिता[11]म्भोविभवं भाण्डमम्भोनिधेरिव ॥ १४ ॥
नानाकाराण्यगाराणि नानावर्णानि तत्र च । अद[12]भ्राणीव सन्ध्याभ्राण्यवतीर्णानि भूतले ॥ १५ ॥
तदुद्यानेषु दृश्यन्ते चारणाः प्रतिमास्थिताः । आशिरःपादनिष्कम्पाः पुंरू[13]पा इव पर्वताः ॥ १६ ॥
तस्यां च वासागारेषु रत्ने[14]षु प्रतिबिम्बितैः । स्वैरेव[15] केयमन्येति कुप्यन्ति [16]प्रेयसि स्त्रियः ॥ १७ ॥
तस्यामासीन्महासेनः सेनाच्छन्नमहीतलः । महीपतिः पतिरपामिवाधृष्यशिरोमणिः ॥ १८ ॥
तद्विक्रमस्य समभूद् भक्तो भृत्य इवानिशम् । प्रतापस्तत्क्रियां कुर्वन्नुर्वीविजयलक्षणम् ॥ १९ ॥
अलङ्घ्यशासने तस्मिन् शशा[17]सत्यवनिमण्डलम् । अभूदाजन्मविरतः परस्वहरणे जनः ॥ २० ॥
अलब्धमध्योऽब्धिरिव शशीवातिमनोरमः । कल्पद्रुरिव दाते[18]न्द्र इवाधीशश्च सोऽभवत् ॥ २१ ॥
कपा[19]टपृथुले तस्योरःस्थलेऽनन्यमानसा । हंसीव गङ्गापुलिने रमा रेमे निरन्तरम् ॥ २२ ॥
तस्याऽऽसील्लक्ष्मणा नाम पत्नी सम्पूर्णलक्षणा । मुखलक्ष्म्याऽतिहारिण्या विजेत्री शशलक्ष्म[20]णः ॥२३॥
लावण्यपूरमसमं सर्वाङ्गीणं दधत्यपि । पीयूषमेव साऽवर्षद् दृशाऽपि च गिराऽपि च ॥ २४ ॥

---

१ ध्वान्तम् तमः । २ महद् हिमम् हिमानी । ३ रत्नसञ्चया नाम पूः–नगरी । * सर्वास्वपि प्रतिषु पद्मो नामाऽभवत् इति पाठो वर्त्तते ॥ ४ भोगावती नाम शेषनागनगरी । ५ अप्सरसम् अतिक्रान्ताभिः–अप्सरसोऽपि अधिकसुन्दराभिः ६ अङ्गरागः–अङ्गविलेपनम् । ७ दुःखलेशेन रहितोऽपि इत्यर्थः । ८ स्वशरीरे । ९ दुःखेन अर्जितुं शक्यम्–दुर्लभम् । १० व्रतवृक्षस्य । ११ यस्य अम्भोविभवः दूरीकृतः ततश्च प्रकटीभूतम् भाण्डम् इत्यर्थः । उद्रेचितं–भाषायाम् 'उलेचेलुं' । अथवा यथा मुक्तासु अम्भोविभवः–भाषायाम् पाणी अधिकं भवति तथा यत्र भाण्डे उद्रेचितः–उद्रिक्तः अधिकः अम्भोविभवः । १२ अदभ्रम्–अधिकम् । १३ पुरुषरूपाः । १४ रत्नमयेषु वासगृहेषु । १५ स्वैरिणी इव का इयमन्या ? इति । १६ प्रेयसि–प्रिये पत्यौ । १७ शासति–शासनं कुर्वति । १८ दाता इन्द्रः इति पदविभागः । १९ कपाटवत् पृथुले–विस्तीर्णे । २० चन्द्रं या विजयते इति भावः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सा स्थलाम्भोरुहाणीव विकचानि पदे पदे । पादाभ्यां रोपयामास विचरन्त्यतिमन्थरम् ॥ २५ ॥
तस्या भ्रुवोश्च गत्यां च कौटिल्यं न तु चेतसि । मध्यप्रदेशे तुच्छत्वं न पुनर्मतिसम्पदि ॥ २६ ॥
तस्या गुणचमूं सर्वामपि सर्वातिशायिनीम् । अलञ्चकार सेनानीरिव शीलगुणो महान् ॥ २७ ॥
इतश्च वैजयन्तस्थः स जीवः पद्मभूपतेः । त्रयस्त्रिंशत्पयोराशिसङ्ख्यमायुरपूरयत् ॥ २८ ॥
च्युत्वा च लक्ष्मणादेव्याः कुक्षाववततार सः । चैत्रस्य कृष्णपञ्चम्यामनुराधागते विधौ ॥ २९ ॥
तदानीं लक्ष्मणादेवी तीर्थकृज्जन्मसूचकान् । चतुर्दश महास्वप्नान् सुखसुप्ता निरैक्षत ॥ ३० ॥
तं गर्भं रत्नगर्भेव रत्नसर्वस्वमुज्ज्वलम् । सुखेन धारयामास लक्ष्मणादेव्यलक्षितम् ॥ ३१ ॥
पौषस्य कृष्णद्वादश्यामनुराधास्थिते विधौ । चन्द्राङ्कं चन्द्रवर्णं च सुतरत्नमसूत सा ॥ ३२ ॥
तदा चाऽऽसनकम्पेन ज्ञात्वा जन्माष्टमार्हतः । सूतिकाकर्म चक्रुः षट्पञ्चाशद्दिकुमारिकाः ॥ ३३ ॥
जन्मस्नात्रोत्सवचिकीरथ सौधर्मवासवः । अनैषीन्मेरुशिरसि स्वामिनं सुमनोवृतः ॥ ३४ ॥
अतिपाण्डुकम्बलायां शिलायां परमेश्वरम् । विधायाङ्के निषसाद रत्नसिंहासने हरिः ॥ ३५ ॥
अथाऽच्युतप्रभृतयस्त्रिषष्टिरपि वासवाः । स्वामिनं स्नपयामासुरानुपूर्व्योल्लसन्मुदः ॥ ३६ ॥
ईशानेन्द्राङ्कपर्यङ्के निवेश्य स्वामिनं ततः । शक्रोऽपि स्नपयामास वृषशृङ्गोत्थितैर्जलैः ॥ ३७ ॥
दिव्याङ्गरागनेपथ्यवस्त्रैरभ्यर्च्य भक्तितः । भगवन्तमिति स्तोतुमारेभे पाकशासनः ॥ ३८ ॥
त्वामनन्तगुणं स्तोतुं प्रवृत्तोऽस्मि हसास्पदम् । आधारबुद्ध्या गगनस्योत्पाद इव टिट्टिभः ॥ ३९ ॥
व्यापिप्रज्ञस्त्वत्प्रभावात् क्षमोऽस्मि नु तव स्तवे । दिशोऽश्नुतेऽश्लेशोऽपि पौरस्त्यानिलसङ्गमात् ॥ ४० ॥
भविनां दृष्टमात्रो वा ध्यातमात्रोऽपि वा प्रभो ! । कर्मपाशच्छेदनायापूर्वं शस्त्रं किमप्यसि ॥ ४१ ॥
शुभानां कर्मणामद्य जगत्यभ्युदयः खलु । पङ्कजानामिवाऽऽदित्ये त्वयि विश्वतमश्छिदि ॥ ४२ ॥
निजं फलमदत्त्वाऽपि गलिष्यत्यशुभं मम । शेफालिकापुष्पमिव निशाकरकराहतम् ॥ ४३ ॥
प्रव्रज्याधारि रूपं ते दूरे विश्वाभयप्रदम् । मूर्त्याऽनयाऽपि भगवन् ! दुःखं हरसि जन्मिनाम् ॥ ४४ ॥
कर्माणि भवमूलानि च्छेत्तुमत्राऽऽगमः प्रभो ! । द्रुमानिवोन्मूलयितुं वने मत्तमतङ्गजः ॥ ४५ ॥
अलङ्कारो यथा मुक्ताहारादिर्हृदयस्य मे । बहिरेष तथाऽन्तस्त्वं भूयास्त्रिभुवनेश्वर ! ॥ ४६ ॥
स्तुत्वेति प्रभुमीशानादादाय च पुरन्दरः । नीत्वा च लक्ष्मणादेवीपार्श्वेऽमुञ्चद् यथास्थिति ॥४७॥
महीपतिर्महासेनोऽप्यथाकार्षीन्महोत्सवम् । अन्यत्राप्युत्सवायैव जातोऽर्हन् किं पुनर्गृहे ? ॥ ४८ ॥
गर्भस्थेऽस्मिन् मातुरासीच्चन्द्रपानाय दोहदः । चन्द्राभश्चैष इत्याह्वच्चन्द्रप्रभममुं पिता ॥ ४९ ॥
ज्योत्स्नागौरप्रभापूरपरिवेषमनोरमम् । वैजयन्तस्थितस्येव रूपं भर्तुः शिशोर्बभौ ॥ ५० ॥
लतानामिव धात्रीणामाकर्षन् पाणिपल्लवान् । दिने दिने कलभवद् ववृधे परमेश्वरः ॥ ५१ ॥
अप्राप्तं देवभावेऽपि स्वेच्छाप्राप्तमिव प्रभुः । बालत्वमन्वभूज्ज्ञानत्रयभागपि मुग्धवत् ॥ ५२ ॥
नानाविधाभिः क्रीडाभिर्ललङ्घे शैशवं विभुः । कथाभिरतिरम्याभिः पन्थानं पथिको यथा ॥ ५३ ॥
शिशुत्वसरितः पारं स्त्रीवशीकारकार्मणम् । प्रपेदे यौवनं स्वामी सार्धधन्वशतोन्नतिः ॥ ५४ ॥

---

१ विचरन्ती–चलन्ती । २ देवैः परिवृतः । ३ हास्यास्पदं यथा स्यात् तथा । ४ उत्–ऊर्ध्वं पादा यस्य स उत्पादः । टिट्टिभो भाषायाम् 'टिटोडी' स्वकीयान् पादान् गगनस्य आधाररूपान् संबुध्य ऊर्ध्वमेव धारयति इति लोकवादः । ५ कराः किरणाः । * °दि ह्वद° संइ० ॥ † °र्महसे° संइ० ॥ ६ 'चन्द्रप्रभ' इति नाम चकार । ७ कलभो हस्तिशिशुः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदन्* भोगफलं कर्मा[1]ऽऽदेशं पित्रोश्च पालयन् । जगत्पतिरुपायंस्ता[2]ऽनुरूपा राजकन्यकाः ॥ ५५ ॥
पूर्वलक्षद्वये सार्धे जन्मतोऽतिगते सति । पितृभ्यामर्थितोऽत्यर्थं चतुर्विंशाङ्गसंयुताः ॥ ५६ ॥
पूर्वलक्षास्तु षट् सार्धा अनैषीत् पालयन्महीम् । अन†ध्याय[3]मिवा[4]ध्यायरतो दीक्षोत्सुकः प्रभुः ॥५७॥ युग्मम् ॥
आ[5]युक्तैरिव मौहूर्तैरथ लौकान्तिकामरैः । अ[6]ज्ञापि दीक्षासमयं स्वयं जानन्नपि प्रभुः ॥ ५८ ॥
आढ्यो विघ्नजिषुरिव प्रविघ्नजिषुरुच्चकैः । दानं प्रदातुमारेभे स्वामी संवत्सरावधि ॥ ५९ ॥
संवत्सरान्ते चलितासनैरेत्य सुरेश्वरैः‡ । दीक्षाभिषेको विदधे स्वामिनः किङ्करैरिव ॥ ६० ॥
ततो मनोरमां नाम शिबिकां श्रीमनोरमाम् । स्वाम्यारुरोह नृ-सुरा-ऽसुरेन्द्रपरिवारितः ॥ ६१ ॥
स्तूयमानो गीयमानः प्रेक्ष्यमाणो जनैर्मुदा । सहस्राम्रवणं नामोपवनं भगवानगात् ॥ ६२ ॥
शिबिकातः समुत्तीर्य रत्नालङ्करणादिकम् । अपि रत्नत्रयं प्रेप्सुस्तत्याज परमेश्वरः ॥ ६३ ॥
पौषकृष्णत्रयोदश्यां भे[7] च मैत्रेऽपरेऽहनि । समं§ नृपसहस्रेण षष्ठेन प्राव्रजत् प्रभुः ॥ ६४ ॥
मर्त्यक्षेत्रस्थितप्राणिमनोद्रव्यप्रकाशकम् । मनःपर्ययमुत्पेदे तुर्यं ज्ञानं ततः प्रभोः ॥ ६५ ॥
पद्मखण्डपुरे राज्ञः सोमदत्तस्य सद्मनि । पारणं परमान्नेन द्वितीयेऽह्नि प्रभुर्व्यधात् ॥ ६६ ॥
दिव्यं च वसुधारादिपञ्चकं विदधे[8]ऽमरैः । रत्नपीठं तेन राज्ञा त्वर्हत्पादाङ्कितावनौ ॥ ६७ ॥
हिमान्याऽप्यपराभूतः पराभूतार्कतेजसा । अकम्पितः समीरैश्च कृतावश्यायदुर्दिनैः ॥ ६८ ॥
हैमनेन निशीथेन हिमीकृतसरोम्भसा । अखण्ड्यमानप्रतिमः[9] प्रतिमान[10]विवर्जितः ॥ ६९ ॥
अरण्ये व्याघ्र-सिंहादिदुःश्वापदभयानके । पुरे च श्राद्धबहुले [11]निर्विशेषगति-स्थितिः ॥ ७० ॥
एकाकी निर्ममो मौनी निर्ग्रन्थो ध्यानतत्परः । त्रीन् मासान् विजहारोर्वीं छद्मस्थः परमेश्वरः ॥ ७१ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥
विहरन् भगवान् भूयः सहस्राम्रवणं ययौ । तस्थौ प्रतिमया तत्र पुन्नागस्य तरोस्तले ॥ ७२ ॥
द्वितीयशुक्लध्यानान्ते तस्थुषोऽथ जगत्पतेः । प्रणेशुर्घातिकर्माणि हिमवच्छिशिरात्यये[12] ॥ ७३ ॥
फाल्गुनासितसप्तम्यामनुराधागते विधौ । स्वामिनः कृतषष्ठस्योत्पेदे केवलमुज्ज्वलम् ॥ ७४ ॥
सुरा-ऽसुरेन्द्राः सद्योऽपि क्षेत्रे योजनमात्रके । चक्रुः समवसरणं देशनार्थं जगद्गुरोः ॥ ७५ ॥
सुरैः सञ्चार्यमाणानि स्वर्णाब्जानि नव क्रमात् । क्रम[13]न्यासैः पुनानस्तत् प्राग्द्वा[14]रा प्राविशत् प्रभुः ॥ ७६ ॥
तत्र चाष्टादशधनुःशतोच्चं चैत्यपादपम् । प्रभुः प्रदक्षिणीचक्रे पालयन्ना[15]र्हतीं स्थितिम् ॥ ७७ ॥
तीर्थाय नम इत्युच्चैर्वाचमुच्चारयन् प्रभुः । रत्नसिंहासने तत्र न्यषदत् पूर्वदिङ्मुखः ॥ ७८ ॥
प्रविश्य च यथाद्वारं यथास्थानमवास्थित । चतुर्विधोऽपि श्रीसङ्घः ससुरा-ऽसुर-मानुषः ॥ ७९ ॥
पञ्चाङ्गस्पृष्टभूपृष्ठः प्रणम्य परमेश्वरम् । जं[16]भारिर्भक्तिरभसादारेभे स्तोतुमित्यथ ॥ ८० ॥
सुरा-ऽसुर-नरैर्मूर्ध्नि धार्यमाणमिदं प्रभो ! । शासनं ते विजयते त्रिलोकीचक्रवर्तिनः ॥ ८१ ॥
ज्ञानत्रयधरः पूर्वं मनःपर्ययभृत् ततः । केवली चाधुना दिष्ट्या दृष्टस्त्वमधिकाधिकम् ॥ ८२ ॥

---

* विदन् भोगफलम् इत्यादिकः अयं श्लोकः संवृ० मो० नास्ति ॥ १ कर्म विदन् पित्रोश्च आदेशं पालयन् इति भावः । २ पाणिग्रहणं चकार । † °अनाध्या° संवृ० ॥ ३ अनध्यायः अवकाशदिवसः । ४ अध्यायरतः अभ्यासतत्परः । ५ मौहूर्तैः मुहूर्तवेदिभिः, आयुक्तैः आयोजितैः । ६ ज्ञापितः । ‡ सुरासुरैः संवृ० ॥ ७ अनुराधानक्षत्रे । § °मं मुनिस° संवृ० ॥ ८ विदधे-अमरैः वर्षणं चक्रे, राजा च रत्नपीठं चकार । ९ प्रतिमाः तपोविशेषरूपाः अभिग्रहाः । १० प्रतिमानम्-उपमानं सादृश्यमिति यावत् । ११ भयस्थाने भक्तस्थाने च यः समानचित्तः इति यस्य गतिः स्थितिश्च निर्विशेषा-एकरूपा । १२ अत्ययः-अतिक्रमणम् । १३ क्रमाः-चरणाः, न्यासः-स्थापनम् । १४ पूर्वदिशास्थितद्वारेण । १५ अर्हत्ताम्-अर्हद्भावमिति । १६ जम्भारिः-इन्द्रः, रभसो वेगः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तव ज्ञानमिदं नाथ! केवलाभिधमुज्ज्वलम् । विश्वोपकारकृज्जीयाच्छाया मार्गतरोरिव ॥ ८३ ॥
तावदेवान्धकाराणि न यावद् दिवसेश्वरः । मदान्धास्तावदेवेभा यावत्पञ्चाननो न हि ॥ ८४ ॥
तावदेव हि दारिद्र्यं न यावत् कल्पपादपः । तावदेव पयोदौस्थ्यं न यावद् वार्षुको[1]ऽम्बुदः ॥ ८५ ॥
तावदेव हि सन्तापो न यावत् पूर्णचन्द्रमाः । कुबोधा[2]स्तावदेवेह न यावत् त्वं निरीक्ष्यसे ॥ ८६ ॥
दृश्यसे नित्यमपि यैः सेव्यसे च शरीरिभिः । ताननुमोदयामीश! सर्वदाऽपि प्रमद्वरः[3] ॥ ८७ ॥
इदानीं त्वत्प्रसादेन त्वद्दर्शनफलं मम । सम्यक्त्वमुत्तममिदं भूयादाजन्म निश्चलम् ॥ ८८ ॥

इति स्तुत्वा सुनाशीरे[4] स्थिते सति जगद्गुरुः । प्रारेभे देशनामेवं गिरा स्तनित[5]धीरया ॥ ८९ ॥
अनन्तक्लेशकल्लोलनिलयो भवसागरः । तिर्यगूर्द्ध्वमधो जन्तून् क्षिपत्येष प्रतिक्षणम् ॥ ९० ॥
एकं निबन्धनं तस्य क्रियते प्राणिभी[6] रतिः । अशुचौ कृमिभिरिव यदत्रापि शरीरके ॥ ९१ ॥
रसाऽसृग्[7]-मांस-मेदो-ऽस्थि-मज्ज-शुक्रा-ऽस्र[8]-वर्चसाम् । अशुचीनां पदं कायः शुचित्वं तस्य तत् कुतः? ॥ ९२ ॥
नवस्रोतःस्रवद्विस्ररसनिःस्यन्दपिच्छिले । देहेऽपि शौचसङ्कल्पो महामोहविजृम्भितम्* ॥ ९३ ॥
शुक्र-शोणितसम्भूतो मलनिःस्यन्द†वर्द्धितः । गर्भे जरायुसञ्छन्नः शुचिः कायः कथं भवेत्? ॥ ९४ ॥
मातुर्जग्ध[9]ान्न-पानोत्थरसनाडीक्रमागतम् । पायं पायं[10] विवृद्धः सन् शौचं मन्येत कस्तनोः‡? ॥ ९५ ॥
दोषधातुमलाकीर्णं कृमि-गण्डूपदास्पदम् । रोगभोगिगणैर्जग्धं शरीरं को वदेच्छुचि? ॥ ९६ ॥
सुस्वादून्यन्न-पानानि क्षीरेक्षुविकृती[11] अपि । भुक्तानि यत्र विष्ठायै तच्छरीरं कथं शुचि? ॥ ९७ ॥
विलेपनार्थमासक्तः सुगन्धिर्यक्षकर्दमः । मलीभवति यत्राऽऽशु क्व शौचं तत्र वर्ष्मणि[12]? ॥ ९८ ॥
जग्ध्वा[13] सुगन्धि ताम्बूलं सुप्तो निश्युत्थितः प्रगे[14] । जुगुप्सते वक्त्रगन्धं यत्र तत् किं वपुः शुचि? ॥ ९९ ॥
स्वतःसुगन्धयो गन्ध-धूप-पुष्प-स्रगादयः । यत्सङ्गाद् यान्ति दौर्गन्ध्यं सोऽपि कायः शुचीयते[15]? ॥ १०० ॥
अभ्यक्तो[16]ऽपि विलिप्तोऽपि धौतोऽपि घटकोटिभिः । न याति शुचितां कायः शुण्डाघट[17] इवाऽशुचिः ॥ १०१ ॥
मृज्जला-ऽनल-वातांशुस्नानैः[18] शौचं वदन्ति ये । गतानुगतिकैस्तैस्तु विहितं तुषकण्डनम्[19] ॥ १०२ ॥
तदनेन शरीरेण कार्यं मोक्षफलं तपः । क्षाराब्धे[20] रत्नवद् धीमानसारात् सारमुद्धरेत् ॥ १०३ ॥

धर्मदेशनया भर्तुरनया च शरीरिणः । बहवः प्रत्यबुध्यन्त प्राव्रजंश्च सहस्रशः ॥ १०४ ॥
भर्तुस्त्रिनवतिर्दत्तादयो गणभृतोऽभवन् । उत्पादादित्रिपद्या ते द्वादशाङ्गीमसूत्रयन् ॥ १०५ ॥
देशनान्ते प्रभोः पादपीठस्थो गणभृद्वरः । विदधे देशनां दत्तो दत्तबोधः शरीरिणाम् ॥ १०६ ॥
तस्यापि देशनाप्रान्ते स्वं स्वं स्थानं सुरादयः । जग्मुर्नागरयुवानो वीतसङ्गीतका[21] इव ॥ १०७ ॥

तत्तीर्थभूर्हरिद् यक्षो विजयो हंसवाहनः । दधानो दक्षिणे चक्रं भुजे वामे तु मुद्गरम् ॥ १०८ ॥
मरालयाना[22] पीताङ्गी भृकुटी नाम देव्यपि । दधती दक्षिणौ बाहू खड्ग-मुद्गरधारिणौ ॥ १०९ ॥
वामौ फलक-परशुलाञ्छितौ बिभ्रती भुजौ । तदा भगवतोऽभूतामुभे शासनदेवते ॥ ११० ॥

॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

---

१ वर्षणशीलः वार्षुकः । २ मिथ्याज्ञानानि । ३ अविरतिमान्–व्रतप्रत्याख्यानत्यागादिधर्मरहितः प्रमद्वरः । ४ इन्द्रे । ५ स्तनितं मेघगर्जितम् । ६ 'प्राणिभिः रतिः' इति पदविभागः । रतिः आसक्तिः । ७ असृग् रुधिरम् । अन्त्राणि–भाषायाम्–'आंतरडां' । ८ विस्रम्–लोहितम् भाषायाम्–लोही । * महन्मो° संवृ० सङ्घ० ॥ † मलिनस्यन्द° सङ्घ० ॥ ९ जग्धं भक्षितम् । १० पायं पायम्–पीत्वा पीत्वा । ‡ °स्तनौ सङ्घ० ॥ ११ क्षीरविकृतिः इक्षुविकृतिश्च । एते द्वे विकृती अन्यासामपि घृतशर्करादिविकृतीनामुपलक्षणम् । १२ शरीरे । १३ भक्षयित्वा । १४ प्रातःकाले । १५ शुचिः इव दृश्यते । १६ तैलेन अभ्यक्तः । १७ मद्यघटः । १८ अंशवः किरणाः तैः सूर्यस्नानम् । १९ तुषकण्डनम्–भाषायाम् 'फोफां खांडवा' । २० क्षारात् समुद्रात् । २१ समाप्तसंगीतश्रवणाः । २२ हंसवाहना ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अमुक्तसन्निधिस्ताभ्यां सर्वातिशयभाजनम् । व्योमेव चन्द्रो व्यहरत् पृथ्वीं चन्द्रप्र*भप्रभुः ॥ १११ ॥
सा†र्धा द्विलक्षी साधूनां साध्वीलक्षत्रयी पुनः । सहस्राशीतिसहिता द्वे सहस्रे तु पूर्विणाम् ॥११२ ॥
शताशीतिः सावधीनां मनःपर्ययिणां तथा । तथा दश सहस्राणि केवलज्ञानधारिणाम् ॥ ११३ ॥
जातवैक्रियलब्धीनां सहस्राणि चतुर्दश । वादलब्धिमतां सप्तसहस्री षट् शतानि च ॥ ११४ ॥
सार्धे लक्षे श्रावकाणां श्राविकालक्षपञ्चकम् । सहस्रैर्नवभिर्न्यूनं परिवारोऽभवत् प्रभोः ॥ ११५ ॥
पूर्वलक्षं त्रिमासोनं‡ चतुर्विंशाङ्गवर्जितम् । विहृत्य केवले स्वामी ययौ सम्मेतपर्वतम् ॥ ११६ ॥
समं मुनिसहस्रेण प्रपेदेऽनशनं प्रभुः । सुरा-ऽसुरैः सेव्यमानो मासं चास्थात् तथास्थितः ॥ ११७ ॥
सर्व[1]योगनिरोधेन निष्कम्पं ध्यानमास्थितः । तत्क्षणं क्षीणभवोपग्राहिकर्मचतुष्टयः ॥ ११८ ॥
नभ[2]स्यकृष्णसप्तम्यां श्रवणस्थे निशाकरे । समं तैर्मुनिभिः स्वामी जगाम परमं पदम् ॥ ११९ ॥
कौमारे पूर्वलक्षे द्वे सार्धे राज्यस्थितौ पुनः । पूर्वलक्षाः षट् च सार्धाश्चतुर्विंशाङ्गसंयुताः ॥ १२० ॥
चतुर्विंशत्यङ्गहीनं पूर्वलक्षं पुनर्व्रते । इत्यायुः पूर्वलक्षाणि दश चन्द्रप्रभप्रभोः ॥ १२१ ॥
सुपार्श्वस्वामिनिर्वाणा¶च्छ्रीचन्द्रप्रभनिर्वृतिः । शतेष्वर्णवकोटीनां व्यतीतेषु नवस्वभूत् ॥ १२२ ॥

इति मोक्षमुपेयुषः प्रभोर्व्रतिनां चैव शरीर§संस्क्रियाम् ।
विधिवद् विदधुः सुरेश्वराः, पुनरेव त्रिदिवं प्रपेदिरे ॥ १२३ ॥

॥ इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये तृतीये पर्वणि चन्द्रप्रभस्वामिचरितवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः ॥

---

* प्रभः प्र° संवृ० ॥ † सार्धद्वि° संवृ० ॥ ‡ °नं केवलात् प्रभृति प्रभुः । विहृत्य मोक्षकालज्ञो ययौ संवृ० सङ्घ० ॥ १ योगाः व्यापाराः, सर्वक्रियानिरोधेन । २ नभस्यः–भाद्रपदमासः । ¶ °णाच्चन्द्रप्रभस्य निर्वृतिः संवृ० ॥ § °रसत्क्रिया° संवृ० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तमः सर्गः ।

श्रीसुविधिनाथचरित्रम् ।

वन्दे श्रीपुष्पदन्तस्य पुष्पदामेव निर्मलम् । जगत्त्रयशिरोवाह्यं शासनं पापनाशनम् ॥ १ ॥
नवमस्यार्हतस्तस्यानवमं चरितं प्रभोः । तत्प्रभावात् प्रभविष्णुधिषणः कीर्तयाम्यदः ॥ २ ॥
पुष्करवरद्वीपार्धे प्राग्विदेहेषु पुष्कले । विजये पुष्कलावत्यामस्ति पूः पुण्डरीकिणी ॥ ३ ॥
तस्यां पुर्यामभून्नाम्ना महापद्मो महीपतिः । महाहिमाद्रौ गम्भीरो महापद्म इव ह्रदः ॥ ४ ॥
आजन्मस्वीकृतस्तस्य शैशवे यौवनेऽपि च । धर्मो वपुःश्रिया सार्धमवर्धत यथोत्तरम् ॥ ५ ॥
स विरत्या विहीनेन मुहूर्तेनाप्यदूयत । धनेन वृद्धिहीनेन वृद्ध्याजीव इवान्वहम् ॥ ६ ॥
धर्मकृत्यानि कुर्वाणो राज्यकृत्यानि सोऽकरोत् । वारिपाणमिवाध्वन्यस्तरन्नध्वतरङ्गिणीम् ॥ ७ ॥
सम्यक् श्रावकधर्मं स निजं कुलमिवामलम् । सुचिरं पालयामास प्रमादरहितः सुधीः ॥ ८ ॥
प्रायः सन्तोषनिष्ठोऽपि न धर्मे सन्तुतोष सः । स्तोकधर्मानपि परान् मेने चाभ्यधिकान् स्वतः ॥ ९ ॥
दिव्यास्त्रमिव युत्पारे भवपारयियासया । परिव्रज्यां स जग्राह जगन्नन्दगुरोः पुरः ॥ १० ॥
निर्व्यूढः श्रावकधर्मे दृढं सोऽपालयद् व्रतम् । कृतसंलेखन इवानशनं मारणान्तिकम् ॥ ११ ॥
एकावलीप्रभृतिभिः स तपोभिः सुदुस्तपैः । अर्हद्भक्त्यादिभिश्चोच्चैस्तीर्थकृन्नाम निर्ममे ॥ १२ ॥
एवंविधैरनुष्ठानैर्निजायुरतिवाह्य सः । विमाने वैजयन्ताख्ये महर्द्धिरमरोऽभवत् ॥ १३ ॥
इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन् भरतार्धे तु दक्षिणे । काकन्दीत्यस्ति नगरी श्रीविशेषगरीयसी ॥ १४ ॥
भान्ति तत्रौकसां मुक्तावचूलाः पुष्पधन्वनः । मनस्विनीवशीकारजपमाल इवाऽमलाः ॥ १५ ॥
तत्राऽऽयतनसङ्गीतगीतमुच्चैश्चतुर्विधम् । प्रपद्यते खेचरीणां गतेः स्तम्भनमन्त्रताम् ॥ १६ ॥
उद्दण्डपुण्डरीकाढ्या विशदापा जलाशयाः । व्यक्तोडुशरदभ्रां द्यामनुकुर्वन्ति तत्र च ॥ १७ ॥
दूरादप्यभिगम्यन्ते नीयन्ते पात्रपात्रताम् । प्रीण्यन्ते चोचितैरर्थैस्तस्यां गुरुवदर्थिनः ॥ १८ ॥
सुग्रीवो नाम समभूद् ग्रैवेयकमिवावनेः । ग्रैवेयकामर इव श्रिया तत्र महीपतिः ॥ १९ ॥
तस्याऽऽज्ञा नगरा-ऽरण्य-सागरेषु गिरिष्वपि । सिद्धमन्त्रायुधमिव न क्वापि प्रत्यहन्यत ॥ २० ॥
तस्मादद्रेरिव प्रादुर्भूता नीतितरङ्गिणी । उत्कल्लोलयशोवारिः प्रासरत् सागरावधि ॥ २१ ॥
यशोराशिपयोराशिस्तस्योर्वीशशिरोमणेः । विस्तृताः कीर्त्तिसरितो जग्रसे सर्वभूभृताम् ॥ २२ ॥
विरामः सर्वदोषाणामभिरामाऽमलैर्गुणैः । सर्वरामाशिरोरत्नं तस्य रामेति पत्न्यभूत् ॥ २३ ॥

---

१ अवमम् अधमम्, अनवमम् उत्तमम् । २ वृद्ध्याजीवः भाषायाम् 'व्याजखाऊ' । ३ जलपानम् । अध्वन्यः प्रवासी । ४ अन्यान् जनान् अल्पधर्मयुक्तान् अपि स्वतः अधिकान् उत्तमान् अमन्यत । ५ दृढमनाः । ६ संलेखना जीवितावसानप्राये समये क्रियमाणः संस्तारकः, मारणान्तिकम् मरणसामीप्यम् तत्र क्रियमाणं तपः । * मर° संवृ० मो० ॥ ७ एकावलीनामकहारवत् यत्र तपसि उपवासादिभिः सूक्ष्मता स्थूलता अतिस्थूलता च क्रियते तद् 'एकावली'तपः । एवं रत्नावली-मुक्तावल्यादीनि तपांसि बोध्यानि । ८ अतिवाह्य समाप्य समाप्तं कृत्वा । ९ अवचूला ध्वजसंलग्ना अधोमुखा गुच्छाः, गृहाणां ध्वजे संबद्धाः मुक्तामयाः अधोमुखा मुक्तागुच्छा इति भावः । १० आयतने–गृहे गायक-गायिकादिभिः संगीतं यद् गीतम् गानम् । चतुर्विधता च गानस्य– नर्तनं १ अभिनयः २ वादनं ३ आलापादिभिः गानं च ४ इति । ११ ऊर्ध्वो दण्डः यस्य तद् उद्दण्डं तादृशं पुण्डरीकम्–कमलम् तैः आढ्याः–पूर्णाः । १२ विशदाः आपः येषु तादृशाः जलाशयाः । १३ यत्र शरदि आकाशे उडूनि–तारकाणि व्यक्तानि । जलाशयाः गगनरूपाः, पुण्डरीकाणि च तारकरूपाणि । १४ यत्र दातारः याचकानां सम्मुखं गच्छन्ति । १५ ग्रैवेयकम्–ग्रीवायाः आभरणम् । १६ न क्वापि स्खलिता । १७ रामाः स्त्रियः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निसर्गमानोज्ञकभूर्देशामानन्ददायिनी । गगने चन्द्रलेखेव सैकैवाभून्महीतले ॥ २४ ॥
पक्षद्वयेन शुद्धेन राजन्ती मधुरस्वरा । सा पत्युर्मानसे राजहंसीवोवास सर्वदा ॥ २५ ॥
रतिर्न रतिमन्वाप न प्रीतिः प्रीतिमाययौ । रूपेणाप्रतिरूपेण भृशं तस्याः पराजिता ॥ २६ ॥
सुग्रीवनृपतेस्तस्याश्चान्योऽन्यमनुरूपयोः । क्रीडतोरगमत् कालो रोहिणी-शशिनोरिव ॥ २७ ॥
इतश्च वैजयन्तस्थो महापद्मस्य भूपतेः । जीवोऽपूरयदायुः स्वं त्रयस्त्रिंशतमर्णवान् ॥ २८ ॥
फाल्गुनासितनवम्यां मूलस्थे रजनीकरे । च्युत्वा ततस्तस्य जीवो रामाकुक्षाववातरत् ॥ २९ ॥
ददर्श च तदा देवी महास्वप्नांश्चतुर्दश । गजादींस्तीर्थकृज्जन्मसूचकान् विशतो मुखे ॥ ३० ॥
जगदाधारहेतुं तं देवी गर्भं दधार सा । क्रीडन्तं मत्तकलभं निम्नगेव हिमाद्रिजा ॥ ३१ ॥
अथ मार्गशीर्षकृष्णपञ्चम्यां मूलगे विधौ । श्वेतवर्णं मकराङ्कं सुतरत्नमसूत सा ॥ ३२ ॥
षट्पञ्चाशद् दिक्कुमार्यस्ततो भोगङ्करादयः । स्वामिनः स्वामिमातुश्च सूतिकर्माणि चक्रिरे ॥ ३३ ॥
सौधर्मकल्पाधिपतिराभियोग्य इवामरः । आदाय स्वामिनं भक्त्या मेरुशैलशिरो ययौ ॥ ३४ ॥
तच्चूलाया दक्षिणतोऽतिपाण्डुकम्बलास्थिते । सिंहासन उपाविक्षच्छक्रोऽङ्कारोपितप्रभुः ॥ ३५ ॥
अच्युताः भक्तितस्तत्राच्युताद्यास्त्रिदशेश्वराः । त्रिषष्टिः स्नपयामासुः स्वामिनं तीर्थवारिभिः ॥ ३६ ॥
अथेशमैशानपतेः सौधर्मेशः समार्पयत् । रक्ष्यवस्तु स्वयामान्ते यामिकस्येव यामिकः ॥ ३७ ॥
अथ स्वामिनमीशानोत्सङ्गासीनं दिवस्पतिः । स्नपयामास वृषभशृङ्गोत्थैर्गन्धवारिभिः ॥ ३८ ॥
अङ्गरागैर्नवैश्चर्चामर्चां चाऽऽभरणादिभिः । आरात्रिकं च कृत्वेति प्रभुं तुष्टाव वासवः ॥ ३९ ॥
धर्महर्म्यदृढस्तम्भ ! सम्यग्ज्ञानसुधाह्रद ! । जगदानन्दजीमूत ! जय त्रिभुवनेश्वर ! ॥ ४० ॥
जगदीश ! तव ब्रूमः किं नामातिशयान्तरम् ? । यन्माहात्म्यगुणक्रीती त्रिलोकी याति दासताम् ॥ ४१ ॥
स्वर्गराज्येऽपि न भ्राजे तथा दास्ये यथा तव । भात्यद्रौ न तथा रत्नमप्यङ्घ्रिकटके यथा ॥ ४२ ॥
शिवं यियासुरायासीर्वैजयन्ताच्छिवान्तिकात् । मार्गभ्रान्तस्य लोकस्य मार्गं दर्शयितुं ध्रुवम् ॥ ४३ ॥
भरतक्षेत्रगेहस्य चिरात् त्वमसि दैवतम् । निःशङ्कं तत्र धर्मोऽद्य गृहस्थ इव नन्दतु ॥ ४४ ॥
विश्वनाथ ! त्वदीयस्य रूपस्यास्यातिशायिनः । अवतारणतां यातु सर्वोऽयं दिविषद्गणः ॥ ४५ ॥
ज्योत्स्नायिते प्रभापूरे लीयमानानि सस्पृहम् । दिष्ट्या त्वयि चकोरन्ति लोचनानि चिरात् प्रभो ! ॥ ४६ ॥
वासागारे सभायां वा तिष्ठतश्चलतोऽपि मे । त्वन्नाममन्त्रस्मरणमस्तु सर्वार्थसिद्धिदम् ॥ ४७ ॥
जिनेश्वरमिति स्तुत्वा गृहीत्वा च सुरेश्वरः । नीत्वा च रामास्वामिन्याः पार्श्वे न्यास यथास्थिति ४८
कुशला सर्वविधिषु गर्भस्थेऽस्मिन् जनन्यभूत् । पुष्पदोहदतो दन्तोद्गमोऽस्य समभूदिति ॥ ४९ ॥
सुविधिः पुष्पदन्तश्चेत्यभिधानद्वयं विभोः । महोत्सवेन चक्राते पितरौ दिवसे शुभे ॥ ५० ॥ युग्मम् ॥
जन्मतः प्रभृति स्वामी दर्शयन्नन्तरं महत् । क्रमेण ववृधे मेषसङ्क्रान्तेरिव वासरः ॥ ५१ ॥
अवाप च जगन्नाथो यौवनं रूपपावनम् । धनुःशतोच्चः श्वेताङ्गः क्षीरोद इव मूर्त्तिमान् ॥ ५२ ॥
स्वामी भवविरक्तोऽपि भृशं पित्रनुरोधतः । उपयेमे राजकन्याः श्रियो विजयिनीः श्रिया ॥ ५३ ॥

---

* °र्गमनो संब्र० मो० ॥ १ मानोज्ञकम्-सौन्दर्यम् । २ मातृ-पितृपक्षद्वयेन, हंसीपक्षे पक्षं भाषायाम् 'पांख' इति । † °रा । स्वप° संब्र० ॥ ३ रतिः प्रीतिश्च कामस्य भार्ये । ४ मूलनक्षत्रस्थे । ५ विशतः-प्रवेशं कुर्वतः । ६ चन्द्रे मूलनक्षत्रं गते । ७ मकरः चिह्नं यस्य । ८ द्वितीयान्तम् । ‡ °ता(त)भक्तयस्त° मो० संल० मङ्ग० ॥ ९ रक्षणीयं वस्तु । यामः प्रहरः । यामिकः प्राहरिकः, भाषायाम् 'पहेरावाळो' । १० जीमूतो मेघः । ११ क्रीती भाषायाम् 'खरीदेली' । १२ शोभां प्राप्नोमि । १३ सिद्धशिलानामकं स्थानं शिवम्, तस्य अन्तिकात् समीपात् । * °पस्यास्यति° मङ्ग० ॥ १४ ज्योत्स्नासमाने । १५ चकोरवत् आचरन्ति । § °पि वा । त्वन्नाममन्त्रस्मरणं मेऽस्तु स° संब्र० ॥ १६ स्थापयामास । १७ मेषसंक्रान्तेः आरभ्य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गतायां पूर्वपञ्चाशत्सहस्र्यां जन्मतः प्रभुः । अलुब्धः पितृदाक्षिण्याद् राज्यभारमुपाददे ॥ ५४ ॥
साष्टाविंशतिपूर्वाङ्गं कालं तावन्तमेव हि । साम्राज्यं पालयामास विधिवत् सुविधिप्रभुः ॥ ५५ ॥
ईयेष च व्रतं स्वामी ते च लौकान्तिकामराः । तत्कृते प्रेरयामासुश्चाटुकारा इव प्रभुम् ॥ ५६ ॥
गतकामो यथाकामं चिन्तामणिरिवार्थिनाम् । ददौ दानं जगन्नाथस्ततः संवत्सरावधि ॥ ५७ ॥
पर्यन्ते तस्य दानस्य जन्मकाल इवामरैः । विधिवद् विदधे दीक्षाभिषेकः परमेशितुः ॥ ५८ ॥
ततः सूरप्रभां नामाध्यारुह्य शिबिकां प्रभुः । वृतः सुरा-ऽसुर-नरैः सहस्राम्रवणं ययौ ॥ ५९ ॥
मार्गकृष्णषष्ठ्यां मूलेऽपराह्ने षष्ठपूर्वकम् । समं राज्ञां सहस्रेण प्रव्रज्यामाददे प्रभुः ॥ ६० ॥
द्वितीयेऽह्नि श्वेतपुरे पुरे पुष्पनृपौकसि । चकार परमान्नेन पारणं परमेश्वरः ॥ ६१ ॥
विदधुर्वसुधारादिपञ्चकं च दिवौकसः । रत्नपीठं स्वामिपादस्थाने पुष्पनृपः पुनः ॥ ६२ ॥
एकाङ्गो निर्ममोऽसङ्गः सहमानः परीषहान् । छद्मस्थो विजहाराथ चतुर्मासीं जगत्पतिः ॥ ६३ ॥
आजगाम प्रभुर्भूयः सहस्राम्रवणं वनम् । मालूरतरुमूले* चावतस्थे प्रतिमाधरः ॥ ६४ ॥
आरूढक्षपकश्रेणेरपूर्वकरणक्रमात् । ऊर्जशुक्लतृतीयायां मूलेऽभूत् केवलं प्रभोः ॥ ६५ ॥
ततः समवसरणं व्यधीयत सुरा-ऽसुरैः । पूर्वद्वारेण तत्राथ प्रविवेश जगद्गुरुः ॥ ६६ ॥
तत्र द्वादशकोदण्डशतोच्चं चैत्यपादपम् । प्रभुः प्रदक्षिणीचक्रे सर्वातिशयशोभितः ॥ ६७ ॥
'तीर्थाय नम' इत्युक्त्वाऽध्यास्त सिंहासनं प्रभुः । प्राङ्मुखो दिक्षु चान्यासु तद्रूपाणि व्यधुः सुराः ॥ ६८ ॥
यथास्थानमथान्येऽपि निषेदुरमरादयः । प्रणम्याथ प्रभुं शक्रः स्तोतुमेवं प्रचक्रमे ॥ ६९ ॥
वीतरागोऽसि चेद् रागः पाणिपादे कथं तव ? । कौटिल्यं चेत् त्वया मुक्तं किं केशाः कुटिलास्तव ? ॥७०॥
प्रजानां यदि गोपस्त्वं दण्डहस्तोऽसि किं न हि ? । निःसङ्गो यदि वाऽसि त्वं तत्किं त्रैलोक्यनाथता ? ७१
यदि त्वं निर्ममस्तत् किं सर्वत्र करुणापरः ? । त्यक्तालङ्करणश्चेत् त्वं तत् किं रत्नत्रयप्रियः ? ॥ ७२ ॥
विश्वस्याप्यनुकूलश्चेत् तत् किं मिथ्यादृशां द्विषन् ? । स्वभावसरलश्चेत् त्वं छद्मस्थोऽस्थाः कथं पुरा ? ॥७३॥
दयावान् यदि वाऽसि त्वं न्यग्रहीर्मन्मथं कथम् ? । यदि च त्वं गतभयो भवाद् भीतोऽसि तत् कथम् ? ॥७४॥
यद्युपेक्षापरोऽसि त्वं तत् किं विश्वोपकारकः ? । अदीप्तो यदि वाऽसि त्वं दीप्तभामण्डलः कथम् ? ॥७५॥
यदि शान्तस्वभावस्त्वं तत् कुतस्तप्तवांश्चिरम् ? । अरोषणोऽसि यदि च रुषितः कर्मणां कथम् ? ॥ ७६ ॥
अविज्ञेयस्वरूपाय महद्भ्योऽपि महीयसे । सिद्धानन्तचतुष्काय तुभ्यं भगवते नमः ॥ ७७ ॥
विरचय्य स्तुतिमिति तूष्णीके सति वासवे । भगवान् सुविधिस्वामी विदधे देशनामिति ॥ ७८ ॥
अनन्तदुःखसम्भारनिधानं खल्वयं भवः । प्रभवश्चाऽऽस्रवस्तस्य विषस्येव महोरगः ॥ ७९ ॥
मनो-वाक्कायकर्माणि योगाः कर्म शुभा-ऽशुभम् । यदाश्रवन्ति जन्तूनामाश्रवास्तेन कीर्तिताः ॥ ८० ॥
मैत्र्यादिवासितं चेतः कर्म सूते शुभात्मकम् । कषाय-विषयाक्रान्तं वितनोत्यशुभं पुनः ॥ ८१ ॥
शुभार्जनाय निर्मिथ्यं श्रुतज्ञानाश्रितं वचः । विपरीतं पुनर्ज्ञेयमशुभार्जनहेतवे ॥ ८२ ॥
शरीरेण सुगुप्तेन शरीरी चिनुते शुभम् । सततारम्भिणा जन्तुघातकेनाशुभं पुनः ॥ ८३ ॥
कषाया विषया योगाः प्रमादा-ऽविरती तथा । मिथ्यात्वमार्त्त-रौद्रे चेत्यशुभं प्रति हेतवः ॥ ८४ ॥
यः कर्मपुद्गलादानहेतुः प्रोक्तः स आश्रवः । कर्माणि चाष्टधा ज्ञानावरणीयादिभेदतः ॥ ८५ ॥

---

१ इच्छां चकार । २ मालूरः बिल्ववृक्षः । * °तलमू° संवृ० ॥ ३ ऊर्जः कार्तिकः । † पुरः संवृ० ॥ ४ अदीप्तः अक्रोधः । ५ दीप्तम्–सुशोभितम् । ६ तपः कृतवान् । ७ रोषयुक्तः । ८ महते । ९ प्रभवः उत्पत्तिस्थानम् । १० मिथ्यारहित-वच–सत्यम् । ‡ श्लोकोऽयं संवृ० नास्ति ॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

ज्ञान-दर्शनयोस्तद्वत् तद्धेतूनां च ये किल । विघ्न[1]-निह्नव-पैशुन्या-ऽऽशातना-घात-मत्सराः ॥ ८६ ॥
ते ज्ञान-दर्शनावारक[2]र्महेतव आस्रवाः । देवपूजा गुरूपास्तिः पात्रदानं दया क्षमा ॥ ८७ ॥
सरागसंयमो देशसंयमोऽकामनिर्जरा । शौचं बालतपश्चेति सद्वेद्यस्य स्युराश्रवाः ॥ ८८ ॥
दुःख-शोक-वधास्तापा-ऽऽक्रन्दने परिदेवनम् । स्वान्योभयस्थाः स्युरसद्वेद्यस्यामी इहाऽऽश्रवाः ॥ ८९ ॥
वीतरागे श्रुते सङ्घे धर्मे सर्वसुरेषु च । अवर्णवादिता तीव्रमिथ्यात्वपरिणामिता ॥ ९० ॥
सर्वज्ञ[3]-सिद्धि-देवापह्नवो धार्मिकदूषणम् । उन्मार्गदेशना-ऽनर्थाग्रहोऽसंयतपूजनम् ॥ ९१ ॥
असमीक्षितकारित्वं गुर्वादिष्ववमानना । इत्यादयो दृष्टिमोहस्याऽऽश्रवाः परिकीर्तिताः ॥ ९२ ॥
कषायोदयतस्तीव्रपरिणामो य आत्मनः । चारित्रमोहनीयस्य स आश्रव उदीरितः ॥ ९३ ॥
उत्प्रा[4]सनं सकन्दर्पोपहासो हासशीलता । बहुप्रलापो दैन्योक्तिर्हास्यस्यामी स्युराश्रवाः ॥ ९४ ॥
देशा[5]दिदर्शनौत्सुक्यं चित्रे रमण-खेलने । परचित्ता[6]वर्जनं चेत्याश्रवाः कीर्त्तिता रतेः ॥ ९५ ॥
असूया पापशीलत्वं परेषां रतिनाशनम् । अकुशलप्रोत्साहनं चाऽरतेराश्रवा अमी ॥ ९६ ॥
स्वयं भयपरीणामः परेषामथ भापनम्[7] । त्रासनं निर्दयत्वं च भयं प्रत्याश्रवा अमी ॥ ९७ ॥
परशोकाविष्करणं स्वशोकोत्पाद-शोचने । रोदनादिप्रसक्तिश्च शोकस्यैते स्युराश्रवाः ॥ ९८ ॥
चतुर्वर्णस्य सङ्घस्य परिवा[8]द-जुगुप्सने । सदाचारजुगुप्सा च जुगुप्साया: स्युराश्रवाः ॥ ९९ ॥
ईर्ष्या-विषयगार्द्ध्ये च मृषावादोऽतिवक्रता । परदाररतासक्तिः स्त्रीवेदस्याऽऽश्रवा इमे ॥ १०० ॥
स्वदारमात्रसन्तोषोऽनीर्ष्या मन्दकषायता । अवक्राचारशीलत्वं पुंवेदस्याऽऽश्रवा इति ॥ १०१ ॥
स्त्री-पुंसानङ्गसेवोग्राः कषायास्तीव्रकामता । पाखण्डस्त्रीव्रतभ्रंशः षण्ढवेदाश्रवा अमी ॥ १०२ ॥
साधूनां गर्हणा धर्मोन्मुखा[9]नां विघ्नकारिता । मधु-मांसाविरतानामविरत्यभिवर्णनम् ॥ १०३ ॥
विरताविरतानां चान्तरायकरणं मुहुः । अचारित्रगुणाख्यानं तथा चारित्रदूषणम् ॥ १०४ ॥
कषाय-नोकषायाणामन्यस्थाना[10]मुदीरणम् । चारित्रमोहनीयस्य सामान्येनाऽऽश्रवा अमी ॥ १०५ ॥
पञ्चेन्द्रियप्राणिवधो बह्वारम्भ-परिग्रहौ । निरनुग्रहता मांसभोजनं स्थिरवैरता ॥ १०६ ॥
रौद्रध्यानं मिथ्यात्वा-ऽनन्तानुबन्धिकषायते । कृष्ण-नील-कपोताश्च लेश्या अनृतभाषणम् ॥ १०७ ॥
परद्रव्यापहरणं मुहुर्मैथुनसेवनम् । अवशेन्द्रियता चेति नरकायुष आश्रवाः ॥ १०८ ॥
उन्मार्गदेशना मार्गप्र[11]णाशो गूढचित्तता । आर्त्तध्यानं सशल्यत्वं मायाऽऽरम्भ-परिग्रहौ ॥ १०९ ॥
शीलव्रते सातिचारे नील-कापोतलेश्यता । अप्रत्याख्या*नकषायास्तिर्यगायुष आश्रवाः ॥ ११० ॥
अल्पौ परिग्रहा-ऽऽरम्भौ सहजे मार्दवा-ऽऽर्जवे । कापोत-पीतलेश्यत्वं धर्मध्यानानुरागिता ॥ १११ ॥
प्रत्याख्यानकषायत्वं परिणामश्च मध्यमः । संविभागविधायित्वं देवता-गुरुपूजनम् ॥ ११२ ॥
पूर्वालाप-प्रियालापौ सुखप्रज्ञापनीयता । लोकयात्रासु माध्यस्थ्यं मानुषायुष आश्रवाः ॥ ११३ ॥
सरागसंयमो देशसंयमोऽकामनिर्जरा । कल्याणमित्रसम्पर्को धर्मश्रवणशीलता ॥ ११४ ॥
पात्रे दानं तपः श्रद्धा रत्नत्रयाविराधना । मृत्युकाले परीणामो लेश्ययोः पद्म-पीतयोः ॥ ११५ ॥
बाल[12]तपो-ऽग्नि-तोयादिसाधनोल्लम्बनानि च । अव्यक्तसामायिकता दैवस्याऽऽयुष आश्रवाः ॥ ११६ ॥

---

१ ज्ञानहेतुषु ज्ञाने च विघ्नः, निह्नवः–अपलापः, पैशुन्यम्, आशातना, घातः, मत्सरः इत्येते ज्ञानावरणहेतवः । २ आवारकम्–आवरणरूपम् । ३ सर्वज्ञस्य सिद्धेः देवानां च अपह्नवः–अपलापः । ४ अधिक हसनम् । ५ देशः प्रदेशः–अङ्गोपाङ्गानि इति । ६ परचित्तस्य आकर्षणम् । ७ भयदर्शनम् । ८ परिवादः–निन्दा जुगुप्सा–घृणा । ९ उन्मुखाः तत्पराः । १० अन्यस्मिन्स्थितानाम् । ११ धर्ममार्गस्य नाशः । * °ख्यानाः क° संछ॰ ॥ १२ विवेकरहितं तपः–अज्ञानतपः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनो-वाक्कायवक्रत्वं परेषां विप्रतारणम् । मायाप्रयोगो मिथ्यात्वं पैशुन्यं चलचित्तता ॥ ११७ ॥
सुवर्णादिप्रतिच्छन्दकरणं कूटसाक्षिता । वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शाद्यन्यथापादनानि च ॥ ११८ ॥
अङ्गोपाङ्गच्यावनानि यन्त्र-पञ्जरकर्म च । कूटमान-तुला-कर्मा-ऽन्यनिन्दा-ऽऽत्मप्रशंसनम् ॥ ११९ ॥
हिंसा-ऽनृत-स्तेया-ऽब्रह्म-महारम्भ-परिग्रहाः । परुषा-ऽसभ्यवचनं शुचिवेषादिना मदः ॥ १२० ॥
मौखर्या-ऽऽक्रोशौ सौभाग्योपघातः कार्मणक्रिया । परकौतूहलोत्पादः परहास-विडम्बने ॥ १२१ ॥
वेश्यादीनामलङ्कारदानं दावाग्निदीपनम् । देवादिव्याजाद् गन्धादिचौर्यं तीव्रकषायता ॥ १२२ ॥
चैत्य-प्रतिश्रया-ऽऽराम-प्रतिमानां विनाशनम् । अङ्गारादिक्रिया चैवाशुभस्य नाम्न आश्रवाः ॥ १२३ ॥
एत एवान्यथारूपास्तथा संसारभीरुता । प्रमादहानं सद्भावार्पणं क्षान्त्यादयोऽपि च ॥ १२४ ॥
दर्शने धार्मिकाणां च सम्भ्रमः स्वागतक्रिया । आश्रवाः शुभनाम्नोऽथ तीर्थकृन्नाम्न आश्रवाः ॥ १२५ ॥
भक्तिरर्हत्सु सिद्धेषु गुरुषु स्थविरेषु च । बहुश्रुतेषु गच्छे च श्रुतज्ञाने तपस्विषु ॥ १२६ ॥
आवश्यके व्रत-शीलेष्वप्रमादो विनीतता । ज्ञानाभ्यासस्तपस्त्यागौ मुहुर्ध्यानं प्रभावना ॥ १२७ ॥
सङ्घे समाधिजननं वैयावृत्यं च साधुषु । अपूर्वज्ञानग्रहणं विशुद्धिर्दर्शनस्य च ॥ १२८ ॥
आद्यन्ततीर्थनाथाभ्यामेते विंशतिराश्रवाः । एको द्वौ वा त्रयः सर्वे वाऽन्यैः स्पृष्टा जिनेश्वरैः ॥ १२९ ॥
परस्य निन्दा-ऽवज्ञोपहासाः सद्गुणलोपनम् । सदसद्दोषकथनमात्मनस्तु प्रशंसनम् ॥ १३० ॥
सदसद्गुणशंसा च सद्दोषाच्छादनं तथा । जात्यादिभिर्मदश्चेति नीचैर्गोत्राश्रवा अमी ॥ १३१ ॥
नीचैर्गोत्राश्रवविपर्यासो विगतगर्वता । वाक्काय-चित्तैर्विनय उच्चैर्गोत्राश्रवा अमी ॥ १३२ ॥
दाने लाभे च वीर्ये च तथा भोगोपभोगयोः । सव्याजा-ऽव्याजविघ्नोऽन्तरायकर्मण आश्रवाः ॥ १३३ ॥
तदित्याश्रवजन्माऽयमपारो भवसागरः । प्रव्रज्यायानपात्रेण तरणीयो मनीषिणा ॥ १३४ ॥
कुमुदानीन्दुभासेवाबुध्यन्त बहवस्तदा । धर्मदेशनया भर्तुः प्राव्रजंश्च सहस्रशः ॥ १३५ ॥
अष्टाशीतिर्वराहाद्या आसन् गणभृतः प्रभोः । देशनान्ते च विदधे वराहो धर्मदेशनाम् ॥ १३६ ॥
गणभृद्देशनान्तेऽयुः स्वं स्वं स्थानं सुरा-ऽसुराः । नन्दीश्वरस्य मध्येन कुर्वन्तोऽष्टाह्निकोत्सवम् ॥ १३७ ॥
　तत्तीर्थजन्मा त्वजितः श्वेताङ्गः कूर्मवाहनः । बिभ्राणो दक्षिणौ बाहू मातुलिङ्गा-ऽक्षसूत्रिणौ ॥१३८॥
वामौ तु नकुल-कुन्तधारिणौ धारयन् भुजौ । नित्यमासन्नवर्त्यासीद् भर्तुः शासनदेवता ॥ १३९ ॥
तथोत्पन्ना सुताराख्या गौराङ्गी वृषवाहना । वरदं साक्षसूत्रं च बिभ्राणा दक्षिणौ भुजौ ॥ १४० ॥
कलशा-ङ्कुशिनौ बाहू दधाना दक्षिणेतरौ । पारिपार्श्विक्यभून्नित्यं भर्तुः शासनदेवता ॥ १४१ ॥
ताभ्यामधिष्ठिताभ्यर्णः कृपारसमहार्णवः । विजहार जगन्नाथो जगतीं बोधयन् जनान् ॥ १४२ ॥
　साधुद्विलक्षी साध्वीनां लक्षं विंशसहस्रयुक् । अवधिज्ञानिनामष्टौ सहस्राः सचतुःशताः ॥ १४३ ॥
सहस्रं पूर्विणां सार्धं मनःपर्ययिणां पुनः । पञ्चसप्ततिशत्येषा केवलज्ञानिनामपि ॥ १४४ ॥
जातवैक्रियलब्धीनां सहस्राणि त्रयोदश । सञ्जातवादलब्धीनां सहस्राणि षडेव हि ॥ १४५ ॥
सैकोनत्रिंशत्सहस्रा श्रावकाणां द्विलक्ष्यथ । श्राविकाणां चतुर्लक्षी द्वासप्ततिसहस्रयुक् ॥ १४६ ॥

---

१ कृत्रिमसुवर्णादि कृत्वा सत्यसुवर्णादित्वेन प्रकटनम् । २ अन्यपदार्थानां वर्णादिपरावर्तनं कृत्वा मूलपदार्थरूपतया व्यवहारः, यथा कृत्रिमं घृतम्-'वेजिटेबल घी' । ३ देवादिनिमित्तम् । ४ प्रतिश्रयः-उपाश्रयः दानशाला वा । ५ सम्भ्रमः-आदरः । ६ अवश्यकर्तव्यरूपप्रतिक्रमणादिकम् । ७ सेवा । ८ तदिति-तेन पूर्वोक्तेन प्रकारेण । * सुरेश्वराः संदृ० ॥ † च संदृ० ॥ ९ अभ्यर्णम्-सामीप्यम् । १० येषां वादलब्धिः-प्रतिवाद्यवश्यविजयरूपा ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

ऊनमष्टाविंशत्यङ्ग्या चतुर्मास्या च केवलात् । पूर्वलक्षं विहरतः परिवारोऽभवत् प्रभोः ॥ १४७ ॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥

सम्मेताद्रिं ततो गत्वा ऋषीणां दशभिः शतैः । प्रपेदेऽनशनं स्वामी मासं चास्थात्तथास्थितः ॥ १४८ ॥
नभस्यकृष्णनवम्यां मूले मे तैः सहर्षिभिः । शैलेशीध्यानलीनः सन् स्वाम्यगादव्ययं पदम् ॥ १४९ ॥
कौमारे पूर्वलक्षार्धमथ राज्यस्य पालने । युक्तमष्टाविंशत्याऽङ्गैः पूर्वलक्षार्धमेव हि ॥ १५० ॥
अष्टाविंशत्यङ्गहीनं पूर्वलक्षं पुनर्व्रते । इत्यायुः पूर्वलक्षे द्वे सुविधिस्वामिनोऽभवत् ॥ १५१ ॥
श्रीचन्द्रप्रभनिर्वाणात् सुविधिस्वामिनिर्वृतिः । सागरोपमकोटीनां गतायां नवतावभूत् ॥ १५२ ॥
विधिवदमरनाथाः कायसंस्कारपूर्वं, मुनिदशशतयुक्तस्यार्हतोऽष्टाधिकस्य ।
शिवगतिमहिमानं चक्रिरे निःसमानं, तदनु सपरिवाराः स्वं स्वमीयुर्विमानम् ॥ १५३ ॥
सुविधिस्वामिनिर्वाणाद् गते काले कियत्यपि । हुण्डावसर्पिणीदोषात् साधूच्छित्तिरजायत ॥ १५४ ॥
स्थविरश्रावकान् धर्ममथापृच्छन्नतद्विदः । पन्थानं पथसम्मूढाः पथिकान् पथिका इव ॥ १५५ ॥
किञ्चित् कथयतां तेषां धर्ममात्मानुसारतः । अर्थपूजां विदधिरे ते जनाः श्रावकोचिताम् ॥ १५६ ॥
पूजया जातगर्द्धास्ते शास्त्राण्यासूत्र्य तत्क्षणम् । महाफलानि दानानि विविधान्याचचक्षिरे ॥ १५७ ॥
कन्यादानं महीदानं प्रदानमयसामपि । तिलदानं च कार्पासदानं दानं गवामपि ॥ १५८ ॥
स्वर्णदानं रौप्यदानं प्रदानं सद्मनामपि । अश्वदानं गजदानं शय्यादानमथापरम् ॥ १५९ ॥
दानं महाफलं सर्वमत्रामुत्र च निश्चितम् । एवं व्याचख्युराचार्यीभूय ते गृध्नवोऽन्वहम् ॥ १६० ॥
दानस्य चोचितं पात्रमात्मानं व्याचचक्षिरे । अपात्रं चापरं सर्वमखर्वेहादुराशयाः ॥ १६१ ॥
अप्येवं वञ्चकास्तेऽयुर्लोकानां गुरुतां तदा । निर्वृक्षदेशे क्रियते ह्येरण्डस्यापि वेदिका ॥ १६२ ॥
जज्ञे तीर्थोच्छेद एवं समन्तात्, क्षेत्रेऽस्मिन्नाऽऽशीतलस्वामितीर्थम् ।
एकच्छत्रं विप्रखेटैस्तदानीं, चक्रे राज्यं निश्युलूकैरिवोच्चैः ॥ १६३ ॥
मिथ्यात्वमाऽऽशान्तिजिनेशमित्थमन्येष्वभूत् षट्सु जिनान्तरेषु ।
तीर्थप्रणाशादभवच्च तेषु, मिथ्यादृशामस्खलितः प्रचारः ॥ १६४ ॥

॥ इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये तृतीये पर्वणि सुविधिस्वामिचरितवर्णनो नाम सप्तमः सर्गः ।

---

१ ध्यानस्थः । २ नभस्यः–भाद्रपदमासः । ३ साधूनाम् उच्छेदः । ४ ये धर्मं न विदन्ति ते । *अथ पू° संवृ० मो० ॥ ५ धनेन पूजाम् । ६ गर्धः–आसक्तिः । ७ अयः–लोहः । एतच्च अन्यधातूनाम् उपलक्षणम् । † सर्वं सुखार्थेहा° संवृ० ॥ ८ अखर्वम्–अत्यधिकम् । ९ वेदिका–चतुष्कोणम् आसनम्, भाषायाम् 'बाजोठ' इति । १० शीतलस्वामितीर्थम् अवधिं कृत्वा तत आरभ्य । ११ शान्तिजिनतीर्थपर्यन्तम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टमः सर्गः ।

श्रीशीतलनाथचरित्रम् ।

श्रीशीतलजिनेन्द्रस्य पादाः शीतरुचेरिव । बोधयन्तः कुवलयं[1] सन्तु वः शिवतातयः[2] ॥ १ ॥
इदं जगत्रयश्रोत्रशीतलीकारकारणम् । शीतलस्य भगवतश्चरितं कीर्तयिष्यते ॥ २ ॥
पुष्करवरद्वीपार्धे प्राग्विदेहविभूषणे । विजये वत्ससंज्ञेऽस्ति सुसीमा नाम पूर्वरा ॥ ३ ॥
तस्यां पद्मोत्तराख्योऽभून्नृपः सर्वनृपोत्तरः । अनुत्तरविमानिभ्य इवैकः कश्चिदागतः ॥ ४ ॥
अलङ्घ्यशासने सर्वप्राणिनां करुणापरे । सोदराविव तत्राऽऽस्तां वीर-शान्ताभिधौ रसौ ॥ ५ ॥
उपायैर्वर्धयंस्तैस्तैः सोऽनपायैरनेकशः[3] । नित्यं धर्मं जजागार भाण्डागार[4] इवेश्वरः ॥ ६ ॥
अद्य श्वो वा भृशममुं त्यजामीति स चिन्तयन् । संसारवासे विदेशस्थायीवा[5]स्थादनास्थया ॥ ७ ॥
अन्यदा राज्यमुत्सृज्य प्राज्यमप्यश्मखण्डवत् । स्रस्ताघसूरिपादान्ते स प्रव्रज्यामुपाददे ॥ ८ ॥
व्रतानि निरतीचाराण्याचरन्नार्जयत् सुधीः । स तीर्थकृन्नामकर्म स्थानकै[6]रागमोदितैः ॥ ९ ॥
विविधाभिग्रहैस्तीव्रैस्तपोभिर्विविधैरपि । जन्मातिवाह्य सकलं सोऽभवत् प्राणतेश्वरः[7] ॥ १० ॥
इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन् क्षेत्रे चात्रैव भारते । श्रीभद्रं भद्रिलपुरं नामास्ति प्रवरं पुरम् ॥ ११ ॥
परिखावलयेनोच्चैः प्राकारस्तत्र काञ्चनः । जम्बूद्वीपजगत्यब्धिवलयेनेव शोभते ॥ १२ ॥
सायमापण[8]वीथीषु प्रदीप्ता दीपधोरणी[9] । तत्र संलक्ष्यते स्वर्णकण्ठिकेव पुरश्रियः ॥ १३ ॥
ऋद्ध्या महत्या भुजङ्ग-वृन्दारकविलासभूः । भोगावत्यमरावत्योरिव सारेण तत् कृतम् ॥ १४ ॥
तस्मिंश्च सत्रशाला[10]सु महेभ्यैर्भोजनार्थिनः । भोज्यन्ते विविधैर्भोज्यैरुत्सवे स्वजना इव ॥ १५ ॥
तस्मिन् दृढरथो नाम नामितारातिमण्डलः । अभूद् भूमण्डलं व्याप्य स्थितोऽब्धिरिव भूपतिः ॥ १६ ॥
स महर्षिगणेनापि वर्ण्यमानैर्निरन्तरम् । अधिकाधिकमत्रीडद्[11] गुणैरप्यगुणैरिव ॥ १७ ॥
प्रत्यर्थिभ्यो बलादात्तामर्थिभ्यः स श्रियं ददौ । अदत्तादानदोषस्य प्रायश्चित्तमिवाऽऽचरन् ॥ १८ ॥
तस्याग्रतो भूपतयः कृतभूलुठना मुहुः । सर्वाङ्गालिङ्गित[12]भुवो भूपतित्वं चिराद् ययुः ॥ १९ ॥
ज्ञानोपदेशलेशोऽपि तस्मिन् गुरुजनैः कृतः । वितस्तार महाप्राज्ञे सलिले तैलबिन्दुवत् ॥ २० ॥
मन्दाकिनीव सरितां सतीनामग्रतःसरा । तस्याभूद् हृदयानन्दा पत्नी नन्देति नामतः ॥ २१ ॥
मन्दमन्दपदन्यासैर्विचरन्त्या मनोरमम् । गतौ शिष्या इवैतस्या राजहंसोऽपि लक्षिताः ॥ २२ ॥
सुगन्धिमुखनिःश्वासं यद् यत् किञ्चिदुवाच सा । प्रपेदे वचनं तत् तद् भ्रमराकृष्टिमन्त्रताम् ॥ २३ ॥
रूपवत्या अभूत् तस्याः स्वस्मिन्नेवोपमानता । विहायसो महत्त्वे हि नोपमानं भवेत् परम् ॥ २४ ॥
स्यूते च स्वगुणैः स्वान्ते दृढं दृढरथस्य सा । अभूद् दृढरथोऽप्यस्या उत्कीर्ण[13] इव चेतसि ॥ २५ ॥
इतश्च प्राणते कल्पे पद्मोत्तरमहीपतेः । जीवः स्वायुरपूरिष्ट विंशतिं सागरोपमान् ॥ २६ ॥
च्युत्वा राधे[14] कृष्णषष्ठ्यां पूर्वाषाढास्थिते विधौ । पद्मोत्तरनृपजीवो नन्दाकुक्षाववातरत् ॥ २७ ॥

---

१ कुमुदम् पृथ्वीवलयं च । २ शिवविस्तारकारिणः । ३ अनपायः–निर्दोषः । ४ भाण्डागारः 'भंडार' इति भाषा । ५ परदेशवासी इव । ६ आगमे हि तीर्थकरनामहेतूनि विंशतिः निमित्तानि प्रसिद्धानि । ७ प्राणतस्वर्गस्येन्द्रः । ८ आपणः हट्टः । ९ धोरणी श्रेणिः । १० दानशालासु । ११ लज्जां प्राप । १२ सर्वाङ्गैः भुवं संस्पृश्य नमस्कृत्य ययुः । १३ उत्कीर्णः–'कोरेलो' भाषा । १४ वैशाखे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दास्वामिन्यपि तदा सुखसुप्ता व्यलोकयत् । चतुर्दश महास्वप्नांस्तीर्थकृज्जन्मसूचकान् ॥ २८ ॥
माघस्य कृष्णद्वादश्यां पूर्वाषाढागते विधौ । श्रीवत्साङ्कं स्वर्णवर्णं श्रीनन्दाऽसूत नन्दनम् ॥ २९ ॥
अष्टाऽधोलोकवास्तव्या ऊर्ध्वलोकजुषोऽष्ट च । अष्टाऽष्टौ रुचकदिशां चतस्रो विदिशां पुनः ॥ ३० ॥
रुचकद्वीपमध्यस्थाश्चतस्रश्चलितासनाः । षट्पञ्चाशद् दिक्कुमार्यः सूतिकर्मैत्य चक्रिरे ॥ ३१ ॥
शक्रोऽप्युपेत्य तत्राऽऽशु गृहीत्वा स्वामिनं स्वयम् । सुमेरुपर्वतशिरस्युपेयाय वृतोऽमरैः ॥ ३२ ॥
अतिपाण्डुकम्बलायां रत्नसिंहासनोपरि । अङ्काधिरोपितपतिर्दिवस्पतिरुपाविशत् ॥ ३३ ॥
ह्रदिनीनाथ-ह्रदिनी-ह्रदादिभ्यः समाहृतैः । अभ्यषिञ्चन् जलैर्नाथमथेन्द्रा अच्युतादयः ॥ ३४ ॥
ईशानाङ्के प्रभुं न्यस्य शक्रोऽप्यस्नपयत् ततः । विकृतस्फाटिकवृषविषाणाग्रोद्गतैर्जलैः ॥ ३५ ॥
दिव्याङ्गरागैश्चर्चित्वाऽर्चित्वा चाऽऽभरणादिभिः । जगत्पतिमिति स्तोतुं समारेभे दिवस्पतिः ॥ ३६ ॥
जयेक्ष्वाकुकुलक्षीररत्नाकरनिशाकर ! । जगन्मोहमहानिद्राविद्रावणदिवाकर ! ॥ ३७ ॥
स्वामालोकयितुं त्वां च स्तोतुं त्वामर्चितुं तथा । आशंसाम्यात्मनोऽनन्ता दृशो जिह्वा भुजा अपि ॥३८॥
स्वामिन् दशमतीर्थेश ! तव पादारविन्दयोः । न्यस्तान्यमूनि पुष्पाणि सम्पन्नं तु फलं मयि ॥ ३९ ॥
अमन्दं ददानन्दं दुःखतापार्दितात्मनाम् । मर्त्यलोकेऽवातरस्त्वं जीमूत इव नूतनः ॥ ४० ॥
वसन्तसमयेनेव दर्शनेन तव प्रभो ! । स्युरद्य नूतनश्रीकाः प्राणिनः पादपा इव ॥ ४१ ॥
त्वद्दर्शनपवित्राणि यानि तानि दिनानि मे । दिनानि शेषाणि पुनः कृष्णपक्षतमस्विनी ॥ ४२ ॥
स्यूतानीवाऽऽत्मना नित्यं कुकर्माणि शरीरिणाम् । त्वयाऽद्य विघटन्तां द्रागयस्कान्तेन लोहवत् ॥ ४३ ॥
अत्र वा दिवि वा तिष्ठंस्तिष्ठन्नन्यत्र वा क्वचित् । त्वद्वाहनमहं भूयां त्वामेव हृदये वहन् ॥ ४४ ॥
एवं दशममर्हन्तं स्तुत्वा दशशतेक्षणः । आदायाऽऽनीय चामुञ्चन्नन्दापार्श्वे यथास्थिति ॥ ४५ ॥
चक्रे दृढरथेनापि कारामोक्षादिनोत्सवः । जगतोऽपि हि मोक्षाय तादृशां जन्म पावनम् ॥ ४६ ॥
राज्ञः सन्तप्तमप्यङ्गं नन्दास्पर्शेन शीत्यभूत् । गर्भस्थेऽस्मिन्निति तस्य नाम शीतल इत्यभूत् ॥ ४७ ॥
सुरकुमारकैर्वेलाधारीन्द्रैरिव सेवितः । ववृधेऽम्भोधिवेलावद् जगन्नाथो दिने दिने ॥ ४८ ॥
शैशवं व्यत्यलङ्घिष्ट क्रमेण परमेश्वरः । शैशवाद् यौवनं चाऽऽप ग्रामात् पुरमिवाऽध्वगः ॥ ४९ ॥
प्रभुर्नवतिधन्वोच्चो रराजाऽऽजानुबाहुकः । पार्श्वतो लम्बमानोरुवल्लीक इव पादपः ॥ ५० ॥
विषयेषु निरीहोऽपि पितृभ्यां प्रार्थितः प्रभुः । चकार पाणिग्रहणं पिण्डादानमिव द्विपः ॥ ५१ ॥
अथ पूर्वसहस्राणां गतायां पञ्चविंशतौ । जग्राह पितृदाक्षिण्याद् राज्यं श्रीशीतलप्रभुः ॥ ५२ ॥
पञ्चाशत्पूर्वसहस्रीमपूर्वभुजविक्रमः । पूर्वक्रमागतं राज्यं शशास विधिवत् प्रभुः ॥ ५३ ॥
अथ संसारसंवासाद् व्यरज्यत प्रभोर्मनः । आसनानि प्रचेलुश्च लौकान्तिकदिवौकसाम् ॥ ५४ ॥
अबुध्यन्ताऽवधिज्ञानादेवं ते त्रिदिवौकसः । जम्बूद्वीपाभिधे द्वीपे भरतार्धे च दक्षिणे ॥ ५५ ॥
दशमो भगवानर्हन् व्रतेच्छुर्वर्तते ततः । तं वयं प्रेरयामोऽद्य सदाकृत्यमिदं हि नः ॥ ५६ ॥ युग्मम् ॥
विमृश्यैवं ब्रह्मलोकात् सुराः सारस्वतादयः । एत्य विज्ञपयामासुरिति स्वामिनमानताः ॥ ५७ ॥
अरण्यस्रोतसीवाऽस्मिंस्तीर्थाभावेन दुस्तरे । संसारे विश्वकृपया तीर्थं नाथ ! प्रवर्तय ॥ ५८ ॥

---

१ सूतिकर्म एत्य–आगत्य । २ दिवस्पतिः–इन्द्रः । ३ ह्रदिनीनाथः–समुद्रः, ह्रदिनी–नदी । ४ विद्रावणम्–नाशनम् । ५ 'अनन्ताः' इत्यादीनि चत्वारि पदानि द्वितीयान्तानि । ६ जीमूतः–मेघः । ७ शेषाणि दिनानि अमावास्यारूपाणि इति भावः । ८ स्यूतम्–सम्बद्धम् । ९ त्वद्वाहनम्–त्वद्भक्तिधारक इति । १० दशशतेक्षणः–सहस्रनयनः, इन्द्र इत्यर्थः । ११ *कारामोक्षादिना*–बन्दिजनमोक्षादिना उत्सवः । * °च्छुर्यतते सङ्घ० ॥ १२ अरण्यस्रोतः–अरण्यस्थितः जलाशयः । १३ तीर्थम्–उत्तरणस्थानम्, भाषायाम् 'घाट' इति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्युदित्वा ययुर्ब्रह्मलोकं लौकान्तिकामराः । शीतलस्वाम्यपि ददौ दानं संवत्सरावधि ॥ ५९ ॥
अन्ते च तस्य दानस्य सुरेन्द्रैश्चलितासनैः । दीक्षाकल्याणकस्नात्रं विदधे शीतलप्रभोः ॥ ६० ॥
कृताङ्गरागो भगवानामुक्तांशुकभूषणः । त्रिजगद्भूषणं नाथो दत्तबाहुर्बिडौजसा ॥ ६१ ॥
अन्यैरपि धृतच्छत्र-चामरादिः सुरेश्वरैः । अध्यारुरोह शिबिकारत्नं चन्द्रप्रभाभिधम् ॥ ६२ ॥ युग्मम् ॥
सुरा-ऽसुरसहस्राणां सहस्रैः परिवारितः । सहस्राम्रवणं नाम स्वपुरोपवनं ययौ ॥ ६३ ॥
ततस्तितीर्षुः संसारं भारवद् भूषणादिकम् । उज्झाञ्चकार झगिति प्रभुः शिवगतिप्रियः ॥ ६४ ॥
शक्रन्यस्तं देवदूष्यांशुकमंसस्थले दधत् । पञ्चभिर्मुष्टिभिः केशानुच्चखान जगत्पतिः ॥ ६५ ॥
क्षीरोदे न्यस्य तान् केशान् शक्रे पुनरुपेयुषि । निषिद्धतुमुले बद्धाञ्जलौ द्वाःस्थ इव स्थिते ॥ ६६ ॥
सुरा-सुर-नरेन्द्राणां प्रत्यक्षमपरेऽहनि । माघस्य कृष्णद्वादश्यां पूर्वाषाढास्थिते विधौ ॥ ६७ ॥
समं नृपसहस्रेण कृतषष्ठतपाः प्रभुः । सावद्ययोगविरतिप्रतिज्ञां प्रत्यपद्यत ॥ ६८ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
तुर्यं ज्ञानं प्रभोर्जज्ञे मनःपर्ययसञ्ज्ञकम् । कृत्वा प्रणामं च ययुः स्वं स्वं स्थानं सुरादयः ॥ ६९ ॥
द्वितीयेऽह्नि रिष्टपुरे पुनर्वसुनृपौकसि । पारणं परमान्नेन विदधे शीतलप्रभुः ॥ ७० ॥
चक्रे च वसुधारादिपञ्चकं विबुधैस्ततः । स्वर्णपीठं पुनस्तत्र पुनर्वसुनृपो व्यधात् ॥ ७१ ॥
विविधाभिग्रहधरः सहमानः परीषहान् । छद्मस्थतया त्रीन् मासान् व्यहार्षीच्छीतलप्रभुः ॥ ७२ ॥
सहस्राम्रवणं भूयोऽप्याजगाम जगद्गुरुः । तत्र प्रतिमया तस्थावधस्तात् प्लक्षशाखिनः ॥ ७३ ॥
भटो वैप्रमिवाऽऽरुह्य शुक्लध्यानं द्वितीयकम् । जघान घातिकर्माणि रिपूनिव जगद्गुरुः ॥ ७४ ॥
पौषकृष्णचतुर्दश्यां पूर्वाषाढागते विधौ । केवलज्ञानमुत्पेदे शीतलस्वामिनस्ततः ॥ ७५ ॥
वप्रैस्त्रिभिश्चतुर्द्वारैः राल-सौवर्ण-राजतैः । ततः समवसरणं चक्रुर्देवा-ऽसुरेश्वराः ॥ ७६ ॥
तत्र प्रविश्य प्राग्द्वारा प्रदक्षिण्यकरोत् प्रभुः । चैत्यवृक्षमशीत्यग्रदशधन्वशतोन्नतम् ॥ ७७ ॥
'नमस्तीर्थाये'ति वदन् पूर्वसिंहासने प्रभुः । न्यषदद् दिक्षु चान्यासु तद्रूपाण्यमरा व्यधुः ॥ ७८ ॥
तत्र तस्थुर्यथास्थानमथान्येऽप्यमरादयः । स्वामिवाचं शुश्रूषन्तः स्तनितं बर्हिणो इव ॥ ७९ ॥
स्वामिनं शीतलमथ शिरःसंस्पृष्टभूतलः । नमस्कृत्वाञ्जलिधर इति वज्रधरोऽस्तवीत् ॥ ८० ॥
त्वत्पादपङ्कजनखद्युतिजालजलप्लवैः । स्नायं स्नायं पुनन्ति स्वं धन्यास्त्रिभुवनेश्वर ! ॥ ८१ ॥
भास्करेणेव गगनं हंसेनेव महासरः । पार्थिवेनेव नगरं शोभते भारतं त्वया ॥ ८२ ॥
आलोकस्तिमिरेणेव सूर्यास्तेन्दूदयान्तरे । मिथ्यात्वेन पराभूतो धर्मस्तीर्थद्वयान्तरे ॥ ८३ ॥
जगदन्धमिदं जज्ञे निर्विवेकविलोचनम् । अपथेषु प्रवव्रृते दिङ्मूढमिव सर्वतः ॥ ८४ ॥
अधर्मो धर्मबुद्ध्या चाऽदेवता देवताधिया । गुरुबुद्ध्या चाऽगुरवो भ्रान्तैर्जगृहिरे जनैः ॥ ८५ ॥
नरकावटपाताय जगत्यस्मिन्नुपस्थिते । निसर्गकरुणाम्भोधिस्तत्पुण्यैस्त्वमवातरः ॥ ८६ ॥
मिथ्यात्वाशीविषो लोके प्रभविष्णुरसौ चिरम् । तावदेव न यावत् ते प्रसरेद् वचनामृतम् ॥ ८७ ॥
तन्मिथ्यात्वापसारेण सम्यक्त्वं जगतोऽधुना । भावि प्रभो ! केवलं ते घातिकर्मक्षयादिव ॥ ८८ ॥
इत्थं स्तुत्वा स्थिते शक्रे भगवान् शीतलप्रभुः । गिरा सुधामधुरया विदधे देशनामिति ॥ ८९ ॥

---

१ आमुक्तम्-परिहितम् । २ अंसः-स्कन्धः । ३ वप्रः-दुर्गः । * °तैः । समवसरणं चक्रुर्देवास्ततः सुरा-ऽसुराः संवृ० ॥ ४ बर्हिणाः-मयूराः । ५ प्लवः-जलपूरम् । ६ स्नायं स्नायम्-अधिकं स्नात्वा । ७ सूर्यास्तस्य चन्द्रोदयस्य च अन्तरे । ८ अवटः-कूपः । ९ आशीविषः-दंष्ट्राविषः सर्पः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

संसारे क्षणिकं सर्वं नानादुःखनिबन्धनम् । मोक्षाय यतितव्यं तद् भवेन्मोक्षस्तु संवरात् ॥ ९० ॥
सर्वेषामाश्रवाणां तु निरोधः संवरः स्मृतः । स पुनर्भिद्यते द्वेधा द्रव्य-भावविभेदतः ॥ ९१ ॥
यः कर्मपुद्गलाऽऽदानच्छेदः स द्रव्यसंवरः । भवहेतुक्रियात्यागः स पुनर्भावसंवरः ॥ ९२ ॥
येन येन ह्युपायेन रुध्यते यो य आश्रवः । तस्य तस्य निरोधाय स स योज्यो मनीषिभिः ॥ ९३ ॥
क्षमया मृदुभावेन ऋजुत्वेनाप्यनीहया । क्रोधं मानं तथा मायां लोभं रुन्ध्याद् यथाक्रमम् ॥ ९४ ॥
असंयमकृतोत्सेकान्[1] विषयान् विषसन्निभान् । निराकुर्यादखण्डेन संयमेन महामतिः ॥ ९५ ॥
तिसृभिर्गुप्तिभिर्योगान् प्रमादं चाप्रमादतः । सावद्ययोगहानेन विरतिं चापि साधयेत्[2] ॥ ९६ ॥
सद्दर्शनेन मिथ्यात्वं शुभस्थैर्येण चेतसः । विजयेताऽऽर्त्त-रौद्रे[3] च संवरार्थं कृतोद्यमः ॥ ९७ ॥
यथा चतुष्पथस्थस्य बहुद्वारस्य वेश्मनः । अनावृतेषु द्वारेषु रजः प्रविशति ध्रुवम् ॥ ९८ ॥
प्रविष्टं स्नेहयोगाच्च तन्मयत्वेन बध्यते । न विशेन्न च बध्येत द्वारेषु स्थगितेषु तु ॥ ९९ ॥
यथा वा सरसि क्वापि सर्वैर्द्वारैर्विशेज्जलम् । तेषु तु प्रतिरुद्धेषु प्रविशेन्न मनागपि ॥ १०० ॥
यथा वा यानपात्रस्य मध्ये रन्ध्रैर्विशेज्जलम् । कृते रन्ध्रपिधाने तु न स्तोकमपि तद् विशेत् ॥ १०१ ॥
योगादिष्वाश्रवद्वारेष्वेवं रुद्धेषु सर्वतः । कर्मद्रव्यप्रवेशो न जीवे संवरशालिनि ॥ १०२ ॥
संवरादाश्रवद्वारनिरोधः संवरः पुनः । क्षान्त्यादिभेदाद् बहुधा तथैव प्रतिपादितः ॥ १०३ ॥
गुणस्थानेषु यो यः स्यात् संवरः स स उच्यते । मिथ्यात्वानुदयात् परस्थेषु मिथ्यात्वसंवरः ॥ १०४ ॥
तथा देशविरत्यादौ स्यादविरतिसंवरः । अप्रमत्तसंयतादौ प्रमादसंवरो मतः ॥ १०५ ॥
प्रशान्त-क्षीणमोहादौ भवेत् कषायसंवरः । अयोग्याख्यकेवलिनि सम्पूर्णो योगसंवरः ॥ १०६ ॥
संवृतः संवरेणैवं भवस्यान्तं व्रजेत् सुधीः । निश्छिद्रयानपात्रेण सांयात्रिक इवाम्बुधेः ॥ १०७ ॥
प्रभोस्तया देशनया प्रबुद्धा बहवो जनाः । प्रव्रज्यां जगृहुः केऽपि केऽपि श्रावकतां पुनः ॥ १०८ ॥
आनन्दाद्या एकाशीतिः प्रभोर्गणभृतोऽभवन् । देशनान्ते प्रभोश्चक्रेऽथाऽऽनन्दो धर्मदेशनाम् ॥ १०९ ॥
आनन्ददेशनान्ते च नमस्कृत्य जगद्गुरुम् । स्थानं निजनिजं जग्मुः सुरा-ऽसुर-नरेश्वराः ॥ ११० ॥
तत्तीर्थभूर्ब्रह्मनामा यक्षस्त्र्यक्षश्चतुर्मुखः[4] । पद्मासनः श्वेतवर्णश्चतुर्भिर्दक्षिणैर्भुजैः ॥ १११ ॥
मातुलिङ्ग-मुद्गरभृत्-सपाशा-ऽभयदायिभिः । वामैस्तु नकुल-गदा-ऽङ्कुशा-ऽक्षसूत्रधारिभिः ॥ ११२ ॥
तथोत्पन्ना त्वशोकेति मुद्गवर्णाऽब्जवाहना* । बिभ्राणा दक्षिणौ बाहुदण्डौ वरद-पाशिनौ ॥ ११३ ॥
फला-ऽङ्कुशधरौ बाहू वहन्ती दक्षिणेतरौ† । उभे अभूतां दशमार्हतः शासनदेवते ॥ ११४ ॥
उपास्यमानस्ताभ्यां च विजह्रे शीतलप्रभुः । ततः पूर्वसहस्रांस्त्रिमासोनां पञ्चविंशतिम् ॥ ११५ ॥
लक्षं मुनीनां साध्वीनां लक्षमेकं षडुत्तरम् । चतुर्दशपूर्वभृतां चतुर्दश शतानि च ॥ ११६ ॥
अवधिज्ञानधराणां द्वासप्ततिशती पुनः । सार्धाः सप्त सहस्रास्तु मनःपर्ययधारिणाम् ॥ ११७ ॥
शतानि सप्ततिरथ केवलज्ञानधारिणाम् । जातवैक्रियलब्धीनां सहस्रा द्वादशैव तु ॥ ११८ ॥
शतानि चाष्टपञ्चाशद् वादलब्धिमतां पुनः । श्रावकाणामुभे लक्षे नवाशीतिसहस्र्यपि ॥ ११९ ॥
श्राविकाणां चतुर्लक्ष्यष्टपञ्चाशत्सहस्रयुक् । इति जज्ञे परीवारः प्रभोर्विहरतः सतः ॥ १२० ॥
मोक्षकालेऽथ सम्प्राप्ते सम्मेताद्रिं ययौ प्रभुः । प्रपेदेऽनशनं तत्र सहस्रेणर्षिभिः सह ॥ १२१ ॥
मासान्ते वैशाखकृष्णद्वितीयायां निशाकरे । पूर्वाषाढागते स्वामी मोक्षेऽगात् तैः सहर्षिभिः ॥ १२२ ॥
कुमारभावे पूर्वाणां सहस्राः पञ्चविंशतिः । पञ्चाशत् पूर्वसहस्राः पृथिवीपरिपालने ॥ १२३ ॥

---

१ उत्सेकः—उत्सेचनम्—पोषणम् । २ निराकुर्यात्—इति अध्याहार्यम् । ३ विजयेत—पराजिते कुर्यात् । ४ त्र्यक्षः—त्रिनेत्रः ।
* °र्णाब्जगा° संवृ० ॥ † पाशाङ्कुशधरौ बाहू बिभ्रती द° संवृ० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रव्रज्यापालने पूर्वसहस्राः पञ्चविंशतिः । एवमायुः पूर्वलक्षमभूच्छ्रीशीतलप्रभोः ॥ १२४ ॥
सुविधिस्वामिनिर्वाणान्निर्वाणं शीतलप्रभोः । सागरोपमकोटीषु व्यतीतासु नवस्वभूत् ॥ १२५ ॥

श्रीशीतलस्य मुनिभिः सह तैर्विमुक्तिमासेदुषो दिविषदां पतयो यथावत् ।
निर्वाणयानमहिमानमुदारशोभं चक्रुर्ययुर्निजनिजं पुनरेव लोकम् ॥ १२६ ॥

॥ इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये तृतीये पर्वणि
श्रीशीतलस्वामिचरितवर्णनो नामाष्टमः सर्गः ॥

॥ समाप्तं च तृतीयं पर्व ॥

श्रीसम्भवप्रभृतितीर्थकृतां तृतीयेऽष्टानां चरित्रमिह पर्ववरेऽष्टसर्गे ।
ध्येयं पदस्थमिव[1] वारिरुहेऽष्टपत्रेऽनुध्यायतो भवति सिद्धिरवश्यमेव ॥ १ ॥

॥ ग्रन्थाग्रम्—१८०४ ॥

---

१ पदस्थम्–शब्दरूपम्–जपरूपमिति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ अर्हम् ॥

॥ नमः श्रीधर्मकथानुयोगव्याख्यातृभ्यः स्थविरेभ्यः ॥

कलिकालसर्वज्ञश्रीहेमचन्द्राचार्यविनिर्मितं

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितम् ।

श्रीश्रेयांसजिनादिद्वाविंशतिशलाकापुरुषचरितप्रतिबद्धं चतुर्थं पर्व ।

प्रथमः सर्गः ।

श्रीश्रेयांसजिनादिचरितम् ।

श्रीश्रेयांसप्रभोः पादाः श्रेयो विश्राणयन्तु[1] वः । निःश्रेयसपथालोकदीपायित[2]नखांशवः ॥ १ ॥
श्रीश्रेयांसजिनेन्द्रस्य पवित्रितजगत्रयम् । लवित्रं[3] कर्मवल्लीनां चरित्रमिदमुच्यते ॥ २ ॥
पुष्करवरद्वीपार्धे प्राग्विदेहेषु सुन्दरे । विजये कच्छसञ्ज्ञेऽस्ति नाम्ना क्षेमेति पूर्वरा ॥ ३ ॥
महीभृन्मौलिमुकुटघृष्टाङ्घ्रिनलिनद्वयः । राजा नलिनगुल्मोऽभूद् गुणैरमलिनः सदा ॥ ४ ॥
स स्वामी मन्त्रिणो मन्त्रबलाकृष्टरिपुश्रियः । सुरराष्ट्रोपमं राष्ट्रं सर्वारिष्टविवर्जितम् ॥ ५ ॥
दुर्गाणि जितवैताढ्यविद्याधरपुराणि तु । कोशांश्च श्रीदसर्वस्वाधरीकारपरायणान् ॥ ६ ॥
बलं हस्त्यश्व-पादात-रथच्छादितभूतलम् । असुहृद्धृदयक्षेत्रकर्षकान् सुहृदोऽपि च ॥ ७ ॥
राज्यस्य विकलाङ्गत्वं मा भूदिति धिया व्यधात् । जगदेकमहाबाहुर्बाहुदन्तेय[4]विक्रमः ॥ ८ ॥
चतुर्भिः कलापकम् ॥
वपु-र्यौवन-लक्ष्मीणां साराणामप्यसारताम् । सोऽमन्यत महाप्राज्ञो विवेकामलमानसः ॥ ९ ॥
कुभोजनेनाहरिव निशामिव कुशय्यया । कियन्तमपि सोऽनैषीत् कालं राज्येन शुद्धधीः ॥ १० ॥
राज्यं रुजमिवोत्सृज्य तत्त्वतौषधिमानसः । वज्रदत्तर्षिणा दत्तां दीक्षामादत्त धर्मधीः ॥ ११ ॥
तप्यमानस्तपस्तीव्रं सहमानः परीषहान् । कर्मेव कृशयन्नङ्गं विजहार स निर्ममः ॥ १२ ॥
अर्हद्भक्त्यादिभिस्तैस्तैः स्थानैः प्रवचनोदितैः । उपार्जयामास दृढं तीर्थकृन्नामकर्म सः ॥ १३ ॥
महातपाः शुभध्यानश्चतुःशरण[5]तत्परः । काले प्राप्तावसानः स महाशुक्रदिवं ययौ ॥ १४ ॥
ततश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन् भरतक्षेत्रभूषणम् । रत्ननूपुरवद् भूमेरस्ति सिंहपुरं* पुरम् ॥ १५ ॥

---

१ विश्राणयन्तु–यच्छन्तु । २ दीपायिताः–दीपसमानाः । ३ लवित्रम्–छेदकम् । ४ बाहुदन्तेयः–इन्द्रः । ५ अर्हत्-सिद्ध-साधु-धर्मरूपं शरणचतुष्कम् । * °मे रत्नं सिं° संद्व० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सङ्क्रान्ततारका रत्नवलभ्यस्तत्र[1] वेश्मनाम् । श्रियं सदन्तशारस्य[2] शारपट्टस्य[3] बिभ्रति ॥ १६ ॥
तद्वप्रमेखलासूच्चैर्विश्रान्ता भान्ति वारिदाः । चक्षूरक्षाकृते दत्ताः कज्जलस्थासका[4] इव ॥ १७ ॥
वरिष्ठवनिताचारसञ्जुमञ्जीरशिञ्जितैः[5] । वितन्यते श्रियो देव्या नित्यं सङ्गीतकोत्सवः ॥ १८ ॥
रत्नावकरवाहीनि[6] स्रोतांस्यपि तदोकसाम् । यान्ति रत्नाकरस्रोतस्तुलां वर्षति वारिदे ॥ १९ ॥
आढ्यम्भविष्णुर्यशसा प्रभविष्णुर्भुजौजसा । विष्णुराज इति क्ष्मापस्तत्राभूद् विष्णुविक्रमः ॥ २० ॥
तत्रेन्द्रियजयो नाम गुणो बीजमिवावनौ । सस्यराशिमिवाऽसूत गुणराशिं समुज्ज्वलम् ॥ २१ ॥
प्रणते च विपक्षे च तुष्टा रुष्टाश्च तद्दृशः । ययुः स्वयंवरस्रक्त्वं श्रियोऽपि च भियोऽपि च ॥ २२ ॥
दानधर्म इवौचित्यात् सूनृतेनेव भारती । अवदातेन यशसा शुशुभे तस्य विक्रमः ॥ २३ ॥
गुणानां शौर्य-गाम्भीर्य-धैर्यादीनां स भूयसाम् । नित्यं क्रीडनसङ्गीतनिकेतनमिवाभवत् ॥ २४ ॥
जिष्णोरिव[8] शची रूपभ्राजिष्णुर्विष्णुरित्यभूत् । द्वितीयेव मही स्थैर्यात् पत्नी तस्य महीपतेः ॥ २५ ॥
शिरीषसुकुमारस्य सा निजाङ्गस्य भूषणम् । निशातं[9] खड्गधारावत् सतीव्रतमधारयत् ॥ २६ ॥
यथाऽभूदप्रतिच्छन्दो[10] विक्रमेण स भूपतिः । तथा साऽप्यप्रतिच्छन्दा रूपलावण्यसम्पदा ॥ २७ ॥
अलसा[11] सा गतावेव न पुनर्धर्मकर्मणि । मध्यप्रदेश एवाभूत् तुच्छा[12] न पुनराशये ॥ २८ ॥
तस्या राज्ञोऽपि च मिथोऽनुस्यूतमनसोरिव । अक्षया प्रीतिरभवदविघ्नं रममाणयोः ॥ २९ ॥

इतश्च शुक्रे नलिनगुल्मस्य पृथिवीपतेः । जीवः प्रकृष्टसङ्ख्यं स निजमायुरपूरयत् ॥ ३० ॥
ज्येष्ठस्य षष्ठ्यां कृष्णायां श्रवणस्थे[13] निशाकरे । च्युत्वा ततस्तस्य जीवो विष्णुकुक्षाववातरत् ॥ ३१ ॥
नारकाणामपि सुखमुद्योतश्च जगत्त्रये । जज्ञे तदा क्षणं स्याद्धि कल्याणेष्वर्हतामिदम् ॥ ३२ ॥
सङ्क्षिप्त इव वैताढ्यः श्वेतवर्णो महागजः । समत्स्यः शरदम्भोद इवोच्चशृङ्गः सितो वृषः ॥ ३३ ॥
उत्पुच्छो[14] विधृतच्छत्र इव केसरिपुङ्गवः । साभिषेका महालक्ष्मीर्मूर्त्यन्तरमिवाऽऽत्मनः ॥ ३४ ॥
सुगन्धि सुमनोदाम मूर्त्तमिव यशः स्वकम् । सुधाकुण्डमिव ज्योत्स्नाप्लुतः पर्वनिशाकरः[15] ॥ ३५ ॥
मार्तण्डमण्डलं दीप्रं दिवः सीमन्तरत्नवत्[16] । ध्वजश्चलपताकश्च सशाख इव पादपः ॥ ३६ ॥
पूर्णकुम्भो गरीयांश्च निधानं श्रेयसामिव । महापद्मं पद्मसरः पद्मह्रद इवापरः ॥ ३७ ॥
आरुरुक्षुरिव दिवमुत्कल्लोलो महार्णवः । अनुजं[17] पालकस्येव विमानवरमायतम् ॥ ३८ ॥
रत्नपुञ्जश्च सर्वस्वमिव रत्नाकरोद्धृतम् । निर्धूमश्चानलो भौममण्डलस्यानुहारकः[18] ॥ ३९ ॥
एते तदा विष्णुदेव्या महास्वप्नाश्चतुर्दश । मुखे विशन्तोऽदृश्यन्त तीर्थकृज्जन्मसूचकाः ॥ ४० ॥

तपस्यकृष्णद्वादश्यां[19] श्रवणे खड्गिलाञ्छनम्[20] । स्वर्णवर्णं विष्णुदेवी सुखेन सुषुवे सुतम् ॥ ४१ ॥
अथाधोलोकवास्तव्या अष्टौ भोगङ्करादयः । दिक्कुमार्यः समाजग्मुर्विज्ञायाऽऽसनकम्पतः ॥ ४२ ॥
तीर्थकृन्मातरं नत्वा 'मा भैषी'र्वादपूर्वकम् । आत्मानं ज्ञापयित्वा च कृत्वा संवर्तकानिलम् ॥ ४३ ॥
परितः सूतिकागारमायोजनमथासृजन्[21] । स्वामिमातुरदूरे ता गायन्त्यश्चावतस्थिरे ॥ ४४ ॥ युग्मम् ॥
नन्दनोद्यानकूटस्था ऊर्ध्वलोकजुषोऽष्ट च । एत्य मेघङ्कराद्या दिक्कन्या देवीं प्रणम्य च ॥ ४५ ॥

---

१ वलभी-गृहप्रासादोपरि गृहाच्छादनम् । २ दन्तशारः-दन्तमयः शारः, भाषायाम्-'दांतनो पासो' । ३ शारपट्टः-पाशकपट्टः । ४ कज्जलस्थासकः-कज्जलतिलकम् । ५ चारः-गतिः । मञ्जीरम्-नूपुरम् । शिञ्जितम्-भूषणध्वनिः । ६ अवकरः-उत्करः । ७ नक्रे शब्दो च । ८ जिष्णुः-इन्द्रः । ९ तीक्ष्णम् । १० अप्रतिच्छन्दः-अनुपमानः । ११ अलसा-मन्थरा आलस्ययुक्ता च । १२ तुच्छा-कृशा क्षुद्रा च । १३ श्रवणनक्षत्रस्थिते । १४ ऊर्ध्वपुच्छः । १५ पूर्णिमाचन्द्रः । १६ स्वर्गस्य सीमन्तरत्नवत्, भाषायाम्-'सीमन्त' इति 'सेंथो' । १७ अनुजः-लघुभ्राता । १८ भौमः-मङ्गलः । अनुहारकः-अनुसारी । १९ तपस्यः-फाल्गुनः । २० खड्गी-गण्डकः, भाषायाम् 'गेंडो' इति । २१ आयोजनम्-योजनपर्यन्तम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वं ज्ञापयित्वा कृत्वा च दुर्दिनं गन्धवारिभिः । सिषिचुः क्ष्मां सूतिवेश्मपरितो योजनावधिम् ॥ ४६ ॥
विदधुः पुष्पवृष्टिं चाधाक्षुर्धूपं च सुन्दरम् । गायन्त्योऽर्हद्गुणांस्तस्थुर्विष्णुदेव्या अदूरतः ॥ ४७ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

रुचकस्य च पौरस्त्या देव्यो नन्दोत्तरादयः । अपाच्याः समाहाराद्याः प्रतीचीनास्त्विलादयः ॥४८॥
अलम्बुसाद्यास्तूदीच्या अष्ट प्रत्येकमेत्य ताः । नत्वाऽर्हन्तं तदम्बां च ज्ञापयित्वा स्वमुच्चकैः ॥ ४९ ॥
धृत्वा दर्पण-भृङ्गार-व्यजन-श्वेतचामरान् । पूर्वादिदिक्क्रमेणास्थुर्गायन्त्यः स्वामिनो गुणान् ॥ ५० ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

चतस्र एत्य चित्राद्या रुचकस्य विदिग्भवाः । तद्वन्नत्वा विदिक्ष्वस्थुर्गायन्त्यो दीपपाणयः ॥ ५१ ॥
चतस्रो रुचकान्तस्था रूपाद्या दिक्कुमारिकाः । अर्हन्तमर्हदम्बां च नत्वा स्वज्ञप्तिपूर्वकम् ॥ ५२ ॥
चतुरङ्गुलकोत्कर्षं स्वामिनालमखण्डयन् । खनित्वा विदरं तत्र निचख्नुस्तच्च तत्क्षणात् ॥ ५३ ॥
॥ युग्मम् ॥

विदरं वज्ररत्नैस्तदाऽऽपूर्योपरि तस्य च । बबन्धुर्निबिडं पीठं दूर्वया द्रागपूर्वया ॥ ५४ ॥
सूतिकावेश्मनस्तस्य चक्रुस्तिसृषु दिक्षु ताः । सिंहासनचतुःशालैर्वन्ति रम्भागृहाणि च ॥ ५५ ॥
हस्तेऽर्हन्तं गृहीत्वाऽर्हन्मातरं च भुजे तथा । अपागूरम्भागृहचतुःशालसिंहासने न्यधुः ॥ ५६ ॥
शतपाकादिभिस्तैलैरुभावभ्यज्य तत्र ताः । गन्धद्रव्यैः सूक्ष्मपिष्टैः सुस्पर्शमुदवर्तयन् ॥ ५७ ॥
प्राच्यरम्भागृहचतुःशालसिंहासने ततः । तौ न्यस्याऽस्नपयन् गन्ध-पुष्प-शुद्धोदकैश्च ताः ॥ ५८ ॥
ततस्ताः परिधाप्योभौ वस्त्रा-ऽलङ्करणादिकम् । उदग्रम्भागृहचतुःशालसिंहासने न्यधुः ॥ ५९ ॥
गोशीर्षचन्दनं दग्ध्वा सद्योऽरणिकृताग्निना । तद्भस्मना बबन्धुस्ता रक्षाग्रन्थिं द्वयोरपि ॥ ६० ॥
पर्वतायुर्भवेत्याशीःपूर्वकं स्वामिकर्णयोः । ताः समास्फालयामासू रत्नपाषाणगोलकौ ॥ ६१ ॥
अर्हदर्हज्जनन्यौ तास्ततः सूतिगृहेऽनयन् । तयोरनतिदूरेऽस्थुर्गायन्त्यो मङ्गलान्यथ ॥ ६२ ॥

अथ शक्रः समागत्य स्वामिनः सूतिकागृहम् । पालकेन विमानेन प्रदक्षिण्यकृत द्रुतम् ॥ ६३ ॥
ऐशान्यां पालकं मुक्त्वा सूतिवेश्म प्रविश्य सः । अर्हन्तमर्हदम्बां च नमश्चक्रे पुरन्दरः ॥ ६४ ॥
दत्त्वाऽवस्वापिनीं देव्याः पार्श्वेऽर्हत्प्रतिरूपकम् । विन्यस्याथ विचक्रे स पञ्च रूपाण्यथाऽऽत्मनः ॥ ६५ ॥
एकेन प्रभुमुद्धृत्य च्छत्रमन्येन चामरे । अन्याभ्यां वज्रं चान्येन पुरोरूपेण सोऽचलत् ॥ ६६ ॥
क्षणान्मेरावतिपाण्डुकम्बलामासदच्छिलाम् । शक्रः सिंहासने तत्राऽऽसाञ्चक्रेऽङ्कस्थितप्रभुः ॥ ६७ ॥
अथाऽच्युतप्रभृतयः कल्पेन्द्रा नव ते तथा । इन्द्रा भवनपतयो विंशतिश्चमरादयः ॥ ६८ ॥
द्वात्रिंशद् व्यन्तराधीशाः कालप्रभृतयोऽपि च । सूर्या-चन्द्रमसाविन्द्रौ ज्योतिष्काणामुभौ पुनः ॥ ६९ ॥
इति त्रिषष्टिस्तत्रेयुर्जन्मस्नात्रकृते प्रभोः । विचक्रुः पूर्णकुम्भादीन्द्राज्ञयाऽथाऽऽभियोगिकाः ॥ ७० ॥
अथाऽच्युतप्रभृतयः सर्वेऽपीन्द्रा यथाक्रमम् । स्वामिनः स्नपनं चक्रुः पवित्रैस्तीर्थवारिभिः ॥ ७१ ॥
अथेशानपतेरङ्के शक्रो न्यस्य जगत्पतिम् । विचक्रे दिक्चतुष्केऽपि चतुरः स्फाटिकान् वृषान् ॥ ७२ ॥
तेषां शृङ्गोद्गतैरन्ते मिलित्वा विनिपातिभिः । स्वामिनं स्नपयामास शक्रः शुचिभिरम्बुभिः ॥ ७३ ॥

१ दुर्दिनम्–मेघजं तमः, भाषायाम् 'वादळां' इति । २ अधाक्षुः–ज्वालयामासुः । ३ दीपहस्ताः । ४ स्वपरिचयदानपूर्वकम् । ५ गर्तः, भाषायाम् 'खाडो' । दूर्वा भाषायाम् 'धरो' इति । ६ चतुःशालम्–गृहप्रकारः, "चोसाल" इति भाषायाम् । ७ अभ्यज्य–विलिप्य । ८ न्यस्य–स्थापयित्वा । ९ परिधाप्य–परिधानं कारयित्वा । १० उदग्–उत्तरम् । ११ अरणिकाष्ठघर्षणेन अग्निर्जायत इति प्रसिद्धम् । * °त्वाऽपस्वा° संवृ० ॥ १२ प्रतिरूपकम्–प्रतिबिम्बम्–प्रतिमाम् । १३ पूर्णकुम्भादि इन्द्राज्ञया इति सन्धिविश्लेषः । † °रङ्के सि° संवृ० ॥ १४ पतद्भिः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संहृत्य स्फाटिकानुक्ष्णः[1] कृत्वा चर्चादिकं प्रभोः । उत्तार्याऽऽरात्रिकं चेति स्तोतुं शक्रः प्रचक्रमे ॥७४॥

सर्वकल्याणकश्रेष्ठं जन्मकल्याणकं तव । विश्राणयतु कल्याणं कल्याणीभक्तिके[2] मयि ॥ ७५ ॥

स्नपयाम्यथ चर्चामि ? किमर्चामि ? स्तवीमि किम् ? । स्वामितीश ! न तृप्तिर्मे त्वदाराधनकर्मणि ॥७६॥

वृषैः[3] कुतीर्थिकव्याघ्रत्रासितस्त्वयि रक्षके । अमुष्मिन् भरतक्षेत्रे स्वैरं चरतु सम्प्रति ॥ ७७ ॥

अद्य स्वयमधिष्ठाय हृदयायतनं मम । दिष्ट्या देवाधिदेव ! त्वं सनाथीकुरुषेतराम् ॥ ७८ ॥

न तथा भूषणं नाथ ! ममैभिर्मुकुटादिभिः । यथा शिरोऽग्रलुठितैस्त्वत्पादनखरश्मिभिः ॥ ७९ ॥

न तथा त्रिजगन्नाथ ! स्तूयमानस्य मागधैः । मम प्रमोदो भवति त्वद्गुणान् स्तुवतो यथा ॥ ८० ॥

रत्नसिंहासनस्थस्य न हि मध्येसभं तथा । उच्चैस्त्वं[4] त्वत्पुरो भूमिनिषण्णस्य यथा मम ॥ ८१ ॥

स्वाराज्यसम्पदा[5]मेतां न काङ्क्षामि स्वतन्त्रताम् । परतन्त्रश्चिरं भूयां[6] नाथेन भवता प्रभो ! ॥ ८२ ॥

इति स्तुत्वा गृहीत्वेशं गत्वाऽर्हन्मातुरन्तिके । संहृत्या[7]ऽर्हत्प्रतिच्छन्दा-ऽवस्वापिन्यौ न्यधाद्धरिः ॥ ८३ ॥

स्वामिसूतिगृहाच्छक्रो मेरुशैलादथापरे । इन्द्रा जग्मुर्यथास्थानं विसृष्टा इव सेवकाः ॥ ८४ ॥

महान्तमुत्सवं चक्रे विष्णुराजोऽप्यथ प्रगे । तदा प्रमोदो मेदिन्यामेकच्छत्र[8] इवाभवत् ॥ ८५ ॥

जिनस्य मातापितरावुत्सवेन महीयसा । अभिधां श्रेयसि दिने श्रेयांस इति चक्रतुः ॥ ८६ ॥

धात्रीभिः शक्रादिष्टाभिर्लाल्यमानोऽथ पञ्चभिः । पिबन् शक्राऽऽहित[9]सुधं स्वाङ्गुष्ठं स्वाम्यवर्धत ॥ ८७ ॥

ज्ञानत्रयधरोऽपीशो मौग्ध्यं बाल्योचितं दधौ । चण्डांशु[10]रपि न प्रातश्चण्डतामवलम्बते ॥ ८८ ॥

सुरा-ऽसुर-नृकुमारैः क्रीडन् कालेन शैशवात् । आरोहद् यौवनं स्वामी स्यन्दनादिव कुञ्जरम् ॥ ८९ ॥

अशीतिधनुरुत्तुङ्गः स्वामी पितृपरोधतः । पर्यणैषीद्[11] राजकन्या भववैराग्यभागपि ॥ ९० ॥

जन्मतो वर्षलक्षाणां गतायामेकविंशतौ । पितुः प्रार्थनया नाथः पृथ्वीभारमुपाददे ॥ ९१ ॥

द्विचत्वारिंशतं वर्षलक्षाणि क्षोणिमण्डलम् । ररक्षाऽक्षीणमहिमा श्रेयांसः श्रेयसां निधिः ॥ ९२ ॥

स्वामी भवविरक्तोऽथ दीक्षामादित्सुरुत्सुकः । प्रैर्यतोपेत्य[12] शकुनैरिव लौकान्तिकामरैः ॥ ९३ ॥

शक्रादेशात् कुबेरेण प्रेरितैर्जृम्भकामरैः । अर्थेन पूर्यमाणेन स्वाम्यदाद् दानमाब्दिकम्[13] ॥ ९४ ॥

वत्सरान्ते समेत्येन्द्रैर्जिनेन्द्रस्य व्यधीयत । दीक्षाभिषेकः कर्मारिविजयायेव सत्वरम् ॥ ९५ ॥

दिव्याङ्गरागलिप्ताङ्गो रत्नभूषणभूषितः । मङ्गल्यदिव्यवसनो मूर्तिस्थमिव मङ्गलम् ॥ ९६ ॥

विनीतेनेव भृत्येन दत्तबाहुर्बिडौजसा । अपरेन्द्रैरपि च्छत्र-चामरादिधरैर्वृतः ॥ ९७ ॥

आरुह्य रत्नैर्विमलां शिबिकां विमलप्रभाम् । समावृतः सुर-नरैः सहस्राम्रवणं ययौ ॥९८॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

शिबिकातः समुत्तीर्य तत्रौज्झद्[14] भूषणादिकम् । देवदूष्यं देवराजन्यस्तं स्कन्धे दधार च ॥ ९९ ॥

फाल्गुनस्य त्रयोदश्यां कृष्णायां श्रवणे प्रभुः । षष्ठेनोदखनत्[15] केशान् पूर्वाह्णे पञ्चमुष्टिना ॥ १०० ॥

केशान् शक्रः समादाय स्वोत्तरीयाञ्चलेन तान् । चिक्षेप च क्षीरनिधौ समीरण[16] इव क्षणात् ॥ १०१ ॥

निषिद्धे वज्रिणा मुष्टिसंज्ञया तुमुले ततः । प्रभुश्चारित्रमारोहद् विश्वाभयविभावनम्[17] ॥ १०२ ॥

विश्वनाथेन सह च सहस्रमवनीभुजः । राज्यं तृणवदुत्सृज्य समुपाददिरे व्रतम् ॥ १०३ ॥

शाश्वतार्हत्प्रतिमानां कुर्वन्तोऽष्टाह्निकोत्सवम् । सुरा-ऽसुराधिपतयः स्वं स्वं स्थानं ततो ययुः ॥ १०४ ॥

द्वितीयेऽहनि सिद्धार्थपुरे नन्दनृपौकसि । पारणं परमान्नेन चकार परमेश्वरः ॥ १०५ ॥

---

१ स्फटिकमयान् वृषभान् । २ मङ्गलमयभक्तियुते । ३ वृषो धर्मः बलीवर्दश्च । ४ उच्चैस्त्वम्–उच्चस्थानस्थितत्वम् । ५ स्वर्गराज्यम् । ६ भवेयम् । ७ संहृत्य–अपहृत्य । ८ सर्वत्र समानः–एकरूपः । ९ यत्र इन्द्रेण सुधा स्थापिता । १० सूर्यः । ११ विवाहं चकार । १२ प्रैर्यत+उपेत्य । १३ वार्षिकम् । १४ तत्याज । १५ उत्पाटयामास । १६ पवनः । १७ सर्वेषाम् अभयकारकम्, जगतो वा अभयकारकम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमरैर्वसुधारादिपञ्चकं विदधे ततः । रत्नपीठं स्वामिपादस्थाने नन्दनृपेण तु ॥ १०६ ॥
ततः स्थानादथ स्वामी ग्रामा-ऽऽकर-पुरादिषु । अप्रतिबद्धो विहर्तुं प्रावर्तत समीरवत् ॥ १०७ ॥
इतश्च पुण्डरीकिण्यां प्राग्विदेहशिरोमणौ । पुर्यभूत् सुबलो राजा स महीं चिरमन्वशात् ॥१०८॥
पार्श्वे मुनिवृषभर्षेः प्रव्रज्य समये च सः । तपस्तप्त्वा च मृत्वा च विमानेऽनुत्तरे ययौ ॥ १०९ ॥
इतः पुरे राजगृहे विश्वनन्दिमहीपतेः । पत्न्यां प्रियङ्गौ विशाखनन्दी नाम सुतोऽभवत् ॥ ११० ॥
विश्वनन्दिनरेन्द्रस्यावरजो युवराडभूत् । विशाखभूतिर्मतिमान् वीर्यवान् विनयी नयी ॥ १११ ॥
विशाखभूतेर्भार्यायां धारिण्यां तनयोऽभवत् । मरीचिजीवः सुकृतैरनन्तरभवार्जितैः ॥ ११२ ॥
विश्वभूतिरिति नाम पितरौ तस्य चक्रतुः । धात्रीजनैर्लाल्यमानो व्यवर्धिष्ट क्रमाच्च सः ॥ ११३ ॥
कलाकलापं सोऽध्यैष्ट प्रपेदे सकलान् गुणान् । अङ्गस्य मूर्त्तनेपथ्यं क्रमात् प्राप च यौवनम् ॥ ११४ ॥
सान्तःपुरः स चिक्रीडोद्याने पुष्पकरण्डके । मनोज्ञतरुभूयिष्ठे भूमिष्ठ इव नन्दने ॥ ११५ ॥
विशाखनन्दी क्रीडेच्छुस्तत्र राजसुतोऽप्यभूत् । तत् तूद्यानं न जात्वासीद् रहितं विश्वभूतिना ॥११६॥
विशाखनन्दिजननीदास्यः पुष्पार्थमागताः । तत्रापश्यन् विश्वभूतिं क्रीडन्तं सप्रियाजनम् ॥११७॥
सेर्ष्याः प्रियङ्गुदेवीं ताः समुपेत्येदमूचिरे । यौवराजिर्विश्वभूतिरेव राजेह नापरः ॥ ११८ ॥
सान्तःपुरोऽपि हि सदोद्याने पुष्पकरण्डके । स क्रीडति बहिस्ते तु सुतस्तिष्ठति वारितः ॥ ११९ ॥
तच्छ्रुत्वा कुपिता देवी प्राविशत् कोपवेश्मनि । किमेतदिति सा सद्यो राज्ञा पृष्टाऽब्रवीदिदम् ॥ १२० ॥
राजेव रमते विश्वभूतिः पुष्पकरण्डके । त्वयि सत्यपि मे सूनुर्बहिस्तिष्ठति रङ्कवत् ॥ १२१ ॥
राजाऽप्यूचे व्यवस्थेयं कुलेऽस्माकं हि मानिनि ! । क्रीडत्येकस्मिन् कुमारे द्वितीयः प्रविशेन्न हि ॥१२२॥
इत्याख्यातेऽपि भूपेन सा नाऽबुद्ध मनस्विनी । उपायज्ञस्ततो राजा यात्राभेरीमवादयत् ॥ १२३ ॥
आज्ञां पुरुषसिंहाख्यः सामन्तो न करोति नः । इति तस्मै प्रस्थिताः स्म इत्युक्तिं च नृपोऽकरोत् ॥१२४॥
तच्छ्रुत्वा सम्भ्रमाद् विश्वभूतिरेत्याऽब्रवीदिदम् । मयि सत्यपि किं तातः स्वयं युद्धाय यास्यति ? ॥१२५॥
इत्याद्युक्त्वा सनिर्बन्धं निवार्य पृथिवीपतिम् । विश्वभूतिर्बलयुतस्तत्सामन्तभुवं ययौ ॥ १२६ ॥
श्रुत्वा कुमारमायान्तं स सामन्तःससम्भ्रमम् । अभ्येत्य भृत्यवद् भक्त्या निनाय निजवेश्मनि ॥१२७॥
स्वामिन् ! किं करवाणीति वदन्नग्रे कृताञ्जलिः । हस्त्यश्वाद्युपदादानाद् विश्वभूतिमरञ्जयत् ॥ १२८ ॥
विरुद्धादर्शनाद् विश्वभूतिर्निववृते ततः । पथा यथागतेनैव को हि कुप्येदनागसे ? ॥ १२९ ॥
इतश्च विशाखनन्दी राज्ञोद्याने प्रवेशितः । देशं भ्रान्त्वा विश्वभूतिरप्यागात् तत्र पूर्ववत् ॥१३०॥
विशाखनन्दी मध्येऽस्तीत्युदित्वा वेत्रपाणिना । वारितः स तथैवाऽस्थान्मर्यादा-स्थामवारिधिः ॥१३१॥
दध्यौ चैवं विश्वभूतिस्तदाऽहममुतो वनात् । वनद्विप इवाऽऽकृष्टश्छद्मना ही ! करोमि किम् ? ॥१३२॥
एवं कुमारः कुपितः कपित्थं फलमालिनम् । मुष्टिना ताडयामास दन्तेनेव मतङ्गजः ॥ १३३ ॥
कपित्थैः पातितैश्छन्नां परितस्तदधोभुवम् । प्रदर्शयन् विश्वभूतिस्तमूचे वेत्रधारिणम् ॥ १३४ ॥
इत्थङ्कारं पातयामि सर्वेषां वः शिरांस्यपि । यदि ज्यायसि मे ताते भक्तिर्न ह्यन्तरा भवेत् ॥ १३५ ॥
यदर्थं वञ्चनोपाय एवं हन्त ! प्रवर्तते । तदलं मम तैर्भोगैर्भीपणैर्भोगिभोगवत् ॥ १३६ ॥

---

१ समीरः—पवनः । २ पुरि+अभूत् । * इतश्चाऽऽसीद् राजगृहे विश्वनन्दीति भूपतिः । विशाखनन्दी तत्पत्न्यां प्रियङ्गौ तनयोऽभवत् ॥ संवृ० ॥ ३ लघुबन्धुः युवराड् अभूत् । ४ भरतपुत्रस्य मरीचेर्जीवः । तस्य कथा प्रथमपर्वणि वर्णिता । ५ आकारयुक्तं नेपथ्यम् । ६ युवराजपुत्रः । ७ उपदा—उपायनम् । ८ निरपराधाय । ९ वेत्रपाणिः—द्वारपालः । १० मर्यादायाः स्थाम्नः—पराक्रमस्य च समुद्रः । ११ फलशोभितं कपित्थवृक्षम्, भाषायाम् 'कपित्थ' इति 'कोठुं' । १२ भोगी—सर्पः भोगः—फणा ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

एवमुक्त्वा विश्वभूतिर्विभूतिं तृणवज्जहौ । सम्भूतमुनिपादान्ते गत्वा च व्रतमाददे ॥ १३७ ॥
तच्च श्रुत्वा विश्वनन्दी सान्तःपुरपरिच्छदः । सहितो युवराजेन स्वयं तत्र समाययौ ॥ १३८ ॥
सूरिपादान् नमस्कृत्य विश्वभूतिमुपेत्य च । विश्वनन्दी निरानन्दः सगद्गदमदोऽवदत् ॥ १३९ ॥
अस्मानापृच्छ्य सर्वं त्वमकार्षीर्वत्स ! सर्वदा । सहसा कृतवानेतत् किमसद्भाग्यसङ्क्षयात् ? ॥ १४० ॥
त्वय्याशा राज्यधरणे ताताऽस्माकं सदैव हि । अकाण्डे किमभाङ्क्षीस्तां[1] त्वं त्राता व्यसनेषु नः ॥ १४१ ॥
मुञ्चाऽद्यापि व्रतं वत्स ! भुङ्क्ष्व[2] भोगान् यदृच्छया । रमस्व स्वैरमुद्याने प्राग्वत् पुष्पकरण्डके ॥ १४२ ॥
विश्वभूतिरथावोचदलं मे भोगसम्पदा । सुखं वैषयिकमिदं वस्तुतो दुःखमेव हि ॥ १४३ ॥
पाशन्ति[3] भवकारायां स्वजनस्नेहतन्तवः । जन्तवस्तैर्हि मुह्यन्ति लालाभिरिव[4] मर्कटाः ॥ १४४ ॥
किञ्चिन्नातः परं वाच्यश्चरिष्यामि तपः परम् । परलोके सह याति सहायीभूय तत् खलु ॥ १४५ ॥
इति तेनोदिते राजा सानुतापो ययौ गृहम् । विश्वभूतिर्मुनिरपि व्यहार्षीद् गुरुणा सह ॥ १४६ ॥
षष्ठा-ऽष्टमादिनिरतो गुरुशुश्रूषणोद्यतः । क्रमात् सोऽधीतसूत्रार्थो भूयांसं कालमत्यगात् ॥ १४७ ॥
गुरोरनुज्ञयैकाकिविहारप्रतिमाधरः । स विहर्तुं प्रववृते ग्रामा-ऽऽकर-पुरादिषु ॥ १४८ ॥
विविधाभिग्रहपरो विहरन्नेकदा च सः । विश्वभूतिर्महासाधुर्जगाम मथुरां पुरीम् ॥ १४९ ॥
पैतृष्वस्रेयीमुद्वोढुं[5] मथुराराजकन्यकाम् । विशाखनन्दी तत्राऽऽगात् तदा च सपरिच्छदः ॥ १५० ॥
विश्वभूतिश्च मासान्तपारणाय परिभ्रमन् । विशाखनन्दिशिबिरं निकषा[6] समुपाययौ ॥ १५१ ॥
विशाखनन्दिने यान्तं पुरुषास्तमदर्शयन् । विश्वभूतिकुमारोऽसाविति व्याहारिणो मुहुः ॥ १५२ ॥
विशाखनन्दिनो रोषः सद्यस्तद्दर्शनादभूत् । गवैकया च पर्यस्तो[7] विश्वभूतिस्तदाऽपतत् ॥ १५३ ॥
विशाखनन्दी हसित्वा विश्वभूतिमदोऽवदत् । कपित्थपातनं स्थाम[8] तत् क्वेदानीमहो ! गतम् ? ॥ १५४ ॥
विशाखनन्दिनं दृष्ट्वा विश्वभूतिरमर्षणः[9] । गृहीत्वा शृङ्गयोस्तां गां भ्रमयामास पूलवत्[10] ॥ १५५ ॥
ततो निवृत्तो दध्यौ च विश्वभूतिरिदं हृदि । मय्यद्यापि सरोषोऽयं निःसङ्गेऽपि हि दुर्मनाः ॥ १५६ ॥
अनेन तपसोग्रेण मृत्यवेऽस्य भवान्तरे । भूयासं भूरिवीर्योऽहं निदानं चेति सोऽकरोत् ॥ १५७ ॥
सम्पूर्णकोटिवर्षायुरनालोच्य च तन्मृतः । महाशुक्रे विश्वभूतिरुत्कृष्टायुः सुरोऽभवत् ॥ १५८ ॥

इतश्च पोतनपुरं पुरमस्त्युच्चगोपुरम्[11] । अपाग्भरतवर्षार्धभुवो मुकुटसन्निभम् ॥ १५९ ॥
अभूत् पुरे तत्र रिपुप्रतिशत्रुर्महीपतिः । शोभमानो गुणैस्तैस्तैरहर्पतिरिवांशुभिः ॥ १६० ॥
षाड्गुण्येन स षट्खण्ड्या भरतक्षेत्रवद् बभौ । उपायैरपि चतुर्भिर्दन्तैरिव सुरद्विपः ॥ १६१ ॥
स सिंह इव शौर्येण स्तम्बेरम[12] इवौजसा । कन्दर्प इव रूपेण धिया गुरुरिवा[13]ऽभवत् ॥ १६२ ॥
अवनीसाधनविधावतिप्रकटपाटवौ । मिथो धी-विक्रमौ तस्य व्यभूष्येतां भुजाविव ॥ १६३ ॥
भद्रेति नाम्ना महिषी भद्राणां भद्रमास्पदम् । बभूव भूपतेस्तस्य भूरिवाऽऽत्तशरीरिका[14] ॥ १६४ ॥
पतिभक्त्या कवचिता[15] यामिकीव[16] ररक्ष सा । अनारतं जागरूका शीलं रत्ननिधानवत् ॥ १६५ ॥
अक्ष्णोः सुधावर्तिरिव[17] राज्यलक्ष्मीरिवाङ्गिनी । मूर्ता कुलव्यवस्थेव चकासामास साऽनिशम् ॥ १६६ ॥
च्युत्वा सुबलजीवोऽपि स विमानादनुत्तरात् । अन्यदा तु महादेव्यास्तस्याः कुक्षाववातरत् ॥ १६७ ॥

१ भग्नां चकार । २ विलासं कुरु । ३ बन्धनरूपा भवन्ति । ४ लाला भाषायाम् 'लाळ' इति । 'मर्कट' इति भाषायाम् करोळियो । ५ पितृष्वसुः पुत्रीम् । पितृष्वसा भाषायाम् 'फई' इति । ६ समीपम् । ७ पर्यस्तः-आघातं प्रापितः । ८ स्थाम-पराक्रमः । ९ अमर्षणः असहनशीलः । १० पूलः भाषायाम् 'पूळो' इति । ११ गोपुरम्-द्वारम् । १२ स्तम्बेरमः हस्ती । १३ गुरुः-वाचस्पतिः । १४ आत्तशरीरिका-पट्टराज्ञीशरीरधारिणी भूः पृथिवी इव । १५ कवचयुक्ता । १६ यामिकी-भाषायाम् 'पहेरेदार' । १७ सुधायाः वर्तिः इव । वर्तिः भाषायाम् 'वाट-दीवेट' ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ददर्श सत्सुप्ता च यामिन्याः पश्चिमे क्षणे । चतुरः सा महास्वप्नान् सूचकान् बलजन्मनः ॥ १६८ ॥
तदैव परमानन्दजनिताभिभवादिव । दूरं गतायां निद्रायां राज्ञी राज्ञे व्यजिज्ञपत् ॥ १६९ ॥

दन्तावलश्चतुर्दन्तः स्फटिकाद्रिनिभो मया । दृष्टो विशन् स्ववक्त्रान्तरभ्रान्तरिव चन्द्रमाः ॥ १७० ॥
शरदभ्रमिवाऽऽवर्त्य निर्मितो निर्मलद्युतिः । ककुद्मानुच्चककुदोऽथ गर्जन्नुज्वालधिः ॥ १७१ ॥
निशाकरः कराङ्कुरैर्दूरदूरं प्रसारिभिः । कर्णावतंसरचनां चिन्वन्निव दिशामथ ॥ १७२ ॥
ततश्च पद्मैरुद्भिद्रैर्मञ्जुगुञ्जन्मधुव्रतैः । पूर्णं सरः शतमुखीभूय गायदिवोच्चकैः ॥ १७३ ॥
स्वामिन्नमीषां स्वप्नानां फलं किमिति शंस मे । प्रष्टुमर्हो न सामान्यजनो हि स्वप्नमुत्तमम् ॥ १७४ ॥
राजाऽपि व्याजहाराथ देवि ! देव इव श्रिया । लोकोत्तरबलो भावी बलभद्रस्तवाऽऽत्मजः ॥ १७५ ॥
श्वेतरश्मिमिव प्राची श्वेतवर्णं महाभुजम् । अशीतिधनुरुत्तुङ्गं कालेनाऽसूत सा सुतम् ॥ १७६ ॥
पुत्ररत्ने समुत्पन्ने स तत्र पृथिवीपतिः । चक्ररत्ने चक्रवर्तीवोत्सवं व्यधितोच्चकैः ॥ १७७ ॥
शुभेऽहनि शुभे चन्द्रे विच्छर्देन महीयसा । चकाराऽचल इत्याख्यां तस्य सूनोर्महीपतिः ॥ १७८ ॥
दिने दिने वपुश्छायां वितन्वन्नधिकाधिकाम् । अवर्धत स धात्रीभिः सारणीभिरिवाङ्घ्रिपः ॥ १७९ ॥

अचलस्य तु जातस्य गते काले कियत्यपि । भद्रा देवी दधौ गर्भं प्रसूनमिव केतकी ॥ १८० ॥
सर्वलक्षणसम्पूर्णां पूर्णे काले नृपप्रिया । असूत सा दुहितरं जाह्नवीव सरोजिनीम् ॥ १८१ ॥
तस्या मृगाङ्कवक्त्राया मृगशावकचक्षुषः । मृगावतीति विदधे नामधेयं महीभुजा ॥ १८२ ॥
अङ्कादङ्कं सञ्चरन्ती तापसानां मृगीव सा । वृद्धिमासादयामास निष्प्रत्यूहं मृगेक्षणा ॥ १८३ ॥
तया कटिस्थया धात्र्यो विचरन्त्यो गृहाङ्गणे । गृहस्थूणा इव रत्नशालभञ्ज्यश्रकाशिरे ॥ १८४ ॥
बाल्यं क्रमेण लङ्घित्वा प्रपेदे साऽथ यौवनम् । सरोजीवनजीवातु वपुर्लक्ष्मीविशेषकम् ॥ १८५ ॥
तस्या वक्त्रं दन्तपत्रमिवेन्दोर्भ्रूलताच्छलात् । नेत्रे च कृष्णधवले संभृङ्गे इव कैरवे ॥ १८६ ॥
कण्ठश्च लटभो नालमिव वक्त्रसरोरुहः । पञ्चेषोरिव तूणीरौ पाणी च सरलाङ्गुली ॥ १८७ ॥
वपुर्लावण्यसरितश्चक्रवाकाविव स्तनौ । मध्यं कृशतरं भूरि स्तनभारश्रमादिव ॥ १८८ ॥
क्रीडावापी स्मरस्येव नाभिर्गाम्भीर्यशालिनी । तटी रत्नाचलस्येव श्रोणिभित्तिर्गरीयसी ॥ १८९ ॥
ऊरू च कदलीस्तम्भविभ्रमौ क्रमवर्तुलौ । पादौ सरलजङ्घाकावुन्नालनलिने इव ॥ १९० ॥
एवं विभक्तावयवा नव्यया यौवनश्रिया । अपि विद्याधरस्त्रीणामधिदेवीव साऽशुभत् ॥ १९१ ॥

यौवनश्रीरवर्धिष्ट मृगावत्या यथा यथा । भद्राया ववृधे चिन्ता तद्वरार्थे तथा तथा ॥ १९२ ॥
चिन्ता ममेव राज्ञोऽपि वरार्थेऽस्यां भवत्विति । तां प्रास्थापयदन्येद्युर्भद्रादेवी तदन्तिके ॥ १९३ ॥
स्मरेषुजातवैधुर्यात् तां पुत्रीत्यविदन्निव । विचिन्तयामास रिपुप्रतिशत्रुरिदं हृदि ॥ १९४ ॥
अहो ! किमपि सौन्दर्यं जैत्रमस्त्रं मनोभुवः । जगत्त्रयस्त्रैणजयलीलादुर्ललितं तनोः ॥ १९५ ॥
सुलभं भूमिसाम्राज्यं स्वर्गसाम्राज्यमप्यहो ! । इयं तु दुर्लभा मन्ये बाला हृदयवल्लभा ॥ १९६ ॥

---

१ परमानन्देन जनितात् पराजयाद् इव निद्रा दूरं गता । २ दन्तावलः–हस्ती । ३ अभ्रान्तर्–अभ्रमध्ये चन्द्र इव । ४ ककुद्मान्–बलीवर्दः । उच्चककुदः–महास्कन्धः । ५ वालधिः–पुच्छम् । ६ उद्भिद्रम्–विकसितम् । ७ शतमुखं संयुक्तं भूत्वा । ८ अर्हः–योग्यः । ९ लोकोत्तरबलः–अलौकिकबलः । १० विच्छर्दः–वैभवः । ११ छाया–कान्तिः । १२ प्रसूनम्–कुसुमम् । १३ शावकः–शिशुः । १४ निष्प्रत्यूहम्–निर्विघ्नम् । १५ स्थूणा–स्तम्भः । शालिभञ्जी–पुत्तलिका । १६ जीवातुः–जीवनौषधम् । १७ विशेषकम्–तिलकम् । १८ इन्दोः दन्तपत्रम्, भाषायाम् दांतियो । १९ भ्रमरसहिते । २० लटभः–सुन्दरः । २१ नालम् कमलदण्ड इव । २२ 'पाणी' प्रथमाद्विवचनम् । २३ श्रोणिः–कटिः । २४ क्रमेण गोलाकारौ । २५ उन्नालनलिने–ऊर्ध्वनालयुक्ते कमले । नालम्–कमलदण्डः । २६ विजयकारि । २७ स्त्रैणम्–स्त्रीसमूहः । * °जये युवत्या ललि° संघ० । °जये अस्या दुर्ल° सं० ॥

Jain Education International		For Private & Personal Use Only		www.jainelibrary.org

सुरा-ऽसुर-नरेन्द्राणां पुण्येभ्योऽप्यतिशायिभिः । उपस्थितेयं मे पुण्यैर्जन्मान्तरशतार्जितैः ॥ १९७ ॥
एवं विचिन्त्य नृपतिः प्रियालापपुरःसरम् । अङ्कमारोपयामास तां सद्यः प्राणवल्लभाम् ॥ १९८ ॥
अनुरागे स आरोप्य स्पर्शा-ऽऽलिङ्गन-चुम्बनैः । तां जरत्कञ्चुकिवरैरन्तःपुरमनाययत् ॥ १९९ ॥
पौरलोकान् समाहूय सह प्रकृतिभिस्ततः । लोकापवादरक्षार्थमपृच्छत पृथिवीपतिः ॥ २०० ॥
मदीयभूमौ ग्रामेषु पुरेष्वन्यत्र वा क्वचित् । यत् समुत्पद्यते रत्नं तत् कस्येति निवेद्यताम् ॥ २०१ ॥
लोकोऽप्यूचे भवद्भूमौ यद् रत्नं जायते क्वचित् । तस्य स्वामी भवानेव नान्यो भवितुमर्हति ॥ २०२ ॥
इति तं निर्णयं स त्रिर्गृहीत्वा पृथिवीपतिः । तेषां द्राग् दर्शयामास निजकन्यां मृगावतीम् ॥ २०३ ॥
इत्युवाच च तान् भूयः कन्यारत्नमिदं हि मे । इदानीं परिणेष्यामि स्वयं युष्मदनुज्ञया ॥ २०४ ॥
इत्युक्ते लज्जिताः पौरा ययुर्निजनिजं गृहम् । गान्धर्वेण विवाहेन पर्यणैषीच्च तां नृपः ॥ २०५ ॥
स्वसुतायाः पतिरभूत् तेन तस्य महीपतेः । नाम प्रजापतिरिति पप्रथे पृथिवीतले ॥ २०६ ॥
नवं कुलकलङ्कं तं हसनीयं जनेऽखिले । महालज्जाकरं पत्युः श्रुत्वा भद्राऽत्यलज्जत ॥ २०७ ॥
सहाऽचलेन पुत्रेण साऽचालीद् दक्षिणापथे । श्रेयान् स देशो नो यत्र श्रूयन्ते दुर्जनोक्तयः ॥२०८॥
मातुः कृते दक्षिणस्यां विश्वकर्मेव नूतनः । माहेश्वरीति नगरीमस्थापयदथाऽचलः ॥ २०९ ॥
तां च श्रीद इवाऽयोध्यामाहृत्याऽऽहृत्य सर्वतः । हिरण्यैः पूरयामास बलदेवोऽचलाभिधः ॥ २१० ॥
कुलीनैः सचिवैरात्मरक्षैर्दासजनैर्वृताम् । मूर्त्तामिव पुरीदेवीं मातरं तत्र सोऽमुचत् ॥ २११ ॥
भद्राऽपि स्त्रीशिरोरत्नं शीलालङ्करणा सती । देवपूजादिषट्कर्मरता तस्यामवास्थित ॥ २१२ ॥
भक्तिमान् बलदेवोऽपि तत् पोतनपुरं ययौ । यादृशस्तादृशो वाऽपि पूजनीयः पिता सताम् ॥ २१३ ॥
शुश्रूषमाणः पितरं पूर्ववत् तत्र चाऽचलः । तस्थौ न पूज्यचरितं चर्चयन्ति मनीषिणः ॥ २१४ ॥
राजाऽपि स्थापयामास तामग्रमहिषीपदे । मृगावतीं मृगदृशं मृगलक्ष्मेव रोहिणीम् ॥ २१५ ॥
कियत्यपि गते काले महाशुक्रात् परिच्युतः । विश्वभूतिमुनेर्जीवस्तस्याः कुक्षाववातरत् ॥ २१६ ॥
यामिन्याः पश्चिमे यामे सूचका विष्णुजन्मनः । देव्या ददृशिरे स्वप्नाः सप्तैते सुखसुप्तया ॥ २१७ ॥
तत्राऽऽदौ केसरियुवा कुङ्कुमारुणकेसरः । इन्दुलेखानिभनखश्चमरोपमबालधिः ॥ २१८ ॥
कुञ्जराभ्यां पूर्णकुम्भहस्ताभ्यां क्षीरवारिभिः । क्रियमाणाभिषेका च पद्मा पद्मासनस्थिता ॥ २१९ ॥
ध्वंसमानो महाध्वान्तं दोषाऽपि जनयन्नहः । उद्दण्डतेजःप्रसरस्त्विषामधिपतिस्ततः ॥ २२० ॥
स्वच्छ-स्वादुपयःपूर्णः पुण्डरीकार्चिताननः । सौवर्णघण्टिकः पुष्पमाली कुम्भस्ततोऽपि च ॥ २२१ ॥
नानाजलचराकीर्णो रत्नसम्भारभासुरः । गगनोदञ्चिकल्लोलस्ततः कल्लोलिनीपतिः ॥ २२२ ॥
पञ्चवर्णमणिज्योतिःप्रसरैर्गगनाङ्गणे । विपञ्चितेन्द्रचापश्री रत्नानां सञ्चयस्ततः ॥ २२३ ॥
धूमध्वजश्च निर्धूमो ज्वालापल्लवितांबरः । दृशोः सुखंकरालोकः सप्तमश्चेति सप्त ते ॥ २२४ ॥
उद्बुद्धया तयाऽऽख्यातान् स्वप्नान् व्याख्यन्महीपतिः । अर्धचक्री तव सूनुर्नूनं देवि ! भविष्यति ॥२२५॥
राज्ञा सद्यः समाहूय पृष्टा नैमित्तिका अपि । स्वप्नांस्तथैव व्याचख्युर्विसंवादो न धीमताम् ॥ २२६ ॥
पूर्णे काले च सा देवी सर्वलक्षणलक्षितम् । अशीतिधनुरुत्तुङ्गं कृष्णाङ्गं सुपुवे सुतम् ॥ २२७ ॥
प्रससाद ककुप्चक्रमुल्ललास वसुन्धरा । जहर्ष च जनः सर्वस्तस्येव नृपतेर्मनः ॥ २२८ ॥

---

१ जरत्कञ्चुकिनः–वृद्धकञ्चुकिनः; कञ्चुकी–अन्तःपुररक्षकः । २ प्रकृतिः प्रधानमण्डलम् । ३ अयोध्यानगरीम् । ४ आकारधारिणीं नगरीदेवीमिव । * मृगनेत्रां मृ° संक ॥ ५ मृगलक्ष्मा–चन्द्रः । ६ दोषा–रात्रिः । ७ त्विट्–कान्तिः, तदधिपतिः सूर्यः । ८ घण्टिका–भाषायाम 'घंटडी' । ९ उदञ्ची–ऊर्ध्वगामी । १० विपञ्चितम्–विस्तीर्णम् । ११ धूमध्वजः–अग्निः । १२ अम्बरम्–गगनम् । † सुखाक° संवृ० ॥ ‡ सप्तके संवृ० ॥ १३ ककुप्चक्रम्–दिशामण्डलम् । ¶ °चक्रं प्रापोल्लासं वसु° संवृ० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारागारात् पुरा बद्धान् गोपी गा इव वाटकात् । हृष्टो रिपूनपि रिपुप्रतिशत्रुरथामुचत् ॥ २२९ ॥
यथाकामं ददौ सोऽर्थानर्थिभ्यः कामधेनुवत् । कर्तुं स्थानमिवैष्यन्त्या अर्धचक्रधरश्रियः ॥ २३० ॥
तथाऽभूदुत्सवः प्राज्यो जने तस्मिन् निरन्तरः । यथा सपुत्रजन्मेव सोद्वाह इव सोऽभवत् ॥ २३१ ॥
मङ्गल्यपाणयो नार्यो ननृतू राजवेश्मनि । मिथः सङ्घर्षतो ग्रामागमाश्लेषपराः पुरः ॥ २३२ ॥
स्थाने स्थाने तोरणानि सङ्गीतानि पदे पदे । अजायन्त पुरे तस्मिन्नभितो राजवेश्मवत् ॥ २३३ ॥
दृष्ट्वा वंशत्रयं पृष्ठे त्रिपृष्ठ इति भूपतिः । नाम तस्याकरोत् सूनोरुत्सवेन महीयसा ॥ २३४ ॥
लाल्यमानः स धात्रीभी रम्यमाणोऽचलेन च । वासुदेवस्त्रिपृष्ठाख्यो व्यवर्धत शनैः शनैः ॥ २३५ ॥
स बालो बलभद्रेण प्रक्कणत्पादघर्घरिः । अग्रेसरेण चिक्रीड प्रतिकारेण हस्तिवत् ॥ २३६ ॥
लीलयैव महाप्राज्ञः स उपाध्यायसाक्षिकम् । प्रतिबिम्बमिवाऽऽदर्शो जग्राह सकलाः कलाः ॥ २३७ ॥
क्रमेण कवचहरो दृढोरस्को महाभुजः । बभूव बलभद्रस्य सवया इव सोऽनुजः ॥ २३८ ॥
असञ्जातान्तरौ नित्यं क्रीडन्तौ भ्रातरावुभौ । बभ्राजाते मूर्तिमन्तौ पक्षाविव सिता-ऽसितौ ॥ २३९ ॥
नील-पीताम्बरधरौ तौ ताल-गरुडध्वजौ । अशोभेतां स्वर्णशैला-ऽञ्जनाद्री इव जङ्गमौ ॥ २४० ॥
क्रीडयाऽपि प्रचलतोस्तयोरचल-कृष्णयोः । पादन्यासैर्वज्रपातैरिवाऽकम्पत मेदिनी ॥ २४१ ॥
तयोरारूढयोः प्रौढदन्तिनोऽपि नृदन्तिनोः । कुम्भस्थले करतलाऽऽस्फाललीलां न सेहिरे ॥ २४२ ॥
ताभ्यां पर्यस्यमानानि क्रीडया दोर्भिरूर्जितैः । वल्मीकन्ति स्म शृङ्गाणि महाशिखरिणामपि ॥ २४३ ॥
दैत्यादिभ्योऽपि निर्भीकावितरेभ्यस्तु का कथा ? । तौ कुमारावजायेतां शरण्यं शरणार्थिनाम् ॥ २४४ ॥
विनाऽचलं न त्रिपृष्ठो न त्रिपृष्ठं विनाऽचलः । एकात्मानौ द्विशरीराविव तौ सह चेरतुः ॥ २४५ ॥
इतश्चाऽऽसीत् पुरे रत्नपुरे नीलाञ्जनाप्रसूः । प्रतिविष्णुरश्वग्रीवो मयूरग्रीवनन्दनः ॥ २४६ ॥
सोऽशीतिधनुरुत्तुङ्गो नवनीरधरच्छविः । चतुरशीत्यब्दलक्षप्रमितायुर्महाभुजः ॥ २४७ ॥
तस्य दोर्दण्डयोः कण्डूर्नाऽशाम्यद् वैरिकुट्टनैः । सिंहस्येव महाकुम्भिकुम्भस्थलविपाटनैः ॥ २४८ ॥
महौजाः स महाबाहुर्महाहवकुतूहली । पिप्रिये न तथा नम्रैर्युध्यमानैर्यथाऽरिभिः ॥ २४९ ॥
नित्यं नेत्रारविन्दानामश्रुवृष्टिं प्रवर्तयन् । तत्प्रतापोऽरिनारीषु वारुणास्त्रमिवाऽभवत् ॥ २५० ॥
तस्य चाऽऽक्रान्तदिक्चक्रं करे चक्रमलक्ष्यत । उत्पातभूतो द्विषतां द्वितीय इव भास्करः ॥ २५१ ॥
हृदयस्थो विदित्वाऽस्मान् विरुद्धान् मा वधीदिति । नाभक्ति मनसाऽप्यस्य विद्धुर्वसुधाधिपाः ॥ २५२ ॥
योगिनः परमात्मानमिव तं हृदयान्निजात् । न जातूत्तारयामासुः सर्वेऽपि पृथिवीभुजः ॥ २५३ ॥
स आघाटशिलास्तम्भीभूतवैताढ्यपर्वतम् । त्रिखण्डं भरतक्षेत्रमात्मसादकृतौजसा ॥ २५४ ॥
द्वे च विद्याधरश्रेण्यौ वैताढ्याद्रेर्भुजाविव । विद्यौजोभ्यां पराजिग्ये स विद्याधरपुङ्गवः ॥ २५५ ॥
मागधेश-प्रभासेश-वरदामाधिपैरसौ । प्राभृतैरर्चयाञ्चक्रे सुरैरपि नृपैरिव ॥ २५६ ॥
राज्ञां मुकुटबद्धानां सहस्राः षोडशाऽनिशम् । तच्छासनं मुकुटवद् धारयामासुरूर्जितम् ॥ २५७ ॥
एकातपत्रं साम्राज्यं भुञ्जानः स महाभुजः । अतिवाहितवान् कालं पृथ्व्यामिन्द्र इव स्थितः ॥ २५८ ॥

१ वाटकः–भाषायाम् 'वाडो' । २ पुत्रजन्मसहित इव, विवाहसहित इव । उद्वाहः विवाह । ३ पृष्ठम्–भाषायाम् 'पीठ' 'वांसो' । अयं समग्रः श्लोकः 'यदवोचाम' इत्युल्लिख्य अक्षरशः समुद्धृतः आचार्यहेमचन्द्रेण अभिधानचिन्तामणिकोशस्वोपज्ञटीकायाम् कां० ३ श्लो० ३५९ पृ० २७९ । ४ घर्घरिः–भाषायाम् 'घुघरी' । ५ आदर्शः–भाषायाम् 'अरिसो–दर्पण' । ६ कवचहरः–कवचहरणसमर्थः । ७ शोभितौ स्तः । ८ प्रौढगजाः । दन्ती–गजः, नररूपदन्तिनोः । ९ परिक्षिप्यमाणानि । १० वल्मीकसदृशानि भवन्ति । वल्मीकम्–भाषायाम् 'वांबी–राफडो' इति । ११ प्रसूः–पुत्रः । १२ नीरधरो मेघः । छविः कान्तिः । १३ कुम्भी–गजः । १४ आहवः–समराङ्गणम् । १५ पिप्रिये–प्रसन्नतां प्राप्तः । १६ अभक्तिः अनादरः । १७ आघाटः सीमा । १८ आत्मसात्–अधीनम्, अकृत ओजसा–इति विभागः । १९ ओजः शूरता । २० पराजयं प्राप ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वच्छन्दं क्रीडतोऽन्येद्युरश्वग्रीवस्य भूपतेः । अरिष्टाभ्रमिवाऽऽकाशेऽकाण्डे चिन्तेति हृद्यभूत् ॥ २५९ ॥
अपागभरतवर्षार्धे ये केऽपि वसुधाभुजः । मद्भुजस्थाम्नि तेऽमज्जन्नम्भोधौ भूधरा इव ॥ २६० ॥
पृथिव्यामेकमल्लस्य तस्यापि वधको मम । मृगेष्विव मृगेन्द्रस्य को राजसु भविष्यति ? ॥ २६१ ॥
दुर्ज्ञानमेतदथवा ज्ञास्यामीति विमृश्य सः । अश्वबिन्दुं निमित्तज्ञं द्वाःस्थेनाऽऽजूहवत् क्षणात् ॥ २६२ ॥
राज्ञा स्ववचनं पृष्टः स तु नैमित्तिकोऽवदत् । शान्तं पापं प्रतिहतममङ्गलमिदं वचः ॥ २६३ ॥
तवाशेषजगज्जिष्णोरन्तकोऽप्यन्तको न हि । वराकः कोऽपरो नाम मनुष्येषु भविष्यति ॥ २६४ ॥
हयग्रीवोऽप्युवाचैवमर्थवादं विहाय भोः ! । यथार्थं ब्रूहि मा भैषीर्नह्याप्ताश्चाटुभाषिणः ॥ २६५ ॥
राज्ञैवं साग्रहं पृष्टः सोऽथ नैमित्तिकाग्रणीः । लग्नादिकं विचार्येति व्याजहार स्फुटाक्षरम् ॥ २६६ ॥
धर्षयिष्यति यो दूतं चण्डवेगाभिधं तव । पश्चिमान्तस्थसिंहस्य यश्च हन्ता तवापि सः ॥ २६७ ॥
प्रवासी स्तनितेनेव म्लानो वाचा तया नृपः । कृत्वा कृत्रिमपूजां तं व्यसृजद् वैरिदूतवत् ॥ २६८ ॥
राजा केसरिणाऽथ देशे तेनोद्वसीकृते । शालीनारोपयत् सिंहवधकज्ञानहेतवे ॥ २६९ ॥
रक्षार्थं शालिवापानां स क्रमात् पृथिवीपतीन् । षोडशसहस्रसङ्ख्यान् निदिदेश विशांपतिः ॥ २७० ॥
गत्वा क्रमात् ते सन्नद्धा नृपाः पञ्चाननात् ततः । तान् शालिक्षेत्रिणोऽरक्षन् गोभ्यः क्षेत्राणि गोपवत् ॥२७१॥
सावहित्थमथाऽऽस्थानीमास्थाय पृथिवीपतिः । इत्यूचेऽमात्य-सेनानी-सामन्तादीन् सभासदः ॥२७२॥
अधुना नृप-सेनानीप्रभृतीनां महाभुजः । कुमारः कश्चिदप्यस्ति किमसामान्यविक्रमः ? ॥ २७३ ॥
तेऽप्यूचुर्देव ! तेजस्वी सति कस्तिग्मतेजसि ? । प्रभञ्जने क ओजस्वी ? रंहस्वी को गरुत्मति ? ॥ २७४ ॥
को गौरवी मेरुगिरौ ? गम्भीरः कश्च सागरे ? । विक्रमाक्रान्तविक्रान्ते त्वयि को नाम विक्रमी ? ॥२७५॥
॥ युग्मम् ॥
राजाऽप्युवाच चाटूक्तिरियं भोः ! न तु वास्तवम् । बलिनो यद् बलिभ्योऽपि बहुरत्ना हि भूरियम् ॥२७६॥
ततश्च तेषु कोऽप्येकः सचिवश्चारुलोचनः । वाचस्पतिरिवोवाच वाचा स्फुटयथार्थया ॥ २७७ ॥
प्रजापतिनृपस्य स्तः कुमारावमरोपमौ । मर्त्यवीरान् मन्यमानौ तृणाय सकलानपि ॥ २७८ ॥
सभां विसृज्य राजाऽथ विससर्ज प्रजापतेः । अन्तिके चण्डवेगं तं दूतमर्थेन केनचित् ॥ २७९ ॥
रथिभिः सादिभिः सारैः संसार कतिभिर्दिनैः । दूतः स पोतनपुरं स्वामितेज इवाङ्गवत् ॥ २८० ॥
तत्र प्रजापतिनृपः सर्वालङ्कारभूषितः । सहाऽचल-त्रिपृष्ठाभ्यां सामन्तैरप्यनेकशः ॥ २८१ ॥
सेनापति-महामात्य-पुरोधःप्रमुखैरपि । वृतः प्रधानपुरुषैर्यादोभिरिव पाशभृत् ॥ २८२ ॥
विचित्रचारीकरणा-ऽङ्गहारोद्वृत्तनर्तकम् । ध्वनन्मृदङ्गनिर्घोषघोषितव्योमकन्दरम् ॥ २८३ ॥
सुव्यक्तगीतोद्गारेण सञ्जीवापितवेणुकम् । विपञ्चितग्राम-रागविपञ्चीरचितश्रुति ॥ २८४ ॥
तालानुसारैः प्रक्रान्तगीतसङ्गीतकं तदा । निःशङ्कं कारयन्नासीन्महर्द्धिक इवामरः ॥ २८५ ॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥

---

१ उपद्रवजनकम् अभ्रम् । २ अनवसरे । ३ स्थाम शौर्यम् । ४ अमज्जन्-ब्रुडिताः । * मृगेष्वपि मृ° संबृ० ॥ ५ अन्तकः-यमः, अन्तकः-विनाशकारी । † राज्ञेति सा° संबृ० ॥ ‡ यो हन्ता स तवापि हि संबृ० ॥ ६ उद्वसम्-निर्जनम्, भाषायाम् 'उजड' इति । § °नां क्रमेण पृथिवीपतीन् । स षोडश सहस्राणि निदि° संबृ० ॥ ७ पञ्चाननः सिंहः । ८ अवहित्था आकारगोपनम् । ९ तिग्मतेजाः सूर्यः । प्रभञ्जनः वायुः । रंहस्वी वेगवान् । गरुत्मान् गरुडः । ¶ °स्वी जवी को वा गरु° संबृ० ॥ १० वीरान् तृणतुल्यान् मन्यमानौ । ११ सादिनः अश्ववाराः । १२ ससार-जगाम । १३ जलदेव-रूपः वरुणः । १४ चारीकरणं गत्या अभिनयः । अङ्गहारः शारीरिकः अभिनयः । उद्वृत्तम् द्रुतं गमनम् । १५ सञ्जीवापित०-चेतनावत्कृत० । १६ विपञ्चितः विस्तीर्णः । १७ विपञ्ची-वीणा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिषिद्धगतिर्द्वाःस्थैर्विद्युद्दण्ड इवोच्चकैः । तत्राऽऽस्थाने प्रविवेश चण्डवेगो झटित्यपि ॥ २८६ ॥
अकस्मादागतं दृष्ट्वा ससामन्तः प्रजापतिः । स्वामिवत् स्वामिदूतं तमभ्युदस्थात् ससम्भ्रमम् ॥ २८७ ॥
महत्या प्रतिपत्त्या तमुपावेशयदासने । स्वामिनो वाचिकं[1] सर्वमपृच्छच्च स भूपतिः ॥ २८८ ॥
सङ्गीतकस्य सञ्जज्ञे भङ्गोऽकाण्डे तदागमात्[2] । आगमाध्ययनस्येव विद्युदालोकमात्रतः[3] ॥ २८९ ॥
गृहं निजनिजं जग्मुः सर्वे सङ्गीतकारिणः । स्वामिनि व्यग्रचित्ते हि नावकाशः कलावताम् ॥ २९० ॥
तं रङ्गभङ्गकर्तारं दृष्ट्वा भृशममर्षणः । पार्श्वस्थं पुरुषं कञ्चित् त्रिपृष्ठः पृष्टवानिति ॥ २९१ ॥
अये ! कोऽसमयज्ञोऽयं पशुः पुरुषरूपभृत् । अज्ञापितस्वाऽऽगमनः प्राविशत् तातपर्षदि ? ॥ २९२ ॥
अभ्युत्तस्थौ कथं दृष्ट्वा तात एनं ससम्भ्रमः ? । निषिद्धश्च कथं नैष प्रविशन् वेत्रपाणिना[4] ? ॥ २९३ ॥
अथेत्थं कथयामास त्रिपृष्ठाय स पूरुषः । दूतो राजाधिराजस्य हयग्रीवस्य नन्वयम् ॥ २९४ ॥
त्रिखण्डे भरते ह्यस्मिन् राजानस्तस्य किङ्कराः । ततस्तस्यैव दूतस्याप्यभ्युत्तस्थौ पिता तव ॥ २९५ ॥
द्वाःस्थेनापि निषिद्धस्तन्नायमौचित्यवेदिना । न[5] श्वाऽप्यास्कन्द्यते यस्मात् स्वामिनः किं पुनः पुमान् ? ॥२९६॥
अस्मिन् प्रसादिते राजा हयग्रीवः प्रसीदति । तत्प्रसादेन राज्यानि राज्ञां नन्दन्ति सम्प्रति ॥ २९७ ॥
खलीकृते[6]ऽवज्ञयाऽस्मिन् हयग्रीवः खलीभवेत् । दूतदृष्ट्यनुसारेण प्रवर्तन्ते हि भूभुजः ॥ २९८ ॥
खलीभूते स्वामिनि हि कृतान्त इव दुःसहे । नेष्यते जीवितमपि नृपैः राज्ये तु का कथा ? ॥ २९९ ॥
अभाषिष्ट त्रिपृष्ठोऽपि न जात्या कोऽपि कस्यचित् । स्वामी वा सेवको वाऽपि शक्त्यधीनमिदं खलु ॥३००॥
वाङ्मात्रेण न तं तावत् पर्यस्यामो[7]ऽधुना वयम् । स्वप्रशंसेवाऽन्यनिन्दा सतां लज्जाकरी खलु ॥ ३०१ ॥
तातन्यक्कारकारं[8] तमुत्तानशयमोजसा । छिन्नग्रीवं हयग्रीवं करिष्ये समये न्वहम् ॥ ३०२ ॥
प्राप्तकालमिदं तावत् तातेनैष विसृज्यते । यदा तदा निवेद्यं मे करोम्यस्योचितं यथा ॥ ३०३ ॥
सोऽनुमेने पुमान् राजविरुद्धमपि तद्वचः । राजवद् राजपुत्रोऽपि मान्यो राजानुजीविनाम्[9] ॥ ३०४ ॥
निजाधिकारिणमिव[10] समुद्दिश्य प्रजापतिम् । राजप्रयोजनान्यूचे चण्डवेगोऽपि कानिचित् ॥ ३०५ ॥
तथेति प्रतिपद्यार्थमावर्ज्य[11] प्राभृतादिना । प्रजापतिनरेन्द्रेण चण्डवेगो व्यसृज्यत ॥ ३०६ ॥
स प्रीतः सपरीवारः प्रतस्थे स्वपुरीं प्रति । जगाम पोतनपुराद् बहिः स्यन्दनमाश्रितः ॥ ३०७ ॥
ज्ञात्वा त्रिपृष्ठस्तं यान्तं पुरोभूय सहाऽचलः । दवाऽनल इवाध्वन्यं सानिलो[12] रुरुधेतराम् ॥ ३०८ ॥
त्रिपृष्ठ इत्यभाषिष्ट धृष्ट ! पापिष्ठ ! दुष्ट ! रे ! । दूतमात्रस्त्वमप्याप्य राजवद् वर्तसे पशो ! ॥ ३०९ ॥
सङ्गीतरङ्गभङ्गं त्वं मूर्खाऽकार्षीर्यथा तथा । अमुमूर्षुः पशुरपि कोऽन्यः कुर्यात् सचेतनः ? ॥ ३१० ॥
गृहे गृहस्थमात्रस्याप्यायातो भूपतिः स्वयम् । ज्ञापयित्वा प्रविशति नीतिरेषा मनीषिणाम् ॥ ३११ ॥
त्वं भुवं स्फोटयित्वेवाऽज्ञातोऽकाण्डे समागमः[13] । तातेनर्जुस्वभावेन[14] सत्कृतश्चासि तन्मुधा ॥ ३१२ ॥
दुर्विनीतो यथा शक्त्या तां प्रकाशय सम्प्रति । इदं ते दुर्नयतरोः फलं द्राग् दर्शयाम्यहम् ॥ ३१३ ॥
इत्युक्त्वा मुष्टिमुद्यम्य त्रिपृष्ठः प्रपिनष्टि तम् । तावत् तावत् पुरःस्थायेत्यूचे मुशलपाणिना[15] ॥ ३१४ ॥
अलमत्र प्रहारेण कुमार ! नरकीटके । न चपेटा[16] शृगालेषु क्रोशत्स्वपि मृगद्विषः[17] ॥ ३१५ ॥
दूत इत्येष नो वध्यः प्रतीपान्याचरन्नपि । ब्राह्मण्येन[18] द्विजन्मेव विरूपमपि हि ब्रुवन् ॥ ३१६ ॥

---

१ वाचिकम्–संदेशः । २ आगमः आगमनम् । ३ सति विद्युदालोके आगमस्वाध्यायनिषेधः शास्त्रे श्रूयते, स च 'असज्झाय' नाम्ना जैनपरम्परायां प्रसिद्धः । ४ वेत्रपाणिः–द्वारपालः । ५ यस्मात् स्वामिनः–स्वामिसम्बन्धी श्वा–सारमेयः–कुकुरः अपि न आस्कन्द्यते, पुमान् तु कथम् आस्कन्दनीयः ? । आस्कन्दनम्–रोधनम् । ६ अपमानिते । ७ आक्षिपामः । ८ तातन्यक्कारकारिणम् । ९ राजभृत्यानाम् । १० निजाधीनकर्मकरमिव । ११ संतोष्य । १२ पवनसहितः दवानल इव अध्वन्यम्–पथिकम् । १३ भूतकाल–अद्यतन–द्वितीयपुरुष–एकवचनम् । १४ 'तातेन ऋजुस्वभावेन' इति विभागः । * 'रः स्थित्वेत्यूचे संमु०' ॥ १५ मुशलपाणिः–बलदेवः । १६ चपेटा–भाषायाम् 'थापोट–थप्पड' इति । १७ मृगद्विट्–सिंहः । १८ ब्राह्मणत्वेन ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदत्र संहर रुषं पुरुषे परुषेऽपि हि । दन्तिनां दन्तघातस्य स्थानं नैरण्डपादपः ॥ ३१७ ॥
इत्युक्तो बलभद्रेण त्रिपृष्ठो मुष्टिमुद्यताम् । करपाशं करीवाऽऽशु संहृत्येत्यादिशद् भटान् ॥ ३१८ ॥
जीवितव्यं विमुच्यैकं रङ्गभङ्गविधायिनः । अस्याऽपहरताऽशेषमपरं दूतपाप्मनः ॥ ३१९ ॥
तमाज्ञया कुमारस्य यष्टिभिर्मुष्टिभिर्भटाः । अताडयन् सारमेयं प्रविष्टमिव वेश्मनि ॥ ३२० ॥
अपजह्रुरशेषं तत् तस्यालङ्करणादिकम् । प्रापितस्य वधस्थानं वध्यस्याऽऽरक्षका इव ॥ ३२१ ॥
प्रहारान् वञ्चयमानः प्राणत्राणकृते चिरम् । क्रीडाकार इवेभस्य सोऽलुठत् पृथिवीतले ॥ ३२२ ॥
परितस्तत्परीवारो मुक्त्वा प्रहरणादिकम् । जीवंग्राहं पलायिष्ट भक्ष्यं सन्त्यज्य काकवत् ॥ ३२३ ॥
कुट्टयित्वा रासभवल्लुञ्चित्वा कलविङ्कवत् । विनर्ध्य विटवत् तं तु कुमारावीयतुर्गृहम् ॥ ३२४ ॥
विदाञ्चकार तत् सर्वं जनश्रुत्या प्रजापतिः । एवं विचिन्तयामास सशल्य इव चेतसि ॥ ३२५ ॥
अहो ! मम कुमाराभ्यां युक्तं नाऽऽचरितं ह्यदः । कस्याग्रे कथयाम्येतत् स्वेनाश्वेनेव पातितः ? ॥ ३२६ ॥
न धर्षितश्चण्डवेगोऽश्वग्रीवः किन्तु धर्षितः । दूता हि प्रतिरूपाणि प्रभूणां सञ्चरन्त्यमी ॥ ३२७ ॥
न यावद् यात्यसौ तावदनुनेयः प्रयत्नतः । यत उत्तिष्ठति शिखी निर्वाप्यस्तत एव हि ॥ ३२८ ॥
एवं विचिन्त्य पुरुषैः प्रधानैस्तं महीपतिः । आनाययदनुनीय वचोभिः प्रेमपेशलैः ॥ ३२९ ॥
चकार सविशेषां च प्रतिपत्तिं कृताञ्जलिः । कुमारकृतकालुष्यप्रक्षालनजलप्लुतिम् ॥ ३३० ॥
चतुर्गुणं महामूल्यं तस्य च प्राभृतं ददौ । प्रकोपशान्तये शीतोपचारमिव दन्तिनः ॥ ३३१ ॥
ऊचे च राजा यद् वेत्सि यौवनेऽभिनवे सति । कुमारका दुर्ललिताः सामान्यश्रीमतामपि ॥ ३३२ ॥
विशेषतो मम स्वामिप्रसादोद्भूतसम्पदा । निर्रर्गलौ कुमारौ तावदान्तौ वृषभाविव ॥ ३३३ ॥
बह्वेताभ्यामपराद्धं त्वयि यद्यपि मानद ! । दुःस्वप्नमिव विस्मार्यं तथाप्येतत् त्वया सखे ! ॥ ३३४ ॥
आवयोरक्षता प्रीतिः सदा सोदरयोरिव । त्याज्या नैकपदे साऽद्य मन्मनोवृत्तिकोविद ! ॥ ३३५ ॥
कुमारयोर्दुर्ललितमिदं च भवताऽनघ ! । नाश्वग्रीवाय विज्ञाप्यं निकषोऽयं क्षमावताम् ॥ ३३६ ॥
इति सामसुधावृष्ट्या शान्तकोपहुताशनः । चण्डवेगोऽप्युवाचैवं गिरा स्नेहादचण्डया ॥ ३३७ ॥
त्वया सह चिरात् प्रेम्णा कोपोऽपि न मया कृतः । राजन् ! क्षन्तव्यमिह किं ? त्वत्पुत्रौ न ममापरौ ॥३३८॥
डिम्भानां दुर्नये दण्डो ह्युपालम्भः प्रकीर्तितः । निवेदनं राजकुले नेति लोकेऽपि हि स्थितिः ॥ ३३९ ॥
राज्ञे विज्ञपयिष्यामि नेदृक्षं त्वत्कुमारयोः । कवलः शक्यते क्षेप्तुं नाक्रष्टुं हस्तिनो मुखात् ॥ ३४० ॥
विस्रब्धीभव तद् राजन् ! गच्छामि विसृजाऽद्य माम् । मनागपि न कालुष्यं विद्यते मम चेतसि ॥३४१॥
इत्युक्तवन्तं तं दूतं परिरभ्य स्वबन्धुवत् । विरचय्याञ्जलिं राजा विससर्ज प्रजापतिः ॥ ३४२ ॥
अश्वग्रीवान्तिकं दूतः स ययौ कतिभिर्दिनैः । तद्धर्षणकथा त्वग्रे वर्धापकपुमानिव ॥ ३४३ ॥
तदा हि चण्डवेगस्य त्रस्तः सर्वपरिच्छदः । त्रिपृष्ठोदन्तमखिलं शशंसाऽऽगत्य भूपतेः ॥ ३४४ ॥
दूतोऽद्राक्षीद् हयग्रीवमुद्ग्रीवं रक्तलोचनम् । जगत्कवलनोद्युक्तमिव वैवस्वतं स्थितम् ॥ ३४५ ॥
मन्ये मद्धर्षणोदन्तो राज्ञो व्यज्ञपि केनचित् । दूतोऽपि निश्चिकायैवमिङ्गितज्ञा हि सेवकाः ॥ ३४६ ॥
राज्ञा पृष्टः स आचख्यौ वृत्तान्तमभितोऽपि तम् । उग्राणां स्वामिनां ह्यग्रे कोऽन्यथा वक्तुमीश्वरः ? ॥३४७॥

---

१ 'न+एरण्डपादपः' इति विभागः । २ सारमेयः–कुक्कुरः । ३ जीवग्राहं पलायिष्ट–'जीव लईने भाग्यो' इति भाषायाम् । ४ कलविङ्कः–भाषायाम् 'चकलो' । ५ वाचा अपमानं कृत्वा । ६ शिखी–अग्निः । निर्वाप्यः–शमनीयः । ७ प्रतिपत्तिः–आदरः । ८ निरर्गलः–स्वच्छन्दः । ९ 'सौ+अदान्तौ' इति । * °स् पुरास° का० ॥ १० अनघः–निर्दोषः । ११ निकषः परीक्षा । १२ डिम्भाः–बालाः । १३ विस्रब्धः विश्वासयुक्तः । १४ तदपमानकथा । १५ वर्धापकः–भाषायाम् 'वधामणी देनारो मनुष्य' । १६ उदन्तः–वृत्तान्तः । १७ वैवस्वतः–यमः । १८ निश्चिकाय–निश्चयं चकार । इङ्गितम्–मनोवृत्तिः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरन् स्वप्रतिपन्नं च दूत एवं व्यजिज्ञपत् । भक्तोऽहमिव ते देव ! स्वयं राजा प्रजापतिः ॥ ३४८ ॥
यच्चक्रे तत् कुमाराभ्यां सा बालसुलभाऽज्ञता । खिद्यते त्वधिकं तेन कर्मणा स कुमारयोः ॥ ३४९ ॥
अतिशेषे यथा शक्त्या त्वमशेषेषु राजसु । तथाऽतिशेते भक्त्या च प्रजापतिनृपस्त्वयि ॥ ३५० ॥
कुमारदोषेणाऽऽत्मानं स गर्हति चिरं नृपः । त्वच्छासनमुपादत्ताऽदत्त चेदमुपायनम् ॥ ३५१ ॥
इत्युक्त्वाऽवस्थिते दूते हयग्रीवो व्यचिन्तयत् । दृष्टैकप्रत्यया जज्ञे तस्य नैमित्तिकस्य वाक् ॥ ३५२ ॥
प्रत्ययश्चेद् द्वितीयोऽपि स सिंहवधलक्षणः । भविष्यति तदा मन्ये शङ्कास्थानमुपस्थितम् ॥ ३५३ ॥
विमृश्यैवं तदा दूतान्तरेणाथ प्रजापतिम् । त्रायस्व शालिक्षेत्राणि सिंहादिति समादिशत् ॥ ३५४ ॥
प्रजापतिः समाहूय कुमाराविव्यभाषत । फलितं वां दुर्ललितमकाण्डे सिंहरक्षया ॥ ३५५ ॥
आज्ञा चेत् खण्ड्यतेऽकाण्डे हयग्रीवोऽन्तकायते । तदाज्ञा खण्ड्यते नो चेत् तदा सिंहोऽन्तकायते ॥३५६॥
असावुभयथाऽस्माकमपमृत्युरुपस्थितः । तथापि सिंहरक्षार्थं वत्सौ ! गच्छामि सम्प्रति ॥ ३५७ ॥
कुमारावूचतुर्ज्ञातमश्वग्रीवस्य पौरुषम् । ज्ञातो भयङ्कर इति स येन पशुना पशुः ॥ ३५८ ॥
तिष्ठ तात ! व्रजिष्यावो हनिष्यावोऽचिरेण तम् । सिंहं नृसिंह ! का तत्र स्वयं यात्रा तव प्रभो ! ॥ ३५९ ॥
सविषादं जगादैवं प्रजापतिनृपोऽप्यथ । क्षीरकण्ठावनभिज्ञौ कृत्या-ऽकृत्येषु कर्मसु ॥ ३६० ॥
एकं तावद् कृतं कर्म तिष्ठद्भ्यां गोचरेऽपि मे । व्यालेभदुर्ललिताभ्यां भो ! भवद्भ्यां कुमारकौ ! ॥ ३६१ ॥
तस्यापि कर्मणः सद्यः फलमेतदुपस्थितम् । दूरस्थौ यत् करिष्येथे तत्फलं किं भविष्यति ? ॥ ३६२ ॥
अथ त्रिपृष्ठः प्रत्यूचे केयं सिंहविभीषिका । दर्श्यते तेन बालेन बालानामिव भूभुजाम् ? ॥ ३६३ ॥
कृत्वा तात ! प्रसादं नौ तिष्ठत्वत्रैव सम्प्रति । गत्वा सिंहं हनिष्यावः सहाऽश्वग्रीववाञ्छितैः ॥ ३६४ ॥
इत्थं कथमपि क्ष्मापं तौ प्रतीक्ष्य प्रजग्मतुः । सारस्वल्पपरीवारौ तां सिंहाध्युषितां भुवम् ॥ ३६५ ॥
सिंहेन निहतानेकभटास्थीनि गिरेरधः । कुमारौ तद्यशोराशिमिव मूर्त्तमपश्यताम् ॥ ३६६ ॥
तुङ्गवृक्षाधिरूढांस्तौ शालिक्षेत्रकृपीवलान् । पप्रच्छतुरिति क्ष्मापैः सिंहोऽयं रक्षितः कथम् ॥ ३६७ ॥
आचख्युः क्षेत्रिणोऽप्येवं हे वीराविह भूभुजः । सन्नद्धैः कुञ्जरवरैस्तुरङ्गैः स्यन्दनैर्भटैः ॥ ३६८ ॥
विरचय्य महाव्यूहं सिंहस्याकार्षुरन्तरे । संवरं स्रोतस इव दीर्घिकामिव दन्तिनः ॥ ३६९ ॥
हन्यमानैर्दीर्यमाणैः सैनिकैस्तैर्महाभुजाः । सिंहादस्माद् ररक्षुर्नः प्राप्तजीवितसंशयाः ॥ ३७० ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा स्मित्वा चाऽचल-केशवौ । सैन्यं निधाय तत्रैवाऽयातां सिंहगुहामभि ॥ ३७१ ॥
तयोश्च रथनिर्घोषान्मेघनिर्घोषसोदरात् । बन्दिघोषादिव नृपः सिंहः सद्यो व्यबुद्ध सः ॥ ३७२ ॥
किञ्चिदुन्मीलयन् नेत्रे कृतान्तस्येव दीपिके । तस्यैव चामरं धुन्वन्नुदारां केसरच्छटाम् ॥ ३७३ ॥
रसातलद्वारमिव जृम्भया स्फाटयन् मुखम् । किञ्चिदाकुञ्चितग्रीवः प्रेक्षाञ्चक्रे स केसरी ॥३७४॥ युग्मम् ॥
रथमात्रपरीवारौ तौ नरौ वीक्ष्य केवलौ । अवज्ञया प्रसुष्वाप सोऽथ कृत्रिमनिद्रया ॥ ३७५ ॥
सर्वाभिसारिभिर्भूपैर्दत्त्वा हस्त्यादिभिर्बलिम् । शालिक्षेत्राणि रक्षद्भिर्गर्वमारोपितो ह्यसौ ॥ ३७६ ॥
आमेत्युक्तोऽचलेनाथ पुरोऽभ्येत्य च किञ्चन । मल्लो मल्लमिवाऽऽह्वास्त नृसिंहः सिंहपुङ्गवम् ॥ ३७७ ॥
विष्णोस्तमूर्जितं शब्दमाकर्ण्योत्कर्णिताऽऽननः । विसिष्मिये सोऽपि सिंहो वीरः कोऽपीति चिन्तयन् ॥३७८॥

---

१ स्वप्रतिज्ञामित्यर्थः । २ अतिशयवान् असि । अतिशेते–अतिशययुक्तः वर्तते । ३ दुश्चेष्टितम् । ४ अन्तकः–यमः तत्सदृशः । आज्ञाखण्डने हयग्रीवः यमसदृशः । आज्ञापालने कृते सिंहः यमसदृशः । ५ क्षीरकण्ठः–बालः । ६ व्यालेभः–उन्मत्तगजः । ७ सिंहभयम् । ८ आवाभ्याम्–आवयोरुपरि । * °त्वा च वलके° मुद्रिते । ९ अभि–संमुखम् । १० त्रिपृष्ठः । ११ उत्कर्णितम्–ऊर्ध्वकर्णम् । आननम्–मुखम् ।

त्रिषष्टि. ४२

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

कर्णौ शिरसि सुस्तब्धौ स्थलस्थाविव कीलकौ । अतीव पिङ्गले* नेत्रे दीप्ते इव बिभीषिके ॥ ३७९ ॥
अस्त्रागारं यमस्येव वक्त्रं दंष्ट्रा[1]रदाकुलम् । वक्त्राद् बहिः स्थितां जिह्वां पातालादिव तक्षकम् ॥ ३८० ॥
यमौकस्तोरणमिव[2] मुखस्योपरि दंष्ट्रिकाम् । अन्तर्ज्वलन्महाकोपानलस्येव शिखाः सटाः[3] ॥ ३८१ ॥
नखांश्च प्राणिनां प्राणाकर्षणाङ्कुटकानिव[4] । लुलन्तं पुच्छदण्डं च बुभुक्षितमिवोरगम् ॥ ३८२ ॥
बिभ्रद्[5] व्यात्ताननः पञ्चाननो बूत्कार[6]दारुणः । साक्षादिव रसो रौद्रो निर्जगाम गुहागृहात् ॥ ३८३ ॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥

अतुच्छपुच्छदण्डेन प्रचण्डेन स केसरी । भूतलं ताडयामास वज्रेणेन्द्र इवाचलम् ॥ ३८४ ॥
पुच्छाच्छोटननादेन तेन नेशुः समन्ततः । सत्त्वानि तूर्यनादेन यादांसी[7]वान्तरम्बुधेः ॥ ३८५ ॥
आर्य ! तिष्ठ मयि सति योद्धुं तेऽवसरो न हि । इति त्रिपृष्ठस्तत्रैवाऽवातिष्ठिपदथाऽचलम् ॥ ३८६ ॥
पदातिना रथस्थस्य युध्यमानस्य मेऽमुना । क्षत्रधर्मोचितं नैतदिति विष्णुर्जहौ रथम् ॥ ३८७ ॥
अशस्त्रिणो मे निरस्त्रेण युद्धमित्यपि नोचितम् । इत्यस्त्राण्यपि तत्याज वीरव्रतधनो हरिः ॥ ३८८ ॥
एह्येहि भो ! समित्कण्डूं[8] हरे ! तव हराम्यहम् । इति त्रिपृष्ठोऽभाषिष्ट स्थामतोऽतिपुरन्दरः ॥ ३८९ ॥
तदेव वचनं सोऽपि कोपाटोपसमुत्कटः । अद्रिप्रतिरव[9]व्याजाद् व्याजहारेव केसरी ॥ ३९० ॥
स केसरियुवा चेत्थं चिन्तयामास चेतसि । अहो ! अमुष्य बालस्य भृशं रभसकारिता ॥ ३९१ ॥
विना सैन्यं यदायातः स्यन्दनाद् यदवातरत् । यच्च तत्याज शस्त्राणि यन्मामाह्वास्त चोच्चकैः ॥ ३९२ ॥
उच्चपेटः[10] प्रति सर्पं मण्डूक इव दुर्मतिः । धृष्टतायाः फलमसौ प्राप्नोत्विति विमृश्य सः ॥ ३९३ ॥
खे खेचररथस्रस्तकेसरिभ्रमदः क्षणम् । तत उत्पुच्छयमानो[11] ददौ फालां स केसरी ॥ ३९४ ॥
तस्य चापततोऽप्योष्ठौ पाणिभ्यां स पृथक् पृथक् । संदंशाभ्यां[12] दन्दशूकस्येव जग्राह केशवः ॥ ३९५ ॥
एकेनौष्ठेन चाकर्षन्नेकतोऽन्येन चान्यतः । चटच्चटिति तं विष्णुः पटपाट[13]मपाटयत् ॥ ३९६ ॥
अत्रान्तरे जनैः सभ्यैरिव वैतालिकैरिव । रोदः[14]कुक्षिम्भरिर्भूरिश्चक्रे जयजयारवः ॥ ३९७ ॥
कौतुकान्मिलिता व्योम्नि विद्याधर-सुरा-ऽसुराः । मलयानिलवत् तत्र पुष्पवृष्टिं वितेनिरे ॥ ३९८ ॥
ते च सिंहशरीरस्य दले[15] क्षिप्ते क्षणात् क्षितौ । परिपुस्फुरतुः काममर्षामुक्तचेतने ॥ ३९९ ॥
महता सोऽपमानेन परतन्त्रशरीरकः । द्विधाभूतोऽपि हि हरिः स्फुरन्नेवमचिन्तयत् ॥ ४०० ॥
अहो ! प्रौढैरपि नृपैः सन्नद्धसुभटावृतैः । सास्त्रैरपि न सोढोऽस्मि योऽहं पविरिवापतन् ॥ ४०१ ॥
बालेनैकाकिनाऽनस्त्रेणामुना मृदुपाणिना । हा ! हतोऽस्मीति खेदो मे न पुनर्वधमात्रतः ॥ ४०२ ॥
एवं च चिन्तया तस्य वेल्लितो[16] दन्दशूकवत् । ज्ञात्वाऽभिप्रायमित्यूचे मधुरं विष्णुसारथिः ॥ ४०३ ॥
लीलानिर्भिन्नमत्तेभाऽपराभूत ! चमूशतैः । मृगराज ! किमेवं त्वमभिमानेन ताम्यसि ? ॥ ४०४ ॥
अयं खलु भटप्रष्ठ[17]स्त्रिपृष्ठो नाम भारते । प्रथमः शार्ङ्गिणां[18] बालो वयसा न तु तेजसा ॥ ४०५ ॥
नरेषु सिंहः खल्वेष पशुषु त्वं तु तत् तव । हतस्यानेन का व्रीडा श्लाघा प्रत्युत तद्रणे ॥ ४०६ ॥

---

* °पिङ्गे नयने दी° संमू० ॥ १ दंष्ट्रा–दाढा । रदाः दन्ताः । आकुलम्–व्याप्तम्–परिपूर्णम् । २ यमगृहतोरणम् । ३ 'सटाः'–भाषायाम् 'सिंहकेशवाळी–याळ' इति । ४ 'अंकुटक' इति भाषायाम् 'अंकोडो' नामकम् आकर्षणसाधनम् । ५ पूर्वोक्तानि नेत्रादि-पुच्छान्तानि बिभ्रत्–धारयन् । ६ गर्जनाभयङ्करः । ७ यादांसि–हिंस्राणि जलचराणि । अन्तर्–मध्ये, अम्बुधेः–समुद्रस्य । ८ युद्धरूपां कण्डूम् । ९ अद्रिप्रतिध्वनिमिषेण । १० प्रसारितपाणिः । अत्र 'पाणि' शब्देन 'चपेटा–पंजो' इति भाषायाम् । ११ पुच्छं ऊर्ध्वं वर्तुलाकारेण प्रसारयन् । १२ भाषायाम्–'संदंश' इति 'सांडसो' इति नाम्ना प्रसिद्धं सर्पग्रहणसाधनम् । १३ वस्त्रच्छेदवत् । १४ आकाशभूम्यन्तरालपूरकः । १५ खण्डद्वयम् । १६ कम्पमानस्य । १७ प्रष्ठः–अग्रणीः । १८ शार्ङ्गी–वासुदेवः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्येति वचसा शान्तः सुधावृष्ट्येव केसरी । मृत्वा बद्धाऽऽयुरुत्पेदे नारको नरकावनौ ॥ ४०७ ॥
हयग्रीवाज्ञया तत्र तद्वृत्तं ज्ञातुमेयुषाम् । विद्याधराणां तच्चर्मार्पयन्नूचेऽचलानुजः ॥ ४०८ ॥
तस्य घोटककण्ठस्य[1] चकितस्य पशोरपि । अस्य सिंहस्य चर्मेदमर्प्यतां वधसूचकम् ॥ ४०९ ॥
वाच्यश्च वाचिकमिदं स्वादुभोजनलम्पटः । निश्चिन्तो भव विश्रब्धं भुञ्जीथाः शालिभोजनम् ॥ ४१० ॥
तथेति प्रत्यपद्यन्त ते विद्याधरदारकाः* । बलभद्र-त्रिपृष्ठौ तु जग्मतुर्नगरं निजम् ॥ ४११ ॥
प्रणेमतुः पितुः पादौ तत्र तौ भ्रातरावुभौ । बलस्तु कथयामास तमुदन्त[2]मशेषतः ॥ ४१२ ॥
पुनर्जाताविव सुतौ मेने राजा प्रजापतिः । तेन सनृतसन्धेन[3] सूनुना चात्यमोदत ॥ ४१३ ॥
ते च विद्याधरा वाजिग्रीवस्य तमशेषतः । त्रिपृष्ठोदन्तमाचख्युर्वज्रपातसहोदरम्[4] ॥ ४१४ ॥

इतश्च वैताढ्यगिरौ दक्षिणश्रेणिभूषणम् । नगरं रथनूपुरचक्रवालाऽऽख्यमस्ति तत् ॥ ४१५ ॥
तत्र च ज्वलनजटी तेजसा ज्वलनोपमः । आसीदसामान्यऋद्धिर्विद्याधरनरेश्वरः ॥ ४१६ ॥
बभूव तस्य महिषी प्रीतेः परममास्पदम् । नाम्नैव वायुवेगेति हंसीव त्वलसा गतौ† ॥ ४१७ ॥
तस्यां राज्ञ्यां तस्य राज्ञः सूनुः समुदपद्यत । स्वप्नेऽर्कालोकनादर्ककीर्तिरित्यभिधानतः ॥ ४१८ ॥
स्वप्ने स्वयम्प्रभा[5]धौताऽऽशेन्दुलेखाविलोकनात् । स्वयम्प्रभेत्यभिधया क्रमेण तनयाऽप्यभूत् ॥ ४१९ ॥
सम्प्राप्तयौवनं यौवराज्ये राजा महाभुजम् । अर्ककीर्तिं‡ विनिदधे कीर्तिगङ्गाहिमाचलम् ॥ ४२० ॥
स्वयम्प्रभाऽपि सम्प्राप क्रमयोगेन यौवनम् । वनस्थलीव सुभगङ्करणीं[6] मधुसम्पदम् ॥ ४२१ ॥
मुखचन्द्रमसा रेजे राका मूर्तिमतीव सा । केशपाशतमिस्रेणाऽमावास्येव च देहिनी ॥ ४२२ ॥
तस्याः कर्णान्तगे नेत्रे कर्णोत्तंसाम्बुजे इव । कर्णौ च प्रसरन्त्योर्दृक्सरस्योः संवराविव[7] ॥ ४२३ ॥
पाणि-पादा-ऽधरदलै रक्तैर्वल्लीव पल्लवैः । साऽभात् कुचाभ्यां चोच्चाभ्यां क्रीडाद्रिभ्यामिव[8] श्रियः ॥४२४॥
आवर्त इव लावण्यसरितो नाभिराबभौ । अन्तरद्वीपसदृशी तस्याः श्रोणी च विस्तृता ॥ ४२५ ॥
तस्याः सर्वाङ्गसौभाग्यनिधेः प्रतिनिधिर्[9] न हि । सुरस्त्रीष्वसुरस्त्रीषु विद्याधरवधूष्वपि ॥ ४२६ ॥

अथाऽभिनन्दन-जगन्नन्दनौ चारणौ मुनी । विहायसा विहरन्तौ पुरे तत्र समेयतुः ॥ ४२७ ॥
ऋद्ध्या महत्या श्रीदेवीमूर्त्यन्तरमिवेयुषी । स्वयम्प्रभाऽपि तौ गत्वा ववन्दे मुनिपुङ्गवौ ॥ ४२८ ॥
तद्देशनां समाकर्ण्य कर्णामृतरसायनम् । सम्यक्त्वं प्रतिपेदे सा [10]नीलीरागमिव स्थिरम् ॥ ४२९ ॥
सम्यक् श्रावकधर्मं सा प्रत्यश्रौषीत् तदन्तिके । प्रमाद्यन्ति शुभात्मानो न हि ज्ञात्वा मनागपि ॥४३०॥
ततोऽन्यतो जग्मतुस्तौ विहर्तुं मुनिपुङ्गवौ । साऽप्यन्यदा पर्वदिने प्रत्यपद्यत पौषधम् ॥ ४३१ ॥
पारणेच्छुर्द्वितीयेऽह्नि कृत्वाऽर्चादि जिनेशितुः । समानीय च तच्छेषां[11]मर्पयामास सा पितुः ॥ ४३२ ॥
स विद्याधरभूपालः सद्यः प्रमदमेदुरः । शीर्षेऽध्यारोपयच्छेषामुत्सङ्गे च स्वयम्प्रभाम् ॥ ४३३ ॥
तां दृष्ट्वोद्यौवनां[12] राजा वरान्वेषणकर्मणि । चिन्ताप्रपन्नः समभूद् ऋणमग्नः पुमानिव ॥ ४३४ ॥
विसृज्य सप्रसादं तां वरं तदुचितं नृपः । सुश्रुतादीन् समाहूय परिपप्रच्छ मन्त्रिणः ॥ ४३५ ॥

अथाऽऽदौ सुश्रुतोऽवादीदस्ति रत्नपुरे पुरे । राजा नीलाञ्जनादेवी-मयूरग्रीवयोः सुतः ॥ ४३६ ॥
स साधितानेकविद्यस्त्रिखण्डभरतेश्वरः । विद्याधरेन्द्रोऽश्वग्रीवाभिधानः प्रवरो वरः ॥ ४३७ ॥
मन्त्री बहुश्रुतोऽप्यूचे समतिक्रान्तयौवनः । स्वयम्प्रभायाः स्वामिन्या न योग्यः खल्वयं वरः ॥४३८॥

---

१ 'घोटककण्ठ' इति हयग्रीवस्य पर्यायवाचकं नाम । * °काः । त्रिपृष्ठ-बलभद्रौ तु संघ्रू० ॥ २ उदन्तः-वृत्तान्तः । ३ संधा-प्रतिज्ञा । ४ सहोदरम्-तुल्यम् । † °सीवत् त्व° संघ्रू० सं० ॥ ५ सहजप्रभा० । ‡ र्त्तिं न्यधाद् राज्ये कीर्त्तिं° संघ्रू० ॥ ६ सौभाग्यकारिणीं वसन्तशोभाम् । ७ रोधकौ इव । ८ क्रीडापर्वताभ्याम् । ९ सौभाग्येन समानः । १० नील्या इव स्थिररागम्; नीली-'गळी' इति भाषायाम् । ११ अर्चादिशेषाम्-स्नानजलम् । १२ उद्यौवना-विकसमानयौवना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिष्ठन्ति चोत्तरश्रेण्यां बहवो बाहुशालिनः । रूप-यौवन-लावण्यवन्तो विद्याधरोत्तमाः ॥ ४३९ ॥
तेषां च मध्यादेकस्य कस्याप्येषा मृगेक्षणा । विचार्य दीयतां देवानुरूपं योगमिच्छता ॥ ४४० ॥
अथाऽऽबभाषे **सुमतिर्नाम** मन्त्री महीपतिम् । युक्तमुक्तमनेनेदमायुक्तेन तव प्रभो ! ॥ ४४१ ॥
अत्राद्रावुत्तरश्रेणिहारनायकतां गता । **प्रभङ्करा** नाम नगर्यनेकाद्भुतैकभूः[1]* ॥ ४४२ ॥
ओजो दधन् माघवनं[2] तत्र **मेघवनाभिधः** । प्रातमेघ इवामोघः[3] समस्ति पृथिवीपतिः ॥ ४४३ ॥
सधर्मचारिणी तस्य नामतो **मेघमालिनी** । मालतीपुष्पमालेव शीलसौरभशालिनी† ॥ ४४४ ॥
अस्ति **विद्युत्प्रभो** नाम नामिताशेषभूपतिः । कन्दर्प इव रूपेणाप्रतिरूपेण तत्सुतः ॥ ४४५ ॥
तयोरस्ति च दुहिता **ज्योतिर्मालेति** नामतः । देवकन्येव निःसीमरूपलावण्यसम्पदा ॥ ४४६ ॥
विद्युत्प्रभकुमारस्योचिता देवी स्वयम्प्रभा । विद्युद् वारिधरस्येव द्युतिद्योतितदिङ्मुखा ॥ ४४७ ॥
अर्ककीर्तिकुमारस्य ज्योतिर्मालोचिता पुनः । कन्याविनिमयेनाऽस्तु द्वयोरपि महोत्सवः ॥ ४४८ ॥
श्रुतसागरनामाऽथ व्याजहारेति भूपतिम् । कन्येयं रत्नभूता ते केन श्रीरिव नार्थ्यते[4] ? ॥ ४४९ ॥
विद्याधरकुमाराणां सर्वेषामेतदर्थिनाम् । निर्विशेषत्वजनको युज्यतेऽस्याः स्वयम्वरः ॥ ४५० ॥
कस्मैचिदन्यथैकस्मै ददतः कन्यकां तव । भावी विद्याधरैः सार्धं विरोधस्तेन किं मुधा ? ॥ ४५१ ॥
सर्वेषां मन्त्रिणां मन्त्रं श्रुत्वैवं तान् विसृज्य च । **सम्भिन्नश्रोतसं** नामाऽपृच्छन्नैमित्तिकं पुनः ॥४५२॥
अश्वग्रीवस्य वाऽन्यस्य विद्याधरवरस्य वा । निजकन्यां प्रयच्छामि यद्वाऽस्त्वस्याः स्वयम्वरः ? ॥४५३॥
स नैमित्तिक इत्यूचे साधुभ्योऽश्रौषमित्यहम् । यत्पृष्टो **भरतेनाऽऽख्यद्** भगवानृषभध्वजः ॥ ४५४ ॥
त्रयोविंशतिरर्हन्तोऽवसर्पिण्यां हि मत्समाः । एकादश भविष्यन्ति राजानस्त्वत्समाः पुनः ॥ ४५५ ॥
बला नव वासुदेवा नवार्धभरतेश्वराः । नव प्रत्यर्थिनस्तेषां तेऽप्यर्धभरतेश्वराः ॥ ४५६ ॥
तत्र हत्वा हयग्रीवं त्रिपृष्ठो भोक्ष्यते हरिः[5] । सविद्याधरनगरां त्रिखण्डां भरतावनिम् ॥ ४५७ ॥
सर्वविद्याधरैश्वर्यं तुभ्यमेष प्रदास्यति । कन्येयं दीयतामस्मै पृथिव्यां नेदृशोऽपरः ॥ ४५८ ॥
हृष्टो नैमित्तिकं राजा सत्कृत्य विससर्ज तम् । दूतं तदर्थे **मारीचिं** प्रैषीचोपप्रजापति ॥ ४५९ ॥
सोऽथ विद्याधरो गत्वा प्रजापतिमहीपतिम् । नत्वा स्वं ज्ञापयित्वा च विनयेनेत्यभाषत ॥ ४६० ॥
अस्ति **ज्वलनजटिनो** विद्याधरमहीपतेः । कन्या **स्वयम्प्रभा** नाम ललामाऽशेषयोषिताम्[6] ॥४६१॥
अनुरूपवरार्थेऽस्याश्चिरं चिन्तापरायणः । अरोचकी[7] कविरिव तस्यावग्निजटी नृपः¶ ॥ ४६२ ॥
मन्त्रिभिर्मन्त्रयमाणोऽप्युपलेभे न कञ्चन । अनुरूपं वरं राजाऽपृच्छन्नैमित्तिकं ततः ॥ ४६३ ॥
नैमित्तिकेन सम्भिन्नश्रोतसाऽऽख्यायि यत् सुता । अनुरूपा **त्रिपृष्ठाय प्राजापत्याय** दीयताम्॥४६४॥
प्रथमो वासुदेवोऽयं भोक्ष्यते चार्धभारतम् । श्रेणिद्वयाधिपत्यं§ वः प्रसन्नश्च प्रदास्यति ॥ ४६५ ॥
एवं नैमित्तिकगिरा प्रीतो मां प्राहिणोत् प्रभुः । तामादातुं **त्रिपृष्ठार्थे** स्वामिंस्तदनुमन्यताम् ॥ ४६६ ॥
प्रीतः प्रजापतिर्नृपस्तथेति प्रतिपद्य ताम् । विससर्ज यथौचित्यदानपूर्वमखर्वधीः[8] ॥ ४६७ ॥
अश्वग्रीवाशङ्कया च नृपो ज्वलनजट्यपि । तामुद्वाहयितुं कन्यां प्रजापतिपुरं ययौ ॥ ४६८ ॥
सविद्याधरसामन्तः सामात्य-बल-वाहनः । तस्थौ तन्नगरोपान्ते मर्यादायामिवार्णवः ॥ ४६९ ॥
सप्रधानपरीवारः प्रजापतिरथ स्वयम् । तस्याभिमुखमागच्छत् सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥ ४७० ॥
द्वयोरपि महासैन्ये मिलिते प्रीतियोगतः । चकासामासतुर्गङ्गा-यमुनाश्रोतसी इव ॥ ४७१ ॥

---

* °गर्यस्त्यनेकाद्भुतै° संब्रू० ॥ १ अनेकाश्चर्यकरपदार्थस्थानम् । २ इन्द्रसम्बन्धि । ३ अमोघः—सफलः । † °भशालि° मु० ॥ ‡ माऽपि व्या° संब्रू० ॥ ४ न याच्यते । ५ वासुदेवः । ६ सर्वस्त्रीणां परमप्रकृष्टा । ७ रुचिरहितः । ¶ तस्थौ वह्निजटी मु० ॥ § त्वं च प्रसन्नस्ते प्र° मु० ॥ ८ महाबुद्धिः । ९ महान् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उभावपि गजारूढौ सामान्यप्रतिपत्तितः । अन्योऽन्यं परिरेभाते[1] सामानिकसुराविव ॥ ४७२ ॥
तयोर्द्वयोः क्षितिभुजोः सूर्याचन्द्रमसोरिव । द्राक् सङ्गमेन दिवसः स पर्वदिवसोऽभवत् ॥ ४७३ ॥
आर्पयच्चावासभुवं विद्याधरमहीभुजे । मैनाकायेव[2] पाथोधिः प्रजापतिमहीपतिः ॥ ४७४ ॥
तत्र विद्याधरा विद्याबलाद् व्यरचयन्[3] पुरम् । विचित्रहर्म्यरुचिरं द्वितीयमिव पोतनम् ॥ ४७५ ॥
पुरस्य तस्य मूर्धन्ये प्रासादे दिव्यतोरणे । उवास ज्वलनजटी मेराविव दिवाकरः ॥ ४७६ ॥
सामन्ता-ऽमात्य-सेनानीप्रमुखा अपरेऽपि हि । ऊषुर्यथार्हं हर्म्येषु विमानेष्विव नाकिनः ॥ ४७७ ॥
विद्याधरेन्द्रमापृच्छ्य प्रजापतिनृपोऽपि हि । जगाम स्वाश्रयं वेलानिवृत्त इव वारिधिः ॥ ४७८ ॥
भोज्या-ऽङ्गराग-नेपथ्यप्रभृति प्राभृतं ततः । विद्याधरनरेन्द्राय प्रैजिघाय[4] प्रजापतिः ॥ ४७९ ॥
विवाहार्थमकार्येतामुभाभ्यां[5] रत्नशालिनौ । मण्डपौ चमर-बल्योः सभे इव शुभाकृती ॥ ४८० ॥
द्वयोरपि गृहेऽभूवन् धवलामङ्गलानि[6] च । जरत्कुलस्त्रीरचिताशिक्षाचार्यकलीलया[7] ॥ ४८१ ॥
चान्दनेनाङ्गरागेण भ्राजमानः सुगन्धिना । नीलरत्नप्रतिमेव करीन्द्रमधिरूढवान् ॥ ४८२ ॥
आवृतोऽनुवरीभूय[8] सवयोभिर्नृपात्मजैः । ययौ त्रिपृष्ठो ज्वलनजटिवेश्म स्ववेश्मतः ॥ ४८३ ॥
वेश्माग्रे तोरणस्याधस्तस्थावथ बलानुजः । पौरस्त्य इव मार्तण्डः प्रतीच्छन्नर्घमण्डलम् ॥ ४८४ ॥
मङ्गलानि कुलस्त्रीषु गायन्तीषु ततो हरिः । भग्नाग्निसम्पुटः सानुवरो मातृगृहं ययौ ॥ ४८५ ॥
सदशश्वेतवसनां नयनानन्दनां हरिः । शशिप्रभामिव मूर्त्तां तत्रापश्यत् स्वयम्प्रभाम् ॥ ४८६ ॥
उभावथाऽऽसाञ्चक्राते[10] एकस्मिन्नासने शुभे । स्वयम्प्रभा त्रिपृष्ठश्च चित्रा-चन्द्रमसाविव ॥ ४८७ ॥
झल्लरीवाद्यनादेन लग्ने संसूचिते तयोः । योजयामास हस्ताब्जे पुरोधाः सम्पुटाविव ॥ ४८८ ॥
हस्तारामेलकस्ताभ्यामुभाभ्यां च व्यधीयत । नवोद्गमप्रेमतरोः सेचनोदकसन्निभः ॥ ४८९ ॥
स्वयम्प्रभा त्रिपृष्ठश्च तथैव मिलितौ ततः । उपेयतुर्वेदिमध्यं वल्ली-विटपिनाविव ॥ ४९० ॥
समिद्भिः[11] पिप्पलादीनामन्तर्वेदि[12] द्विजातयः । ज्वलनं ज्वालयामासुर्हविराहुतिपूर्वकम् ॥ ४९१ ॥
प्रदक्षिणीचक्रतुस्तौ प्रदक्षिणशिखोद्गमम् । वेदिवह्निं वेदमन्त्राध्यापकेषु द्विजन्मसु ॥ ४९२ ॥
इत्थं स्वयम्प्रभां देवीं परिणीय बलानुजः । तया सहाऽऽरुह्य वशां[13] प्रतस्थे स्वगृहं प्रति ॥ ४९३ ॥
उल्लुलुध्वनिना[14] तूर्यनादेन च महीयसा । ऊर्ध्वकर्णिताऽर्यमहरिर्जगाम[15] स्वगृहं हरिः ॥ ४९४ ॥
तदाऽज्ञासीद्धयग्रीवस्तद्वृत्तं चरचक्षुषा । अग्रेऽपि सिंहकथया क्रुद्धश्चुक्रोध चाधिकम् ॥ ४९५ ॥
एवं च दध्यौ ज्वलनजटिना मयि सत्यपि । स्त्रीरत्नं दीयतेऽन्यस्मै रत्नं रत्नाकरे हि यत् ॥ ४९६ ॥
तस्या दातुरुपादातुस्तस्य चान्ते व्रजत्वसौ । तां कन्यां याचितुं दूतो दूतो हि प्रथमो नये ॥ ४९७ ॥
एवं विमृश्य मनसाऽनुशिष्य च रहः स्वयम् । व्यसृजन्नूतनं दूतं स पोतनपुरे पुरे ॥ ४९८ ॥
स दूतः सत्वरं गत्वा समीरणकुमारवत्[16] । वेश्म ज्वलनजटिनः प्रविवेशेत्युवाच च ॥ ४९९ ॥
दक्षिणभरतक्ष्मार्धं लोकार्धमिव वज्रिणः । प्रशासितुर्हयग्रीवस्याऽऽज्ञया त्वां वदाम्यदः ॥ ५०० ॥
तव स्वयम्प्रभानाम कन्यारत्नं गृहेऽस्ति भोः ! । तां नत्वा स्वामिने देहि रत्नं नान्यस्य भारते ॥५०१॥
स्वामी वः सकुटुम्बानामश्वग्रीवः सुताऽपि तत् । तस्याऽस्तु दीयते हन्त ! किं शिरो नयने विना ? ॥५०२॥
अश्वग्रीवं पुराऽऽराद्धं पुत्र्यदानात् प्रकोपयन् । किं हारयसि फूत्कृत्य[17] त्वमहो ! ध्मातकाञ्चनम्[18] ? ॥५०३॥

---

१ आलिङ्गितौ । २ मैनाको नाम पर्वतः । ३ निवासं चक्रुः । ४ प्रेषयामास । ५ 'कृ' धातोः प्रेरणायां ह्यस्तनी-अन्यपुरुषद्विवचनम् । ६ 'धवला' भाषायाम्–'धोळ' इति प्रसिद्धम् । ७ शिक्षकगुरुलीलया वृद्धस्त्रीभिः निर्मितानि । * "आद्दतो° सङ्ख° ॥ ८ अनुवरः, भाषायाम् 'अणवर' इति । ९ भाषायाम् 'मायरु' इति प्रसिद्धम् । १० उपविष्टौ । ११ यज्ञहविर्द्रव्यैः । † पिप्पला° सं० ॥ १२ वेदिमध्ये । १३ हस्तिनीम् । १४ उल्लुलुः–मङ्गलध्वनिः । १५ ऊर्ध्वकर्णाः अर्यम्णः–सूर्यस्य हरयः–अश्वाः येन सः, एतद् हरेः विशेषणम् । १६ वायुकुमारवत् । १७ भाषायाम्–'फूंक मारीने' । १८ अग्नितापितसुवर्णम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्युक्तस्तेन दूतेनोवाच ज्वलनजट्यपि । दत्ता कन्या त्रिपृष्ठाय कन्यादानं सकृत् खलु ॥ ५०४ ॥
अन्यस्यापि प्रदत्तस्य वस्तुनः स्वामिता न हि । किं पुनः कुलकन्याया विचारयतु स स्वयम् ॥ ५०५ ॥
इत्युक्तः सोऽग्निजटिना दूतोऽन्तःकलुषः खलु । उप[1]त्रिपृष्ठमगमन्नि[2]सृष्टार्थो हि स प्रभोः ॥ ५०६ ॥
त्रिपृष्ठं चेत्यभाषिष्ट समादिशति मद्गिरा । क्ष्मामण्डलाऽऽखण्डलस्त्वामश्वग्रीवो जगज्जयी ॥ ५०७ ॥
असदर्हा कन्यकेयमज्ञानाददे त्वया । विमुग्धपथिकेनेव राजोद्यानतरोः फलम् ॥ ५०८ ॥
ईशोऽहं वः सबन्धूनां रक्षिताः स्थ चिरं मया । तत् कन्यां मुञ्च भृत्यानां प्रमाणं स्वामिशासनम् ॥५०९॥
विकटभ्रकुटीभङ्गभीमभालस्थलस्ततः । रक्तेक्षण-कपोलश्रीस्त्रिपृष्ठः प्रत्युवाच तम् ॥ ५१० ॥
स एवं जगति न्यायं प्रवर्तयति ते प्रभुः । अ[4]ग्रेगूरिव लोकानामहो ! तस्य कुलीनता ॥ ५११ ॥
तेन स्वविषये मन्ये विध्वस्ताः कुलयोषितः । मार्जा[5]रयूनः पुरतः किं दुग्धमवशिष्यते ? ॥ ५१२ ॥
अस्मासु स्वामिता तस्य कुतो हन्ताऽमुना पथा ? । अन्यत्रापि स्वामिताऽस्य गैत्वर्यैवाचिरादपि ॥ ५१३ ॥
स शालिभोजनस्येव तृप्तवान् जीवितस्य चेत् । स्वयम्प्रभामुपादातुं तदत्राऽऽगच्छतु स्वयम् ॥ ५१४ ॥
दूतत्वेन न वध्योऽसि गच्छ मा तिष्ठ सम्प्रति । तमेव हि हनिष्यामो हयग्रीवमिहाऽऽगतम् ॥ ५१५ ॥
इत्युक्तो विष्णुना दूतः प्र[6]तोदेनेव ताडितः । गत्वा शीघ्रं सर्वमाख्यदश्वग्रीवाय भूभुजे ॥ ५१६ ॥
तदाकर्ण्य हयग्रीवो लोहितायितलोचनः । प्रस्फुरदंष्ट्रि[7]काकेशो दशनैरधरं दशन् ॥ ५१७ ॥
वेपमानवपुर्भीमभ्रकुटीविकटा[8]लिकः । विद्याधरवरानेवं सावज्ञा-कोपमादिशत् ॥ ५१८ ॥ युग्मम् ॥
अहो ! दैवेन दुर्बुद्धिर्दत्ताऽऽग्निजटिनः खलु । कृक[9]लास इवाऽर्कस्य यः स्यादभिमुखो मम ॥ ५१९ ॥
आभिजात्यमहो ! तस्य कीदृशं ? यो विहाय माम् । स्वसुतापतिपुत्रेणाऽऽत्मकन्यां पर्यणाययत् ॥५२०॥
मूर्खो मुमूर्षुरेकः स तावज्ज्वलनजट्यहो ! । प्रजापतिर्द्वितीयोऽन्यः सापत्नभगिनीसुतः ॥ ५२१ ॥
अपरश्च पितुः शालः स्वज्ञातेयेन निस्त्रपाः । मां प्र[10]त्यारम्भमिच्छन्ति शृगाला इव जा[11]गरम् ॥५२२॥ ॥ युग्मम् ॥
विद्रावयत तान् गत्वा पवनास्तोयदानिव । शार्दूला इव हरिणान् हर[12]यः कुञ्जरानिव ॥ ५२३ ॥
अथ विद्याधराः सर्वे रणक[13]ण्डूलबाहवः । तया स्वाम्याज्ञयाऽहृष्यंस्तृषिता इव वारिणा ॥ ५२४ ॥
पृथक् पृथग् यु[14]द्धप्रतिज्ञां कुर्वाणा भुजशालिनः । स्फोटयन्त इव दिवं भुजास्फोटोद्भवै रवैः ॥ ५२५ ॥
उक्त्वा मित्रेष्विवाऽमित्रेष्वपि सङ्ग्रामकौतुकात् । मम प्राग् मा परो जैषीदित्यन्योऽन्यमतित्वराः ॥५२६॥
कशाभिस्ताडयन्तोऽश्वान् प्रेरयन्तो य[15]तैर्गजान् । प्राजन्तः प्रा[16]जनैर्धुर्या[17]न् निघ्नन्तो यष्टिभिर्मर्या[18]न् ॥५२७॥
नर्तयन्तो निशातासीन् स्फारयन्तः स्फु[19]रान् मुहुः । सज्जयन्तश्च तूणीरान् वादयन्तो धनुर्गुणान् ॥५२८॥
भ्रामयन्तो मुद्गरांश्च चालयन्तो महागदाः । स्फाटयन्तस्त्रि*शैल्यांश्च दधानाः परिघानपि ॥ ५२९ ॥
केऽपि खेन समापेतुर्भुवा केऽपि च कौतुकात् । प्रापुश्च पोतनपुरमश्वग्रीवस्य ते भटाः ॥ ५३० ॥
॥ षड्भिः कुलकम् ॥
तेषां कलकलं श्रुत्वा दूरतोऽपि प्रजापतौ । किमेतदिति संभ्रान्तेऽवादीज्ज्वलनजट्यदः ॥ ५३१ ॥
अमी खलु हयग्रीवेणाऽऽदिष्टाः सुभटा इह । आयान्त्यायान्तु यूयं तु प्रेक्षध्वं मम कौतुकम् ॥५३२॥

१ त्रिपृष्ठसमीपम् । २ उभयपक्षयोः अभिप्रायं संबुध्य स्वप्रतिभया प्रतिवक्ति संदिष्टः स्वयं च कार्याणि करोति सः निसृष्टार्थः । ३ 'यूयम्' इति शेषः । ४ अग्रेगूः–अग्रणीः । ५ गमनशीला–नाशशीला । ६ भाषायाम् 'परोणो' नामकं वृषभादिताडन-साधनम् । ७ भाषायाम्–'दाढीना केशो' । ८ अलिकम्–कपालम् । ९ कृकलासः–'काकीडो' इति भाषायाम् । १० प्रत्यारम्भः–संग्रामः । ११ जागरः–सिंहः । १२ सिंहाः । १३ कण्डूलम्–'खंजवाळवाळुं'–'चळवाळुं' इति भाषायाम् । १४ युद्धप्रतिज्ञाम् । १५ यताः–अङ्कुशाः । १६ प्राजनाः–'परोणा' इति भाषायाम् । १७ बलीवर्दान् । १८ उष्ट्रान् । १९ स्फुराः 'ढाल' इति भाषायाम् । * °स्त्रिशल्लीश्च सं० का० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मा त्रिपृष्ठो माऽचलो वा संप्रहार्षीन्ममाऽग्रतः । इत्युत्सुकः परिकरं बद्ध्वोत्तस्थौ रणाय सः ॥ ५३३ ॥
प्रजहुर्युगपत्तस्मिन्नश्वग्रीवभटाः क्रुधा । स्वपक्षे हि विपक्षस्थे स्यादमर्षो विशेषतः ॥ ५३४ ॥
निरास तेषां शस्त्राणि शस्त्रैर्ज्वलनजट्यपि । अपवादैरिवोत्सर्गान् सोऽपवादबहिष्कृतः ॥ ५३५ ॥
उपदुद्राव तान् सर्वान् निशातशरवृष्टिभिः । स्तम्बेरमानिवोत्पातमेघः करकवृष्टिभिः ॥ ५३६ ॥
विद्याबलाद् दोर्बलाच्च तेषां दर्पं चिरोद्भवम् । जहार ज्वलनजटी वार्तिकः फणिनामिव ॥ ५३७ ॥
इत्यभाषत तानग्निजटी द्राग् यात यात रे ! । निर्नाथान् वः समायातान् वराकान् को हनिष्यति ? ॥ ५३८ ॥
मध्येकृत्य हयग्रीवं नाथमायात पर्वते । रथावर्त्ते वयमपि समेष्यामोऽचिरादपि ॥ ५३९ ॥
तेनैवमुक्ताः सावज्ञं हयग्रीवभटा द्रुतम् । काकनाशं प्रणेशुस्ते प्राणानादाय भीरवः ॥ ५४० ॥
मषीलिप्तैरिवामन्दमन्दाक्षमलिनैर्मुखैः । तेऽपि गत्वा तदाचख्युर्मयूरग्रीवसूनवे ॥ ५४१ ॥
हुताशन इवाऽऽहुत्या तद्वचोभिरदीप्यत । सद्यो नीलाञ्जनासूनुरक्षय्यभुजविक्रमः ॥ ५४२ ॥
कोपाऽरुणकरालाऽक्षः स रक्ष इव भीषणः । सामन्ताऽऽमात्यसेनानीप्रभृतीनेवमादिशत् ॥ ५४३ ॥
सर्वे सर्वाभिसारेण भोः समागच्छत द्रुतम् । चलत्विदानीं नः सैन्यमुद्वेल इव सागरः ॥ ५४४ ॥
सत्रिपृष्ठाऽचलं साग्निजटिनं तं प्रजापतिम् । संहराम्येष समरे द्राग् धूमो मशकानिव ॥ ५४५ ॥
इत्युक्तवन्तं सामर्षमश्वकन्धरमुद्धुरम् । धीगुणग्रामधामोचे सचिवग्रामणीरिदम् ॥ ५४६ ॥
त्रिखण्डं भरतं स्वामी लीलयैवाऽजयत् पुरा । कीर्त्यै लक्ष्म्यै च तज्जन्ये धुरि जातोऽसि दोष्मताम् ॥ ५४७ ॥
इदानीमेकसामन्तविजयायोद्यतः स्वयम् । कां कीर्तिमथ कां लक्ष्मीमर्जयिष्यति नः प्रभुः ? ॥ ५४८ ॥
न्यूनस्य विजयेऽपि स्यान्नोत्कर्षः कोऽपि दोष्मताम् । का श्लाघा हरिणवधे हरेः करिविदारिणः ॥ ५४९ ॥
न्यूनेन विजये दैवात् सर्वोऽप्येकपदे व्रजेत् । पूर्वाऽर्जितो यशोराशिर्विचित्रा हि रणे गतिः ॥ ५५० ॥
सिंहवध-चण्डसिंहधर्षणप्रत्ययादपि । सत्यनैमित्तिकगिरा तत्र शङ्काऽऽस्पदं महत् ॥ ५५१ ॥
षाड्गुण्यादासनगुणो धर्तुमत्रोचितः प्रभोः । महागजोऽपि ह्यज्ञात्वा धावन् पङ्के निमज्जति ॥ ५५२ ॥
सोऽर्भस्तु रभसाकारी कचिच्छरभवद् द्रुतम् । उत्पत्य भङ्क्ष्यते सेत्स्यत्यासीनस्यापि ते हितम् ॥ ५५३ ॥
तितिक्षितुमथेदृक्षं न क्षमोऽसि क्षमापते ! । आदिश्यतां तर्हि सैन्यं त्वत्सैन्यं हि सहेत कः ? ॥ ५५४ ॥
तथ्यां पथ्यां च तद्वाचमवामन्यत भूपतिः । मन्म्यावन्तर्मधुनीव चेतनास्तु कुतो नृणाम् ? ॥ ५५५ ॥
कातरोऽसीति सचिवं तं निर्भर्त्स्य सरोषणः । क्षणेन वादयामासाऽऽयुक्तैः प्रस्थानदुन्दुभिम् ॥ ५५६ ॥
तेन दुन्दुभिशब्देन सद्यः सर्वेऽपि सैनिकाः । एयुः सर्वाभिसारेण दूरात् पार्श्वस्थिता इव ॥ ५५७ ॥
स्नानागारं हयग्रीवो गत्वा भृङ्गारवारिभिः । गङ्गातरङ्गैरुत्तुङ्गैः सस्नौ हंस इवाऽमलैः ॥ ५५८ ॥
उन्मृष्टाङ्गो दुकूलेन दिव्यधूपैश्च धूपितः । शुभ्रीकृताङ्गो गोशीर्षचन्दनैर्नन्दनाऽऽहृतैः ॥ ५५९ ॥
संवीतसदशश्वेतवस्त्रो बद्धाऽसिधेनुकः । पुरोधःकृततिलकः स राजतिलकस्ततः ॥ ५६० ॥
वैतालिकैः स्तूयमानो विशदच्छत्रचामरः । मदसिक्तावनितलमारुरोह महागजम् ॥ ५६१ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
दुर्वारैर्वारणैरश्वै रथैश्च परिवारितः । प्रचचाल हयग्रीवश्चलयन्नचलानपि ॥ ५६२ ॥

---

१ दूरीचकार । २ गजान् । ३ करकाः–'करा' इति भाषायाम् । ४ सर्पवशकारी गारुडिकः । ५ यथा काका नश्यन्ति तथा । ६ मन्दाक्षम्–लज्जा । * तद्वाचाभिः का० । ७ राक्षसः । ८ सर्वतः अभिमुखतया सर्वसामग्र्या वा । ९ ऊर्ध्ववेलायुक्तः–'वेला' भाषायाम् 'वेळ'–'भरती' इति । १० जन्यम्–युद्धम् । ११ बाहुबलवताम् । † °धा हारि° सं० । १२ एकपदे–शीघ्रम् । ‡ °का पदम्-सं० का । १३ बालकः त्रिपृष्ठः । १४ अपमानितां चकार । १५ 'मन्म्यौ अन्तर्मधुनि–इति विभागः । अन्तर्मधुनि मदिरायां पीतायाम् । ¶ °वं निर्भर्त्स्य रोमहर्षणः सं० । १६ भृङ्गारः–सुवर्णपात्रम् । § कृताङ्गरागो गो° सं० का० । १७ नन्दनवनादानीतैः । १८ असिधेनुका–छुरिका । १९ अचलाः–पर्वताः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गच्छतस्तस्य सहसोद्भूतचण्डानिलेन तु । छत्रस्याऽऽन्दोल्यमानस्य दण्डोऽभज्यत वृक्षवत् ॥ ५६३ ॥
अनोकहात् पुष्पमिव तारकेव नभस्तलात् । हयग्रीवशिरसस्तत् पपाताऽऽतपवारणम् ॥ ५६४ ॥
मदस्तदानीं करिणस्तस्य चाशुष्यदञ्जसा । सरसी ज्येष्ठमासीव शरदीव च कर्दमः ॥ ५६५ ॥
मोमूत्र्यते स्म तत्कालं कालभीत इव द्विपः । रराम विरसं चापि नोद्धुरं च शिरो दधौ ॥ ५६६ ॥
रजोवृष्टिरसृग्वृष्टिर्दिवा नक्षत्रवीक्षणम् । उल्कापातस्तडित्पात इत्युत्पाताश्च जज्ञिरे ॥ ५६७ ॥
दीनस्वरं प्ररुदितं सारमेयैरुदाननैः । आविर्भूतं च शशकैश्चिल्लीभिर्भ्रान्तमम्बरे ॥ ५६८ ॥
काकोलैश्चक्रिरे रोला गृध्रैरुपरि जृम्भितम् । स्थितं ध्वजे कपोतेनेत्यासन्नशकुनान्यपि ॥ ५६९ ॥
नाश्वग्रीवो दुर्निमित्ताऽशकुनान्यप्यजीगणत् । यमपाशैरिवाऽऽकृष्टः किं तु प्रायादनर्गलः ॥ ५७० ॥
विद्याधरैर्गतोत्साहैर्नृपैरप्यरणोत्सुकैः । आकृष्टैर्विष्टिभिरिव स्वाधीनैरप्यवेक्ष्यत ॥ ५७१ ॥
संपूर्णसैन्यः कतिभिः प्रयाणैराससाद सः । परिष्कृतरथावर्तं तं रथावर्तपर्वतम् ॥ ५७२ ॥
उपत्यकायां तस्याद्रेर्विजयाढ्यगिरेरिव । विद्याधरस्थलान्यूपुरश्वग्रीवस्य शासनात् ॥ ५७३ ॥
इतश्च पोतनपुरे स विद्याधरपुङ्गवः । उवाच ज्वलनजटी बलभद्रबलानुजौ ॥ ५७४ ॥
नैसर्गिक्याऽपि वः शक्त्या प्रतिमल्लो न कश्चन । प्रेमभीरुर्वदामीदं प्रेमास्थानेऽपि भीप्रदम् ॥ ५७५ ॥
स विद्यादुर्मदो दोष्मानूष्मलोऽनेकयुज्जयी । हयग्रीवः खलु दुर्ग्रीवः शङ्कनीयो न कस्य हि ? ॥ ५७६ ॥
विद्यां विना हयग्रीवादन्यूनं युवयोरपि । तथापि तं युवां हन्तुं समर्थौ परमर्थये ॥ ५७७ ॥
युवाभ्यामत्र कर्तव्यो विद्यासिद्धौ श्रमो मनाक् । यथा विद्याकृतं मायायुद्धं तस्य वृथा भवेत् ॥ ५७८ ॥
तथेति प्रतिपेदानौ शुचिवस्त्रौ समाहितौ । विद्याः सोऽन्वशिषत् प्रीतमना ज्वलनजट्यथ ॥ ५७९ ॥
मन्त्रबीजाक्षराण्यन्तः स्मरन्तौ भ्रातरावुभौ । अत्यवाहयतां सप्तरात्रमेकाग्रमानसौ ॥ ५८० ॥
सप्तमे दिवसे जातकम्पे फणिपतौ सति । ध्यानाऽऽरूढौ बलोपेन्द्रौ विद्याः समुपतस्थिरे ॥ ५८१ ॥
गारुडी रोहिणी चैव भुवनक्षोभणी तथा । कृपाणस्तम्भनी स्थामशुम्भनी व्योमचारिणी ॥ ५८२ ॥
तमिस्रकारिणी सिंहत्रासिनी वैरिमोहिनी । वेगाऽभिगामिनी दिव्यकामिनी रन्ध्रवासिनी ॥ ५८३ ॥
कृशानुवर्षिणी नागवासिनी वारिशोषिणी । धरित्रीदारिणी चक्रमारणी बन्धमोचनी ॥ ५८४ ॥
विमुक्तकुन्तला नानारूपिणी लोहशृङ्खला । कालराक्षसिका छन्नदशदिक् तीक्ष्णशूलिनी ॥ ५८५ ॥
चन्द्रमौलिश्च विजयमङ्गला ऋक्षमालिनी । सिद्धताडनिका पिङ्गनेत्रा वचनपेशला ॥ ५८६ ॥
ध्वनिताहिफणा घोरबोधिणी भीरुभीषिणी । विद्या इत्यादयः प्रोचुर्वशे स्मो युवयोरिति ॥ ५८७ ॥
पारयामासतुर्ध्यानं सिद्धविद्यावुभावपि । पुण्याऽऽकृष्टं स्वयं सर्वं किं किं न स्यान्महात्मनाम् ? ॥५८८॥
अथ त्रिपृष्ठः सज्येष्ठः श्रेष्ठेऽह्नि विपुलैर्बलैः । प्रजापतिज्वलनजट्यादिभिः प्रास्थितोच्चकैः॥५८९॥
तुङ्गैस्तुरङ्गै रङ्गद्भिर्वेगिभिर्गरुडैरिव । जयश्रीवेश्मभिर्वैर्यास्कन्दनैः स्यन्दनैरपि ॥ ५९० ॥
मदोद्धुरैः कुञ्जरैरप्यतिनिर्जरकुञ्जरैः । शार्दूलैरिव चोत्फालगामिभिर्वरपत्तिभिः ॥ ५९१ ॥
नभश्चरैर्भूचरैश्च द्यां क्ष्मां च छादयन् भृशम् । शकुनैरनुकूलैः प्रेर्यमाणः स्वजनैरिव ॥ ५९२ ॥

---

१ चण्डानिलेन–प्रचण्डपवनेन । २ वृक्षात् । ३ उन्नतम् । ४ असृग्–रुधिरम् । ५ ऊर्ध्वमुखैः श्वानैः । ६ चिल्ली 'समळी' इति भाषायाम् । 'चिल' इति हिन्दीभाषायाम् । ७ काकोलाः–वनकाकाः । ८ रोला–'रडारोळ' इति भाषायाम् । ९ आसन्+अशकुनानि–अपशकुनानि । १० उद्धतः । ११ विष्टिः–नरकं हठात् क्षेपः । १२ परिष्कृतः रथावर्तः रथभ्रमणमार्गः यत्र तम् । १३ उपत्यका–तलहटी । १४ नैसर्गिकी–सहजा । १५ प्रचण्डः । १६ 'अनेकयुध्+जयी' इति विभागः । † सिद्धौ–सं० । १७ स्वीकृतवन्तौ । १८ समागताः । ‡ सिंहवाहिनी–सं० । ‖ °त्रीदारणी नागबन्धनी बन्ध°–सं० । ¶ °चुर्वशाः स्मो–सं० । १९ प्रास्थित–प्रस्थानं कृतवान् । २० आस्कन्दनम्–पराभवः । २१ देवहस्तितोऽपि अधिकशोभायुतैः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तूर्यनादैर्दिशो भिन्दन् हेषा[1]-बृंहितबृंहितैः । सैन्यप्राग्भारभारेण कम्पयंश्च वसुन्धराम् ॥ ५९३ ॥
हरिः स्वदेशसीमान्ते शिलास्तम्भमिवोच्चकैः । भूक्षोदकरथावर्तो रथावर्ताद्रिमासदत् ॥ ५९४ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

रणतूर्याण्यवाद्यन्त सैन्ययोरुभयोरपि । दिवौकस[2] इवाह्वातुं युद्धसभ्या भवन्त्विति ॥ ५९५ ॥
रणसोत्कण्ठयोरुच्चैस्त्रिपृष्ठ-हयकण्ठयोः । [*]समापन्नान्यनीकानि देव-दैत्येन्द्रयोरिव ॥ ५९६ ॥
तेषां [3]संनह्यतामुच्चैः सैन्यानां तुमुलो दिशः । तुरङ्गमचमूक्षुण्णक्षोणिरेणुरिवारुणत्[4] ॥ ५९७ ॥
सैन्यकेतुस्थितैः सिंहैः शरभैर्द्वीपिभि[5]र्गजैः । प्लवङ्गैश्च रराज द्यौररण्यानीव[6] भीषणा ॥ ५९८ ॥
बन्धवो नारदस्येव कलिकेलिकुतूहलाः । संशप्तका[7]श्च संचेरुर्भटोत्साहनकर्मठाः ॥ ५९९ ॥

अथोपचक्रमेऽनीकमग्रानीकैर्द्वयोरपि । द्यां कुर्वद्भिः शरश्रेण्या प्रोत्पतत्पतगामिव[8] ॥ ६०० ॥
अग्रानीकैस्तयोर्युद्धे शस्त्राग्निरुदभून्महान् । दवाग्निरिव शाखाग्रैः संघर्षेऽरण्यवृक्षयोः ॥ ६०१ ॥
शस्त्राशस्त्रि प्रवृत्तानां भटानाममितौजसाम् । संफेटोऽभूद् रणमुखे जलधौ यादसामिव ॥ ६०२ ॥
अश्वग्रीवस्याग्रसैन्यं त्रिपृष्ठस्याग्रसेनया । चक्रे पराङ्मुखं वार्द्धिवेलयेव नदीजलम् ॥ ६०३ ॥
अग्रसैन्यस्य भङ्गेनाकुल्यग्रस्येव तत्क्षणात् । विद्याधरवरा वाजिग्रीवगृध्राः[9] प्रचुक्रुधुः ॥ ६०४ ॥
तेऽभवन्नाहवो[10]त्ताला वेतालाश्चण्डबाहवः । पिशाचा यमसाचिव्यलब्धमुद्रा इवोच्चकैः ॥ ६०५ ॥
विकटोत्कटदन्तानि पृथुवक्षस्तटानि च । श्यामभीमानि रक्षांसि शृङ्गाणीवाञ्जनागिरेः ॥ ६०६ ॥
लाङ्गूलै[11]र्लाङ्गलाऽऽपातस्फाटितक्षोणिमण्डलाः । मण्डलाग्र[12]क्रियाकारिनखाः केसरिणोऽपि च ॥ ६०७ ॥
शुण्डादण्डैस्तृणपूललीलोल्लालितदन्तिनः । उत्पादका[13]श्च शरभा उच्छृङ्गा इव पर्वताः ॥ ६०८ ॥
पुच्छैराच्छोटयन्तः क्ष्मां [14]मोटयन्तो रदैर्द्रुमान् । सिंहस्तम्बेरमाकारकरालाश्च वरालकाः ॥ ६०९ ॥
अन्येऽपि द्वीपि-शार्दूल-वृषदंश[15]-वृकादयः । क्रव्यादाः श्वापदा[†]स्तिर्यग्भूता इव निशाचराः ॥ ६१० ॥
॥ षड्भिः कुलकम् ॥

कुर्वन्तो भीषणान् नादानाह्वयन्त इवान्तकम् । वरूथिनीं[16] त्रिपृष्ठस्य ते वेगादुपदुद्रुवुः ॥ ६११ ॥

अथ म्लानमुखाः सर्वे भग्नोत्साहाः क्षणादपि । एवं विचिन्तयामासुः प्राजापत्यस्य सैनिकाः ॥६१२॥
मार्गभ्रान्ता वयमिह [17]परेतनगरे किमु । राक्षसानां किमावासे विन्ध्यस्थल्यां किमागताः ! ॥ ६१३ ॥
भूतान्येतानि सत्त्वानि क्रूराण्यश्वगला[18]ऽऽज्ञया । संप्रहर्तुं सहाऽस्माभिः स्वस्थानेभ्यः किमाययुः ! ॥६१४॥
मन्ये कन्यानिमित्तो नः प्रलयोऽयमुपस्थितः । स्थितं नः पौरुषेणाऽद्य त्रिपृष्ठश्चेत् स्वयं जयी ॥ ६१५ ॥
एवं चिन्ताप्रपन्नेषु तेषु व्यापन्नबुद्धिषु[19] । पराङ्मुखीभवत्सूचे[20] त्रिपृष्ठं वह्निजव्यदः ॥ ६१६ ॥
विद्याधराणां मायेयं न किञ्चित् पारमार्थिकम् । वेद्यहं सर्पघर्षं हि सर्पो जानाति नाऽपरः ॥ ६१७ ॥
अशक्तिः स्वयमाख्याता स्वस्यैभिर्मन्दबुद्धिभिः । शक्तः क एवं कुरुते बालस्येव बिभीषिकाम् ॥ ६१८ ॥
तदुत्तिष्ठ महावीर ! समारोह महारथम् । उत्तुङ्गादवरोहन्तु मानशैलाच्च विद्विषः ॥ ६१९ ॥

---

१ हेषा–अश्वशब्दः–'हणहणाट' इति भाषायाम् । बृंहितम्–गजगर्जनम् । २ स्वर्गवासिनः । * समनह्यन्तानीकानि–सं० का० ॥ ३ षष्ठीबहुवचनम् । ४ अवरोधको जातः । ५ द्वीपिनः–चित्रकाः 'दीपडा'–'चित्ता' इति भाषायाम् । ६ दीर्घमरण्यमरण्यानी । ७ युद्धाद् अनिवर्त्तकाः । ८ यत्र पक्षिण उड्डयन्ते तादृशाऽऽकाराम् । ९ गृध्राः–संबन्धिनः । १० आहवः युद्धम्, तत्र उत्ताला उत्कटाः । ११ लाङ्गूलम्–पुच्छम्, तद्रूपं लाङ्गलम्–हलम्, तस्य आपातः । १२ मण्डलाग्रम्–असिः–तरवारिः । १३ ऊर्ध्वपादाः । १४ मोटयन्तः–भाषायाम् 'मरडी नाखता' । १५ वृषदंशः–बिलाडः । † °पदाः स्वैरं तिर्यग्गता निशा°–सं० ॥ १६ सेनाम् । १७ प्रेतनगरे । १८ अश्वगलः–अश्वग्रीवः । १९ नष्टबुद्धिषु । २० 'पराङ्मुखीभवत्सु+ऊचे' इति विभागः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

त्वयि च स्यन्दनारूढे देवेऽपि च दिवाकरे । समुद्यतकरे[1] कस्य तेजो जृम्भिष्यते[2] ननु ॥ ६२० ॥
इत्युक्ते वह्निजटिना सैन्यमाश्वासयन् निजम् । त्रिपृष्ठो रथिनां श्रेष्ठो[3]ऽध्यारुरोह महारथम् ॥ ६२१ ॥
रथं सांग्रामिकं रामोऽप्यारुरोह महानुजः । न मुञ्चत्यन्यदाऽप्येकं सोऽनुजं किं पुनर्युधि ॥ ६२२ ॥
विद्याधराश्च ज्वलनजटिप्रभृतयो रथान् । समारुरुहुरत्युच्चैः सिंहा इव गिरिस्थलीम् ॥ ६२३ ॥
पुण्याकृष्टास्ततो देवास्त्रिपृष्ठाय समार्पयन् । शार्ङ्गं नाम धनुर्दिव्यं गदां कौमोदकीमपि ॥ ६२४ ॥
पाञ्चजन्याभिधं शङ्खं कौस्तुभं नामतो मणिम् । खड्गं च नन्दकं नाम वनमालेति दाम च ॥ ६२५ ॥
ददुश्च बलभद्राय हलं संवर्तकाभिधम् । सौनन्दं नाम मुसलं चन्द्रिकानामिकां गदाम् ॥ ६२६ ॥
तांश्च दृष्ट्वा परे वीराः सर्वे सर्वात्मनाधिकम् । संभूय समयुध्यन्त* युध्यन्तकसुता[4] इव ॥ ६२७ ॥
शङ्खरत्नं पाञ्चजन्यं जन्यनाटकनान्दिकाम् । त्रिपृष्ठो वादयामास रवाऽऽपूरितदिङ्मुखम् ॥ ६२८ ॥
संवर्तपुष्करावर्त[5]गर्जितेनेव तस्य तु । क्षुभ्यन्ति स्म प्रणादेन हयकन्धर[6]सैनिकाः ॥ ६२९ ॥
केषाञ्चित् पेतुरस्त्राणि पत्राणीव महीरुहाम् । सापस्मारा[7] इवाऽन्ये तु स्वयं पेतुर्महीतले ॥ ६३० ॥
भीरवः फेरव[8] इव प्रणेशुः केऽपि च द्रुतम् । नेत्रे पिधाय लीत्वा[9] च केऽप्यस्थुः शशका इव ॥ ६३१ ॥
उलूकवत् प्रविविशुः कन्दरासु केचन । केचिदाराटिं[10] चक्रुः शङ्खा इव वारिबहिष्कृताः[11] ॥ ६३२ ॥
अभूतपूर्वमम्भोधिसंशोषणमिवात्मनः । सैन्यभङ्गं समाकर्ण्य हयग्रीवोऽब्रवीन्निजान् ॥ ६३३ ॥
क्व रे! विद्याधरा! याथ त्रस्ताः शङ्खध्वनेरपि । वृषभध्वनितस्[12]येव मृगप्रभृतयो वने ॥ ६३४ ॥
को दृष्टो विक्रमस्तस्य त्रिपृष्ठस्याऽचलस्य वा । यत्त्रस्ताः पशुवद् यूयं चञ्चापुरुष[13]दर्शनात् ॥ ६३५ ॥
नानारणजयोद्भूतं युष्माभिर्हारितं यशः । श्रीच्छिदेऽञ्जनलेशो[14]ऽपि धौतस्य श्वेतवाससः ॥ ६३६ ॥
व्यावर्तध्वमिदं वो हि दैवात् स्खलितमागतम् । नभश्चराणां भवतां केऽपरे भूमिचारिणः ? ॥ ६३७ ॥
युध्यध्वं माऽथवा यूयं सभ्यीभवत केवलम् । अहं खलु हयग्रीवः साहाय्यार्थी रणे न हि ॥ ६३८ ॥
इत्युक्ता हयकण्ठेन नमत्कण्ठास्त्रपावशात् । विद्याधरा ववलिरे† शैलस्खलितसिन्धुवत् ॥ ६३९ ॥
रथस्थो व्योमयानेन क्रूरग्रह इवाऽपरः । द्विपो ग्रसितुमभ्यग्रो हयग्रीवोऽप्यथाचलत् ॥ ६४० ॥
ववर्ष बाणैः पाषाणैः शल्यैरस्त्रैरथापरैः । अधि[15]त्रिपृष्ठसैन्यं सोऽस्त्रमेघ इव नूतनः ॥ ६४१ ॥
अस्त्रवृष्ट्या तयाऽक्राम्यत्‡ त्रैपृष्ठमखिलं बलम् । धीरा अपि हि किं कुर्युर्भूचरा व्योमचारिषु ? ॥ ६४२ ॥
राम-त्रिपृष्ठ-ज्वलनजटिनः स्यन्दनस्थिताः । उत्पेतुर्नभसा सद्यः समं विद्याधरैर्निजैः ॥ ६४३ ॥
नभस्युभयतो विद्याधरा युयुधिरेऽधिकम् । विद्याशक्तिं दर्शयन्तो गुरुष्विव परस्परम् ॥ ६४४ ॥
भूचरा भूचरैः सार्धं सैन्ययोरुभयोरपि । क्रुध्यन्तः समयुध्यन्त गजा इव गजैर्वने ॥ ६४५ ॥
विद्याधराणामन्योऽन्यं शस्त्रैः प्रहरतां भृशम् । अदृष्टपूर्वाऽसृग्वृष्टिरुत्पातकृदिवाभवत् ॥ ६४६ ॥
अन्योऽन्याऽऽघातशब्देन शब्दायितनभस्तलम् । दण्डसंगीतवत्[16] केश्चिद् दण्डादण्डि प्रचक्रमे ॥ ६४७ ॥
खड्गदण्डैः सदोर्दण्डचण्डिमानश्च केचन । डिण्डिमानिव कोणेन[17] विपक्षान् पर्यताडयन् ॥ ६४८ ॥

---

१ सज्जीकृतहस्ते । २ वृद्धिं प्राप्स्यति । ३ श्रेष्ठः । * °त पितृवैराः सुता–सं० ॥ ४ 'युधि+अन्तकसुता' इति पदविभागः । अन्तकः यमः । ५ संवर्तपुष्करावर्तः–प्रलयकालिकस्तन्नामा मेघः । ६ हयकन्धरः–अश्वग्रीवः । ७ अपस्मारो नाम विशेषप्रकारको वातव्याधिः, यत्र देहकम्पपूर्वकं मूर्च्छा आगच्छति । ८ फेरुः शृगालः । ९ दृष्टिपथातीता भूत्वा 'संताई जईने' 'छूपाई जईने' इति भाषायाम् । १० राटिं चक्रुः–भाषायाम्–'राडोपाडी' । ११ जलनिर्गताः । १२ अत्र हेत्वर्थद्योतकपञ्चम्यर्थेऽपि षष्ठी 'वृषभगर्जनात्' इत्यर्थः । १३ चञ्चापुरुषो नाम पक्षिभयजननाय कृषिक्षेत्रे ऊर्ध्वीकृतः तृणमयो वस्त्रमयो वा पुरुषाकृतिविशेषः–भाषायाम् 'चाडिया' इति प्रतीतिः । १४ कज्जललवोऽपि–भाषायाम् 'कालो डाघ' । † °रे वेलाऽवलितसिन्धु°–सं० ॥ १५ त्रिपृष्ठसैन्यस्य अधिउपरि–इत्यर्थः । ‡ °या क्रान्तं त्रै°–सं० ॥ १६ दण्डसंगीतम्–भाषायाम् 'दांडिया रास' इति । १७ कोणः–वीणावादनकाष्ठम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलन्तः केचिदन्योऽन्यमन्यजन्यजयाऽसहाः । स्फारानास्फोटयामासुः [1]स्फुरकान् कांस्यतालवत् ॥६४९॥
शक्तीः प्रचिक्षिपुः केऽपि सीमन्तितनभस्तलाः । तडत्तडिति कुर्वाणास्तमितस्तोयदा इव ॥ ६५० ॥
शल्यैः प्रववृषुः केचिदुरगैरिव दारुणैः । पत्रिभिः प्रस्फुरत्[2]पत्रैः पत्रि[3]राजैरिवापरे ॥ ६५१ ॥
*बले द्वयोरुत्पतितैः पतितैश्चैवमायुधैः । नानायुधमयीव द्यौर्धरित्रीवाऽभवत् तदा ॥ ६५२ ॥
सद्यश्छित्त्वा करोपात्तैः केऽपि प्रत्यर्थिमौलिभिः । अलक्ष्यन्त रणक्षेत्रे क्षेत्रपाला इवोद्भटाः ॥ ६५३ ॥
हेरम्बा[4] इव नागास्यैरश्वास्यैः किन्नरा इव । सद्यः कबन्धोपरिष्टात् पतितैः केऽपि रेजिरे ॥ ६५४ ॥
सद्यश्छिन्नैः परिकरे पतित्वाऽवस्थितैः क्षणम् । ना[6]भ्यास्यानीव भूतानि स्वशीर्षैः केऽपि चाऽऽबभुः ॥६५५॥
कबन्धा[5]स्ताण्डवं चक्रुः केषाञ्चिदपि दोष्मताम् । [7]सुरीस्वयंवरोद्भूतसम्पदेनेव भूयसा ॥ ६५६ ॥
शिरांस्यमुञ्चन् हुङ्कारान् केषाञ्चित् पतितान्यपि । कबन्धारोहणे मन्त्रानुद्गृणन्तीव सादरम् ॥ ६५७ ॥
एवं प्रवृत्ते समरे कल्पान्त इव दारुणे । प्रत्यश्वकन्धर[8]रथं त्रिपृष्ठः प्रैरयद्† रथम् ॥ ६५८ ॥
रामोऽपि प्रेरयन् र[9]थ्यान् रथिनामग्रणीरथ । ययौ स्नेहगुणाऽऽकृष्टस्त्रिपृष्ठरथसन्निधिम्‡ ॥ ६५९ ॥
हयग्रीवोऽपि संपश्यन्नारक्ताभ्यामतिक्रुधा । प्रसारिताभ्यां नेत्राभ्यां तौ पिपासन्निवाब्रवीत् ॥ ६६० ॥
प्रधर्षितश्चण्डसिंहो युवयोः कतरेण रे! । कतरः पश्चिमान्तस्थसिंहघातेन दुर्मदः ॥ ६६१ ॥
कतरः स्ववधायैव विषकन्यामिवोच्चकैः । कन्यां ज्वलनजटिनः पर्यणैषीत् स्वयम्प्रभाम् ॥ ६६२ ॥
कतरः स्वामिनमपि मूढधीर्मन्यते न माम् । कतरो दत्तफालो म[10]य्यादित्य इव वानरः ॥ ६६३ ॥
कुतो हेतोरियत्कालं सैन्यक्षय उपेक्षितः । कस्येदानीमवष्टम्भाद् युवां मां समुपस्थितौ ॥ ६६४ ॥
प्रति[11]ब्रूतमरे बालौ! युध्येथां च मया सह । क्रमेण युगपद् वापि सिंहेन कलभाविव ॥ ६६५ ॥
अथाऽचलकनिष्ठस्तमभाषिष्ट कृतस्मितः । अहमेव त्रिपृष्ठोऽस्मि कर्त्ता त्वद्दूतधर्षणम् ॥ ६६६ ॥
पश्चिमान्तहरिं हन्ता परिणेता स्वयम्प्रभाम् । अ[12]मन्ता स्वामिनं त्वां च चिरं च¶ त्वामुपेक्षिता ॥६६७॥
बलो नामाग्रजोऽयं मे बलेन बलसूदनः । प्रतिमल्लो न यस्यास्ति त्रैलोक्ये कीदृशो भवान् ॥ ६६८ ॥
अलं सैन्यक्षयेणेति तवाप्यभिमतं यदि । गृहाणास्त्रं महाबाहो! ममैवासि रणातिथिः ॥ ६६९ ॥
अस्त्वावयोर्द्वन्द्वयुद्धं पूर्यतां भुजकौतुकम् । सभ्यीभू§यावतिष्ठन्तु सैनिका उभयोरपि ॥ ६७० ॥
तथेति प्रतिपेदानौ हयग्रीव-बलानुजौ । वारयामासतुः सैन्यान्याहवाद् वेत्रपाणिभिः ॥ ६७१ ॥
न्यस्यैकं** ल[13]स्तके हस्तमपरं त्वटनी[14]तटे । चक्रेऽधिज्यं हयग्रीवो यमभ्रूभीषणं धनुः ॥ ६७२ ॥
रणश्रीकेलिसंगीततन्त्रीमिव धनुर्गुणम् । पाणिना वादयामास मयूरग्रीवनन्दनः ॥ ६७३ ॥
शा[15]र्ङ्गमारोपयामास शार्ङ्गपाणिरपि क्षणात् । द्विषां विनाशपिशुनं निशामत्स्यमिवोद्गतम् ॥ ६७४ ॥
वज्रनिर्घोषवद् घोरं मृत्योश्चाह्वानमन्त्रकम् । द्विषां बलहरं विष्णुर्धन्वघोषमकारयत्†† ॥ ६७५ ॥
बाणधेर्बाणमाकृष्य करण्डादिव पन्नगम् । चापे संधाय चाकर्णं चकर्ष हयकन्धरः ॥ ६७६ ॥
कटाक्षमिव कालस्य कल्पान्ताग्नेः शिखामिव । भा[16]भिर्ज्वलन्तं तं बाणमुल्बणं प्रमुमोच सः ॥ ६७७ ॥
तमापतन्तं बाणेन मध्ये मुक्तेन केशवः । चिच्छेदाञ्जलता‡‡च्छेदमविच्छेदपराक्रमः ॥ ६७८ ॥
प्रथमेनेव बाणेन लाघवादपरेण तु । हयग्रीवस्य धन्वाऽपि नि[17]चकर्त्ताचलानुजः ॥ ६७९ ॥

---

१ स्फुरकाः-फलकाः भाषायाम् 'ढाल' इति । २ पत्रम्-बाणाग्रम्, पक्षं च । ३ पत्रिराजः-गरुडः । * बलैर्द्वयो° सं० ॥ ४ गणपतयः । ५ कबन्धः-क्रियायुक्तं मस्तकरहितं शरीरम्-भाषायाम् 'धड' इति । ६ नाभौ आस्यं मुखं येषां तानि । ७ 'देवीस्वयंवर°' इत्यर्थः । ८ अश्वकन्धरः-हयग्रीवः । † °रयद् द्रुतम्-सं० ॥ ९ रथ्यान्-रथयुक्त-घोटकान् । ‡ °न्निधिः का० । १० मयि-मद्रूपे आदित्ये । ११ युवां प्रतिवचनं वदतम् । १२ अवगमयिता । ¶ च त्वमुपेक्षितः-सं० । § °भूयेऽव°-सं० का० ॥ ** °कं हस्तके-सं० ॥ १३ लस्तकम्-धनुर्मध्यम् । १४ अटनी-धनुषः अग्रम् । १५ शृङ्गनिर्मितं धनुः शार्ङ्गम् । †† °धनुर्घोष° सं० ॥ १६ भा-प्रभा । ‡‡ °छेदेऽश्रुल°-सं० का० ॥ १७ निचकर्त्त-चिच्छेद ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूयो भूयो हयग्रीवो धनुर्यद् यदुपाददे । तत् तत् त्रिपृष्ठश्चिच्छेद तन्मनोरथवच्छरैः ॥ ६८० ॥
पत्रिणाच्छिददेकेन ध्वजं प्रतिहरेर्हरिः । दूरं पर्यास चान्येन रथमेरण्डखण्डवत् ॥ ६८१ ॥
कुपितोऽथ हयग्रीवः समारुह्य रथान्तरम् । दूरादागाच्छरैर्वर्षन् धारासारैरिवाम्बुदः ॥ ६८२ ॥
न रथः सारथिर्नापि न त्रिपृष्ठो न चापरम् । अदृश्यत हयग्रीवशरदुर्दिनडम्बरे ॥ ६८३ ॥
निरास शरवृष्टिं तां त्रिपृष्ठः शरवृष्टिभिः । रश्मिच्छटाभिर्भगवानन्धकारमिवार्यमा ॥ ६८४ ॥

अथ क्रुद्धो हयग्रीवः सोदरामिव विद्युतः । वयस्यां कुलिशस्येव मारेरिव च मातरम् ॥ ६८५ ॥
जिह्वामिवाहिराजस्य शक्तिं शक्तिमतां वरः । समुत्चिक्षेप शैलेयीं शैलसारो महाभुजः ॥ ६८६ ॥
क्वणद्घर्घरिकाश्रेणिं कीनाशस्येव नर्तकीम् । राधाचक्रमिव स्तम्भेऽभ्रमयत् तां स मूर्धनि ॥ ६८७ ॥
विमानिभिर्दत्तमार्गां विमानभ्रंशभीरुभिः । अधित्रिपृष्ठं तामाशु सर्वस्थाम्ना मुमोच सः ॥ ६८८ ॥
दण्डं द्वितीयं दोर्दण्डं तृतीयं समवर्तिनः । त्रिपृष्ठोऽप्याददे दोष्णा रथात् कौमोदकीं गदाम् ॥ ६८९ ॥
तया जघान तां शक्तिमापतन्तीं बलानुजः । हस्तीव हस्तदण्डेन क्रीडाकारकभस्त्रिकाम् ॥ ६९० ॥
स्फुलिङ्गैरुल्बणैः सोल्काशतपातं वितन्वती । क्षणेन कणशो भूत्वा पपात भुवि लोष्टवत् ॥ ६९१ ॥
दन्तमैरावणस्येवोद्धृतमेकं भयानकम् । परिघं परिघेनाथ मुमोच हयकन्धरः ॥ ६९२ ॥
समापतन्तं तमपि गदयाऽखण्डयद्धरिः । महोरगमिव त्रोटिकोट्या पत्ररथेश्वरः ॥ ६९३ ॥
वज्राकरशिलासारं दंष्ट्रां पितृपतेरिव । ससारं तक्षकस्येव हयग्रीवोऽमुचत् गदाम् ॥ ६९४ ॥
अभाङ्क्षीदन्तरिक्षेऽपि मङ्क्षु तामप्यधोक्षजः । वालुकामोदकमिव कौमोदक्या महाभुजः ॥ ६९५ ॥
एवं भग्नेषु शस्त्रेषु विलक्षो वाजिकन्धरः । विधुरे बन्धुवद् वीरः पन्नगास्त्रमथासरत् ॥ ६९६ ॥
चापे संधाय नागास्त्रं मुमोचोदभवन्नथ । अनेकशः प्रस्फुटन्तो वल्मीकादिव पन्नगाः ॥ ६९७ ॥
धावन्तः स्फारफुत्कारा भूमौ नभसि चाहयः । पातालकल्पं विदधुस्तिर्यग्लोकं क्षणादपि ॥ ६९८ ॥
प्रलम्बा दारुणाः कृष्णाः स्फुरन्तस्ते महाऽहयः । सद्यः सहस्रधोद्भूतकेतुशङ्कां वितेनिरे ॥ ६९९ ॥
मृत्योरिवावसर्पैस्तैः सर्पैः सर्पद्भिरम्बरे । अपासर्पन् दूरदूरं चकिताः खेचरस्त्रियः ॥ ७०० ॥
जज्ञे त्रिपृष्ठसैन्यानामप्याशङ्का महीयसी । स्वामिप्रभावाज्ञत्वेन भक्त्या च भवतीदृशम् ॥ ७०१ ॥
गारुडास्त्रमथो धन्वन्यारोप्य गरुडध्वजः । मुमोच मोचादलवत् तस्य ह्यस्त्रस्य पन्नगान् ॥ ७०२ ॥
प्रादुरासन् गरुत्मन्तो विदधानाः प्रसारिभिः । स्वर्णच्छत्रशताकीर्णामिव द्यां पक्षडम्बरैः ॥७०३॥ युग्मम् ॥
तेषां च पक्षसूत्कारादपि नेशुः समन्ततः । महाऽहयस्तमांसीव सहस्रकिरणोद्गमात् ॥ ७०४ ॥
वीक्षापन्नः पन्नगास्त्रमपि वीक्ष्य निरर्थकम् । प्रदध्यावस्त्रमाग्नेयं दुर्धरं हयकन्धरः ॥ ७०५ ॥
आग्नेयबाणं धनुषि संधाय व्यसृजच्च सः । ज्वालाभिर्भितन्वानमुल्काशतमयीं दिवम् ॥ ७०६ ॥
मग्नं प्रदीपन इव त्रिपृष्ठस्याखिलं बलम् । और्वभीताब्धियादोवत् तदाकुलमजायत ॥ ७०७ ॥
जहृषुर्जहसुर्भ्रेमुरुत्पेतुर्ननृतुर्जगुः । तालाश्च ददुस्ताला हयग्रीवस्य सैनिकाः ॥ ७०८ ॥

---

१ क्षिप्तवान् । २ 'रथम् एरण्डखण्डवत्' इति पदविभागः । ३ घर्घरिका–भाषायाम् 'घुघरीओ' । ४ समवर्ती–यमः । ५ भस्त्रिका–धमनी अत्र क्रीडनकरूपा लघुर्धमनी ज्ञेया । * °घं तं प्रत्यमोघं मु°–सं० ॥ ६ त्रोटिकोटिः–चञ्चु-अग्रभागः । ७ गरुडः । † °सारां दं°–सं० का० ॥ ८ पितृपतिः–यमः । ९ भज्यमानात् । १० केतुशङ्का–ध्वजशङ्का । ११ अवसर्पः–चरः । १२ 'भवति–ईदृशम्' इति विभागः । १३ मोचा–कदली । १४ पक्षसूत्कारः–पक्षध्वनिः । १५ विस्मितः । १६ विस्तारयन्तम् । १७ और्वः–वडवानलः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ततो धनुषि संधाय वारुणास्त्रमवारणम्[1] । क्रोधारुणेक्षणस्तूर्णममुञ्चदचलानुजः ॥ ७०९ ॥
उन्नेमुर्जलदाः सद्यो हरेरिव मनोरथाः । हयग्रीवाननमिव श्यामयन्तो[2] नभस्तलम् ॥ ७१० ॥
ववृषुः प्रावृषी[3]वाब्दा धारासारैर्निरन्तरैः । दवाग्निमिव शस्त्राग्निं शमयन्तः समन्ततः ॥ ७११ ॥
एवं तृणवदस्त्राणि प्रेक्ष्य भग्नानि शार्ङ्गिणा । प्रतिविष्णुरमोघं स्वं चक्रं सस्मार मारिकृत् ॥ ७१२ ॥
ज्वालाशतैर्दीप्यमानमरान्तरशतैरिव । समाकृष्य समानीतं मार्त्तण्डस्यन्दनादिव[4] ॥ ७१३ ॥
प्रसह्यापहृतमेकमन्तकस्येव कुण्डलम् । परितः कुण्डलीभूय तक्षकाहिमिव स्थितम् ॥ ७१४ ॥
प्रक्कणत्किङ्किणीजालं त्रासयत् खेचरानपि । स्मृतमात्रोपस्थितं तत् स जग्राहेत्युवाच च ॥ ७१५ ॥
क्षीरकण्ठो[5]ऽस्यरे ! बाल ! भ्रूण[6]हत्येव ते वधात् । इदानीमप्यपेहि त्वं हृणीये[7]ऽद्याप्यहं त्वयि ॥ ७१६ ॥
न परिस्खल्यते क्वापि कुण्ठीभवति न क्वचित् । पविः पविधर[8]स्येव चक्रमस्त्रमिदं हि मे ॥ ७१७ ॥
मुक्तं चेन्मुच्यसे प्राणैर्विकल्पो न हि कश्चन । क्षत्राभिमानं[9] मा धेहि विधेहि मम शासनम् ॥ ७१८ ॥
बालो*ऽसि तन्मया क्षान्तं पूर्वदुर्ललितं तव । बालत्वचापलेनैव याहि जीव ! यदृच्छया ॥ ७१९ ॥
स्मित्वोवाच त्रिपृष्ठोऽपि वृद्धो†ऽसि हयकन्धर ! । कोऽन्यथा प्रलपेदेवमुन्मत्त इव दुर्वचः ॥ ७२० ॥
बालोऽपि केसरी नेभान्[10] महतोऽपि पलायते । महतोऽपि हि किं सर्पात् तार्क्ष्यबालो[11]ऽपसर्पति ? ॥ ७२१ ॥
बालोऽपि सन्ध्यारक्षोभ्यः[12] किं क्षुभ्यति दिवाकरः ? । बालोऽपि किमहं त्वत्तोऽपसर्पामि रणाङ्गणे ? ॥७२२॥
शस्त्राणां प्राक् प्रयुक्तानां दृष्टं तावद् बलं त्वया । विमुच्यास्यापि वीक्षस्व किमवीक्ष्यैव गर्जसि ? ॥ ७२३ ॥
इत्याकर्ण्य हयग्रीवो व्योमाब्धेरौर्ववह्निवत् । शिरसि भ्र‡मयामास तच्चक्रमतिभीषणम् ॥ ७२४ ॥
भ्रमयित्वा चिरतरं सर्वस्थाम्ना मुमोच सः । चक्रं तच्च्यवमानार्कमण्डलभ्रान्तिदं क्षणम् ॥ ७२५ ॥
वक्षःस्थले शैलशिलाविशालकठिने हरेः । चपेटयैव तच्चक्रं पपात न तु धारया ॥ ७२६ ॥
आहतस्तस्य चक्रस्य तुम्बाग्रेण दृढीयसा । पपात मूर्च्छितो विष्णुः कुलिशेनेव§ ताडितः ॥ ७२७ ॥
तस्थौ तत्रैव तच्चक्रं प्रतिजाग्रदिवाम्बरे । हाहारवः समुत्तस्थौ विष्णुसैन्येऽखिलेऽपि हि ॥ ७२८ ॥
प्रतिपक्षप्रहारेण भ्रातरं प्रेक्ष्य मूर्च्छितम् । मुमूर्च्छ नो हतोऽप्याशु बलभद्रः प्रियानुजः ॥ ७२९ ॥
सिंहनादं हयग्रीवश्चक्रे सिंह इवोच्चकैः । तत्सैन्यैर्जयशंसीव चक्रे किलकिलारवः ॥ ७३० ॥
लब्धसंज्ञः क्षणाद् रामः श्रुत्वा तं चोर्जितं ध्वनिम् । अस्थाने कस्य हर्षोऽयमिति पप्रच्छ सैनिकान् ॥७३१॥
तेऽप्यूचुर्देव ! हृष्टानां कुमारस्यापदा[13]ऽधुना । हयग्रीवस्य सैन्यानामिदं गर्जितमूर्जितम् ॥ ७३२ ॥
ऊचे रामोऽपि$ मद्बन्धोरपि व्यापत्तिरस्ति किम् । रथे शेते क्षणमसौ रणश्रान्तो ममानुजः ॥ ७३३ ॥
मद्बन्धोर्व्यापदमिमां व्यलीकां स्वमनीषया । तर्कयित्वा प्रहृष्टानामेष हर्षं हराम्यहम् ॥ ७३४ ॥
अरे ! तिष्ठ हयग्रीव ! सरथं सपरिच्छदम् । गदया चूर्णयाम्यद्य सद्यो मशकमुष्टिवत् ॥ ७३५ ॥
इत्युत्पाट्य गदां शृङ्गं रथावर्तगिरेरिव । दधाव यावत् तावच्च त्रिपृष्ठः प्रत्यबुध्यत ॥ ७३६ ॥
आर्यार्य ! भवतः कोऽयमायासो मयि सत्यपि । इति ब्रुवन् सुप्त इव समुत्तस्थौ जनार्दनः ॥ ७३७ ॥
त्रिपृष्ठमुत्थितं दृष्ट्वा ग्रामादिव समागतम् । दोर्दण्डाभ्यामायताभ्यामालिलिङ्गाथ लाङ्गली[14] ॥ ७३८ ॥
स्वेशप्रबोधपिशुनो[15] हृदि शल्यायितो द्विषाम् । हर्षकोलाहलश्चक्रे हृषीकेशस्य सैनिकैः ॥ ७३९ ॥

---

१ वारयितुमशक्यम् । २ श्यामं कुर्वन्तः । ३ प्रावृषि-मेघसमये । ४ स्यन्दनः-रथः । ५ क्षीरकण्ठो बालः । ६ भ्रूणम्-गर्भः । ७ लज्जां प्राप्नोमि । ८ इन्द्रस्य । ९ क्षत्रियत्वाभिमानम् । * °लोऽसीति म°-सं० ॥ † °द्धो हि हय°-का० ॥ १० 'न इभान्' इति विभागः । ११ तार्क्ष्यबालः-गरुडः । १२ संध्याराक्षसेभ्यः । ‡ °सि भ्रामया°-सं० ॥ ¶ °तिदक्षिणम्-सं० ॥ § °व पर्वतः-सं० ॥ १३ आपदा-तृतीयान्तम् । $ °पि मे ब°-सं० ॥ १४ लाङ्गली-बलरामः । १५ स्वस्वामिप्रबोधसूचकः, प्रबोधः-मूर्च्छारहितः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रायश्चित्तमिवादित्सु प्रहारकृतपाप्मनः । ईक्षाञ्चक्रे समीपस्थं तच्च चक्रमधोक्षजः ॥ ७४० ॥
तेजोभीमं तदादाय दायादमिव भास्वतः । बलभद्रकनिष्ठोऽपि ससौष्ठवमदोऽवदत् ॥ ७४१ ॥
ऊर्जितं गर्जितं तादृक् कृत्वा यन्मुमुचे मयि । दृष्टं त्वयौजश्चक्रस्यामुष्याद्राविव दन्तिनः ॥ ७४२ ॥
गच्छ गच्छाऽधुनाऽपि त्वं स्थविरं पापवृत्तिकम् । मार्जारमिव को नाम त्वां हनिष्यति दुर्मते ! ॥७४३॥
इति श्रुत्वा हयग्रीवो दशनैरधरं दशन् । प्रकोपात् कम्पमानाङ्गः सभ्रूभङ्गोऽब्रवीदिति ॥ ७४४ ॥
अमुना लोहखण्डेन मत्तः प्राप्तेन रे शिशो ! । किं नु मत्तस्तरोः स्रस्तफलेनाऽऽप्तेन पङ्गुवत् ॥ ७४५ ॥
मुञ्च मुञ्च त्वमप्येतत् सारं पश्य ममापि च । चक्रमापतदप्येतद् दलयिष्यामि मुष्टिना ॥ ७४६ ॥
ततः प्रकुपितश्चक्रं भ्रमयित्वा नभस्तले । मुमोच हयकण्ठाय वैकुण्ठोऽकुण्ठशक्तिकः ॥ ७४७ ॥
तच्च कर्त्ताऽश्वकण्ठस्य कण्ठं कदलिकाण्डवत् । निजेनैव हि चक्रेण हन्यन्ते प्रतिचक्रिणः ॥ ७४८ ॥
मुदितैः खेचरैः पुष्पवृष्टिः शिरसि शार्ङ्गिणः । निदधे विदधे चोच्चैर्मुदा जयजयारवः ॥ ७४९ ॥
हयग्रीवस्य सैन्येऽपि सदैन्ये रुदितध्वनिः । समुत्तस्थौ प्रतिरवै रोदसी अपि रोदयन् ॥ ७५० ॥
हयग्रीवाङ्गसंस्कारमग्निना स्वजना व्यधुः । निर्वापमिव कुर्वन्तः पतद्भिर्नयनाश्रुभिः ॥ ७५१ ॥
विपद्य च हयग्रीवः सप्तम्यां नरकावनौ । नारकोऽभूत् त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमजीवितः ॥ ७५२ ॥
अत्रान्तरे नभस्युच्चैरूचेऽमरवैरिति । भो भो नृपतयः ! सर्वे सर्वतो मानमुज्झत ॥ ७५३ ॥
विमुञ्चत हयग्रीवपक्षपातं चिरादृतम् । त्रिपृष्ठं शरणं श्रेष्ठमुपाध्वं किन्तु भक्तितः ॥ ७५४ ॥
प्रथमो वासुदेवोऽयमुदपद्यत खल्विह । त्रिखण्डभरतक्षेत्रावनेर्भर्त्ता महाभुजः ॥ ७५५ ॥
इति दिव्यां गिरं श्रुत्वा हयग्रीवस्य भूभुजः । सर्वेऽप्युपेत्य शिरसा प्रणेमुरचलानुजम् ॥ ७५६ ॥
रचिताञ्जलयश्चैवमूचुरस्माभिरत्र यत् । अज्ञानात् परतन्त्रत्वाच्चापराद्धं सहस्व तत् ॥ ७५७ ॥
अतः परं वयं नाथ ! त्वदीयाः किङ्करा इव । करिष्यामस्तवैवाज्ञां तदाज्ञापय नः प्रभो ! ॥ ७५८ ॥
प्रत्युवाच त्रिपृष्ठोऽपि नापराधोऽस्ति कोऽपि वः । क्षत्रियाणां क्रमो ह्येष युद्धं स्वाम्याज्ञया खलु ॥७५९॥
विमुञ्चत प्रतिभयमयं स्वाम्यस्मि वोऽधुना । मदीयीभूय वर्तध्वं स्वस्वराज्येष्वतः परम् ॥ ७६० ॥
एवमाश्वास्य तान् राज्ञस्त्रिपृष्ठः सपरिच्छदः । जगाम पोतनपुरं पुरन्दर इवापरः ॥ ७६१ ॥
पुनश्च पोतनपुराद् दिग्जयाय जनार्दनः । साग्रजो निर्ययौ रत्नैश्चक्राद्यैः सप्तभिर्वृतः ॥ ७६२ ॥
जिगाय मागधं पूर्वं पूर्वाशामुखमण्डनम् । दक्षिणाशाशिरोदाम वरदामानमप्यथ ॥ ७६३ ॥
पश्चिमाशाकृतोद्भासं प्रभासं च सुरोत्तमम् । विद्याधरेन्द्रानुभयवैताढ्यश्रेणिगानपि ॥ ७६४ ॥ युग्मम् ॥
श्रेणिद्वयाधिपत्यं चादत्ताग्निजटिने हरिः । फलन्ति हि महात्मानः सेविताः कल्पवृक्षवत् ॥ ७६५ ॥
दक्षिणं भरतस्यार्धं साधयित्वैवमुच्चकैः । दिग्यात्राया न्यवर्तिष्ट त्रिपृष्ठः स्वपुरोन्मुखः ॥ ७६६ ॥
चक्रधरस्यार्द्धर्द्ध्यर्धेनाभाद् दोर्बलेन च । प्रयाणैः कतिभिः प्राप मगधान् माधवस्ततः ॥ ७६७ ॥
ददर्श कोटिपुरुषोत्पाट्यां तत्र महाशिलाम् । इलाया इव तिलकमिलेशतिलकोऽथ सः ॥ ७६८ ॥
वामेन भुजदण्डेन लीलया तां शिलां हरिः । छत्त्रायमाणामुद्दध्रे मूर्ध्न ऊर्ध्वं नभस्तले ॥ ७६९ ॥

---

१ प्रहारजन्यपापस्य । २ अधोक्षजः–वासुदेवः–त्रिपृष्ठः । ३ यदमुच्चो म°–का० ॥ 'यद्+अमुचः–'अमुचः' इति अद्यतनभूतकाले द्वितीयपुरुषैकवचनम् । ४ 'अमुष्य+अद्रौ' इति विभागः । ५ नीचैः पतितेन फलेन प्राप्तेन । ६ बलम् । ७ वैकुण्ठः–वासुदेवः त्रिपृष्ठः । ८ अश्वग्रीवस्य । ९ आकाशम् पृथ्वीं च । १० मृतमुद्दिश्य दीयमानो जलाञ्जलिः निवापः । ११ उज्झत–मुञ्चत । * °रणश्रेष्ठ°–सं० ॥ † °वनेभोक्ता–का० ॥ १२ (१) चक्रम्, (२) वनमाला, (३) नन्दकनामा असिः, (४) कौस्तुभमणिः, (५) पाञ्चजन्यः शङ्खः, (६) कौमोदकी गदा, (७) शार्ङ्गं धनुः–इत्येवं सप्त रत्नानि । १३ 'अर्ध+ऋद्ध्या' अत्र "ऋलृति ह्रस्वो वा" [१.२.२.] इत्यनेन ह्रस्वत्वे सन्धेरभावः । १४ 'तिलकम्+इलेशतिलकः' इति विभागः । १५ छत्रसमानाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नृपैर्लोकैश्च तद्बाहुस्थामालोकनविस्मितैः । त्रिपृष्ठस्तुष्टुवे सुष्ठु सौष्ठवैर्मागधैरिव ॥ ७७० ॥
तां विमुच्य यथास्थानं प्रस्थितः कतिभिर्दिनैः । नगरं पोतनपुरं श्रियो धाम* जगाम सः ॥ ७७१ ॥
मौक्तिकस्वस्तिकाकीर्णं सतारकमिवाम्बरम् । सेन्द्रचापशतमिव तोरणश्रेणिशोभितम् ॥ ७७२ ॥
आवृष्टशारदिमिव वारिसिक्तमहीतलम् । उद्विमानमिवोत्तुङ्गैर्मञ्चै रुचिरभाजनैः ॥ ७७३ ॥
प्रत्योकः[1] प्रकृतोद्वाहमिव मङ्गलगीतिभिः । पिण्डीभूतजीवलोकमिव संमदसंपदा[2] ॥ ७७४ ॥
प्रविवेश द्विपारूढः संपन्नः प्रौढसंपदा । श्रीपतिः पोतनपुरं पुरं नवमिव श्रियः ॥ ७७५ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

प्रजापतिर्ज्वलनजट्यचलोऽन्येऽपि भूभुजः । त्रिपृष्ठस्यार्धचक्रित्वाभिषेकं विदधुस्ततः ॥ ७७६ ॥
इतश्च छद्मस्थतया द्वौ मासौ विहरन् विभुः । श्रेयांसो भगवान् प्राप सहस्राम्रवणं वनम् ॥ ७७७ ॥
तत्राशोकतरोर्मूले स्वामिनः प्रतिमाजुषः । द्वितीयशुक्लध्यानान्ते वर्तमानस्य निश्चले ॥ ७७८ ॥
ज्ञान-दृष्ट्यावरणीये[3] मोहनीयान्तरायके । प्रणेशुर्घातिकर्माणि तापे मदनपिण्डवत्[4] ॥ ७७९ ॥ युग्मम् ॥
माघकृष्णपञ्चदश्यां श्रवणस्थे निशाकरे । षष्ठेन तपसा भर्तुरुदपद्यत केवलम् ॥ ७८० ॥
देवैः समवसरणे रचिते तत्र देशनाम् । एकादशो जिनपतिर्विदधेऽतिशयान्वितः ॥ ७८१ ॥
तया देशनया भर्तुः प्रबुद्धा भूरिजन्तवः । विरतिं सर्वतः केऽपि जगृहुर्देशतोऽपरे[5] ॥ ७८२ ॥
गोशुभाद्या गणभृतः षट्सप्ततिरथाभवन् । स्वामिनस्त्रिपदीं श्रुत्वा द्वादशाङ्गीमसूत्रयन् ॥ ७८३ ॥
तत्तीर्थभूरीश्वराख्यो यक्षस्त्र्यक्षो वलक्षरुक्[6] । वृषयानो मातुलिङ्गगदादक्षिणदोर्द्वयः ॥ ७८४ ॥
नकुलाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणेतरबाहुकः । श्रेयांसस्वामिनो जज्ञे तदा शासनदेवता ॥ ७८५ ॥
तथैव मानवी देवी गौराङ्गी सिंहवाहना । वरदं मुद्गरिणं च दधती दक्षिणौ करौ ॥ ७८६ ॥
वामौ च बिभ्रती पाणी कुलिशाङ्कुशधारिणौ[7] । पारिपार्श्विक्यभूद् भर्तुस्तदा शासनदेवता ॥ ७८७ ॥
ताभ्यामयुक्तसान्निध्यो विहरन् परमेश्वरः । अन्येद्युः पोतनपुरं पुरप्रवरमाययौ ॥ ७८८ ॥
तत्र च स्वामिसमवसरणायैकयोजनाम् । मरुत्कुमारा मम्रुजुर्मेघाश्च सिषिचुः क्षितिम् ॥ ७८९ ॥
स्वर्णरत्नोपलैस्तां च बबन्धुर्व्यन्तरामराः । जानुदघ्नीः[9] सुमनसः पञ्चवर्णाश्च चिक्षिपुः ॥ ७९० ॥
तोरणानि प्रतिदिशं भ्रूभङ्गानिव तद्दिशाम् । ते चक्रुस्तद्भुवो मध्ये मणिपीठं च पावनम् ॥ ७९१ ॥
तत्राधो राजतं वप्रं सस्वर्णकपिशीर्षकम् । शीर्षोत्तंसमिव[10] क्षोणेर्विदधुर्भवनाधिपाः ॥ ७९२ ॥
सरत्नकपिशीर्षं च तापनीयमथापरम्[11] । स्वज्योतिषेव[12] ज्योतिष्काः प्राकारं विदधुः सुराः ॥ ७९३ ॥
माणिक्यकपिशीर्षं च दिव्यरत्नशिलामयम् । विमानपतयो वप्रं तार्तीयीकं विचक्रिरे ॥ ७९४ ॥
सतोरणा चतुर्द्वारी प्रतिवप्रमजायत । देवच्छन्दक ऐशान्यां मध्यवप्रस्य मध्यतः ॥ ७९५ ॥
मध्यप्राकारगर्भोर्व्यां विचक्रे व्यन्तरामरैः । पञ्चषुत्तरनवधनुःशतोच्चश्चैत्यपादपः ॥ ७९६ ॥
तस्याधो मणिपीठोर्व्यां विदधुश्छन्दकं च ते । रत्नसिंहासनं साङ्घ्रिपीठं प्राच्यां तदन्तरे ॥ ७९७ ॥
तत्रान्यदपि यत् कृत्यं तच्चक्रुर्व्यन्तरामराः । भक्तिमन्तोऽप्रमादेनायुक्तेभ्योऽप्यतिशेरते ॥ ७९८ ॥
श्रेयांसोऽथ प्रभुर्व्योमस्थितैश्छत्रैस्त्रिभिर्व्यभात् । वीज्यमानश्चामराभ्यां यक्षाभ्यां पार्श्वयोर्द्वयोः ॥७९९॥

---

* धामाऽऽजगाम–का० ॥ १ प्रतिओकः–प्रतिगृहम् । २ संमदः–हर्षः । † °ढः प्ररूढ प्रौढसंमदः–सं० का० ॥ ३ ज्ञानावरणीयम्, दर्शनावरणीयं च । ४ 'मदन' इति भाषायाम् 'मीण' । ‡ माघे कृ°–सं० ॥ ५ देशतः विरतिम्–श्रावकधर्मम् । ६ श्वेतकान्तिः । ¶ °गदाद°–सं० ॥ ७ कुलिशम्–वज्रम् । § कलशाङ्कुश°–सं० का० ॥ ** °र्तुः सदा–सं० ॥ ८ मुद्गरं चकुः । ९ जानुप्रमाणाः । १० शीर्षशेखरकम् । ११ तपनीयम्–सुवर्णम्, तेन निर्मितम् । १२ स्वतेजसा । ** °कईशा°–सं० ॥ †† °स्याधिम° सं० ॥ ‡‡ °भिर्विभान् मु० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रध्वजेन च पुरोगामिना परिशोभितः । स्वयं ध्वनद्दुन्दुभिना बन्दिनेवोक्तमङ्गलः ॥ ८०० ॥
भामण्डलेन भ्राजिष्णुः सूर्येणेवोदयाचलः । सुरासुरनरैः कोटिसंख्यैर्*ातैः परिवारितः ॥ ८०१ ॥
देवैः संचार्यमाणेषु क्रमेण च पुरः पुरः । नवसु स्वर्णपद्मेषु विन्यस्यन् पादपङ्कजे ॥ ८०२ ॥
अधिष्ठितः पुरोदेशं धर्मचक्रेण भास्वता । ततः समवसरणं पूर्वद्वाराऽविशद् विभुः ॥ ८०३ ॥
तत्र स्वागतिकमिव रणत् षट्चरणारवैः । त्रिः प्रदक्षिणयामास चैत्यवृक्षं जगद्गुरुः ॥ ८०४ ॥
वदन् 'नमस्तीर्थाय' इति छन्दकाम्भोजकर्णिकम् । सिंहासनमलञ्चक्रे पूर्वाशाऽभिमुखः प्रभुः ॥ ८०५ ॥
रत्नसिंहासनासीनान्यपराखपि दिक्ष्वथ । स्वामिनः प्रतिबिम्बानि विचक्रुर्व्यन्तरामराः ॥ ८०६ ॥
प्रविश्य पूर्वद्वारेण निषेदुः साधवः क्रमात् । वैमानिकस्त्रियः साध्व्यश्चोर्ध्वा एवावतस्थिरे ॥ ८०७ ॥
प्रविश्यापाच्यद्वारेण[१] नत्वाऽर्हन्तं च नैर्ऋते । अतिष्ठन् भवनपति-ज्योतिष्क-व्यन्तरस्त्रियः ॥ ८०८ ॥
प्रविश्य पश्चिमद्वाराऽर्हन्तं नत्वाऽवतस्थिरे । भवनाधिपतिज्योतिर्व्यन्तराश्च मरुद्दिशि[२] ॥ ८०९ ॥
प्रविश्य चोत्तरद्वारा भगवन्तं प्रणम्य च । क्रमेण तस्थुरैशान्यां वैमानिकनरस्त्रियः ॥ ८१० ॥
इत्थं तृतीये वप्रेऽस्थाच्छ्रीशान् संघश्चतुर्विधः । तिर्यञ्चो मध्यमे वप्रेऽधस्तने वाहनानि तु ॥ ८११ ॥
तदा च राजपुरुषास्त्रिपृष्ठायार्धचक्रिणे । स्वामिनं समवसृतं संमदादाचचक्षिरे[३] ॥ ८१२ ॥
सद्यः सिंहासनं हित्वा पादुके परिमुच्य च । स्वामिदिक्सन्मुखं स्थित्वा ववन्दे स्वामिनं हरिः ॥ ८१३ ॥
स्थित्वा सिंहासने रूप्यकोटीरर्धत्रयोदश । स्वाम्यागमनशंसिभ्यः प्रददावचलानुजः ॥ ८१४ ॥
ऋद्ध्या महत्या सहितो बलभद्रेण शार्ङ्गभृत् । ययौ समवसरणं शरणं सर्वदेहिनाम् ॥ ८१५ ॥
तत्प्रविश्योत्तरद्वारा नत्वाऽर्हन्तं यथाविधि । सोऽनुशक्रं निषसाद समं मुसलपाणिना ॥ ८१६ ॥
प्रणम्य स्वामिनं भूयो भक्तिभावितया गिरा । इन्द्रोपेन्द्रबलाः स्तोतुमेवमारेभिरे ततः ॥ ८१७ ॥

अमन्दानन्दनिःस्यन्ददायिने परमेश्वर ! । मोक्षकारणभूताय मोक्षायैव नमोऽस्तु ते ॥ ८१८ ॥
तव दर्शनमात्रेऽपि कर्माण्यन्यानि विस्मरन् । आत्मारामी भवेद् देही किं पुनः श्रुतदेशनः ॥ ८१९ ॥
क्षीरोदः किमुदीर्णोऽसि कल्पवृक्षः किमुद्गतः । वर्षुकाब्दो[४]ऽवतीर्णो वा स्वामिन् ! संसारजन्मिनाम् ॥८२०॥
पीड्यमानस्य विश्वस्यासद्ग्रहैः क्रूरकर्मभिः । एकादशो जिनेन्द्रस्त्वं त्राता ज्योतिष्मतां पतिः ॥ ८२१ ॥
त्वयेक्ष्वाकुकुलं नाथ ! निसर्गेणापि निर्मलम् । निर्मलीक्रियतेऽत्यन्तं स्फटिकाश्मेव वारिणा ॥ ८२२ ॥
जगत्त्रयस्य निःशेषसंतापहरणात् प्रभो ! । पादमूलं तवाशेषच्छायाभ्योऽप्यतिरिच्यते ॥ ८२३ ॥
त्वत्पादपद्मयोर्भृङ्गीभूय संप्राप्तसंमदः । नाहं भुक्त्यै न वा मुक्त्यै स्पृहयालुर्जिनेश्वर ! ॥ ८२४ ॥
भवे भवे भवदीयौ चरणौ शरणं मम । अभ्यर्थये जगन्नाथ ! त्वत्सेवा किं न साधयेत् ? ॥ ८२५ ॥
इति स्तुत्वा विरतेषु वासवोपेन्द्रसीरिषु[५] । श्रेयांसः श्रेयसां हेतुं प्रारेभे देशनामिति ॥ ८२६ ॥

असावपारः संसारः स्वयम्भूरमणाब्धिवत् । कर्मोर्मिभिर्भ्राम्यतेऽस्मिंस्तिर्यगूर्ध्वमधो जनः ॥ ८२७ ॥
घर्माम्भांस्यनिलेनेव भेषजेन रसा इव । कर्माण्यष्टापि जीर्यन्ति ध्रुवं निर्जरयैव हि ॥ ८२८ ॥
संसारबीजभूतानां कर्मणां जरणादिह । निर्जरा सा स्मृता द्वेधा सकामा कामवर्जिता ॥ ८२९ ॥
ज्ञेया सकामा यमिनामकामा त्वन्यदेहिनाम्[६] । कर्मणां फलवत् पाको यद् उपायात् स्वतोऽपि च[७] ॥ ८३० ॥
सदोषमपि दीप्तेन सुवर्णं वह्निना यथा । तपोऽग्निना तप्यमानस्तथा जीवो विशुध्यति ॥ ८३१ ॥

---

* °स्यानैः सं० ॥ १ दक्षिणद्वारेण । २ वायव्यकोणे । ३ हर्षात् । ४ वर्षणशीलः वर्षुकः । † °रध्वनि मु० ॥
‡ इत्यर्थये का० सं० ॥ ५ सीरी–बलदेवः । ६ व्रतवताम्–व्रतयुक्तानां निर्जरा ज्ञानपूर्विका, अन्येषां तु अज्ञानपूर्विका । ७ यथा फलं स्वयं पक्वं भवति, उपायादपि पक्वं क्रियते, एवं कर्मणां विपाकोऽपि बोध्यः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनशनमौनोदर्यं वृत्तेः संक्षेपणं तथा । रसत्यागस्तनुक्लेशो लीनतेति बहिस्तपः ॥ ८३२ ॥
प्रायश्चित्तं वैयावृत्त्यं स्वाध्यायो विनयोऽपि च । व्युत्सर्गोऽथ शुभध्यानं षोढेत्याभ्यन्तरं तपः ॥ ८३३ ॥
दीप्यमाने तपोवह्नौ बाह्ये चाभ्यन्तरेऽपि च । यमी जरति कर्माणि दुर्जराण्यपि तत्क्षणात् ॥ ८३४ ॥
यथा हि पिहितद्वारमुपायैः सर्वतः सरः । नवैर्नवैर्जलापूरैः पूर्यते नैव सर्वथा ॥ ८३५ ॥
तथैवाश्रवरोधेन कर्मद्रव्यैर्नवैर्नवैः । अयं न पूर्यते जीवः संवरेण समावृतः ॥ ८३६ ॥
यथैव सरसस्तोयं संशुष्यति पुराचितम् । दिवाकरकरालांशुपातसंतापितं मुहुः ॥ ८३७ ॥
तथैव पूर्वसंबद्धं सर्वं कर्म शरीरिणाम् । तपसा ताप्यमानं सत् क्षयमायाति तत्क्षणात् ॥ ८३८ ॥
निर्जराकरणे बाह्याच्छ्रेष्ठमाभ्यन्तरं तपः । तत्राप्येकातपत्रत्वं ध्यानस्य मुनयो जगुः ॥ ८३९ ॥
चिरार्जितानि भूयांसि प्रबलान्यपि तत्क्षणात् । कर्माणि निर्जरन्त्येव योगिनो ध्यानशालिनः ॥ ८४० ॥
यथैवोपचितो दोषः शोषमायाति लङ्घनात् । तथैव तपसा कर्म क्षीयते पूर्वसंचितम् ॥ ८४१ ॥
यथा वा मेघसंघाताः प्रचण्डपवनैर्हताः । इतस्ततो विशीर्यन्ते कर्माणि तपसा तथा ॥ ८४२ ॥
प्रतिक्षणं प्रभवन्त्यावपि संवर-निर्जरे । प्रकृष्येते यदा मोक्षं प्रसुवाते तदा ध्रुवम् ॥ ८४३ ॥
निर्जरां निर्जरां कुर्वंस्तपोभिर्द्विविधैरपि । सर्वकर्मविनिर्मोक्षं मोक्षमाप्नोति शुद्धधीः ॥ ८४४ ॥
एवं देशनया भर्तुर्बहवः प्राव्रजन् जनाः । सम्यक्त्वं प्रतिपेदाते बलभद्र-हरी पुनः ॥ ८४५ ॥
पूर्णायामादिपौरुष्यां व्यसृजद् देशनां विभुः । त्रिपृष्ठपुम्भिश्चानिन्ये चतुःप्रस्थमितो बलिः ॥८४६॥
स्वाम्यग्रे तत्र चोत्क्षिप्तः सोऽग्राह्यर्धं सुरैः पतन् । शेषस्य पतितस्यार्धं राज्ञाऽन्यदितरैर्जनैः ॥ ८४७ ॥
निर्गत्य चोत्तरद्वारा मध्यवप्रनिवेशिते । देवच्छन्दे रत्नमये निषसाद ततः प्रभुः ॥ ८४८ ॥
षट्सप्ततिगणधरग्रामणीर्गोशुभस्ततः । स्वाम्यङ्घ्रिपीठाध्यासीनो विदधे धर्मदेशनाम् ॥ ८४९ ॥
सोऽपि द्वितीयपौरुष्यां व्यसृजद् धर्मदेशनाम् । स्वं स्वं स्थानं ययुः सर्वेऽपीन्द्रोपेन्द्रबलादयः ॥ ८५० ॥
ततः स्थानात् प्रभुरपि प्रभाकर इवापरः । ज्ञानालोकं वितन्वानो विजहार महीतलम् ॥ ८५१ ॥
साधूनां चतुरशीतिसहस्राणि महात्मनाम् । लक्षमेकं च साध्वीनां सहस्रत्रयसंयुतम् ॥ ८५२ ॥
चतुर्दशपूर्वभृतां त्रयोदश शतानि तु । षट्सहस्र्यवधिमतां मनःपर्ययिणामपि ॥ ८५३ ॥
सार्धानि षट्सहस्राणि केवलज्ञानशालिनाम् । जातवैक्रियलब्धीनामेकादशसहस्र्यथ ॥ ८५४ ॥
पञ्चैव च सहस्राणि वादलब्धिमतां पुनः । लक्षद्वयं श्रावकाणां सहस्रा नवसप्ततिः ॥ ८५५ ॥
अष्टाचत्वारिंशता च सहस्रैरधिकानि तु । चत्वारि लक्षाणि तथा श्राविकाणां शुभात्मनाम् ॥ ८५६ ॥
आकेवलाद् द्विमासोनवर्षलक्षैकविंशतिम् । महीं विहरतो जज्ञे परिवारः प्रभोरयम् ॥ ८५७ ॥
मोक्षकालं विदित्वा स्वं प्रभुः संमेतमेत्य च । समं मुनिसहस्रेणानशनं प्रत्यपद्यत ॥ ८५८ ॥
मासमेकं तथा स्थित्वा शैलेशीध्यानमास्थितः । नभःकृष्णतृतीयायां धनिष्ठास्थे निशाकरे ॥ ८५९ ॥
अनन्तदर्शनज्ञानवीर्यानन्दमयात्मकः । समं तैर्मुनिभिः प्राप भगवान् परमं पदम् ॥ ८६० ॥
कौमारे स्वामिनो वर्षलक्षणामेकविंशतिः । द्विचत्वारिंशदब्दानां लक्षाण्यवनिपालने ॥ ८६१ ॥
प्रव्रज्यापालने वर्षलक्षाणामेकविंशतिः । इत्यायुश्चतुरशीतिवर्षलक्षाण्यजायत ॥ ८६२ ॥
षड्विंशतिसहस्राग्रवर्षषट्षष्टिलक्षकैः । अब्धिशतेन चोनाया अब्धिकोटेर्व्यतिक्रमे ॥ ८६३ ॥

---

१ औनोदर्यम्–ऊनोदरताम्–बुभुक्षाऽपेक्षया स्वल्पं भोजनम् । २ प्रसयुक्तः । ३ तत्रापि–आभ्यन्तरे तपसि ध्यानस्य श्रेष्ठत्वम् इति भावः । ४ वर्धितः शरीरदोषः । ५ कर्मनिर्जरणरूपाम्, निर्जरणम्–ध्वंसः । * °भिर्विवि° सं० ॥ † °क्षं प्राप्नो° सं० ॥ ६ "प्रस्थः–'एक शेर' इति ख्यातस्य"–अमरकोशटीका–कां० २ श्लो० ८९ । ७ 'अग्राहि+अर्धम्' इति विभागः । ८ आलोकम्–तेजः । ‡ °त्वाऽथ प्र° सं० ॥ ९ नभः–श्रावणो मासः । ¶ षड्विंश° सं० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमच्छीतलनाथस्य मोक्षकालादनन्तरम् । श्रेयांसस्वामिनो जज्ञे निर्वाणगमनोत्सवः ॥८६४॥ युग्मम् ॥
चक्रे निर्वाणकल्याणं संगीर्वाणैः[1] पुरन्दरैः । महतामन्तकालोऽपि पर्वणे[2] न पुनः शुचे[3] ॥ ८६५ ॥
द्वार्विशतान्तःपुरस्त्रीसहस्रैर्विलसन् सुखम् । त्रिपृष्ठोऽपि ततः स्वायुः कियदप्यत्यवाहयत् ॥ ८६६ ॥
स्वयम्प्रभायां जज्ञाते शार्ङ्गपाणेरुभौ सुतौ । ज्येष्ठः श्रीविजयो नाम कनिष्ठो विजयाह्वयः ॥८६७॥
रतिसागरमग्नस्य त्रिपृष्ठस्यान्यदाऽन्तिके । आजग्मुर्गायनाः[4] केऽपि सौस्वर्यादतिकिन्नराः[5] ॥ ८६८ ॥
गायन्तस्तेऽतिमधुररागवैविध्यबन्धुरम्[*] । हृषीकेशस्य हृदयं जह्रुः सर्वकलानिधेः ॥ ८६९ ॥
सदा त्रिपृष्ठः पार्श्वस्थांश्चक्रे गीतगुणेन तान् । रज्यन्त्यन्येऽपि गीतेन किं पुनस्तद्विदग्रणीः[6] ॥ ८७० ॥
अन्यदा तु विभावर्यां विष्णोस्तल्पे[7] निषेदुषः । तैस्तारं गातुमारेभे गन्धर्वैरिव वज्रिणः ॥ ८७१ ॥
तद्गीताक्षिप्तहृदयः करीवाथ जनार्दनः । एकं वारस्थितं[8] शय्यापालमेवं समादिशत् ॥ ८७२ ॥
निद्रागमाणेष्वस्मासु गायतो गायनानमून् । विसृजेस्त्वं वृथाऽऽयासः स्वामिन्यनवधायके[9] ॥ ८७३ ॥
तथेति प्रतिपेदे स शय्यापालः प्रभोर्वचः । शार्ङ्गिणोऽपि क्षणान्निद्रा मुद्रयामास[10] लोचने ॥ ८७४ ॥
शय्यापालोऽपि तान् गीतलोभाद् विसृजति स्म न । विषयाक्षिप्तमनसा गलेद्धि[11] स्वामिशासनम् ॥८७५॥
यामिन्याः पश्चिमे यामे प्रबुद्धोऽधोक्षजस्ततः[12] । तथैव गायतोऽश्रौषीत् तानक्षीणकलस्वरान् ॥ ८७६ ॥
किं विसृष्टास्त्वया नामी स्पष्टकष्टास्तपस्विनः । इति पृष्टस्त्रिपृष्ठेन शय्यापालोऽब्रवीदिदम् ॥ ८७७ ॥
अमीषामेव गीतेन व्याक्षिप्तहृदयः प्रभो ! । व्यसार्क्षं गायनान् नैतान् व्यस्मार्षं स्वामिशासनम् ॥८७८॥
ततः प्रकुपितः सद्यः कृत्वा चाकारसंवरम्[13] । प्रातरर्क इव प्राचीं सभामध्यास्त[14] केशवः ॥ ८७९ ॥
तत्र स्मृत्वा निशावृत्तं शय्यापालं प्रदर्श्य तम् । आरक्षपुरुषानेवं समादिक्षदधोक्षजः ॥ ८८० ॥
अमुष्य प्रियगीतस्य कर्णयोः क्षिप्यतां ध्रुवम् । तप्तं त्रपु च ताम्रं च दोषः कर्णकृतो ह्ययम् ॥ ८८१ ॥
शय्यापालं तमेकान्ते तेऽपि नीत्वा तथा व्यधुः । दुर्लङ्घ्यं[†] शासनं ह्युग्रशासनानां महीभुजाम् ॥ ८८२ ॥
शय्यापालोऽपि पञ्चत्वं प्राप वेदनया तया । दुर्विपाकं वेदनीयकर्माऽबध्नाच्च शार्ङ्गभृत् ॥ ८८३ ॥
नित्यं विषयसंसक्तो राज्यमूर्च्छापरायणः । स्वदोर्बलावलेपेन तृणाय[15] गणयञ्जगत् ॥ ८८४ ॥
प्राणातिपाते निःशङ्को महारम्भपरिग्रहः । क्रूरेणाध्यवसायेन शीर्णसम्यक्त्वभूषणः ॥ ८८५ ॥
नारकायुर्निबध्याब्दलक्षाशीतिं चतुर्युताम् । अतीत्यायुस्त्रिपृष्ठोऽगात् सप्तमीं नरकावनिम् ॥ ८८६ ॥
तत्रावासे प्रतिष्ठाने पञ्चधन्वशतोन्नतः । त्रयस्त्रिंशत्सागरायुः सोऽपश्यत् कर्मणां फलम् ॥ ८८७ ॥
त्रिपृष्ठस्याब्दसाहस्राः कौमारे पञ्चविंशतिः । तावन्तो मण्डलीकत्वेऽब्दसाहस्रं च दिग्जये ॥ ८८८ ॥
त्र्यशीतिर्वर्षलक्ष्येकोनपञ्चाशत्सहस्रयुक्[16] । राज्ये चेति चतुरशीत्यब्दलक्षायुषो मितिः ॥ ८८९ ॥
अथाचलोऽपि शोकेन भ्रातृपञ्चत्वजन्मना । पराबभूवे सद्यः स्वर्भानुना[17] भानुमानिव ॥ ८९० ॥
विवेक्यप्यविवेकीव भ्रातृस्नेहवशादथ । करुणस्वरमित्युच्चैर्विललाप हलायुधः ॥ ८९१ ॥
उत्तिष्ठ बन्धो ! निर्बन्धः[18] कोऽयं शयनकर्मणि । अदृष्टपूर्वमालस्यं किं नृसिंहस्य तेऽधुना ॥ ८९२ ॥
द्वारि भूपतयः सर्वे त्वत्पादान् द्रष्टुमुत्सुकाः । अदर्शनान्नाप्रसादस्तेषु युक्तस्तपस्विषु ॥ ८९३ ॥
क्रीडयाऽपि न ते मौनमियद् बान्धव ! युज्यते । भृंज्यते[19] हृदयं त्वद्वाक्सुधासारं विना मम ॥ ८९४ ॥

---

१ गीर्वाणः–देवः । २ उत्सवाय । ३ शोकाय । ४ गानोपजीविनः । ५ सुस्वरत्वेन किन्नरेभ्योऽपि अतिसुन्दरगानशीलाः । * °धुरं रा° सं० का० ॥ ६ संगीतविदां श्रेष्ठः । ७ शय्यायाम् । ८ वारः–परिपाटिः, 'वारो' इति भाषायाम् । ९ असावधाने । १० मिमील, 'मींच्यां' इति भाषायाम् । ११ गलेत्–विस्मरेत् । १२ विष्णुः । १३ आकारगोपनम् । १४ सभायाम् उपविष्टः, "अधेः शीङ्°" [२.२.२०] इति द्वितीया । † °तां द्रुतम् सं० ॥ १५ 'तृणाय' इत्यत्र "मन्यस्यानावादि०" [२.२.६४.] इति सूत्राच्चतुर्थी । १६ "वर्षलक्षी+एकोन" इति विभागः । १७ स्वर्भानुः–राहुः । १८ आग्रहः । १९ भृज्यते–पच्यते–दह्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महोत्साहस्य सततं गुरुभक्तस्य वत्स ! ते। निद्रा च मदवज्ञा च न संभवति सर्वथा ॥ ८९५ ॥
हा ! हतोऽस्म्युग्रविधिना किमापतितमस्य मे । इति क्रन्दन् महीपृष्ठे मुशली मूर्च्छितोऽपतत् ॥ ८९६ ॥
लब्धसंज्ञः क्षणेनापि समुत्थाय च लाङ्गली । हा ! भ्रातर्भ्रातरित्युच्चैः क्रन्दन्नङ्केऽग्रहीद्धरिम् ॥ ८९७ ॥
वृद्धैः प्रबोधितः सोऽथ धैर्यमालम्ब्य च क्षणम् । अनुजस्याङ्गसंस्कारादिकं कर्म समापयत् ॥ ८९८ ॥
कृतौर्ध्वदेहिको भ्रातुः स्मरणेन मुहुर्मुहुः । मुमोच लोचनैर्वारि श्रावणाम्भोदवद् बलः ॥ ८९९ ॥
महाटव्यामिवोद्याने श्मशान इव वेश्मनि । गृहस्रोतःस्विव क्रीडासरःस्रोतस्विनीष्वपि ॥ ९०० ॥
अपि बन्धुसमाजेषु वैरिवृन्देष्विवानिशम् । न रतिं बलभद्रोऽगादल्पवारिणि मत्स्यवत् ॥९०१॥ युग्मम् ॥
श्रेयांसस्वामिपादानां स्मरन् श्रेयस्करीं गिरम् । संसारासारतां ध्यायन् विषयेभ्यः पराङ्मुखः ॥ ९०२ ॥
स्वजनानामुपरोधात् स्थित्वाऽहानि च कानिचित् । ययौ बलो धर्मघोषाचार्यपादान्तमन्यदा॥९०३॥ युग्मम्
शुश्राव देशनां तस्मादर्हद्वागनुवादिनीम् । विशेषाद् भवनिर्वेदमाससाद तया बलः ॥ ९०४ ॥
सद्यो जग्राह दीक्षां च तत्पादान्ते स शुद्धधीः । अनुष्ठाने प्रवर्तन्ते ज्ञात्वा खलु महाशयाः ॥ ९०५ ॥
स सम्यक् पालयन् मूलगुणोत्तरगुणान् गुणी । सर्वत्र समतां बिभ्रत् सहमानः परीषहान् ॥ ९०६ ॥
वायुरिवाप्रतिबद्धो भुजङ्गम इवैकदृक् । कश्चित् कालं विजहार ग्रामा-ऽऽकर-पुरादिषु ॥ ९०७ ॥ युग्मम् ॥

अथाब्दलक्षाण्यतिवाह्य पञ्चाशीतिं निसर्गामलचित्तवृत्तिः ।
कर्माणि सर्वाण्यपि घातयित्वा प्रापाचलः सिद्धिपदे निवासम् ॥ ९०८ ॥

॥ इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये
चतुर्थे पर्वणि श्रीश्रेयांसजिनत्रिपृष्ठाचलाश्वग्रीवचरितवर्णनो
नाम प्रथमः सर्गः संपूर्णः ॥

---

१ बलदेवः । * °व सुखं क्रीडास्रोत° सं० ॥ २ आग्रहात् । ३ वैराग्यम् । † तयाचलः सं० ॥ ‡ °र्थः ।
६००० सं० का० ॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

द्वितीयः सर्गः ।

श्रीवासुपूज्यचरितम् ।

नमः श्रीवासुपूज्याय विश्वपूज्याय तायिने । इन्द्रोपेन्द्रकिरीटाग्र[*]घृष्टाङ्घ्रिनखपङ्क्तये ॥ १ ॥
अर्हन्तमिव रूपस्थध्यानस्थो विश्वपावनम् । वक्ष्यामि तस्य चरितं चन्द्रादप्यतिनिर्मलम् ॥ २ ॥
पुष्करवरद्वीपार्धे प्राग्विदेहविभूषणे । विजये[†] मङ्गलावत्यामस्ति पू रत्नसञ्चया ॥ ३ ॥
तस्यां पद्मोत्तरो नाम विश्वपद्मोत्तरः[1] सदा । बभूव राजा रजनी[‡]राजराजेव वल्लभः ॥ ४ ॥
अधारयन् मनसि स जैनं शासनमुज्ज्वलम् । तदीयमिव राजानो नित्यं शिरसि भक्तितः ॥ ५ ॥
तस्य लक्ष्मीश्च कीर्तिश्च गुणानामेकवेश्मनः । युग्मजाते इव भृशं ववृधाते सहैव हि ॥ ६ ॥
पृथ्वीं स[2]समुद्रसंख्यानां पृथ्वीपतिशिरोमणिः[§] । परिखामेखलामेकपुरीमिव शशास सः ॥ ७ ॥
[3]चपलाचपला लक्ष्मीर्वयोवद् गत्वरं वपुः । पद्मदलाग्रोबिदन्दुवच्च पुण्यं विनश्वरम् ॥ ८ ॥
वि[4]श्लेषिणो बन्धवोऽपि मार्गसंपृक्तपान्थवत् । इत्यजस्रं भावयन् स भववैराग्यमासदत् ॥ ९ ॥ युग्मम् ॥
वज्रनाभगुरोः पादमूले गत्वा महामनाः । अन्येद्युराददे दीक्षां मुक्तिश्रीप्राप्तिदूतिकाम् ॥ १० ॥
अर्हद्भक्त्यादिभिस्तैस्तैः स्थान[5]कैः कैश्चिदुज्ज्वलैः । सुधीरुपार्जयामास तीर्थकृन्नाम कर्म सः ॥ ११ ॥
खड्गधारातिनिशितं पालयित्वा चिरं व्रतम् । विपद्याभूत् सुरः कल्पे प्राणताख्ये महर्द्धिकः ॥ १२ ॥
इतश्च जम्बूद्वीपस्य भरतार्धेऽत्र दक्षिणे । पुर्यस्ति नाम्ना चम्पेति चम्प[6]कोत्तंसवद् भुवः ॥ १३ ॥
तत्र चैत्येषु रत्नाश्मभित्तिषु प्रतिबिम्बितः । वैक्रियाणीव रूपाणि धारयन् ल[*]क्ष्यते जनः ॥ १४ ॥
चन्द्राश्मबद्धैः सोपानैर्निशि निःस्यन्दिवारिभिः । तत्र स्वयञ्जला[7]ः क्रीडादीर्घिकाः प्रतिमन्दिरम् ॥ १५ ॥
सद्धूपधूमवल्लीभिर्वासागाराणि तत्र च । पातालभवनानीवोरगीभिर्भान्त्यनेकशः ॥ १६ ॥
क्रीडत्पुरवधूकानि तत्र क्रीडासरांसि च । निर्यदप्सरसः क्षीरोदधेर्दधति विभ्रमम् ॥ १७ ॥
लीलया षड्जबहुला गायन्त्यः षड्जकैशिकीम् । भवन्ति केकिके[8]कानां तत्र संवादिकाः[‡] स्त्रियः ॥ १८ ॥
ताम्बूलीबीटक[9]भृतो भान्ति तत्रेभ्यवेश्मसु । नार्योऽध्यापयितुं हस्तन्यस्तक्रीडा[10]शुका इव ॥ १९ ॥
तत्रासीद् वासव इवौजसा व[11]सुरिव त्विषा । वसुपूज्य इतीक्ष्वाकुवंश्यो वसुमतीपतिः ॥ २० ॥
स कुर्वन् गर्जितमिव याचका[12]ह्वानडिण्डिमैः । पृथिवीं प्रीणयामास धनैर्वार्भिरिवाम्बुदः ॥ २१ ॥
विचेरुः क्रीडया पृथ्व्यां तस्यानीकान्यनेकशः । न पुनर्दिग्जयकृते प्रतापाक्रान्तविद्विषः ॥ २२ ॥
दुष्टानां शासके तस्मिन्नाज्ञासारे महीभुजि । दस्यु[13]नाम नामकाण्डेष्वदृश्यत जनेषु न ॥ २३ ॥
पवित्रं धारयामास हृदि सर्वज्ञशासनम् । श्रीवत्समिव शश्वत् स वत्सलो धर्मशालिषु[¶] ॥ २४ ॥
स्वान्ववायसरोहंसी रतिरूपविजित्वरी । जया नाम महादेवी तस्या[§]सीत् प्रीतिभाजनम् ॥ २५ ॥
सा जाह्नवीव गम्भीरा वक्र[14]मन्थरगामिनी । पूर्वाम्भोधिमिवा[15]स्ताघं वसुपूज्यमनोऽविशत् ॥ २६ ॥

---

* °ग्रमृष्टांह्रि° सं० का० ॥ † ये पुष्कलाव° सं० ॥ १ समग्रलक्ष्म्या उत्तमः । ‡ °नीजानिवज्जनवल्लभः सं० का० ॥ २ समुद्रवस्त्राम् । § °णिः । सर्वा परिखामेक° सं० ॥ ३ चपला–विद्युत्, चपला–चञ्चला । ४ वियोगिनः । ५ स्थानैर्वाहंद्भोत्रकः । ६ चम्पकशेखरकवत् । * लक्षितो ज° सं० ॥ ७ सहजसिद्धजलाः । † °द्दलां गा° का० सं० ॥ ८ मयूरध्वनीनाम् । ‡ संवाहिकाः सं० ॥ ९ 'बीटक' इति भाषायाम्–'बीडुं' । १० क्रीडार्थे पालिताः शुकाः हस्ते स्थापिता याभिः । ११ वसुः–सूर्यः । १२ याचकानाम् आमन्त्रणाय वाद्यमानैः डिण्डिमैः । १३ दस्योः नामानि केवलं कोशे एव । ¶ °धर्मशीलि° मु० ॥ § °स्याभूत् सं० ॥ १४ वक्रम्, मन्थरम्–मन्दं मन्दम् । १५ अस्ताघम्–भाषायाम् 'अथाग' इति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्भक्त्या परमात्मेव शुद्धस्फटिकनिर्मले । वसुपूज्यनृपोऽप्यस्याः सदा चेतस्यवर्तत ॥ २७ ॥
रूपेण लवणिम्ना च गुणैस्तैश्चानुरूपयोः । तयोर्विलसतोः कालः कोऽप्यद्वैतसुखो ययौ ॥ २८ ॥
इतः कल्पे प्राणताख्ये पद्मोत्तरमहीपतेः । जीवः स्वमायुरुत्कृष्टं सुखमग्नोऽत्यवाहयत् ॥ २९ ॥
ज्येष्ठस्य शुद्धनवम्यां चन्द्रे शतभिषग्गते । स च्युत्वा प्राणताज्जीवो जयाकुक्षाववातरत् ॥ ३० ॥
ईक्षाञ्चक्रे तदानीं च तीर्थकृज्जन्मसूचकान् । सुखसुप्ता जयादेवी* महास्वप्नांश्चतुर्दश ॥ ३१ ॥
मृगाङ्कमभ्रलेखेवाद्रिगुहेव मृगाधिपम् । तं गर्भं धारयामास जया स्वामिन्यनुत्तमम् ॥ ३२ ॥
फाल्गुनश्यामभूतेष्टातिथौ[1] भेऽपि च वारुणे । रक्तवर्णं महिषाङ्कं साऽसूत समये सुतम् ॥ ३३ ॥
संजातासनकम्पाः षट्पञ्चाशद्दिकुमारिकाः । स्वामिनः स्वामिमातुश्च सूतिकर्मैत्य चक्रिरे ॥ ३४ ॥
शक्रोऽपि पालकारूढस्तत्रैत्य सपरिच्छदः । स्वामिवत् स्वामिभवनं प्रदक्षिण्यकरोद् द्रुतम् ॥ ३५ ॥
तत् प्रविश्य जयादेव्या दत्त्वाऽवस्वापनीं हरिः । पार्श्वेऽर्हत्प्रतिबिम्बं च न्यस्याभूत् पञ्चमूर्तिकः ॥ ३६ ॥
मूर्त्यैकयाऽग्रहीन्नाथमातपत्रमथान्यया । द्वाभ्यां तु चमरे वल्गन्[2]न्यया तु पुरो ययौ ॥ ३७ ॥
सुमेरावमराधीशोऽतिपाण्डुकम्बलां शिलाम् । गत्वा सिंहासन उपाविक्षदङ्काहितप्रभुः ॥ ३८ ॥
अथाच्युतप्रभृतयस्त्रिषष्टिरपि वासवाः । स्वामिनं स्नपयामासुः कुम्भैस्तीर्थपयोभृतैः ॥ ३९ ॥
ईशानकल्पाधिपतेरङ्के जिनपतिं ततः । शक्रो निवेशयामास स्वकीय इव चेतसि ॥ ४० ॥
जिनेन्द्रस्य चतसृषु ककुप्सु स्फाटिकान् वृषान् । चतुरो भक्तिचतुरो विचकार पुरन्दरः ॥ ४१ ॥
तद्विषाणोत्थितैस्तोयैः† स्नपयामास स प्रभुम् । अन्येन्द्रस्नपनविधिवैलक्षण्यविचक्षणः ॥ ४२ ॥
उक्षणस्तानुपसंहृत्य स्वामिनोऽङ्गं प्रमृज्य च । विलिम्पति स्म गोशीर्षचन्दनेन दिवस्पतिः ॥ ४३ ॥
दिव्यैर्विभूषणैर्वस्त्रैरभ्यर्च्य कुसुमैरपि । रचिताऽऽरात्रिको नाथमस्तवीदिति वासवः ॥ ४४ ॥
चक्रिणां नैव चक्रेण गदया नार्धचक्रिणाम् । न चेशानस्य शूलेन न वज्रेण ममापि वा ॥ ४५ ॥
न चास्त्रैरपरेन्द्राणां यानि भेद्यानि जातुचित् । तानि कर्माणि भिद्यन्ते दर्शनेनापि नाथ ! ते ॥ ४६ ॥
नैव क्षीरोदवेलाभिर्न प्रभाभिः क्षपापतेः । नैव वारिधरासारैर्न च गोशीर्षचन्दनैः ॥ ४७ ॥
न वा निरन्तरै रम्भारामैः शाम्यन्ति ये खलु । सर्वे ते दुःखसंतापाः शीर्यन्ते दर्शनेन ते ॥ ४८ ॥
न ये नानाविधैः क्वाथैश्चूर्णैश्च[3] विविधैर्न ये । न च प्राज्यैः प्रलेपैर्ये न च ये शस्त्रकर्मभिः ॥ ४९ ॥
न च मन्त्रप्रयोगैर्ये छिद्यन्ते जातु देहिनाम् । आमयास्ते प्रलीयन्ते दर्शनेनापि ते प्रभो ! ॥ ५० ॥
खलूक्त्वा यदि वाऽनल्पमल्पमेतद् ब्रवीम्यहम् । यत् किञ्चिदप्यसाध्यं तत् साध्यते दर्शनेन ते ॥ ५१ ॥
त्वद्दर्शनस्यास्य फलमिच्छाम्येतज्जगत्पते ! । भूयो भूयः संप्रतीव भवद्दर्शनमस्तु मे ॥ ५२ ॥
एवं जिनपतिं स्तुत्वा गृहीत्वा च दिवस्पतिः । गत्वा पार्श्वे जयादेव्या मुमोच प्रणनाम च ॥ ५३ ॥
हृत्वाऽवस्वापनीं देव्यास्तच्चार्हत्प्रतिरूपकम् । ततो द्यां प्रययौ शक्रो मेरुतोऽन्ये तु वासवाः ॥ ५४ ॥
उत्सवं वसुपूज्योऽपि चक्रे सूर्य इवोदयम् । चेतांसि कमलानीव जगतोऽपि विकासयन् ॥ ५५ ॥
वसुपूज्य-जयादेव्यौ वासुपूज्य इति स्वयम् । यथार्थं नाम चक्राते शुभेऽहनि जगत्पतेः ॥ ५६ ॥
शक्रसंक्रमिताङ्गुष्ठसुधया स्वाम्यवर्धत । धात्र्योऽन्यकर्मभिर्धात्र्योऽर्हतां न स्तन्यदा[4] यतः ५७ ॥
पञ्चभिर्वासवादिष्टधात्रीभिः परमेश्वरः । छायावत् सहयात्रीभिर्लाल्यमानो[5] व्यवर्धत ॥ ५८ ॥
रत्नस्वर्णमयैर्दिव्यैः कदाचिदपि गेन्दुकैः[6] । शृङ्खलाभिर्वज्ररत्नसंकुलाभिः[7] कदाचन ॥ ५९ ॥

* देवी देवी स्व॰ सं॰ ॥　१ "भूतेष्टा तु चतुर्दशी"–अभिधानचिन्ता॰ कां॰ २ श्लो॰ ६५ ।　२ वल्गन् वेगेन गच्छन् ।
† तेषां शृङ्गोत्थितस्तोयैः सं॰ ॥　३ क्वाथाः–भाषायाम् 'काढा-उकाळा' इति ।　४ धात्र्यो मातरः ।　‡ दानतः सं॰ ॥
५ सहनिवासाभिः । ६ गेन्दुकाः–भाषायाम् 'गेंद-दडा' इति ।　७ शृङ्खलाः 'सांकल' इति भवेत् ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

कदाचिच्च भ्रमरकै[1]र्भ्रामिभिर्भ्रमरैरिव । कदाऽप्यामलकीवृक्षारोहणैः सपणं[2] मिथः ॥ ६० ॥
कदाचिद् वेगयानेनान्तर्धानेन[3] कदाचन । कदाचित् फालदानेन कदाऽप्युत्पतनेन च ॥ ६१ ॥
कदाचिद् वारितरणैः सिंहनादैः कदाचन । कदाचिन्मुष्टियुद्धेन नियुद्धेन[4] कदाचन ॥ ६२ ॥
आगतैः सवयोभूय देवासुरकुमारकैः । बाल्योचितं प्रभुः क्रीडन् व्यत्यलङ्घिष्ट शैशवम् ॥ ६३ ॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥

स सप्ततिधनुस्तुङ्गः सर्वलक्षणलक्षितः । मृगीदृशां संवननं[5] प्रपेदे यौवनं प्रभुः ॥ ६४ ॥
वसुपूज्य-जयादेव्यौ वात्सल्यादपरेऽहनि । इत्यूचाते वासुपूज्यं भवसौख्यपराङ्मुखम् ॥ ६५ ॥
जातेनापि त्वयाऽस्माकं जगतश्च मनोरथाः । पूर्णास्तथाऽपि वक्ष्यामः कस्तृप्येदमृतस्य हि ॥ ६६ ॥
मध्यदेशे वत्सदेशे गौडेषु मगधेषु च । कोसलेषु* तोसलेषु तथा प्राग्ज्योतिषेष्वपि ॥ ६७ ॥
नेपालेषु विदेहेषु कलिङ्गेषूत्कलेषु च । पुण्ड्रेषु ताम्रलिप्तेषु† मूलेषु मलयेष्वपि ॥ ६८ ॥
मुद्गरेषु मल्लवर्तेषु च ब्रह्मोत्तरेषु च । अपरेष्वपि देशेषु पूर्वाशाभूषणेष्वपि ॥ ६९ ॥
डाहलेषु दशार्णेषु विदर्भेष्वश्मकेषु च । कुन्तलेषु महाराष्ट्रेष्वन्ध्रेषु मुरलेषु च ॥ ७० ॥
क्रथ-कैशिक-सूर्पार-केरल-द्रमिलेषु च । पाण्ड्य-दण्डक-चौडेषु नाशिक्य‡-कौङ्कणेषु च ॥ ७१ ॥
कौबेर§-वानवासेषु कोल्लाद्रौ सिंहलेषु च । अपरेष्वपि देशेषु दक्षिणाशाविवर्तिषु ॥ ७२ ॥
अपरेष्वपि¶ राष्ट्रेषु सुराष्ट्र-त्रिवणेषु च । दशेरकेष्वर्बुदेषु कच्छेष्वावर्तकेषु** च ॥ ७३ ॥
तथा ब्राह्मणवाहेषु यवनेष्वथ सिन्धुषु । अपरेष्वपि राष्ट्रेषु पश्चिमामध्यवर्तिषु ॥ ७४ ॥
शक-केकय-वोक्काण-हूण-वानायुंजेषु†† च । पञ्चालेषु कुलूतेषु तथा कश्मीरकेष्वपि ॥ ७५ ॥
कम्बोजेषु वाल्हीकेषु जाङ्गलेषु कुरुष्वथ । कौबेरीवर्तिषु तथा मण्डलेष्वपरेष्वपि ॥ ७६ ॥
याम्यार्धभरतक्षेत्र‡‡सीमसेतुनिभे गिरौ । वैताढ्येऽप्युभयश्रेण्योर्नानाजनपदेषु च ॥ ७७ ॥
कुलीनाः कृतिनः शूरा महाकोशा यशस्विनः । चतुरङ्गबलोपेताः प्रजापालनविश्रुताः ॥ ७८ ॥
निष्कलङ्काः सत्यसंधा नित्यं धर्मेऽनुरागिणः । नरेन्द्राः खेचरेन्द्राश्च ये केचिदिह तेऽधुना ॥ ७९ ॥
तुभ्यं दातुं निजाः कन्या महाप्राभृतपाणिभिः । अश्रान्तं¶¶ प्रेषितैर्दूतैः प्रार्थयन्ते कुमार§§ ! नः ॥ ८० ॥
॥ चतुर्दशभिः कुलकम् ॥

तेषामस्माकमप्युच्चैः पूर्यतां तन्मनोरथः । तव तत्कन्यकानां च विवाहोत्सवदर्शनात् ॥ ८१ ॥
गृह्यतां राज्यमप्येतत् कुलक्रमसमागतम् । वार्द्धकेऽस्माकमुचितं व्रतादानमतः परम् ॥ ८२ ॥
वासुपूज्यकुमारोऽपि व्याजहारेति सस्मितम् । भवतां युक्तमेवैतत् पुत्रप्रेमोचितं वचः ॥ ८३ ॥
परं संसारकान्तारे भ्रामंभ्राममसावहम् । सार्थवाहबलीवर्द इव खिन्नोऽस्मि संप्रति ॥ ८४ ॥
कुत्र कुत्र न वा देशे कुत्र कुत्र पुरे न वा । कुत्र कुत्र न वा ग्रामे कुत्र कुत्राकरे न वा ॥ ८५ ॥
कुत्र कुत्र न वाऽटव्यां कुत्र कुत्र गिरौ न वा । कुत्र कुत्र न वा नद्यां कुत्र कुत्र नदे न वा ॥ ८६ ॥
कुत्र कुत्र न वा द्वीपे कुत्र कुत्रार्णवे न वा । नानारूपपरावर्तैरनन्तकालमभ्रमम् ॥ ८७ ॥
एष छेत्स्यामि संसारं नानायोनिभ्रमास्पदम् । अलं कन्योद्वाहराज्यैः संसारतरुदोहदैः ॥ ८८ ॥

---

१ भ्रमरकाः–'भमरडा' इति भाषायाम् । २ पणः–प्रतिज्ञावाक्यम्, 'होड–शरत' इति भाषायाम् । ३ गूर्जरभाषायाम् 'संताई जवुं'–'संताकूकडी' नामनी रमत । ४ बाहुयुद्धेन । ५ वशीकरणम् । * °षु सास° सं० ॥ † °षु सुह्मेषु सं० ॥ ‡ शिक्ये कोङ्क° सं० ॥ § °कावेर सं० ॥ ¶ देशसमेषु लाटेषु सुराष्ट्र–द्रविणेषु च सं० ॥ ** °ष्वानर्तकेषु सं० ॥ †† °नायजे° सं० ॥ ‡‡ °क्षेत्रे सी सं० ॥ §§ °मार ! ते । सं० ॥ ¶¶ °मन्तं का°–सं० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रव्रज्या-केवलज्ञान-निर्वाणगमनैः*रपि । जन्मनैवोत्सवो भावी तातस्य जगतोऽपि च ॥ ८९ ॥
वसुपूज्यनृपोऽप्येवमभ्यधात् सास्रलोचनः । भवन्तं हन्त ! जानामि संसारतरणोत्सुकम् ॥ ९० ॥
इदं जन्म पारमिव भवाम्भोधेस्त्वमासदः । ज्ञातं तैस्तैर्महास्वप्नैस्तीर्थकृज्जन्मसूचकैः ॥ ९१ ॥
असंशयं त्वया तीर्ण एवैष भवसागरः । दीक्षा-केवल-निर्वाणोत्सवाश्च खलु भाविनः ॥ ९२ ॥
अवान्तरोत्सवमिमं किं तु वाञ्छामि तावकम् । अप्यसत्पूर्वपुरुषैर्मुमुक्षुभिरनुष्ठितम् ॥ ९३ ॥
तथा हीक्ष्वाकुवंशादिर्भगवानृषभध्वजः । सुमङ्गलां सुनन्दां चोपयेमे पितृशासनात् ॥ ९४ ॥
पितुरेवाज्ञया राज्यं ससर्जापालयच्च सः । भोगांश्च भुक्त्वा समये प्रव्रज्यां समुपाददे ॥ ९५ ॥
पश्चादप्यात्तया मोक्षं दीक्षया प्राप स प्रभुः । मोक्षो ग्राम इवासन्नः सुप्रापस्त्वादृशां खलु ॥ ९६ ॥
अन्येऽप्यजितनाथाद्याः श्रेयांसान्ताः पितुर्गिरा । उदूहुरूहुश्च महीं ततो मोक्षमसाधयन् ॥ ९७ ॥
भवानपि करोत्वेवं पूर्वाननुकरोतु च । विवाह-राज्यवहन-दीक्षा-निर्वाणसाधनैः ॥ ९८ ॥
वासुपूज्यकुमारोऽपि सप्रश्रयमभाषत । तात ! ज्ञातास्मि पूर्वेषां सर्वेषां चरितान्यहम् ॥ ९९ ॥
किं त्वत्र संसारपथे न हि केनापि कस्यचित् । स्वकुलेऽन्यकुले वाऽपि कर्मसादृश्यमीक्ष्यते ॥ १०० ॥
सावशेषाणि कर्माणि तेषां भोगफलानि हि । तत् तानि चिच्छिदुर्भोगैस्ते ज्ञानत्रयधारिणः ॥ १०१ ॥
न मे भोगफलं कर्म किञ्चिदप्यवशिष्यते । मोक्षप्रत्यूहभूतं तन्नैवमादेष्टुमर्हथ ॥ १०२ ॥
मल्लिर्नेमिः पार्श्व इति भाविनोऽपि त्रयो जिनाः । अकृतोद्वाहसाम्राज्याः प्रव्रजिष्यन्ति मुक्तये ॥१०३॥
श्रीवीरश्चरमश्चार्हन्नीषद्भोग्येन कर्मणा । कृतोद्वाहोऽकृतराज्यः प्रव्रजिष्यति सेत्स्यति ॥ १०४ ॥
ततश्च कर्मवैचित्र्यात् पन्था नैकोऽर्हतामपि । विचार्येत्यनुजानीथ मा भूत प्रेमकातराः ॥ १०५ ॥
एवं प्रबोध्य पितरौ वर्षलक्षेषु जन्मतः । गतेष्वष्टादशस्वीशो जज्ञे दीक्षार्थमुत्सुकः ॥ १०६ ॥
ज्ञात्वा चासनकम्पेन स्वामिदीक्षाक्षणं क्षणात् । ब्रह्मलोकादुपाजग्मुस्तत्र लौकान्तिकामराः ॥ १०७ ॥
ते त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च जगद्गुरुम् । इति विज्ञपयामासुः स्वामिन् ! तीर्थं प्रवर्तय ॥ १०८ ॥
एवं विज्ञप्य यातेषु तेषु कल्पं निजं पुनः । अदत्त वार्षिकं दानमवदानपरः प्रभुः ॥ १०९ ॥
तद्दानान्तेऽभ्येत्य दीक्षाभिषेकोत्सवमीशितुः । इन्द्राश्चक्रुः प्रावृडन्त इन्द्रोत्सवमिव प्रजाः ॥ ११० ॥
ततश्च पृथिवीं नाम सुरा-ऽसुर-नरैः कृताम् । समारुरोह शिबिकां सिंहासनविभूषिताम् ॥ १११ ॥
तत्राङ्घ्रिपीठन्यस्ताङ्घ्रिर्मणिसिंहासनस्थितः । राजहंस इव स्वर्णाम्भोरुहोत्सङ्गमाश्रितः ॥ ११२ ॥
कैश्चिदग्रस्थितैः स्वस्वशस्त्रोल्लालनलालसैः । दिव्यच्छत्रकरैः कैश्चित् कैश्चिच्चामरधारिभिः ॥ ११३ ॥
तालवृन्तधरैः कैश्चित् कैश्चिच्चामरधारिभिः । पुष्पदामधरैः कैश्चिद् वासवैः परिवारितः ॥ ११४ ॥
अमरैरसुरैर्मर्त्यैः सेव्यमानो जगत्पतिः । विहारगृहमित्युच्चैर्ययावथ वनोत्तमम् ॥ ११५ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

चूताङ्कुरास्वादहृष्टैः परपुष्टैः कलस्वनैः । प्रस्तूयमानस्तवन इव भक्तिप्रकर्षतः ॥ ११६ ॥
अनिलान्दोलनस्रस्तकुसुमस्तबकच्छलात् । प्रदीयमानाघ इव प्रत्यग्राशोकपादपैः ॥ ११७ ॥
उच्छलच्चम्पकाशोकमकरन्दापदेशतः । पादार्चायै ढौक्यमानपाद्योदक इवामरैः ॥ ११८ ॥
अमन्दलवलीपुष्पमधुपानोन्मदिष्णुभिः । रोलम्बललनावृन्दैः कृतोल्लुलुरिवोच्चकैः ॥ ११९ ॥

* °मनैर्मम । सं० ॥ १ तव इदम् । २ परिणीताः । ३ ऊढाः—धृता इत्यर्थः । ४ सस्नेहम् । ५ उद्वाहः—विवाहः । ६ सिद्धो भविष्यति । † °ल्यं जिनः पु° सं० ॥ ७ अवदानम्—पराक्रमः । ‡ प्रभोः सं० ॥ ८ उत्सङ्गः—क्रोडः । ९ उल्लालनम्—भाषायाम्—ऊकालवुं'। § °श्चित् स्तवनकारिभिः । सं० ॥ १० कोकिलैः । ११ प्रत्यग्रः नवीनः । १२ अपदेशतः—मिषतः । ¶ पादाचान्त्यै ढौ° सं० ॥ १३ रोलम्बो भ्रमरः । ** कृतोल्लास इवो°—सं० ॥ १४ उलुलुः मङ्गलध्वनिः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

उत्फुल्लसुमनोभूरिभाराऽऽनमितमूर्धभिः । कर्णिकारैरुपक्रान्तनमस्कार इवाधिकम् ॥ १२० ॥
पुष्पाभरणरम्याभिर्लोलपल्लवपाणिभिः । वासन्तीभिः प्रमोदेनारब्धनृत्य इवाग्रतः ॥ १२१ ॥
शोभाविशेषं जनयँल्लता-पादप-वीरुधाम् । प्रविवेश तदुद्यानं स्वामी मधुरिवापरः ॥ १२२ ॥
॥ सप्तभिः कुलकम् ॥
शिबिकातस्तदोत्तीर्य स्वामी स्रग्भूषणादिकम् । मुमोच फाल्गुने मासि पत्राणीव महीरुहः ॥ १२३ ॥
इन्द्रन्यस्तं देवदूष्यं स्कन्धदेशे समुद्वहन् । चतुर्थेन पञ्चमुष्टिकेशोत्पाटनपूर्वकम् ॥ १२४ ॥
फाल्गुनस्यामावास्यायां वारुणे भेऽपरेऽहनि । राज्ञां षड्भिः शतैः सार्धं प्राव्राजीत् परमेश्वरः ॥१२५॥ युग्मम् ॥
सुरासुरनराधीशा नमस्कृत्य जगद्गुरुम् । स्थानं निजनिजं जग्मुर्दानान्ते याचका इव ॥ १२६ ॥
महापुरे द्वितीयेऽह्नि सुनन्दनृपसद्मनि । चकार परमान्नेन पारणं परमेश्वरः ॥ १२७ ॥
देवैश्च विदधे दिव्यवसुधारादिपञ्चकम् । रत्नपीठं सुनन्देन चाङ्घ्रिस्थाने जगद्गुरोः ॥ १२८ ॥
ततः स्थानादथान्येषु ग्रामा-ऽऽकर-पुरादिषु । प्रावर्तिष्ट विहाराय समीरण इव प्रभुः ॥ १२९ ॥
इतश्च नगरे पृथ्वीपुरे नृपशिरोमणिः । नाम्ना पवनवेगोऽभूद् भवं सोऽन्वेशिषचिरम् ॥ १३० ॥
पार्श्वे श्रवणसिंहर्षेरादाय समये व्रतम् । दुस्तपं स तपस्तप्त्वा विपद्यागादनुत्तरे ॥ १३१ ॥
इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन् भरतार्धेऽत्र दक्षिणे । पुरं विन्ध्यपुरं नामास्त्यवन्ध्यं सर्वसंपदाम् ॥१३२॥
तत्र नाम्ना विन्ध्यशक्तिर्विन्ध्याद्रिरिव सारतः । आसीन्नृपतिशार्दूलः शत्रुतूलमहानिलः ॥ १३३ ॥
मिथः संसृजतोस्तस्य कोदण्डभुजदण्डयोः । प्रचुक्षुभुर्भूमिभुजो ग्रहयोः क्रूरयोरिव ॥ १३४ ॥
नितान्ताऽऽरक्तया क्रूरभ्रकुटीभङ्गभीमया । गिलन्निव स दृष्ट्याऽपि नश्यद्भिर्ददृशेऽरिभिः ॥ १३५ ॥
शिश्रिये सोऽरिभिरपि निजजीवितकाम्यया । तेऽदुश्च दण्डे सर्वस्वं प्राणान् रक्षेद् धनैरपि ॥ १३६ ॥
एकदा सर्वसामन्तामात्याद्यैः परिवारितः । स आस्थान्यामुपाविक्षत् सुधर्मायामिवाद्रिभित् ॥ १३७ ॥
आजगाम चरश्चैको वेत्रिणा च प्रवेशितः । नमस्कृत्योपविश्याग्रे व्यजिज्ञपदिदं शनैः ॥ १३८ ॥
जानासि देव ! यदिह भरतार्धेऽस्ति दक्षिणे । लक्ष्मीनिधानं साकेतमिति नाम्ना महापुरम् ॥ १३९ ॥
आर्षभेरिव सेनानीः प्रभूतबलसंपदा । पर्वतो नाम तत्रास्ति महाबाहुर्महीपतिः ॥ १४० ॥
स्वरूपेणोर्वशी-रम्भापराभवनिबन्धनम् । धनं रतिपतेस्तस्य वेश्याऽस्ति गुणमञ्जरी ॥ १४१ ॥
तस्या वदननिर्माणावशिष्टैः परमाणुभिः । विदधे वेधसा मन्ये पूर्णिमारजनीकरः ॥ १४२ ॥
किमस्मदधिकं हन्त ! लावण्यं क्वापि शुश्रुवे । इति प्रष्टुमिव दृशौ तस्याः कर्णावुपेयतुः ॥ १४३ ॥
तस्या वक्षसि वक्षोजौ तथा वैशाल्यशालिनौ । यथा तयोरुपमानं तावेव हि न चापरम् ॥ १४४ ॥
मध्यं चातिकृशं तस्याः सहवासोत्थसौहृदात् । समर्पितपरीणाहमिवोच्चैः स्तनकुम्भयोः ॥ १४५ ॥
पाणी पादौ च रेजाते तस्या राजीवकोमलौ । कङ्केल्लिपल्लवायासकारिणौ रागसंपदा ॥ १४६ ॥
सा गीते कलकण्ठीव नृत्ते स्वयमिवोर्वशी । वीणावाद्ये च मधुरे तुम्बुरोरिव सोदरा ॥ १४७ ॥
नारीषु रत्नभूता सा देवस्यैव हि युज्यते । युवयोरुचितो योगः स्वर्णमण्योरिवास्तु तत् ॥ १४८ ॥
भोज्येनालवणेनेव मुखेनेवापचक्षुषा । अचन्द्रया रजन्येव किं ते राज्येन तां विना ॥ १४९ ॥
इत्याकर्ण्य वचो राजा याचितुं गुणमञ्जरीम् । उपपर्वतकं प्रैषीन्मन्त्रिणं दूतकर्मणा ॥ १५० ॥
जङ्घालैर्वाहनैर्व्योम तरद्भिरिव रंहसा । गत्वा स साकेतपुरं नृपं पर्वतमभ्यधात् ॥ १५१ ॥

---

१ वसन्तः । २ प्रशास । ३ सारो बलम् । ४ तूलम्–भाषायाम्–'रू' इति । ५ सभायाम् । ६ इन्द्रः । ७ ऋषभपुत्रस्य भरतस्य सेनानीः इव । ८ परीणाहो विस्तारः । ९ राजीवम्–कमलम् । * कङ्किल्लिप° सं० ॥ कङ्केल्लिः–अशोकतरुः । १० तुम्बुरुः गानकलानिपुणतमो गायकजातिविशेषः । ११ पर्वतनृपस्समीपम् । १२ द्रुतगतिभिः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नान्यस्त्वत्तो विन्ध्यशक्तिस्तस्मात् त्वमपि नापरः । द्वयोरभेद एवेह वार्धिकल्लोलजालवत् ॥ १५२ ॥
द्वयोरप्येक एवात्मा विभिन्ने वपुषी परम् । त्वदीयं यत् तदीयं तत् तदीयमपि तावकम् ॥ १५३ ॥
तव च* स्तूयते वेश्या नामतो गुणमञ्जरी । स्वान्तिकं विन्ध्यशक्तिस्तामानाययति कौतुकात् ॥१५४॥
सा स्वबन्धोः स्वतुल्यस्य याचमानस्य दीयताम् । दाने साधारणस्त्रीणां ग्रहणे च न गर्हणा ॥ १५५ ॥
इत्युक्तो मन्त्रिणा तेन यष्टिस्पृष्ट इवोरगः । कोपकम्प्राधरदलोऽवदत् पर्वतकोऽप्यदः ॥ १५६ ॥
उच्यते स कथं बन्धुर्विन्ध्यशक्तिर्दुराशयः । प्राणेभ्योऽपि प्रियां यो मे याचते गुणमञ्जरीम् ॥१५७॥
मुहूर्तमपि न स्थातुं विना यामलमस्म्यहम् । तां तेनादित्सुना[1] प्राणा अप्युपादित्सिता[2] मम ॥ १५८ ॥
दासीमपि न दास्यामि किं पुनर्गुणमञ्जरीम् । अस्तु मित्रममित्रो वा विन्ध्यशक्तिः स्वशक्तितः ॥१५९॥
उत्तिष्ठ गच्छ त्वं तस्मै गत्वाऽऽख्याहि यथातथम् । राज्ञां भवन्ति दूता हि यथावस्थितवादिनः ॥१६०॥
उत्थाय सोऽपि सचिवः साचि[3]विक्षिप्तलोचनः । आरुह्य वाहनान्यागाद् विन्ध्यशक्तेरथान्तिकम् ॥१६१॥
पर्वतकव्यतिकरं तं व्याचख्यावशेषतः । हुताहुतिरि[4]वार्चिष्मान् क्रुधा जज्वाल तत्प्रभुः ॥ १६२ ॥
मैत्रीं चिरभवां लुप्त्वा मर्यादामिव सागरः । विन्ध्यशक्तिश्चचालाऽभिपर्वतं गर्वपर्वतः ॥ १६३ ॥
पर्वतोऽप्याजगामाभिमुखं[5] स्वबल†वाहनः । शूराणां ह्यभिगमनं सुहृदीवासुहृद्यपि ॥ १६४ ॥
द्वयोरप्यग्रसैन्यानां युद्धं प्रववृते ततः । चिराद् दोर्दण्डकण्डूतिरुजा[6]ऽपनयनौषधम् ॥ १६५ ॥
अभ्यसर्पन्नवासर्पन् सैन्ययोरुभयोरपि । भटाः परस्परं वेदियोधिनो[7] द्विरदा इव ॥ १६६ ॥
कुन्तप्रोतोऽपि 'हुं' कुर्वन् कश्चिदस्खलितं भटः । तन्तुप्रोतो मणिरिव संचचाराभिवैरिणम् ॥ १६७ ॥
धनुर्धरवरोन्मुक्तनिरन्तरशरैरभूत् । अभिलून[8]शरवणारण्यभूरिव युद्धभूः ॥ १६८ ॥
पतद्भिः परिघैः शल्यैर्गदाभिर्मुद्गरैरपि । सर्पैरिव परप्राणहरैर्व्यानशिरे दिशः ॥ १६९ ॥
इतः क्षणं क्षणमितः सैन्ययोरुभयोरपि । जयः समोऽभवज्ज्योत्स्नाप्रसरः पक्षयोरिव[9] ॥ १७० ॥
अथ सर्वाभिसारेण धनुरास्फालयन् स्वयम् । रथारूढः पर्वतकः समराय[10]ोदतिष्ठत ॥ १७१ ॥
युगपद्बाणवर्षेण परसैन्यं तिरोदधे । अन्तरिक्षमिवानीकै[11]प्रोत्खातावनिपांसुभिः ॥ १७२ ॥
केसरीवे[12]भयूथेषु परसैन्येषु स क्षणात् । महान्तं प्रलयं चक्रे कृतान्तस्येव भोजनम् ॥ १७३ ॥
अरुध्यमानप्रसरो विन्ध्यशक्तेर्बलानि सः । मङ्क्षु प्रभञ्जनो वृक्षानिवाभाङ्क्षीन्महाबलः ॥ १७४ ॥
क्रुद्धः स्वसैन्यभङ्गेन विन्ध्यशक्तिर्महाभुजः । परान्[13] संहर्तुमुत्तस्थे कालरात्रेरिवानुजः ॥ १७५ ॥
न सेहे पर्वतानीकैर्विन्ध्यशक्तिः समापतन् । कुरङ्गैरिव शार्दूलः सुपर्णः[14] पन्नगैरिव ॥ १७६ ॥
सोऽथ विद्रुतसैन्यं तं स्थितं पर्वतकं पुरः । रणायाऽऽह्वास्त कोदण्डदोर्दण्डबलगर्वितः ॥ १७७ ॥
नाराचैस्तल्लैरर्धचन्द्रैर्यमदैरिव‡ । भूभुजौ युयुधाते तावन्योऽन्ययुद्धकाङ्क्षिणौ ॥ १७८ ॥
रथं रथ्यान् सारथिं च रथिनौ तावथो मिथः । ममन्थतुः परिभवाऽऽपमित्यक[15]धराविव ॥ १७९ ॥
ततोऽपररथारूढावभ्याटतु[16]रुभावपि । विन्ध्यशक्ति-पर्वतकौ कल्पान्ते पर्वताविव ॥ १८० ॥
सर्वशक्त्या विन्ध्यशक्तिनृपः पर्वतकं नृपम् । चक्रे निरस्त्रं निर्वीर्यं द्विजिह्वमिव निर्विषम् ॥ १८१ ॥

---

* च श्रूयते सं० ॥ १ आदित्सुः–ग्रहीतुमिच्छुः । २ उपादित्सिताः ग्रहीतुमिच्छाविषयीकृताः । ३ साचिः–तिर्यक्–वक्रम् । ४ हुता आहुतिः यस्मिन् । ५ पर्वतसंमुखम् । † °स्वं सव° सं० । ६ कण्डूतिरुजा–भाषायाम् 'चळसंजवाळ' । ७ वेदिः परिष्कृता भूमिः तस्यां योधिनः । ८ सर्वतः छिन्नम्–अभिलूनम् । ९ शुक्ल-कृष्णपक्षयोः । १० समराय युद्धाय, उद्–तिष्ठत–उत्थितः–सज्जो जातः । ११ अनीकेन सैन्येन प्रोत्खाताभिः 'उखेडेली–उडाडेली' अवनिधूलिभिः । १२ 'केसरी इव इभ–यूथेषु' इति विभागः । १३ शत्रून् । १४ गरुडः । ‡ °चैस्तोमरैरर्ध°–सं० ॥ °न्ययुद्धकाङ्क्षि–सं० ॥ १५ आपमित्यकम् विनिमयेन–(अदलेबदले)–आनीतं धनादि । १६ अभिआटतुः–अभिजग्मतुः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

महेभेनेव कलभोऽभिभूतो विन्ध्यशक्तिना । पलायिष्ट पर्वतकः पश्चादनवलोकयन् ॥ १८२ ॥
अथाऽग्रहीद् विन्ध्यशक्तिर्वेश्यां तां गुणमञ्जरीम् । हस्त्याद्यन्यच्च सर्वस्वं तस्य श्रीर्यस्य विक्रमः ॥१८३॥
आपूर्ण इव पाथोदो निवृत्त्य रणसागरात् । कृतकृत्यो विन्ध्यशक्तिर्ययौ विन्ध्यपुरं ततः ॥ १८४ ॥
[1]फालाच्युत इव द्वीपी [2]प्रालम्बादिव वानरः । रणभग्नः पर्वतकः कष्टं तस्थौ [3]तदादि सः ॥ १८५ ॥
पराभूत्या तया [4]ह्रीणो नृपः पर्वतकोऽपि हि । संभवाचार्यपादान्ते परिव्रज्यामुपाददे ॥ १८६ ॥
स तपो दुस्तपं तेपे निदानं चाकरोदिति । विन्ध्यशक्तेर्वधायाहं [5]भूयासमपरे भवे ॥ १८७ ॥
[6]तुषैरिव स माणिक्यं विक्रीयेत्थं महत् तपः । कृत्वाऽन्तेऽनशनं मृत्वा चाभवत् प्राणते सुरः ॥ १८८ ॥
विन्ध्यशक्तिर्भवे भ्रान्त्वा चिरमेकत्र जन्मनि । जिनलिङ्गमुपादाय मृत्वा कल्पामरोऽभवत् ॥ १८९ ॥
च्युत्वा च विजयपुरे पत्न्यां श्रीधरभूपतेः । श्रीमत्यामजनि श्रीमाँस्तारको नाम दारकः ॥ १९० ॥
स सप्ततिधनुस्तुङ्गः कज्जलश्यामलाकृतिः । द्विसप्तत्यब्दलक्षायुर्बभूवामितदोर्बलः ॥ १९१ ॥
सोऽन्ते पितुः प्राप चक्रं भरतार्धमसाधयत् । भवन्ति ह्यर्धभरतस्वामिनः प्रतिविष्णवः ॥ १९२ ॥
इतश्च द्वारका नाम सुराष्ट्रमुखमण्डनम् । पश्चिमाम्भोधिकल्लोलधौतवप्रतलाऽस्ति पूः ॥ १९३ ॥
अजिह्मविक्रमस्तस्यां [7]विश्वाक्रमनिवारणः । जिष्णोः सब्रह्मचारीव ब्रह्मेत्यासीन्महीपतिः ॥ १९४ ॥
अन्तःपुरप्रधाने च तस्याभूतामुभे प्रिये । सुभद्रोमे गङ्गा-सिन्धू लवणाम्भोनिधेरिव ॥ १९५ ॥
प्रेयसीभ्यां समं ताभ्यां चिरं वैषयिकं सुखम् । ब्रह्माऽन्वभूत् सुष्ठु रति-प्रीतिभ्यामिव मन्मथः ॥१९६॥
इतश्च पवनवेगजीवोऽनुत्तरतश्च्युतः । महादेव्याः सुभद्राया उदरे समवातरत् ॥ १९७ ॥
सुखसुप्ता तदानीं च सुभद्रा देव्युदैक्षत । हलभृज्जन्मशंसित्रीं महास्वप्नचतुष्टयीम् ॥ १९८ ॥
पुण्डरीकमिव गङ्गा प्राचीव [8]तुहिनद्युतिम् । समयेऽसूत सा सूनुं स्फटिकोपलनिर्मलम् ॥ १९९ ॥
[9]कारामोक्षादिना यच्छञ्जगतोऽपि परां मुदम् । सूनोर्विजय इत्याख्यामकार्षीद् ब्रह्मभूपतिः ॥ २०० ॥
विभिन्नकर्मायुक्ताभिर्धात्रीभिः सोऽथ पञ्चभिः । लाल्यमानो ययौ वृद्धिं सहैव स्ववपुःश्रिया ॥ २०१ ॥
चलत्काञ्चन[10]ताडङ्को लोलरत्न[11]ललन्तिकः । हेमा[12]सिधेनुरुचिरसौवर्णकटिसूत्रकः ॥ २०२ ॥
पादबद्ध*रणरणद्रत्नघर्घरमालिकः । [13]काकपक्षधरः क्रीडन् स कस्य न ददौ मुदम् ? ॥ २०३ ॥ युग्मम् ॥
प्रच्युत्य प्राणतात् सोऽपि जीवः पर्वतभूपतेः । सरस्यां हंसवदुमादेव्याः कुक्षाववातरत् ॥ २०४ ॥
सुप्ता सप्त महास्वप्नान् [14]शार्ङ्गभृज्जन्मसूचकान् । मुखे प्रविशतोऽद्राक्षीदुमादेवी तदैव हि ॥ २०५ ॥
ततो नवसु मासेषु दिनेष्वर्धाष्टमेषु च । पूर्णाम्भोदमिव प्रावृट् सा श्यामं सुषुवे सुतम् ॥ २०६ ॥
ब्रह्माऽथ परमब्रह्मनिमग्न इव संमदात् । अर्थिनः प्रीणयँश्चक्रे सूनोर्जन्ममहोत्सवम् ॥ २०७ ॥
शुभेषु ग्रह-नक्षत्र-तिथि-वारेषु सोत्सवम् । सूनोर्द्विपृष्ठ इत्याख्यां यथार्थामकरोन्नृपः ॥ २०८ ॥
अङ्गणोद्भूतकङ्केल्लिमिव तापसयोषितः । पञ्चभिः कर्मभिः पञ्च धात्र्यस्तं पर्यलालयन् ॥ २०९ ॥
धावन्तमुल्ललन्तं वा धात्र्यस्तं स्वैरचारिणम् । [15]पारिप्लवं पारदवन्नादातुं पाणिनाऽशकन् ॥ २१० ॥
पितुर्मातुर्ज्यायसश्च भ्रातुः सह मुदाऽन्वहम् । दर्शयन्नन्तरं स्वस्य द्वितीयो ववृधे हरिः ॥ २११ ॥
कट्यां हृदि च पृष्ठे च स्कन्धदेशे च तं मुहुः । [16]विजयो धारयामास धात्री षष्ठीव सौहृदात् ॥ २१२ ॥
अव†तस्थौ ययौ [17]शिश्ये न्यषीदद् बुभुजे पपौ । द्विपृष्ठोऽप्यनुविजयं स्नेहकार्मणयन्त्रितः ॥ २१३ ॥

---

१ फालो–भाषायाम्–'फाल भरवी' । २ प्रालम्बः शाखा । ३ ततः प्रभृति । ४ लज्जितः । ५ भवेयम् इत्यर्थः । ६ 'तुष' इति–भाषायाम्–'तुंसां–फोफां' । ७ विश्व-आक्रमण-निवारकः । ८ तुहिनद्युतिः–चन्द्रः । ९ कारा-कारागृहम्, 'केद' इति भाषायाम् । १० ताडङ्कः–कुण्डलम् । ११ ललन्तिका–कण्ठभूषा लम्बमाना । १२ असिधेनुः–छुरिका । * °रणझण° सं० ॥ १३ बालानां शिखा काकपक्षः । १४ शार्ङ्गभृत्–वासुदेवः । १५ चञ्चलम् । १६ द्विपृष्ठभ्राता तन्नामा बलदेवः । † °तस्थे य° सं० ॥ १७ निद्रां चकार ।

निमित्तीकृत्य चाचार्यमलङ्घ्यात् पितृशासनात् । काले कला जगृहतुर्लीलया सीरि-शार्ङ्गिणौ ॥ २१४ ॥
अलब्धमध्यौ धवलश्यामलौ तौ सहोदरौ । क्षीरोद-लवणाम्भोधी इवाऽभातां वपुर्भृतौ ॥ २१५ ॥
नीलपीताम्बरधरौ तौ ताल-गरुडध्वजौ । मेनाते तारकस्याज्ञां बालावपि च न क्वचित् ॥ २१६ ॥
आज्ञातिक्रमदोर्वीर्याधृष्यत्वादिकमेतयोः । दृष्ट्वा गत्वा तारकाय स्पशः[1] स्पष्टमदोऽवदत् ॥ २१७ ॥
देव! द्वारवतीभर्तुस्तनयावतिदुर्मदौ । आज्ञां तव न मन्येते वाय्वग्नी इव तौ युतौ ॥ २१८ ॥
कौशलं सर्वशस्त्रेषु विद्यानामपि सिद्धयः । उदपद्यन्त दोर्दण्डस्थामालङ्करणं तयोः ॥ २१९ ॥
न चैतौ प्रतिभासेते देव! त्वां प्रति शोभनौ । अतः परं यदुचितं तदाचर चरोऽस्म्यहम् ॥ २२० ॥
तारकः कोपतरलः प्रस्फुरन्नेत्रतारकः । आदिक्षदिति सेनान्य*मसामान्यपराक्रमम् ॥ २२१ ॥
सर्वात्मनाऽपि सज्जित्वा पुरस्ताद्† भट! वादय । प्रयाणभम्भामद्यैव सामन्ताह्वानदूतिकाम् ॥ २२२ ॥
निहन्तव्यः सपुत्रोऽपि जिह्मधी[2]र्ब्रह्मभूपतिः । संजायते व्याधिरिव द्विषन् विषमुपेक्षितः ॥ २२३ ॥
अथैवं सचिवोऽवोचत् सम्यग्देवाऽवधारय । अद्य यावत् स सामन्तः पर्त्तिर्वा‡ ब्रह्मभूपतिः ॥ २२४ ॥
विना मिषं[3]मकाण्डेऽपि यात्रा तं प्रति नोचिता । एवं ह्यन्यप्रकृती[4]नामपि शङ्काऽऽस्पदं भवेत् ॥ २२५ ॥
साशङ्के[5] न हि विश्वासो विश्वासेन विना पुनः । मन्त्रादेशा[6]दिकं नैव तद्विना स्वामिताऽपि का? ॥२२६॥
कश्चिदुद्भाव्यतां तस्यापराधो व्यपदेशतः[7] । सुलभः स हि दृप्तस्य तस्य पुत्रद्वयौजसः ॥ २२७ ॥
प्राणेभ्यो वल्लभीभूतान् करिणस्तुरगांश्च सः । याच्योऽन्यानि च रत्नानि प्रेष्य संदेशहारकम्[8] ॥ २२८ ॥
न चेत् प्रदास्यते तद् वः स वध्योऽनेन मन्तुना[9] । नापवादो भवेल्लोके सापराधं निगृह्णताम् ॥ २२९ ॥
याचितं दास्यते वाऽथ तदान्वेष्यं छलान्तरम् । सर्वोऽपि सापराधो हि छलमन्विष्यते यदा ॥ २३० ॥
साधु साध्वित्यमात्यं तमभिधाय तदैव हि । ब्रह्मणे प्राहिणोद् दूतं रहः[10] संदिश्य तारकः ॥ २३१ ॥
आशु गत्वा द्वारवत्यां ब्रह्माणं सदसि स्थितम् । विजयेन द्विपृष्ठेन चान्वितं स उपास्थित ॥२३२॥
प्रतिपत्त्या महत्या तमुपवेश्य स भूपतिः । चिरं सप्रेम चालप्य पप्रच्छाऽऽगमकारणम् ॥ २३३ ॥
सोऽप्यूचे द्वारकानाथ! त्वां संप्रत्यादिशत्यदः । स्वामी नस्तारको वैरिबाहुदर्पापहारकः ॥ २३४ ॥
राज्ये त्वदीये ये केऽपि प्रवराः करिणो हयाः । यानि चान्यानि रत्नानि प्रेष्यन्तां तानि नः कृते ॥२३५॥
दक्षिणे भरतार्धे हि वस्तु यत् किञ्चिदुत्तमम् । भरतार्धाधीश्वरस्य तन्ममैवापरस्य न ॥ २३६ ॥
इत्युक्त्या कुपितः सद्यो मृगेन्द्र इव हक्कया । अभाषिष्ट द्विपृष्ठ*स्तं जिघत्सु[11]रिव चक्षुषा ॥ २३७ ॥
ज्यायान् वंश्यो न सोऽस्माकं त्राता दाता न चापि सः । राज्यं निजं शासतां नः कथं स्वामी बभूव सः ॥
अथो मृगयतेऽसत्तो[12] हस्त्यश्वादि भुजौजसा । भुजौजसा वयं तर्हि ततो[13]ऽपि मृगयामहे[14] ॥ २३९ ॥
गच्छ दूताधुनैवास्मान् विद्धि तत्र समागतान् । हस्त्यश्वादि ग्रहीतुं त्वत्स्वामिनः शिरसा समम् ॥२४०॥
इत्युत्कटकटुं वाचं द्विपृष्ठस्य निशम्य सः । रुषितस्त्वरितं गत्वा तारकाय न्यवेदयत् ॥ २४१ ॥
इभगन्धेन[15] गन्धेभ इव विष्णुगिरा तया । श्रुतया तारकः क्रुद्धो यात्राभम्भा[16]मवादयत् ॥ २४२ ॥
सद्यः सैन्यानि सेनान्यः सामन्ता मन्त्रिणोऽपि च । राजानो बद्धमुकुटाः सुभटाश्च महारथाः ॥ २४३ ॥
वीर्यकण्डूलदोर्दण्डाश्चिराय समरार्थिनः । सनाभयो[17]ऽन्तकस्येव राजानमुपतस्थिरे ॥ २४४ ॥
महीकम्प-तडित्पात-काकरोला[18]दिभिर्भृशम् । सूच्यमानाशुभोदर्को[19]ऽप्यचालीत् तारकस्ततः ॥ २४५ ॥

१ दूतः । * °नान्यं महासेनाप°–सं० ॥ † °स्तादथ वा° सं० ॥ २ जिह्मम्–वक्रम् । ‡ °त्तिर्वो ब्र° सं० ॥ ३ निमित्तम् । ४ प्रकृतयः प्रधानादिराजमण्डलम् प्रजाश्च । ५ आशङ्कायुक्ते । ६ मन्त्रः–आणा आदेशः आज्ञा । ७ निमित्ततः । ८ दूतम् । ९ मन्तुः–अपराधः । १० एकान्ते । * °स्त° युयुत्सु° सं० ॥ ११ जिघत्सुः–खादितुमिच्छुः । १२ असत्पार्थात् । १३ ततः–तव स्वामितः । १४ याचामहे । १५ गन्धप्रधानेन हस्तिना । १६ यात्राभम्भा–युद्धभेरिः । १७ सबान्धवाः । १८ काकरोलः ‘काका’ इति काकध्वनिः–भाषायाम्–‘कागारोल’ इति । १९ उदर्कः–भविष्यन् परिणामः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

स प्रयाणैरविच्छिन्नैः क्रोधाध्मातोऽर्धचक्रभृत् । अर्धमार्गमलङ्घिष्ट [1]द्राघिष्ठमपि हि द्रुतम् ॥ २४६ ॥
सब्रह्म-विजयाऽनीकस्तत्र तस्याग्रतोऽपि हि । द्विपृष्ठोऽप्याहवोत्कण्ठी [3]कण्ठीरव इवाऽऽययौ ॥ २४७ ॥
अङ्गोच्छ्वासासकृत् त्रुट्यत्सर्वसन्नाहजालिकाः । द्वयोः [4]संवर्मयामासुः सैनिकाः कथमप्यथ ॥ २४८ ॥
तयोरभूत् संप्रहारो महासंहारकारणम् । मृत्योरभ्य[5]वहाराय [6]महानसगृहोपमः ॥ २४९ ॥
निपेतुरुभयत्रापि लक्षशश्छत्रमौलयः । न संख्याऽप्यन्ययोद्धॄणां पतितानामबुध्यत ॥ २५० ॥
पुण्डरीकवती छत्रैः पूरिता रक्तवारिभिः । रणभूरभवत् क्रीडावापी [7]पितृपतेरिव ॥ २५१ ॥
जैत्रं रथमथारुह्य द्विपृष्ठः पर्यपूरयत् । पाञ्चजन्यं [8]जन्यजयाह्वानमन्त्रोपमध्वनिम् ॥ २५२ ॥
सिंहनादादिव मृगा हंसा इव घनस्वनात् । पाञ्चजन्यध्वने[9]स्तारात् त्रेसुस्तारकसैनिकाः ॥ २५३ ॥
त्रस्तान् स्वसैनिकान् दृष्ट्वा [10]ह्रेपयित्वा निवर्त्य च । द्विपृष्ठं स्वयमभ्याट रथमारुह्य तारकः ॥ २५४ ॥
विजयेनान्वीयमानो [11]लाङ्गलाऽयोग्रधारिणा । शार्ङ्गमारोपयच्छार्ङ्गी [12]सुत्रामेवर्जुरोहितम् ॥ २५५ ॥
अधिज्यधन्वा तदनु तारकोऽपी[13]षुधेरिषुम् । आकृष्य संदधे मृत्योरूर्जितामिव तर्जनीम् ॥ २५६ ॥
मुमोच तारकोऽपीषुं हरिश्चिच्छेद चेषुणा । मोक्ष-च्छेदावितीषूणामभूतामसकृत् तयोः ॥ २५७ ॥
गदा-मुद्गर-दण्डादीन्यायुधान्यपराण्यपि । तारको यानि चिक्षेप [14]प्रत्यस्त्रैस्तान्य[15]हन् हरिः ॥ २५८ ॥
तारकोऽथाग्रहीच्चक्रं क्रूरनक्रं रणोदधेः । द्विपृष्ठं चेत्यभाषिष्ट कोप-स्मितचलाधरः ॥ २५९ ॥
दुर्विनीतो यद्यपि त्वं त्वां न हन्मि तथाऽपि हि । चिरसेवकपुत्रोऽसि बालोऽसीत्यनुकम्पया ॥ २६० ॥
विजया[16]वरजोऽप्यूचे स्मितस्तबकिताधरः । अनुकम्पां शार्ङ्गपाणौ मयि कुर्वन् न लज्जसे ? ॥ २६१ ॥
यद्यपि त्वं विपक्षोऽसि तथाऽप्यसि तितिक्षितः । जरसाऽऽसन्नमृत्योस्ते कः कर्ता मृतमारणम् ॥ २६२ ॥
अस्य चक्रस्य यद्याशा तदेतदपि मुञ्च भोः ! । अकृतार्थीकृतेऽत्रापि गच्छेर्मुक्तस्तथाऽप्यसि ॥ २६३ ॥
इति द्विपृष्ठवचसा तिलाग्निरिव वारिणा । प्रदीप्तस्तारकश्चक्रं भ्रमयामास मूर्धनि ॥ २६४ ॥
नभसि भ्रमयित्वा तद् द्विपृष्ठाय मुमोच सः । जाज्वल्यमानं [17]कल्पान्तविद्युत्वानिव विद्युतम् ॥ २६५ ॥
तत् तु तुम्बाग्रघातेन पपात हृदये हरेः । रूपान्तरपरावृत्तकौस्तुभश्रीविडम्बकम् ॥ २६६ ॥
क्षणं तेन प्रहारेण मूर्च्छितः पतितो रथे । वीज्यते स्म विजयेनाञ्चलव्यजनपाणिना ॥ २६७ ॥
लब्धसंज्ञः क्षणाच्छार्ङ्गी रिपोश्चक्रं समीपगम् । [18]जातभेदमिवामात्यं तदादायाब्रवीदिदम्* ॥ २६८ ॥
चक्रं तवास्त्रसर्वस्वं दृष्टा तच्छक्तिरीदृशी । †जीवग्राहं याहि जीवन् नरो भद्राणि पश्यति ॥ २६९ ॥
प्रत्यूचे तारकोऽप्येवं चक्रमेतन्मयोज्झितम् । [19]‡लेष्टुं श्वेव परिक्षिप्तं गृहीत्वा किं [20]भषस्यहो ! ॥ २७० ॥
मुञ्च मुञ्च त्वमप्येतद् गृहीत्वाऽप्येष मुष्टिना । यदि वा चूर्णयिष्यामि ताडयित्वाऽऽमलोष्टवत् ॥ २७१ ॥
भ्रमयित्वाऽथ तच्छार्ङ्गी भ्राम्यदर्कभ्रमप्रदम् । खेचरांस्[21]त्रासयंश्चक्रं मुमोच प्रतिविष्णवे ॥ २७२ ॥
तारकस्य शिरस्तेन नलिनीनाललीलया । चिच्छेद पुनरापेते[22]¶ शार्ङ्गिणः करकोटरे ॥ २७३ ॥
द्विपृष्ठस्योपरिष्टाच्च पुष्पवृष्टिः पपात खात् । तारकस्योपरि त्वन्तःपुरस्त्रीवर्गदृग्जलम् ॥ २७४ ॥
नृपास्[23]तारकगृह्यास्तु वृत्तिमाश्रित्य [24]वैतसीम् । §अत्रायन्त द्विपृष्ठात् स्वं शक्तेष्वौपयिकं ह्यदः ॥ २७५ ॥

---

१ दीर्घतमम् । २ आहवः युद्धम् । ३ कण्ठीरवः सिंहः । ४ संवर्मयामासुः-सन्नाहं चक्रुः । ५ अभ्यवहारो भोजनम् । ६ महानसम्—रसवतीस्थानम् । ७ यमस्य । ८ जन्यम्—युद्धम् । ९ तारम्—उग्रम् । १० लज्जित्वा । ११ लाङ्गल-अयोग्रधारिणा, अयोग्रः—प्रहरणविशेषः । १२ सुत्रामा इव ऋजुरोहितम् इति पदविभागः । सुत्रामा—इन्द्रः 'ऋजुरोहितम्' धनुर्विशेषः । १३ 'इषुधेः इषुम्' इति विभागः । १४ प्रति—अस्त्रैः । १५ अहन् जघान । १६ अवरजः कनीयान् । १७ प्रलयमेघ इव । १८ जातः भेदः द्विधाभावः छेदो वा यत्र । * °दिति । सं० ॥ † जीवैर्गृहम्-सं० ॥ १९ लेष्टुः—भाषायाम्'—ढेफुं-ढेला' इति २० 'भषसि—अहो' इति विभागः । ‡ °लोष्टुव° सं० ॥ २१ त्रासयन्—त्रासं कुर्वन् । ¶ °रापच्च शा° सं० ॥ २२ आपेते आपतितम् । २३ तारकपक्षीयाः । २४ वेतसवृत्तिः-नम्रता । § अथायन्त द्विपृष्ठान्तं स्वं सं० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यात्रारम्भेण तेनैव भरतार्धं स दक्षिणम् । अशेषं साधयामास साधीयःसाधनावृतः ॥ २७६ ॥
स मागध-वरदाम-प्रभासाधिपतीनपि । लीलयैवाजयद् देवानेकसामन्तमात्रवत् ॥ २७७ ॥
दिग्यात्राया निवृत्तोऽथ माधवो मागधान् ययौ । तत्र कोटिनरोत्पाट्यां ददर्श च महाशिलाम् ॥ २७८ ॥
वैरि[1]वामः स वामेन दोष्णा तामुदपाटयत् । आललाटं कमलिनीं करीन्द्र इव लीलया ॥ २७९ ॥
तां निधाय यथास्थानमग्रणीः सर्वदोष्मताम् । प्रपेदे द्वारकां विष्णुर्दिनैः कतिपयैरपि ॥ २८० ॥
सिंहासनेऽध्यासितस्य ब्रह्मणा विजयेन च । विष्णोश्चक्रेऽर्धचक्रित्वाभिषेकोऽथाखिलैर्नृपैः ॥ २८१ ॥

इतश्च मासं छद्मस्थो विहृत्य त्रिजगत्पतिः । दीक्षोद्यानं वासुपूज्यो विहारगृहमागमत् ॥ २८२ ॥
पाटलाया अधो भर्तुर्घातिकर्माणि तुत्रुटुः । द्वितीयशुक्लध्यानान्ते तमांसीव निशात्यये ॥ २८३ ॥
माघशुक्लद्वितीयायां चन्द्रे शतभिषग्[2]जुषि । केवलज्ञानमुत्पेदे चतुर्थेन[3] जिनेशितुः ॥ २८४ ॥

स्वामी दिव्ये च समवसरणे देशनां व्यधात् । सूक्ष्मादीनां गणभृतां षष्टिं षडधिकां तथा ॥ २८५ ॥
तत्तीर्थभूः कुमाराख्यो यक्षो हंसरथः सितः । मातुलिङ्ग-शरधरौ धारयन् दक्षिणौ करौ ॥ २८६ ॥
वामौ च नकुलधनुर्धारिणौ धारयन् भुजौ । वासुपूज्यजिनेन्द्रस्याभवच्छासनदेवता ॥ २८७ ॥
तथोत्पन्ना श्यामवर्णा चन्द्रा नामाश्ववाहना । दक्षिणौ वरद-शक्तिधारिणौ दधती भुजौ ॥ २८८ ॥
पाणी पुष्प-गदायुक्तौ बिभ्रती दक्षिणेतरौ । भर्तुः शासनदेव्यासीत् सदा सन्निधिवर्तिनी ॥ २८९ ॥
ताभ्यामधिष्ठिताभ्यर्णो[4] भगवान् विहरन् भुवम् । द्वारकायाः परिसरभुवमन्येद्युराययौ ॥ २९० ॥
शक्राद्यैस्तत्र समवसरणं निर्ममेऽमरैः । चत्वारिंशद् धनुरष्टशतोच्चाऽशोकपादपम् ॥ २९१ ॥
तत्र प्रदक्षिणीकृत्याशोकं तीर्थानतिं[5] वदन् । सिंहासने निषसाद प्राङ्मुखः परमेश्वरः ॥ २९२ ॥
प्रभोश्च प्रतिरूपाणि देवा दिक्ष्वपरास्वपि । विचक्रुस्त्रीणि तादृक्षाण्येवोच्चैस्तत्प्रभावतः ॥ २९३ ॥
न्यषीदच्च यथास्थानं श्रीमान् संघश्चतुर्विधः । मध्यवप्रे तु तिर्यञ्चोऽधोवप्रे वाहनानि तु ॥ २९४ ॥
तदा च राजपुरुषा द्रुतमभ्येत्य शार्ङ्गिणे । स्वामिनं समवसृतमाचख्युः फुल्लचक्षुषः ॥ २९५ ॥
सार्धा द्वादश रूप्यस्य कोटीस्तेभ्यो ददौ हरिः । ययौ समवसरणं विजयेनान्वितस्ततः ॥ २९६ ॥
तत्र प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च जगद्गुरुम् । आसाञ्चक्रेऽनुशक्रं स समं लाङ्गल[6]पाणिना ॥ २९७ ॥
भूयो नत्वा जगन्नाथं गिरा भक्तिसनाथया । स्तोतुमारेभिरे शक्र-द्विपृष्ठ-विजयास्ततः ॥ २९८ ॥

नितान्तभीषणमितः प्रसृतं मोहदुर्दिनम् । प्रतिक्षणमितश्चाशा वेला इव नवा नवाः ॥ २९९ ॥
महायाद इवेतश्च दुर्वारो मकरध्वजः । इतश्च विषयाः पापाः प्रौढा दुष्पवना इव ॥ ३०० ॥
इतः कषायाः क्रोधाद्या महावर्ता इवोल्बणाः । राग-द्वेषादयश्चेतो नगदन्ता इवोत्कटाः ॥ ३०१ ॥
महोर्मय इवेतश्च नानादुःखपरम्पराः । इतश्चार्त्त-रौद्रध्यानमौर्वानल[7] इवोच्चकैः ॥ ३०२ ॥
इतश्च ममता वेत्रवल्ली[8]व स्खलनाऽऽस्पदम् । इतश्च व्याधयोऽनल्पा नक्र[9]स्तोमा इवोद्धताः ॥ ३०३ ॥
अस्मिन्नपारे संसारे पारावारेऽतिदारुणे । पतितानुद्धर चिरात् प्राणिनः परमेश्वर ! ॥ ३०४ ॥
परेषामुपकाराय केवलज्ञानदर्शने । तवेमे त्रिजगन्नाथ ! तरोः पुष्प-फले इव ॥ ३०५ ॥
कृतार्थमद्य मे जन्म कृतार्थो विभवोऽद्य मे । कर्तुं लेभे मयाऽयं यत् त्वत्सपर्या[10]महोत्सवः ॥ ३०६ ॥
स्तुत्वेति तूष्णीं प्राप्तेषु सुरेन्द्रोपेन्द्र-सीरिषु । श्रीवासुपूज्यो भगवानारेभे देशनामिति ॥ ३०७ ॥

संसारसागरेऽमुष्मिन् शमिला[11]युगयोगवत् । कथञ्चित् प्राप्य मानुष्यं भाव्यं धर्मपरैर्नरैः ॥ ३०८ ॥

---

१ शत्रुप्रतिकूलः । २ शतभिषग्नक्षत्रयुते । ३ उपवासेन । ४ अभ्यर्णम्-समीपम् । ५ 'नमो तित्थस्स' इत्येवंरूपेण तीर्थप्रणामम् । ६ हलधरेण । ७ औौर्वानलः वडवानलः । ८ भाषायाम्-'नेतरनी वेल' । ९ नक्रः हिंस्रः जलचरविशेषः । १० सपर्या-पूजा । ११ भाषायाम्-'समेल' या बलीवर्दयोस्त्रयोजने उपयुज्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वाख्यातः खलु धर्मोऽयं सर्वैरपि जिनोत्तमैः । यं समालम्बमानो हि न मज्जेद् भवसागरे ॥ ३०९ ॥
संयमः सूनृतं शौचं ब्रह्माकिञ्चनता तपः । क्षान्तिर्मार्दवमृजुता मुक्तिश्च दशधा स तु ॥ ३१० ॥
धर्मप्रभावतः कल्पद्रुमाद्या ददतीप्सितम् । गोचरेऽपि न ते यत् स्युरधर्माधिष्ठितात्मनाम् ॥ ३११ ॥
अपारे व्यसनाम्भोधौ पतन्तं पाति देहिनम् । सदा संविधवर्त्येकबन्धुर्धर्मोऽतिवत्सलः ॥ ३१२ ॥
आप्लावयति नाम्भोधिराश्वासयति चाम्बुदः । यन्महीं स प्रभावोऽयं ध्रुवं धर्मस्य केवलम् ॥ ३१३ ॥
न ज्वलत्यनलस्तिर्यग् यदूर्ध्वं वाति नानिलः । अचिन्त्यमहिमा तत्र धर्म एव निबन्धनम् ॥ ३१४ ॥
निरालम्बा निराधारा विश्वाधारा वसुन्धरा । यच्चावतिष्ठते तत्र धर्मादन्यन्न कारणम् ॥ ३१५ ॥
सूर्या-चन्द्रमसावेतौ विश्वोपकृतिहेतवे । उदयेते जगत्यस्मिन् नूनं धर्मस्य शासनात् ॥ ३१६ ॥
अबन्धूनामसौ बन्धुरसखीनामसौ सखा । अनाथानामसौ नाथो धर्मो विश्वैकवत्सलः ॥ ३१७ ॥
*धर्मो नरक-पातालपातादवति देहिनः । धर्मो निरुपमं यच्छत्यपि सर्वज्ञवैभवम् ॥ ३१८ ॥
अयं दशविधो धर्मो मिथ्यादृग्भिर्न वीक्षितः । योऽपि कश्चित् क्वचित् प्रोचे सोऽपि वाङ्मात्रनर्तनम् ॥३१९॥
तत्त्वार्थो वाचि सर्वेषां केषाञ्चन मनस्यपि । क्रियायामपि नर्नर्ति नित्यं जिनमतस्पृशाम् ॥ ३२० ॥
वेदशास्त्रपराधीनबुद्धयः सूत्रकण्ठकाः । न लेशमपि जानन्ति धर्मरत्नस्य तत्त्वतः ॥ ३२१ ॥
गोमेध-नरमेधा-ऽश्वमेधाद्यध्वरकारिणाम् । याज्ञिकानां कुतो धर्मः प्राणिघातविधायिनाम् ॥ ३२२ ॥
अश्रद्धेयमसद्भूतं परस्परविरोधि च । वस्तु प्रलपतां धर्मः कः पुराणविधायिनाम् ? ॥ ३२३ ॥
असद्भूतव्यवस्थाभिः परद्रव्यं जिघृक्षताम् । मृत्-पानीयादिभिः शौचं स्मार्तादीनां कुतो ननु ? ॥ ३२४ ॥
ऋतुकालव्यतिक्रान्तौ भ्रूणहत्याविधायिनाम् । ब्राह्मणानां कुतो धर्मो ब्रह्मचर्यापलापिनाम् ? ॥ ३२५ ॥
अदित्सतोऽपि सर्वस्वं यजमानाज्जिघृक्षताम् । अर्थार्थे त्यजतां प्राणान् काऽकिञ्चन्यं द्विजन्मनाम् ? ॥३२६॥
स्वल्पेष्वप्यपराधेषु क्षणाच्छापं प्रयच्छताम् । लौकिकानामृषीणां न क्षमालेशोऽपि दृश्यते ? ॥ ३२७ ॥
जात्यादिमददुर्वृत्तपरिनर्तितचेतसाम् । क्व मार्दवं द्विजातीनां चतुराश्रमवर्तिनाम् ? ॥ ३२८ ॥
दम्भसंरम्भ*गर्भाणां बकवृत्तिजुषां बहिः । भवेदार्जवलेशोऽपि पाखण्डव्रतिनां कथम् ? ॥ ३२९ ॥
गृहिणी-गृह-पुत्रादिपरिग्रहवतां सदा । द्विजन्मनां कथं मुक्तिर्लोभैककुलवेश्मनाम् ॥ ३३० ॥
अरक्त-द्विष्ट-मूढानां केवलज्ञानशालिनाम् । अनवद्या तत इयं धर्मस्वाख्या ततोऽर्हताम् ॥ ३३१ ॥
रागाद् द्वेषात् तथा मोहाद् भवेद् वितथवादिता । तदभावे कथं नामार्हतां वितथवादिता ॥ ३३२ ॥
ये तु रागादिभिर्दोषैः कलुषीकृतचेतसः । न तेषां सूनृता वाचः प्रसरन्ति कदाचन ॥ ३३३ ॥
तथा हि याग-होमादिकर्माणीष्टानि कुर्वताम् । वापी-कूप-तडागादीन्यपि पूर्तान्यनेकशः ॥ ३३४ ॥
पशूपघाततः स्वर्गिलोकसौख्यं विमार्गताम् । द्विजेभ्यो भोजनैर्दत्तैः पितृतृप्तिं चिकीर्षताम् ॥ ३३५ ॥
घृतयोन्यादिकरणैः प्रायश्चित्तविधायिनाम् । पञ्चस्वापत्सु नारीणां पुनरुद्वाहकारिणाम् ॥ ३३६ ॥
अपत्यासंभवे स्त्रीषु क्षेत्रजापत्यवादिनाम् । सदोषाणामपि स्त्रीणां रजसा शुद्धिवादिनाम् ॥ ३३७ ॥
श्रेयोबुद्ध्याध्वरहतच्छागशिश्नोपजीविनाम् । सौत्रामण्यां सप्ततन्तौ सीधुपानविधायिनाम् ॥ ३३८ ॥
गूथाशिनीनां च गवां स्पर्शतः पूतमानिनाम् । जलादिस्नानमात्रेण पापशुद्ध्यभिधायिनाम् ॥ ३३९ ॥

१ सु-सुष्ठुप्रकारेण, आख्यातः-कथितः-स्वाख्यातः । २ संनिधिम्-समीपम् । * एतत्पद्यानन्तरं सं० प्रतौ पद्यमेतदधिकं विद्यते—"रक्षोयक्षोरगव्याघ्रव्यालानलगरादयः । नापकर्तुमलं तेभ्यो यैर्धर्मः शरणं श्रितः" ॥ ३ कण्ठे सूत्रम्-यज्ञोपवीतरूपं धरन्ति ते-द्विजाः । ४ अध्वरः यज्ञः । ५ स्मृतिम्-मनुस्मृति-प्रभृति-स्मृतिशास्त्रम्-अनुसरन्ति ते स्मार्ताः । * °भकर्तृणाम् सं० ॥ ६ 'शोधयताम्' षष्ठी-बहुवचनम्- । ७ अपुत्रत्वे सति । ८ स्वभार्यायां कुलजेन अन्येन वा पुरुषेण पुत्रोत्पादनं वदन्ति तेषाम् । ९ ऋतुकाले आगतेन रजसा । १० 'सौत्रामणि'-'सप्ततन्तु' एतौ विशेषयज्ञौ । ११ गूथम्-मलम्-विष्ठा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वटा-ऽश्वत्था-ऽऽमलक्यादिद्रुमपूजाविधायिनाम् । वह्नौ हुतेन हव्येन देवप्रीणनमानिनाम् ॥ ३४० ॥
भुवि गोदोहकरणाद् रिष्टशान्तिकमानिनाम् । योषिद्विडम्बनाप्रायव्रतधर्मोपदेशिनाम् ॥ ३४१ ॥
जटापटल-भस्माङ्गराग-कौपीनधारिणाम् । अर्क-धत्तूर-मालूरैर्देवपूजाविधायिनाम् ॥ ३४२ ॥
कुर्वतां गीतनृत्यादि पुतौ[1] वादयतां मुहुः । मुहुर्वदननादेनाऽऽतोद्यनाद[*]विनोदिनाम् ॥ ३४३ ॥
असभ्यभाषापूर्वं च मुनीन् देवान् जनान् नताम् । विधाय व्रतभङ्गं च दासीदासत्वमिच्छताम् ॥ ३४४ ॥
अनन्तकायकन्दादि-फल-मूल-दलाशिनाम् । कलत्र-पुत्रयुक्तानां वनवासजुषामपि ॥ ३४५ ॥
भक्ष्याभक्ष्ये पेयापेये गम्यागम्ये समात्मनाम् । योगिनाम्ना प्रसिद्धानां कौलाचार्या[2]न्तेवासिनाम् ॥ ३४६ ॥
अन्येषामपि जैनेन्द्रशासनास्पृष्टचेतसाम् । क्व धर्मः क्व फलं तस्य तस्य स्वाख्यातता कथम् ॥ ३४७ ॥
जैनेन्द्रस्यापि धर्मस्य यदत्रामुत्र वा फलम् । आनुषङ्गिकमेवेदं मुख्यं मोक्षं प्रचक्ष्यते ॥ ३४८ ॥
सस्यहेतौ कृषौ यद्वत् पलालाद्यानुषङ्गिकम् । अपवर्गफले धर्मे तद्वत् सांसारिकं फलम् ॥ ३४९ ॥

एवं तां देशनां श्रुत्वा भूयांसः प्राव्रजञ्जनाः । प्राप द्विपृष्ठः सम्यक्त्वं श्रावकत्वं च लाङ्गली ॥ ३५० ॥
पूर्णायामादिपौरुष्यां न्यसृजद् देशनां प्रभुः । द्वितीयां पौरुषीं यावत् सूक्ष्मो गणधरो व्यधात् ॥ ३५१ ॥
ततः स्थानादथान्यत्र विजहार जगद्गुरुः । स्थानं निजनिजं जग्मुरिन्द्रोपेन्द्रबलादयः ॥ ३५२ ॥
द्वासप्ततिः सहस्राणि श्रमणानां महात्मनाम् । साध्वीनां लक्षमेकं तु संयमश्रीजुषां खलु ॥ ३५३ ॥
चतुर्दशपूर्वभृतां सहस्रं द्वे शते तथा । अवधिज्ञानिनां पञ्च सहस्राः सचतुःशताः ॥ ३५४ ॥
मनःपर्ययुक्तानामेकषष्टिः शतानि तु । षष्टिः शतानि विमलकेवलज्ञानशालिनाम् ॥ ३५५ ॥
जाता वैक्रियलब्धीनां सहस्राणि दशैव हि । वादलब्धिमतां सप्तचत्वारिंशच्छतानि तु ॥ ३५६ ॥
श्रावकाणामुभे लक्षे सहस्रा दश पञ्च च । श्राविकाणां चतुर्लक्षी सषट्त्रिंशत्सहस्रिका ॥ ३५७ ॥
चतुःपञ्चाशतं वर्षलक्षाणां मासवर्जितम् । आकेवलाद् विहरतः परिवारः प्रभोरभूत् ॥ ३५८ ॥
ज्ञात्वा च मोक्षमासन्नं ययौ चम्पां जगत्पतिः । प्रपेदेऽनशनं तत्र षड्भिर्मुनिशतैः समम् ॥ ३५९ ॥
मासान्ते चाषाढशुक्लचतुर्दश्यां निशाकरे । उत्तरभद्रपदास्थे सशिष्योऽगाच्छिवं विभुः ॥ ३६० ॥
अष्टादशाब्दलक्षाणि कुमारत्वे व्रते पुनः । चतुःपञ्चाशदित्यायुर्लक्षा द्वासप्ततिः प्रभोः ॥ ३६१ ॥
श्रेयांसप्रभुनिर्वाणाद् वासुपूज्यस्य निर्वृतिः । सागरेषु चतुःपञ्चाशत्यतीतेष्वजायत ॥ ३६२ ॥
गीर्वाणेन्द्राः सगीर्वाणा[3] निर्वाणमहिमोत्सवम् । स्वामिनः स्वामिशिष्याणामप्यकार्षुर्यथाविधि ॥ ३६३ ॥
द्विपृष्ठवासुदेवोऽपि महारम्भपरिग्रहः । मृगारिरिव निःशङ्को देववच्च प्रमद्वरः ॥ ३६४ ॥
भोगान् यथेच्छं भुञ्जानः पालयित्वायुरात्मनः । विपद्य षष्ठीमगमन्नरकोर्वीं तमःप्रभाम् ॥ ३६५ ॥
॥ युग्मम् ॥
द्विपृष्ठस्य कौमारेऽब्दलक्षं पादोनवर्जितम् । तदेव मण्डलीकत्वे दिग्जयेऽब्दशतं तथा ॥ ३६६ ॥
राज्ये सप्तत्यब्दलक्षी तथा नवशताधिका । वत्सरैकोनपञ्चाशत्सहस्रीत्यायुरूर्जितम् ॥ ३६७ ॥
बलभद्रोऽपि पादोनकोटिहायनजीवितः । तस्थौ कथञ्चिदेकाकी स्वभ्रातृस्नेहमोहितः ॥ ३६८ ॥

श्रीवासुपूज्यवचनस्मरणेन बन्धुमृत्या च गाढतरमेव भवाद् विरक्तः ।
आत्तव्रतो विजयसूरिपदाब्जमूले काले विपद्य च शिवं विजयो जगाम ॥ ३६९ ॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये
चतुर्थे पर्वणि श्रीवासुपूज्य-द्विपृष्ठ-विजय-तारकचरितवर्णनो
नाम द्वितीयः सर्गः ।

---

१ पुतम्—नितम्बस्य विशेषभावः । * °विधायिनाम् सं० ॥ २ अन्तेवासिनः शिष्याः । ३ सदेवाः ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

तृतीयः सर्गः ।

श्रीविमलनाथचरित्रम् ।

ॐ नमो विमलनाथाय निष्कर्मविमलात्मने । धर्म[1]ख्याततागङ्गाप्रभवैकहिमाद्रये ॥ १ ॥
त्रयोदशार्हतस्तस्य चरित्रमिदमुच्यते । जगत्पवित्रीकरणं तीर्थोदकमिवामलम् ॥ २ ॥
धातकीखण्डद्वीपे प्राग्विदेहे विजये पुनः । भरताख्ये पुरीरत्नं नामतोऽस्ति महापुरी ॥ ३ ॥
तत्र [2]पद्मागृहं पद्मसेनो नाम महीपतिः । अपां पतिरिवा[3]धृष्योऽ[4]भिगम्यश्चाभवद् गुणैः ॥ ४ ॥
स्वशासनमिवावन्यां स चित्ते जैनशासनम् । अखण्डप्रसरं चक्रे धुर्यो बलिविवेकिनाम् ॥ ५ ॥
दुर्वेश्मनीव संसारे सोऽमुष्मिन् निवसन्नपि । सदैव धारयामास वैराग्यमधिकाधिकम् ॥ ६ ॥
स एवं भवनि[5]र्विण्णः सर्वगुप्ताभिधं गुरुम् । ययौ महीरुहवरं मार्गखिन्न इवाध्वगः ॥ ७ ॥
दीक्षां जग्राह तत्पार्श्वे सम्यक् तां प्रत्यपालयत् । [6]रोरो धनमिव प्राप्तम[7]नात्मज इवात्मजम् ॥ ८ ॥
अर्हद्भक्त्यादिभिः स्थानैर्यथाविधिनिषेवितैः । ऊर्जितैरर्जयामास तीर्थकृन्नाम कर्म सः ॥ ९ ॥
चिरं तीव्रं तपस्तप्त्वा पूरयित्वाऽऽयुरात्मनः । मृत्वा कल्पे सहस्रारे महर्द्धिः सोऽमरोऽभवत् ॥ १० ॥

इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन् भरतक्षेत्रभूषणम् । पुरं काम्पील्यमित्यस्ति दिवः खण्डमिव च्युतम् ॥ ११ ॥
तत्र चैत्यानि चन्द्राश्म[8]पुत्रिकाक्षरदम्बुभिः । कलयन्ति [9]निशीथिन्यां यन्त्रधारागृहश्रियम् ॥ १२ ॥
हैमाः कुम्भाः प्रभासन्ते तत्र गेहोर्ध्वभूमिषु । स्वर्णाब्जान्याहितानीव निवासाय सदा श्रियः ॥ १३ ॥
विचित्रहर्म्यप्रासादराजीकं तदराजत । विधातुरालेख्यमिव सृजतो [10]दिविषत्पुरीम् ॥ १४ ॥
दैवेनाप्यभिभूतानां शरणार्थमुपेयुषाम् । [11]वज्रवर्मेव तत्राभूत् कृतवर्मेति भूपतिः ॥ १५ ॥
गङ्गाजलं तद्यशश्च स्पर्धयेव परस्परम् । परितः प्रीणयत् पृथ्वीं प्रपेदे निधिमम्भसाम् ॥ १६ ॥
नाभूत् पराङ्मुखो जातु याचकेष्विव सोऽरिषु । पराङ्मुखः परस्त्रीषु परनिन्दास्विवाभवत् ॥ १७ ॥
महीविवस्वतस्तस्य समरे [12]परिपन्थिनः । न सोढुमशकंस्तेजोऽन्धकारादिव निर्गताः ॥ १८ ॥
पादच्छाया सदा तस्य महावटतरोरिव । कुब्जीभूय प्रणामेन सिषेवे वसुधाधवैः ॥ १९ ॥
बभूव तस्य श्यामेति श्यामेव तुहिनद्युतेः । सधर्मचारिणी सर्वशुद्धान्तमुखमण्डनम् ॥ २० ॥
कुलश्रीरिव सा मूर्त्ता सतीव्रतमिवाङ्गवत् । रूप-लावण्यलक्ष्मीणां प्रत्यक्षेवाधिदेवता ॥ २१ ॥
मन्दं मन्दं मरालीव देवी संचरति स्म सा । नित्यमेव पतिध्यानव्याकुलेनेव चेतसा ॥ २२ ॥
बभूव सा भूचरीषु स्त्रीष्वसाधारणा तथा । यथाऽर्हति स्म तत्सख्यं देवी श्रीरथवा शची ॥ २३ ॥
यत्र यत्र स्वामिनी सा चचार पृथिवीतले । तत्र तत्रान्वगाल्लक्ष्मी[13]र्यामिकीव दिवानिशम् ॥ २४ ॥

इतः कल्पे सहस्रारे पद्मसेनमहीपतेः । स जीवः पूरयामास स्वमायुः [14]परमस्थिति ॥ २५ ॥
शुद्धद्वादश्यां राधस्योत्तरभद्रपदासु भे । सोऽथ च्युत्वा ततः श्यामादेवीकुक्षाववातरत् ॥ २६ ॥
मुखे प्रविशतस्तीर्थकरजन्माभिसूचकान् । श्यामादेवी महास्वप्नांश्चतुर्दश ददर्श सा ॥ २७ ॥
पूर्णे काले माघशुक्लतृतीयायां निशाकरे । उत्तरभद्रपदास्थे स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु च ॥ २८ ॥

---

१ ख्याततता–सुप्रसिद्धिः । २ लक्ष्मीस्थानम् । ३ अधृष्यः–अनभिभवनीयः । ४ अभिगम्यः–आश्रयणीयः । ५ निर्विण्णः–खिन्नः । ६ दरिद्रः । ७ अपुत्रः । ८ पुत्रिका–पुत्तलिका । ९ रात्रौ । १० स्वर्गम् । ११ वज्रमयकवचः । १२ शत्रवः । १३ प्रतिहारी । १४ परमस्थितिकम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुतं सूकरलक्ष्माणं तपनीयोपमद्युतिम् । ज्ञानत्रयधरं श्यामास्वामिनी सुषुवे सुखम् ॥ २९ ॥
स्वामिनः स्वामिमातुश्च सूतिकर्मैत्य सर्वतः । षट्पञ्चाशद्दिक्कुमार्यश्चेटिका इव चक्रिरे ॥ ३० ॥
एत्य शक्रो मेरुशैले नीत्वाऽङ्के न्यस्य च प्रभुम् । अतिपाण्डुकम्बलाँख्ये सिंहासन उपाविशत् ॥३१॥
त्रयोदशं जिनेन्द्रं तं सुरेन्द्रा अच्युतादयः । त्रिषष्टिः स्नपयामासुः क्रमशस्तीर्थवारिभिः ॥ ३२ ॥
ईशानाङ्के निवेश्येशं शक्रोऽप्यस्नपयज्जलैः । वृषशृङ्गोत्थितैः शैलशृङ्गोत्थैरिव निर्झरैः ॥ ३३ ॥
स्वामिनं देवदूष्येण वाससा वासवः स्वयम् । आर्द्रं स्नानीयपानीयैर्माणिक्यवदमार्जयत् ॥ ३४ ॥
गोशीर्षचन्दनैः श्यामानन्दनं नन्दनाहृतैः । स व्यलिम्पद् वपुर्लग्नैर्देवदूष्यभ्रमप्रदैः ॥ ३५ ॥
विचित्रैर्दामभिर्दिव्यैर्वस्त्रालङ्करणैरपि । अर्चित्वाऽऽरात्रिकं कृत्वा प्रभुं शक्रोऽस्तवीदिति ॥ ३६ ॥
मोहेन तिमिरेणेव परितोऽपि प्रसारिणा । नितान्तकोपनैर्नक्तञ्चरैरिव जटाधरैः ॥ ३७ ॥
बुद्धिसर्वस्वहरणैश्चार्वाकैस्तस्करैरिव । अत्यन्तमायानिपुणैर्गोमायुभिरिव द्विजैः ॥ ३८ ॥
भ्रमद्भिर्मण्डलीभूय कौलाचार्यैर्वृकैरिव । उलूकैरिव पाखण्डैर्वल्गद्भिरपरैरपि ॥ ३९ ॥
सिद्धेनेव विवेकाक्षं मिथ्यात्वेन विलुम्पता । सद्भूतानां पदार्थानामविज्ञानेन सर्वतः ॥ ४० ॥
अभूच्चिरमयं कालो यामिन्येव जगत्पते ! । प्रभातं त्वधुना जज्ञे त्वया नाथेन भास्वता ॥ ४१ ॥
त्वत्पादपद्यामासाद्य लङ्घितालङ्घिता खलु । निम्नैरपि हि संसारनिम्नगा निम्नगा जनैः ॥ ४२ ॥
भवच्छासननिःश्रेणिमधिरुह्याचिरादपि । मन्येऽध्यासितमेवोच्चैर्लोकाग्रं भव्यजन्तुभिः ॥ ४३ ॥
अस्माकमप्यनाथानां चिरान्नाथोऽस्युपस्थितः । निदाघातपतप्तानां पान्थानामिव वारिदः ॥ ४४ ॥
इत्थं त्रयोदशं तीर्थकरं स्तुत्वा पुरन्दरः । गत्वा यथागतं श्यामास्वामिनीपार्श्वतोऽमुचत् ॥ ४५ ॥
शक्रः स्वामिगृहान्मेरोस्त्वन्येन्द्राः स्वं स्वमास्पदम् । प्रययुः कृतकल्याणयात्राः सांयात्रिका इव ॥४६॥
नरेन्द्रः कृतवर्माऽपि शर्मवान् विश्वशर्मदम् । ऋद्ध्या महत्या विदधे सूनोर्जन्ममहोत्सवम् ॥ ४७ ॥
गर्भस्थे जननी तस्मिन् विमला यदजायत । ततो विमल इत्याख्यां तस्य चक्रे पिता स्वयम् ॥ ४८ ॥
धात्रीभूय सुरस्त्रीभिर्लाल्यमानो जगत्पतिः । सुरैश्च सँवयोभूय रम्यमाणो व्यवर्धत ॥ ४९ ॥
षष्टिधन्वोन्नतः स्वामी क्रमेण प्राप यौवनम् । अष्टोत्तरसहस्रेण लक्षणानां च लक्षितः ॥ ५० ॥
स पित्रोरुपरोधेन भववैराग्यभागपि । राज्ञां पुत्रीरुपायंस्त भोग्यँकर्मरुगौषधीः ॥ ५१ ॥
कौमारे पञ्चदशाब्दलक्षीमुल्लङ्घ्य मेदिनीम् । अशात् पितृगिरा मान्या पित्राज्ञा ह्यर्हतामपि ॥ ५२ ॥
गतेषु वर्षलक्षेषु त्रिंशत्यवनिपालने । भवाब्धेस्तरणे तरीं दीक्षावेलामचिन्तयत् ॥ ५३ ॥
सारस्वतप्रभृतयोऽभ्येत्य लोकान्तिकामराः । तीर्थं प्रवर्तय स्वामिन्नित्यूचुश्च जगद्गुरुम् ॥ ५४ ॥
ददौ च वार्षिकं दानं द्रविणैर्जृम्भकाहृतैः । याचकेभ्यो यथायाञ्चं कल्पद्रुम इवावनौ ॥ ५५ ॥
दानान्ते विदधुर्दीक्षाभिषेकं विमलप्रभोः । विमलैर्निजमनोवत् सुमनःपतयोऽम्बुभिः ॥ ५६ ॥
आमुक्तदिव्यालङ्कारवस्त्रो दिव्यविलेपनः । शिबिकां देवदत्ताख्यामारुरोह ततः प्रभुः ॥ ५७ ॥
सुरासुरनराधीशैः परितोऽपि समावृतः । तया शिबिकया स्वामी सहस्राम्रवणं ययौ ॥ ५८ ॥
उद्यानपालबालाभिस्तदा शिशिरभीरुभिः । वेश्मप्रीत्या सेव्यमानलताकुञ्जपरम्परम् ॥ ५९ ॥
भविष्यदद्भुतश्रीकैर्माकन्दबकुलादिभिः । सँह्यमानहिमानीकं तपस्यद्भिरिव द्रुमैः ॥ ६० ॥

---

१ तपनीयम्–सुवर्णम् । * °लाख्यसिं° सं० ॥ † °यैरत्नस्तम्भमिवामृजत् । सं० ॥ २ लग्नम्–धृतम् 'लागेलुं' इति भाषायाम् । ३ शृगालैः । ४ पद्या–वर्त्म । ५ समुद्रयायिनः, नौवणिजः । ६ समानवयोयुता भूत्वा । ७ भोग्यं कर्मैव रुग्–तस्मिन् औषधरूपाः । ८ शासनं चकार । ‡ °रणात° संवृ० का० ॥ ९ जृम्भका–त्रियग्जृम्भकाऽऽख्या देवविशेषाः । ¶ °पि परावृ° संवृ० का० ॥ १० सह्यमाना हिमसंहतिः यस्मिन् तत् ।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

प्रत्यग्रैः कूपपानीयैश्छायाभिर्वटभूरुहाम् । रिरंसुपौरद्वन्द्वानां निषिद्धशिशिरव्यथम् ॥ ६१ ॥
शीतार्चप्लवगैः पुञ्जीकृतगुञ्जाफलेक्षणात् । नागरस्त्रीविरचितसितज्योत्स्नातरङ्गितम् ॥ ६२ ॥
कृतासितमिव सेरलवलीकुन्दकोरकैः । प्रविवेश तदुद्यानं भगवान् विमलप्रभुः ॥ ६३ ॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥
शिबिकातः समुत्तीर्य त्यक्त्वा चाभरणादिकम् । स्कन्धे च वासवन्यस्तं देवदूष्यांशुकं दधत् ॥ ६४ ॥
माघस्य शुक्लचतुर्थ्यां जन्मऋक्षे परेऽहनि । समं नृपसहस्रेण षष्ठेन प्राव्रजत् प्रभुः ॥ ६५ ॥ युग्मम् ॥
द्वितीयेऽह्नि धान्यकटपुरे' जयनृपौकसि । पारणं परमान्नेन चकार विमलप्रभुः ॥ ६६ ॥
विदधे विबुधैस्तत्र वसुधारादिपञ्चकम् । रत्नपीठं स्वामिपादस्थाने जयनृपेण तु ॥ ६७ ॥
ततः स्थानादथान्यत्र ग्रामाकरपुरादिषु । आवर्तत विहाराय छद्मस्थः परमेश्वरः ॥ ६८ ॥
इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन् विदेहेष्वपरेषु च । नन्दिसुमित्र आनन्दकर्यां पुर्यामभून्नृपः ॥ ६९ ॥
चक्षुष्मानपि चक्षुष्मान् विवेकेन बभूव सः । ससहायश्च खड्गेन महासैनिकवानपि ॥ ७० ॥
जन्मतोऽपि भवोद्विग्नो जानानः सर्वमस्थिरम् । दधार पैतृकं राज्यमपि पालयितुं क्रमम् ॥ ७१ ॥
मनसा प्रागपि त्यक्तं त्यक्त्वा राज्यमथान्यदा । प्रव्रज्यां सुव्रताचार्यपादान्ते स उपाददे ॥ ७२ ॥
विविधाभिग्रहधरश्चरित्वा दुश्चरं तपः । कृत्वा चानशनं मृत्वाऽनुत्तरे समभूत् सुरः ॥ ७३ ॥
अत्रैव जम्बूद्वीपे च पुर्यां भरतभूषणे । श्रावस्त्यां धनमित्राख्यो बभूव पृथिवीपतिः ॥ ७४ ॥
धनमित्रनरेन्द्रस्य स्नेहादतिथितां गतः । पुर्यां तत्रैव चावात्सीद् बलिर्नाम महीपतिः ॥ ७५ ॥
धनमित्रोऽन्यदा रेमेऽक्षद्यूतं बलिना समम् । अक्षीणबुद्धिविभवो गमेन च चरेण च ॥ ७६ ॥
पत्तीनामिव सारीणां वध-बन्धपरौ मिथः । विपञ्चयामासतुस्तौ द्यूतं रणमिवोत्कटम् ॥ ७७ ॥
सर्वात्मना जेतुकामौ तावन्योऽन्यं नरेश्वरौ । स्वं पणीचक्रतू राज्यं द्यूतान्धानां कुतो मतिः? ॥ ७८ ॥
अथ हारितवान् राज्यं धनमित्रनृपो निजम् । रोरपुत्र इवाश्रीक एकाङ्गश्चाभवत् क्षणात् ॥ ७९ ॥
अवस्तुभूय स भ्राम्यन् कश्मलो जीर्णकर्पटः । भूताविष्ट इव प्राप सर्वत्राप्यवमाननाम् ॥ ८० ॥
सोऽटन्नितस्ततोऽन्येद्युर्ददर्शर्षिं सुदर्शनम् । पपौ च देशनां तस्माद् यूषं रोगीव लङ्घितः ॥ ८१ ॥
प्रतिबुद्धः परिव्रज्यां जग्राह च तदन्तिके । चिरं च पालयामासापमानं तमविस्मरन् ॥ ८२ ॥
फलेन तपसोऽमुष्य वधाय बलिभूपतेः । भवान्तरेऽहं भूयासं निदानमपि स व्यधात् ॥ ८३ ॥
इत्थं कृतनिदानः सन् मृत्वाऽनशनकर्मणा । उदपाद्यच्युते कल्पे प्रकृष्टायुःस्थितिः सुरः ॥ ८४ ॥
यतिलिङ्गमुपादाय बलिः कालेन गच्छता । विपद्य समभूत् कल्पे महर्द्धिरमरोत्तमः ॥ ८५ ॥
च्युत्वा च भरतक्षेत्रे स नन्दनपुरेऽभवत् । देव्यां सुन्दर्यां समरकेसरिक्ष्मापतेः सुतः ॥ ८६ ॥
स्निग्धाञ्जनद्युतिवपुः षष्टिधन्वोन्नताकृतिः । षष्टिवत्सरलक्षायुरभादद्भुतविक्रमः ॥ ८७ ॥
आवैताढ्यं प्रतापाढ्यो भरतार्धमसाधयत् । अभूच्च प्रतिविष्णुः स मेरकाख्योऽर्धचक्रभृत् ॥ ८८ ॥
वायोः पुर इवौजस्वी तेजस्वीव रवेः पुरः । न कोऽपि तस्य पुरतः प्रतिमल्लोऽभवन्नृपः ॥ ८९ ॥
दैवस्येव न तस्याज्ञां व्यत्यलङ्घिष्ट कश्चन । रक्षाशिखाबन्धमिव मूर्ध्ना सर्वेऽप्यधुः पुनः ॥ ९० ॥
इतश्च भरतक्षेत्रे द्वारकायामभूत् पुरि । समुद्र इव गम्भीरो रुद्रो नाम महीपतिः ॥ ९१ ॥
श्री-पृथिव्याविव साक्षात् सुप्रभा पृथिवीति च । तस्याभूतामुभे कान्ते कान्ते रूप-गुणश्रिया ॥ ९२ ॥

---

* °नां प्रशान्तशि° संवृ० ॥ १ प्लवगाः—वानराः । † °रे नृपजयौक° मु० ॥ २ क्षीरेण । ‡ °द्यूतैर्बलि° संवृ० ॥
३–४ गम-चरौ द्यूतक्रीडा कलाभेदौ । ५ द्यूतक्रीडोपयुक्तं वस्तु सारीति कथ्यते । ६ मलिनः । ७ कर्पटः–'कपडु' इति भाषायाम् ।
८ अवमानात् । ९ रसम् । ¶ °मपि स° मु० ॥ १० 'नियाणुं' भाषायाम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवो नन्दिसुमित्रस्य सोऽनुत्तरविमानतः । अच्युत्य सुप्रभादेव्या उदरे समवातरत् ॥ ९३ ॥
चतुरोऽथ महास्वप्नान् हलभृज्जन्मसूचकान् । सुखसुप्ता निशाशेषे सुप्रभादेव्युदैक्षत ॥ ९४ ॥
ततो नवसु मासेषु दिनेष्वर्धाष्टमेषु च । सुप्रभा सुषुवे सूनुमनूनं शशितो रुचा ॥ ९५ ॥
भद्र इत्यभिधां तस्य विदधे रुद्रभूपतिः । कुलभद्रश्रिया सार्धं व्यवर्धिष्ट क्रमेण सः ॥ ९६ ॥
धनमित्रस्य जीवोऽपि प्रच्युत्याच्युतकल्पतः । उत्पेदे पृथिवीकुक्षौ सरसीव सरोरुहम् ॥ ९७ ॥
साऽपि सप्त महास्वप्नान् शार्ङ्गभृज्जन्मसूचकान् । सुखसुप्ता निशाशेषेऽपश्यत् प्रविशतो मुखे ॥ ९८ ॥
संपूर्णे समये साऽपि श्यामाङ्गमतिभासुरम् । असूत सूनुं वैडूर्यं वैडूरगिरिभूरिव ॥ ९९ ॥
स्वयम्भूरिति तस्यापि नामधेयं प्रमोदभाक् । विदधे रुद्रभूपाल उत्सवेन महीयसा ॥ १०० ॥
नित्यमेव हि धात्रीभिः पाल्यमानः स पञ्चभिः । व्यवर्धिष्ट समितिभिर्मुनेरिव तपोऽनघम् ॥ १०१ ॥
भद्र-स्वयम्भुवौ प्रीत्या संगच्छेते स्म सर्वदा । प्रवाहाविव तौ गाङ्ग-यामुनौ श्वेतमेचकौ ॥ १०२ ॥
सेहिरे न तयोः पादघातान् राजकुमारकाः । तत्पादपरिघातेन अस्यन्दन्त स्माद्रयोऽपि यत् ॥ १०३ ॥
नील-पीतांशुकभृतौ तौ ताल-गरुडध्वजौ । चलन्तौ क्रीडयाऽप्युर्वीं पर्यचालयतामिमाम् ॥ १०४ ॥
अभ्यासः सर्वशस्त्रेषु सर्वशास्त्रेषु चाभवत् । दोर्वीर्य-बुद्ध्योस्तारुण्यमिव लक्ष्मीविशेषकृत् ॥ १०५ ॥
पुरीपरिसरेऽन्येद्युः क्रीडन्तौ तावपश्यताम् । हस्त्यश्वकोशबहुलं सारक्षं शिबिरं स्थितम् ॥ १०६ ॥
इदं प्रैष्यत केनेहासुहृदा सुहृदाऽथवा । इति लाङ्गलिना पृष्टः प्रोवाच सचिवात्मजः ॥ १०७ ॥
भूभुजा शशिसौम्येन मेरकायार्धचक्रिणे । प्रेषितं प्राभृतमिदं दण्डे जीवितकाम्यया ॥ १०८ ॥
तच्छ्रुत्वा कुपितः शार्ङ्गपाणिरेवमवोचत । किं नः संपश्यमानानां दण्डस्तस्मै भविष्यति ? ॥ १०९ ॥
वराको मेरकः कोऽयं यः किलास्मासु सत्स्वपि । पार्थिवान् दण्डयत्वेवं द्रष्टव्यं तस्य पौरुषम् ॥ ११० ॥
गृह्यतां सर्वमप्येतदाच्छिद्य स्वयमोजसा । करमुत्क्षिप्य तानेवं स्वकीयानादिशद् भटान् ॥ १११ ॥
गदामुद्गरदण्डाद्यैः शशिसौम्यस्य सैनिकान् । तद्भटास्ताडयामासुः फलितानिव पादपान् ॥ ११२ ॥
अतर्कितद्रोहिभिस्तैः प्रसुप्ता इव सौप्तिकैः । हन्यमानाः प्रणेशुस्ते प्राणानादाय काकवत् ॥ ११३ ॥
हस्त्यश्वाद्याददे पश्चात् तत्सर्वं शार्ङ्गपाणिना । क्षत्रियाणां गुणो ह्येष परश्रीहरणं हठात् ॥ ११४ ॥
ताभ्यामपहृतं द्रव्यं मेरकायार्धचक्रिणे । शशंसुः शशिसौम्यस्य नराः पूत्कारकारिणः ॥ ११५ ॥
तदाकर्ण्य परिक्रुद्धो निर्मर्याद इवान्तकः । मेरकोऽधिसभं भीमभ्रकुटीकोऽब्रवीदिति ॥ ११६ ॥
पादाहतिः खरेणेव पिण्डमत्तेन दन्तिनः । कुटुम्बिकसधर्मिण्या हालिकेनेव कुट्टनम् ॥ ११७ ॥
चपेटाघटनमिव मण्डूकेन फणाभृतः । स्वमृत्यवे कृतमिदमनात्मज्ञेन रौद्रिणा ॥ ११८ ॥
पक्षोद्गमः पीलिकानामिव पर्यन्तकारणम् । विपरीता मतिः पुंसां भवेद् दैवे पराङ्मुखे ॥ ११९ ॥
सपितृभ्रातरं नव्यभ्रातृव्यकमुपस्थितम् । हनिष्याम्येष तं दस्युमिव प्राभृतहारिणम् ॥ १२० ॥
अथैकः सचिवोऽवोचद् बाल्यात् ताभ्यामिदं कृतम् । रुद्रेण भूभुजा दीर्घं सेवितोऽसीति मा क्रुधः ॥ १२१ ॥
मन्ये न संमतं राज्ञो रुद्रस्यैतद् भविष्यति । आरिराधयिषैवास्ति तस्य त्वां स्वामिनं प्रति ॥ १२२ ॥
स्वामिनः प्रथमे कोपे नद्याः पूरे च कः पतेत् । एवमाशङ्कया नूनं रुद्रभूपो विलम्बते ॥ १२३ ॥
देव ! प्रसीदादिश मां तदभीतिं प्रयच्छ च । आनेष्यामि प्राभृतं तत् सविशेषमहं ततः ॥ १२४ ॥

---

* °र्यं विड्डू° संञ्ज० ॥ १ समितयः–ईर्यादयः पञ्च । २ मेचकः–कृष्णः । ३ वराकः–'रांक' 'बीचारो' इति भाषायाम् । ४ अपहृत्य । ५ सुसेष्वाक्रामकैः । † °शिसौम्यीया न° संञ्ज० ॥ ६ हालिकः–हलभृत् 'खेडूत' इति भाषायाम् । ७ पिपीलिकानां पक्षोत्पत्तिर्मरणसंसूचिका–इति भावार्थः । ८ आराधयितुमिच्छ । ‡ °च्छत । आ° का०; °च्छ चा । आ° संञ्ज० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमित्युक्तो मेरकेण स द्रुतं द्वारकां ययौ । भद्र-स्वयम्भूसहितं रुद्रं चैवमभाषत ॥ १२५ ॥
किमेतत् तव पुत्राभ्यामज्ञानान्नृपते! कृतम् । हन्यते न खलु श्वाऽपि स्वामिनो मुखलज्जया ॥ १२६ ॥
एवमप्यर्प्यतां सर्वं न ते दोषो भविष्यति । छादयिष्यत्यात्मजयोर्दोषमज्ञानतैव हि ॥ १२७ ॥
अथ स्वयम्भूरित्यूचे स्वामिभक्त्या भवानिदम् । तातं प्रत्यार्यभावेन चार्यधीर्वक्ति साधु तत् ॥ १२८ ॥
धीरीभूय निरीक्षध्वं तस्याच्छिन्नमिदं कियत् । आच्छेत्स्यामो महीं सर्वां वीरभोग्या हि भूरियम् ॥ १२९ ॥
आर्यस्य बलभद्रस्य दोष्णोर्मम च को बलम् । सहिष्यते कृतान्तस्य कुपितस्येव संगरे ॥ १३० ॥
एकं तमेव हत्वाऽहं भोक्ष्येऽर्धभरतं स्वयम् । किमन्यैः कुट्टितैर्भूपैर्बहुभिः कीटकैरिव ॥ १३१ ॥
तेनापि दोर्बलेनात्तं भरतार्धं न पैतृकम् । तन्न्यायेन ममाप्यस्तु बलिनो बलिनामपि ॥ १३२ ॥
इत्युक्त्वा विस्मितो भीतो ह्रीतश्च सचिवोऽथ सः । गत्वा द्रुतं मेरकाय समाचख्यौ यथातथम् ॥ १३३ ॥
मत्तेभ इव संक्रुद्धस्तस्य दुःश्रवया गिरा । कम्पयन् क्ष्मां सैन्यभारैः प्रतस्थे मेरकस्ततः ॥ १३४ ॥
इतः स्वयम्भू रुद्रेण भद्रेण च समन्वितः । प्रतस्थे द्वारकापुर्याः कन्दरादिव केसरी ॥ १३५ ॥
जनयन्तौ जनक्षोभं भैरवौ रौद्र-मेरकौ । राहु-सौरी इवैकत्र क्रमेणाथ समेयतुः ॥ १३६ ॥
अभूच्छस्त्रप्रहाराग्निकरालितदिगन्तरः । तत्सैन्ययोः संप्रहारः प्रहाण इव दारुणः ॥ १३७ ॥
स्वयम्भूः पूरयामास पाञ्चजन्यमथ स्वयम् । अशेषद् द्विपदुच्चाटमन्त्रोपममहास्वनम् ॥ १३८ ॥
पाञ्चजन्यध्वनेस्तस्मात् त्रेसुर्मेरकसैनिकाः । न हि केसरिबूत्कारं श्रुत्वा तिष्ठन्ति वारणाः ॥ १३९ ॥
सैन्यान् संस्थापयामास ताम्रचूडानिव स्वयम् । मेरको रथमारुह्य ढुढौकेऽभिस्वयम्भुवम् ॥ १४० ॥
किं मुधा सैन्यसंहारेणेति व्याहारिणौ मिथः । आस्फालयामासतुस्तौ धनुरेकधनुर्धरौ ॥ १४१ ॥
उद्वाहमण्डपमिव विदधानौ जयश्रियः । मार्तण्डच्छादिभिर्बाणजालैर्द्वावप्यवर्षताम् ॥ १४२ ॥
बाणवृष्ट्या बाणवृष्टिं तौ निराचक्रतुर्मिथः । विषं विषेणेव हुताशनेनेव हुताशनम् ॥ १४३ ॥
सहस्रशः शरकरैः प्रसरद्भिर्विराजिनौ । अर्काविवोद्गतौ द्वौ तौ ददृशाते भयङ्करौ ॥ १४४ ॥
पाणिर्गतागतं कुर्वन्निषङ्गधनुरन्तरे । अलक्ष्योऽलक्ष्यत तयोरूर्मिकातेजसैव हि ॥ १४५ ॥
पाणिस्तदैव तूणीरे तदैव हि धनुर्गुणे । पतन् द्वैरूप्यभृदिवाभात् तयोर्लघुहस्तयोः ॥ १४६ ॥
बाणैरजय्यं ज्ञात्वाऽरिं मेरकोऽस्त्रैर्गदादिभिः । ववर्ष कल्पान्तमरुच्छैलशृङ्गैरिवोद्धतैः ॥ १४७ ॥
तानि स्वयम्भूः प्रत्यस्त्रैर्भस्मसादकरोद् द्रुतम् । दृग्ज्वालाभिः करालाभिश्चक्षुर्विष इवोरगः ॥ १४८ ॥
रणपारं जिगमिषुश्चक्रं सस्मार मेरकः । व्याधस्य सिञ्चान इव पाणौ तस्यापतच्च तत् ॥ १४९ ॥
उदीरयामास ततो मेरकोऽपि स्वयम्भुवम् । क्रीडया युध्यमानेन मयैवासि भटीकृतः ॥ १५० ॥
एष छेत्स्यामि ते शीर्षं गच्छ गच्छाधुनाऽप्यरे । काकानां तस्कराणां च नश्यतां का ननु त्रपा! ॥ १५१ ॥
स्वयम्भूरप्युवाचैवं क्रीडायुद्धं यदीदृशम् । प्रेक्ष्यं तत् कोपयुद्धं ते तदर्थं ह्यहमागमम् ॥ १५२ ॥
आच्छिन्दन्तो द्विषां लक्ष्मीं चौराश्चेत् तस्करास्तदा । प्रथमस्तस्करोऽसि त्वं प्रदत्ता तव केन सा ॥ १५३ ॥
मुक्त्वाऽपि चक्रं नष्टव्यं यत् त्वयाऽद्यापि नश्यताम् । काकानां तस्कराणां च नश्यतां का ननु त्रपा? ॥ १५४ ॥
मुञ्च मुञ्चाथवा चक्रं बलमस्यापि दृश्यताम् । अपि ते म्रियमाणस्य नानुतापो यथा भवेत् ॥ १५५ ॥
इत्युक्तो मेरकश्चक्रं व्योम्नि भौममिवापरम् । ज्वालाजालकरालं तद् भ्रमयित्वाऽमुचद् द्विषि ॥ १५६ ॥

---

१ सौरिः–शनिः । २ प्रलयकाल इव; "हार इ" संबू० का० ॥ ३ गजाः । ४ कुक्कुटान् । ५ वादिनौ । * धनुर्व्वं(र्द्वं)-रेघ° संबू० ॥ † °द्भिश्चिराज्जनैः । अ° का०; °जितौ । अ° संबू० ॥ ६ इषङ्गः–'भाथु' इति भाषायाम् । ७ ऊर्मिका–अङ्गुली । ८ 'सींचाणो' इति भाषायाम् । ९ भटो योधः । १० अपहरन्तः । ११ लक्ष्मीः । १२ मङ्गलग्रहम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शार्ङ्गपाणेरुरःपीठं तेनाजघ्ने चपेटया । [1]कांस्यतालं कांस्यतालेनेव प्रास्फलता दृढम् ॥ १५७ ॥
चक्रतुम्बाग्रघातेन स्वयम्भूस्तेन मूर्च्छितः । पपात [2]स्यन्दनोत्सङ्गे क्षीबैवत् तरलेक्षणः ॥ १५८ ॥
दधार च तमुत्सङ्गे मुशली प्रियबान्धवः । [4]वत्साश्वसिह्याश्वसिहीत्युच्चरन् साश्रुलोचनः ॥ १५९ ॥
तैरेवाश्रुजलैर्भ्रातुः सिक्तो वक्षसि शार्ङ्गभृत् । लब्धसंज्ञः समुत्तस्थौ तिष्ठ तिष्ठेत्यरिं वदन् ॥ १६० ॥
उत्थायादाय तच्चक्रं कालचक्रमिव द्विषाम् । हरिर्मेरकमित्यूचे दृष्टः [6]सेरेक्षणैर्निजैः ॥ १६१ ॥
इदं सर्वास्त्रसर्वस्वं जीवितव्यमिदं च ते । तद्गतं पश्यतोऽप्यद्य शिरोरत्नमहेरिव ॥ १६२ ॥
कस्य तिष्ठस्यवष्टम्भाद् गच्छ गच्छाधुना ननु । हन्ति स्वयम्भूर्न परान् समरादपगच्छतः ॥ १६३ ॥
मेरकोऽप्यब्रवीन्मुग्ध पश्यौजोऽस्य त्वमप्यहो ! । नाभूत् पत्युः कलत्रं या सा स्यादुपपतेः कथम् ? ॥ १६४ ॥
इत्युक्तः शार्ङ्गभृच्चक्रं भ्रमयित्वा मुमोच तत् । लीलया मौलिकमलं मेरकस्य चकर्त च ॥ १६५ ॥
स्वयम्भुवश्चोपरिष्टात् पुष्पवृष्टिर्दिवोऽपतत् । तथैव पृथिवीपृष्ठे [7]कबन्धो मेरकस्य च ॥ १६६ ॥
नृपैश्च मेरकायत्तैः स्वयम्भूः शिश्रिये क्षणात् । [8]जन्ययात्रा हि सैवाभूत् परमन्यतरो वरः ॥ १६७ ॥
ततश्च साधयामास भरतार्धं सदक्षिणम् । दधद् दक्षिणपाणिस्थं चक्रं दिक्चक्रजित्वरम् ॥ १६८ ॥
दिग्यात्राया न्यवर्तिष्ट स्वयम्भूर्भूर्जयश्रियः । भरतार्धश्रिया स्वैरं रममाणो नवोढया ॥ १६९ ॥
गच्छन् मार्गे शार्ङ्गपाणिर्मगधेषु ददर्श च । शिलां कोटिनरोत्पाट्यां कपालपुटवद् भुवः ॥ १७० ॥
वामेनोत्पाटयामास बाहुना तामधोक्षजः । लीलयाऽपि वसुमती[11]मधिभूः फणिनामिव ॥ १७१ ॥
शिलां तां न्यस्य तत्रैव दोष्मतां चित्रमादधत् । ययौ दिनैः कतिपयैः पुरीं द्वारवतीं हरिः ॥ १७२ ॥
तत्र रुद्रेण भद्रेण पार्थिवैरपरैरपि । स्वयम्भुवोऽर्धचक्रित्वाभिषेकोऽकारि सोत्सवैः ॥ १७३ ॥

इतश्च* वर्षद्वितयं छद्मस्थो विमलप्रभुः । विहृत्य दीक्षोपवनं सहस्राम्रवणं ययौ ॥ १७४ ॥
तत्र जम्बूतले भर्तुरपूर्वकरणक्रमात् । क्षपकश्रेण्यारूढस्य घातिकर्माणि तुत्रुटुः ॥ १७५ ॥
षष्ठ्यां सितायां पौषस्योत्तरभद्रपदासु भे । उदभूत् केवलज्ञानं षष्ठेन तपसा प्रभोः ॥ १७६ ॥
दिव्ये समवसरणे विदधे देशनां विभुः । गणेशाः सप्तपञ्चाशच्चाभूवन् मन्दरादयः ॥ १७७ ॥
तत्तीर्थेऽभूत् षण्मुखाख्यो यक्षः शिखि[12]रथः सितः । दक्षिणैः फलचक्रेषुखड्गपाशाक्षसूत्रिभिः ॥ १७८ ॥
वामैः सनकुलचक्रकोदण्डफलकांशुकैः । [13]अभीदेन च दोर्दण्डैर्भर्तुः शासनदेवता ॥ १७९ ॥
तथोत्पन्ना विदिताख्या हरितालसमद्युतिः । पद्मारूढा बाणपाशधरदक्षिणपाणिका ॥ १८० ॥
कोदण्डनागसंयुक्तदक्षिणेतरबाहुका । श्रीमद्विमलनाथस्य जज्ञे शासनदेवता ॥ १८१ ॥
ताभ्यामभुक्तसांनिध्यस्ततः स्थानाज्जगद्गुरुः । विहरन्नन्यदा द्वारवत्याः परिसरं ययौ ॥ १८२ ॥
शक्राद्यैस्तत्र समवसरणं विदधेऽमरैः । विंशत्यग्रधनुःसप्तशतोच्चाशोकपादपम् ॥ १८३ ॥
तत्र प्रविश्य प्राग्द्वारा भगवांश्चैत्यपादपम् । त्रिः प्रदक्षिणयामास पालयन्नार्हतीं स्थितिम् ॥ १८४ ॥
'तीर्थाय नमः' इत्युक्त्वा पूर्वाशाभिमुखं ततः । सिंहासनमलञ्चक्रे धर्मचक्री त्रयोदशः ॥ १८५ ॥
यथाद्वारं प्रविविशुर्यथास्थानं स्थितिं व्यधुः । साधवोऽथार्यिका देवा देव्यो नार्यो नरा अपि ॥ १८६ ॥
तदा च द्वारकां गत्वा त्वरितं राजपूरुषाः । स्वामिनं समवसृतं शशंसुः शार्ङ्गपाणये ॥ १८७ ॥
स्वाम्यागमनशंसिभ्यः स्वयम्भूः पारितोषिके । सार्धा द्वादश रूप्यस्य कोटीः प्रमुदितो ददौ ॥ १८८ ॥
स्वयम्भूः सह भद्रेण भद्राणामेककारणम् । शीघ्रं समवसरणं जगाम प्रविवेश च ॥ १८९ ॥

१ 'खडतालां' इति भाषायाम् । २ स्यन्दनो रथः । ३ क्षीबो मत्तः । ४ वत्स ! आश्वसिहि आश्वसिहि इति उच्चरन्-इति विभागः । ५ आलम्बनात् । ६ जारस्य । ७ 'धड' इति भाषायाम् । ८ जन्यम्-युद्धम् । ९ स्थानं जयलक्ष्म्याः । १० इन्द्रः । ११ स्वामी । * °श्च मासद्वि° का० ॥ १२ मयूरवाहनः । १३ अभयदेन ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तत्र प्रदक्षिणीकृत्य नत्वा च परमेश्वरम् । अनुशक्रं सभद्रोऽपि स्वयम्भूः समुपाविशत् ॥ १९० ॥
नत्वा जिनेन्द्रं भूयोऽपि रचिताञ्जलिसंपुटाः । एवमारेभिरे स्तोतुं वज्रभृच्छार्ङ्गभृद्बलाः ॥ १९१ ॥
देव ! त्वद्दर्शनेनाद्य दुःखं सांसारिकं ययौ । शरीरिणां भुवः पङ्क इव वार्षिकवारिणा ॥ १९२ ॥
पुण्योऽयं दिवसः स्वामिंस्त्वद्दर्शननिबन्धनम् । यत्रामलीभविष्यामो दुःकर्ममलिना वयम् ॥ १९३ ॥
अज्ञावयवराजत्वं प्रत्यपद्यन्त नो दृशः । यास्त्वद्दर्शनमासाद्य सद्योऽधुः शुद्धिमात्मनः ॥ १९४ ॥
पूतास्त्वत्पादसंपर्काद् भरतक्षेत्रभूमयः । अपि ताः पावनाशाय किं पुनस्तव दर्शनम् ॥ १९५ ॥
मिथ्यादृशामुलूकानामिव त्वद्दर्शनं प्रभो ! । केवलालोकमार्त्तण्डतिरोभावनिबन्धनम् ॥ १९६ ॥
त्वद्दर्शनसुधापानसमुच्छ्वसितवर्ष्मणाम् । अद्य देव ! त्रुटिष्यन्ति कर्मबन्धाः शरीरिणाम् ॥ १९७ ॥
विवेकदर्पणोन्मार्ष्टिसमुत्पादनकर्मठाः । कल्याणतरुबीजाभाः पान्तु त्वत्पादपांसवः ॥ १९८ ॥
स्वामिन् ! पीयूषगण्डूषे इव ते देशनावचः । संसारमरुमग्नानामस्तु नः स्वास्थ्यहेतवे ॥ १९९ ॥
स्तुत्वेति सत्सु तूष्णीकेष्विन्द्रोपेन्द्रबलेषु तु । विमलां विमलस्वामी आरेभे धर्मदेशनाम् ॥ २०० ॥
अकामनिर्जरारूपात् पुण्याज्जन्तोः प्रजायते । स्थावरत्वात् त्रसत्वं वा तिर्यक्त्वं वा कथञ्चन ॥ २०१ ॥
मानुष्यमार्यदेशश्च जातिः सर्वाक्षपाटवम् । आयुश्च प्राप्यते तत्र कथञ्चित् कर्मलाघवात् ॥ २०२ ॥
प्राप्तेषु पुण्यतः श्रद्धा-कथक-श्रवणेष्वपि । तत्त्वनिश्चयरूपं तद् बोधिरत्नं सुदुर्लभम् ॥ २०३ ॥
राज्यं वा चक्रभृत्त्वं वा शक्रत्वं वा न दुर्लभम् । यथा जिनप्रवचने बोधिरत्यन्तदुर्लभा ॥ २०४ ॥
सर्वे भावाः सर्वजीवैः प्राप्तपूर्वा अनन्तशः । बोधिर्न जातुचित् प्राप्ता भवभ्रमणदर्शनात् ॥ २०५ ॥
पुद्गलानां परावर्तेष्वनन्तेषु गतेष्विह । उपार्धे पुद्गलावर्ते शेषे सर्वशरीरिणाम् ॥ २०६ ॥
सर्वेषां कर्मणां शेषेऽन्तःकोटीकोट्यवस्थितौ । ग्रन्थिभेदात् कश्चिदेव लभते बोधिमुत्तमाम् ॥ २०७ ॥
यथाप्रवृत्तिकरणादन्ये तु ग्रन्थिसीमनि । प्राप्ता अप्यवसीदन्ति भ्रमन्ति च पुनर्भवम् ॥ २०८ ॥
कुशास्त्रश्रवणं सङ्गो मिथ्यादृग्भिः कुवासना । प्रमादशीलता चेति स्युर्बोधिपरिपन्थिनः ॥ २०९ ॥
चारित्रस्यापि संप्राप्तिर्दुर्लभा यद्यपीरिता । तथापि बोधिप्राप्तौ सा सफला निष्फलाऽन्यथा ॥ २१० ॥
अभव्या अपि चारित्रं प्राप्य ग्रैवेयकावधि । उत्पद्यन्ते विना बोधिं प्राप्नुवन्ति न निर्वृतिम् ॥ २११ ॥
असंप्राप्ते बोधिरत्ने चक्रवर्त्यपि रङ्कवत् । संप्राप्तबोधिरत्नस्तु रङ्कोऽपि स्यात् ततोऽधिकः ॥ २१२ ॥
संप्राप्तबोधयो जीवा न रज्यन्ते भवे क्वचित् । निर्ममत्वा भजन्त्येकं मुक्तिमार्गमनर्गलाः ॥ २१३ ॥
श्रुत्वैवं देशनां भर्तुः प्रायेण प्राव्रजञ्जनाः । भेजे स्वयम्भूः सम्यक्त्वं श्रावकत्वं च सीरभृत् ॥ २१४ ॥
पूर्णायामादिपौरुष्यां व्यस्राक्षीद् देशनां प्रभुः । ततस्तथैव तां चक्रे मन्दरो गणभृद्वरः ॥ २१५ ॥
पूर्णद्वितीयपौरुष्यां देशनां सोऽप्यपारयत् । स्वं स्वं स्थानं ययुश्चेन्द्रोपेन्द्र-भद्रादयोऽपि हि ॥ २१६ ॥
ततः स्थानात् पुर-ग्रामा-ऽऽकर-द्रोणमुखादिषु । व्यहरद् विमलस्वामी लोकानुग्रहकाम्यया ॥ २१७ ॥
अष्टषष्टिः सहस्राणि श्रमणानां महात्मनाम् । आर्यिकाणां लक्षमेकं शतैरष्टभिरन्वितम् ॥ २१८ ॥
चतुर्दशपूर्वभृतामेकादश शतानि तु । अवधिज्ञानिनामष्टचत्वारिंशच्छतानि तु ॥ २१९ ॥
शतानि पञ्चपञ्चाशन्मनःपर्ययधारिणाम् । तावन्त्येव तु शतानि केवलज्ञानिनामपि ॥ २२० ॥
जातवैक्रियलब्धीनां शतानि नवतिः पुनः । संजातवादलब्धीनां त्रिसहस्री द्विशत्यपि ॥ २२१ ॥
श्रावकाणामुभे लक्षे सहस्राष्टकसंयुते । श्राविकाणां चतुर्लक्षी चतुस्त्रिंशत्सहस्रयुक् ॥ २२२ ॥

---

* °पयोदयं दिनं स्वा° संटृ० ॥ १ वर्ष्म–वपुः । २ गण्डूषः–'गुंटडो' इति भाषायाम् । ३ सर्वेन्द्रियपटुता । ४ परिपन्थी–शत्रुः । ५ मोक्षम् । † °प्यां विससर्ज दे° संटृ० टि० ॥ ‡ °नि च । का० ॥

द्विवर्षोनां* पञ्चदशाब्दलक्षीं केवलात् परम् । महीं विहरमाणस्य परिवारोऽभवत् प्रभोः ॥ २२३ ॥
॥ षड्भिः कुलकम् ॥

ज्ञात्वा निर्वाणमासन्नं संमेताद्रिं ययुः† प्रभुः । षड्भिः साधुसहस्रैश्च सहानशनमाददे ॥ २२४ ॥
मासं स्थित्वा शुचिकृष्णसप्तम्यां पौष्णगे विधौ । मुनिभिस्तैः समं स्वामी जगाम पदमव्ययम् ॥ २२५ ॥
निर्वाणमहिमा भर्तुः संयतानां च सर्वतः । उपेत्य विदधे तत्र पुरुहूतादिभिः सुरैः ॥ २२६ ॥
कौमारे पञ्चदशाब्दलक्षास्त्रिंशदिलाऽवने । व्रते पञ्चदशेत्यायुः प्रभोः षष्ट्यब्दलक्ष्यभूत् ॥ २२७ ॥
श्रीवासुपूज्यनिर्वाणाद् विमलस्वामिनिर्वृतिः । सागराणां त्रिंशति तु व्यतीतायामजायत ॥ २२८ ॥
स्वयम्भूरपि चैश्वर्यमदेन प्रभविष्णुना । परिलुप्तविवेकः सन् क्रूरकर्माऽकरोन्न किम् ? ॥ २२९ ॥
षष्टिं वत्सरलक्षाणि संपूर्यायुर्निजं हरिः । तैस्तैः स्वकर्मभिः षष्ठीं जगाम नरकावनीम् ॥ २३० ॥
स्वयम्भुवः कुमारत्वे द्वादशाब्दसहस्र्यभूत् । सैव मण्डलिकत्वे च नवत्यब्दी तु दिग्जये ॥ २३१ ॥
राज्ये त्वेकोनषष्ट्यब्दलक्षाण्यथ सहस्रकाः । पञ्चसप्ततिरधिका दशाग्रैर्नवभिः शतैः ॥ २३२ ॥

भद्रोऽपि सोदरविपत्तिशुचा विरक्त आत्तव्रतोऽथ मुनिचन्द्रमुनेः समीपे ।
षष्टिं च पञ्च च निजायुषि वर्षलक्षान् नीत्वा विपद्य च पदं परमं प्रपेदे ॥ २३३ ॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये
चतुर्थे पर्वणि श्रीविमलनाथ-स्वयम्भू-भद्र-मेरकचरितवर्णनो
नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

---

* द्विमासोनां संघ० ॥　† °युः विभुः । का० ॥　१ शुचिः आषाढः ।　२ पूर्वाभाद्रपदे ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

चतुर्थः सर्गः ।

श्रीअनन्तनाथचरितम् ।

पायादनन्तस्वामी वः सिद्धानन्तचतुष्टयः । इहापि देहिनां मोक्ष इवानन्तसुखप्रदः ॥ १ ॥
श्रीमतोऽनन्तनाथस्य चरित्रमिदमुच्यते । यानपात्रमिवापारसंसाराम्भोधितारणे ॥ २ ॥
धातकीखण्डद्वीपे प्राग्विदेहे विजये पुनः । ऐरावताख्येऽरिष्टेति नगर्यस्ति गरीयसी ॥ ३ ॥
राजा पद्मरथो नाम तस्यामासीन्महारथः । द्विषद्रथिरथव्यूहस्खलनैकमहागिरिः ॥ ४ ॥
स जित्वाऽपि द्विषोऽशेषान् साधयित्वाऽखिलामिलाम् । न तृणायाप्यमंस्तैनां मोक्षश्रीसाधनोत्सुकः ॥ ५ ॥
विहारलीलामुद्याने जलक्रीडां च वापीषु । गन्धर्वाणां च मधुरसंगीतकविलोकनम् ॥ ६ ॥
वारणाऽश्वादियानानां गतिवैचित्र्यदर्शनम् । वसन्तकौमुदीप्रायक्रीडोत्सवनिरीक्षणम् ॥ ७ ॥
नाटकप्रभृतिदशरूपकाभिनयोत्सवम् । स्वर्विमानप्रतिमानवासौकोवसनं तथा ॥ ८ ॥
विचित्रवस्त्रनेपथ्याङ्गरागाकल्पकल्पनम् । न रागात् सोऽन्वभूत् किन्तु लोकयात्रानुवर्तनात् ॥ ९ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥
कश्चिदप्यतिवाह्येवं कालं सोऽथ विवेकवान् । चित्तरक्षगुरोः पादमूले दीक्षामुपाददे ॥ १० ॥
अर्हद्भक्त्यादिभिः स्थानैस्तीर्थकृन्नाम कर्म सः । बद्ध्वा मृत्वा प्राणतस्य पुष्पोत्तरे सुरोऽभवत् ॥ ११ ॥
इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन् भरतार्धेऽत्र दक्षिणे । इक्ष्वाकुवंशगिरिभूरयोध्येत्यस्ति पूर्वरा ॥ १२ ॥
विमलस्वच्छपयसा परिखावलयेन सा । विराजते रतस्रस्तवेणीव वरवर्णिनी ॥ १३ ॥
सुनिष्क्रमप्रवेशानि सत्संधीन्यर्थवन्ति च । सुभूमिकानि वेश्मानि नाटकानीव तत्र च ॥ १४ ॥
तस्यां गृहोर्ध्वभूमीषु काञ्चन्यो भान्ति जालिकाः । प्रत्येकं गृहलक्ष्मीभिराबद्धा मुकुटा इव ॥ १५ ॥
तत्र चैत्येष्वर्हदर्चापुष्पगन्धवहोऽनिलः । तापनाशाय लोकानां भवत्यमृतनस्यवत् ॥ १६ ॥
तस्यामासीत् सिंह इव विक्रमेणातिशायिना । अग्रेसरो नृसिंहानां सिंहसेनो महीपतिः ॥ १७ ॥
उपचारं प्रयच्छन्तः स्वस्य कल्याणकाम्यया । तस्याधिदैवतस्येव भक्त्या भूमिभुजोऽभवन् ॥ १८ ॥
अग्रणीर्गुणिनां तैस्तैः सोऽवदातैर्निजैर्गुणैः । जगदाप्रीणयामास करैरिव निशाकरः ॥ १९ ॥
काममर्थं च धर्मं च स दधौ स्वस्वमात्रया । सेवाऽऽगतान् राजपुत्रानिवौचित्यविचक्षणः ॥ २० ॥
सधर्मचारिणी तस्याभवद् धर्मस्य वासभूः । सुयशा नाम यशसा स्वशीलेनैव शालिनी ॥ २१ ॥
अम्बा-जनक-श्वशुरान्ववायानां बभूव सा । मन्दाकिनीव जगतां त्रयाणामेकपावनी ॥ २२ ॥
वक्त्रस्येन्दुः प्रतिनिधिर्दृशोरनुजमम्बुजम् । कण्ठस्य कम्बुरालेख्यं दोष्णोर्बिसलता सखी ॥ २३ ॥
कुम्भः सनाभिः स्तनयोर्नाभेर्विवरमात्मभूः । प्रतिबिम्बं नितम्बस्य कूलिनीपुलिनावनिः ॥ २४ ॥

---

* °हतुलनै° संव्रृ० ॥ १ प्रतिमानम्–प्रतिबिम्बम्-सादृश्यम् । २ ओकः–हर्म्यम्–गृहम् । ३ आकल्पकल्पनम्–भूषणपरिधानम् । ४ लोकवृत्त्यनुसरणात् । † किञ्चि° संवृ० का० ॥ ५ इक्ष्वाकुवंश एव गिरिस्तस्य भूः स्थानम् अथवा इक्ष्वाकुवंशस्य गिरिभूः गङ्गा पवित्रत्वात् । ६ रतिप्रसङ्गे विशीर्णवेणीव । ‡ °स्तवस्त्रेव° मु० ॥ ७ उत्तमरमणी । ८ सुष्ठु गमनागमनद्वाराणि । ९ सुष्टुपर्वाणि, अन्यत्र नाटकस्याङ्गविशेषः सन्धिः । १० साधनवन्ति । § °रायुक्ता, मु० °रामुक्ता का० ॥ ¶ °न्धहरोऽनि° मु० ॥ ११ नस्यम्–घ्राणम् । १२ उपायनम् । ** °न्त आत्मक° मु० ॥ १३ मात्रा–औचित्यम् । १४ अन्ववायः–वंशः । १५ शङ्खस्तस्याः कण्ठस्य चित्रमासीत् । १६ बिसलता कमलनाललता बाह्वोः सखीभूता आसीत् । १७ गुहा नाभेः पुत्ररूपाऽभूत् । १८ नद्याः सिकतावनिः ।

उर्वोरवरजा रम्भा पादयोः पद्ममन्तिषद् । तस्याः सर्वाङ्गरम्यायाः किं किं न ह्यतिशाय्यभूत् ॥ २५ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

इतश्च प्राणते कल्पे जीवः पद्मरथस्य सः । प्रकृष्टस्थितिकं स्वायुः सुखमग्नोऽत्यवाहयत् ॥ २६ ॥
श्रावणासितसप्तम्यां रेवतीस्थे निशाकरे । ततश्च्युत्वा सुयशसो देव्याः कुक्षाववातरत् ॥ २७ ॥
ददर्श च महास्वप्नान् कुञ्जरादींश्चतुर्दश । सुखसुप्ता निशाशेषे देव्यर्हज्जन्मसूचकान् ॥ २८ ॥
राधकृष्णत्रयोदश्यां पौष्णे भे श्येनलाञ्छनम् । सुवर्णवर्णं सुयशाः स्वामिनी सुषुवे सुतम् ॥ २९ ॥
अथ ऊर्ध्वं रुचकेभ्योऽभ्येत्य सद्योऽप्यथार्हतः । षट्पञ्चाशद्दिक्कुमार्यः सूतिकर्माणि चक्रिरे ॥ ३० ॥
सौधर्मकल्पाधिपतिस्तत्रोपेत्य प्रणम्य च । प्रभुमादाय वियता मेरुशैलशिरो ययौ ॥ ३१ ॥
अतिपाण्डुकम्बलायां शिलायां तत्र वासवः । सिंहासन उपाविक्षदुत्सङ्गारोपितप्रभुः ॥ ३२ ॥
इन्द्रास्त्रिषष्टिरभ्येत्याच्युतप्रभृतयस्ततः । क्रमेणास्नपयन् नाथमाहृतैस्तीर्थवारिभिः ॥ ३३ ॥
ईशानाधिपतेरङ्के महासारं न्यधात् प्रभुम् । शक्रस्तद्भारवहनश्रमेणेव गरीयसा ॥ ३४ ॥
विकृतस्फाटिकमहाचतुर्वृषविषाणजैः । वारिभिः स्नपयामास वासवः परमेश्वरम् ॥ ३५ ॥
वाससा देवदूष्येण प्रमृज्येशं विलिप्य च । अर्चित्वाऽऽरात्रिकं कृत्वा सौधर्मेन्द्रोऽस्तवीदिति ॥ ३६ ॥

तवाग्रे भूमिलुठनैर्ये हि भूरेणुनाश्चिताः । गोशीर्षचन्दनेनाङ्गरागस्तेषां न दुर्लभः ॥ ३७ ॥
भक्त्यैकमपि यैः पुष्पं त्वन्मूर्धन्यधिरोप्यते । ते छत्राशून्यशिरसः संचरन्ति निरन्तरम् ॥ ३८ ॥
अङ्गरागस्तवाङ्गे यैरेकदाऽपि विधीयते । देवदूष्यांशुकधरास्ते भवन्ति न संशयः ॥ ३९ ॥
निधीयते भवत्कण्ठे पुष्पदामैकदाऽपि यैः । लुठन्ति तेषां कण्ठेषु दोर्लताः सुरयोषिताम् ॥ ४० ॥
ये वर्णयन्त्येकदाऽपि त्वद्गुणानतिनिर्मलान् । ते गीयन्ते सुरस्त्रीभिरपि लोकातिशायिनः ॥ ४१ ॥
ये चारुचारीचतुरं भक्त्या वल्गन्ति ते पुरः । ऐरावणकरिस्कन्धासनं तेषां न दुर्लभम् ॥ ४२ ॥
ध्यायन्ति परमात्मानं ये त्वां देव! दिवानिशम् । त्वादृशीभूय ते लोके ध्येयतां यान्ति सर्वदा ॥ ४३ ॥
स्नात्राङ्गरागनेपथ्याकल्पप्रभृतिकल्पने । अधित्वन्मेऽधिकारोऽस्तु सदाऽपि त्वत्प्रसादतः ॥ ४४ ॥
इति स्तुत्वा जिनपतिं गृहीत्वा च दिवस्पतिः । गत्वा च सुयशोदेव्याः पार्श्वेऽमुञ्चद् यथास्थिति ॥ ४५ ॥
नन्दीश्वरे शाश्वतार्हत्प्रतिमाऽष्टाहिकोत्सवम् । कृत्वा शक्रोऽपरेऽपीन्द्राः स्वं स्वं स्थानं पुनर्ययुः ॥ ४६ ॥

गर्भस्थेऽस्मिञ्जितं पित्राऽनन्तं परबलं यतः । ततश्च चक्रेऽनन्तजिदित्याख्या परमेशितुः ॥ ४७ ॥
योगी ध्यानामृतमिव निजाङ्गुष्ठात् सुधां पिबन् । अस्तन्यपोऽप्यवर्धिष्ट क्रमेण परमेश्वरः ॥ ४८ ॥
शैशवं व्यतिचक्राम क्रमादिन्दुरिव प्रभुः । पञ्चाशद्धनुरुत्तुङ्गः प्रतिपेदे च यौवनम् ॥ ४९ ॥
निश्चिन्वानो हेयबुद्ध्या मार्गस्थित इवाश्रयम् । पित्राज्ञयाऽनन्तनाथश्चक्रे दारपरिग्रहम् ॥ ५० ॥
अर्धाष्टमेषु लक्षेषु गतेषु शरदामथ । स्वामी पित्रनुरोधेन राज्यभारमुपाददे ॥ ५१ ॥
वर्षलक्षाः पञ्चदश पालयित्वा वसुन्धराम् । दधार चिन्तां मनसि दीक्षायै सिंहसेनभूः ॥ ५२ ॥
ब्रह्मलोकात् सुरा लौकान्तिकाः सारस्वतादयः । तीर्थं प्रवर्तय स्वामिन्नित्यूचुः परमेश्वरम् ॥ ५३ ॥
जृम्भकैर्जृम्भभिच्छिष्टकुबेरप्रेरितैः सुरैः । पूर्यमाणेन वित्तेन वर्षदानं ददौ विभुः ॥ ५४ ॥
तस्य दानस्य पर्यन्ते भवपर्यन्तकामिनः । दीक्षाभिषेकं विदधुः सुरा-ऽसुर-नृपाः प्रभोः ॥ ५५ ॥

---

१ पद्मं पादयोरन्तिषद् शिष्यः । २ राधः—वैशाखः । ३ आकाशमार्गेण । ४ विषाणम्—शृङ्गम् । * °सवा दे° का० ॥ ५ [illegible]काः । ६ चारुर्या चारी नृत्ये गमनप्रकारस्तया चतुरं यथा स्यात् तथा । ७ नृत्यन्ति । ८ त्वयि । ९ [illegible] । १० निश्चयं कुर्वाणः त्यागबुद्ध्या । ११ [illegible] ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुक्तचित्रनेपथ्यवस्त्रमाल्यो जगत्पतिः । ततः सागरदत्ताख्यामारोहच्छिबिकां वराम् ॥ ५६ ॥
शक्रादिभिर्धृतच्छत्रचामरव्यजनः प्रभुः । तथा शिबिकयोद्यानं सहस्राम्रवणं ययौ ॥ ५७ ॥
दोला[1]ऽऽन्दोलनसंसक्तनागरस्त्रीजनैर्मुहुः । तदानीं गच्छदागच्छत्खेचरीभिरिवाकुलम् ॥ ५८ ॥
प्रत्यग्रपल्लवाताम्रैर्विलुलद्भृङ्ग[2]कुन्तलैः । अशोकैर्मधुना मत्तैरिव घूर्णद्भिराचितम्[3] ॥ ५९ ॥
क्रीडाश्रान्तपुरस्त्रीणां श्रमसर्वस्वहारिभिः । चूतैरुत्पल्लवै रम्यं तालवृन्तधरैरिव ॥ ६० ॥
कर्णिकारैः[4] कर्णिकाभिरिवोद्यन्माधवश्रियः । रुचिरं काञ्चनारैश्च काञ्चनैस्तिलकैरिव ॥ ६१ ॥
उदीर्णस्वागतमिव वनं तदैव[5]कोकिलम् । प्रविवेश जगन्नाथो जगन्मन इवोन्मनाः[6] ॥ ६२ ॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥

ततः सागरदत्तातो दत्तहस्तो बिडौजसा[7] । उत्तीर्योज्झाञ्चकारालङ्कारप्रभृतिकं प्रभुः ॥ ६३ ॥
राधकृष्णचतुर्दश्यां रेवत्यामपरेऽहनि । षष्ठेन[8] प्राव्रजत् स्वामी सहस्रेण समं नृपैः ॥ ६४ ॥
वन्दित्वा स्वामिनमथ पुरुहूतादयोऽखिलाः । स्वं स्वं स्थानं ययुः सद्यः कृतकार्या इवामराः ॥ ६५ ॥
द्वितीयेऽह्नि वर्धमानपुरे विजयवेश्मनि । पारणं परमान्नेन चकारार्हँश्चतुर्दशः ॥ ६६ ॥
तत्र चक्रे सुधान्धोभिर्[9]वसुधारादि पञ्चकम् । रत्नपीठं तु विजयेनाङ्घ्रिन्यासपदे प्रभोः ॥ ६७ ॥
ततः स्थानादपच्छद्मा छद्मस्थः परमेश्वरः । प्रावर्तिष्ट विहाराय सहमानः परीषहान् ॥ ६८ ॥

इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन् प्राग्विदेहेषु सुन्दरी । पुरी नन्दपुरीत्यस्ति परमानन्दजन्मभूः ॥ ६९ ॥
नृपो महाबलस्तत्र दत्तशोकोऽरियोषिताम् । अभूदशोकशाखीव स्वकुलोद्यानभूषणम् ॥ ७० ॥
संसारवासवैराग्यं स दधार महामनाः । विदग्धनागर[11] इव ग्रामवासविरक्तताम् ॥ ७१ ॥
स वृषभर्षिपादाब्जमूले गत्वोदमूलयत् । पञ्चभिर्मुष्टिभिः केशांश्चरित्रं प्रत्यपादि च ॥ ७२ ॥
उद्यानमिव चारित्रं पालयित्वा महाफलम् । स विपद्य समुत्पेदे सहस्रारेऽमरो वरः ॥ ७३ ॥

इतोऽस्य जम्बूद्वीपस्य क्षेत्रे भरतनामनि । कौशाम्बीत्यस्ति नगरी पुरन्दरपुरोपमा ॥ ७४ ॥
समुद्रदत्त इत्यासीद् दत्तमुद्रोऽरितेजसाम् । समुद्र इव गम्भीरस्तस्यां वसुमतीपतिः ॥ ७५ ॥
पत्नी तस्याभवन्नन्दा नयनानन्दचन्द्रिका । रूपेण रूपाहङ्कारहरणी सुरयोषिताम् ॥ ७६ ॥
नृपस्य तस्य मलयपवमानो मधोरिव । मित्रं मलयभूनाथोऽभ्यायौ*[12] चण्डशासनः ॥ ७७ ॥
समुद्रदत्तस्तं प्रीत्या महत्या निजसद्मनि । सादरः सोदरमिवाभोजयत् सपरिच्छदम् ॥ ७८ ॥
मृगाक्षीं तत्र सोऽद्राक्षीन्नन्दामानन्दिनीं दृशोः । पत्नीं समुद्रदत्तस्य समुद्रस्येव जाह्नवीम् ॥ ७९ ॥
स्तब्धाङ्गः कीलित इव स्मरास्त्रैरतिदुःसहैः । जातस्वेदो विप्रलम्भ[13]ानलघर्मादिवोल्बणात् ॥ ८० ॥
सर्वाङ्गमप्यङ्कुरित[14]प्रेमेव पुलकेन च । भिन्नस्वरो ग्रहग्रस्त[15] इव तस्या वपुर्गुणैः ॥ ८१ ॥
प्रकम्पमानसर्वाङ्गस्तदाश्लेष इवोत्सुकः । शुचेव वैवर्ण्यधरस्[16]तदसंप्राप्तिजन्मया ॥ ८२ ॥
बाष्पेण लुप्तनयनः कामान्ध्यमिव धारयन् । तदप्राप्त्या मृत्युमिवानेतुं प्रलय[17]माश्रयन् ॥ ८३ ॥

---

१ दोला–'हिंडोळो' इति भाषायाम् । २ विलुलन्तो व्याप्ता ये भ्रमरास्ते एव कुन्तलास्तैः । ३ व्याप्तम् । ४ कर्णिकारैः, काञ्चनारैः–तन्नामकपुष्पविशेषैः । ५ कोकिलाभिरवकीर्णम् । ६ उत्सुकः । ७ इन्द्रेण । ८ उपवासद्वयेन । ९ देवैः । १० निष्कपटः–ऋजुस्वभाव इत्यर्थः । ११ यथा चतुरनागरिकः ग्रामीणतायाः विरज्यते तथैवोदारचेताः प्रभुः संसारोद्विग्नः संजातः । * °थो (थः) प्रययौ संवृ० ॥ १२ आगतः । १३ विप्रलम्भो वियोगः, स एवानलोऽग्निस्तेन घर्मः उष्णस्तस्मात् । १४ अङ्कुरितः-पुलकितः । १५ भूताविष्टः । १६ तस्या नन्दाया अलाभाज्जातेन शोकेन पाण्डुतां दधदिव । १७ तस्यां नन्दायामेव लयं तन्मयतां धारयन्, कामार्तस्य प्रकृतिकृपणत्वाद् नन्दामन्तरेण सर्वमपि नष्टमिच्छन् इत्यर्थः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दामालोक्य तत्कालं सर्वाङ्गोपाङ्गसुन्दरीम् । कां कामवस्थां न प्राप मान्मथीं चण्डशासनः ॥ ८४ ॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥

समुद्रदत्तदचौकस्युवासाथ निशास्वपि । लेभे न निद्रां कामार्तो रोगार्त इव सोऽल्पधीः ॥ ८५ ॥
तांस्तानलुदिनं नन्दाप्राप्त्युपायान् विचिन्तयन् । कञ्चित् कालं व्यतीयाय मित्रव्याजेन स द्विषन् ॥८६॥
समुद्रदत्ते विश्वस्ते स नन्दामपरेऽहनि । हृत्वा जगाम शकुनिरिव रत्नावलीं द्रुतम् ॥ ८७ ॥
रक्षसेव हृतां तेन बलिना छलिना च ताम् । प्रत्याहर्तुं सोऽसमर्थो वैराग्यं परमं ययौ ॥ ८८ ॥
हृदयस्थेन शल्येनेवापमानेन तेन सः । दूयमानोऽग्रहीद् दीक्षां श्रेयांसमुनिसंनिधौ ॥ ८९ ॥
अत्युग्रं स तपस्तेपे तपसोऽस्य फलेन तु । नन्दाहर्तुर्वधाय स्वां निदानमिति चाकरोत् ॥ ९० ॥
अमुना स निदानेन मितीकृत्य तपःफलम् । विपद्य कालयोगेन सहस्रारेऽभवत् सुरः ॥ ९१ ॥
भ्रान्त्वा कालक्रमाच्चण्डशासनोऽपि महीपतिः । भवाब्ध्यावर्तभूतासु बभ्रामानेकयोनिषु ॥ ९२ ॥
स चात्र भरते पृथ्वीपुरे विलासभूपतेः । गुणवत्यां कलत्रेऽभून्मधुरित्याख्यया सुतः ॥ ९३ ॥
स त्रिंशद्वर्षलक्षायुस्तापिच्छकुसुमच्छविः । पञ्चाशद्धनुरुत्तुङ्गो जङ्गमोऽद्रिरिवाबभौ ॥ ९४ ॥
शुशुभे स महाबाहुर्द्विशुण्ड इव दिग्गजः । पृथुलोरस्तटश्रीकः सानुमानिव जङ्गमः ॥ ९५ ॥
लीलयाऽपि महास्थाम्नस्तस्य चङ्क्रमतो मही । भारासहा ननामेव तृणपूर्ण इवावटः ॥ ९६ ॥
शस्त्राशस्त्रिकथां श्रुत्वा पूर्वेषां पृथिवीभुजाम् । स शुशोच स्वदोर्वीर्यं प्रतिमल्लमवाप्नुवन् ॥ ९७ ॥
जित्वा भरतवर्षार्धं त्रिखण्डं ग्रामलीलया । स एवमसमस्थामा नामेन्दौ स्वमलीलिखत् ॥ ९८ ॥
चक्राक्रान्तद्विषच्चक्रः शक्रतुल्यश्च विक्रमात् । अभूत् प्रत्यर्धचक्री स चतुर्थः पुरुषार्यमा ॥ ९९ ॥
अभूदुत्कटदोःकूटकुट्टितारिभटोद्भटः । वैरिश्रीभोगलटभः कैटभः सोदरोऽस्य तु ॥ १०० ॥

तदा च द्वारकापुर्यां सोमसूर्यसमो गुणैः । सोम इत्याख्यया ख्यातो बभूव पृथिवीपतिः ॥१०१॥
तस्याभूतामुभे पत्न्यौ तत्रैका स्निग्धदर्शना । सुदर्शनाऽन्या तु सीता शीतद्युतिसमानना ॥ १०२ ॥
इतश्च स सहस्रारान्महाबलवरः सुरः । च्युत्वा सुदर्शनादेव्या उदरे समवातरत् ॥ १०३ ॥
तदा सुदर्शनादेवी सीरभृज्जन्मसूचकान् । चतुरो यामिनीशेषे महास्वप्नानुदैक्षत ॥ १०४ ॥
ततो मासेषु नवसु दिनेष्वर्धाष्टमेषु च । देवी सुदर्शनाऽसूत सुतं सितरुचिप्रभम् ॥ १०५ ॥
कृतार्थयन्नर्थिवर्गानुत्सवेन महीयसा । तस्य सुप्रभ इत्याख्यां विदधे सोमभूपतिः ॥ १०६ ॥
सहस्राराद् दिवश्च्युत्वा पूर्णायुः सोऽपि कालतः । जीवः समुद्रदत्तस्य सीताकुक्षाववातरत् ॥ १०७ ॥
तदा साऽपि महास्वप्नाञ्छार्ङ्गभृज्जन्मसूचकान् । सप्त सुप्ता निशाशेषेऽद्राक्षीत् प्रविशतो मुखे ॥ १०८ ॥
संपूर्णे समये साऽपि नीलरत्नामलत्विषम् । तनयं जनयामास सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ १०९ ॥
शार्ङ्गपाणेश्चतुर्थस्य तस्याथ दिवसे शुभे । पुरुषोत्तम इत्याख्यां यथार्थामकरोत् पिता ॥ ११० ॥
नीलपीताम्बरौ तालतार्क्ष्यकेतू महाभुजौ । तावभातां सहचरौ प्रीत्या युग्मभवाविव ॥ १११ ॥

---

१ कामसंबन्धिनीम् । २ ओको गृहम् । उवास 'वस्' धातोः परोक्षायामन्यपुरुषैकवचनम् । ३ निर्जगाम । * °पराह्° संप्र० ॥ ४ यथानिमित्तमुद्दिश्य तथासंकल्पकरणम्, भाषायाम् 'नियाणुं' । ५ अमितं तपसः फलम्, परं तन्मितं परिमाणयुक्तं कृत्वा । ६ आवर्त्तः परिवर्त्तनम् । ७ तापिच्छः–तापिञ्छः "तापिञ्छस्तु तमालः स्यात्" [अभि० चि० का० ४ श्लो० २१२] । ८ पर्वतः । ९ महाबलवतः । १० गर्तो । ११ चन्द्रे स्वं नामालिखत् अर्थात् तस्य चन्द्रलोकपर्यन्ता कीर्तिः प्रासरत् । १२ चक्रम्–समूहः । † °चक्रश° संप्र० । ‡ °त् । समभूदर्ध° संप्र० ॥ १३ अर्यमा–सूर्यः । १४ कटभः–रम्यः; 'कडह' इति देश्यशब्दात् संस्कृतम् । § °वासरत् । का० ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

निमित्तीकृत्य चाचार्यं सर्वा जगृहतुः कलाः । पूर्वजन्मप्रभावोऽयं तादृशां हि महात्मनाम् ॥ ११२ ॥
क्रीडा*घातमपि तयोर्नासहन्तापरे भटाः । स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघ्रन्नपि च पन्नगः ॥ ११३ ॥
लीलावनमिव श्रीणां तौ क्रमेणाङ्गपावनम् । यौवनं च प्रपेदाते बलेन पवनोपमौ ॥ ११४ ॥
ज्यायसो लाङ्गलादीनि शार्ङ्गादीनि कनीयसः । जैत्राणि ददिरे देवै रत्नानि नररत्नयोः ॥ ११५ ॥
महाबलौ बल-हरी तौ दृष्ट्वा कलिकौतुकी । प्रतिविष्णोर्मधोर्धाम जगामोत्पत्य नारदः ॥ ११६ ॥
तं दत्तार्घो[1] नमस्कृत्य कृत्यज्ञोऽभिदधे मधुः । महामुने ! स्वागतं ते दिष्ट्या दृष्टिपथेऽसि नः ॥ ११७ ॥
मदीयाः किङ्कराः सर्वे भरतार्धेऽत्र भूभुजः । ते मागधवरदामप्रभासेशाश्च नाकिनः ॥ ११८ ॥
तदत्र वस्तुना येन येन देशेन वा तव । योऽर्थस्तं ब्रूहि निःशङ्कं यथा यच्छामि नारद ! ॥ ११९ ॥
नारदोऽप्यब्रवीदेवं क्रीडयाऽहमिहागमम् । न मेऽर्थोऽर्थेन केनापि न वा देशेन केनचित् ॥ १२० ॥
भरतार्धेश ! इति तु त्वं मुधैव विकत्थ्यसे† । बन्द्यर्थवादः[2] सर्वोऽपि किं यथार्थो भवेत् क्वचित् ॥ १२१ ॥
अर्थलोभादर्थिजनैः स्तूयमानेन धीमता । लज्जितव्यं प्रत्युतापि प्रत्येतव्यं न जातुचित् ॥ १२२ ॥
बलिभ्योऽपि बलितमा महद्भ्योऽपि महत्तमाः । दृश्यन्ते ह्यत्र जगति बहुरत्ना वसुन्धरा ॥ १२३ ॥
मधुरन्तर्भवत्कोपोऽन्तः[3]शिखीव शमीतरुः । सद्यो दष्टाधररदो नारदं प्रत्यभाषत ॥ १२४ ॥
भरतार्धेऽत्र गङ्गातः का नाम महती नदी । वैताढ्यात् को महानद्रिः कश्च मत्तो बलाधिकः ? ॥१२५॥
मन्यसे यं बलीयांसं तमाख्याहि यथा क्षणात् । शरभः कलभस्येव[4] तस्यौजो दर्शयामि ते§ ॥ १२६ ॥
किं मत्तेन प्रमत्तेनाप्यवज्ञातोऽसि केनचित् । स्तुतिव्याजेन यस्याद्य विधित्ससि[5] वधं द्विज ! ॥ १२७ ॥
अथोचे नारदोऽप्येवं नाहं मत्तप्रमत्तयोः । गच्छामि पार्श्वं तन्मे स्यात् तदवज्ञा कथं ननु ! ॥ १२८ ॥
भरतार्धेश्वरोऽस्मीति निजायामद्य पर्षदि । यदवादीर्मा स्म वादीर्भूयस्तद्धि हासाय[6] ते ॥ १२९ ॥
द्वारकायां तु सोमस्य सुप्रभः पुरुषोत्तमः । तनयौ किं त्वया राजन् ! जनश्रुत्याऽपि न श्रुतौ ॥१३०॥
महाबलौ महाबाहू अन्योऽन्यं प्रीतिशालिनौ । मूर्तिमन्तौ पवमान-ज्वलनाविव दुःसहौ ॥ १३१ ॥
शक्रेशानाविव दिवोऽवतीर्णौ कौतुकादिह । दोष्णैकेनाप्युद्धरेतां तौ सर्वाम्भोधिधरां[7] धराम् ॥ १३२ ॥
भरतेऽधिष्ठिते ताभ्यां सिंहेनेव महावने । अज्ञानाद् गर्जसि कथं मदान्ध इव सिन्धुरः[8] ॥ १३३ ॥
कोपारुणेक्षणद्वन्द्वो द्वन्द्वेच्छुरिव[9] तत्क्षणात् । दशनैर्दशनान् घर्षन्मधुराजोऽभ्यधादिदम् ॥ १३४ ॥
यदात्थ तदमिथ्या चेत् स्वैरं तत् क्रीडितुं यमः । मया निमन्त्र्यतेऽद्यैष रणं द्रष्टुं भवानिव ॥ १३५ ॥
निःसोमं निःसुप्रभं च तथा निःपुरुषोत्तमम् । करोमि द्वारकाराज्यं पश्य युत्प्रतिभूरिव[10] ॥ १३६ ॥
इत्युक्त्वा नारदमुनिं विसृज्य प्राहिणोदथ । अनुशिष्य रहो दूतं सोमसोमसुतान् प्रति ॥ १३७ ॥
गत्वाऽऽशु सोमं ससुतं सौजस्कः सोऽभ्यभाषत । ओजायन्तेऽनोजसोऽपि दूताः स्वाम्योजसा खलु ॥१३८॥
दृप्तानां दर्पहरणो विनीतानां च वत्सलः । प्रचण्डदोर्बलजयी क्षत्रव्रतमहाधनः ॥ १३९ ॥
दासेरैरिव[11] याम्यार्धभरतक्षेत्रवर्तिभिः । राजहंसैः कुलोद्भूतैः सेव्यमानपदाम्बुजः ॥ १४० ॥
वैताढ्यदक्षिणश्रेणिविद्याधरनृपैरपि । दत्तदण्डः प्रचण्डाज्ञ आखण्डल[12] इवापरः ॥ १४१ ॥
भरतार्धोद्यानमधुरर्धचक्रधरो[13] मधुः । त्वां शासितुं प्राहिणोन्मां श्रूयतां तदिदं नृप ! ॥ १४२ ॥

॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

---

* °डायात° मु० ॥ क्रीडारूपमाघातमपि । १ अर्घः पूजाविधिः । † °कथ्यसे । संवृ० का० ॥ २ बन्दिजनैर्गीयमानोऽर्थवादः स्तुतिपाठः । ३ अन्तर्मध्ये शिखी वह्निर्यस्य सः । ४ गजपोतस्य । § °मि च । संवृ० ॥ ५ विधातुं कर्तुमिच्छसि । ६ हास्याय भवति । ७ समुद्र-गिरिसहितां महीम् । ८ गजः । ९ युद्धेच्छुः । १० युद्धसाक्षी । ‡ तसा° का० ॥ ११ दासीपुत्रैरिव । १२ इन्द्रः । १३ भरतार्धमेवोद्यानं तस्मिन् मधुर्वसन्तसदृशः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वां कामं भक्तिकारीति[1] पुरा संविद्महे वयम् । पुत्रौजसाऽद्यान्यथाभूरिति संशृण्महे जनात् ॥ १४३ ॥
तद् यदि त्वं मे[2] न स्वासि न कश्चित् ते विपर्ययः[3] । स्वामिने प्रेष्यतां दण्डो मर्यादीकृत्य कुञ्चिकाम्[4] ॥१४४॥
भर्तुः प्रसादाद् भूयोऽपि तव सर्वं भविष्यति । आदत्ते ह्यम्बु यद् भानुः पुनरुज्झति भूरि तत् ॥१४५॥
स्वाम्यप्रसादात् सदपि सर्वस्वं तव यास्यति । श्रियः स्वामिनि रुष्टे हि न तिष्ठन्ति भयादिव ॥ १४६ ॥
दूरे वा सम्पदः सन्तु यत् स्वामिनि विरोधिते । कलत्र-पुत्र-मित्रादि जीवितं च कुतस्तव ॥ १४७ ॥
कृत्वा स्वामिन आदेशं देशं शाधि यथास्थिति । गिरस्ताः सन्तु मोघास्त्वत्पिशुनानां[5] शुनामिव ॥१४८॥
अथोद्यद्रोषपरुषं बभाषे पुरुषोत्तमः । दूतत्वेन न वध्योऽसि तेनेदं कद्वदावदः[6] ॥ १४९ ॥
किमुन्मत्तोऽथवा मत्तः प्रमत्तोऽथ पिशाचधीः । ईदृग्भाषी त्वं त्वदीश ईदृग्भाषयिता च सः ॥ १५० ॥
यथा क्रीडासु बालानां स्वेच्छया कोऽपि बालकः । नृपायते तथा मूढः सोऽपि स्वामीयते स्वयम् ॥ १५१ ॥
प्रतिपन्नः कदाऽस्माभिः स्वामित्वेन स दुर्मदः । इष्टं वचःप्रमाणं चेदिन्द्रीभवति किं न सः ॥ १५२ ॥
प्राज्यराज्यबलेनाद्य सोऽज्ञो मयि समागतः । तिमिस्तटे[7] वेलयेव मरिष्यति न संशयः ॥ १५३ ॥
गच्छानय रणाय स्वं स्वामिनं दण्डकामिनम् । तस्य प्राणैः सहादास्ये दासीमिव हठाच्छ्रियम् ॥ १५४ ॥
स एवमुक्तः पुरुषोत्तमेन रुषितो ययौ । सर्वं च मधवेऽशंसद् दुःशंसमपि तद्वचः ॥ १५५ ॥
शार्ङ्गिणो वाचिकेनोच्चैः[8] श्रुतमात्रेण तेन च । स्तनितेनेव शरभः[9] संरम्भं[10] विदधे मधुः ॥ १५६ ॥
सोऽवादयत् क्षणाद् यात्राभेरीं भैरवभाकृतिम्[11] । श्रूयमाणां खेचरीभिः पिधाय श्रवसी[12] भिया ॥ १५७ ॥
राजभिर्बद्धमुकुटैर्महावीर्यैर्महाभटैः । सेनानीभिरमात्यैश्च सामन्तैरपरैरपि ॥ १५८ ॥
सैनिकै रणशौण्डीरैः[13] स्वस्य मूर्त्यन्तरैरिव । समावृतः स प्रतस्थे मायारूप इवामरः ॥ १५९ ॥ युग्मम् ॥
नाजीगणद् दुर्निमित्ताशकुनानि स दोर्मदी । कालपाशैरिवाकृष्टो देशसीमां द्रुतं ययौ ॥ १६० ॥
पारापतपणीवागात्[14] तत्कालं तत्र शार्ङ्ग्यपि । सोम-सुप्रभसेनानीसेनाभिः परिवारितः ॥ १६१ ॥
आशूपविश्य करभान् रभसादुभयोरपि । वर्माण्याददिरे सैन्यैर्धनूंष्यास्फालितानि च ॥ १६२ ॥
उड्डीनमुच्चकैः काण्डमकाण्डे प्रलयप्रदम् । रक्षःकुलमिव व्योमन्यसृक्पानसमुत्सुकम्[16] ॥ १६३ ॥
प्रेर्यमाणा महामात्रैरपसृत्याभिसृत्य[17] च । चतुर्दन्तेन युद्धेनायुध्यन्त वरदन्तिनः ॥ १६४ ॥
एकस्मिन् मोचके कुन्तमन्यस्मिन् मुद्गरं पुनः । पाणौ कृपाणं बिभ्राणाः सादिनोऽत्वरयन्[18] हयान् ॥१६५॥
निर्घोषेणातिघोरेण जगद्बाधिर्यदायिनः । भिन्नसिन्धुतटानीव मिमिलुः स्यन्दना मिथः ॥ १६६ ॥
आस्फालयन्तः फलकान्यास्फलन्तः परस्परम् । असिभिरसि विदधुर्वीराः पत्तयो बाहुशालिनः ॥ १६७ ॥
अभञ्जि मधुसैन्येन विष्णुसैन्यं क्षणादपि । द्रुमखण्डं प्रचण्डेनौत्पातिकेनेव[20] वायुना ॥ १६८ ॥
रथिना बलभद्रेणान्वीयमानो रथी हरिः । अपूरयत् पाञ्चजन्यमजन्यमिव[21] विद्विषाम् ॥ १६९ ॥
पाञ्चजन्यस्य नादेन तत्कालं मधुसैनिकाः । त्रेसुः केऽपि मुमूर्च्छुः केऽप्यपतन् केऽपि भूतले ॥ १७० ॥
इत्थं विधुरमालोक्य सैन्यं मधुरपि स्वयम् । धनुरास्फालयन् स्फारमाह्वास्त पुरुषोत्तमम् ॥ १७१ ॥
अधिज्यीकृत्य तरसा शार्ङ्गं शार्ङ्ग्यप्यवादयत् । रोदसी वादयदिव गरीयस्या प्रतिश्रुता[22] ॥ १७२ ॥

---

१ हन्तेनाऽभिहितत्वादत्र प्रथमा । २ पूर्ववद् भक्तिकारी । ३ वैपरीत्यम् । ४ उद्घाटन-साधनम्, 'कुंची' भाषायाम् । ५ व्यर्थाः, असत्याः इति यावत् । ६ कुत्सितमत्यन्तं वदतीति कद्वदावदः । ७ मत्स्यः । * पुरुषः परुषं रु° संवृ० ॥ ८ संदेशेन । ९ कलभः । १० कोपम् । † °भाकृतिम् मु० ॥ ११ भयङ्करभाङ्कारध्वनिम् । १२ कर्णौ । १३ युद्धकुशलैः । ‡ °स । परावृ० संवृ० ॥ १४ पारापतः—कपोतः; 'पारेवुं' भाषायाम् । ¶ °पवेद्य संवृ० का० ॥ १५ शरम् । १६ रुधिरपानोत्सुकम् । १७ हस्तिपकैः 'महावत' भाषायाम् । १८ अश्ववाराः । § °न्यास्फाल° संवृ० ॥ १९ असिभिरसिभिर्गृहीत्वा प्रवृत्तमिदं युद्धम् । २० उत्पातसंबन्धिना । २१ उत्पातमिव । २२ प्रतिध्वनिना ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

कर्षंकर्षं निषङ्गात् ताविषून् मुमुचतुः शितान् । अन्योऽन्यं मृत्यवे सर्पानिव वार्तिकवादिनौ ॥ १७३ ॥
जयलक्ष्म्या इव प्राणान् बाणान् बाणैरुभावपि । व्यवच्छेदकलाच्छेकौ चिच्छेदाते परस्परम् ॥ १७४ ॥
एवमस्त्रान्तरैरस्त्रान्तराण्यपि मिथस्तयोः । रज्जुकर्तमकृत्यन्त रणो ह्येवं समौजसाम् ॥ १७५ ॥
अन्योऽन्यसाम्यकुपितो दिदर्शयिषुरन्तरम् । चक्रं सस्मार च मधुस्तत्पाणौ तत् पपात च ॥ १७६ ॥
जिघांसुरप्यभिदधे मधुर्विस्फुरिताधरः । भो ! याहि याहि किं बाल्यात् व्याघ्रीदन्तान् दिदृक्षसि ॥ १७७॥
को नाम मे बलोत्कर्षस्त्वयि बाले निर्बर्हिते । किं रम्भोन्मूलने स्थामवर्णनं वरदन्तिनः ॥ १७८ ॥
एषोऽपि सुभटम्मन्यस्तव ज्यायान् ममाग्रतः । लघीयान् कुञ्जर इव महानपि गिरेः पुरः ॥ १७९ ॥
व्याजहार प्रतिहरिं हरिरप्युल्लसत्स्मितः । तमांसि हन्ति प्रौढानि बालोऽपि हि दिवाकरः ॥ १८० ॥
अग्निः स्फुलिङ्गमात्रोऽपि कक्षं दहति सर्वतः । तेजः प्रमाणं वीराणां तेजसां कीदृशं वयः ! ॥ १८१ ॥
॥ युग्मम् ॥
तदलं ते विलम्बेन मुञ्च चक्रमशङ्कितः । व्यालोऽपि गरलं मुक्त्वा शाम्येन्न पुनरन्यथा ॥ १८२ ॥
अङ्गुल्यामूर्मिकीकृत्य सलीलं मधुरप्यथ । भ्रमयामास तच्चक्रमलातमिव बालकः ॥ १८३ ॥
मुमोच च मधुश्चक्रं तत् पपाताथ शार्ङ्गिणः । वक्षस्तुम्बाग्रघातेन चुम्बदुल्बणतेजसा ॥ १८४ ॥
विष्णुस्तेन प्रहारेण मूर्च्छितः स्यन्दनेऽपतत् । उत्प्लुत्य बलभद्रेण स्वोत्सङ्गे च न्यधीयत ॥ १८५ ॥
भ्रात्रङ्गसंगादमृतस्नपनादिव केशवः । अवाप्तसंज्ञस्तच्चक्रं मधोः प्राणानिवाददे ॥ १८६ ॥
अथ शार्ङ्गधरोऽप्येवमूचे मद्वत् त्वमत्र भोः ! । मा स्म स्था गच्छ गच्छाशु स्पर्धा सिंहेन का शुनः ॥१८७॥
मधुरप्यभ्यधत्तैवं मुञ्च चक्रं त्वमप्यहो ! । गर्जन् शरन्मेघ इव किमात्मानं विकत्थसे ॥ १८८ ॥
एवमुक्तवतस्तस्य चक्रं मुक्त्वा जनार्दनः । अपातयच्छिरो भूमौ फलं तालतरोरिव ॥ १८९ ॥
पुष्पवर्षैः सुरैः शार्ङ्गी साधु साध्विति तुष्टुवे । हा नाथ ! नाथ ! क्वासीति निजैस्तु शुशुचे मधुः ॥१९०॥
जघ्ने केशवसेनान्या कैटभोऽपि महाभटः । शिश्रिये चापरैः सद्यः श्रीपतिर्मधुपार्थिवैः ॥ १९१ ॥
समागधवरदामप्रभासाधीश्वरं ततः । अपाग्भरतवर्षार्धं साधयामास शार्ङ्गभृत् ॥ १९२ ॥
शिलां कोटिनरोत्पाट्यां मगधेष्वथ माधवः । उत्पाट्य लीलयाऽऽनन्दी पिधानमिव सोऽमुचत् ॥ १९३ ॥
समुद्रेणापि दत्तार्घ इवोत्कल्लोलपाणिना । अथाययौ द्वारवतीं स्वपुरीं पुरुषोत्तमः ॥ १९४ ॥
तत्र सोमेन रामेण पार्थिवैरपरैरपि । विष्णोश्चक्रेऽर्धचक्रित्वाभिषेकः परया मुदा ॥ १९५ ॥
ईतस्त्रिवर्षी छद्मस्थो विहृत्याऽनन्तजिज्जिनः । समाययावुपवनं सहस्राम्रवणाभिधम् ॥ १९६ ॥
तत्राशोकतले भर्तुर्ध्यानान्तरविवर्तिनः । संसारस्येव मर्माणि घातिकर्माणि तुत्रुटुः ॥ १९७ ॥
राधकृष्णचतुर्दश्यां रेवतीस्थे निशाकरे । षष्ठेन तपसा भर्तुरुदपद्यत केवलम् ॥ १९८ ॥
चक्रे च दिव्ये समवसरणे देशनां प्रभुः । पञ्चाशतं गणधरान् यशःप्रभृतिकानपि ॥ १९९ ॥
तत्तीर्थभूश्च पातालस्त्र्यास्यो मकरवाहनः । रक्तो दोर्भिः पद्मखड्गपाशिभिर्दक्षिणैस्त्रिभिः ॥ २०० ॥
वामैर्नकुलफलकाक्षसूत्रसहितैः पुनः । श्रीमतोऽनन्तनाथस्य जज्ञे शासनदेवता ॥ २०१ ॥
तथोत्पन्नाङ्कुशा नाम गौराङ्गी पद्मवाहना । दोर्दण्डाभ्यां दक्षिणाभ्यां खड्गं पाशं च बिभ्रती ॥ २०२ ॥
दक्षिणेतरबाहुभ्यां दधती फलकाङ्कुशौ । अनन्तस्वामिनो जज्ञे तथा शासनदेवता ॥ २०३ ॥
ताभ्यामुपासिताभ्यर्णो भगवान् विहरन् भुवि । प्रापत् पुरीं द्वारवतीं मोक्षद्वाराग्रगूः प्रभुः ॥ २०४ ॥

---

१ कृष्ट्वा कृष्ट्वा । २ विषवैद्यवादिनौ । ३ छेकौ–कुशलौ । ४ नाशिते । ५ रम्भा-कदली । ६ तृणम् । ७ विषम् । ८ उल्काम् ।
* उत्पत्य संवृ० ॥ ९ प्रगल्भसे । १० आच्छादनम् । † इति त्रिव° संवृ० ॥ ११ त्रिमुखः । १२ अग्रगूः–अग्रेसरः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शक्राद्यैस्तत्र समवसरणं विदधेऽमरैः । षट्कार्मुकशतोत्तुङ्गचैत्यपादपभूषितम् ॥ २०५ ॥
तत्र द्वारेण पूर्वेण प्रविश्यानन्तजिज्जिनः । त्रिः प्रदक्षिणयामास तमुच्चैश्चैत्यपादपम् ॥ २०६ ॥
कृत्वा तीर्थनमस्कारं पूर्वसिंहासने प्रभुः । प्राङ्मुखो न्यषदत् तस्थौ श्रीसंघश्च यथास्थिति ॥ २०७ ॥
स्वामिनः प्रतिरूपाणि त्रीणि दिक्षु तिसृष्वपि । रत्नसिंहासनस्थानि विचक्रुर्व्यन्तरामराः ॥ २०८ ॥
तथा च समवसृतं तीर्थनाथं चतुर्दशम् । गत्वा शशंसुः पुरुषोत्तमायायुक्तपूरुषाः[1] ॥ २०९ ॥
सार्धा द्वादश रूप्यस्य कोटीस्तेभ्यः प्रदाय च । ययौ समवसरणं बलभद्रयुतो हरिः ॥ २१० ॥
तत्र प्रदक्षिणीकृत्य तीर्थनाथं प्रणम्य च । अनुशक्रमुपाविक्षत् साग्रजः पुरुषोत्तमः ॥ २११ ॥
भूयो नत्वा जिनेन्द्रं ते देवेन्द्रोपेन्द्रसीरिणः । भक्तिगद्गदया वाचा स्तोतुमारेभिरे ततः ॥ २१२ ॥
देहभाजां मनोवित्तं विषयैस्तस्करैरिव । तावदुल्लुण्ठ्यते यावन्न त्वमेषामधीश्वरः ॥ २१३ ॥
¶प्रसर्पत्कोपतिमिरं दृशोऽन्धकरणं नृणाम् । दूरादपसरत्येव त्वद्दर्शनसुधाञ्जनात् ॥ २१४ ॥
मानेन भूतेनेवात्तास्तावदज्ञाः शरीरिणः । यावद् भवद्वचो मन्त्र इव तैर्न हि शुश्रुवे ॥ २१५ ॥
त्वत्प्रसादात् त्रुटन्मायानिगडानां[2] शरीरिणाम् । संप्राप्तार्जवयानानां मुक्तिर्न हि दवीयसी[3] ॥ २१६ ॥
यथा यथा देहभाजो निरीहास्त्वामुपासते । चित्रं तथा तथा तेषामस्युत्कृष्टफलप्रदः[4] ॥ २१७ ॥
संसारसरितो राग-द्वेषौ द्वे स्रोतसी[5] इव । तद्द्वीप इव माध्यस्थ्ये स्थीयते तव शासनात् ॥ २१८ ॥
देहिनां निर्वृतिद्वारप्रवेशोत्सुकचेतसाम् । मोहान्धकारदीपत्वं त्वं धारयसि नापरः ॥ २१९ ॥
विषयैः कषायरागद्वेषमोहैरनिर्जिताः । भूयास्म त्वत्प्रसादेन प्रसीद परमेश्वर ! ॥ २२० ॥
स्तुत्वैवं कृतमौनेषु शक्रमध्वरिसीरिषु । अनन्तनाथो भगवान् विदधे देशनामिति ॥ २२१ ॥

अतत्त्वविदुरो[6] जन्तुरमार्गज्ञ इवाध्वगः । अस्मिन् संसारकान्तारे बम्भ्रमीति दुरुत्तरे ॥ २२२ ॥
जीवाजीवावाश्रवश्च संवरो निर्जरा तथा । बन्धो मोक्षश्चेति सप्त तत्त्वान्याहुर्मनीषिणः ॥ २२३ ॥
तत्र जीवा द्विधा ज्ञेया मुक्तसंसारिभेदतः । अनादिनिधनाः सर्वे ज्ञान-दर्शनलक्षणाः ॥ २२४ ॥
मुक्ता एकस्वभावाः स्युर्जन्मादिक्लेशवर्जिताः । अनन्तदर्शनज्ञानवीर्यानन्दमयाश्च ते ॥ २२५ ॥
संसारिणो द्विधा जीवाः स्थावर-त्रसभेदतः । द्वितयेऽपि[7] द्विधा पर्याप्ता-ऽपर्याप्तविशेषतः ॥ २२६ ॥
पर्याप्तयस्तु षडिमाः पर्याप्तत्वनिबन्धनम् । आहारो वपुरक्षाणि[8] प्राणो भाषा मनोऽपि च ॥ २२७ ॥
स्युरेकाक्ष-विकलाक्ष-पञ्चाक्षाणां शरीरिणाम् । चतस्रः पञ्च षट् चापि पर्याप्तयो यथाक्रमम्[9] ॥ २२८ ॥
एकाक्षाः स्थावरा भूम्यप्तेजोवायुमहीरुहः । तेषां तु पूर्वे चत्वारः स्युः सूक्ष्मा बादरा अपि ॥ २२९ ॥
प्रत्येकाः साधारणाश्च द्विप्रकारा महीरुहः§ । तेऽत्र पूर्वे[10] बादराः स्युरुत्तरे[11] सूक्ष्म-बादराः ॥ २३० ॥
त्रसा द्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियत्वेन चतुर्विधाः । तत्र पञ्चेन्द्रिया द्वेधा संज्ञिनोऽसंज्ञिनोऽपि च ॥ २३१ ॥
शिक्षोपदेशालापान् ये जानते तेऽत्र संज्ञिनः । संप्रवृत्तमनःप्राणास्तेभ्योऽन्ये[12] स्युरसंज्ञिनः ॥ २३२ ॥
स्पर्शनं रसनं घ्राणं चक्षुः श्रोत्रमितीन्द्रियम् । तस्य स्पर्शो रसो गन्धो रूपं शब्दश्च गोचरः[13] ॥ २३३ ॥

* °स्तो निषसादाथ श्री° संवृ० ॥ † °स्थितेः । का० ॥ १ आयुक्तः—सचिवः । ‡ °न्न त्वं तेषा° संवृ० का० ॥ ¶ चक्षुष्पत्तिमिरमिव क्रोधान्धङ्करणो मृ° संवृ० ॥ २ निगडः—बन्धः, 'बेडी' भाषायाम् । ३ अतिदूरे । ४ 'तेषाम्+असि+उत्कृष्टफलप्रदः' इति विभागे त्वमिति शेषः । ५ प्रवाहौ । ६ अतत्त्वज्ञः । ७ स्थावराः त्रसाश्चेति । ८ इन्द्रियाणि । ९ एकेन्द्रियाणां चतस्रः, विकलेन्द्रियाणां पञ्च, पञ्चेन्द्रियाणां षट् पर्याप्तयः क्रमशः । § °हः । तत्र तु संवृ० का० ॥ १० प्रत्येका बादरा एव । ११ साधारणाः । १२ प्रवृत्तिमन्तो मनःप्राणा येषां ते । १३ विषयः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वीन्द्रियाः कृमयः शङ्खा गण्डूपदा जलौकसः । कपर्दाः शुक्तिकाद्याश्च विविधाः कृमयो मताः ॥ २३४ ॥
यूका-मत्कुण-मत्कोट-लिक्षाद्यास्त्रीन्द्रिया मताः । पतङ्ग-मक्षिका-भृङ्ग-दंशाद्याश्चतुरिन्द्रियाः ॥ २३५ ॥
तिर्यग्योनिभवाः शेषा जल-स्थल-खचारिणः । नारका मानवा देवाः सर्वे पञ्चेन्द्रिया मताः ॥ २३६ ॥
मनो-भाषा-कायबलत्रयमिन्द्रियपञ्चकम् । आयुरुच्छ्वासनिःश्वासमिति प्राणा दश स्मृताः ॥ २३७ ॥
सर्वजीवेषु देहायुरुच्छ्वासा इन्द्रियाणि च । विकलासंज्ञिनां भाषा पूर्णानां संज्ञिनां मनः ॥ २३८ ॥
उपपाद(त)भवा देव-नारका गर्भजाः पुनः । जरायुःपोताण्डभवाः शेषाः संमूर्च्छनोद्भवाः ॥ २३९ ॥
संमूर्छिनो नारकाश्च जीवाः पापा नपुंसकाः । देवाः स्त्री-पुंसवेदाः स्युर्वेदत्रययुजः परे ॥ २४० ॥
सर्वे जीवा व्यवहार्यव्यवहारितया द्विधा । सूक्ष्मनिगोदा एवान्त्यास्तेभ्योऽन्ये व्यवहारिणः ॥ २४१ ॥
सचित्तः संवृतः शीतस्तदन्यो मिश्रितोऽपि वा । त्रिभेदैरान्तरैर्भिन्नो नवधा योनिरङ्गिनाम् ॥ २४२ ॥
प्रत्येकं सप्त लक्षाश्च पृथ्वी-वार्यग्नि-वायुषु । प्रत्येकानन्तकायेषु क्रमाद् दश चतुर्दश ॥ २४३ ॥
षट् पुनर्विकलाक्षेषु मनुष्येषु चतुर्दश । स्युश्चतस्रश्चतस्रश्च श्वभ्रि-तिर्यक्-सुरेषु तु ॥ २४४ ॥
एवं लक्षाणि योनीनामशीतिश्चतुरुत्तरा । केवलज्ञानदृष्टानि सर्वेषामपि जन्मिनाम् ॥ २४५ ॥
एकाक्षा बादराः सूक्ष्माः पञ्चाक्षाः संज्ञ्यसंज्ञिनः । स्युर्द्वि-त्रि-चतुरक्षाश्च पर्याप्ता इतरेऽपि च ॥ २४६ ॥
एतानि जीवस्थानानि मयोक्तानि चतुर्दश । मार्गणा अपि तावत्यो ज्ञेयास्ता नामतो यथा ॥ २४७ ॥
गतीन्द्रिय-काय-योग-वेद-ज्ञान-कुधादयः । संयमा-ऽऽहार-दृग्-लेश्या-भव्य-सम्यक्त्व-संज्ञिनः ॥ २४८ ॥
मिथ्यादृष्टिः सास्वादन-सम्यग्मिथ्यादृशावपि । अविरतसम्यग्दृष्टिर्विरताविरतोऽपि च ॥ २४९ ॥
प्रमत्तश्चाप्रमत्तश्च निवृत्तिबादरस्ततः । अनिवृत्तिबादरश्चाथ सूक्ष्मसंपरायकः ॥ २५० ॥
ततः प्रशान्तमोहश्च क्षीणमोहश्च योगवान् । अयोगवानिति गुणस्थानानि स्युश्चतुर्दश ॥ २५१ ॥
मिथ्यादृष्टिर्भवेन्मिथ्यादर्शनस्योदये सति । गुणस्थानत्वमेतस्य भद्रकत्वाद्यपेक्षया ॥ २५२ ॥
मिथ्यात्वस्यानुदयेऽनन्तानुबन्ध्युदये सति । सास्वादनसम्यग्दृष्टिः स्यादुत्कर्षात् षडावलीः ॥ २५३ ॥
सम्यक्त्वमिथ्यात्वयोगान्मुहूर्तं मिश्रदर्शनः । अविरतसम्यग्दृष्टिरप्रत्याख्यानकोदये ॥ २५४ ॥
विरताविरतस्तु स्यात् प्रत्याख्यानोदये सति । प्रमत्तसंयतः प्राप्तसंयमो यः प्रमाद्यति ॥ २५५ ॥
सोऽप्रमत्तसंयतो यः संयमी न प्रमाद्यति । उभावपि परावृत्त्या स्यातामान्तर्मुहूर्तिकौ ॥ २५६ ॥
कर्मणां स्थितिघातादीनपूर्वान् कुरुते यतः । तस्मादपूर्वकरणः क्षपकः शमकश्च सः ॥ २५७ ॥
यद्बादरकषायाणां प्रविष्टानामिमं मिथः । परिणामा निवर्तन्ते निवृत्तिबादरोऽपि सः ॥ २५८ ॥
परिणामा निवर्तन्ते मिथो यत्र न यततः । अनिवृत्तिबादरः स्यात् क्षपकः शमकश्च सः ॥ २५९ ॥

---

१ भूम्यन्तर्गतजन्तुविशेषाः, 'गंडोळां' भाषायाम् । २ युका-मत्कुण-मत्कोट-लिक्षाद्याः–भाषायाम्–'जू', 'मांकड', 'बगइ', 'लीख' । ३ यथा द्वीन्द्रियाणां कायाऽऽयुरुच्छ्वासाः स्पर्शन-रसनेन्द्रियद्वयं भाषा चेति षट् प्राणास्तथैव त्रीन्द्रियाणां चतुरिन्द्रियाणामसंज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां च क्रमात् स्वस्वेन्द्रियवृद्ध्या सप्ताष्टौ नव च प्राणाः संज्ञिनां तु मनःसहिता दशेति तात्पर्यम् । ४ ये जीवा जरायुःपोताण्डभवास्ते गर्भजाः कथ्यन्ते । ५ गर्भजाः प्राणिनः । ६ ये सूक्ष्मनिगोदास्तेऽव्यवहारिणः । ७ सचित्तादन्योऽचित्तः, संवृतत्रिवृतादन्यो विवृतः, शीतादन्य उष्णः । ८ सचित्ताचित्तः, संवृतविवृतः शीतोष्ण इत्यर्थः । * °क्षाणि पृ° संवृ० ॥ ९ प्रत्येकवनस्पतिकायेषु दशलक्षा, अनन्तकायेषु–साधारणवनस्पतिकायेषु चतुर्दशलक्षाः । १० नारक–तिर्यक्–देवेषु । § °रा । सर्वज्ञोपज्ञमुक्तानि स० संवृ० ॥ ११ बादरैकेन्द्रियाः सूक्ष्मैकेन्द्रियाः, संज्ञिपञ्चेन्द्रियाः, असंज्ञिपञ्चेन्द्रियाः, द्वीन्द्रियाः, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाश्चेति सप्त पर्याप्तास्तथैवापर्याप्ताश्चेति चतुर्दश जीवस्थानानि । † °नि जिनोक्ता° संवृ० । १२ चतुर्दश । ‡ क्रुदादयः संवृ० का० ॥ १३ क्रोधादयः कषायाः । १४ सम्यग्मिथ्यादृग् इत्यस्य मिश्रगुणस्थानमित्यपि नामान्तरम् । १५ देशविरतिगुणस्थानम् । १६ अपूर्वकरणगुणस्थानमित्यस्य नामान्तरम् । १७ उपशान्तमोहः इति नाम्ना प्रसिद्धिः । १८ सयोगिकेवली, १९ क्षपकश्रेणिकः । २० उपशमश्रेणिकः । २१ इममपूर्वकरणं प्रविष्टानां साधूनां यस्माद् बादरकषायाणां क्रोधादीनां परिणामा निवर्त्तन्तेऽतः स निवृत्तिबादरोऽपि कथ्यते ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोभाभिधः संपरायः सूक्ष्मकिट्टीकृतो यतः । स सूक्ष्मसंपरायः स्यात् क्षपकः शमकोऽपि च ॥ २६० ॥
अथोपशान्तमोहः स्यान्मोहस्योपशमे सति । मोहस्य तु क्षये जाते क्षीणमोहं प्रचक्षते ॥ २६१ ॥
सयोगिकेवली घातिक्षयादुत्पन्नकेवलः । योगानां च क्षये जाते स एवायोगिकेवली ॥२६२॥ [*]इति जीवतत्त्वम्॥

अजीवाः स्युर्धर्माधर्मविहाय[1]:कालपुद्गलाः । जीवेन सह पञ्चापि द्रव्याण्येते निवेदिताः ॥ २६३ ॥
तत्र कालं विना सर्वे प्रदेश[2]प्रचयात्मकाः । विना जीवमचिद्रूपा अकर्तारश्च ते मताः ॥ २६४ ॥
कालं विनाऽस्तिकायाः स्युरमूर्ताः पुद्गलं विना । उत्पाद-विगम-ध्रौव्यात्मानः सर्वेऽपि ते पुनः ॥ २६५ ॥
पुद्गलाः स्युः स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णस्वरूपिणः । तेऽणुस्कन्धतया द्वेधा तत्राबद्धाः किलाणवः ॥ २६६ ॥
बद्धाः स्कन्धा बन्ध-शब्द-सौक्ष्म्य-स्थौल्याकृतिस्पृशः।अन्धकारा-ऽऽतपोद्योतभेदच्छायात्मका अपि ॥२६७॥
कर्म[3]-काय-मनो-भाषा-चेष्टितोच्छ्वासदायिनः । सुखदुःख-जीवितव्य-मृत्यूपग्रहकारिणः ॥ २६८ ॥
प्रत्येकमेकद्रव्याणि धर्माधर्मौ नभोऽपि च । अमूर्तानि निष्क्रियाणि स्थिराण्यपि च सर्वदा ॥ २६९ ॥
एकजीवपरिमाणसंख्यातीतप्रदेशकौ[†] । लोकाकाशमभिव्याप्य धर्माधर्मौ व्यवस्थितौ ॥ २७० ॥
स्वयं गन्तुं प्रवृत्तेषु जीवाजीवेषु सर्वतः । सहकारी भवेद् धर्मः पानीयमिव यादसाम् ॥ २७१ ॥
जीवानां पुद्गलानां च प्रपन्नानां स्वयं स्थितिम् । अधर्मः सहकार्येष यथा छाया[‡]ऽध्वयायिनाम् ॥ २७२ ॥
सर्वगं स्वप्रतिष्ठं स्यादाकाशमवकाशदम् । लोकालोकौ स्थितं व्याप्य तदनन्तप्रदेशभाक् ॥ २७३ ॥
लोकाकाशप्रदेशस्था भिन्नाः कालाणवस्तु ये । भावानां परिवर्ताय मुख्यकालः स उच्यते ॥ २७४ ॥
ज्योतिःशास्त्रे यस्य मानमुच्यते समयादिकम् । स व्यावहारिकः कालः कालवेदिभिरामतः ॥ २७५ ॥
नवजीर्णादिरूपेण यदमी भुवनोदरे । पदार्थाः परिवर्तन्ते तत् कालस्यैव चेष्टितम् ॥ २७६ ॥
वर्तमाना अतीतत्वं भाविनो वर्तमानताम् । पदार्थाः प्रतिपद्यन्ते कालक्रीडाविडम्बिताः ॥ २७७ ॥

[§]इति अजीवतत्त्वम् ॥

मनो-वचन-कायानां यत् स्यात् कर्म स आश्रवः । शुभः शुभस्य हेतुः स्यादशुभस्त्वशुभस्य[¶] सः ॥ २७८ ॥

[||]इति आश्रवतत्त्वम् ॥

सर्वेषामाश्रवाणां यो रोधहेतुः स संवरः । कर्मणां भवहेतूनां जरणा[4]दिह निर्जरा ॥ २७९ ॥

[$]इति संवर-निर्जरे तत्त्वे ॥

सकषायतया जीवः कर्मयोग्यांस्तु पुद्गलान् । यदादत्ते स बन्धः स्याज्जीवास्वातन्त्र्यकारणम् ॥ २८० ॥
प्रकृति-स्थित्यनुभाव-प्रदेशा विधयो[5]ऽस्य तु । प्रकृतिस्तु स्वभावः स्याज्ज्ञाना[6]वृत्त्यादिरष्टधा ॥ २८१ ॥
ज्ञान[7]-दृष्ट्यावृती वेद्यं मोहनीयायुषी अपि । नाम-गोत्रान्तरायाश्च मूलप्रकृतयो मताः ॥ २८२ ॥
निष्कर्षो[8]त्कर्षतः कालनियमः कर्मणां स्थितिः । अनुभावो विपाकः[9] स्यात् प्रदेशोंऽशप्रकल्पनम् ॥ २८३ ॥
मिथ्यादृष्टिरविरतिप्रमादौ च क्रुधा[**]दयः । योगेन सह पञ्चैते विज्ञेया बन्धहेतवः ॥ २८४ ॥

[††]इति बन्धतत्त्वम् ॥

---

* संबृ० का० आदर्शयोर्नास्त्येतत् पदद्वयम् ॥ १ विहायः–आकाशास्तिकायः । २ प्रदेशसमूहरूपाः । ३ ज्ञानावरणीयादि कर्म । † देशिकौ । संबृ० ॥ ‡ °याधिया° संबृ० ॥ § संबृ० का० आदर्शयोः 'इति' पदं नास्ति ॥ ¶ °स्य च । संबृ० ॥ || संबृ० का० आदर्शयोः 'इति आश्रवतत्त्वम्' इत्यस्य स्थाने 'आश्रवः' इति पदम् ॥ ४ क्षयात् । $ संबृ० का० आदर्शयोः 'इति संवर-निर्जरे तत्त्वे' इत्यस्य स्थाने 'संवरनिर्जरे' इति पदम् ॥ ५ अस्य बन्धस्य चत्वारः प्रकाराः–प्रकृतिः, स्थितिः, अनुभावः, प्रदेशश्चेति । ६ ज्ञानावरणादिः । ७ ज्ञानावरणम्, दर्शनावरणं च । ८ जघन्यतः उत्कृष्टतश्च कर्मणां कालनियमः सा स्थितिः । निकर्ष° मु० ॥ ९ कर्मणां विपाकोऽनुभावः । ** क्रुदादयः संबृ० का० ॥ †† संबृ० का० आदर्शयोः 'इति' पदं नास्ति ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभावे बन्धहेतूनां घातिकर्मक्षयोद्भवे । केवले सति मोक्षः स्याच्छेषाणां कर्मणां क्षये ॥ २८५ ॥
सुरा-ऽसुर-नरेन्द्राणां यत् सुखं भुवनत्रये । स स्यादनन्तभागोऽपि न मोक्षसुखसंपदः ॥ २८६ ॥
इति मोक्षतत्त्वम् ॥

एवं तत्त्वानि जानानो जनो जगति जातुचित् । न निमज्जति संसारे वारिधाविव तारकः ॥ २८७ ॥
एवं देशनया भर्तुः प्राज्याः पर्यव्रजञ्जनाः । भेजे हरिस्तु सम्यक्त्वं श्रावकत्वं च सुप्रभः ॥ २८८ ॥
व्यरंसीदादिपौरुष्यां देशनातो जगत्पतिः । यशास्तत्पादपीठस्थो गणभृद् देशनां व्यधात् ॥ २८९ ॥
तत्राप्यवरपौरुष्यां देशनाविरते सति । नत्वा प्रभुं ययुः स्वौकः शक्रोपेन्द्रबलादयः ॥ २९० ॥
ततः स्थानात् प्रभुरपि ग्रामा-ऽऽकर-पुरादिषु । प्रबोधयन् भव्यजन्तून् विजहार वसुन्धराम् ॥ २९१ ॥
षष्टिः षट् च सहस्राणि श्रमणानां महात्मनाम् । तथा चतुर्दशपूर्वभृतां नव शतानि च ॥ २९२ ॥
चतुःसहस्री त्रिशती चावधिज्ञानशालिनाम् । मनःपर्ययिणां पञ्च चत्वारिंशच्छतानि च ॥ २९३ ॥
तथा पञ्च सहस्राणि केवलज्ञानधारिणाम् । जातवैक्रियलब्धीनां सहस्राण्यष्टयोगिनाम् ॥ २९४ ॥
त्रिसहस्री शते द्वे च वादलब्धिमतां पुनः । आर्यिकाणां सहस्राणि द्वाषष्टिर्वीतपाप्मनाम् ॥ २९५ ॥
श्रावकाणां पुनर्लक्षद्वयं षष्टिः शतानि च । श्राविकाणां चतुर्लक्षी चतुर्दशसहस्र्यपि ॥ २९६ ॥
त्र्यब्दोनान्यब्दलक्षाणि सप्त सार्धानि केवलात् । महीं विहरमाणस्य परिवारोऽभवत् प्रभोः ॥ २९७ ॥
स्वं मोक्षकालं ज्ञात्वा तु संमेताद्रिमगात् प्रभुः । साधुसप्तसहस्र्या च सहानशनमाददे ॥ २९८ ॥
मासान्ते चैत्रविंशदपञ्चम्यां पौष्णगे विधौ । समं तैर्मुनिभिर्मोक्षं प्रपेदेऽनन्तजित् प्रभुः ॥ २९९ ॥
स्वामिनः स्वामिशिष्याणां तेषां चाभ्येत्य वासवाः । सामराश्चक्रिरे तत्र निर्वाणमहिमोत्सवम् ॥ ३०० ॥
कौमारे सप्त लक्षाणि सार्धानि शरदामथ । पृथिवीपालने वर्षलक्षाणि दश पञ्च च ॥ ३०१ ॥
अर्धाष्टमावर्षलक्षाः प्रव्रज्यापरिपालने । इति त्रिंशद्वर्षलक्षाण्यनन्तजित आयुषि ॥ ३०२ ॥
विमलस्वामिनिर्वाणादनन्तस्वामिनिर्वृतिः । व्यतिक्रान्तेषु नवसु वारिराशिष्वजायत ॥ ३०३ ॥
स त्रिंशद्वर्षलक्षायुर्विष्णुरत्युग्रकर्मभिः । तमःप्रभाख्यामगमत् षष्ठीं नरकमेदिनीम् ॥ ३०४ ॥
कौमारेऽब्दसप्तशती मण्डलित्वे त्रयोदश । वर्षशतान्यथाशीतिर्वर्षाणि ककुभां जये ॥ ३०५ ॥
राज्येऽब्दानामथैकोनत्रिंशल्लक्षी सहस्रकाः । नवतिः सप्त च नवशती विंशतिरस्य तु ॥ ३०६ ॥
सुप्रभः पञ्चपञ्चाशद्वर्षलक्षायुरुच्चकैः । स्वभ्रातुरवसानेन दुःखितोऽस्थाच्चिरं भुवि ॥ ३०७ ॥

सोऽप्यथानुजविपत्तिविरक्त्याऽऽत्तव्रतो मुनिमृगाङ्कुशपार्श्वे ।
प्राप्य केवलमनन्तचतुष्कीं स्थानमापदपुनर्भवरूपम् ॥ ३०८ ॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये
चतुर्थे पर्वणि श्रीअनन्तस्वामि-पुरुषोत्तम-सुप्रभ-मधुचरितवर्णनो
नाम चतुर्थः सर्गः संपूर्णः ।

---

* °णां जये । मु० ॥ † संवृ० का० आदर्शयोः पदद्वयं नास्ति ॥ १ बहवः । ‡ °नान्ते ज० संवृ० का० ॥ २ स्वस्वस्थानम् । § °पर्योयि° संवृ० ॥ ¶ °नां शताशीतिर्महात्मनाम् । संवृ० का० ॥ ३ नष्टपापानाम् । ४ विशदः–शुक्लः । ५ सार्धसप्तलक्षाः । ६ सागरोपमेषु । ** सुप्रभश्चाथ पञ्चा° संवृ० ॥ ७ मोक्षरूपं स्थानं प्राप्तः । †† °धुचर्णनो मु० ॥ संवृ० का० आदर्शयो नास्त्येतत् पदम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चमः सर्गः ।

श्रीधर्मनाथचरित्रम् ।

धर्मगङ्गाहिमवतः कुतीर्थध्वान्तभास्वतः । श्रीमतो धर्मनाथस्य चरणौ शरणं श्रये ॥ १ ॥
तस्यैव तीर्थनाथस्य चरित्रमिदमुच्यते । संसारसिन्धुतरणे सेतुबन्धवदायतम् ॥ २ ॥
धातकीखण्डद्वीपे प्राग्विदेहे भरताभिधे । विजये भद्रिलपुरं नाम्नाऽस्ति विपुलं पुरम् ॥ ३ ॥
तस्मिन् दृढरथो नाम महीपरिवृढोऽभवत् । दोर्भ्यां दृढाभ्यां भ्राजिष्णुर्दन्ताभ्यामिव कुञ्जरः ॥ ४ ॥
तेजांसि जग्रसे राज्ञां ज्योतिषामिव भास्करः । तद्दण्डानां भाजनं च सोऽम्भोधिः सरितामिव ॥ ५ ॥
स महत्यपि साम्राज्ये नोत्सेकं जातुचिद् दधौ । विवेकी तूलतरलां जानन्नैद्रीमपि श्रियम् ॥ ६ ॥
तत्त्वद्वैषयिकं सौख्यमाप्नुवन्नपि सोऽकरोत् । आगन्तुरिव संसारवासे नास्थां मनागपि ॥ ७ ॥
भोगेषूद्यतवैराग्यः स्वशरीरेऽपि निःस्पृहः । स राज्यं प्राज्यमप्यौज्झच्छरीरमललीलया ॥ ८ ॥
संसारिकमहादुःखरोगैकभिषजस्ततः । ययौ स राजा विमलवाहनस्यान्तिकं गुरोः ॥ ९ ॥
तस्मादुपाददे रुच्या वेतनेनेव दुर्लभम् । चारित्ररत्नममलं स नृरत्नशिरोमणिः ॥ १० ॥
योगस्य मातरमिव समतामेव धारयन् । परीषहान् सहमानः स तेपे दुस्तपं तपः ॥ ११ ॥
आचान्तैः श्रुतगण्डूषैः पुण्यैस्तीर्थोदकैरिव । अपावयत् स आत्मानं विषयम्लेच्छदूषितम् ॥ १२ ॥
अर्हद्भक्तिप्रभृतीनि स्थानकानि परामृशन् । सुधीरुपार्जयामास तीर्थकृन्नाम कर्म सः ॥ १३ ॥
काले च कृत्वाऽनशनं स विपद्य समाहितः । विमाने वैजयन्ताख्ये महर्द्धिरमरोऽभवत् ॥ १४ ॥

इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन्नस्मिन् वर्षे च भारते । अस्ति रत्नपुरं नाम तत्तद्रत्नाकरः पुरम् ॥ १५ ॥
पार्श्वयो रत्नसोपानरश्मिजालैर्मिथो युतैः । सेतुबद्धा इवाभान्ति तत्रोपवनदीर्घिकाः ॥ १६ ॥
सार्हच्चैत्यानि हैमानि सादर्शानि पदे पदे । तत्राख्यान्ति गृहाण्येव त्रिपुमर्थीं सदोद्यताम् ॥ १७ ॥
यस्मिन् मरकतैर्बद्धा शोभते मार्गभूर्निशि । प्रतिबिम्बितनक्षत्रा मुक्तास्वस्तिकभागिव ॥ १८ ॥
तत्रौकोनागदन्तानां कण्ठेष्विभ्यवधूजनैः । हाराः प्रलम्बिता यान्ति कण्ठाभरणरूपताम् ॥ १९ ॥
शीतमुद्यानवापीभिर्धर्मे हर्म्यमहानसैः । वर्षां गजमदैर्बिभ्रत् तत्कालत्रयभागिव ॥ २० ॥
तत्रासीन्नृपतिर्भानुर्भानुमानिव तेजसा । वैरिकक्षबृहद्भानुर्भानुवच्चैरमलैर्गुणैः ॥ २१ ॥
परिमातुमलम्भूष्णुर्मा भूदपि बृहस्पतिः । तांस्तांस्तरङ्गिणीनाथतरङ्गानिव तद्गुणान् ॥ २२ ॥
एकेन तेनात्तकरा नापश्यदपरं पतिम् । भूरियं कुलजातेव ललना शीलशालिनी ॥ २३ ॥
श्रियं स्वभावचपलां संयम्य सुदृढैर्गुणैः । स्वदोःस्तम्भे स्थिरीचक्रे स वारणवधूमिव ॥ २४ ॥
प्रौढप्रतापो मार्तण्ड इव प्रत्यर्थिभूभुजाम् । संजहार स तेजांसि प्रदीपानामिवाभितः ॥ २५ ॥
विजेतुकामो नृपतीनध्यारोपयति स सः । न भ्रूलतामप्यलिके किं पुनः कार्मुके गुणम् ॥ २६ ॥

---

१ कुतीर्थमिव ध्वान्तं तस्मिन् सूर्यसदृशस्य । * °णं श्रिये । मु० ॥ † °न्धमिवाय° संवृ० ॥ २ विस्तृतम् । ३ महीपालः राजा इत्यर्थः । ४ तेषां राज्ञां दण्डानाम् । ५ गर्वम् । ६ तुलवच्चञ्चलाम् । ७ अतिथिवत् । ८ मूल्येन । ९ पीतैः, श्रुताण्येव गण्डूषाश्चुलुकास्तैः । १० समाधिमान् । ११ रत्नमयपङ्क्तीनां किरणैर्बद्धसेतुका इव वाप्यः शोभन्ते इत्यर्थः । ‡ °दोदिताम् । संवृ० का० ॥ १२ नागदन्ताः दन्तकाः 'खुंटी' इति भाषायाम् । १३ वैरिण एव कक्षास्तेभ्यः बृहद्भानुरग्निरिव, भान् शोभमानः । १४ आत्तो गृहीतो हस्तोऽन्यत्र षष्ठांशभागो यस्याः सा । १५ हस्तिनीपक्षे रज्जुभिः । १६ भाले ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभवत् तस्य पादाब्जोपासनेऽतिमधुव्रता[1] । कलत्रं सुव्रता नाम लोकोत्तरसतीव्रता ॥ २७ ॥
कोकिलाभिः कलालापो हंसीभिर्गतिचातुरी । मृगीभिर्दृष्टिविक्षेपः शिक्षितानि ततो ध्रुवम् ॥ २८ ॥
लज्जा सहचरी तस्याः शीललक्ष्मीः प्रसाधिका[2] । कौलीन्यं कञ्चुकिवरः[3] सहजोऽयं परिच्छदः ॥ २९ ॥
पतिभक्तिरलङ्कारस्तस्याः समुचितोऽभवत् । अलङ्कार्यमलङ्कारजातं हारादि चापरम् ॥ ३० ॥
तदा च वैजयन्तस्थो जीवो दृढरथस्य सः । प्रकृष्ट*सुखनिर्मग्नो† निजमायुरपूरयत् ॥ ३१ ॥
च्युत्वा ततो राधशुक्लसप्तम्यां पुष्यगे विधौ । सुव्रतास्वामिनीकुक्षौ स जीवः समवार्तरत्‡ ॥ ३२ ॥
गजप्रभृतिकांस्तीर्थंकर§जन्माभिसूचकान् । चतुर्दशमहास्वप्नांस्तदाऽदर्शच्च सुव्रता ॥ ३३ ॥
माघशुक्लतृतीयायां पुष्ये मे वज्रलाञ्छनम् । स्वर्णवर्णं सुव्रतादेव्यसूत समये सुतम् ॥ ३४ ॥
दिक्कुमार्यः षट्पञ्चाशदेत्य भोगङ्करादयः । स्वामिनः स्वामिमातुश्च सूतिकर्माणि चक्रिरे ॥ ३५ ॥
तत्कालं पालकारूढः सौधर्मेन्द्र उपेत्य च । आदाय स्वामिनं निन्ये मेरुपर्वतमूर्धनि ॥ ३६ ॥
अपि पाण्डुकम्बलायां रत्नसिंहासने हरिः । आसाञ्चक्रे स्वाङ्कसिंहासनारोपिततीर्थकृत् ॥ ३७ ॥
अथाच्युतप्रभृतिभिस्त्रिषष्ट्या वासवैः प्रभोः । विधिवद् विदधे स्नात्रं पवित्रैस्तीर्थवारिभिः ॥ ३८ ॥
ईशानाङ्के निवेश्येशं स्नपयामास वज्रभृत् । विलिप्य पूजयित्वा च स्तोतुं चेत्युपचक्रमे ॥ ३९ ॥
नमस्तुभ्यं पञ्चदशायार्हते परमेश्वर ! । परमध्येयरूपाय परमध्यायिनेऽपि च ॥ ४० ॥
देवेभ्यो दानवेभ्योऽपि मर्त्यान् मन्ये गरीयसः । त्रैलोक्यवन्द्यो यत्र त्वमुदभूस्तीर्थनायकः ॥ ४१ ॥
अपाग्भरतवर्षेऽस्मिन् ममाप्यैवास्तु मर्त्यता । मोक्षसाधनसाधीयस्त्वच्छिष्यत्वजिघृक्षया[4] ॥ ४२ ॥
नारकेभ्यो नाकसदां[5] को भेदः सुखिनामपि । भवेद् येषां प्रमत्तानां न भवत्पाददर्शनम् ॥ ४३ ॥
विजृम्भितं तावदेव घूकैरिव कुतीर्थिकैः । न यावत् त्रिजगन्नाथ ! रवेरिव तवोदयः ॥ ४४ ॥
तव वर्षाम्बुदस्येव धर्मदेशनवारिणा । भरतार्धं सर इवाशेषं पूरिष्यतेऽचिरात् ॥ ४५ ॥
अनन्तान् देहिनो मुक्तिं प्रापयन् परमेश्वर ! । अरिदेशमिवोर्वीशस्त्वं कर्ता भवमुद्वसम्[6] ॥ ४६ ॥
त्वत्पादपद्मलीनेन षट्पदेनेव चेतसा । भगवन् ! कल्पवासेऽपि प्रयान्तु मम वासराः ॥ ४७ ॥
स्तुत्वेति स्वामिनं शक्रो गृहीत्वेशानवासवात् । नीत्वा च सुव्रतादेव्याः पार्श्वेऽमुञ्चद् यथास्थिति ॥४८॥
गर्भस्थेऽस्मिन् धर्मविधौ यन्मातुर्दोहदोऽभवत् । तेनास्य धर्म इत्याख्यामकार्षीद् भानुभूपतिः ॥ ४९ ॥
अत्यगाच्छैशवं स्वामी क्रीडन् सुरकुमारकैः । प्रापच्च यौवनं पञ्चचत्वारिंशद्धनून्नतः ॥ ५० ॥
चिरेप्सितं पूरयितुं पित्रोः कौतूहलं प्रभुः । भोग्यकर्माणि भोक्तुं च चक्रे दारपरिग्रहम् ॥ ५१ ॥
वर्षलक्षद्वये सार्धे जन्मतोऽतिगते सति । पर्यग्रहीद् राज्यभारं स्वामी पित्रनुरोधतः ॥ ५२ ॥
पञ्चलक्षाणि वर्षाणां शशास वसुधां विभुः । प्राप्तकालां तदा दीक्षां चिन्तयामास च स्वयम् ॥ ५३ ॥
तीर्थं प्रवर्तय स्वामिन्निति लौकान्तिकैः प्रभुः । विज्ञप्तो वार्षिकं दानं दीक्षाऽनाद्या मुखं ददौ ॥ ५४ ॥
अभिषिक्तोऽमरैर्नागदत्ताख्यां शिबिकां विभुः । अधिरुह्य ययौ रम्यमुद्यानं वप्रकाञ्चनम् ॥ ५५ ॥
प्रियङ्गुमञ्जरीपुञ्जमत्तगुञ्जदलिव्रजम्[7] । पुन्नागोत्तंससंदर्भव्याकुलोद्यानपालिकम्[8] ॥ ५६ ॥
पौराङ्गनामृज्यमानस्वमुखं रोध्ररेणुभिः । शोभितं पुष्पितैः कुन्दैः स्मरायुधगृहैरिव ॥ ५७ ॥

---

१ मधुव्रतं भ्रमरमतिक्रान्ता भ्रमरीसदृशीत्यर्थः । २ अलङ्कारपरिधापिनी दासी । ३ श्रेष्ठः कञ्चुकी–अन्तःपुराध्यक्षः ।
* °कृष्टं सु° मु० ॥ † °निर्मग्नो संवृ० का० ॥ ‡ °वासरत् । का० ॥ § °र्थङ्कर° का० ॥ ४ मोक्षसाधने साधीयः श्रेष्ठं तव शिष्यत्वं तद् ग्रहीतुमिच्छया । ५ देवानाम् । ¶ °शनावा° मु० ॥ ६ शत्रुदेशं यथा राजा निर्जनं करोति तथैवायमपि संसारमुद्वसं नाशं करिष्यतीत्यर्थः । ७ प्रियङ्गुलतायाः मञ्जरीणां पुञ्जे मत्तोऽत एव गुञ्जन्नलिव्रजो भ्रमरसमूहो यस्मिंस्तत् । ८ पुन्नागपुष्पाणामलङ्कारग्रथने व्याकुला उद्यानपालस्त्रियो यस्मिंस्तत् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]लवलीपुष्पलवनव्यग्रारामिकदारकम् । [2]मुचुकुन्दमरन्दोदबिन्दुसार्द्रितभूतलम् ॥ ५८ ॥
बद्धोर्वीकं मरकतैरिवोन्[3]मरुचकं ततः । प्रविवेश तदुद्यानं शिशिरश्रीमयं प्रभुः ॥ ५९ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

माघशुक्लत्रयोदश्यां पुष्ये भे चापरेऽहनि । समं राजसहस्रेण षष्ठेन प्राव्रजत् प्रभुः ॥ ६० ॥
द्वितीयेऽह्नि सौमनसे धर्मसिंहनृपौकसि । चकार परमान्नेन पारणं परमेश्वरः ॥ ६१ ॥
दिव्यं समभवत् तत्र वसुधारादिपञ्चकम् । धर्मसिंहो व्यधाद् रत्नपीठं स्वामिपदावनौ ॥ ६२ ॥
निरपेक्षः शरीरेऽपि समीरण इवास्खलन् । ततः स्थानात् प्रववृते क्ष्मां विहर्तुं जगद्गुरुः ॥ ६३ ॥

इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन् विदेहेष्वपरेषु च । राजा पुरुषवृषभोऽशोकायामभवत् पुरि ॥ ६४ ॥
सदा विरक्तः संसारात् [5]तात्त्विकः सात्त्विकश्च सः । पर्यव्राजीत् पादमूले प्रजापालमहामुनेः ॥ ६५ ॥
दुस्तपं स तपस्तप्त्वा प्राप्ते† काले विपद्य च । अष्टादशसमुद्रायुः सहस्रारे* सुरोऽभवत् ॥ ६६ ॥
गतेषु तस्य देवस्यायुषः षोडशवार्धिषु । [4]इहैव पोतनपुरे राजा विकट इत्यभूत् ॥ ६७ ॥
कुञ्जरः कुञ्जरेणेव विजिग्ये स्वभुजौजसा । रणाङ्गणे राजसिंहाभिधानेन स भूभुजा ॥ ६८ ॥
पराजयेन तेनाथ ह्रिया राज्यं स्वसूनवे । दत्त्वा गत्वा चातिभूतेः पादान्ते व्रतमाददे ॥ ६९ ॥
तपः स तीव्रं तेपे च निदानमिति चाकरोत् । भवान्तरे राजसिंहोच्छेदाय स्यामहं ध्रुवम् ॥ ७० ॥
इत्थं कृतनिदानः सन् कालयोगाद् विपद्य सः । कल्पे द्वितीय उत्पेदे द्व्य[6]र्णवायुः सुरोत्तमः ॥ ७१ ॥
राजसिंहनृपः सोऽपि चिरं भ्रान्त्वा भवार्णवम् । भरतान्तर्हरिपुरे निशुम्भोऽभून्महीपतिः ॥ ७२ ॥
स कृष्णवर्णः पञ्चाग्रचत्वारिंशद्धनून्नतः । दशवत्सरलक्षायुर्भुव्यभूदुग्रशासनः ॥ ७३ ॥
अपाग्भरतवर्षार्धं साधयित्वैकलीलया । प्रतिविष्णुः सोऽर्धचक्री पञ्चमः समजायत ॥ ७४ ॥

इतश्चात्रैव भरते नगरेऽश्वपुराभिधे । शिवो नामाभवद् राजा शि[7]वानामेकमास्पदम् ॥ ७५ ॥
तस्याभूतामुभे पत्न्यौ नामतो विजयाम्मके । नितान्तं वल्लभे मूर्तिमत्यौ कीर्तिश्रियाविव ॥ ७६ ॥
पुरुषवृषभजीवः सहस्रारादथ च्युतः । [8]चतुःस्वप्नाख्यातबलजन्माऽऽगाद् विजयोदरे ॥ ७७ ॥
पूर्णे काले च विजयास्वामिनी सुषुवे सुतम् । [9]अवदातं वपुष्मन्तमिव पत्युर्यशश्चयम् ॥ ७८ ॥
उत्सवेन गरिष्ठेन शिवोऽथ दिवसे शुभे । [10]सुदर्शनत्वात् तस्याख्यां सुदर्शन इति व्यधात् ॥ ७९ ॥
इतो विकटजीवोऽप्यैशानकल्पात्‡ परिच्युतः । सप्तस्वप्नाख्यातविष्णुजन्मागादम्मकोदरे ॥ ८० ॥
असूत समये साऽपि तनयं पूर्णलक्षणम् । इन्द्रनीलमणिनीलं नीलोत्पलमिवा[11]पगा ॥ ८१ ॥
एष सिंहः पुरुषेषु पौरुषेणातिशायिना । ततोऽस्य पुरुषसिंह इत्याख्यामकरोन्नृपः ॥ ८२ ॥
धात्रीजनैर्लाल्यमानौ क्रीडन्तौ तौ परस्परम् । नीलपीताम्बरौ तालताक्ष्याङ्कौ§ वृद्धिमीयतुः ॥ ८३ ॥
तौ साक्षिणमुपाध्यायं कृत्वा जगृहतुः कलाः । सावधानौ [12]स्वनिखातसंनिधाननिधानवत् ॥ ८४ ॥
अभूतां कवचहरौ भ्रातरौ तौ क्रमेण च । प्रतिमल्लाविव द्यावापृथिव्योश्च व्यराजताम् ॥ ८५ ॥
परस्परं स्नेहलौ तावश्विनाविव सोदरौ । अत्यन्तभक्तौ¶ च पितुर्व्यवर्तेतां पदातिवत् ॥ ८६ ॥
अन्यदा कस्यचिद् दर्पभाजः पर्यन्तभूपतेः । साधनाय शिवः प्रैषीद् दिव्यास्त्रमिव सीरिणम् ॥ ८७ ॥

---

१ लवलीपुष्पाणां लवने छेदने व्याकुला उद्यानपालबाला यस्मिंस्तत् । २ मुचुकुन्दपुष्पाणां मकरन्दस्य जलबिन्दुभिरार्द्रं भूतलं यस्य तत् । ३ उत्फुल्ला मरुचकवृक्षा यस्मिंस्तत् । ४ तत्रास्मिन् नगरे । * °सारे ता° संवृ० ॥ ५ तत्त्ववेत्ता । † °प्ते च काले वि° संवृ० ॥ ६ द्विसागरोपमायुः । ७ कल्याणानाम् । ८ चतुर्भिः स्वप्नैराख्यातं बलभद्रस्य जन्म येन सः । ९ निर्मलम् । महता । १० सुष्ठु दर्शनं यस्य तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् । ‡ °वोऽपि द्वितीयात् कल्पतश्च्युतः मु० ॥ ११ नदी । ¶ °न्तौ च प° संवृ० ॥ § °क्षौ तावचर्धताम् । संवृ० ॥ १२ यथा स्वेन निखातं समीपस्थं निधानं गृह्णाति तद्वत् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्नेहात् पुरुषसिंहोऽपि तं प्रयाणानि कानिचित् । अन्वगात् प्रेमबन्धो हि वज्रलेपानुहारकः ॥ ८८ ॥
कथञ्चिद् बलभद्रेण प्रत्यादिष्टोऽनुयानतः । तत्रैवास्थाद्धरिः कष्टं यूथभ्रष्ट इव द्विपः ॥ ८९ ॥
विनोदैर्विविधैस्तत्र दुःखं भ्रातृवियोगजम् । स यावत् क्षपयंस्तस्थौ तावदागात् पितुः पुमान् ॥ ९० ॥
तेनार्पितं पितुर्लेखं मूर्धन्याधत्त माधवः । शीघ्रमागच्छ वत्सेति तत्रैक्षिष्टाक्षराण्यपि ॥ ९१ ॥
स संभ्रान्तस्तमित्यूचे कच्चित् कुशलमम्बयोः । कुशलं तातपादानां शीघ्राह्वानं च किं मम ? ॥ ९२ ॥
पुरुषोऽप्यब्रवीदेवमङ्गे दाहज्वरो महान् । उत्पन्नोऽस्तीति देवस्त्वां समाह्वयति सत्वरम् ॥ ९३ ॥
पितुर्दाहज्वरोदन्ताघ्रातात् सप्तच्छदादिव । विधुरः प्रास्थित हरिर्दुःखं नातः परं सताम् ॥ ९४ ॥
प्रपेदे च द्वितीयेऽह्नि नगरीं स्वां जनार्दनः । तादृग्दुःखं हि जात्यानां दवाग्नीयेत वर्त्मनि ॥ ९५ ॥
योज्यमानैः खण्ड्यमानैः क्वथ्यमानैरनेकशः । वर्त्यमानैश्च विविधैरौषधैर्व्यग्रकिङ्करम् ॥ ९६ ॥
रसवीर्यविपाकज्ञैरौषधानां बलाबलम् । विचारयद्भिश्चतुरैर्वैद्यवर्यैरधिष्ठितम् ॥ ९७ ॥
आत्मरक्षै रक्ष्यमाणतुमुलं करसंज्ञया । द्वाःस्थैर्भ्रूसंज्ञया दूरे स्थाप्यमानं भिषग्जनम् ॥ ९८ ॥
ज्वरार्तेनाश्रितं पित्रा प्रविश्य सदनं हरिः । आहरन्निव तद्दुःखमभूत् तद्दुःखदुःखितः ॥ ९९ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥
प्रणमंश्च पितुः पादौ पाणिभ्यां संस्पृशन् हरिः । बाष्पायमाणैर्नयनैः स्नपयन्निव भक्तितः ॥ १०० ॥
शिवः सुतकरस्पर्शाद् बाढमाश्वसिति स्म च । इष्टस्य दर्शनेनापि शं स्यात् स्पर्शेन किं पुनः ? ॥ १०१ ॥
भूयो भूयोऽपि शिवराट् संस्पृशन् पाणिना सुतम् । रोमाञ्चमधिकं दध्रे शैत्यमासादयन्निव ॥ १०२ ॥
शिवराजोऽप्युवाचैवं कथं क्षामतरोदरः । शुष्काधरदलश्च त्वमुपैदावमिव द्रुमः ॥ १०३ ॥
अथ विष्णोः पुमानूचे देव ! देवस्य दारुणाम् । श्रुत्वा दशामिमां सद्यस्त्वां द्रष्टुमचलद्धरिः ॥१०४॥
द्वाभ्यां दिनाभ्यां चात्रागादभुञ्जानोऽपिबन् पयः । त्वत्पादान् संस्मरन् भक्त्या स्मृतविन्ध्य इव द्विपः ॥१०५
आकर्ण्य तच्च द्विगुणं दुःखभागादिशच्छिवः । गण्डे पिटकवच्चक्रे किमनर्थान्तरं त्वया ? ॥ १०६ ॥
गत्वा सपरिवारोऽपि भोजनावसरं कुरु । सर्वार्थसाधकः कायश्चलत्येष हि भोजनात् ॥ १०७ ॥
एवं पित्रा समादिष्टो भूयो भूयोऽपि साग्रहम् । सदुःखो बुभुजे किञ्चिद् विष्णुः समदद न्तिवत् ॥१०८॥
श्रीखण्डमप्यनादायावसानश्चान्यवाससी । नाटयन्नतिदुःखेनावतंसे नकुलस्थितम् ॥ १०९ ॥
भुक्तमात्रो निजावासात् पादचारी जनार्दनः । पितुर्जगाम सदनं दीनाशेषपरिच्छदः ॥ ११० ॥ युग्मम् ॥
तत्र च प्रविशन् विष्णुर्जननीद्वाःस्थयैकया । अग्रेभूत्वा सकरुणं व्यज्ञपीदश्रुदंश्रिया ॥ १११ ॥
कुमार ! परित्रायस्व परित्रायस्व नन्वसौ । जीवत्यपि महाराजे देवीदं दुर्व्यवस्यति ॥ ११२ ॥
तदाकर्ण्य वचो विष्णुः संभ्रान्तो मातुरालयम् । जगाम वीक्षाञ्चक्रे च मातरं ब्रुवतीमिति ॥ ११३ ॥
पतिप्रसादादुद्भूता ये प्राज्या रत्नराशयः । अनन्तं काञ्चनं यच्च ये वा रजतसंचयाः ॥ ११४ ॥
मुक्तामया वज्रमया जात्यरत्नमयाश्च ये । संमिश्रा ये च नेपथ्यसमुद्रदायाः सहस्रशः ॥ ११५ ॥
यच्चान्यत् कोशसर्वस्वं सप्तक्षेत्र्यां तदर्प्यताम् । महापथप्रस्थितानां पाथेयं हीदमादिमम् ॥ ११६ ॥
पत्युर्विपत्तौ वैधव्यसहाऽस्मि न मनागपि । अहं तदग्रे यास्यामीत्यनलः सज्ज्यतां द्रुतम् ॥ ११७ ॥

---

१ वज्रलेपसदृशः । २ निषिद्धः । ३ मात्रोः । ४ कुलीनानाम् । * °मानभि° का० । °मानान्तिषज्जनम् । संब्रु० ॥ † का० आदर्शे नास्ति पदद्वयम् । ५ सुखम् । ६ अतिशयेन कृशमुदरं यस्य सः । ७ दावानलसमीपे । ‡ °भागदि° संब्रु० ॥ ८ स्फोटकस्योपरि स्फोटकवत् । § पिक इव चक्रे संब्रु० ॥ ¶ °ष्णुः सगद्गदं वदन् । संब्रु० ॥ ९ मदसहितो गजो यथा सदुःखं स्वल्पं भुङ्क्ते तद्वत् । १० चन्दनम् । ११ अवतंसे स्थाने नकुलस्थितिवत् । ** °दृश्रया । संब्रु० का० ॥ १२ अयोग्यं व्यवस्यतीत्यर्थः । १३ मरणे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति ब्रुवाणां जननीं जननीं दुःखसंपदः । उपेत्य नत्वा च हरिर्व्याहरद् गद्गदाक्षरम् ॥ ११८ ॥
मातर्मातस्त्वमपि मां मन्दभाग्यं किमुज्झसि । अहो ! विरुद्धं मे दैवं देव्यैवं यत् प्रचक्रमे ॥ ११९ ॥
अम्मादेव्यप्युवाचैवं तज्ज्ञैः सम्यक् परीक्षितः । त्वत्तातस्योपस्थितोऽयं रोगः प्राणहरो हरे ! ॥ १२० ॥
नालं क्षणमपि श्रोतुं विधवेत्यक्षराण्यहम् । कौसुम्भधारिणी यास्याम्यग्रतस्त्वत्पितुस्ततः ॥ १२१ ॥
कृतार्थं मेऽभवज्जन्म पत्या शिवमहीभुजा । पुत्र ! त्वया च पुत्रेण पञ्चमेनार्धचक्रिणा ॥ १२२ ॥
पत्युर्विपत्तौ यास्यन्ति मत्प्राणाः स्वयमेव हि । त्यक्ष्यामि तान् प्रविश्याग्नौ मा भून्मे हीनसत्त्वता ॥ १२३ ॥
तत्क्षत्रियकुलाचारमाचरन्त्या ममाधुना । मा स्म भूरन्तरायस्त्वं वत्स ! वात्सल्यतोऽपि हि ॥ १२४ ॥
समं सुदर्शनेन त्वं पुत्र ! नन्द ममाशिषा । पत्युरग्रे प्रयाम्येषा कृष्णवर्त्मैकवर्त्मना ॥ १२५ ॥
अन्तिमां प्रार्थनां तेऽद्य कुमारैनां करोम्यहम् । निषेधकं विधेरस्य त्वया वाच्यं न किञ्चन ॥ १२६ ॥
एवमुक्त्वा तु सा स्वामिविपच्छ्रवणकातरा । परलोकपुरद्वारं प्रवेष्टुमनलं ययौ ॥ १२७ ॥
दुःखानुबन्धिभिर्दुःखैः श्लथाङ्गो वीवधैरिव । समेऽपि प्रस्खलत्पादः पितुः पार्श्वं ययौ हरिः ॥ १२८ ॥
स्मरन् स्वां मातरं पश्यंस्तथा पितरमातुरम् । प्रतीकारासहो विष्णुः क्लीबमान्यपतद् भुवि ॥ १२९ ॥
राजा दाहज्वरार्तोऽपि बभाषे धैर्यमाश्रयन् । किमेतद् वत्स ! कातर्यं स्वकुलानुचितं तव ॥ १३० ॥
इयं हि त्वद्भुजाधारा वत्स ! देवी वसुंधरा । अधैर्यान्निपतन्नस्यां कथं नाम न लज्जसे ॥ १३१ ॥
त्वय्युच्चैः पुरुषसिंह इत्याख्याकारिणो मम । अज्ञानकारितां मा दास्त्वमेवं धैर्यमुत्सृजन् ॥ १३२ ॥
एवं शार्ङ्गिणमाश्वास्य शिवराजः शिवाशयः । कालधर्मं ययौ सायं कः कालं जेतुमीश्वरः ॥ १३३ ॥
श्रुत्वा च मूर्च्छितो विष्णुः पपात धरणीतले । महाद्रुमो वात्ययेव वातेनेव च वातकी ॥ १३४ ॥
अथ सिक्तः पयस्कुम्भैर्लब्धसंज्ञो जनार्दनः । हा तात ! तात ! तातेति क्रन्दन्नुत्तिष्ठति स्म च ॥ १३५ ॥
न किं संतप्यते तेऽङ्गं गुणः कस्यौषधस्य वा । प्रत्ययः कस्य वैद्यस्य सुखनिद्राऽथवाऽद्य किम् ? ॥ १३६ ॥
ब्रूहि तात ! प्रसादं मे कृत्वेति स्नेहमोहितः । प्रललाप क्षणं विष्णुर्विललाप च तत्क्षणम् ॥ १३७ ॥
शार्ङ्गभृद् धैर्यमादाय गोत्रवृद्धैः प्रबोधितः । अग्नौ पित्रङ्गसंस्कारं चकारागुरुचन्दनैः ॥ १३८ ॥
विधाय च निवापादि स्वपर्षदि निषद्य च । बलाय प्राहिणोल्लेखं पितृव्यापत्तिसूचकम् ॥ १३९ ॥
तं प्रान्तभूपतिं दृप्तं साधयित्वा बलोऽपि हि । दुःखार्तस्तेन लेखेन त्वरमाणः समाययौ ॥ १४० ॥
अन्योऽन्यकण्ठलग्नौ तौ मुक्तकण्ठप्ररोदिनौ । बलदेव-वासुदेवौ रोदयामासतुः सभाम् ॥ १४१ ॥
बोध्यमानावाप्तजनैः कथञ्चिद् धैर्यमापतुः । जहतुश्च पितुः स्नेहं मन्दं मन्दमुभावपि ॥ १४२ ॥
तिष्ठन्तौ विचरन्तौ च जल्पन्तौ मौनसंस्थितौ । दशोरिवाग्रे पितरं तौ ध्येयवदपश्यताम् ॥ १४३ ॥

तावेवं यावदासाते पितृशोकसमाकुलौ । तावदागात् तत्र दूतो निशुम्भस्यार्धचक्रिणः ॥ १४४ ॥
द्वाःस्थेन कथितः पूर्वं प्रविश्य च तदाज्ञया । बलदेव-वासुदेवौ स नत्त्वैवमभाषत ॥ १४५ ॥
श्रुत्वा लोकाच्छिवराजं धर्मराजपथस्थितम् । दधार शोकमस्तोकं निशुम्भः सुप्रभुः स वः ॥ १४६ ॥
युष्मत्पितुः स्मरन् भक्तिं स कृतज्ञशिरोमणिः । युष्मत्पार्श्वे प्राहिणोन्मामुपदिश्येति वाचिकम् ॥ १४७ ॥
अद्यापि हि युवां बालौ द्विषां परिभवास्पदम् । पदं च युवयोः पित्र्यं महदेतन्मयाऽर्पितम् ॥ १४८ ॥
कुमारौ मामुपेत्येह तिष्ठतं निरुपद्रवौ । नदीमध्यस्थितानां हि किं करोति दवानलः ? ॥ १४९ ॥

---

१ जनयित्रीम् । * °क्षरः । संब्रू० का० । २ वैधैरित्यर्थः । † मदाशि° । मु० ॥ ३ कृष्णवर्त्मा वह्निः । ४ मरणस्य । ५ भारैः । ६ समप्रदेशेऽपि । ७ रोगपीडितम् । ८ रोगोपायासमर्थः । ९ भीरुत्वम् । ‡ °लं यातु° मु० ॥ १० झञ्झावातेनेव । ११ वातरोगी पुमान् । § दुःखितस्ते° मु० ॥ १२ उच्चैःस्वरम् । ¶ मौनिनावपि । दृ° का० ॥ १३ यमराजमार्गस्थितं मृतमित्यर्थः । १४ संदेशम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लघीयांसौ गरीयांसौ विधातव्यौ मया युवाम् । चिरं कृताया वां पित्रा भक्तेरानृण्यमिच्छता ॥ १५० ॥
इत्युक्तयोस्तयोः *क्रोधोऽभूच्छोकश्च न्यवर्तत । रसान्तरेण हि रसो बाध्यते बलवानपि ॥ १५१ ॥
भ्रुवमुन्नमयन्नेकां किञ्चित् साचीकृतालिकः । अथाबभाषे पुरुषसिंहः सिंह इव क्रुधा ॥ १५२ ॥
इक्ष्वाकुकुलचन्द्रस्य तस्य विश्वोपकारिणः । अस्मत्पितुरस्तमये कस्कोऽभून्न शुचां पदम् ? ॥ १५३ ॥
राजानोऽन्येऽपि शुशुचुर्निशुम्भोऽपि शुशोच यत् । तेन पैशून्यमस्य स्याद् दद्याच्चेन्नेति वाचिकम् ॥ १५४ ॥
बालकस्यापि सिंहस्य को हि देशं प्रयच्छति । प्रवर्धयति तं को वा कुतस्तस्य पराभवः ? ॥ १५५ ॥
इदानीमावयोरेवं स जल्पन् किं न लज्जते । आप्तत्वव्याजतोऽस्माकं न्यक्कारी स द्विषन् खलु ॥ १५६ ॥
सोऽस्तु मित्रममित्रो वोदासीनो वा तव प्रभुः । निरपेक्षा वयं तस्य दोरपेक्षैव दोष्मताम् ॥ १५७ ॥
दूतोऽप्यूचे पितृतुल्यममित्रीकुर्वतोऽद्य तम् । सुव्यक्तं बालकत्वं ते शैवे ! शिवमनिच्छतः ॥ १५८ ॥
त्वमद्याप्यनभिज्ञोऽसि राजनीतेः कुमारक ! । उत्पादयस्यरिं तत् तं कुक्षिमामृज्य शूलवत् ॥ १५९ ॥
त्वदुक्तं स्वामिने नैतद् वक्ष्ये तत् कुरु मद्वचः । त्वत्प्रसादात् क्षेममस्तु चिरं ते सह बन्धुना ॥ १६० ॥
अन्यथा तु द्विषन् भावी स एव न चिरात् तव । तस्मिन् रुष्टे कृतान्ते च जीवितस्यापि संशयः ॥ १६१ ॥
एवं तदुक्त्याऽभ्यधिकमुद्यत्क्रोधोऽभ्यधाद्धरिः । त्वमेव दूत ! दूतोऽसि निरपेक्षः स्वजीविते ॥ १६२ ॥
दूतानां वाक्प्रपञ्चैकच्छेकानां त्वादृशां गिरा । निर्विषः फटयेवाहिः स भेषयति पार्थिवान् ॥ १६३ ॥
गच्छ माऽस्मद्वचो गोप्यं शंस स्वस्वामिनेऽखिलम् । शत्रुर्भावीति सोऽस्माभिर्वध्यकोटौ कृतोऽस्त्यलम् ॥ १६४ ॥
एवमुक्तः ससंरम्भमुत्थाय रभसेन सः । दूतो गत्वा निशुम्भाय सर्वमाख्यद् यथातथम् ॥ १६५ ॥
तदाकर्ण्य वचः क्रुद्धो निशुम्भोऽरिनिशुम्भनः । सेनाभिश्छादयन्नुर्वीं प्रतस्थेऽश्वपुरं प्रति ॥ १६६ ॥
निशुम्भं प्रस्थितं श्रुत्वा विष्णुनाऽप्यरिजिष्णुना । सद्यः सर्वाभिसारेण प्रतस्थे साग्रजन्मना ॥ १६७ ॥
निशुम्भ-पुरुषसिंहौ मिथः प्रमथनोद्यतौ । संगच्छेते स्मार्धमार्गे मत्ताविव वनद्विपौ ॥ १६८ ॥
युध्यन्ते स्म द्वयोः सैन्याः क्षोभयन्तोऽपि रोदसी । क्ष्वेडा-कार्मुकटङ्कार-करास्फालनशब्दितैः ॥ १६९ ॥
अजनिष्ट क्षणेनापि क्षयकाल इव क्षयः । अक्षौहिण्योरुभयोरप्यात्मरक्षानपेक्षयोः ॥ १७० ॥
अन्वीयमानो हलिना पवनेनेव पावकः । पाञ्चजन्यमपूरिष्ट शार्ङ्गधन्वा रथस्थितः ॥ १७१ ॥
महता तन्निनादेन परसैन्यानि सर्वतः । पतत्कुलिशनिर्घोषेणेव घोरेण चुक्षुभुः ॥ १७२ ॥
तिष्ठ तिष्ठ भटम्मन्येत्युच्चैराक्षिपन्नथ । रथी प्रतिहरिर्योद्धुमुपतस्थे हरिं प्रति ॥ १७३ ॥
आस्फालयामासतुस्तौ हरि-प्रतिहरी धनुः । कोपान्नमन्निजनिजभ्रुकुटीभङ्गभीषणम् ॥ १७४ ॥
अवर्षतामुभौ बाणैर्धारासारैरिवाम्बुदौ । सिंहनादैस्त्रासयन्तौ मृगीरिव नभश्चरीः ॥ १७५ ॥
निरन्तरं निपतितैर्विशिखप्रकरैस्तयोः । बभार रणभूर्वेत्रच्छन्नवारिधिविभ्रमम् ॥ १७६ ॥
करमुक्तैर्यन्त्रमुक्तैर्मुक्तामुक्तैरथापरैः । आयुधैर्युयुधाते तौ युद्धाम्भोधितिमिङ्गिलौ ॥ १७७ ॥
ज्वलज्ज्वालालिजिह्वालं करालं तीक्ष्णधारया । वज्रीव वज्रं सस्मार निशुम्भश्चक्रमुच्चकैः ॥ १७८ ॥
स्मृतमात्रोपस्थितं तदङ्गुल्या भ्रमयन् दिवि । सावष्टम्भोऽभ्यधत्तैवं निशुम्भः क्षोभणं वचः ॥ १७९ ॥

---

* कोपोऽभू° संभू० का० ॥ १ वक्रीकृतभालः । † °स्तसम° संभू० ॥ २ यदि स ईदृशं वाचिकं न दद्यात् तर्ह्यस्य शुचो ज्ञापकं स्यात् तत्तु नास्तीति भावः । ‡ °ति । तं प्रवर्धयते को हि कु° । संभू० ॥ ३ तिरस्कर्त्ता । ४ भुजापेक्षा । ५ हे शिवपुत्र ! । § °क ! । तेनोत्पादयसेऽरिं तं संभू० ॥ ६ मद्वचनानुसरणरूपात् त्वत्प्रसादादित्यर्थः । ७ यमरूपे । ८ छेकश्चतुरः । ९ फणया । ¶ स हि भेषयते नृपान् । संभू० ॥ १० वध्यगणनायाम् । ११ क्ष्वेडा सिंहशब्दः । १२ अग्निः । १३ कुलिशं वज्रम् । १४ आत्मानं भटं मन्यमानः । १५ विद्याधरीः । १६ बाणसमूहैः । १७ युद्धमेव समुद्रस्तस्मिंस्तिमिङ्गिलौ मत्स्यविशेषौ । १८ सगर्वः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुकम्प्योऽसि बालोऽसि का लज्जा तेऽपसर्पतः । तद्गच्छ मां वा सेवस्व किं ते श्वाऽपि न मन्त्रकृत्[1] ? ॥ १८० ॥
चक्रेणानेन मुक्तेन दारयामि गिरीनपि । तवाभिनवकूष्माण्डकोमलस्य तु का कथा ? ॥ १८१ ॥
ऊचे पुरुषसिंहोऽथ तवेत्यूर्जितगर्जितम्* । ओजश्चक्रस्य च प्रेक्ष्यमन्यास्त्रैः किं कृतं त्वया ? ॥ १८२ ॥
शक्रधन्वेव[2] मेघेन त्वया चक्रमिदं धृतम् । किं मे करिष्यते मूढ ! मुञ्च पश्याम्यमोघताम् ॥ १८३ ॥
एवं पुरुषसिंहेन भाषितः परुषाक्षरम् । सर्वौजसाऽमुचच्चक्रं निशुम्भो निशुंशुम्भिषुः[3] ॥ १८४ ॥
हरेरुरसि तुम्बाग्रभागेनास्फाल्य तद्द्रयात् । मोघीबभूव[4] विन्ध्याद्रेस्तव्यामिव महागजः ॥ १८५ ॥
मूर्च्छया पुण्डरीकाक्षो मुकुलाक्षोऽपतत् ततः । मुशलास्त्रेण[5] सिषिचे चाथ गोशीर्षचन्दनैः ॥ १८६ ॥
उत्थाय लब्धसंज्ञस्तच्चक्रमादाय पाणिना । मा तिष्ठ गच्छ गच्छेति निशुम्भं प्रत्यभाषत ॥ १८७ ॥
मुञ्च मुञ्चेति वदतो निशुम्भस्य शिरस्ततः । चकर्त तेन चक्रेणार्धचक्री सोऽथ पञ्चमः ॥ १८८ ॥
पुष्पवृष्टिर्हरेर्मूर्ध्नि मूर्धन्यस्य तरस्विनाम्[6] । पपात गगनात् सद्यो जयश्रीहाससन्निभा ॥ १८९ ॥
तयैव यात्रया विष्णुर्भरतार्धमसाधयत् । सहस्रधा हि फलति व्यवसायो महात्मनाम् ॥ १९० ॥
दिग्यात्राया निवृत्तोऽथ मगधेष्वागतो हरिः । दोष्णोदध्रे कोटिशिलां मृत्पात्रमिव[7] लीलया ॥ १९१ ॥
मेदिनीं छादयन्नश्वैर्ययावश्वपुरं हरिः । विवेशितः पुरस्त्रीभिः कल्पितार्थः पदे पदे ॥ १९२ ॥
तत्र लाङ्गलिनाऽन्यैश्च राजभिर्भक्तिराजिभिः । अर्धचक्रधरत्वाभिषेकोऽक्रियत शार्ङ्गिणः ॥ १९३ ॥

इतश्च भगवान् धर्मश्छद्मस्थो वत्सरद्वयम् । विहृत्याभ्यागमद् दीक्षोपवनं वप्रकाञ्चनम् ॥ १९४ ॥
दधिपर्णतले तत्र ध्यानान्तरंजुषः† प्रभोः । पुष्ये भे पौषराकायां षष्ठेनाजनि केवलम् ॥ १९५ ॥
दिव्ये समवसरणे देशनां विदधे विभुः । अरिष्टादीन् गणभृतस्त्रिचत्वारिंशतं तथा ॥ १९६ ॥
तत्तीर्थभूः किंनराख्यस्त्र्यास्यः[8] कूर्मरथोऽरुणः । दक्षिणैस्तु मातुलिङ्गिगदाभृदभयप्रदैः‡ ॥ १९७ ॥
वामैस्तु नकुलपद्माक्षमालामालिभिर्भुजैः । भ्राजिष्णुर्धर्मनाथस्य जज्ञे शासनदेवता ॥ १९८ ॥
तथोत्पन्ना च कन्दर्पा गौराङ्गी मत्स्यवाहना । उत्पलाङ्कुशधारिभ्यां दक्षिणाभ्यां विराजिता ॥ १९९ ॥
दोर्भ्यां तदितराभ्यां च पद्मिनाऽभयदेन च । प्रभोः शासनदेव्यासीत् सदा सन्निधिवर्तिनी ॥ २०० ॥
सेव्यमानः सदा ताभ्यां विहरन्नवनीमिमाम् । अपरेद्युरुपागच्छन् पुरमश्वपुरं प्रभुः ॥ २०१ ॥
सद्यः समवसरणं चक्रे शक्रादिभिः सुरैः । चत्वारिंशत्पञ्चधन्वशतोच्चाशोकपादपम् ॥ २०२ ॥
तत्र प्रविश्य कृत्वा च चैत्यवृक्षप्रदक्षिणाम् । नत्वा च तीर्थमध्यास्त पूर्वसिंहासनं प्रभुः ॥ २०३ ॥
रत्नसिंहासनस्थानि प्रतिबिम्बान्यथ प्रभोः । तादृंशि व्यन्तराश्चक्रुस्तिसृष्वन्यासु दिक्ष्वपि ॥ २०४ ॥
यथास्थानं प्रविश्यास्थात् संघोऽपि स्वामिपर्षदि । तिर्यञ्चो मध्यवप्रेऽस्थुस्तृतीये वाहनानि तु ॥ २०५ ॥
उपेत्य शीघ्रं पुरुषसिंहायायुक्तपूरुषाः[9] । स्वामिनं समवसृतमाख्यन्नुत्फुल्लचक्षुषः ॥ २०६ ॥
तेभ्यो द्वादश रूप्यस्य कोटीः सार्धा वितीर्य सः । आगात् समवसरणं सुदर्शनसमन्वितः ॥ २०७ ॥
प्रभुं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य च भक्तितः । साग्रजोऽनुसहस्राक्षमुपाविक्षदधोक्षजः[10] ॥ २०८ ॥
भूयोऽपि स्वामिनं नत्वा शक्रशार्ङ्गिसुदर्शनाः । स्वामिभक्त्यासंतुष्टा इति तुष्टुवुरुन्मुदः[11] ॥ २०९ ॥
विजयस्व जगच्चक्षुश्चकोरानन्दचन्द्रमः[12] ! । मिथ्यात्वध्वान्तमार्तण्ड ! धर्मनाथ ! जगत्पते ! ॥ २१० ॥

---

१ श्वाऽपि तव विचारदाता किं नास्ति । * °गर्वितम् । ओ० संज्ञ० ॥ २ इन्द्रचापः । ३ हन्तुमिच्छुः । ४ विफलीबभूव ५ मुशलमस्त्रं यस्य तेन बलदेवेन । ६ बकवताम् । ७ मृत्तिकापात्रम् । † °रमुपेयुषः । पु० संज्ञ० ॥ ८ त्रिमुखः । रुयाक्षः कू° संज्ञ० ॥ ‡ °लिङ्गग° संज्ञ० ॥ ९ सेवकाः । १० विष्णुः । ११ सहर्षाः । १२ जगतां चक्षुरेव चकोरस्तस्यानन्दे चन्द्रसमः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिरं व्यहार्षीश्छद्मस्थो [1]गतछद्मा तथाऽप्यसि । अनन्तदर्शनोऽपि त्वं दर्शनान्तरबाधकः ॥ २११ ॥
त्वद्देशनापयःपूरैः परितः प्लावितात्मनाम् । [2]अह्नाय कर्ममालिन्यमपयाति शरीरिणाम् ॥ २१२ ॥
तथा न मेघच्छायासु तरुच्छायासु नापि वा । यथा शाम्यति संतापः पादमूले तव प्रभो ! ॥ २१३ ॥
इह त्वद्दर्शनालोकनिस्पन्दवपुषः प्रभो ! । पाञ्चालिकावदुत्कीर्णा इव भान्ति शरीरिणः ॥ २१४ ॥
पृथग्विरुद्धमप्येतदेकत्र मिलितं चिरात् । त्वत्प्रभावाज्जगद्बन्धो ! बन्धूभूतं जगत्त्रयम् ॥ २१५ ॥
त्रिखण्डभरतक्षेत्रमूलायतनदैवत ! । अनन्यशरणानस्मांस्त्रायस्व परमेश्वर ! ॥ २१६ ॥
भूयो भूयो जगन्नाथ ! त्वामदः प्रार्थयामहे । त्वत्पादपङ्कजद्वन्द्वेऽस्मन्मनो भ्रमरायताम् ॥ २१७ ॥
एवं स्तुत्वा विरतेषु शक्र-केशव-सीरिषु । विदधे भगवान् धर्मस्वाम्येवं धर्मदेशनाम् ॥ २१८ ॥
चतुर्वर्गेऽग्रणीर्मोक्षो योगस्[3]तस्य च कारणम् । ज्ञान-श्रद्धान-चारित्ररूपं रत्नत्रयं च [4]सः ॥ २१९ ॥
[*]तत्त्वानुगा मतिर्ज्ञानं सम्यक्श्रद्धा तु दर्शनम् । सर्वसावद्ययोगानां त्यागश्चारित्रमिष्यते ॥ २२० ॥
आत्मैव दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यथवा यतेः । [5]यत् तदात्मक एवैष शरीरमधितिष्ठति ॥ २२१ ॥
आत्मानमात्मना वेत्ति मोहत्यागाद् य आत्मनि । तदेव तस्य चारित्रं तज्ज्ञानं तच्च दर्शनम् ॥ २२२ ॥
[6]आत्माऽज्ञानभवं दुःखमात्मज्ञानेन हन्यते । तपसाऽप्यात्मविज्ञानहीनैश्छेत्तुं न शक्यते ॥ २२३ ॥
अयमात्मैव चिद्रूपः शरीरी कर्मयोगतः । ध्यानाग्निदग्धकर्मा तु सिद्धात्मा स्यान्निरञ्जनः ॥ २२४ ॥
अयमात्मैव संसारः कषायेन्द्रियनिर्जितः । तमेव [7]तद्विजेतारं मोक्षमाहुर्मनीषिणः ॥ २२५ ॥
स्युः कषायाः क्रोध-मान-माया-लोभाः शरीरिणाम् । चतुर्विधास्ते प्रत्येकं भेदैः संज्वलनादिभिः ॥२२६॥
पक्षं संज्वलनः प्रत्याख्यानो मासचतुष्टयम् । अप्रत्याख्यानको वर्षं [8]जन्मानन्तानुबन्धकः ॥ २२७ ॥
[9]वीतराग-यति-श्राद्ध-सम्यग्दृष्टित्वघातकाः । ते [10]देवत्व-मनुष्यत्व-तिर्यक्त्व-नरकप्रदाः ॥ २२८ ॥
तत्रोपतापकः क्रोधः क्रोधो वैरस्य कारणम् । दुर्गतेर्वर्तनी[11] क्रोधः क्रोधः शमसुखार्गला ॥ २२९ ॥
उत्पद्यमानः प्रथमं दहत्येव स्वमाश्रयम् । क्रोधः [12]कृशानुवत् पश्चादन्यं दहति वा न वा ॥ २३० ॥
अर्जितं पूर्वकोट्या यद्वर्षैरष्टभिरूनया । तपस्तत्तत्क्षणादेव दहति क्रोधपावकः ॥ २३१ ॥
शमरूपं पयः प्राज्यपुण्यसंभारसंचितम् । [13]अमर्षविषसंपर्कादसेव्यं तत्क्षणाद् भवेत् ॥ २३२ ॥
चारित्रचित्ररचनां विचित्रगुणधारिणीम् । समुत्सर्पन् क्रोधधूमो [14]ध्यामलीकुरुतेतमाम् ॥ २३३ ॥
यो वैराग्यशमीपत्रपुटैः शमरसोऽर्जितः । शाकपत्रपुटाभेन क्रोधेनोत्सृज्यते स किम् ॥ २३४ ॥
प्रवर्धमानः क्रोधोऽयं किमकार्यं करोति न । भाविनी द्वारका द्वैपायनक्रोधानले [15]समित् ॥ २३५ ॥
क्रुध्यतः कार्यसिद्धिर्या न सा क्रोध[16]निबन्धना । जन्मान्तरार्जितोर्जस्विकर्मणः खलु तत् फलम् ॥ २३६ ॥
स्वस्य लोकद्वयोच्छित्त्यै नाशाय स्व-परार्थयोः । धिगहो ! दधति क्रोधं शरीरेषु शरीरिणः ॥ २३७ ॥
क्रोधान्धाः पश्य निघ्नन्ति पितरं मातरं गुरुम् । सुहृदं सोदरं दारानात्मानमपि [17]निर्घृणाः ॥ २३८ ॥
क्रोधवह्नेस्तदह्नाय शमनाय शुभात्मभिः । श्रयणीया क्षमैकैव [18]संयमारामसारणिः ॥ २३९ ॥
अपकारिजने कोपो निरोद्धुं शक्यते कथम् । शक्यते सत्त्वमाहात्म्याद् यद्वा भावनयाऽनया ॥ २४० ॥
अङ्गीकृत्यात्मनः पापं यो मां बाधितुमिच्छति । [19]स्वकर्मनिहतायास्मै कः कुप्येद् [20]बालिशोऽपि सन् ॥२४१॥

---

१ गतं छद्म कपटं यस्य सः । २ शीघ्रम् । ३ मोक्षस्य । ४ योगः । * ज्ञानं तत्त्वावबोधः स्यात् ख० संङ्घ० ॥ ५ यत् यस्मात् कारणात् दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक एवैष आत्मा ॥ ६ आत्मनोऽज्ञानभवम् । ७ कषायेन्द्रियजेतारं तमात्मानमेव मोक्षमाहुः । ८ जन्मपर्यन्तम् । ९ संज्वलनो वीतरागत्वघातकः प्रत्याख्यानश्च यतित्वघातक इत्याद्यनुक्रमेण । १० संज्वलनो देवत्वप्रद इत्यादि । ११ मार्गः । १२ अग्निवत् । १३ अमर्षः क्रोधः स एव विषं तस्य संबन्धात् । १४ अतिशयेन मलिनीकुरुते । १५ काष्ठरूपा भविष्यति । १६ निबन्धनं कारणम् । १७ निर्दयाः । १८ संयम एवारामस्तस्य सारणिः कुल्या । १९ स्वेनैव कर्मणा निहताय । २० मूर्खोऽपि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकुप्याम्यपकारिभ्य इति चेदाशयस्तव । तत् किं न कुप्यसि स्वस्य कर्मणे दुःखहेतवे ॥ २४२ ॥
उपेक्ष्य लोष्टक्षेप्तारं लोष्टं दशति मण्डलः[1] । मृगारिः शरमुत्प्रेक्ष्य शरक्षेप्तारमृच्छति ॥ २४३ ॥
यैः परैः[2] प्रेरितः क्रूरैर्मह्यं कुप्यति कर्मभिः । तान्युपेक्ष्य परे क्रुध्यन् किं श्रये भषणश्रियम्[3] ॥ २४४ ॥
भावी ह्यर्हन्महावीरः क्षान्त्यै म्लेच्छेषु यास्यति । अयत्नेनागतां क्षान्तिं वोढुं किमिव नेच्छसि* ॥ २४५ ॥
त्रैलोक्यप्रलयत्राणक्षमाश्चेदाश्रिताः क्षमाम् । कदलीतुल्यसत्त्वस्य क्षमा तव न किं क्षमा[4] ॥ २४६ ॥
तथा किं नाकृथाः पुण्यं यथा कोऽपि न बाधते । स्वप्रमादमिदानीं तु शोचन्नङ्गीकुरु क्षमाम् ॥ २४७ ॥
क्रोधान्धस्य मुनेश्चण्डचण्डालस्य च नान्तरम् । तस्मात् क्रोधं परित्यज्य भजोज्ज्वलधियां पदम् ॥ २४८ ॥
महर्षिः क्रोधसंयुक्तः निःक्रोधः कूरगड्डुकः । ऋषिं मुक्त्वा देवताभिः स्तोष्यते कूरगड्डुकः ॥ २४९ ॥
अरुन्तुदैर्[5] वचःशस्त्रैस्तुद्यमानो विचिन्तयेत् । चेत् तथ्यमेतत् कः कोपोऽथ मिथ्योन्मत्तभाषितम् ॥ २५० ॥
वधायोपस्थितेऽन्यस्मिन् हसेद् विस्मितमानसः । वधे मत्कर्मसंसाध्ये वृथा नृत्यति बालिशः ॥ २५१ ॥
निहन्तुमुद्यते ध्यायेदायुषः क्षय एष नः । तदसौ निर्भयः पापात् करोति मृतमारणम् ॥ २५२ ॥
सर्वपुरुषार्थचौरे कोपः कोपे न चेत् तव । धिक् त्वां स्वल्पापराधेऽपि परे कोपपरायणम् ॥ २५३ ॥
सर्वेन्द्रियग्लानिकरं प्रसर्पन्तं ततः सुधीः । क्षमया जाङ्गुलिकया[6] जयेत् कोपमहोरगम् ॥ २५४ ॥
विनयश्रुतशीलानां त्रिवर्गस्य च घातकः । विवेकलोचनं लुम्पन्मानोऽन्धंकरणो नृणाम् ॥ २५५ ॥
जाति-लाभ-कुलैश्वर्य-बल-रूप-तपः-श्रुतैः† । कुर्वन् मदं पुनस्[7]तानि हीनानि लभते जनः ॥ २५६ ॥
जातिभेदाननेकविधानुत्तमाधममध्यमान् । दृष्ट्वा को नाम कुर्वीत जातु जातिमदं सुधीः ॥ २५७ ॥
उत्तमां जातिमाप्नोति हीनामाप्नोति कर्मतः । तत्राशाश्वतिकीं[8] जातिं को नामासाद्य माद्यतु ॥ २५८ ॥
अन्तरायक्षयादेव लाभो भवति नान्यथा । ततश्च वस्तुतत्त्वज्ञो नो लाभमदमुद्वहेत् ॥ २५९ ॥
परप्रसादशक्त्यादिभवे[9] लाभे महत्यपि । न लाभमदमृच्छन्ति महात्मानः कथञ्चन ॥ २६० ॥
अकुलीनानपि प्रेक्ष्य प्रज्ञाश्रीशीलशालिनः । न कर्तव्यः कुलमदो महाकुलभवैरपि ॥ २६१ ॥
किं कुलेन कुशीलस्य सुशीलस्यापि तेन[10] किम् । एवं विदन् कुलमदं विदध्यान्न विचक्षणः ॥ २६२ ॥
श्रुत्वा त्रिभुवनैश्वर्यसंपदं वज्रधारिणः[11] । पुर-ग्राम-धनादीनामैश्वर्ये कीदृशो मदः ॥ २६३ ॥
गुणोज्ज्वलादपि भ्रंश्येद्[12] दोषवन्तमपि श्रयेत् । कुशीलस्त्रीवदैश्वर्यं[13] न मदाय विवेकिनाम् ॥ २६४ ॥
महाबलोऽपि रोगाद्यैरबलः क्रियते क्षणात् । इत्यनित्यबले पुंसां युक्तो बलमदो न हि ॥ २६५ ॥
बलवन्तोऽपि जरसि[14] मृत्यौ कर्मफलान्तरे । अबलाश्चेत् ततो हन्त ! तेषां बलमदो मुधा ॥ २६६ ॥
सप्तधातुमये देहे चयापचयधर्मणः । जरा-रुजादिभावस्य को रूपस्य मदं वहेत् ॥ २६७ ॥
सनत्कुमारस्य रूपं भावि श्रुत्वा च तत्क्षयम् । को वा सकर्णः स्वप्नेऽपि कुर्याद् रूपमदं किल ! ॥ २६८ ॥
नाभेयस्य[15] तपोनिष्ठां श्रुत्वा वीरजिनस्य च । को नाम स्वल्पतपसि स्वकीये मदमाश्रयेत् ? ॥ २६९ ॥
येनैव तपसा त्रुट्येत् तरसा[16] कर्मसंचयः । तेनैव मददिग्धेन[17] वर्धते कर्मसंचयः ॥ २७० ॥
स्वबुद्ध्या रचितान्यन्यैः[18] शास्त्राण्याघ्राय लीलया । सर्वज्ञोऽस्मीति मदवान् स्वकीयाङ्गानि खादति ॥ २७१ ॥
श्रीमद्गणधरेन्द्राणां श्रुत्वा निर्माणधारणम्‡ । कः श्रयेत श्रुतमदं सकर्णहृदयो जनः ॥ २७२ ॥
उत्सर्पयन्[19] दोषशाखां गुणमूलान्यधो नयन् । उन्मूलनीयो मानद्रुस्तन्मार्दवसरित्प्लवैः ॥ २७३ ॥

---

१ श्वानः । २ शत्रुः । ३ भषणः श्वानः । * नेच्छति ॥ मु० ॥ ४ समर्था । ५ मर्मच्छिद्भिः । ६ सर्पापहारिण्या विद्यया । ७ भवान्तरे इत्यर्थः । † जातिलाभमदं मु० संवृ० ॥ ८ अनित्याम् । ९ परस्य राजादेः प्रसादः शक्तिः प्रभुत्वादिस्तदादेरुत्पन्ने । १० कुलेन । ११ इन्द्रस्य । १२ नश्येत् । १३ कुलटास्त्रीवत् । १४ वृद्धत्वे । १५ आदिनाथस्य ऋषभस्य । १६ शीघ्रम् । १७ मदलिप्तेन । १८ अन्यैराचार्यैः स्वबुद्ध्या लीलामात्रेण रचितानि शास्त्राण्याघ्राय किञ्चिज्ज्ञात्वेत्यर्थः । ‡ रणे । कः संवृ० ॥ १९ विस्तारयन् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मार्दवं नाम मृदुता तच्चौद्धत्यनिषेधनम् । मानस्य पुनरौद्धत्यं स्वरूपमनुपाधिकम् ॥ २७४ ॥
अन्तः स्पृशेद् यत्र यत्रौद्धत्यं जात्यादिगोचरम् । तत्र तस्य प्रतीकारहेतोर्मार्दवमाश्रयेत् ॥ २७५ ॥
सर्वत्र मार्दवं कुर्यात् पूज्येषु तु विशेषतः । येन पापाद् विमुच्येत पूज्यपूजाव्यतिक्रमात् ॥ २७६ ॥
मानाद् बाहुबलिर्बद्धो लताभिरिव पाप्मभिः । मार्दवात् तत्क्षणं मुक्तः सद्यः संप्राप केवलम् ॥ २७७ ॥
चक्रवर्ती त्यक्तसंगो वैरिणामपि वेश्मसु । भिक्षायै यात्यहो! मानच्छेदाया[1]मृदुमार्दवम् ॥ २७८ ॥
चक्रवर्त्यपि तत्कालदीक्षितो रङ्कसाधवे । [2]नमस्यति त्यक्तमानश्चिरं च [3]वरिवस्यति ॥ २७९ ॥
एवं च मानविषयं ज्ञात्वा दोषमशेषतः । [4]अश्रान्तमाश्रयेद् धीमांस्तन्निरासाय मार्दवम् ॥ २८० ॥
[5]असूनृतस्य जननी परशुः शीलशाखिनः । जन्मभूमिरविद्यानां माया दुर्गतिकारणम् ॥ २८१ ॥
कौटिल्यपटवः पापा मायया वकवृत्तयः । भुवनं वञ्चयमाना वञ्चयन्ते स्वमेव हि ॥ २८२ ॥
[6]कूटषाड्गुण्ययोगेन च्छलाद् विश्वस्तघातनात् । अर्थलोभाच्च राजानो वञ्चयन्तेऽखिलं जगत् ॥ २८३ ॥
तिलकैर्मुद्रया मन्त्रैः [7]क्षामतादर्शनेन च । अन्तःशून्या बहिःसारा वञ्चयन्ति* द्विजा जनम् ॥ २८४ ॥
कूटाः कूटतुलामानाऽऽशु[8]क्रियासातियोगतः । वञ्चयन्ते जनं मुग्धं मायाभाजो वणिग्जनाः ॥ २८५ ॥
जटा-मौञ्जी[9]-शिखा-भस्म-वल्कलाग्न्यादिधारणैः । मुग्धं श्राद्धं [10]गर्धयन्ते पाखण्डा हृदि नास्तिकाः ॥२८६॥
अरक्ताभिर्भाव-हाव-लीला-गतिविलोकनैः । कामिनो रञ्जयन्तीभिर्वेश्याभिर्वञ्च्यते जगत् ॥ २८७ ॥
प्रतार्य कूटैः शपथैः कृत्वा [11]कूटकपर्दिकाम् । धनवन्तः प्रतार्यन्ते [12]दुरोदरपरायणैः ॥ २८८ ॥
दम्पती पितरः पुत्राः सोदर्याः सुहृदो निजाः । ईशा भृत्यास्तथाऽन्येऽपि माययाऽन्योऽन्यवञ्चकाः ॥२८९॥
अर्थलुब्धा गतघृणा बन्दि[13]कारमलिम्लुचाः । अहर्निशं जागरूकाश्छलयन्ति प्रमादिनम् ॥ २९० ॥
[14]कारवश्चान्त्यजाश्चैव स्वकर्मफलजीविनः । माययाऽलीकशपथैः कुर्वते साधुवञ्चनम् ॥ २९१ ॥
व्यन्तरादिकुयोनिस्था दृष्ट्वा प्रायः प्रमादिनः । क्रूराश्छलैर्बहुविधैर्बाधन्ते मानवान् पशून् ॥ २९२ ॥
मत्स्यादयो जलचराश्छलात् स्वापत्यभक्षकाः । बध्यन्ते धीवरैस्तेऽपि माययाऽऽनाय[15]पाणिभिः ॥२९३॥
नानोपायैर्मृगयुभिर्[16]वञ्चनप्रवणैर्जडाः । निबध्यन्ते विनाश्यन्ते प्राणिनः स्थलचारिणः ॥ २९४ ॥
नभश्चरा भूरिभेदा वराका [17]लावकादयः । बध्यन्ते माययाऽत्युग्रैः स्वल्पकग्रासगृध्नुभिः[18] ॥ २९५ ॥
तदेवं सर्वलोकेऽपि परवञ्चकतापराः । स्वस्वधर्मं सद्गतिं च नाशयन्ति स्ववञ्चकाः ॥ २९६ ॥
तिर्यग्जातेः परं बीजमपवर्गपुरार्गला । विश्वासद्रुमदावाग्निर्माया हेया मनीषिभिः ॥ २९७ ॥
मल्लिनाथः पूर्वभवे कृत्वा मायां तनीयसीम् । मायाशल्यमनुत्खाय स्त्रीभावमुपयास्यति ॥ २९८ ॥
तदार्जवमहौषध्या जगदानन्दहेतुना । जयेज्जगद्द्रोहकरीं मायां [19]विषधरीमिव ॥ २९९ ॥
आर्जवं सरलः पन्था मुक्तिपुर्याः प्रकीर्तितः । आचार्यविस्तरः शेषतपस्त्यागादिलक्षणः ॥ ३०० ॥
भवेयुरार्जवजुषो लोकेऽपि प्रीतिकारणम् । कुटिलादुद्विजन्ते[20] हि जन्तवः पन्नगादिव ॥ ३०१ ॥

---

१ अमृदु कठिनं च तन्मार्दवं चेत्यमृदुमार्दवम् । २ नमस्यति नमः करोति पूजयतीत्यर्थः । ३ वरिवस्यति वरिवः करोति सेवते इत्यर्थः । अत्र 'नमस्' 'वरिवस्' इत्यतः "नमोवरिवश्चित्रङ्गोऽर्चासेवाऽऽश्चर्ये" [३.४.३१] इति सूत्राद् अर्चायाम्, सेवायाम् च यथाक्रमेण क्यन् प्रत्ययाद् नमस्यति, वरिवस्यति इति सिद्ध्यतः । ४ निरन्तरम् । ५ असत्यस्य । ६ असत्यषाड्गुण्यस्य सन्ध्यादेः प्रयोगेण । ७ दीनताप्रदर्शनेन । * °यन्तेऽखिलं ज° संबृ० ॥ ८ आशुक्रिया–सत्वरक्रिया । ९ मौञ्जी–मुञ्जस्य तृणविशेषस्य कटिमेखला । १० लोभयन्ति । ११ असत्यनाणकम् । १२ दुरोदरः–द्यूतम् । १३ मङ्गलपाठकरूपेण चौराः । १४ कर्मकराः । १५ आनायो जालं पाणौ हस्ते येषां तैः । १६ व्याधैः । १७ लावकः पक्षिविशेषः । १८ गृध्नुः–लोलुपः । † °यन्तः स्व° संबृ० ॥ १९ सर्पिणीम् । २० त्रस्यन्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजिह्मचित्तवृत्तीनां भववासस्पृशामपि । अकृत्रिमं मुक्तिसुखं स्वसंवेद्यं महात्मनाम् ॥ ३०२ ॥
कौटिल्यशङ्कुना क्लिष्टमनसां वञ्चकात्मनाम् । परव्यापादनिष्ठानां स्वप्नेऽपि स्यात् कथं सुखम् ॥ ३०३ ॥
समग्रविद्यावैदुष्येऽधिगतासु कलासु च । धन्यानामुपजायेत बालकानामिवार्जवम् ॥ ३०४ ॥
अज्ञानामपि बालानामार्जवं प्रीतिहेतवे । किं पुनः सर्वशास्त्रार्थपरिनिष्ठितचेतसाम् ॥ ३०५ ॥
स्वाभाविकी हि ऋजुता कृत्रिमा कुटिलात्मता । ततः स्वाभाविकं धर्मं हित्वा कः कृत्रिमं श्रयेत् ? ॥३०६॥
छल-पैशून्य-वक्रोक्ति-वञ्चनाप्रवणे जने । धन्याः केचिन्निर्विकाराः सुवर्णप्रतिमा इव ॥ ३०७ ॥
अपि श्रुताब्धिपारीणाः सर्वे गणभृदुत्तमाः । अहो ! शैक्षाश्चाश्रौषुरार्जवादर्हतां गिरः ॥ ३०८ ॥
अशेषमपि दुःकर्म ऋज्वालोचनया क्षिपेत् । कुटिलालोचनां कुर्वन्नल्पीयोऽपि विवर्धते ॥ ३०९ ॥
काये वचसि चित्ते च समन्तात् कुटिलात्मनाम् । न मोक्षः किन्तु मोक्षः स्यात् सर्वत्राकुटिलात्मनाम् ॥३१०॥
इत्युग्रं कर्म कौटिल्यं कुटिलानां विभावयन् । आश्रयेदृजुतामेकां सुधीर्निर्वृतिकाम्यया ॥ ३११ ॥
आकरः सर्वदोषाणां गुणग्रसनराक्षसः । कन्दो व्यसनवल्लीनां लोभः सर्वार्थबाधकः ॥ ३१२ ॥
धनहीनः शतमेकं सहस्रं शतवानपि । सहस्राधिपतिर्लक्षं कोटिं लक्षेश्वरोऽपि च ॥ ३१३ ॥
कोटीश्वरो नरेन्द्रत्वं नरेन्द्रश्चक्रवर्तिताम् । चक्रवर्ती च देवत्वं देवोऽपीन्द्रत्वमिच्छति ॥ ३१४ ॥
इन्द्रत्वेऽपि हि संप्राप्ते यदिच्छा न निवर्तते । मूले लघीयांस्तल्लोभः सराव इव वर्धते ॥ ३१५ ॥
हिंसेव सर्वपापानां मिथ्यात्वमिव कर्मणाम् । राजयक्ष्मेव रोगाणां लोभः सर्वागसां गुरुः ॥ ३१६ ॥
अहो ! लोभस्य साम्राज्यमेकच्छत्रं महीतले । तरवोऽपि निधिं प्राप्य पादैः प्रच्छादयन्ति यत् ॥ ३१७ ॥
अपि द्रविणलोभेन ते द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः । स्वकीयान्यधितिष्ठन्ति प्राग्निधानानि मूर्च्छया ॥ ३१८ ॥
भुजङ्ग-गृह-गोधाः स्युर्मुख्याः पञ्चेन्द्रिया अपि । धनलोभेन लीयन्ते निधानस्थानभूमिषु ॥ ३१९ ॥
पिशाच-मुद्गल-प्रेत-भूत-यक्षादयो धनम् । स्वकीयं परकीयं वाऽप्यधितिष्ठन्ति लोभतः ॥ ३२० ॥
भूषणोद्यानवाप्यादौ मूर्च्छितास्त्रिदशा अपि । च्युत्वा तत्रैव जायन्ते पृथ्वीकायादियोनिषु ॥ ३२१ ॥
प्राप्योपशान्तमोहत्वं क्रोधादिविजये सति । लोभांशमात्रदोषेण पतन्ति यतयोऽपि हि ॥ ३२२ ॥
एकामिषाभिलाषेण सारमेया इव द्रुतम् । सोदर्या अपि युध्यन्ते धनलेशजिघृक्षया ॥ ३२३ ॥
लोभाद् ग्रामादिसीमानमुद्दिश्य गतसौहृदाः । ग्राम्या नियुक्ता राजानो वैरायन्ते परस्परम् ॥ ३२४ ॥
हास-शोक-द्वेष-हर्षानसतोऽप्यात्मनि स्फुटम् । स्वामिनोऽग्रे लोभवन्तो नाटयन्ति नटा इव ॥ ३२५ ॥
आरभ्यते पूरयितुं लोभगर्तो यथा यथा । तथा तथा महच्चित्रं मुहुरेष विवर्धते ॥ ३२६ ॥
अपि नामैष पूर्येत पयोभिः पयसां पतिः । न तु त्रैलोक्यराज्येऽपि प्राप्ते लोभः प्रपूर्यते ॥ ३२७ ॥
अनन्ता भोजनाच्छादविषयद्रव्यसंचयाः । भुक्तास्तथापि लोभस्य नांशोऽपि परिपूर्यते ॥ ३२८ ॥
लोभस्त्यक्तो यदि तदा तपोभिरफलैरलम् । लोभस्त्यक्तो न चेत् तर्हि तपोभिरफलैरलम् ॥ ३२९ ॥
मृदित्वा शास्त्रसर्वस्वं तदेतदवधार्यताम् । लोभस्यैकस्य हानाय प्रयतेत महामतिः ॥ ३३० ॥
लोभसागरमुद्वेलमतिवेलं महामतिः । संतोषसेतुबन्धेन प्रसरन्तं निवारयेत् ॥ ३३१ ॥
यथा नृणां चक्रवर्ती सुराणां पाकशासनः । तथा गुणानां सर्वेषां संतोषः प्रवरो गुणः ॥ ३३२ ॥
संतोषयुक्तस्य यतेरसंतुष्टस्य चक्रिणः । तुलया संमितो मन्ये प्रकर्षः सुख-दुःखयोः ॥ ३३३ ॥
स्वाधीनं राज्यमुत्सृज्य संतोषामृततृष्णया । निःसंगत्वं प्रपद्यन्ते तत्क्षणाच्चक्रवर्तिनः ॥ ३३४ ॥
निवृत्तायां धनेच्छायां पार्श्वस्था एव संपदः । अङ्गुल्या पिहिते कर्णे शब्दाद्वैतं हि जृम्भते ॥ ३३५ ॥

---

१ अजिह्मः सरलः । २ संसारे स्थितानामपीत्यर्थः । ३ स्वयं ज्ञेयम् । ४ व्यापादः–नाशः । * °त् कुतः सु° का० ॥ ५ सर्वशास्त्राणामर्थे परिनिष्ठितं लग्नं मनो येषां तेषाम् । ६ श्रुतसमुद्रस्य पारगामिनः । ७ शिष्याः । † °वर्धयेत् ॥ संवृ. का. ॥ ८ सर्वपापानाम् । ९ मूलैः । १० मुद्गलाः–व्यन्तरविशेषाः । ११ आमिषम्–मांसम्, भक्ष्यं वा । १२ अधिकारिणः । १३ आच्छादाः-वस्त्राणि । १४ लोभरहितस्य पुरुषस्य तपःसदृशं फलं भवत्यत एव तपांसि निष्फलानि, लोभसहितस्य च तपस्सु तत्स्वपि फलं न भवतीति तपांसि निष्फलानीति भावः । १५ नाशाय । १६ वेलां मर्यादामतिक्रान्तस्तम् । १७ यतेः सुखस्य प्रकर्षश्चक्रिणश्च दुःखस्येत्यर्थः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संतोषसिद्धौ संसिद्धाः प्रतिवस्तुविरक्तयः । अक्ष्णोः पिधाने पिहितं ननु विश्वं चराचरम् ॥ ३३६ ॥
किमिन्द्रियाणां दमनैः किं कायपरिपीडनैः । ननु संतोषमात्रेण मुक्तिश्रीमुखमीक्षते ॥ ३३७ ॥
जीवन्तोऽपि विमुक्तास्ते ये मुक्तिसुखशालिनः । किं वा विमुक्तेः शिरसि शृङ्गं किमपि वर्तते ॥ ३३८ ॥
किं रागद्वेषसंकीर्णं किं वा विषयसंभवम् । येन संतोषजं सौख्यं हीयेत शिवशर्मणः ॥ ३३९ ॥
परप्रत्यायनासारैः किं वा शास्त्रसुभाषितैः । मीलिताक्षा विमृशन्तु संतोषास्वादजं सुखम् ॥ ३४० ॥
चेत् कारणानुकारीणि कार्याणि प्रतिपद्यसे । संतोषानन्दजन्मा तन्मोक्षानन्दः प्रतीयताम् ॥ ३४१ ॥
यच्च तीव्रं तपःकर्म कर्मनिर्मूलनं जगुः । सर्वं तदपि संतोषरहितं विफलं विदुः ॥ ३४२ ॥
कृषि-सेवा-पाशुपाल्य-वाणिज्यैः किं सुखार्थिनाम् । ननु संतोषपानात् किं नात्मा निर्वृतिमाप्यते ! ॥३४३॥
यत् संतोषवतां सौख्यं तृणसंस्तरशायिनाम् । न तत् संतोषवन्ध्यानां तूलिकाशायिनामपि ॥ ३४४ ॥
असंतुष्टास्तृणायते धनिनोऽपीशिनां पुरः । ईशिनोऽपि तृणायन्ते संतुष्टानां पुरः स्थिताः ॥ ३४५ ॥
आयासमात्रं नश्वर्यं चक्रिशक्रादिसंपदः । अनायासं च नित्यं च सुखं संतोषसंभवम् ॥ ३४६ ॥
इति लोभं निराकर्तुं सर्वदोषनिकेतनम् । अद्वैतसौख्यसदनं सुधीः संतोषमाश्रयेत् ॥ ३४७ ॥
एवं जितकषायः सन्नत्रापि शिवसौख्यभाक् । परत्रावश्यमाप्नोति शिवं पुनरनश्वरम् ॥ ३४८ ॥
श्रुत्वैवं देशनां भर्तुः प्राव्राज्याः पर्यत्रजञ्जनाः । सम्यक्त्वं तु हरिर्भेजे श्रावकत्वं तु सीरभृत् ॥ ३४९ ॥
पूर्णायामादिपौरुष्यां व्यसृजद् देशनां प्रभुः । चक्रेऽरिष्टः स्वामिपादपीठस्थो गणभृत् ततः ॥ ३५० ॥
अन्ते द्वितीयपौरुष्यां व्यस्राक्षीत् सोऽपि देशनाम् । नत्वाऽर्हन्तं ततो जग्मुः शक्र-विष्णु-बलादयः ॥ ३५१ ॥
ततः स्थानादथान्यत्र सर्वातिशयशोभितः । भगवान् धर्मनाथोऽपि विजहार महीतलम् ॥ ३५२ ॥
चतुःषष्टिः सहस्राणि श्रमणानां महात्मनाम् । आर्यिकानां तु द्वाषष्टिः सहस्राः सचतुःशताः ॥ ३५३ ॥
तथा चतुर्दशपूर्वभृतां नवशतानि तु । अवधिज्ञानभाजां तु त्रिसहस्री सषट्शती ॥ ३५४ ॥
मनःपर्ययिणां पञ्चचत्वारिंशच्छतानि तु । तथा शतानि तान्येव केवलज्ञानशालिनाम् ॥ ३५५ ॥
जातवैक्रियलब्धीनां मुनीनां शतसप्ततिः । द्वे सहस्रे शतान्यष्टौ वादलब्धिमतां पुनः ॥ ३५६ ॥
लक्षद्वयी श्रावकाणां चत्वारिंशत्सहस्रयुक् । श्राविकाणां चतुर्लक्षी त्रयोदशसहस्रयुक् ॥ ३५७ ॥
वर्षलक्षद्वयं सार्धं वर्षद्वितयवर्जितम् । आकेवलाद् विहरतः परिवारोऽभवत् प्रभोः ॥ ३५८ ॥
ज्ञात्वा तु मोक्षसमयं स्वामी संमेतमेत्य च । समं मुनिशतेनाष्टयुतेनानशनं व्यधात् ॥ ३५९ ॥
मासान्ते ज्येष्ठविशदपञ्चम्यां पुष्यगे विधौ । समं तैर्मुनिभिः स्वामी प्रपेदे पदमव्ययम् ॥ ३६० ॥
श्रीधर्मस्वामिनस्तेषां श्रमणानां च तत्क्षणम् । चक्रुर्निर्वाणमहिमोत्सवं शक्रादयः सुराः ॥ ३६१ ॥
अनन्तस्वामिनिर्वाणाद् धर्मनाथस्य निर्वृतिः । अजायत व्यतिक्रान्ते सागराणां चतुष्टये ॥ ३६२ ॥
कौमारेऽब्दलक्षे सार्धे राज्ये पञ्चाब्दलक्ष्यभूत् । सार्धा व्रते द्व्यब्दलक्षीत्यब्दलक्षा दश प्रभोः ॥ ३६३ ॥
तैस्तैः पुरुषसिंहोऽपि सिंहवद्धिंस्रकर्मभिः । पूर्णायुः कालतोऽगच्छत् षष्ठीं नरकमेदिनीम् ॥ ३६४ ॥
कौमारेऽस्य त्र्यब्दशती मण्डलित्वे शतानि तु । सार्धानि द्वादशाब्दानां सप्तत्यब्दी तु दिग्जये ॥३६५॥
राज्ये तु नवलक्ष्यष्टानवतिश्च सहस्रकाः । शतानि त्रीण्यशीतिश्चेत्यब्दलक्षा दशायुषि ॥ ३६६ ॥
ततो बलः सप्तदशाब्दलक्षायुर्विनाऽनुजम् । कथञ्चिज्जीवितं दध्रे भ्रातृस्नेहवशंवदः ॥ ३६७ ॥
द्राक् सुदर्शनभृतोऽन्तदर्शनादार्द्रशोकविवशः सुदर्शनः ।
कीर्तिसाधुनिकटेऽग्रहीद् व्रतं पूरितायुरपुनर्भवं ययौ ॥ ३६८ ॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये चतुर्थे पर्वणि श्रीधर्मनाथ-पुरुषसिंह-सुदर्शन-निशुम्भचरितवर्णनो नाम पञ्चमः सर्गः ।

---

१ प्रतिवस्तुषु वैराग्यवन्तः । २ येन सुखेन मोक्षसुखस्य सौख्यं हीयेत । * °वकर्मणः ॥ का. ॥ ३ प्रत्यायनम्-साधनं विवरणं पाणिग्रहणं वा । ४ तृणमिव आचरन्ति । ५ बहवः । ६ विससर्ज । † °क्ष्यथ सा° संद्व० ॥ ‡ °ते द्विलक्षी चेत्य° संद्व. ॥ ¶ प्राक् सु° का० ॥ ७ सुदर्शननामकं चक्रं बिभर्ति तस्य अर्द्धचक्रिणोऽवसानविलोकनात् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठः सर्गः ।

श्रीमघवचक्रवर्तिचरितम् ।

भरतेऽत्रैव नगरे महीमण्डलनामनि । वासुपूज्यस्य तीर्थेऽभून्नाम्नाऽमरपतिर्नृपः ॥ १ ॥
अनाथानामेकनाथः पृथिवीनाथपुङ्गवः । सुसाधुरिव चारित्रे स न्यायेऽवहितोऽभवत् ॥ २ ॥
अप्यसौ पुष्पवृन्तेन नाजघान जनं क्वचित् । केवलं पालयामास यत्नेन नवपुष्पवत् ॥ ३ ॥
कामार्थौ पादकण्टकवद् धर्मं तु किरीटवत् । अधरोत्तरभावेन स दधार विवेकवान् ॥ ४ ॥
अर्हन् देवो गुरुः साधुर्धर्मश्च करुणेति सः । मन्त्राक्षरमिवाध्यायदनुत्तरसुखप्रदम् ॥ ५ ॥
राज्यं रुजमिवान्येद्युरुत्सृज्य स महायशाः । परिव्रज्यामुपादत्त दत्तविश्वाभयः सुधीः ॥ ६ ॥
स समितिप्राप्तजयो गुप्तिरक्षणतत्परः । विधिवत् पालयामास प्रव्रज्यां राज्यवच्चिरम् ॥ ७ ॥
अनवद्यैर्मूलगुणैः स उत्तरगुणैरपि । अधिकं शुशुभे दिव्यरत्नालङ्करणैरिव ॥ ८ ॥
चिरं व्रतं पालयित्वा कालधर्ममुपेत्य सः । ग्रैवेयके मध्यमेऽभूदहमिन्द्रः सुरोत्तमः ॥ ९ ॥
इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन् क्षेत्रे भरतनामनि । श्रावस्तीत्यस्ति नगरी नगरीणां गरीयसी ॥ १० ॥
गुणरत्नैरसंख्यातैः समुद्र इव मूर्तिमान् । समुद्रविजयस्तत्र विजयी समभून्नृपः ॥ ११ ॥
आनन्ददायकत्वेन भयदत्वेन चानिशम् । मित्राणामप्यमित्राणां हृदयान्नोत्ततार सः ॥ १२ ॥
दोष्मतस्तस्य संग्रामेष्वात्मैवाजनि संमुखः । आकृष्टामलनिस्त्रिंशदर्पणप्रतिबिम्बितः ॥ १३ ॥
प्रसह्य स्ववशीचक्रे सर्वा दिश इतीव सः । यशोऽलङ्करणं तासामावर्जनकृते ददौ ॥ १४ ॥
महीं गामिव गोपालः स जुगोप यथाविधि । अबाधया च समये करं दुग्धमिवाददे ॥ १५ ॥
पुण्यलावण्यभद्राङ्गी भद्राणामेकमास्पदम् । सधर्मचारिणी तस्याभवद् भद्रेति नामतः ॥ १६ ॥
धर्माविबाधया तस्य सुखं वैषयिकं तया । सहानुभवतः कालो व्यतीयाय कियानपि ॥ १७ ॥
इतश्च ग्रैवेयकस्थो जीवोऽमरपतेः स तु । पूरयित्वा प्रकृष्टायुर्भद्राकुक्षाववातरत् ॥ १८ ॥
सुखसुप्ता तदा भद्रा महास्वप्नांश्चतुर्दश । स्वास्ये प्रविशतोऽद्राक्षीच्चक्रभृज्जन्मसूचकान् ॥ १९ ॥
काले चासूत सा सूनुमनूनं पुण्यलक्षणैः । सुवर्णवर्णं सार्धद्विचत्वारिंशद्धनून्नतम् ॥ २० ॥
पृथिव्यां मघवेवायं नूनं भावीति सान्वयाम् । चक्रेऽस्य मघवेत्याख्यां समुद्रविजयो नृपः ॥ २१ ॥
समुद्रवसनां सोऽनुसमुद्रविजयं जयी । अलम्भूष्णुरलञ्चक्रे धामन्वर्कमिवोडुपः ॥ २२ ॥
तस्यैकदाऽस्त्रशालायां तेजःप्रसरभासुरम् । समुत्पेद चक्ररत्नमिरम्मद इवाम्बुदे ॥ २३ ॥
यथास्थानमथान्यानि पुरोधःप्रभृतीन्यपि । तस्य रत्नानि सर्वाणि जज्ञिरे क्रमयोगतः ॥ २४ ॥
चक्रमार्गानुगः सोऽथ प्रस्थितो दिग्जिगीषया । ययौ मागधतीर्थेशं प्राक्समुद्रविभूषणम् ॥ २५ ॥
तस्य नामाङ्कबाणेन दूतेनेव समेयुषा । एत्य मागधतीर्थेशः सेवामेव समाश्रयत् ॥ २६ ॥
सोऽपाच्यां वरदामानं पश्चिमायां पुनर्दिशि । प्रभासाधिपतिं देवं विजिग्ये मागधेशवत् ॥ २७ ॥
गत्वा च दक्षिणं रोधः सिन्धुदेवीमसाधयत् । ततो गच्छन्नाससाद चक्री वैताढ्यपर्वतम् ॥ २८ ॥
चक्रवर्त्यात्मसाच्चक्रे वैताढ्याद्रिकुमारकम् । तदुपायनमादायानुतमिस्त्रं जगाम च ॥ २९ ॥

---

* °म्ना नर° संवृ० ॥ का० ॥ १ पुङ्गवः—श्रेष्ठः । २ अप्रमत्तः । ३ कामार्थौ पादकण्टकाद् हर्थौ, धर्मं तु किरीटवन्मुकुटवदुपादेयमित्यर्थः । ४ कामार्थावधरभावेन धर्मं चोत्तरभावेनेत्यर्थः । ५ ध्यातवत् । † °हाशयः । प° मु० ॥ ५ मित्राणामानन्ददत्वेन । ६ शत्रूणां भयदत्वेन । ७ आकृष्टो योऽमलो निस्त्रिंशः खड्गः स एव दर्पणस्तस्मिन् प्रतिबिम्बितः स राजा युद्धेषु स्वमेव पश्यति शत्रोरभावादित्यर्थः । ८ दिशो मां मा त्यजन्त्विति हेतोः ददावित्यर्थः । ‡ °सामव° मु० ॥ § °वो नर° संवृ. का. ॥ ९ सार्थकाम् । °न्वयम् । च° संवृ. का. ॥ १० समुद्रो वसनं वस्त्रं यस्यास्तां पृथ्वीमित्यर्थः । ११ समुद्रविजयस्य पश्चात् । १२ यथा सूर्यादनु चन्द्रः आकाशं भूषयति तथा । १३ मेघवह्निः तडिदिति यावत् । १४ आगतेन । १५ तस्याभूतम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स तमिस्रागुहाद्वारे द्वारपालमिव स्थितम् । विधिवत् साधयामास कृतमालाभिधं सुरम् ॥ ३० ॥
तस्यादेशाच्चमूनाथः सिन्धुमुत्तीर्य चर्मणा । प्रत्यग्निष्कुटमाक्रामत् तस्याः पुनरुपाययौ ॥ ३१ ॥
सेनान्या दण्डरत्नेन कपाटोद्घाटने कृते । ससैन्यः प्राविशच्चक्री गजरत्नेन तां गुहाम् ॥ ३२ ॥
अन्तर्विरचितालोकः काकिणीकृतमण्डलैः । कुम्भिदक्षिणकुम्भस्थमणिभाप्रसरेण च ॥ ३३ ॥
उत्तीर्य वर्धकिकृतपद्यया चान्तरस्थिते । नद्यावुन्मग्ननिमग्नजले अत्यन्तदुस्तरे ॥ ३४ ॥
स्वयं विश्लिष्टकपाटेनोत्तरद्वारवर्त्मना । तस्या गुहाया निरगात् सह चम्वा स चक्रभृत् ॥ ३५ ॥
आपातनामकांस्तत्र किरातानतिदुर्जयान् । मघवैवासुरभटान् विधिवन्मघवाऽजयत् ॥ ३६ ॥
सिन्धोश्च निष्कुटं प्रत्यगजयत् तच्चमूपतिः । स्वयं त्वसाधयद् गत्वा हिमाचलकुमारकम् ॥ ३७ ॥
मघवा चक्रवर्तीति कूटे ऋषभनामनि । आदाय काकिणीरत्नं लिलेख निजनाम सः ॥ ३८ ॥
ततो निवृत्तो मघवा गङ्गायाः पूर्वनिष्कुटम् । सेनान्या साधयामास गङ्गादेवीं स्वयं पुनः ॥ ३९ ॥
वैताढ्यपर्वतश्रेणिद्वयविद्याधरानपि । स तृतीयश्चक्रधरः साधयामास लीलया ॥ ४० ॥
खण्डप्रपाताद् द्वारस्थं नाट्यमालमथापरम् । यथाविध्यात्मसाच्चक्रे चक्रभृद् विधिकोविदः ॥ ४१ ॥
खण्डप्रपातया सेनान्युद्घाटितकपाटया । वैताढ्यान्निरगाच्चक्री पोतोऽर्णवजलादिव ॥ ४२ ॥
नवापि निधयस्तत्र गङ्गामुखनिवासिनः । बभूवुर्वशगास्तस्य नैसर्पप्रमुखाः सुखम् ॥ ४३ ॥
सेनान्या साधयामास गाङ्गं पश्चिमनिष्कुटम् । इत्थं स च वशीचक्रे षट्खण्डमपि भारतम् ॥ ४४ ॥
संपूर्णचक्रिसामग्र्या भ्राजिष्णुर्मघवा ततः । श्रावस्तीनगरीमागान्मघवेवामरावतीम् ॥ ४५ ॥
तत्र देवैर्नृदेवैश्च मघोनोऽनूनसंपदः । चक्रवर्तित्वाभिषेकोऽविधीयत यथाविधि ॥ ४६ ॥
अभिषिक्तोऽपि चक्रित्वे सेव्यमानोऽपि सन्ततम् । द्वात्रिंशता मुकुटिनां सहस्रैर्मेदिनीभुजाम् ॥ ४७ ॥
श्रीयमाणः षोडशभिः सहस्रैर्युसदामपि । निधिभिर्नवभिरपि पूरिपूर्णेप्सितोऽपि हि ॥ ४८ ॥
चतुःषष्ट्या सहस्रैश्च शुद्धान्तहरिणीदृशाम् । नयनेन्दीवरस्रग्भिरर्च्यमानोऽप्यनारतम् ॥ ४९ ॥
अन्येष्वपि प्रमादस्य स्थानेषु सुलभेषु सः । पित्र्ये श्रावकधर्मे तु न जात्वासीत् प्रमद्वरः ॥ ५० ॥
नानाविधानि चैत्यानि विमानानीव नाकिनाम् । जिनबिम्बसनाथानि स्वर्णरत्नैर्व्यधत्त सः ॥ ५१ ॥
यथैकः स पतिः पृथ्व्यास्तथा तस्याप्यजायत । अर्हन् देवः सुसाधुश्च गुरुर्धर्मो दयामयः ॥ ५२ ॥
सदा स चैत्यपूजासु तत्पूजास्विव राजकम् । नोज्झाञ्चकार नियमं नित्यं नियमितेन्द्रियः ॥ ५३ ॥
अविरतश्रावकत्वेनातिवाह्यायुरात्मनः । सोऽन्तकाले परिव्रज्यामुपादत्त यथाविधि ॥ ५४ ॥
कौमारेऽब्दसहस्राणि पञ्चविंशतिरस्य तु । मण्डलित्वेऽपि तावन्ति दशैव तु दिशां जये ॥ ५५ ॥
चक्रित्वे तु त्र्यब्दलक्षी सहस्रा नवतिस्तथा । व्रतकाले च पञ्चाशत्सहस्राः शरदां पुनः ॥ ५६ ॥
पञ्चाब्दलक्षीमतिवाह्य जन्मतः पञ्चामलात्मा परमेष्ठिनः स्मरन् ।
पञ्चत्वमाप्येन्द्रसमानवैभवः सनत्कुमारेऽजनि सोऽमराग्रणीः ॥ ५७ ॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये चतुर्थे पर्वणि मघवचक्रवर्तिचरितवर्णनो नाम षष्ठः सर्गः ।

---

१ चर्मरत्नेन । २ हस्तिनो दक्षिणकुम्भस्थले स्थितस्य मणेः कान्तिप्रसरेण । ३ वर्धकिरत्नेन कृता या पद्या सेतुबन्धस्तया । * °घवा चाऽसु° संभू० ॥ † °टं प्राज्यमज° संभू० ॥ ‡ °स गङ्गायाः पूर्वनि° मु. ॥ ४ मुकुटधारिणां राज्ञाम् । ५ आश्रीयमाणः । ६ पूर्यमाणे । ७ अन्तःपुरस्त्रीणाम् । ८ नयनान्येव कमलानि तेषां मालाभिः । ९ सदा । १० पितुरागते परम्परायाते । ¶ पृथ्व्यां त° का. ॥ § °र नीतिं च नित्यं संभू. ॥ ** °तिस्तस्य मु. ॥ ११ निर्मलात्मा पञ्चपरमेष्ठिनः स्मरन्नित्यर्थः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तमः सर्गः ।

श्रीसनत्कुमारचक्रिचरितम् ॥

अस्तीह काञ्चनपुरं दधानं काञ्चनश्रियम् । भोगावत्यमरपुरी-लङ्कादिभ्योऽतिशायिनीम् ॥ १ ॥
तत्रासीद् विक्रमयशा नाम प्रवरविक्रमः । रिपुस्त्रैणाश्रुनीरेद्धप्रतापेरम्मदो नृपः ॥ २ ॥
तस्य पञ्चशतान्यासन्नन्तःपुरमृगीदृशाम् । यूथभर्तुर्द्विपस्येव करिण्यः प्रेमलालसाः ॥ ३ ॥
तदा चासीत् पुरे तस्मिन् सार्थवाहो महर्द्धिकः । नागदत्तोऽभिधानेन निधानमिव संपदाम् ॥ ४ ॥
सौभाग्यलावण्यवती रूपातिशयशालिनी । विष्णोः श्रीरिव विष्णुश्रीर्नाम्ना तस्य गृहिण्यभूत् ॥ ५ ॥
अन्योऽन्यं नीलिकारागप्रेमाणौ तौ विजह्रतुः । अव्याहतस्मरक्रीडासरसौ सारसाविव ॥ ६ ॥
काकतालीयन्यायेन कथमप्येकदा तु सा । दृक्पथं विक्रमयशोवसुधाभर्तुराययौ ॥ ७ ॥
तां प्रेक्ष्य विक्रमयशा दस्युनेव मनोभुवा । लुण्ठ्यमानविवेकस्वश्चेतस्येवमचिन्तयत् ॥ ८ ॥
अहो ! विलोचने अस्या मृग्या इव मनोरमे । बन्धुरः केशपाशश्च कलाप इव केकिनः ॥ ९ ॥
पक्वबिम्बं द्विधाभूतमिवोष्ठौ कोमलारुणौ । पीनोन्नतौ कुचावेतौ स्मरक्रीडाचलाविव ॥ १० ॥
प्रत्यग्रे इव च लते भुजे सरलकोमले । मध्यं नितान्तं क्षामं च मुष्टिग्राह्यं पवेरिव ॥ ११ ॥
शैवालालीव रोमावल्यावर्त इव नाभ्यपि । नितम्बः पुलिनमिव लावण्यसरितस्त्वसौ ॥ १२ ॥
रम्भास्तम्भाविवोरू च पादौ च कमले इव । किमन्यत् सर्वमप्यस्या मनो हरति कस्य न ? ॥ १३ ॥
जराविक्लवचित्तत्वादनौचित्येन वेधसा । निवेशिता क्वाप्यपात्रे शक्रस्तम्भः श्मशानवत् ॥ १४ ॥
एतामपहरिष्यामि क्षेप्स्याम्यन्तःपुरे निजे । अनौचित्यनिवेशित्वदोषः स्रष्टुः प्रयातु च ॥ १५ ॥
एवं मनसि निश्चित्य कन्दर्पविधुरोऽथ ताम् । जग्राह विक्रमयशा यशो म्लानीचकार च ॥ १६ ॥
अन्तरन्तःपुरं क्षिप्त्वा रमयामास तां सदा । विचित्रस्मरलीलाभिरेकतानः स भूपतिः ॥ १७ ॥
आविष्ट इव भूतेन धत्तूरमिव लीढवान् । अपस्मारमिव प्राप्तो मदिरामिव पीतवान् ॥ १८ ॥
आघ्रात इव सर्पेण सन्निपातमिवाप्तवान् । विधुरस्तद्वियोगेन सार्थवाहो बभूव सः ॥ १९ ॥ युग्मम् ॥
तया सह वियुक्तस्य सार्थवाहस्य तस्य च । संयुक्तस्य च नृपतेः कालोऽगाद् दुःखसौख्यकृत् ॥ २० ॥
विष्णुश्रिया रममाणे नृपे तस्मिन्निरन्तरम् । ईर्ष्यया कार्मणं चक्रुः क्रुद्धाः शुद्धान्तयोषितः ॥ २१ ॥
कार्मणेन च सा तेन क्षीयमाणा क्षणे क्षणे । मूलवम्येव लतिका जीवितेन व्यमुच्यत ॥ २२ ॥
नृपोऽपि मृत्युना तस्या जीवन्मृत इव स्थितः । प्रलापी च विलापी च नागदत्त इवाभवत् ॥ २३ ॥
नादत्त चानले क्षेप्तुं विष्णुश्रियं मृतामपि । प्रिया ममैषा प्रणयतूष्णीकेत्यनिशं वदन् ॥ २४ ॥
मन्त्रिणो मन्त्रयित्वाऽथ वञ्चयित्वा च भूपतिम् । अरण्ये चिक्षिपुर्नीत्वा तद्विष्णुश्रीकलेवरम् ॥ २५ ॥
त्वमासीरधुनैवेह किं प्रिये ! न निरीक्ष्यसे । तिरोधानक्रीडयाऽलं वियोगेस्य वयस्यया ॥ २६ ॥

---

१ रिपुस्त्रीसमूहस्याश्रुनीरेण इद्धो दीप्तः प्रताप एव इरम्मदो मेघाग्निर्यस्य सः । * °णास्रनी° मु० ॥ † °द्धप्रवाहेर° का०, °द्धप्रतपेर° काद्वि० ॥ ‡ °दृशः । यू० संवृ० ॥ § °मभाजनम्° मु० ॥ ¶ °न्योऽन्यनी° मु० ॥ ** °गप्रमा° संवृ० ॥ २ निर्बाधकामक्रीडायां रससहितौ । ३ लुण्ठ्यमानं विवेक एव स्वं धनं यस्य सः । †† विलोकने मु० ॥, नेत्रे । ४ सुन्दरः । †† कुचौ चैतौ संवृ. का. ॥ ५ नूतने । ‡‡ °तान्तक्षा° मु० ॥ ६ वज्रस्य । §§ शेवाला° का. ॥ ७ तल्लीनः । ८ सार्थवाहस्य दुःखकृत्, नृपतेश्च सुखकृदित्यर्थः । ९ शुद्धान्तः—अन्तःपुरम् । १० वमिः वमनम् । §§ °तुं तद्विष्णुश्रीकलेवरं प्रि० मु० ॥ ११ वियोगस्य मित्ररूपया तिरोधानक्रीडयाऽलमित्यन्वयार्थः । ¶¶ योगं वरिवस्यया का० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नर्मणाऽपि वियोगाग्निर्मर्माविद् युज्यते न हि । मदर्त्या तव किं नार्तिरावां ह्येकात्मकौ सदा ॥ २७ ॥
एकाकिनी किमगच्छः क्रीडासरिति कौतुकात् । क्रीडाद्रिमथवारोहः क्रीडोद्यानमथाभ्यगाः ॥ २८ ॥
मां विना क्रीडसि कथमायाम्येष इति ब्रुवन् । तेषु तेषु प्रदेशेषु बभ्रामोन्मत्तवन्नृपः ॥ २९ ॥
राज्ञश्च त्यक्तपानान्नवृत्तेर्गतवति त्र्यहे । मरणाशङ्किनोऽमात्यास्तस्या वपुरदर्शयन् ॥ ३० ॥
अच्छभल्लवदत्यन्तविसंस्थुलशिरोरुहम् । शशवच्छशरे वन्या कङ्कैराकृष्टलोचनम् ॥ ३१ ॥
चर्वितोरसिजद्वन्द्वं गृध्रैः पिशितगृध्नुभिः । समाकृष्टान्त्रभारं च शिवाभिरशिवाकृति ॥ ३२ ॥
छादितं मक्षिकावृन्दैर्मधुमण्डकजालवत् । पिपीलिकाभिश्चाश्लिष्टं पतितभग्नाण्डजाण्डवत् ॥ ३३ ॥
पूतिगन्धि तदालोक्य सद्यो विष्णुश्रियो वपुः । विरक्तो विक्रमयशाश्चिन्तयामासिवानिति ॥ ३४ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

अहो! असारे संसारे सारं वस्तु न किञ्चन । सारबुद्ध्या धिगेतस्यां मोहिताः स्मः कियच्चिरम्! ॥ ३५ ॥
आहार्यैरेव हि गुणैर्हरिद्रारागसन्निभैः । अहो! ह्रियन्ते नारीभिर्न कश्चित् परमार्थवित् ॥ ३६ ॥
यकृच्छकृन्मलश्लेष्ममज्जास्थिपरिपूरिताः । स्नायुस्यूता बही रम्याः स्त्रियश्चर्मप्रसेविकाः ॥ ३७ ॥
बहिरन्तर्विपर्यासः स्त्रीशरीरस्य चेद् भवेत् । तस्यैव कामुकः कुर्याद् गृध्रगोमायुगोपनम् ॥ ३८ ॥
स्त्रीशस्त्रेणापि चेत् कामो जगदेतज्जिगीषति । तुच्छपिच्छमयं शस्त्रं किं नादत्ते स मूढधीः? ॥ ३९ ॥
संकल्पयोनिर्नाऽनेन हहा! विश्वं विडम्बितम् । तदुत्खनामि संकल्पं मूलमस्यैव सर्वतः ॥ ४० ॥
एवं विचिन्त्य संसारविरक्तः स महामनाः । सुव्रताचार्यपादान्ते गत्वा दीक्षामुपाददे ॥ ४१ ॥
चतुर्थषष्ठमासादितपोभिर्देहनिस्पृहः । आत्मानं शोषयामास करैर्जलमिवार्यमा ॥ ४२ ॥
दुस्तपं स तपस्तप्त्वा कालयोगाद् विपद्य च । सनत्कुमारकल्पेऽभूत् प्रकृष्टायुः सुरोत्तमः ॥ ४३ ॥
ततोऽप्यायुःक्षये च्युत्वा पुरे रत्नपुराभिधे । अजायत श्रेष्ठिसुतो जिनधर्मोऽभिधानतः ॥ ४४ ॥
आबाल्यादपि श्रावकधर्मं द्वादशधापि हि । मर्यादामर्णव इव सदैव परिपालयन् ॥ ४५ ॥
आराधयँस्तीर्थकरान् पूजयाऽष्टप्रकारया । एषणीयादिदानेन साधूँश्च प्रतिलाभयन् ॥ ४६ ॥
असाधारणवात्सल्यात् साधर्मिकजनानपि । प्रीणयन् बन्धुवद् दानैः कश्चित् कालमलङ्घयत् ॥ ४७ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

इतश्च नागदत्तोऽपि प्रियाविरहदुःखितः । आर्तध्यानान्मृतोऽभ्राम्यत् तिर्यग्योनिषु जन्तुषु ॥ ४८ ॥
भवं भ्रान्त्वा चिरं सोऽथ पुरे सिंहपुराभिधे । अग्निशर्माऽभिधानेन द्विजन्मतनयोऽभवत् ॥ ४९ ॥
कालेन च त्रिदण्डित्वं स आदाय समाययौ । पुरं रत्नपुरं तीव्रद्विमासादितपोरतः ॥ ५० ॥
तत्र चासीत् पुरे राजा नामतो हरिवाहनः । स च भागवतोऽश्रौषीत् परिव्राजं तमागतम् ॥ ५१ ॥
राज्ञा निमन्त्रितस्तेन स पारणकवासरे । राजौकस्यागतं दैवाज्जिनधर्मं ददर्श च ॥ ५२ ॥
ततः प्राग्जन्मवैरेण ऋषी रोषारुणेक्षणः । बभाषे योजितकरं नरेन्द्रं हरिवाहनम् ॥ ५३ ॥
पृष्ठेऽस्य श्रेष्ठिनो न्यस्यात्युष्णपायसभाजनम् । चेद् भोजयसि मां राजँस्तदा भुञ्जेऽन्यथा न हि ॥ ५४ ॥
पृष्ठेऽन्यपुंसो विन्यस्य स्थालं त्वां भोजयाम्यहम् । इत्युक्तो भूभुजा भूयः स क्रुद्धो मुनिरब्रवीत् ॥ ५५ ॥

---

१ अतिविस्तीर्णानि शिरोरुहाणि केशा यस्मिँस्तद् वपुः । २ चर्वितस्तनयुग्मम् । ३ मांसलोलुपैः । ४ अशुभाकारम् । ५ यथा पतनेन भग्नं स्फुटितमण्डजस्याण्डं पिपीलिकाभिराश्लिष्यते तथा । * °ण्डभाण्ड° मु० ॥ ६ पार्श्वस्थो मांसपिण्डो यकृत् । ७ चर्मणा परिवृताः । ८ बहिर्यत् चर्म दृश्यते तदन्तर्भवेदन्तर्यन्मांसरुधिरादि चास्ति तद् बहिर्भवेदिति विपर्यासः । ९ कामदेवेन । † °सा येन मु० ॥ ‡ संकल्पमू° मु० ॥ १० सूर्यः । § °मारे क° मु० ॥ ¶ °त्सल्यः सा° मु० ॥ ** °ध्यानमृ° का० ॥ ११ वैष्णवः । १२ राजगृहे । †† °यसि मां मु० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्यैव पृष्ठे विन्यस्य स्थालमत्युष्णपायसम् । भुञ्जेऽहं भूभुजां नाथाकृतार्थो यामि वा ध्रुवम् ॥ ५६ ॥
राजा भागवतत्वेन प्रत्यपद्यत तद्वचः । जिनशासनबाह्यानां विवेकः कीदृशो नृणाम् ? ॥ ५७ ॥
राजाज्ञया दत्तपृष्ठो भुञ्जानस्य द्विजन्मनः । स्थालतापं सोऽधिसेहे दवानलमिव द्विपः ॥ ५८ ॥
कर्मणः प्राक्तनस्यैव मदीयस्य फलं ह्यदः । सख्याऽनेन त्रुटत्वेतदिति चाचिन्तयच्चिरम् ॥ ५९ ॥
भुक्ते तस्मिन् समुत्पन्ने सासृग्मांसवसारसान् । पृष्ठात् पायसपात्री सा सपङ्केव चिंतेष्टिका ॥ ६० ॥
गत्वौको लोकमाहूय स्वकीयं सर्वमप्यथ । अक्षमयज्जिनधर्मो जिनधर्मविचक्षणः ॥ ६१ ॥
निर्माय चैत्यपूजां च साधुपार्श्वमुपेत्य च । जिनधर्मः परिव्रज्यामुपादत्त यथाविधि ॥ ६२ ॥
निर्गत्य नगराच्छैलशृङ्गं समधिरुह्य च । संन्यस्य पक्षं पूर्वस्यां कायोत्सर्गं व्यधत्त सः ॥ ६३ ॥
अपरास्वपि दिक्ष्वेवं कायोत्सर्गं स निर्ममे । त्रोटिभिस्त्रोट्यमानोऽपि गृध्रकङ्कादिभिः खगैः ॥ ६४ ॥
सहमानो व्यथामेवं नमस्कारपरायणः । विपद्य कल्पे सौधर्मे स इन्द्रः समजायत ॥ ६५ ॥
मृत्वा त्रिदण्डिकः सोऽपि ह्याभियोगेन कर्मणा । शक्रस्य वाहनमभूदैरावण इति द्विपः ॥ ६६ ॥
सोऽपि पूर्णैरावणायुश्च्युत्वा जीवस्त्रिदण्डिनः । भवे भ्रान्त्वाऽसिताक्षाख्यो बभूव किल यक्षराट् ॥ ६७ ॥

इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन् क्षेत्रे भरतनामनि । कुरुजाङ्गलदेशेऽभून्नगरं हस्तिनापुरम् ॥ ६८ ॥
तत्राश्वसेनोऽश्वसेनाच्छादितावनिमण्डलः । मण्डलाग्रजितारातिमण्डलोऽभून्महीपतिः ॥ ६९ ॥
तस्मिंश्च गुणरत्नानां रोहणाचलसन्निभे । दुग्धे जलकणिरिव न दोषकणिकाऽप्यभूत् ॥ ७० ॥
अस्याहं तृणवदिति सौभाग्यस्याभिकाङ्क्षया । असिधाराव्रतं कर्तुमिव श्रीस्तदसौ स्थिता ॥ ७१ ॥
आगतेष्वर्थिषु दधौ स हर्षमतिशायिनम् । व्यषीदच्च स्वदित्सानुमानेन स्तोकयाचिषु ॥ ७२ ॥
अभूत् तस्य महादेवी सहदेवीति नामतः । काऽपि देवीव रूपेण महीतलमुपागता ॥ ७३ ॥
चिरं शक्रश्रियं भुक्त्वा कल्पात् पूर्णायुरादिमात् । स जीवो जिनधर्मस्य तस्याः कुक्षाववातरत् ॥ ७४ ॥
मुखे प्रविशतः स्वस्मिन् सहदेव्यपि तत्क्षणम् । कुञ्जरादीन् महास्वप्नांश्चतुर्दश ददर्श सा ॥ ७५ ॥
समयेऽसूत सा सूनुं सर्वलक्षणलक्षितम् । अद्वैतरूपविभवं जात्यजाम्बूनदद्युतिम् ॥ ७६ ॥
महीयसाऽथोत्सवेन जगदानन्ददायिना । **सनत्कुमार** इत्याख्यां चक्रे तस्य महीपतिः ॥ ७७ ॥
कनकच्छेदगौराङ्गो बालो बाल इवोडुपः । प्रीणन् नेत्राणि लोकानां स क्रमेण व्यवर्धत ॥ ७८ ॥
अङ्कादङ्के नरेन्द्राणां संचरन् स व्यराजत । अरविन्दादरविन्दे सितच्छद इवोच्चकैः ॥ ७९ ॥
रूपेणाप्रतिरूपेण स बालोऽपि मृगीदृशाम् । जहार दृष्टमात्रोऽपि नेत्राणि च मनांसि च ॥ ८० ॥
साङ्गानि शब्दशास्त्राणि समस्तज्ञानमातृकाः । पपौ गुरुमुखोद्गीर्णान्येष गण्डूषलीलया ॥ ८१ ॥
राज्यश्रीभुवनस्तम्भान् स्वदोःस्तम्भानिवापरान् । स आददे शस्त्रशास्त्राण्यर्थशास्त्राणि चाभितः ॥ ८२ ॥
अन्या अपि कलाः सर्वाः कलयामास लीलया । क्रमेण वर्धमानः स कलानिधिरिवामलः ॥ ८३ ॥
स सार्धैकचत्वारिंशद्धनुरुन्नतविग्रहः । मर्त्यलोकादिव दिवं शैशवात् प्राप यौवनम् ॥ ८४ ॥
तस्याभूत् परमं मित्रं कालिन्दीसूरनन्दनः । महेन्द्रसिंह इत्याख्या ख्यातः प्रख्यातविक्रमः ॥ ८५ ॥
प्राप्ते वसन्ते सोऽन्येद्युः कालिन्दीसूनुना समम् । मकरन्दाख्यमुद्यानं कौतुकात् क्रीडितुं ययौ ॥ ८६ ॥
क्रीडाभिस्तत्र चित्राभिश्चिक्रीड सुहृदा समम् । सनत्कुमारो गीर्वाणकुमार इव नन्दने ॥ ८७ ॥

---

१ स्वीचकार । २ अनेन मित्रेण कर्मच्छेदकरूपेण । * °रसा पृ° संवृ० ॥ † °तेष्टका मु० ॥ ३ गृहम् । ४ अनशनं कृत्वा । ५ पार्श्वभागम् । ६ चञ्चुभिः । ७ पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारगणनापरायणः । ‡ सोऽथ पू° का० ॥ § शेऽस्ति म° का० ॥ ८ मण्डलाग्रेण खड्गेन जितं शत्रुमण्डलं येन सः । ¶ °णाद्रौ कदाचन दु° संवृ० ॥ ९ तस्य खड्गे । १० दातुमिच्छाया अनुमानेनाल्पार्थिषु । ११ जाम्बूनदम् स्वर्णम् । १२ चन्द्रः । १३ हंसः । १४ गुरुमुखान्निर्गतानि । ** मुद्रितादर्शे 'महेन्द्रसूरः' इति नामोपन्यस्तम्, परं प्रस्तुतवर्णने सर्वत्र 'महेन्द्रसिंह' इति उपलभ्यते, तेनात्रापि तदेवास्माभिर्न्यस्तम् । १५ देवकुमारः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तदा च राज्ञोऽश्वपतिः प्राहिणोत् प्राभृते हयान् । धारापञ्चकचतुरान् सर्वलक्षणलक्षितान् ॥ ८८ ॥
नाम्ना जलधिकल्लोलं कल्लोलमिव चञ्चलम् । एकं सनत्कुमारस्याप्यर्पयामास वाजिनम् ॥ ८९ ॥
त्यक्त्वा क्रीडां कुमारस्तमारुरोह तुरङ्गमम् । हस्त्यश्वे राजपुत्राणां कौतुकं सर्वतोऽधिकम् ॥ ९० ॥
कशामुरिक्षप्य चैकेन वल्गां चैकेन पाणिना । आसनास्पृष्टपर्याण ऊरूभ्यां प्रैरयच्च तम् ॥ ९१ ॥
पर्यधाविष्ट वेगेन पादैः क्ष्मामस्पृशन्निव । गच्छन् बहुतरं व्योम्नि सोऽश्वान् द्रष्टुं रवेरिव ॥ ९२ ॥
वल्गया चकृषे सोऽश्वः कुमारेण यथा यथा । तथा तथा विपरीतशिक्षोऽधिकमधावत ॥ ९३ ॥
सादिनां राजपुत्राणां धावतामपि मध्यतः । निर्ययौ स क्षणादश्वोऽश्वमूर्तिरिव राक्षसः ॥ ९४ ॥
पश्यतामपि भूपानामुडूनामिव चन्द्रमाः । स आरूढकुमारोऽश्वोऽभूददृश्यः क्षणादपि ॥ ९५ ॥
अश्वेन सूनुमाकृष्टं नदीपूरेण पोतवत् । प्रत्यानेतुमन्वचालीदश्वसेनोऽश्वसेनया ॥ ९६ ॥
यात्यसौ यात्यसावश्वः पदान्येतानि तस्य हि । फेनलालास्तस्य चेमा यावदाख्यदिदं जनः ॥ ९७ ॥
तावद् वात्योदभूच्चण्डा पूर्णब्रह्माण्डभस्त्रिका । अकालिकी कालरात्रिरिवान्धंकरणी दृशाम् ॥ ९८ ॥
॥ युग्मम् ॥

अपटीभिरिवौकांसि दिशोऽच्छाद्यन्त रेणुभिः । स्तम्भितानीव सैन्यानि नोद्धर्तुं पादमप्यलम् ॥ ९९ ॥
पदफेनानि चिह्नानि गच्छतस्तस्य वाजिनः । अशेषाण्यपि भग्नानि पांसुकल्लोलमालया ॥ १०० ॥
न निम्नं नोन्नतं नापि स्थपुटं न द्रुमाद्यपि । अलक्षि पाताल इव प्रविष्टोऽभूज्जनोऽखिलः ॥ १०१ ॥
मूढोपायाः सैनिकास्ते पर्याकुल्यभवन्नथ । अब्धावम्भःपूर्यमाणयानाः सांयात्रिका इव ॥ १०२ ॥
नत्वा महेन्द्रसिंहोऽश्वसेनमेवं व्यजिज्ञपत् । देव! दैवस्य घटना दुर्घटा पश्य खल्वियम् ॥ १०३ ॥
अन्यथा हि कुमारः क्व दूरदेशो हयः क्व च । तत्र चाज्ञातशीले क्व कुमारस्याधिरोहणम् ॥ १०४ ॥
कुमारस्यापहरणं तेन दुर्वाजिना क्व च । क्व वा वात्येयमुद्दण्डरजश्छादितदृक्पथा ॥ १०५ ॥
पर्यन्तसामन्तमिव दैवं जित्वा तथापि हि । आनेष्याम्यहमन्विष्य स्वमित्रं स्वामिसन्निभम् ॥ १०६ ॥
कन्दरेषु गिरीन्द्राणां तुङ्गेषु शिखरेषु च । निरन्तरस्तरुस्तोमदुर्गमास्वटवीषु च ॥ १०७ ॥
रोधोरन्ध्रेषु पातालकल्पेषु सरितामपि । निर्जलेष्वपि देशेषु विषमेष्वपरेष्वपि ॥ १०८ ॥
ममाल्पपरिवारस्य क्वचिदेकाकिनोऽपि वा । ईषत्करं चरस्येव कुमारान्वेषणं प्रभो! ॥ १०९ ॥
देवस्यामितसैन्यस्यासम्मातो यत्र कुत्रचित् । तन्नाहं ह्रस्वरथ्यायां प्रवेश इव दन्तिनः ॥ ११० ॥
भूयो भूयोऽप्येवमुक्त्वा पादलग्नेन तेन तु । निवर्तितोऽश्वसेनस्तु दुःखितो नगरं ययौ ॥ १११ ॥
मितसारपरीवारो दुर्वार इव वारणः । महेन्द्रसिंहः सहसा प्रविवेश महाटवीम् ॥ ११२ ॥
पाषाणैः खड्गिविषाणोत्क्षिप्तैर्विषमपद्धतिम् । घर्मार्त्तप्रविशत्क्रोडपङ्किलीकृतपल्वलाम् ॥ ११३ ॥
प्रौढभल्लूकहिक्काभिः प्रतिशब्दितगह्वराम् । गह्वरासीनशार्दूलकृतबूत्कारदारुणाम् ॥ ११४ ॥
उत्फालचित्रककुलव्याकुलैणकुलाकुलाम् । गलितश्वापदैर्बाढं वाहसैर्वेष्टितद्रुमाम् ॥ ११५ ॥

* °पतेः प्रा° मु० ॥ † °भृतान् ह° मु० ॥ १ धारा–अश्वस्य गतिविशेषः । २ अश्वस्य ताडनी कशा 'चाबुक' इति भाषायाम् । ३ वल्गा–'लगाम' इति भाषायाम् । ४ आसनेनोपवेशनेनास्पृष्टं पर्याणं येन सः । ‡ °शाञ्चपि ग° का° ॥ ५ विपरीता शिक्षा यस्य सः । ६ अश्ववाराणाम् । ७ नक्षत्राणाम् । ८ वायुसमूहो वात्या । § °लिका का° मु० ॥ ९ यथा गृहाणि अपटीभिः यमनिकाभिश्छाद्यन्ते तथा । १० स्थापयितुम् । ¶१ समप्रदेशम् । ¶ °ष्टो निखिलो जनः । संघ्र० ॥ ** °टान्यस्य ख° मु० ॥ १२ अज्ञातं शीलं यस्य तस्मिन्नश्वे । †† °मारेणाधिरोहणम् संघ्र० का. ॥ ‡‡ क्व वा क्व का० ॥ १३ रोधसां तीराणां रन्ध्रेषु । $ °षयेष्व° का. ॥ १४ दूतस्य । §§ सम्मतो संघ्र. ॥ * °नः स्वं दुः° मु० ॥ १५ खड्गी गण्डकः । † °र्मार्तः प्र° संघ्र० ॥ १६ क्रोडः सूकरः । १७ भल्लूकः–ऋक्षः । १८ एणकुलं मृगकुलम् । ‡ °बाढं वा° का० ॥ १९ वाहसैः अजगरैः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]चमूरुचक्रैराक्रान्तमार्गच्छायावनीरुहाम् । सिंहीसखीपय:पायिसिंहरुद्धाध्वनिम्नगाम् ॥ ११६ ॥
मत्तकुञ्जरभग्नाध्वशाखिशाखातिदुर्गमाम् । सनत्कुमारमन्वेष्टुं स विष्वक् तामगाहत ॥ ११७ ॥
॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥

विकटां कण्टकितरुश्वापदैर्[3]श्वटैः स्थलैः । महाटवीं तामटतस्तस्य सैन्यं व्यशीर्यत ॥ ११८ ॥
खिन्नखिन्नैर्मुच्यमानो मन्त्रिमित्रादिकैरपि । त्यक्तसंगो मुनिरिव स एकाकी क्रमादभूत् ॥ ११९ ॥
भूयो महानिकुञ्जेषु गिरीणां कन्दरेष्वपि । पल्लीपतिरिवैकोऽपि स बभ्राम धनुर्धरः ॥ १२० ॥
बृंहिते वननागानां सिंहगुञ्जारवेष्वपि । सोऽधावत् सनत्कुमारवीरध्वनितशङ्कया ॥ १२१ ॥
स्वमित्रं तत्र चापश्यन्नुच्छलन्निर्झरध्वनौ । [4]तदाशङ्क्यन्यतोऽधावत् प्रेम्णो हि गतिरीदृशी ॥ १२२ ॥
नदीकरिहरीनूचे मद्बन्धोर्ध्वनिरेष यत् । स वः पार्श्वे ततो लभ्यं सर्वं ह्येकांशदर्शनात् ॥ १२३ ॥
सर्वत्राप्रेक्ष्य सहृदमुच्चैरारुह्य शाखिनः । दिशो न्यरूपयद् भूयो मार्गभ्रान्त इवाध्वगः ॥ १२४ ॥
बद्धशोक इवाशोकेष्वाकुलो बकुलेष्वपि । असहः [6]सहकारद्रुष्वमल्लो मल्लिकास्वपि ॥ १२५ ॥
[7]न्यक्कारी कर्णिकारेषु पाटलः पाटलास्वपि । दूरस्थः सिन्दुवारेषु सोत्कम्पश्चम्पकेष्वपि ॥ १२६ ॥
पराङ्मुखश्च मलयानिलेष्वपि खलेष्विव । स्फुटत्कर्णः कोकिलानां पञ्चमोच्चारितेष्वपि ॥ १२७ ॥
अशान्ततापः पीयूषरश्मेरपि हि रश्मिषु । स वसन्तमतीयाय [8]रोरपुत्र इवैककः ॥ १२८ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

[9]कुकूलैरिव विस्तीर्णैः पादपत्रनखम्पचैः । भृज्यमानोऽर्कांशुतप्तैर्भूरजोभिः पदे पदे ॥ १२९ ॥
सद्यो निर्वाणदावाग्निभस्मदुःसंचरेऽध्वनि । पादतापमजानानोऽग्निस्तम्भमिव सूत्रयन् ॥ १३० ॥
उष्णवा[10]त्याभिरनलज्वालाभिरिव भूरिभिः । वपुस्तापमगणयन् करी गिरिचरो यथा ॥ १३१ ॥
क्राथान् रोगीव सरितां पङ्किलान्यूर्मलानि च । पिबन् पयांसि स ग्रीष्मं भ्राम्यन्नेकोऽत्यवाहयत् ॥ १३२ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

रक्षोभिरिव [11]जीमूतैरुद्यद्विद्युन्मुखाग्निभिः । अक्षोभ्यमाणहृदयो विश्वविक्षोभणैरपि ॥ १३३ ॥
अखण्डप्रसरैर्धारासारैः [12]शितशरैरिव । विध्यमानोऽपि [13]संनद्ध इवामुह्यन् मनागपि ॥ १३४ ॥
पदे पदे वननदीवेगोन्मूलितपादपाः । दुस्तरा अप्यनायासं राजहंस इवोत्तरन् ॥ १३५ ॥
आक्रामन् पङ्किलं मार्गं वराह इव लीलया । मित्रान्वेषी पर्यटन् स वर्षा अप्यत्यवाहयत् ॥ १३६ ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

मूर्ध्नि [14]चित्रातपं घोरं पादयोस्तप्तवालुकाः । सहमानोऽग्निशरावसंपुटान्तर्वसन्निव ॥ १३७ ॥
स्वच्छे तोये [15]तोयजेषु हंसादिषु च पक्षिषु । अविश्रान्तमनाः क्वासि क्वासि मित्रेत्यमुद्गृणन् ॥ १३८ ॥
[16]मदगन्धिसप्तपर्णक्रुद्धधावितदन्तिनाम् । मध्येन गच्छन् दन्तीव वनान्तरसमागतः ॥ १३९ ॥
सख्येव [17]पवमानेन प्रेर्यमाणोऽब्जगन्धिना । अत्यगाच्छरदमपि स भ्रमन् शरदभ्रवत् ॥ १४० ॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

---

१ चमूरुः हरिणभेदः । २ सिंही सखीव सहचर इव तेन सह पयः पिबद्भिः सिंहैः रुद्धा मार्गसरितो यस्यां ताम् ॥ * °सखप° संवृ० का० ॥ ३ गर्तैः । ४ तन्मित्रमाशङ्कत इति तदाशङ्की । † °शङ्क्यान्य° का० ॥ ५ यत्रैकांशदर्शनं तत्र सर्वं भवेदिति न्यायात् । ‡ °चैत्र प्रे° का० ॥ ६ आम्रवृक्षेषु । ७ तिरस्कर्ता । ८ दीनपुत्रः । ९ तुषानलैः । § °नोऽग्नि° संवृ० ॥ १० वायूनां समूहो वात्या । ¶ °मणानि का० ॥ ११ मेघैः । १२ तीक्ष्णबाणैः । १३ वर्मितः । १४ चित्रा नक्षत्रं तस्य तापः । १५ कमलेषु । १६ मदो हस्तिमदस्तस्येव गन्धो यस्यैतादृशेन सप्तपर्णवृक्षेण क्रुद्धा अत एव धाविताश्च ते दन्तिनश्च तेषाम् । १७ वायुना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरेण समीरेण हिमाद्रेरिव बन्धुना । हिमसात् क्रियमाणेषु सरसीसरिदम्बुषु ॥ १४१ ॥
दवाग्निनाऽप्यदाह्यासु दह्यमानासु सर्वतः । जलान्तःपद्मकल्हारकैरवोत्पलपङ्क्तिषु ॥ १४२ ॥
शीतार्त्तेषु किरातेषु दवानलमपीच्छुषु । हेमन्तमत्यतीयाय स बाढं दृढनिश्चयः ॥ १४३ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
शीर्णेषु* जानुदघ्नेषु पुष्पपत्रेषु भूरुहाम् । छन्नाहिवृश्चिकेष्वङ्घ्रिन्यासं निःशङ्कमादधत् ॥ १४४ ॥
कर्णमर्माविद्भिरिव मर्मरैरतिदुःश्रवैः । प्रबुद्धोत्कर्णपञ्चास्यबूत्कारेष्वप्यकम्पितः ॥ १४५ ॥
प्रत्यग्रपल्लवास्वादमात्रेणैवोदरम्भरिः । शिशिरं गमयामास शिशिरो मित्रपीडया ॥ १४६ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
एवं सनत्कुमारस्यान्वेषणायाटतोऽटवीम् । एको महेन्द्रसिंहस्य जगाम परिवत्सरः ॥ १४७ ॥
तस्यामटव्यामन्येद्युर्गत्वा कियदवस्थितः । दिशो विलोकयामास नैमित्तिक इवोन्मुखः ॥ १४८ ॥
ततः कारण्डवक्रौञ्चहंससारसपक्षिणाम् । क्षणादाकर्णयामास कोलाहलमनाकुलः ॥ १४९ ॥
मरुता पङ्कजामोदवाहिनाश्वासितश्च सः । सरः किञ्चिदिहास्तीति निश्चिकायानुमानतः ॥ १५० ॥
आनन्दबाष्पतोयेन निश्चिन्वन् मित्रसंगमम् । सरोवरस्याभिमुखं स ययौ राजहंसवत् ॥ १५१ ॥
गच्छन्नग्रे च शुश्राव गीतं गान्धारबन्धुरम् । मधुरं वेणुनादं च वीणाक्वाणं च हारिणम् ॥ १५२ ॥
विचित्रवस्त्रनेपथ्यरमणीमध्यवर्तिनम् । मित्रं सनत्कुमारं स ददर्श प्रियदर्शनम् ॥ १५३ ॥
असौ प्रियसुहृत् किं मे माया कस्यापि कापि वा । इन्द्रजालमिदं किं वा हृदयान्निर्गतोऽथ मे ॥ १५४ ॥
इति सोऽचिन्तयद् यावत् तावत् कर्णरसायनम् । वैतालिकेन केनापि पठ्यमानमदोऽशृणोत् ॥ १५५ ॥
कुरुवंशसरोहंसाश्वसेनाब्धिनिशाकर ! । सनत्कुमार ! सौभाग्यमनोभव ! चिरं जय ॥ १५६ ॥
जय विद्याधरवधूदोर्लतालिङ्गनद्रुम ! । आढ्यम्भविष्णो ! वैताढ्यश्रेणिद्वयजयश्रिया ॥ १५७ ॥
एवं समाकर्ण्य सनत्कुमारस्य स दृक्पथम् । जगाम ग्रीष्मसंतप्तो जलाशयमिव द्विपः ॥ १५८ ॥
हर्षाश्रुधारया तुल्यं स पतन् पादपद्मयोः । अभ्युत्थायोद्धृत्य सनत्कुमारेणाभिषस्वजे ॥ १५९ ॥
उभौ हर्षाश्रु वर्षन्तौ वार्षिकाविव वारिदौ । सविस्मयैर्वितर्क्यपरस्परसमागमात् ॥ १६० ॥
साश्चर्यैर्वीक्ष्यमाणौ तौ विद्याधरकुमारकैः । महार्घ्यासनयोरासाञ्चक्राते रोमहर्षिणौ ॥ १६१ ॥
अनन्यदृष्टिमनसौ तावभूतां परस्परम् । योगिनाविव रूपस्थध्यानमुद्रापरायणौ ॥ १६२ ॥
सनत्कुमारकुमारयोगाद् दिव्यौषधादिव । तदा महेन्द्रसिंहस्य श्रमो¶ रोग इवात्रुटत् ॥ १६३ ॥
सनत्कुमारो हर्षाश्रु प्रमृज्याथ स्वचक्षुषोः । महेन्द्रसिंहमित्यूचे ससुधोद्गारया गिरा ॥ १६४ ॥
कथमत्र समायासीरेकाक्यासीः कथं नु वा । मामज्ञासीः कथं वाऽत्र कथं वा कालमक्षिपः ? ॥ १६५ ॥
मद्वियोगे पितृपादाः कथं प्राणानधारयन् । कथं पितृभ्यामेकाकी प्रेषितोऽसीह दुर्गमे ? ॥ १६६ ॥
इति पृष्टः कुमारेण बाष्पगद्गदवागथ । महेन्द्रसिंहः प्राग्वृत्तमाचचक्षे यथातथम् ॥ १६७ ॥
ततः सनत्कुमारस्तं विद्याधरवधूजनैः । चतुरैः कारयामास मञ्जनं भोजनादि च ॥ १६८ ॥
महेन्द्रसिंहस्तदनु विस्मयस्मेरलोचनः । सनत्कुमारमित्यूचे विनयाद् रचिताञ्जलिः ॥ १६९ ॥
तदा तेन तुरङ्गेणापहृतः कियतीं भुवम् । तदादि मद्वियोगे च प्राप्तं किमथवा त्वया ॥ १७० ॥
इयमृद्धिः कुतो वा ते प्रसीदाख्यातुमर्हसि । रहस्यभूतमेतत् ते गोपनीयं न चेन्मयि ॥ १७१ ॥
सनत्कुमार इत्युक्तश्चिन्तयामास चेतसि । आत्मकल्पे वयस्येऽस्मिन् गोपनीयं न किञ्चन ॥ १७२ ॥

---

* °षु जीर्णपर्णेषु जानुदघ्नेषु भू° मु० ॥ १ छन्नाः सर्पाश्च वृश्चिकाश्च येषु तेषु । † °रबदु° संवृ० ॥ २ पञ्चास्यः सिंहः । ३ तसः । ‡ °शोऽवलो° का० ॥ ४ मनोहरम् । ५ समम् । ६ उत्थाप्य । ७ तार्कितुमशक्यः परस्परसमागमो ययोस्तौ । § °गमौ ॥ संवृ० ॥ ¶ °मो वेग इ° संवृ० ॥ ८ आगतः । ९ स्नानम् । १० विस्मयेन प्रफुल्लनेत्रः । ११ तत्प्रभृति । १२ स्वसदृशे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परैरप्युच्यमानेन स्ववृत्तेन सताऽपि हि । महापुमांसो लज्जन्ते तत् स्ववृत्तं कथं ब्रुवे ? ॥ १७३ ॥
भवत्वेवं तावदिति विनिश्चित्याश्वसेनसूः । इत्यादिदेश दयितां वामपार्श्वे निषेदुषीम् ॥ १७४ ॥
प्रिये बकुलमतिके! विद्यया वेद्यवेदिनि ! । असौ महेन्द्रसिंहाय तथ्यां कथय मत्कथाम् ॥ १७५ ॥
मुकुलीकुरुते नेत्राम्भोजे निद्रा तु मेऽधुना । इत्युदित्वा रतिगृहं सुषुप्सुः प्रविवेश सः ॥ १७६ ॥
ततो बकुलमतिरप्यवोचत् तत्र वासरे । सखा ते वाजिना जह्रे युष्माकं पश्यतामपि ॥ १७७ ॥
प्रवेशितश्च महतीमटवीमतिदारुणाम् । रहःक्रीडास्थानमिव देवस्य समवर्तिनः[3] ॥ १७८ ॥
गच्छन्नह्नि द्वितीयेऽपि सोऽश्वः पञ्चमधारया[4] । मध्याह्ने क्षुत्पिपासार्त्तः कृष्ट्वा जिह्वामवास्थितः ॥ १७९ ॥
तस्माच्छ्वासापूर्णकण्ठात् स्तब्धपादात् तुरङ्गमात् । आर्यपुत्रोऽप्यवातारीत् प्रपित्सोः[5] कुट्टिमादिव ॥ १८० ॥
छोटयित्वा तदुदरबन्धिनं पट्टमायतम् । सोऽश्वादुत्तारयामास पर्याणकविके[6] स्वयम् ॥ १८१ ॥
तुरङ्गमः स घूर्णित्वा पपात धरणीतले । सद्यश्च मुमुचे प्राणैः सहपातभयादिव ॥ १८२ ॥
पिपासयाऽथार्यपुत्रः पयोऽन्वेष्टुमितस्ततः । तस्यामटव्यां बभ्राम नापश्यच्च मराविव ॥ १८३ ॥
सुकुमारतयाऽङ्गस्य दूरायातश्रमेण च । दवदाहादटव्याश्च व्याकुलोऽभूत् सखा तव ॥ १८४ ॥
गत्वाऽदूरात् सप्तपर्णतरुमूले द्रुतं ततः । उपाविक्षन्मुकुलितेक्षणः क्षोण्यां पपात च ॥ १८५ ॥
तदा चामुं पुण्यवशाद् यक्षस्तद्वनदैवतम् । जलैः सिषेच सर्वाङ्गं शिशिरैरमृतोपमैः ॥ १८६ ॥
उत्थाय लब्धसंज्ञोऽसौ तद्दत्तं तत्पयः पपौ । कस्त्वं कुतो वा वारीदमित्यपृच्छच्च तं शनैः ॥ १८७ ॥
यक्षोऽहमिह वास्तव्यो मानसात् त्वत्कृते पयः । इदं मया समानीतमित्याचख्यौ स यक्षराट् ॥ १८८ ॥
आर्यपुत्रोऽवदद् भूयः संतापोऽङ्गे महानयम् । न विना मानससरोमज्जनादपयास्यति ॥ १८९ ॥
तवेच्छां पूरयाम्येष इत्युक्त्वा यक्षपुङ्गवः । कदलीसंपुटे क्षिप्त्वाऽमुं मानससरोऽनयत् ॥ १९० ॥
तत्र च स्नपयामासार्यपुत्रं स यथाविधि । गजराजं गजायुक्त इव शीतामलैर्जलैः ॥ १९१ ॥
सर्वाङ्गीणं सुखस्पर्शैरपनिन्ये श्रमो जलैः । आर्यपुत्रस्य निपुणैः संवाहकजनैरिव ॥ १९२ ॥
तत्रासिताक्षो यक्षः प्राग्जन्मारिः सुहृदस्तव । हननाय समागच्छत् कृतान्त इव नूतनः ॥ १९३ ॥
अरे रे ! तिष्ठ सिंहेन क्षुधितेनेव कुञ्जरः । चिरादसि मया दृष्टः कियद्दूरं गमिष्यसि ? ॥ १९४ ॥
इत्यूर्जितं स तर्जित्वा समुन्मूल्यैकमङ्घ्रिपम् । आर्यपुत्राय सोऽनार्यः प्राक्षिपद् यष्टिलीलया ॥ १९५ ॥
समापतन्तं हस्तेन निहत्यापातयद् द्रुमम् । तं ते सखा प्रतिकारभस्त्रामिव मतङ्गजः ॥ १९६ ॥
ततो बहलधूलीभिरन्धकारमयं जगत् । अकालोत्पन्नकल्पान्तमिव यक्षश्चकार सः ॥ १९७ ॥
स विचक्रे पिशाचांश्च धूमधूम्रकलेवरान् । सोदरानन्धकारस्य दारुणाकारधारिणः ॥ १९८ ॥
ज्वालाजालकरालास्यास्ते चित्या इव जङ्गमाः । अट्टहासं विमुञ्चन्तः पतत्पविरवोपमम् ॥ १९९ ॥
पिङ्गकेशाः पिङ्गनेत्राः सदवा इव पर्वताः । लम्बजिह्वाः कोटरान्तःस्थिताहय इव द्रुमाः ॥ २०० ॥
तीक्ष्णवक्त्रा महादंष्ट्रा दधानाः कर्त्रिका इव । अधावन्तोध्यार्यपुत्रमधिमध्विव मक्षिकाः ॥ २०१ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
भ्राम्यतो विकृताकारान् रङ्गादाविव नर्तकान् । आर्यपुत्रोऽपि तान् पश्यन् न बिभाय मनागपि ॥ २०२ ॥

१ सत्येनापि । * °रेकुमारो वा° का. ॥ २ अश्वेन । ३ यमराजस्य । ४ गतिविशेषेण । ५ प्रपतितुमिच्छोः । † °दरं बन्धनं का. ॥ ६ पर्याणं अश्वपृष्ठाच्छादनम्, कविका वल्गानुगता 'चोकडा' इति ख्याता । ‡ °यानश्च° संवृ० का. ॥ § °व्यामाकु° संवृ. ॥ ७ तत्रागतः सरोवरात् । ¶ °त्वा तं मा° संवृ. का. ॥ ** °मास कुमारं स य° संवृ. ॥ ८ हस्तिपकः । ९ तिरस्कृत्य । १० वृक्षम् । ‖ तं कुमारप्र° संवृ. ॥ ११ गजग्रहणोपायभूतां भस्त्राम्–लोहधमनीम्, 'भट्ठी' इति भाषायाम् । १२ भयः । १३ दवानलसहिताः । †† °न्ताधिकुमारमधि° संवृ. ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिशाचेभ्योऽप्यचकितमार्यपुत्रं तरस्विनम् । अकालकालपाशाभैर्नागपाशैर्बबन्ध सः ॥ २०३ ॥
आर्यपुत्रस्तु तान् सर्वांस्त्रोटयामास लीलया । हस्तोत्क्षेपेण हस्तीवाविहस्तो बल्लिमण्डपम् ॥ २०४ ॥
अमुं यक्षो विलक्षोऽथ करघातैरताडयत् । महागिरिप्रस्थमिव लाङ्गूलाच्छोटनैर्हरिः ॥ २०५ ॥
आजघानार्यपुत्रस्तं वज्रसारेण मुष्टिना । महामात्र इव क्रुद्धो लोहगोलेन दन्तिनम् ॥ २०६ ॥
अयोवलयितेनाथ मुद्गरेण गरीयसा । आर्यपुत्रं न्यहन् यक्षस्तडितेवाद्रिमम्बुदः ॥ २०७ ॥
चन्दनद्रुममुन्मूल्य तेन वर्धिष्णुराहतः । यक्षः पपात भुव्यूर्द्धशोषं शुष्क इव द्रुमः ॥ २०८ ॥
यक्षोऽपि शैलमुत्क्षिप्य लीलया गण्डशैलवत् । आर्यपुत्रस्योपरिष्टाच्चिक्षेपामर्षणः क्षणात् ॥ २०९ ॥
तेन शैलप्रहारेण जज्ञे निश्चेतनः क्षणम् । सायं नदीह्रद इव मीलितेक्षणपङ्कजः ॥ २१० ॥
लब्धसंज्ञो विधूयाद्रिं महावायुरिवाम्बुदम् । आर्यपुत्रः प्रववृते बाहुभ्यां योद्धुमुच्चकैः ॥ २११ ॥
दण्डेन दण्डभृदिव दोर्दण्डेन सखाऽपि तम् । चक्रे निहत्य ते कणशः सोऽमरत्वात् तु नामृत ॥ २१२ ॥
ततो विरसमारव्य मुमूर्षन्निव सूकरः । असिताक्षः पलायिष्ट वायवीयेन रंहसा ॥ २१३ ॥
रणकौतुकवीक्षिण्यः सुरविद्याधराङ्गनाः । त्वन्मित्रे ववृषुः पुष्पाण्यृतुश्रिय इव स्वयम् ॥ २१४ ॥
अपराह्णे ततोऽचालीन्मानसाद् धीरमानसः । आर्यपुत्रो ययौ बाह्यां भुवं मत्त इव द्विपः ॥ २१५ ॥
नन्दनात् तत्र चायाताः असौ खेचरकन्यकाः । ईक्षाञ्चक्रे रूपवतीः स्मरजीवातुसन्निभाः ॥ २१६ ॥
सखा ते ताभिरप्यैक्षि हावभावमनोहरम् । स्वयंवरस्रज इव क्षिपतीभिर्दृशोऽलसाः ॥ २१७ ॥
आविश्चिकीर्षुः सद्भावमार्यपुत्र उपेत्य ताः । सुधामधुरया वाचा प्रोवाचार्यो वचस्विनाम् ॥ २१८ ॥
यूयं महात्मनः कस्य पुत्र्यः कुलविभूषणम् । युष्माभिर्भूषितं चेदमरण्यं केन हेतुना ? ॥ २१९ ॥
ता अप्यूचुर्महाभाग! विद्याधरमहीपतेः । श्रीमतो भानुवेगस्य वयमष्टापि कन्यकाः ॥ २२० ॥
इतश्चानतिदूरेऽस्ति तातस्य नगरी वरा । तामलङ्कुरु विश्रान्त्या राजहंस इवाब्जिनीम् ॥ २२१ ॥
इत्युक्तः प्रश्रयात् ताभिः सखा ते तत्पुरीमगात् । सान्ध्यं विधिं कर्तुमिवाम्भोधौ भानुर्ममज्ज च ॥ २२२ ॥
वरचिन्ताशल्यभृतो विशल्यकरणौषधिः । ताभिः सखा ते स्वपितुरन्तिकेऽनायि सौविदैः ॥ २२३ ॥
अभ्युत्थानं भानुवेगः कृत्वैवं तमभाषत । दिष्ट्या नः सदनं पुण्यं पुण्यराशिर्यदागमः ॥ २२४ ॥
आकृत्याऽपि ज्ञायसे त्वं महावश्यो महाभुजः । इन्दोः क्षीरार्णवाज्जन्म मूर्त्याऽपि ह्यनुमीयते ॥ २२५ ॥
यत् कन्यानां त्वमुचितो वरोऽसीति मयाऽर्थ्यसे । इमाः परिणयाष्टापि रत्नं स्वर्णे हि योज्यते ॥ २२६ ॥
एवमभ्यर्थितस्तेन तदैव विधिपूर्वकम् । ता दिक्श्रिय इवाष्टापि पर्यणैषीत् सखा तव ॥ २२७ ॥
ताभिः समं रतिगृहे सुप्तोऽसौ बद्धकङ्कणः । निद्रासुखं चान्वभवद् रत्नपर्यङ्कमास्थितः ॥ २२८ ॥
निद्रापराजितं चैतमसिताक्षः क्षणादपि । उत्क्षिप्यान्यत्र चिक्षेप बलिभ्योऽपि छलं बलिः ॥ २२९ ॥
पश्यन् सखा ते निद्रान्ते स्वं भूमिष्ठं सकङ्कणम् । एकाकिनमरण्यान्तर्दध्यौ किमिदमित्यथ ॥ २३० ॥
असावटन्नटव्यन्तरेकाकी पूर्ववत् पुनः । अभ्रंलिहं ददर्शैकं प्रासादं सप्तभूमिकम् ॥ २३१ ॥
कस्यापि मायिनोऽदोऽपि मायाविलसितं किमु । इत्यामृशन्नार्यपुत्रस्तं प्रासादं समासदत् ॥ २३२ ॥

---

१ बलिनम् । २ अमन्दः । * °ण्डलम् ॥ संवृ. का. ॥ † तं च य° संवृ. ॥ ३ विषण्णः । ‡ रघातयत् मु. ॥ § °त् । उपरिष्टात् कुमारस्य चिक्षे° संवृ. ॥ ४ दण्डधारी वरुणो वा यमः । ¶ °क्र कुमारः क° संवृ. ॥ $ तु नोऽमृत ॥ का. ॥ ५ वायुसदृशेन । ** नाः । कुमारे व° संवृ. ॥ †† बाह्यां भु° मु. ॥ ‡‡ °ता सविद्याधरकन्य° संवृ. ॥ ६ कामदेवजीवनतुल्याः । * कुमारस्ताभि° संवृ. ॥ ७ कमलिनीम् । ८ विनयात् । † °भिः कुमारस्तत्पु° संवृ. ॥ ‡ °भिः कुमारः स्व° संवृ. ॥ ९ अन्तःपुरचारिभिः नपुंसकनरैः । § कृत्वैत्यमुम° मु. ॥ ¶ °न् कुमारो नि° संवृ. ॥ ‖ °ध्यौ चित्ते किम(मि)त्यथ ॥ संवृ. ॥ §§ स पर्यटन्नटव्य° संवृ. ॥ १० आकाशगामिनम् । ११ विचारयन् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कस्याश्चिद् योषितस्तत्र कुररीकरुणस्वरम्[1] । अश्रौषीद् रुदितं* व्यक्तं वनान्तमपि रोदयत् ॥ २३३ ॥
आर्यपुत्रो दयावीरः प्रासादे तत्र सप्तमीम् । आरोहद् भूमिकां धिष्ण्य[2]विमानभ्रान्तिदायिनीम् ॥ २३४ ॥
सनत्कुमार कौरव्य! मम जन्मान्तरेऽपि हि । भर्ता भूयास्त्वमेवेति भूयो भूयोऽभिशंसिनीम्‡ ॥ २३५ ॥
अश्रुपूर्णेक्षणां दीनां कन्यामेकामधोमुखीम् । रूपलावण्यपुण्याङ्गीं¶ सखा ते तत्र चैक्षत ॥ २३६ ॥
स्वनामश्रवणात् केयं ममेत्याशङ्कितोऽथ सः । पुरोभूयेत्यभाषिष्ट प्रत्यक्षेवेष्टदेवता ॥ २३७ ॥
भद्रे! सनत्कुमारः कः कासि त्वं किमिहागता । किं वा ते व्यसनं येन तं स्मरन्तीति रोदिषि ॥ २३८ ॥
इत्युक्ता तेन सा बाला बलादाह्लादमीयुषी । पीयूषमिव वर्षन्ती गिरा मधुरयाऽवदत् ॥ २३९ ॥

साकेतपुरनाथस्य सुराष्ट्रस्य महीपतेः । देव्याश्च चन्द्रयशसः सुनन्दा नाम पुत्र्यहम् ॥ २४० ॥
कुरुवंशनभोभानोरश्वसेनस्य भूपतेः । सूनुः सनत्कुमारस्तु रूपन्यकृतमन्मथः ॥ २४१ ॥
स मनोरथमात्रेण भर्ता मम महाभुजः । तस्मै पितृभ्यां दत्ताऽस्मि यस्मादुदकपूर्वकम्[3] ॥ २४२ ॥
ततोऽकृतविवाहां मामेको विद्याधरात्मजः । स्वकुट्टिमादिहानैषीत् परस्वमिव[4] तस्करः ॥ २४३ ॥
इमं विकृत्य प्रासादं मामत्रैव विमुच्य च । क्वापि विद्याधरः सोऽगाच्च जाने किं भविष्यति? ॥ २४४ ॥
अवोचदार्यपुत्रोऽपि§ मा भैषीः कातरेक्षणे[5]! । सनत्कुमारः सोऽस्म्येष कौरव्यो यं स्मरस्यलम्[6] ॥ २४५ ॥
प्रत्यभाषिष्ट साऽप्येवं चिराद् दृष्टिपथेऽद्य मे । देव! दैवेन सुस्वप्नमिव दिष्ट्याऽसि दर्शितः ॥ २४६ ॥
एवं तयोरालपतोरागात् क्रोधारुणेक्षणः । विद्याधरो वज्रवेगाभिधानोऽशनिवेगसूः ॥ २४७ ॥
उत्पाट्योच्छालयामास स विद्याधरदारकः । आर्यपुत्रं समुत्पातिखेचरभ्रमदायिनम् ॥ २४८ ॥
हा नाथ नाथ! दैवेन निहताऽस्मीति भाषिणी । मूर्च्छया सा महीपृष्ठे शीर्णपर्णमिवापतत् ॥ २४९ ॥
क्रुद्धः सत्रार्यपुत्रोऽपि मुष्ट्या मशकमुष्टिवत् । वज्रौजसा वज्रवेगमवधीत् तं दुराशयम् ॥ २५० ॥
अक्षताङ्गस्तदभ्यर्णमार्यपुत्रः समाययौ । नेत्रनीलोत्पलानन्दं जनयंश्चन्द्रमा इव ॥ २५१ ॥
समाश्वास्य च तां सद्यः पर्यणैषीन्मनीष्यसौ[7] । नैमित्तिकवरैः सा हि स्त्रीरत्नमिति सूचिता ॥ २५२ ॥
आगात् तत्र क्षणेनापि वज्रवेगस्य सोदरा[8] । कन्या सन्ध्यावली नामाकुप्यद् भ्रातृवधाच्च सा ॥ २५३ ॥
'भर्ता ते भ्रातृवधको भावीति' ज्ञानिनां वचः । स्मृत्वाऽशाम्यत् क्षणेनापि स्वलोभः कस्य नोपरि? ॥२५४॥
जयश्रीः सा द्वितीयेव स्वयंवरपरायणा** । आर्यपुत्रं नाथमिच्छन्त्युपतस्थे कुमारिका ॥ २५५ ॥
अनुज्ञातस्त्वत्सखाऽथानन्दसाजा†† सुनन्दया । गान्धर्वेण विवाहेन तामुपायंस्त रागिणीम् ॥ २५६ ॥
एत्य विद्याधरौ द्वौ च तदानीमाश्वसेनये[9] । महारथं संसन्नाहमुपनीयेत्यवोचताम्[10] ॥ २५७ ॥
त्वया हतं वज्रवेगं गरुडेनेव पन्नगम् । विज्ञायाशनिवेगस्तत्पिता विद्याधरेश्वरः ॥ २५८ ॥
विद्याधरबलच्छन्नदिको दिकरिविक्रमः । त्वां योधयितुमेत्येष रोषक्षाराम्बुसागरः ॥ २५९ ॥
पितृभ्यां चन्द्रवेगेन भानुवेगेन चेरितौ । आवां श्वशुर्यौ भवतः साहाय्यार्थे समागतौ ॥ २६० ॥
तत्प्रेषितं रथं चामुमारोहेन्द्ररथोपमम् । अमुं चाऽऽमुञ्च[11] सन्नाहं विजयस्व द्विषां बलम् ॥ २६१ ॥
चन्द्रवेग-भानुवेगौ वाहनैर्वायुवेगिभिः । साहाय्यायागतौ विद्धि निजे मूर्त्ती इवापरे ॥ २६२ ॥
तौ तदानीमपि महावाहिनीकौ समेयतुः । चन्द्रवेग-भानुवेगावब्धी पूर्वापराविव ॥ २६३ ॥
तदा चाशनिवेगस्यागच्छतः सैन्यसञ्चयैः । उत्तस्थे‡‡ तुमुलो व्योम्नि पुष्करावर्त्तकैरिव ॥ २६४ ॥

---

१ कुररीवत् करुणः स्वरो यस्मिन् । * °दितमसौ व° मु० ॥ † कुमारोऽपि द° संव्रू० ॥ २ धिष्ण्यं नक्षत्रं तारा वा । ‡ °योऽपि शंसिनीम् ॥ मु० ॥ ¶ °ङ्गीं कुमारस्तत्र संव्रू० ॥ ३ संकल्पपूर्वकम् । ४ परधनम् । § उवाच राजपु° संव्रू० ॥ ५ अधीरेक्षणे । ६ अतिशयेन । ७ बुद्धिमान् । ८ भगिनी । ** °णा । अथार्यपुत्रं नाथीयन्त्यु° संव्रू० ॥ †† °तः कुमारोऽथा° संव्रू० ॥ ९ अश्वसेनस्य पुत्राय । १० कवचसहितम् । ११ परिधेहि । ‡‡ °त्तस्थौ तु° मु० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदानीमार्यपुत्राय सन्ध्यावलिरदत्त सा । विद्यां प्रज्ञप्तिकां नाम भर्तृगृह्या हि योषितः ॥ २६५ ॥
आर्यपुत्रोऽपि सन्नह्य समारुह्य च तं रथम् । रणायोत्कण्ठितस्तस्थौ क्षत्रिया हि रणप्रियाः ॥ २६६ ॥
चन्द्रवेग-भानुवेगादयो विद्याधरा अमुम् । स्वसैन्यैर्वव्रिरे वैरियशोविधुविधुन्तुदाः ॥ २६७ ॥
गृह्णीत गृह्णीत हत हतेति च विभाषिणः । आगमन्नतिवेगेनाशनिवेगस्य सैनिकाः ॥ २६८ ॥
उभयोरप्ययुद्ध्यन्त सैन्या दैन्यविनाकृताः । ताम्रचूडा इवोत्पत्योत्पत्यामर्षात् प्रहारिणः ॥ २६९ ॥
तेषां क्ष्वेडारवादन्यन्न किञ्चिच्छुश्रुवे तदा । तदायुधेभ्यो दीप्तेभ्यो नान्यत् किञ्चित् व्यदृश्यत ॥ २७० ॥
अपासर्पन्नुपासर्पन् प्रहारानसकृद् ददुः । प्रतीपुश्च रणविदः सुभटाः कुञ्जरा इव ॥ २७१ ॥
युद्ध्वा चिरेण भग्नेषु सैनिकेषु द्वयोरपि । समुत्तस्थेऽशनिवेगो रथेनानिलवेगिना ॥ २७२ ॥
भो भोः ! क्व वज्रवेगारिर्यमागारनवातिथिः । इत्याक्षिपन् परानुच्चैः साधिज्यं विदधे धनुः ॥ २७३ ॥
एषोऽहं वज्रवेगारिर्यमागारनवातिथिः । इति ब्रुवन्नार्यपुत्रोऽप्याततज्यं धनुर्व्यधात् ॥ २७४ ॥
ततः प्रववृते युद्धं द्वयोरपि महौजसोः । शराशरि तिरोभूतदिवाकरकरोत्करम् ॥ २७५ ॥
द्वावप्यार्यपुत्रविद्याधरेशौ मारतत्परौ । युद्ध्वा गदाद्यैरप्यस्त्रैरसंजातपराजयौ ॥ २७६ ॥
सार्पगारुत्मताग्नेयवारुणास्त्रैस्तु दारुणैः । दिव्यैरस्त्रैरयुध्येतामन्योऽन्यं बाध्यबाधकैः ॥ २७७ ॥ युग्मम् ॥
विद्याधरपतेश्चापमास्फाल्योन्मुञ्चतः शरम् । आर्यपुत्रः सायकेन जीवां जीवमिवाच्छिदत् ॥ २७८ ॥
मण्डलाग्रमथाकृष्याशनिवेगस्य धावतः । यशोऽर्धमिव दोरर्धं निचकर्तश्वसेनभूः ॥ २७९ ॥
भग्नैकदन्तो दन्तीव दंष्ट्रीवास्तैकदंष्ट्रिकः । छिन्नैकभुजदण्डोऽपि सोऽतिक्रोधादधावत ॥ २८० ॥
प्रहर्तुं धावतस्तस्य दशनैर्दशतोऽधरम् । विद्यार्पितेन चक्रेण शिरश्चिच्छेद मत्पतिः ॥ २८१ ॥
ततश्चाशनिवेगस्य राज्यलक्ष्मीः समन्ततः । मम भर्तरि संधाता विक्रान्तो हि श्रियां पदम् ॥ २८२ ॥
चन्द्रवेगप्रभृतिभिः समं विद्याधरेश्वरैः । गिरिं जगाम वैताढ्यमाश्वसेनिरशङ्कितः ॥ २८३ ॥
विद्याधरमहाराज्याभिषेकोऽमुष्य तत्र च । विद्याधरेन्द्रैर्विदधे प्रपेदानैः पदातिताम् ॥ २८४ ॥
शाश्वतार्हत्प्रतिमानां तत्रैषोऽप्रतिमर्द्धिकः । नन्दीश्वरे शक्र इव विदधेऽष्टाहिकोत्सवम् ॥ २८५ ॥
अथार्यपुत्रमन्येद्युर्विद्याधरशिरोमणिः । चन्द्रवेगो मम पिता सप्रश्रयमदोऽब्रवदत् ॥ २८६ ॥
कोऽप्येकदा मया पूर्वमपूर्वमहिमा मुनिः । ज्ञानरत्नाकरो दृष्टः स पृष्टः शिष्टवानिति ॥ २८७ ॥
तवेदं बकुलमतिप्रमुखं कन्यकाशतम् । चक्री चतुर्थोऽत्र सनत्कुमारः परिणेष्यति ॥ २८८ ॥
कथं गम्यः कथं प्रार्थ्यः कन्या दातुममूः स तु । इति चिन्ताजुषो मे त्वं भाग्यैरिह समागमः ॥ २८९ ॥
तत् प्रसीद शतं कन्या अमूः परिणय प्रभो ! । यान्त्रा ह्यमोघा महताममोघं च ऋषेर्वचः ॥ २९० ॥
प्रार्थितो मम पित्रैवमर्थिचिन्तामणिस्तदा । पर्यणैषीत् तव सुहृच्छतं कन्या मदादिकाः ॥ २९१ ॥
कदाचिच्चारुसंगीतैः कदाचिद् वरनाटकैः । कदाप्याख्यानकवरैः कदाप्यालेख्यवीक्षणैः ॥ २९२ ॥
कदाचिद् दिव्यवापीषु जलक्रीडामहोत्सवैः । कदाप्युद्यानवीथीषु पुष्पोच्चयनकेलिभिः ॥ २९३ ॥
कदाचिदन्याभिरपि क्रीडन् क्रीडाभिरेष ते । विद्याधरैः परिवृतोऽनैषीत् कालं सुखं सखा ॥ २९४ ॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम् ** ॥

---

* अपि । तं सै° संवृ० ॥ १ वैरिणां यश एव चन्द्रस्तस्मिन् राहुसदृशाः । २ दीनतारहिताः । ३ कुर्कुटाः । ४ गर्जनाशब्दात् । ५ प्रतिजग्मुः । † °तिथे । इ° मु० ॥ ६ आतता विस्तीर्णा ज्या यस्मिन् । ७ तिरोभूतः सूर्यकिरणसमूहो यस्मिन् तत् । ८ धनुर्गुणम् । ९ नष्टैकदंष्ट्रः । १० दन्तैः । ११ संधास्यति । १२ विक्रमी । * °षेकस्तत्र तस्य च संवृ० ॥ १३ प्राप्तैः । ‡ तत्र सोऽप्र° संवृ० ॥ ¶ °मा मतिः । ज्ञा° संवृ० ॥ १४ कथितवान् । § तदेवं ब° संवृ० ॥ १५ चिन्तासेविनः चिन्तातुरस्येति यावत् । १६ याचकेषु चिन्तामणिसमानः । ** 'संवृ०' 'का०' इत्येतयोरादर्शयोर्नास्ति पदद्वयमेतत् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रीडानिमित्तमधुना त्विहागात् तव बान्धवः । मिलितस्त्वं च दलितो दुर्दैवस्य मनोरथः ॥ २९५ ॥
इत्युक्तवत्यां बकुलमत्यां रतिनिकेतनात् । सनत्कुमारो निरगाद्ध्रदादिव मतङ्गजः ॥ २९६ ॥
समं महेन्द्रसिंहेन विद्याधरैःसमावृतः । वैताढ्याद्रिं ततः सोऽगात् सुमेरुमिव वासवः ॥ २९७ ॥
स कालं गमयन्नृद्ध्या महत्या परिबृंहितः । महेन्द्रसिंहेनान्येद्युर्व्यज्ञपीदं यथोचितम् ॥ २९८ ॥
तव ऋद्ध्याऽनया स्वामिन्! मनो मे मोदतेतमाम् । पितरौ त्वद्वियोगार्तौ सारं सारं च सीदतः ॥ २९९ ॥
असौ सनत्कुमारोऽसौ महेन्द्र इति तन्मयम् । पितरौ पश्यतो विश्वं मन्ये तनयवत्सलौ ॥ ३०० ॥
तत् प्रसीदाभिगच्छामो नगरं हस्तिनापुरम् । आनन्दय पितृजनं शशाङ्क इव सागरम् ॥ ३०१ ॥
तेनेत्यभिहितः सख्या सोत्कण्ठः सोऽपि तत्क्षणात् । विद्याधराधिपशतैश्चमूयुक्तैः समावृतः ॥ ३०२ ॥
विमानैर्भासुरैः कुर्वन् नानाऽऽदित्यमिवाम्बरम् । विद्याधरैः कैश्चिदपि विधृतातपवारणः ॥ ३०३ ॥
उद्धूतचामरः कैश्चित् कैश्चिदप्यूढपादुकः । कैश्चिद् गृहीतव्यजन आत्तवेत्रश्च कैश्चन ॥ ३०४ ॥
ध्रियमाणस्थगिकोऽन्यैः कथ्यमानपथोऽपरैः । दर्श्यमानविनोदोऽन्यैस्स्तूयमानगुणोऽपरैः ॥ ३०५ ॥
कैरपि द्विरदारूढैरश्वारूढैश्च कैश्चन । कैश्चिच्च स्यन्दनारूढैः खे कैश्चित् पादचारिभिः ॥ ३०६ ॥
सकलत्रः समित्रश्चामित्रशैलमहाशनिः । सनत्कुमारः संप्राप नगरं हस्तिनापुरम् ॥ ३०७ ॥
॥ षड्भिः कुलकम् ॥
पितरौ तत्र दुःखार्तौ पौरांश्च निजदर्शनात् । स समानन्दयद् ग्रीष्मतापार्तानिव वारिदः ॥ ३०८ ॥
सनत्कुमारं स्वे राज्येऽश्वसेननृपतिर्न्यधात् । महेन्द्रसिंहं तत्सेनाधिपत्ये प्रीतमानसः ॥ ३०९ ॥
श्रीधर्मतीर्थकृत्तीर्थे स्थविराणामथान्तिके । परिव्रज्यां समादाय राजा स्वार्थमसाधयत् ॥ ३१० ॥
राज्यं सनत्कुमारस्य परिपालयतः सतः । महारत्नान्यजायन्त चक्रादीनि चतुर्दश ॥ ३११ ॥
ततः स साधयामास चक्रमार्गानुगः स्वयम् । षट्खण्डं भरतक्षेत्रं नैसर्प्याद्यान् निधीनपि ॥ ३१२ ॥
दशभिर्वर्षसहस्रैः साधयित्वा स भारतम् । प्राविशद् रत्नभूतेन हस्तिना हस्तिनापुरम् ॥ ३१३ ॥
प्रविशन्तं महात्मानमवधिज्ञानतोऽथ तम् । वीक्षाञ्चक्रे सहस्राक्षः साक्षात् स्वमिव सौहृदात् ॥ ३१४ ॥
सौधर्मेन्द्रः पूर्वजन्मन्यसौ मे तेन बान्धवः । इति स्नेहवशाच्छक्रः कुबेरमिदमादिशत् ॥ ३१५ ॥
अयं शक्रचरश्चक्री कुरुवंशाब्धिचन्द्रमाः । राज्ञोऽश्वसेनस्य सुतो महात्मा बन्धुवन्मम ॥ ३१६ ॥
सनत्कुमारः षट्खण्डं साधयित्वाऽद्य भारतम् । स्वपुरं प्रविशत्येषोऽभिषेकोऽस्य विधीयताम् ॥ ३१७ ॥
हारं च शशिमालां चातपत्रं चामरे अपि । मुकुटं कुण्डलयुगं देवदूष्यद्वयीमपि ॥ ३१८ ॥
सिंहासनं पादुके च पादपीठं च भासुरम् । सद्यः सनत्कुमारार्थं कुबेरस्त्वार्पयद्धरिः ॥ ३१९ ॥
तिलोत्तमोर्वशीमेनारम्भातुम्बुरुनारदान् । अन्यानपीन्द्रस्तदभिषेकायाशु समादिशत् ॥ ३२० ॥
ततः कुबेरस्तैः सार्धमेत्य नागपुरे वरे । आख्यत् सनत्कुमाराय तमादेशं दिवस्पतेः ॥ ३२१ ॥
सनत्कुमारानुज्ञातो विचकारैकयोजनम् । माणिक्यपीठं धनदो रोहणाद्रेस्तटीमिव ॥ ३२२ ॥
तदूर्ध्वे मण्डपं दिव्यं मणिपीठं च मध्यतः । सिंहासनं तदुपरि विदधे धनदः क्षणात् ॥ ३२३ ॥
क्षीरोदात् त्रिदशैरम्भोऽथानायि धनदाज्ञया । गन्धमाल्यादि चानर्घ्यं सर्वैरपि च पार्थिवैः ॥ ३२४ ॥
सनत्कुमारं विज्ञप्य तत्र सिंहासनोत्तमे । कुबेर आसयामास शक्रप्राभृतमार्पयत् ॥ ३२५ ॥

* °रपरावृ° संवृ० ॥ † °दावग° मु० ॥ ‡ °कैः परावृ° संवृ० ॥ १ स्थगी ताम्बूलकरङ्कः । § नास्त्येतत् पद्यद्वयं 'संवृ०' 'का०' इत्येतयोरादर्शयोः ॥ † कृत्वा वर्षसहस्रेणैकातपत्रं स भा° संवृ० का० ॥ ‡ प्रावि° संवृ० ॥ २ भूतपूर्वः शक्रः शक्रचरः । "भूतपूर्वे चरट्" [७. २. ७८.] इति सूत्रसंसिद्धेः । § °क्रवर° मु० ॥ * द्वारां च संवृ० ॥ ३ हस्तिनापुरे । °रे पुरे । मु० ॥ ‡ आख्यात् मु० ॥ ४ इन्द्रस्य । § °दि वान° संवृ० ॥ ¶ विज्ञाप्य संवृ० का० ॥ * °याञ्चके श° संवृ० का० ॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

तस्थौ सनत्कुमारस्य सामन्तादिः परिच्छदः । सामानिकादिको वज्रपाणेरिव यथोचितम् ॥ ३२६ ॥
तस्याथ चक्रवर्तित्वाभिषेकं पुण्यवारिभिः । राज्याभिषेकं श्रीनाभिसूनोरिव सुरा व्यधुः ॥ ३२७ ॥
मङ्गल्यं गीतमारेभे तुम्बुरुप्रमुखैरथ । पटहादीनि वाद्यानि त्रिदशैस्ताडितानि च ॥ ३२८ ॥
रम्भोर्वशीप्रभृतिभिर्नर्तकीभिरनृत्यत । विचित्राण्यभ्यनीयन्त गन्धर्वैर्नाटकानि च ॥ ३२९ ॥
सनत्कुमारं त्रिदशा अभिषिच्यैवमुच्चकैः । वस्त्राङ्गरागनेपथ्यमाल्यैर्दिव्यैरयोजयत् ॥ ३३० ॥
गजरत्नं गन्धवरमध्यारोह्य न्यवीविशत् । सनत्कुमारं मुदितः कुबेरो हस्तिनापुरे ॥ ३३१ ॥
स्वपुरीवद् धनापूर्णं नगरं हस्तिनापुरम् । कृत्वा कुबेरोऽथ ययौ विसृष्टश्चक्रवर्तिना ॥ ३३२ ॥
राजभिर्बद्धमुकुटैः सामन्तैरपरैरपि । तस्याभिषेको विदधे स्वसंपद्वल्लिसारणिः ॥ ३३३ ॥
अभिषेकोत्सवात् तस्याभूत् पुरं हस्तिनापुरम् । द्वादशाब्दीं दण्डशुल्कभटवेशादिवर्जितम् ॥ ३३४ ॥
स चक्री पालयामास पितेव विधिवत् प्रजाः । महाऋद्धिः शक्र इव करादिभिरपीडयन् ॥ ३३५ ॥
न समोऽस्य प्रतापेन यथा कश्चिदजायत । यथैवाप्रतिरूपेण रूपेणापि जगत्त्रये ॥ ३३६ ॥

तदानीं च सुधर्मायां रत्नसिंहासनस्थितः । शक्रः सौदामनीं नाम नाटकं नाटयन्नभूत् ॥ ३३७ ॥
अनवद्येन रूपेण सर्वरूपाभिभाविना । विस्मापयन् दिविषदस्तत्पर्षदि निषेदुषः ॥ ३३८ ॥
देहप्रभाभिस्तिरयंस्तेजांस्यखिलनाकिनाम् । ऐशानकल्पादभ्यागात् संगमस्तत्र चामरः ॥ ३३९ ॥
॥ युग्मम् ॥
गतेऽथ तस्मिन् पप्रच्छुः शक्रमेवं दिवौकसः । अस्य लोकोत्तरं तेजो रूपं चानुपमं कथम् ? ॥ ३४० ॥
शक्रोऽप्यशंसदेतेन प्राग्जन्मनि कृतं तपः । आचामाम्लवर्धमानं तेनेमे रूपतेजसी ॥ ३४१ ॥
किमन्योऽपीदृशः कोऽपि विद्यतेऽत्र जगत्त्रये । इति भूयोऽमरैः पृष्टः सौधर्मेन्द्रोऽब्रवीदिदम् ॥ ३४२ ॥
राज्ञः सनत्कुमारस्य कुरुवंशशिरोमणेः । यद्रूपं न तदन्यत्र देवेषु मनुजेषु च ॥ ३४३ ॥
इति प्रशंसां रूपस्याश्रद्दधानावुभौ सुरौ । विजयो वैजयन्तश्च पृथिव्यामवतेरतुः ॥ ३४४ ॥
ततस्तौ विप्ररूपेण रूपान्वेषणहेतवे । प्रासादद्वारि नृपतेस्तस्थतुर्द्वाःस्थसन्निधौ ॥ ३४५ ॥
आसीत् सनत्कुमारोऽपि तदा प्रारब्धमज्जनः । मुक्तनिःशेषनेपथ्यः सर्वाङ्गाभ्यङ्गमुद्वहन् ॥ ३४६ ॥
द्वारस्थौ द्वारपालेन द्विजाती तौ निवेदितौ । न्यायवर्ती चक्रवर्ती तदानीमप्यवीविशत् ॥ ३४७ ॥
सनत्कुमारमालोक्य विस्मयस्मेरमानसौ । धूनयामासतुर्मौलिं चिन्तयामासतुश्च तौ ॥ ३४८ ॥
ललाटपट्टः पर्यस्ताष्टमीरजनिजानिकः । नेत्रे कर्णान्तविश्रान्ते जितनीलोत्पलत्विषी ॥ ३४९ ॥
दन्तच्छदौ पराभूतपक्वबिम्बफलच्छवी । निरस्तशुक्तिकौ कर्णौ कण्ठोऽयं पाञ्चजन्यजित् ॥ ३५० ॥
करिराजकराकारतिरस्कारकरौ भुजौ । स्वर्णशैलशिलालक्ष्मीविलुण्टाकमुरस्थलम् ॥ ३५१ ॥
मध्यभागो मृगारातिकिशोरोदरसोदरः । किमन्यदस्य सर्वाङ्गलक्ष्मीर्वाचां न गोचरा ॥ ३५२ ॥
अहो! कोऽप्यस्य लावण्यसरित्पूरो निरर्गलः । येनाभ्यङ्गं न जानीमो ज्योत्स्नयोडुप्रभामिव ॥ ३५३ ॥
यथेन्द्रो वर्णयामास तथेदं भाति नान्यथा । मिथ्या न खलु भाषन्ते महात्मानः कदाचन ॥ ३५४ ॥
किंनिमित्तमिहायातौ भवन्तौ द्विजसत्तमौ ? । इत्थं सनत्कुमारेण पृष्टौ तावेवमूचतुः ॥ ३५५ ॥
लोकोत्तरचमत्कारकारकं सचराचरे । भुवने भवतो रूपं नरशार्दूल! गीयते ॥ ३५६ ॥
दूरतोऽपि तदाकर्ण्य तरङ्गितकुतूहलौ । विलोकयितुमायातावावामवनिवासव! ॥ ३५७ ॥

---

१ श्रीआदीश्वरस्य । २ सर्वरूपतिरस्कारिणा । ३ निषण्णान् । ४ आच्छादयन् । * °नाम् । ईशा° का० ॥ † नास्त्येतत् पद्यं 'संघ०' 'का०' इत्यादर्शयोः ॥ ‡ °पु चा ॥ का० ॥ ५ प्रारब्धं मज्जनं स्नानं येन । ६ द्विजौ । ७ रजनिजानिश्चन्द्रः । ¶ °बिम्बीफ° का० ॥ ८ विलुण्टाकश्चौरः । ९ तारकप्रभाम् । § लशोभनम् संघ० ॥ १० अवनिपते ! ।

वर्ण्यमानं यथा लोके शुश्रुवेऽस्माभिरद्भुतम् । रूपं नृप! ततोऽप्येतत् सविशेषं निरीक्ष्यते ॥ ३५८ ॥
ऊचे सनत्कुमारोऽपि स्मितविच्छुरिताधरः । इयं हि कियती कान्तिरङ्गेऽभ्यङ्गतरङ्गिते? ॥ ३५९ ॥
इतो भूत्वा प्रतीक्षेथां क्षणमात्रं द्विजोत्तमौ! । यावन्निर्वर्त्यतेऽस्माभिरेष मज्जनकक्षणः ॥ ३६० ॥
विचित्ररचनाकल्यं भूरिभूषणभूषितम् । रूपं पुनर्निरीक्षेथां सरत्नमिव काञ्चनम् ॥ ३६१ ॥
ततोऽवनिपतिः स्नात्वा कल्पितोकल्पभूषणः । साडम्बरः सदोऽध्यास्ताम्बरैररत्नमिवाम्बरम् ॥ ३६२ ॥
अनुज्ञातौ ततो विप्रौ पुरोभूय महीपतेः । निर्दध्यतुश्च तद्रूपं विषण्णौ दध्यतुश्च तौ ॥ ३६३ ॥
क्व तद् रूपं क्व सा कान्तिः क्व तल्लावण्यमप्यगात् । क्षणेनाप्यस्य मर्त्यानां क्षणिकं सर्वमेव हि ॥ ३६४ ॥
नृपः प्रोवाच तौ कस्माद् दृष्ट्वा मां मुदितौ पुरा? । कस्मादकस्मादधुना विषादमलिनाननौ? ॥ ३६५ ॥
ततस्तावूचतुरिदं सुधामधुरया गिरा । महाभाग! सुरावावां सौधर्मस्वर्गवासिनौ ॥ ३६६ ॥
मध्येसुरसभं शक्रश्चक्रे त्वद्रूपवर्णनम् । अश्रद्दधानौ तद् द्रष्टुं मर्त्यमूर्त्याऽऽगताविह ॥ ३६७ ॥
शक्रेण वर्णितं यादृक् तादृगेव पुरेक्षितम् । रूपं नृप! तवेदानीमन्यादृशमजायत ॥ ३६८ ॥
अधुना व्याधिभिरयं कान्तिसर्वस्वतस्करैः । देहः समन्तादाक्रान्तो निःश्वासैरिव दर्पणः ॥ ३६९ ॥
यथार्थमभिधायेति द्राक् तिरोहितयोस्तयोः । विच्छायं स्वं नृपोऽपश्यद्धिमग्रस्तमिव द्रुमम् ॥ ३७० ॥
सोऽचिन्तयच्च धिगिदं सदा गदपदं वपुः । मुधैव मुग्धाः कुर्वन्ति तन्मूर्च्छां तुच्छबुद्धयः ॥ ३७१ ॥
शरीरमन्तरुत्पन्नैर्व्याधिभिर्विविधैरिदम् । दीर्यते दारुणैर्दारु दारुकीटगणैरिव ॥ ३७२ ॥
बहिः कथञ्चिद् यद्येतत् प्ररोच्येत तथापि हि । नैयग्रोधं फलमिव मध्ये कृमिकुलाकुलम् ॥ ३७३ ॥
रुजा लुम्पति कायस्य तत्कालं रूपसंपदम् । महासरोवरस्येव वारि सेवालवल्लरी ॥ ३७४ ॥
शरीरं श्रथते नाऽऽशा रूपं याति न पापधीः । जरा स्फुरति न ज्ञानं धिक् स्वरूपं शरीरिणाम् ॥ ३७५ ॥
रूपं लवणिमा कान्तिः शरीरं द्रविणान्यपि । संसारे तरलं सर्वं कुशाग्रजलबिन्दुवत् ॥ ३७६ ॥
अद्यश्वीनविनाशस्य शरीरस्य शरीरिणाम् । सकामनिर्जरासारं तप एव महत्फलम् ॥ ३७७ ॥
इति संजातवैराग्यभावनः पृथिवीपतिः । प्रव्रज्यां स्वयमादित्सुः सुतं राज्ये न्यवीविशत् ॥ ३७८ ॥
गत्वोद्याने सविनयं विनयन्धरसूरितः । सर्वसावद्यविरतिप्रधानं सोऽग्रहीत् तपः ॥ ३७९ ॥
महाव्रतधरस्यास्य दधानस्योत्तरान् गुणान् । ग्रामाद् ग्रामं विहरतः समतैकाग्रचेतसः ॥ ३८० ॥
गाढानुरागबन्धेन सर्वं प्रकृतिमण्डलम् । पृष्ठतोऽगात् करिकुलं महायूथपतेरिव ॥ ३८१ ॥ युग्मम् ॥
निष्कषायमुदासीनं निर्ममं निष्परिग्रहम् । तं पर्युपास्य षण्मासान् कथञ्चित् तन्न्यवर्तत ॥ ३८२ ॥
कृतषष्ठः पारणाय प्रविष्टो गोचरेऽन्यदा । लेभे चीनककूरं स सांजातकमभुङ्क्त च ॥ ३८३ ॥
भूयोऽपि षष्ठभक्तान्ते तथैव कृतपारणात् । व्याधयोऽस्य वव्रृधिरे संपूर्णादिव दोहदात् ॥ ३८४ ॥
कच्छूशोषज्वरश्वासारुचिकुक्ष्यक्षिवेदनाः । सप्ताधिसेहे पुण्यात्मा सप्त वर्षशतानि सः ॥ ३८५ ॥
दुःसहान् सहमानस्य तस्याशेषपरीषहान् । उपेयनिरपेक्षस्य समपद्यन्त लब्धयः ॥ ३८६ ॥
कफविप्रुड्जल्लमलविट्सामर्षास्तथा परम् । सर्वमप्यौषधिरिति नामतः सप्त लब्धयः ॥ ३८७ ॥
अत्रान्तरे सुरपतिः समुद्दिश्य दिवौकसः । हृदि जातचमत्कारश्चकारेत्यस्य वर्णनम् ॥ ३८८ ॥

---

१ विचित्ररचनया सज्जीभूतम् । २ कल्पितानि नेपथ्यानि च भूषणानि च यस्य । ३ सभाम् । ४ सूर्यः । ५ अवलोकयाञ्चक्रतुः । ६ चिन्तयामासतुः । ७ रोगस्थानम् । ८ काष्ठकीटसमूहैः । ९ अभिप्रेतं भवेत् । * °प्रोधफ° संद्व० ॥ १० अद्य वा श्वो वा अद्यश्वीनः । ११ समतयैकाग्रं चेतो यस्य तस्य । † नास्त्येतत् पदं 'का०' आदर्शे । ‡ °चर मुनिः के° संद्व० का० ॥ १२ अजायातक्रेण सहितम् । § °रूपाय° मु० ॥ १३ उपेयम् फलम् । ¶ °ष्ठामासीस्त° संद्व० ॥ † °पैनाम् का० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्रवर्तिश्रियं त्यक्त्वा प्रज्वलत्तृणपूलवत् । अहो! सनत्कुमारोऽयं तप्यते दुस्तपं तपः ॥ ३८९ ॥
तपोमाहात्म्यलब्धासु सर्वास्वपि हि लब्धिषु । शरीरनिरपेक्षोऽयं स्वरोगान्न चिकित्सति ॥ ३९० ॥
अश्रद्दधानौ तद्वाक्यं वैद्यरूपधरौ सुरौ । विजयो वैजयन्तश्च तत्समीपमुपेयतुः ॥ ३९१ ॥
ऊचतुश्च महाभाग! किं रोगैः परिताम्यसि? । वैद्यावावां चिकित्सावो विश्वं स्वैरेव भेषजैः ॥ ३९२ ॥
यदि त्वमनुजानासि रोगग्रस्तशरीरकः । तदह्वाय निगृह्णीवो रोगानुपचितांस्तव ॥ ३९३ ॥
ततः सनत्कुमारोऽपि प्रत्यूचे भोश्चिकित्सकौ! । द्विविधा देहिनां रोगा द्रव्यतो भावतोऽपि च ॥ ३९४ ॥
क्रोध-मान-माया-लोभा भावरोगाः शरीरिणाम् । जन्मान्तरसहस्रानुगामिनोऽत्यन्तदुःखदाः ॥ ३९५ ॥
ताँश्चिकित्सितुमीशौ चेद् युवां तर्हि चिकित्सतम् । अथो चिकित्सथो द्रव्यरोगाँस्तद् बत! पश्यतम् ॥ ३९६ ॥
ततोऽङ्गुलिं गलत्पामां शीर्णां स्वकफविप्रुषा । लिप्त्वा शुल्वं रसेनेव द्राक् सुवर्णीचकार सः ॥ ३९७ ॥
ततस्तामङ्गुलीं स्वर्णशलाकामिव भास्वतीम् । आलोक्य पादयोस्तस्य पेततुः प्रोचतुश्च तौ ॥ ३९८ ॥
निरूपयिषू त्वद्रूपं यौ त्वामायातपूर्विणौ । तावेव त्रिदशावावां संप्रत्यपि समागतौ ॥ ३९९ ॥
सिद्धलब्धिरपि व्याधिबाधां सोढा तपस्यति । सनत्कुमारो भगवानितीन्द्रस्त्वामवर्णयत् ॥ ४०० ॥
आवाभ्यां तदिहागत्य प्रत्यक्षेण परीक्षितम् । इत्युदित्वा च नत्वा च त्रिदशौ तौ तिरोहितौ ॥ ४०१ ॥
कौमारे वर्षलक्षार्धं मण्डलित्वे तदेव हि । दशवर्षसहस्राणि ककुभामुपसाधने ॥ ४०२ ॥
चक्रित्वे नवतिवर्षसहस्राणि व्रते पुनः । वर्षलक्षमिति त्र्यब्दलक्षायुस्तुर्यचक्रिणः ॥ ४०३ ॥

ज्ञातेऽवसानसमयेऽनशनं प्रपद्य लक्षत्रयेण शरदां परिपूरितायुः ।
सुध्यानपञ्चपरमेष्ठिसनत्कुमारः कल्पे सुरः समजनिष्ट सनत्कुमारे ॥ ४०४ ॥
पञ्चार्हन्तः सीरिणः पञ्च पञ्चोपेन्द्राः पञ्चैतद्विषश्चक्रिणौ द्वौ ।
यत्रोक्ता द्वाविंशतिः सूत्ररत्नाम्भोधेस्तुर्यं पर्व तद् वः श्रियेऽस्तु ॥ ४०५ ॥
सूत्रात् किञ्चिदुदीरितं कथाभ्यः किञ्चिद् योगपटाच्च किञ्चिदत्र ।
तेषु स्याद् यदि किञ्चनापि मिथ्या मिथ्यादुष्कृतमस्तु तत्र सन्तः! ॥ ४०६ ॥

इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये
चतुर्थे पर्वणि सनत्कुमारचरितवर्णनो नाम
सप्तमः सर्गः संपूर्णः ।

॥ समाप्तं चेदं चतुर्थं पर्व ॥

१ आज्ञापयसि । २ वृद्धान् । ‡ °नोऽनन्त° का० ॥ ३ समर्थौ । * °रसवो द्र° संवृ० ॥ ४ स्वश्लेष्मबिन्दुना । ५ ताम्रम् । † निरुरूपयिषू रूपं संवृ० का० ॥ ६ दिशां जये । ७ बलभद्राः । ८ वासुदेवाः । ९ प्रतिवासुदेवाः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते महाकाव्ये
द्वितीय-तृतीय-चतुर्थ पर्वात्मके द्वितीये विभागे

प्रथमं परिशिष्टम् ॥

श्लोकानामकारादिक्रमेणानुक्रमणिका ॥

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अ		
अकरोदग्रतस्तस्य	२३	२१४
अकरोदित्थमन्येन्द्र	१९६	२६२
अकस्मादागतं दृष्ट्वा	२८७	३२३
अकस्मादुन्मदेनाथ	६०	२५७
अकाण्डेऽप्यप्रसादोऽयं	१८१	१६२
अकामनिर्जरारूपात्	२०१	३६२
अकाल इव कालाग्निः	१७४	२३१
अकाले याऽऽगमेऽधीती	२९२	२४०
अकाले कस्य कालेन	९८	२१७
अकुलीनानपि प्रेक्ष्य	२६१	३८३
अकोपनोऽरीनाशिष	७	२८४
अक्षताङ्गस्तदभ्यर्णं	२५१	३९७
अक्षतैरिव मुक्ताभिः	५५५	१८३
अक्ष्णोः सुधावर्तिरिव	१६६	३१८
अखण्डदण्डशक्तिश्च	१३३	२३६
अखण्डप्रसरैर्धारा	१३४	३९३
अखण्डितामिर्धाराभिः	२२९	२२१
अगतानपि नस्तत्र	३२	२३३
अगोपिते रत्ननिधा	३४८	२६७
अग्निः स्फुलिङ्गमात्रोऽपि	१८१	३७०
अग्रणीर्गुणिनां तैस्तैः	१९	३६४
अग्रणीः सर्वदोषाणां	५४६	२४८
अग्रसैन्यस्य भङ्गेना	६०४	३३३
अग्रानीकैस्तयोर्युद्धे	६०१	३३३
अग्रेऽपि मन्थरं यान्त्यौ	१२१	१७०
अग्रे पृष्ठे पार्श्वयोश्चा	२७९	२६४
अग्रे सोपानपङ्क्तीना	२८९	१७५
अङ्कादङ्कं कौतुकेन	१५	१८५
अङ्कादङ्के नरेन्द्राणां	७९	३९१
अङ्कादङ्के संचरन्तीः	१८३	३१९
अङ्गणीभूतकङ्केल्लि	२०९	३५०
अङ्गरागस्तवाङ्गे यैः	३९	३६५
अङ्गरागैर्नवैश्चर्चा	३९	३०२
अङ्गस्यावसन्नत्वं	१९४	३६२
अङ्गान्यनिर्जितैः सर्व	१३८	१७९
अङ्गीकृत्यात्मनः पापं	२४१	३८२
अङ्गुल्यामूर्मिकीकृत्य	१८३	३७०
अङ्गे कृताङ्गरागो सा	४५९	२४५
अङ्गेषु स्वामिनः स्वर्ण	४४३	१८०
अङ्गैः षोडशभिर्न्यूनं	१९५	२९०
अङ्गोच्छवासासकृत् त्रुट्यत्	२४८	३५२
अङ्गोपाङ्गान्यावनानि	११९	३०५
अङ्गोपाङ्ग-प्रकीर्णादि	४४६	१९८
अचण्डवीरव्रतिना	३४४	२६६
अचलस्य तु जातस्य	१८०	३१९
अच्छभल्लवदत्यन्त	३१	३९०
अच्युतप्रभृतयोऽथ	१२६	२९५
अच्युतः पारिजातादि	१८९	२६१
अच्युता भक्तितस्तत्रा	३६	३०२
अच्युतेन्द्राज्ञया कुम्भां	१८३	२६१
अच्युतेन्द्रोऽप्याभियोग्यैः	२७२	२६४
अजनिष्ट क्षणेनापि	१७०	३८०
अजायत रजोवृष्टिः	६७	२२८
अजायन्त च तत्काले	७०	२२८
अजितस्वामिनः सैन्ये	११५	१८८
अजितस्वामिनिर्वाणात्	४०५	२६८
अजितस्वामिनेऽन्येषां	५४	१८६
अजितस्वामिनो भ्राता	६८	२३४
अजितस्वामिनो भ्रातुः	१४७	२३०
अजितस्वामिबिंबे च	१०८	२२९
अजितोऽपीन्द्रियै रेमे	७६	१८७
अजिह्माचित्तवृत्तीनां	३०२	३८९
अजिह्मविक्रमस्तस्यां	१९४	३५०
अजीवाः स्युधर्माधर्म	२६३	३७३
अज्ञानाद् वञ्चितोऽस्माभिः	१५१	१६२
अज्ञानामपि बालानां	३०५	३८५
अञ्चलांश्चालयामासुः	२२७	१९२
अञ्जनाचलचूलाभिः	७२	१५९
अञ्जलिं रचयित्वोच्चैः	७७	२१६
अट्टशोभापताकाभिः	३१९	२२४
अट्टमारुरुहुः केचित्	२२५	१९१
अतस्त्वविदुरो जन्तुः	२२२	३७१
अतः परमहो ! तत्र	४४	२३३
अतः परं वयं नाथ	७५८	३३८
अतर्कितद्रोहिभिस्तैः	११३	३५९
अतिगूढं वद्रुधाते	१२२	१७०
अतिचण्डत्वमालम्ब्य	२२१	१६४
अतिपाण्डुकम्बलायां	३२	३६५
अतिपाण्डुकम्बलायां	३३	३०८
अतिपाण्डुकम्बलायां	३५	२९७
अतिपाण्डुकम्बलायां	१७१	२८१
अतिपाण्डुकम्बलायां	४८३	१८१
अतिपीयूषगण्डूषैः	१३४	२१८
अतिशेषे यथाशक्त्या	३५०	३२५
अतुच्छपुच्छदण्डेन	३८४	३२६
अत्यच्छै रजतमयैः	४६५	१८१
अत्यन्तदक्षिणो लोक	२४०	१९२
अत्यन्तशून्यमनसः	१५८	२३६
अत्यागाच्छैशवं स्वामी	५०	३७६
अत्युग्रं स तपस्तेपे	९०	३६७
अत्युदारां वसुधारा	५१६	१८२
अत्र वा दिवि वा तिष्ठं	४४	३०८
अत्र सर्वोपरि स्वातिः	५३५	२०१
अत्र ह्यस्मद्वंशकन्दः	१५१	२३०
अत्राद्यावुत्तरश्रेणि	४४२	३२८
अत्रान्तरे च प्रथमा	८२३	२०९
अत्रान्तरे च सामन्ता	१५६	२३६
अत्रान्तरे जनैः सभ्यैः	३९७	३२६
अत्रान्तरे नभस्युच्चैः	७५३	३३८
अत्रान्तरे समुत्तस्था	५१	२५७
अत्रान्तरे सुरपतिः	३८८	४०१
अत्रार्थे साक्षिणः सर्वे	५०६	२४७
अत्रैव जम्बूद्वीपे च	७४	३५८
अत्रैव जम्बूद्वीपेऽस्ति	३	२७५
अथ ऊर्ध्वं रुचकेभ्यः	३०	३६५
अथ कृत्वा समुद्घातं	१६८	१७२
अथ क्रुद्धो हयग्रीवः	६८५	३३६
अथ गन्धोदकैः शुध्दैः	१०९	२२९
अथ चक्रधरादेशात्	२६९	२२३
अथ च्यवनचिह्नानि	१५५	२८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अथ जातस्य बालत्वे	४८	१५८
अथ तच्चक्रमर्चित्वा	६	२१४
अथ तत् तीर्थकृज्जन्म	२६३	१७५
अथ तत्रैव तत्काले	४३०	२४५
अथ तत्स्वामिनो वेश्म	१६६	२६१
अथ तन्मेदिनीभर्तुः	१५४	२१८
अथ ते पितरं नत्वा	६२	२२७
अथ ते मन्त्रिणोऽप्यूचुः	९६	२२८
अथ त्रिपृष्ठः स ज्येष्ठः	५८९	३३२
अथ पस्पर्श सेनानीः	१६३	२१९
अथ पूर्वरुचकाद्रि	१९८	१७३
अथ पूर्णो वराष्टश्च्वा	१७६	२६१
अथ पूर्वसहस्राणां	५२	३०८
अथ पौषस्य शुक्लैका	३४४	१९५
अथ प्रदक्षिणीकृत्य	२६७	१९३
अथ बोधयितुं भूपं	२१५	२३८
अथ भूमिपतिः प्रीतः	१९८	१६३
अथ भ्रष्टानि नष्टानि	१८०	१९०
अथ मागधतीर्थाधि	८२	२१६
अथ मार्गशीर्षकृष्ण	३२	३०२
अथ म्लानमुखाः सर्वे	६१२	३३३
अथ रक्षःपतिर्भीमो	२७	२२६
अथ रत्नप्रभाभूमेः	५०४	२००
अथ रत्नमयं वप्रं	३२५	२६६
अथ राज्ञः पुरोभूय	३४७	२४२
अथ लोभकषायस्य	३३८	१९५
अथ वल्गुः सुवल्गुश्च	६०४	२०३
अथ वार्षिकदानान्ते	१८९	१९०
अथवा सर्वमप्येत	८५७	२१०
अथ विद्याधराः सर्वे	५२४	३३०
अथ विष्णोः पुमानूचे	१०४	३७८
अथ वैतालिकोऽसि त्वं ?	२४३	२३९
अथ शक्रः समागत्य	६३	३१५
अथ शक्रो नमस्कृत्य	२९२	२६५
अथ शक्रो नमस्कृत्य	३४१	२६६
अथ शार्ङ्गधरोऽप्येव	१८७	३७०
अथ सर्वाभिसारेण	१७१	३४९
अथ संसारसंवासाद्	५४	३०८
अथ साकेतनगरो	१	२२६
अथ सान्तःपुरः सस्त्री	३५४	२२४
अथ सा विललापैवं	४५१	२४५
अथ सिक्तः पयस्कुम्भैः	१३५	३७९

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अथ सौधर्मकल्पेन्द्रः	४८२	८१
अथ सौधर्मकल्पेन्द्रः	७१	२८
अथ सौधर्मकल्पेन्द्रः	८३	२९३
अथ स्वयम्भूरित्यूचे	१२८	३६०
अथ स्वामिनमीशानो	३८	३०२
अथ हारितवान् राज्यं	७९	३५८
अथाऽग्रहीद् विन्ध्यशक्तिः	१८३	३५०
अथाऽङ्गं स्वामिनः शक्रो	६८९	२५२
अथाऽचलकनिष्ठस्तं	६६६	३३५
अथाऽचलोऽपि शोकेन	८९०	३४२
अथाऽच्युतप्रभृतयः	३६	२९७
अथाऽच्युतप्रभृतयः	३९	३४५
अथाऽच्युतप्रभृतयः	६८	३१५
अथाऽच्युतप्रभृतयः	७१	३१५
अथाऽच्युतप्रभृतिभिः	३८	३७६
अथाऽऽदौ सुश्रुतोऽवादी	४३६	३२७
अथाऽधोलोकतो भोग	१३७	२६०
अथाऽधोलोकवास्तव्याः	१६२	१७२
अथाऽधोलोकवास्तव्या	४२	३१४
अथाऽऽनीयत पानीयं	१६४	१९०
अथाऽऽपतुर्यौ वनं तौ	५९	१८६
अथाब्दलक्षाण्यतिवा	९०८	३४३
अथाऽभयकरां नामा	२०५	२८१
अथाऽऽभरणसम्भारं	२४९	१६४
अथाऽभिनन्दनजगत्	४२७	३२७
अथाऽऽभियोगिका देवा	३५२	२२४
अथाऽऽभियोगिकान् देवान्	२०९	२६२
अथाऽभियोगैरानाट्य	१५७	२६०
अथाऽऽयोजनगामिन्या	४३६	१९८
अथाऽऽरुरोह भगवान्	२७४	२६४
अथार्यपुत्रमन्वेयुः	२८६	३९८
अथावोचद् द्विजन्माऽपि	१४६	२३६
अथाऽस्ति सर्वमप्येतत्	९१८	२१२
अथेत्थं कथयामास	२९४	३२३
अथेत्थमजितस्वामी	१५६	१८९
अथेन्द्र-भूपैर्विहिता	५९	२८६
अथेयेष प्रभुर्दीक्षां	१०२	२७२
अथेशमैशानपतेः	३७	३०२
अथेशानपतेरङ्के	७२	३१५
अथेषुमिषुधेर्मध्याद्	९४	२१६
अथैकः सचिवोऽवोचद्	१२१	३५९
अथैवं मन्त्रिणोऽप्यूचुः	१६३	१६२

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अथैवं सचिवोऽवोचत्	२२४	३५१
अथोचे जह्नुना नाथ	१४८	२३०
अथोचेऽजितनाथस्तं	८९	१८७
अथोचे पृथिवीशोऽपि	३४	२७६
अथोचे भगवानेवं	९४	२७८
अथोचे नारदोऽप्येवं	१२८	३६८
अथोत्तस्थौ जगन्नाथो	१५६	२७४
अथोत्थाय गणभृतां	८१८	२०९
अथोत्थाय नमस्कृत्य	६३८	२५१
अथोत्थायोत्तरद्वारा	३८१	२६८
अथोत्पपात स पुमान्	४१३	२४४
अथोदग्रोष्ठपरुषं	१४९	३६९
अथोपचक्रमेऽनीक	६००	३३३
अथोपशान्तमोहः स्यात्	२६१	३७३
अथो भगीरथोऽप्यम्भो	५६३	२४९
अथो मनोहरां नाम	६२	२९३
अथो मृगयतेऽस्मत्तो	२३९	३५१
अथोर्ध्वरुचकसंस्था	१८८	१७२
अथोर्ध्वलोकतो मेघ	१४१	२६०
अथोल्लसत्स्मितज्योत्स्ना	४००	२४४
अथोवाचाऽजितस्वामी	८३	१८७
अदण्ड-शुक्लामभट	३६८	३२५
अदर्शयत् पादगतिं	५१	१८६
अदर्शयित्वा स्वगुणं	२६७	२४०
अदित्सतोऽपि सर्वस्वं	३२६	३५४
अदीना अपि दैन्येन	१६०	२८९
अदृष्टपूर्ववद् दूरात्	२४५	१६४
अदेवे देवबुद्धिर्या	८९१	२११
अद्य चन्दनगोधानां	१३	२३२
अद्य नैमित्तिकीभूय	३७२	२४३
अद्यश्वीनविनाशस्य	३७७	४०१
अद्य श्वो वा भृशममुं	७	३०७
अद्य स्वयमधिष्ठाय	७८	३१६
अद्यापि च कुटुम्बाय	७४	२५८
अद्यापि हि कियद् भुक्त	१२२	१८८
अद्यापि हि युवां बालौ	१४८	३७८
अद्वैतेऽपि स ऐश्वर्ये	११७	१८८
अधर्मो धर्मबुद्ध्या च	८५	३०९
अधारयन् मनसि स	५	३४४
अधिज्यीकृत्य तरसा	१७२	३६९
अधिप्रभासतीर्थेश	११८	२१७
अधिरुह्य विमानानि	४१५	१७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अधिरोप्य धनुर्मूर्ध्नि	९३	२१६
अधिष्ठितः पुरोदेशं	८०३	३४०
अधिस्तनतटासुक्तैः	१३५	१७१
अधिस्वामि ततो जग्मुः	३७३	१७८
अधुना नृप–सेनानी	२७३	३२२
अधुनाऽपि युगान्तोऽयम्	५३९	२४८
अधुना प्लावयत्युच्चैः	३५०	२४२
अधुना व्याधिभिरियं	३६९	४०१
अधुनैव निवापादि	४९८	२४७
अधोमुखाः कण्टकाःस्युः	४२३	१९८
अध्यारोहति सोपान	३५७	२४२
अध्यासीना रथान् केचिद्	७६	२२८
अनक्तस्निग्धमनस	३४३	२६६
अनन्तकर्मप्रचय	१४२	२८८
अनन्तकालप्रचित	३९६	१९७
अनन्तकायकन्दादि	३४५	३५५
अनन्तक्लेशकल्लोल	९०	२९९
अनन्तज्ञान भगवन् !	८८	२९३
अनन्तदर्शन–ज्ञान	९०	२९४
अनन्तदर्शन–ज्ञान	८६०	३४१
अनन्तदुःखरूपाणि	९५	१६०
अनन्तदुःखसंभार	७९	३०३
अनन्तवीर्यस्त्रिजगत्	३३९	१९५
अनन्तसैन्यगहनं	१९९	२२०
अनन्तस्वामिनिर्वाणाद्	३६२	३८६
अनन्तान् देहिनो मुक्तिं	४६	३७६
अनन्ता भोजनाच्छाद	३२८	३८५
अनन्यदृष्टिमनसौ	१६२	३९४
अनर्घ्यरत्नरचितां	१३७	१७१
अनर्घ्यस्वल्पस्त्रचिरा	९०	१६९
अनवद्येन रूपेण	३३८	४००
अनवद्यैर्मूलगुणैः	८	३८७
अनशनमौनोदर्यं	८६	२७७
अनशनमौनोदर्यं	८३२	३४१
अनाथानामेकनाथः	२	३८७
अनाद्यन्तस्य लोकस्य	४७७	१९९
अनाप्तैरिव पर्याप्तं	२२	२३२
अनार्त–रौद्रध्यानेन	१३	२५५
अनार्येणाऽमुना बालो	९२०	२१२
अनाहूतसहायस्त्वं	३४२	२६६
अनित्यं यौवनमपि	३६६	२६७
अनित्यं सर्वमप्यस्मि	३५१	२६७

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अनिलान्दोलनस्रस्त	११७	३४७
अनिवृत्तिबादराख्यं	३३७	१९५
अनिषिद्धगतिर्द्वाःस्थैः	२८६	३२३
अनीकैः पञ्चभिश्चाऽग्रे	३२२	१७६
अनुक्षितफलोदग्रा	३४६	२६७
अनुकम्प्योऽसि बालोऽसि	१८०	३८१
अनुग्राह्या मन्त्रिणोऽमी	१२६	१८८
अनुचक्रं ततश्चक्री	१२७	२१७
अनुजज्ञे च तांश्चक्री	३५१	२२४
अनुज्ञातस्स्वरसखाऽथा	२५६	३९७
अनुज्ञातौ ततो विप्रौ	३६३	४०१
अनुज्ञावचनैस्तेषां	१७१	१६२
अनुत्तरविमानेभ्यः	३३	१६८
अनुत्तरविमानेषु	३०६	१६६
अनुत्तरविमानेषु	७८१	२०८
अनुनीय न्यधाद् राज्ये	९९	२७२
अनुभावेन कालस्य	१८७	१९०
अनुमन्यस्व गच्छामि	४११	२४४
अनुयोग–गणानुज्ञे	१५३	२७४
अनुरागे स आरोप्य	१९९	३२०
अनुरूपवरार्थेऽस्याः	४६२	३२८
अनुस्वामि दधावेऽथ	३४६	१७७
अनृतायां प्रतिज्ञायां	३३३	२४२
अनेकनृप–सामन्त	२३७	१९२
अनेकवल्लीवलय	१२०	१६१
अनेन तपसोग्रेण	१५७	३१८
अनोकहात् पुष्पमिव	५६४	३३२
अन्तः कृत्वा मणिस्तूपं	३५९	१९६
अन्तःपुरप्रधाने च	१९५	३५०
अन्तर्बाह्यलावणक	६३९	२०४
अन्तर्विरचित्तालोकः	३३	३८८
अन्तः स्पृशेद् यत्र यत्रौ	२७५	३८४
अन्तरङ्गानरीन् जिष्णून्	८८	१६०
अन्तरङ्गान् जयेः शत्रून्	२२४	१६४
अन्तरन्तःपुरं क्षिप्त्वा	१७	३८९
अन्तरायक्षयादेव	२५९	३८३
अन्तरिक्षस्थितं यक्ष	४	२१४
अन्तरे पुष्करिणीनां	७२८	२०७
अन्तिके स्वामिनो गन्तुं	२८१	१७५
अन्तिमां प्रार्थनां तेऽद्य	१२६	३७९
अन्ते च तस्य दानस्य	६०	३०९
अन्ते द्वादशयोजन्याः	११९	२१७

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अन्ते द्वितीयपौरुष्यां	३५१	३८६
अन्ते वार्षिकदानस्य	२०४	२८१
अन्धकारीकृतदिशा	२१	२५६
अन्धकारे दीपिकेव	८८५	२११
अन्धोऽस्मि बधिरो वाऽस्मि	२६६	२४०
अन्नमात्रमिव श्रीद	४०२	२४४
अन्यथा तु क्षिपन् भावी	१६१	३८०
अन्यथा हि कुमारः क्व	१०४	३९२
अन्यदा कस्यचिद् दर्प	८७	३७७
अन्यदा चक्रिणश्चक्रं	२४६	२२१
अन्यदा तु विभावर्यां	८७१	३४२
अन्यदा दोहदान् देवी	५०	२७६
अन्यदा द्वादशतपः	३२१	१९४
अन्यदा राज्यमुत्सृज्य	८	३०७
अन्यस्यापि प्रदत्तस्य	५०५	३३०
अन्यस्यापि व्रतादानं	८४	१८७
अन्या अपि कलाः सर्वाः	८३	३९१
अन्यायं स निजस्यापि	२७	१५८
अन्येद्युरेकवास्तव्य	५९४	२५०
अन्येऽपि देवा देव्यश्च	३१५	१७६
अन्येऽपि द्वीपि–शार्दूल	६१०	३३३
अन्येष्यजितनाथाद्याः	९७	३४७
अन्येऽप्यासनकम्पेन	१९७	१९१
अन्येषामपि जैनेन्द्र	३४७	३५५
अन्येषामप्युपायानां	३६	२७६
अन्येष्वपि प्रमादस्य	५०	३८८
अन्यैरपि धृतच्छत्र	६२	३०९
अन्यैरपि मदस्थानैः	११९	१८८
अन्यैश्चमर–बालिवत्	४०२	१७९
अन्यैस्तेनार्जितं वित्तं	१३३	१८९
अन्योन्य कण्ठलग्नौ तौ	१४१	३७९
अन्यान्यं चेटवर्गाणां	५४१	१८३
अन्योऽन्यं नालिकाराग	६	३८९
अन्योऽन्यं वैसदृश्ये हि	१५८	२८०
अन्योन्यसाभ्यकुपितौ	१७६	३७०
अन्वयुङ्क्त ततो राजा	२८०	२४०
अन्वीयमाना न्यग्रोधं	४६०	२४५
अन्वीयमानां परितो	२९४	१९४
अन्वीयमानो भगवान्	६३	२९३
अन्वीयमाना हलिना	१७१	३८०
अपकारिजने कोपो	२४०	३८२
अपजहुरशेषं तत्	३२१	३२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अपटीभिरिवौकांसि	९९	३९२
अपत्यासंभवे स्त्रीषु	३३७	३५४
अपनीतेन्धनभरः	३४२	१९५
अपरश्च पितुः शालः	५२२	३३०
अपराधः कृतः कोऽपि	१८२	१६२
अपराधं परस्येव	७	२५५
अपरानपरे त्विन्द्रा	६७८	२५३
अपरास्वपि दिक्ष्वेवं	६४	३९१
अपराह्णे ततोऽचालीन्	२१५	३९६
अपरेष्वपि तूर्येषु	१७२	१९०
अपरेष्वपि राष्ट्रेषु	७३	३४६
अपवादमवज्ञाय	९११	२१२
अपश्यत् तत्र चाऽनहर्य	१०	२७५
अपसर्पत तत् तूर्णं	२३३	२२१
अपाक्पश्चिममार्गेण	८४	२१६
अपाग्द्वारा प्रविश्याऽर्हत्	३३७	२६६
अपाग्द्वारैत्य भवने	३८०	१९६
अपाग्भरतवर्षार्धं	७४	३७७
अपाग्भरतवर्षार्धे	२६०	३२२
अपाग्भरतवर्षेऽस्मि	४२	३७६
अपाग्घोरसंसार	१२०	२२९
अपारे व्यसनाम्भोधौ	३१२	३५४
अपारो दुस्तरश्चायं	४८	२८५
अपासर्पन्नुपासर्पन्	२७१	३९८
अपि कान्दविकादीना	३१	२५६
अपि द्रविणलोभेन	३१८	३८५
अपि धान्याः समस्तायाः	१११	२३५
अपि नामैष पूर्येत	३२७	३८५
अपि नारकजन्तूनां	२६५	१९३
अपि पाण्डुकम्बलायां	३७	३७६
अपि प्रियसखीस्तत्र	२२	२७५
अपि बन्धुसमाजेषु	९०१	३४३
अपि वंशस्य संहर्ता	५४७	२४८
अपि श्रुताब्धिपारीणा	३०८	३८५
अपि सम्पश्यमानस्य	२८	२५६
अपौरुषेयं वचनं	९००	२१२
अप्कायतां पुनः प्राप्तः	१०५	२८७
अप्यकाण्डे काण्डपट	१९८	२२०
अप्यलीकव्यलीकेन	४४०	२४५
अप्यसौ पुष्पवृन्तेन	३	३८७
अप्यहः सकलं भ्रान्त्वा	३२	२५६
अप्यालोकनमात्रेण	८७	२२८

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अप्युद्योतो जगत्यस्या	४१	२९२
अप्येवं वज्रकास्तेऽयुः	१६२	३०६
अप्सराः किं व्यन्तरी किं	३१४	२२३
अप्रमत्तसंयताख्य	३३५	१७५
अप्राप्ते देवभावेऽपि	५२	२९७
अबन्धूनामसौ बन्धुः	३१७	३५४
अबाधमान इतरान्	१११	२५९
अबाधितौ मदस्थानैः	४८	२७०
अबुध्यन्ताऽवधिज्ञानात्	५५	३०८
अभक्तिः किं मया देव	१४४	१८९
अभक्तिर्वाऽस्तु विहिता	१४५	१८९
अभग्नाभुग्नवृक्षाद्रि	३६५	२४३
अभञ्जि मधुसैन्येन	१६८	३६९
अभ्रंलिहैभशालाभिः	५१	२१५
अभ्रंलिहेषु वृक्षेषु	२४७	१९२
अभवत् तस्य पादाब्जो	२७	३७६
अभवन्मध्यतस्तस्यै	२९२	१७५
अभवाय महेशाया	३४५	२६७
अभव्या अपि चारित्रं	२११	३६२
अभाङ्क्षीदन्तरिक्षेऽपि	६९५	३३६
अभावे बन्धहेतूनां	२८५	३७४
अभाषिष्ट त्रिपृष्ठोऽपि	३००	३२३
अभिधायेति तूष्णीकौ	२२७	१६४
अभिधायेति नागेन्द्रः	५७०	२४९
अभिधायेति सम्यक्त्व	९३३	२१३
अभिनन्दननिर्वाणात्	२६३	२८३
अभिषिक्तोऽपि चक्रित्वे	४७	३८८
अभिषिक्तोऽमरैर्नाम	५५	३७६
अभिषिञ्चन्निव दृशा	१७४	१६२
अभिषेकं जगद्भर्तुः	४९१	१८१
अभिषेकं महीभर्तुः	३६२	२२५
अभिषेकोत्सवात् तस्या	३३४	४००
अभिषेकोपकरण	१६५	१९०
अभूच्चातिविनीतत्वाद्	२२	२२६
अभूच्चिरमयं कालो	४१	३५७
अभूच्छत्रप्रहाराग्नि	१३७	३६०
अभूतपूर्वमम्भोधि	६३३	३३४
अभूतां कवचहरौ	८५	३७७
अभूताल्पाणुचेलत्वे	२९२	१६६
अभूत् तस्य महादेवी	७३	३६१
अभूत्पुरे तत्र रिपु	१६०	३१८
अभूदाक्रान्तदिक्चक्रः	८	१६७

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अभूदिक्ष्वाकुवंशस्य	४	१६७
अभूदुत्कटदोःकूट	१००	३६७
अभ्यक्तोऽपि विलिप्तोऽपि	१०१	२९९
अभ्यसर्पन्नवासर्पन्	१६६	३४९
अभ्यासः सर्वशस्त्रेषु	१०५	३५९
अभ्युत्तस्थौ कथं दृष्ट्वा	२९३	३२३
अभ्युत्थानं भानुवेगः	२२४	३९६
अभ्युत्थानेऽर्चने दाने	२९४	१६६
अमन्दं दददास्यन्दं	४०	३०८
अमन्दलवलीपुष्प	११९	३४७
अमन्दं स्यन्दिनं तावद्	९७	२३४
अमन्दानन्दनिःष्यन्द	८१८	३४०
अमरा विदधुस्तत्र	६२	२८६
अमरेभ्यः प्रवीचार	७१६	२०९
अमरैरसुरैर्मर्त्यैः	११५	३४७
अमरैर्वै सुधारादि	१०६	३१७
अमरो मागधपतिः	५२	२२७
अमर्त्यलोकवन्मर्त्ये	२०२	२६२
अमलं केवलज्ञान	१२३	२७३
अमारिमाघोषयितुं	५१	२७६
अमी खलु हयग्रीवे	५३२	३३०
अमी च वान्ति सुखदाः	४३	२९२
अमी तच्छास्त्रसंवाद	२८८	२४०
अमी तावदिह त्यक्त्वा	३१	२३२
अमीषामेव गीतेन	८७८	३४२
अमुक्तसन्निधिस्ताभ्यां	१११	३००
अमुक्तसन्निधिस्ताभ्यां	१८४	२९०
अमुना लोहखण्डेन	७४५	३३८
अमुना स निदानेन	९१	३६७
अमुं यक्षो विलक्षोऽथ	२०५	३९६
अमुं लोकं समस्तं वा	८०१	२०९
अमुष्य प्रियगीतस्य	८८१	३४२
अमुष्याऽप्यायुषो गर्भ	४७	१५८
अम्बरश्रीरयमला	१५९	२८९
अम्बा—जनक—श्वशुरान्	२२	३६४
अम्भश्चर—स्थलचर	२५५	२३९
अम्भोधयोऽपि मर्यादां	२१६	२३८
अम्भोधौ युगशमिला	५४	१५९
अम्भो मागधतीर्थीय	७६	२१६
अम्मादेव्यप्युवाचैवं	१२०	३७९
अयमात्मैव चिद्रूपः	२२४	३८२
अयमुल्लङ्घ्यते वप्रः	३५३	२४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अयं खलु मत्प्रश्नः	४०५	३२६
अयं च कालो रङ्के च	१५१	२३६
अयं दशविधो धर्मो	३१९	३५४
अयं मलीयसीरूपो	३९९	२४४
अयं शक्रवरश्चक्री	३१६	३९९
अयं साहसिकः किं वा	२९१	२४०
अयं हि सगरो नाम	२१७	२२०
अये ! कोऽसमयज्ञोऽयं	२९२	३२३
अयोध्यामण्डनं राज	२३५	१९२
अयोबलयिते नाथ	२०७	३९६
अरक्त-द्विष्ट-मूढानां	३३१	३५४
अरक्ताभिर्भाव-हाव	२८७	३८४
अरक्तो भुक्तवान् मुक्तिं	७३	२८६
अरघट्टघटीन्याये	६४	१५९
अरण्यस्रोतसीवास्मिन्	५८	३०८
अरण्ये व्याघ्र-सिंहादि	७०	२९८
अरपाकाश्च हूणाश्च	६८०	२०५
अरिष्टवृष्टिमच्छिन्नां	२२३	२२०
अरुध्यमानप्रसरो	१७४	३४९
अरुन्तुदैर्वचःशस्त्रैः	२५०	३८३
अरे ! तिष्ठ हयग्रीव	७३५	३३७
अरे रे ! तिष्ठ सिंहेन	१९४	३९५
अरे रे देव ! कुत्रासि ?	१८६	२३७
अरे वराकाः ! किमिमं	२३२	२२१
अर्ककीर्तिकुमारस्य	४४८	३२८
अर्चयामासुरर्चास्ता	११६	२२९
अर्चित्वा देवतां तत्र	३९	२७६
अर्जयित्वा धनं देशा	१४५	२७९
अर्जितद्रविणः सोऽपि	८८१	२११
अर्जितं पूर्वकोट्या यद्	२३१	३८२
अर्थलुब्धा गतघृणा	२९०	३८४
अर्थलोभादर्थिजनैः	१२२	३६८
अर्थिनश्च स्वक-परान्	५३६	१८३
अर्थे भूयस्यपि प्राप्ते	३७१	२४३
अर्थे लभ्येऽतिरिक्तेऽपि	८४	२३४
अर्धाष्टमाः पूर्वलक्षाः	१९४	२९०
अर्धाष्टमाः वर्षलक्षाः	३०२	३७४
अर्धाष्टमेषु लक्षेषु	५१	३६५
अर्पयामास वसतिं	८७३	२११
अर्पयित्वा दण्डरत्नं	५५६	२४८
अर्भके स्थविरे वाऽथ	१४०	२३६
अर्हतोऽर्हज्जनन्याश्च	५१९	१८२

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अर्हत्प्रवचनसुधां	८	२८४
अर्हदर्हज्जनन्यौ ताः	६२	३१५
अर्हद्भक्तिप्रभृतीनि	१३	३७५
अर्हद्भक्त्यादिभिस्तैस्तैः	१३	३१३
अर्हद्भक्त्यादिभिस्तैस्तैः	११	३४४
अर्हद्भक्त्यादिभिः स्थानैः	७	३५६
अर्हद्भक्त्यादिभिः स्थानैः	११	३६४
अर्हन्तमिव रूपस्थो	१२	३४४
अर्हन् देवो गुरुः साधुः	२५	३८७
अर्हन् देवो गुरुः साधुः	१२५	२७९
अलङ्कारानलश्चक्रे	३२	२०४
अलङ्कारो यथा मुक्ता	४६	२९७
अलङ्घनीयां गुर्वाज्ञां	९४	२५८
अलङ्घ्यशासने सर्व	५	३०७
अलब्धमध्योऽब्धिरिव	२१	२९६
अलब्धमध्यौ धवल	२१५	३५१
अलमत्र प्रहारेण	३१५	३२३
अलम्बुसा मिश्रकेशी	२१०	१७३
अलम्बुसाद्यास्तूदीच्या	४९	३१५
अलं संसारवासेन	१०३	२७२
अलसा सा गतावेव	२८	३१४
अलं सैन्यक्षयेणेति	६६९	३३५
अलीकरोषपरुषं	५०९	२४७
अलुब्धपूर्वा लुभ्यन्ति	५०४	२४७
अल्पौ परिग्रहाऽऽरम्भौ	१११	३०४
अवतीर्य करिस्कन्धात्	८९	२१६
अवदद् ब्राह्मणोऽप्येवं	२६९	२४३
अवधिज्ञानतोऽज्ञासीत्	३८	१६८
अवधिज्ञानधराणां	११७	३१०
अवनीसाधनविद्या	१६३	३१८
अवन्तिर्नाम देशोऽस्ति	९०	२३४
अवन्दिष्ट जिनं शक्रः	४६	१६८
अवर्षतामुभौ बाणैः	१७५	३८०
अवश्यकृत्यं भूतानां	७३	२१६
अवस्तुभूय स भ्राम्य	८०	३५८
अवान्तरोत्सवमिमं	९३	३४७
अवाप च जगन्नाथो	५२	३०२
अवाप्नुयात् तरलतां	२१७	२३८
अविज्ञेयस्वरूपाय	७७	३०३
अविज्ञेयस्वरूपे त्व	३८	२९२
अविमृश्यविधायित्वं	२३९	२२१
अविमृश्यविधायित्वे	१५४	२३०

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अविरतश्रावकत्वे	५४	३८८
अविषह्यप्रतापेन	४७	२१५
अविहस्तोदस्तहस्तैः	७९	२२८
अवेदनान् नारकांश्च	३१६	२४१
अवोचच्च सगरजाः	१७१	२३१
अवोचदार्यपुत्रोऽपि	२४५	३९७
अशक्तिः स्वयमाख्याता	६१८	३३३
अशरण्यमहो ! विश्व	१४९	२७४
अशान्ततापः पीयूष	१२८	३९३
अशिवाश्च शिवाः कामं	६८	२२८
अशीतिधनुरुत्तुङ्गः	९०	३१६
अशीतिर्द्वात्रिंशदष्टा	४८७	२००
अशुल्क-दण्डामभट	५६७	१८४
अशेषमपि दुःकर्म	३०९	३८५
अशेष राज्यव्यापारे	५	२९१
अश्रद्धानौ तद्वाक्यं	३९१	४०२
अश्रद्धेयमसद्भूतं	३२३	३५४
अश्रद्धेयं मम ज्ञानं	३११	२४१
अश्रुपूर्णेक्षणां दीनां	२३६	३९७
अश्वग्रीव पुराऽऽराद्ध	५०३	३२९
अश्वग्रीवस्य वाऽन्यस्य	४५३	३२८
अश्वग्रीवस्याग्रसैन्यं	६०३	३३३
अश्वग्रीवान्तिकं दूतः	३४३	३२४
अश्वग्रीवाशङ्कया च	४६८	३२८
अश्वरत्नं समारुह्य	३४	२१५
अश्वान् नियम्य काकिण्या	२५६	२२१
अश्वेन सूनुमाकृष्टं	९६	३९२
अष्टचत्वारिंशदंशा	५४२	२०१
अष्टप्रकारपूजाभिः	५५	२७६
अष्टमान्ते कृतस्नानः	१७९	२१७
अष्टमान्ते च निष्क्रम्य	३३७	२२४
अष्टमान्ते नाट्यमालो	२६६	२२२
अष्टमान्ते रविरिवा	११६	२१७
अष्टमे च परिणम	५६१	२४९
अष्टषष्टिः सहस्राणि	२१८	३६२
अष्टाङ्ग्याऽष्टादशाब्दोने	१६९	२७४
अष्टाङ्गेनाऽऽयुर्वेदेन	१४४	२७३
अष्टाङ्गोनं पूर्वलक्षं	१७४	२७४
अष्टाचत्वारिंशता च	८५६	३४१
अष्टादश पूर्वलक्षी	६८३	२५२
अष्टादशाब्दलक्षाणि	३६१	३५५
अष्टाधिकरणीग्रन्थान्	२७८	२४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अष्टाऽधोलौकवास्तव्या	३०	३०८
अष्टानां महादेवीनां	७३३	२०७
अष्टापदगिरावत्र	१२६	२२९
अष्टापदं पुरमिव	१३६	२३०
अष्टापदसमं स्थानं	१३०	२२९
अष्टापदाद्रिपरिखा	१६७	२३०
अष्टापदाद्रिपरिखा	५३६	२४८
अष्टापदाद्रिपरिखा	५६४	२४९
अष्टापदाभ्यर्णवर्ति	५३८	२४८
अष्टाविंशतिरेवं च	७००	२०६
अष्टाविंशतिसहस्रया	६५१	२०४
अष्टाविंशत्यङ्गहीनं	१५१	३०६
अष्टाह्निकां चमरेन्द्रः	५२६	१८२
अष्टाह्निकान्ते सगरः	१५३	२१८
अष्टोत्तरं रत्नकुम्भ	१३१	२१८
अष्टादशुचक्रादेयुः	१४७	२६०
अष्टौ च वादलब्धीनां	११८	२९४
अष्टौ तन्मध्यविष्कम्भे	५६१	२०२
असंख्यातान् समुल्लङ्घ्य	२६५	१७८
असङ्गस्य जिनेशस्य	२४७	२६७
असञ्जातफला वल्ल्य	१९	२७५
असञ्जातान्तरौ नित्यं	२३९	३२१
असन्तुष्टास्तृणायन्ते	३४५	३८६
असद्भूतमवस्थाभिः	३२४	३५४
असंप्राप्ते बोधिरत्ने	२१२	३६२
असभ्यभाषापूर्वं च	३४४	३५५
असमीक्षितकारिं	९२	३०४
असम्पृक्तोद्गतश्याम	२३१	२६३
असंयमकृतोत्सेकान्	९५	३१०
असंवहन्तः केचिच्च	९	२३२
अंसाद् विस्रसमानेषू	२१६	१९१
असाधारणया ऋद्धया	१५	१५७
असाधारणवात्सल्यात्	४७	३९०
असारमित्थं संसारं	१७५	२९०
असारेषु शरीरेषु	३५४	२६७
असावटन्नटव्यन्त	२३१	३९६
असावपारः संसारः	८२७	३४०
असावसारः संसारः	४२६	१९८
असावसारः संसारो	२०६	२३८
असावस्मत्पूर्वजानां	१०६	२२९
असावभिनवः कोऽपि	२८४	२४०
असाविदानीं विजयाद्	३९	१६८
असावुभयथाऽस्माकं	३५७	३२५

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
असि कस्त्वमियं का च	२८६	२४३
असिरत्नं समाकृष्य	२०६	२२०
असूत समये साऽपि	८१	३७७
असूनृतस्य जननी	२८१	३८४
असूया पापशीलत्वं	९६	३०४
असौ प्रियसुहृत् किं मे	१५४	३९४
असौ विविधविन्यासो	७०५	२०६
असौ सनत्कुमारोऽमौ	३००	३९९
असौ सम्पश्यमानानां	५४	२५७
अस्ति च क्षुद्रहिमवन	६१६	२०३
अस्ति ज्वलनजटिनो	४६१	३२८
अस्ति तत्र महानद्याः	४	१५७
अस्ति दुःखाकरं लोके	८९	२३४
अस्ति विद्युत्प्रभो नाम	४४५	३२८
अस्तीह काञ्चनपुरं	१	३८९
अस्त्रवृष्ट्या तयाऽक्लाम्यत्	६४२	३३४
अस्त्वावयोर्द्वन्द्वयुद्धं	६७०	३३५
अस्त्रवेदः शरीरीव	१५८	२१८
अस्त्रागारं यमस्येव	३८०	३२६
अस्त्रिणां मे निरस्त्रेण	३८८	३२६
अस्पृष्टजिनमार्गाणां	४५०	१९८
अस्मदर्हा कन्यकेयं	५०८	३३०
अस्मद्वंश्या नृपाः पूर्वे	१७५	१६२
अस्माकमप्यनाथानां	४४	३५७
अस्मानापृच्छ्य सर्वं त्वं	१४०	३१८
अस्मासु स्वामिता तस्य	५१३	३३०
अस्मांस्त्रायस्व त्रायस्वे	५३४	२४८
अस्मिन्नपारे संसार	४२	२८५
अस्मिन्नपारे संसारे	२५५	१६५
अस्मिन्नपारे संसारे	३०४	३५३
अस्मिन्नसारे संसारे	२५०	२६३
अस्मिन् नितान्तवैराग्य	८०३	२०९
अस्मिन् प्रसादिनं राजा	२९७	३२३
अस्मिन् वससि संसारे	२९५	२६५
अस्य चक्रस्य यथाशा	२६३	३५२
अस्य मध्यप्रदेशे नु	७०६	२०६
अस्यन् ममत्वमूल्लेपं	१०५	२९४
अस्यां गिरितलाटव्यां	१६	२३२
अस्याहं तृणवदिति	७१	३९१
अस्यैव जम्बूद्वीपस्य	३	२६९
अस्यैव पृष्ठे विन्यस्य	५६	३९१
अस्वत्वेन गृहीतः सन्	१०२	२९४

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अहमेतां ग्रहीष्यामि	१८५	१६३
अहं तु विविधक्रीडा	१४९	१६१
अहं विद्याधरो विद्या	३८७	२४३
अहं हि गृहवासस्थः	९९	१६०
अहं हि सद्य उद्यान	२५२	२३९
अहं हि सौधर्मपतिः	३३६	१७७
अहो ! असारे संसारे	३५	३९०
अहो ! आश्चर्यमनिशं	७	२९१
अहो ! किमपि सौन्दर्यं	१९५	३१९
अहो ! कोऽप्यस्य लावण्य	३५३	४००
अहो ! दानमहो ! दानं	११८	२७३
अहो ! दानं महादानं	२९५	१९४
अहो ! दैवेन दुर्बुद्धिः	५१९	३३०
अहो ! प्रौढैरपि नृपैः	४०१	३२६
अहो ! मम कुमाराभ्यां	३२६	३२४
अहो ! लोभस्य साम्राज्यं	३१७	३८५
अहो ! वयमियत्काल	१५२	१६२
अहो ! विलोचने अस्या	९	३८९
अहो ! स्मितं सुधावृष्टिः	१६७	२८९
आ ऐशानाच्च भवन	७९३	२०९
आ ऐशानात् समुत्पत्तिः	७८९	२०८
आकरः सर्वदोषाणां	३१२	३८५
आकर्णयन्तु सर्वेऽपि	५१८	१८२
आकर्ण्य तच्च द्विगुणं	१०६	३७८
आकर्ण्य तच्च भगवत्	९३५	२१३
आकस्मिकं महाध्वानं	३३८	२४२
आकालप्रतिपन्नाभ्यां	१५८	२८९
आकाशाद् भूमिमध्याद् वा	२९०	२४०
आः ! किमेतदुपक्रान्तं	१४५	२३०
आ कीटादा च देवेन्द्रात्	३६३	२६७
आकुलं नागलोकं च	१४०	२३०
आकृत्याऽपि ज्ञायसे त्वं	२२५	३९६
आकेवलाद् द्विमासोन	८५७	३४१
आ केवलान्नवमास्या	१२०	२९५
आक्रान्ताशेषदिक्कस्य	३३	१५८
आक्रान्तो युगपल्लज्जा	४९२	२४६
आक्रामन् पङ्किलं मार्गं	१३६	३९३
आक्रामन् व्योमतुरगैः	१९२	१९०
आकुष्टोऽपि स नाऽक्रोशत्	२८७	१६६
आखोराकर्षणकृते	२५९	२३९
आख्यच्च पर्षदे स्वस्यैं	१००	२१७
आख्यद् राजाऽपि तं देव्या	४३	२७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
आगता च तरां ती र	१९८	२३८
आगतेष्वर्थिषु दधौ	७२	३९१
आगतैः सवयोभूय	६३	३४६
आगतैः सवयोभूय	२२३	२६२
आगात् तत्र क्षणेनापि	२५३	३९७
आग्नेयबाणं धनुषि	७०६	३३६
आग्नेय्यादिषु तन्मात्रा	६८९	२०५
आघ्रात इव सर्पेण	१९	३८९
आचकर्ष तमाकर्णं	६६	२१६
आचकर्ष श्रियो राज्ञां	११२	१८८
आचख्युः क्षेत्रिणोऽप्येवं	३६८	३२५
आचख्यौ प्रभुरप्यस्याः	८६१	२११
आचख्यौ भगवानेवम्	१०	२२६
आचान्तैः श्रुतगण्डूषैः	१२	३७५
आचार्यपादान् वन्दित्वा	९४	१६०
आचार्यवामपार्श्वस्थः	२५१	१६५
आचार्योऽप्याललापैवं	१३९	१६१
आच्छिन्दता च राज्यानि	१५६	१६२
आच्छिन्दन्तो द्विषां लक्ष्मीं	१५३	३६०
आजगाम चरश्चैको	१३८	३४८
आजगाम प्रभुर्भूयः	६४	३०३
आजघानार्यपुत्रस्तं	२०६	३९६
आजघ्नुर्झल्लरीः केऽपि	४४९	१८०
आजन्मदौस्थ्यमगमत्	१०६	१७०
आजन्मस्वीकृतस्तस्य	५	३०१
आजन्मानन्यसाहाय्यो	२१	२९१
आज्ञप्ता वासवेनाऽथ	१७९	१९०
आज्ञया तस्य सद्योऽपि	३७६	१७८
आज्ञया द्युसदां राज्ञो	२७१	१७५
आज्ञां कृत्वाऽभ्युपेतं तं	६०५	२५०
आज्ञा चेत् खण्ड्यतेऽकाण्डे	३५६	३२५
आज्ञातिक्रमदोर्वीर्या	२१७	३५१
आज्ञा–ऽपाय–विपाकानां	३३२	१९५
आज्ञां पुरुषसिंहाख्यः	१२४	३१७
आज्ञा स्यादाप्तवचनं	४४१	१९८
आढ्यं निःस्वं नृपं रङ्कं	३५९	२६७
आढ्यम्भविष्णुर्यशसा	२०	३१४
आढ्यो वित्रजिषुरिव	५९	२९८
आततज्यधनुष्पाणिः	६३	२१५
आतपत्रं दधारैको	४८५	१८१
आतिष्ठमानाः सकल	१७७	१६२
आतोद्यपुटवद् भिन्ने	१९१	२३७

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
आत्ततालं नटमिव	२८५	१७५
आत्मचिन्तानुकूलेन	१४१	१८९
आत्मदेहादिभावानां	९८	२९४
आत्मनः सर्वमप्येतद्	९३	२९४
आत्मपुत्रमुभयसात्	१७४	२८०
आत्मरक्षीसहस्रैश्च	१६६	१७२
आत्मरक्षै रक्ष्यमाण	९८	३७८
आत्मसाहायिके त्वत्तः	३९६	२४४
आत्माऽज्ञानभवं दुःखं	२२३	३८२
आत्मानं तरुशाखाया	६	२३२
आत्मानं ज्ञापयित्वा ते	५५	१६८
आत्मानमात्मना वेत्ति	२२२	३८२
आत्मानुरूपा रूपेण	६२	२७७
आत्मैव दर्शन–ज्ञान	२२१	३८२
आददे मुनिपादान्ते	११७	२७८
आदाय तांश्च ते देवाः	४२४	१७९
आदावुत्क्षिप्तया मर्त्यैः	१०८	२७२
आदित्ययशसः सूनुः	१२७	२३५
आदिदेश ततः शक्रो	५६	१६८
आदिदेश विशामीशो	२२७	२३८
आदिशद देवताऽप्येवं	१०९	२३५
आदेशाकाङ्क्षया भर्तुः	४२	१८६
आदेशाद् भूपतेस्तस्य	५७३	१८४
आदेशेन समं तासां	१६१	१७१
आदौ तामुदधुर्मर्त्या	२७५	२६४
आदौ सुदर्शनं नाम	७५३	२०७
आद्यन्ततीर्थनाथाभ्याम्	१२९	३०५
आद्यवप्रेऽवास्थितेवं	३४०	२६६
आद्येषु त्रिषु नरके	८७	२८७
आनन्ददायकत्वेन	१२	३८७
आनन्दं नाटयन्नुच्चैः	४६२	१८१
आनन्दबाष्पतोयेन	१५१	३९४
आनन्दाद्या एकाशीतिः	१०९	३१०
आनीय पुर्यां श्रावस्त्यां	२५६	२६४
आनीयाऽऽनीय पानीय	१७	२१४
आपगानां सहस्रैस्तु	५८३	२०२
आपातनामकास्तत्र	३६	३८८
आपाता नाम दुष्पाताः	२००	२२०
आपिप्लावयिषुरिव	८०	१६९
आपूर्ण इव पाथोदो	१८४	३५०
आपूर्णो देवकोटीभिः	३२४	१७६
आपृच्छस्व परं गत्वा	९६	२७८

	श्लोक नं.	पृष्ठ
आप्तमूर्च्छमधैर्येण	१६३	२३६
आप्लावयति नाम्भोधिः	३१३	३५४
आबाल्यादपि श्रावक	४५	३९०
आ ब्रह्मलोकाच्चरक	७९०	२०८
आभिजात्यमहो ! तस्य	५२०	३३०
आभियोगिकदेवश्च	३७८	१७८
आमित्युक्ते कनीयोभिः	१३५	२२९
आमित्युक्ते कुमारेण	८६	१६९
आमित्युक्तो मेरकेण	१२५	३६०
आमुक्तचित्रनेपथ्य	५६	३६६
आमुक्तदिव्यालङ्कार	५७	३५७
आमेत्युक्तोऽचलेनाथ	३७७	३२५
आयतनप्रमाणेन	७१९	२०६
आयासमात्रं नश्वर्य	३४६	३८६
आयुक्तानादिशैर्धांसि	४५१	२४५
आयुक्तैरिव मौहूर्त्तैः	५८	२९८
आयुःशेषे मासषट्के	३११	१६६
आयुःसागरसङ्ख्यैः स	३१०	१६६
आयोजनं गामिनीभिः	१२२	२२९
आयोजनं सुमनसो	२१९	२८२
आरक्ष इव दस्यूनां	१७३	२३१
आरभ्य केवलात् पूर्व	३९६	२६८
आरभ्य केवलोत्पत्ते	६६५	२५२
आरभ्यते पूरयितुं	३२६	३८५
आरात् खण्डप्रपातायाः	२६५	२२२
आरात्रिकमथो चक्रुः	११८	२२९
आरात्रिक सप्तशिखं	२२८	१९२
आराधयंस्तीर्थकरान्	४६	३९०
आराममिव धर्मद्रो	८१	१५९
आरामिक इवाऽऽराम	५	२५५
आरूढक्षपकश्रेणे	६५	३०३
आरूढः पञ्चमीं धारा	३०५	२२३
आरुरुक्षुरिव दि	३८	३१४
आरुह्य पालकं शक्रः	१६४	२६०
आरुह्य रत्नैर्विमलां	९८	३१६
आरोग्यं रूपलावण्ये	२६०	१६५
आरोप्य दिव्यशिबिकां	६९२	२५२
आरोप्य शिबिकामन्य	६९३	२५२
आर्जवं सरलः पन्था	३००	३८४
आर्त्तानामर्त्तिहरणे	८	२९१
आर्पयच्चावासभुवं	४७४	३२९
आर्य ! तिष्ठ मयि सति	३८६	३२६

	श्लोक नं.	पृष्ठ न.
आर्यदेशा अमी एभिः	६७३	२०५
आर्यदेशे समुद्भूता	१३०	२८८
आर्यपुत्रस्तु तान् सर्वां	२०४	३९६
आर्यपुत्रोऽपि सन्नह्य	२६६	३९८
आर्यपुत्रोऽवदद् भूयः	१८९	३९५
आर्यपुत्रो दयावीरः	२३४	३९७
आर्यस्य बलभद्रस्य	१३०	३६०
आर्याय ! भवतः कोऽयं	७३७	३३७
आर्षभेरिव सेनानीः	१४०	३४८
आलिङ्गिपुष्करमुखा	२९०	१७५
आलोकमात्रे तं नत्वा	५८६	२४९
आलोकयँल्लोकनालिं	३०९	१६६
आलोकस्तिमिरेणेव	८३	३०९
आवयोरक्षता प्रीतिः	३३५	३२४
आवर्त इव लावण्य	४२५	३२७
आवश्यके व्रतशीले	१२७	३०५
आवाभ्यां खङ्गशृङ्गेण	४७८	२४६
आवाभ्यां तदिहागत्य	४०१	४०२
आवामपि ग्रहीष्यावः	८१	१८७
आविश्चिकीर्षुः सद्भाव	२१८	३९६
आविर्भूतं क्षणान्मेघं	५३	२५७
आविष्ट इव भूतेन	१८	३८९
आवृत्तवृन्तपद्माभ	२४१	१६४
आवृतोऽनुचरीभूय	४८३	३२९
आवृष्टवारिदमिव	७७३	३३९
आवैताढ्यं प्रतापाढ्यो	८८	३५८
आशंसन्तीषु माङ्गल्यं	२७८	२६४
आशास्यते यत् प्रयत्नाद्	१४६	२८९
आशु गत्वा द्वारवत्यां	२३२	३५१
आशूपविश्य करभा	१६२	३६९
आश्चर्यं दर्शयिष्यामि	३२४	२४१
आश्चर्यभूतान्यन्यानि	२५७	२३९
आसनादीनि संवीक्ष्य	२६९	१६५
आसनादौ निषण्णायां	२८५	१६६
आ सर्वाङ्गं प्रसरता	४४४	१८०
आससाद क्रमेणाऽथा	५५९	२४८
आसाद्यक्रे भृतशरो	७१	२१६
आसाद्यते दुरन्तेना	६५	२५७
आस्थितं मण्डलिकया	५३२	२०१
आसीत् तत्र धरो राजा	२३	२८४
आसीत् सनत्कुमारोऽपि	३४६	४००
आसीदस्मिन्नसामान्य	११८	२३५

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
आ सौधर्मेशानकल्पं	७५८	२०७
आस्फलत्सु मिथः कांस्य	१७१	१९०
आस्फालयन्तः फलका	१६७	३६९
आस्फालयामासतुस्तौ	१७४	३८०
आहतस्तस्य चक्रस्य	७२७	३३७
आहारकशरीराद	७१	१८७
आहार्यैरेव हि गुणैः	३६	३९०

"इ"

इक्ष्वाकवो ज्ञात–हरि	६७४	२०५
इक्ष्वाकुकुलचन्द्रस्य	१५३	३८०
इक्ष्वाकुवंशतिलक	१२८	२७९
इच्छासम्पन्नसर्वार्थे	८०७	२०९
इतः कल्पे प्राणताख्ये	२९	३४५
इतः कल्पे सहस्रारे	२५	३५६
इतः कषायाः क्रोधाद्या	३०१	३५३
इतः क्षणं क्षणमितः	१७०	३४९
इतः पुरे राजगृहे	११०	३१७
इतः सद्योद्यतो मृत्युः	७७	२५८
इतश्च कश्चिदप्याढ्यः	१४३	२७९
इतश्च ग्रैवेयकस्थ	१८	२८७
इतश्च छद्मस्थतया	७७७	३३९
इतश्च जम्बूद्वीपस्य	१२	२९१,
१३ ३४४,	२१	२६९
इतश्च जम्बूद्वीपान्त	१८	२८४
इतश्च जम्बूद्वीपेऽपा	१०३	२५९
इतश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन	१०	३८७,
११ ३०७,	११	३५६,
१२ ३६४,	१३	२९६,
१४ ३०१,	१५	३७५,
६४ ३७७,	६८	३९१,
	६९	३५८,
६९ ३६६,	१२१	२७८,
	१३२	३४८.
इतश्च तस्यां यामिन्या	५२९	१८३
इतश्च द्वारका नाम	१९३	३५०
इतश्च नगरे पृथ्वी	१३०	३४८
इतश्च नन्दिषेणस्य	२७	२९१
इतश्च नवमे कल्पे	११२	२५९
इतश्च नागदत्तोऽपि	४८	३९०
इतश्च पवनवेग	१९७	३५०
इतश्च प्राणते कल्पे	२६	३०७,
	२६	३६५

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
इतश्च पुण्डरीकिण्यां	१०८	३१७
इतश्च पूर्णमेघेन	२२३	२२३
इतश्च पोतनपुरं	१५९	३१८
इतश्च पोतनपुरे	५७४	३१२
इतश्च भगवान् धर्मः	१९४	३८१
इतश्च भरतक्षेत्रे	९१	३५८
इतश्च ममता चेत्र	३०३	३५३
इतश्च मास छद्मस्थो	२८२	३५३
इतश्च वर्षद्वितयं	१७४	३६१
इतश्च विजयाच्च्युत्वा	१८	१६७
इतश्च विशाखनन्दी	१३०	३१७
इतश्च वैजयन्तस्थः	२८	२९७,
	२८	३०२
इतश्च वैताढ्यगिरौ	४१५	३२७
इतश्च शुक्रे नलिन	३०	३१४
इतश्च सगरस्याऽत्र	१	२१४
इतश्च समवसृतं	३९९	१९७
इतश्च स सहस्रारा	१०३	३६७
इतश्चाजितनाथोऽपि	१०१	१८८
इतश्चात्रैव भरते	७५	३७७
इतश्चानतिदूरेऽस्ति	२२१	३९६
इतश्चाऽऽसीत् पुरे रत्न	२४६	३२१
इतस्ततः क्षिपन् पाणी	१८	२७५
इतस्त्रिवर्षी छद्मस्थो	१९६	३७०
इति चाऽचिन्तयमहं	११२	१६०
इति चिन्तयतो धारा	१२९	१६१
इति चिन्तयतो भर्तु	२५२	२६३
इति चिन्तयतो राज्ञः	६७	१५९
इति चिन्तापरं नाथं	१३८	१८९
इति तं निर्णयं स त्रिः	२०३	३२०
इति तेनोदिते राजा	१४६	३१८
इति तेषां वचः श्रुत्वा	३७१	३२५
इति त्रिषष्टिस्तत्रेयुः	७०	३१५
इति दिव्यां गिरं श्रुत्वा	७५६	३३८
इति द्रव्यादिसामग्री	४६४	१९९
इति द्विपृष्ठवचसा	२६४	३५२
इति न ज्ञायते ज्ञातं	२२६	२३८
इति निश्चित्य रभसा	८४	२५८
इति पृष्टः कुमारेण	१६७	३९४
इति प्रतिक्षणमपि	१२७	१८८.
इति प्रशंसां रूपस्या	३४४	४००

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
इति प्राग्जन्मसंसिद्धं	१९	२२६
इति प्राप्याऽपि सामग्रीं	५६	१६१
इति ब्रुवाणं ब्रह्माणं	३४५	२४२
इति ब्रुवाणां जननीं	११८	३७९
इति मूलप्रकृतीनां	४७६	१९९
इति मोक्षमुपेयुषः	१२३	३००
इति लोभं निराकर्तुं	३४७	३८६
इति श्रुत्वा हयग्रीवो	७४४	३३८
इति संजातवैराग्य	३७८	४०१
इति सामसुधावृष्ट्या	३३७	३२४
इति सोऽचिन्तयद् यावत्	१५५	३९४
इति स्तुत्वा गृहीत्वेशं	८३	३१६
इति स्तुत्वा जगन्नाथं	६३१	२५१
इति स्तुत्वा जिनपतिं	४५	३६५
इति स्तुत्वा युसन्नाथं	९२	२९४
इति स्तुत्वा नमस्कृत्य	१२८	२२९
इति स्तुत्वा प्रभुं किञ्चित्	४७९	१८१
इति स्तुत्वा प्रभुं शक्रो	३०१	२६५
इति स्तुत्वा विरतेषु	८२६	३४०
इति स्तुत्वा सुनाशीरे	८९	२९९
इति स्तुत्वा हरिर्नाथ	१९५	२८१
इतो ग्रैवेयके जीवः	२३	२८५
इतो भूत्वा प्रतीक्षेथां	३६०	४०१
इतो विकटजीवोऽपी	८०	३७७
इतो विमाने विजये	४९	२७०
इतोऽस्य जम्बूद्वीपस्य	१	१६७,
	७४	३६६
इत्थं कथमपि क्ष्मापं	३६५	३२५
इत्थङ्कारं च समव	३३०	१९६
इत्थङ्कारं पातयामि	१३५	३१७
इत्थं कृतनिदानः स	७१	३७७
इत्थं कृतनिदानः स	८४	३५८
इत्थं चक्रिपदाभिषेक	३७०	२२५
इत्थं च जन्मतः स्वामी	९८	२७२,
इत्थं च भूमदः सप्त	५०२	२००
इत्थं चारित्रगात्रस्य	२७५	१६५
इत्थं तृतीये वप्रेऽस्था	८११	३४०
इत्थं त्रयोदशं तीर्थं	४५	३५७
इत्थं दशविधो धर्म	९०	२७७
इत्थं पृथग्जन इव	१६५	२३७
इत्थं महर्द्धिभिः शक्रः	३२०	१७६
इत्थं विचार्य मनसा	१६२	१८९
इत्थं विदन्नपि भवी	५१	१५८
इत्थं विधुरमालोक्य	१७१	३६९
इत्थं समवसरण	४३३	१९८
इत्थं सम्पश्यमानस्य	४१९	२४४
इत्थं स्तुत्वा स्थिते शक्रे	८९	३०९
इत्थं स्वयम्प्रभां देवीं	४९३	३२९
इत्यजल्प जनं पालयं	७१	२५८
इत्यधस्तात्तिर्यगूर्ध्वं	७९७	२०९
इत्यनित्यं विदन् सर्वं	३७२	२६७
इत्यभाषत तानग्नि	५३८	३३१
इत्यभाषिष्ट सा देवी	१३३	२१८
इत्याकर्ण्य वचो राजा	१५०	३४८
इत्याकर्ण्य हयग्रीवो	७२४	३३७
इत्याख्यातेऽपि भूपेन	१२३	३१७
इत्याज्ञां नगराध्यक्षो	३६९	२२५
इत्यादि चिन्तयन् राज	९६	२५८
इत्यादिभिर्दुर्निमित्तैः	९८	२३४
इत्याद्युक्त्वा सनिर्बन्धं	१२६	३१७
इत्युक्तः प्रतिहारेण	७१	२३४
इत्युक्तः प्रश्रयात् ताभिः	२२२	३९६
इत्युक्तयोस्तयोः क्रोधो	१५१	३८०
इत्युक्तवत्यां बकुल	२९६	३९९
इत्युक्तवन्तं तं दूतं	३४२	३२४
इत्युक्तवन्तं सामर्ष	५४६	३३१
इत्युक्तः शार्ङ्गभृच्चक्रं	१६५	३६१
इत्युक्तस्तेन दूतेनो	५०४	३३०
इत्युक्तः स्वामिना सोऽथ	१६०	१८९
इत्युक्तः सोऽग्निजटिना	५०६	३३०
इत्युक्ता तेन सा बाला	२३९	३९७
इत्युक्तास्तैर्मेघमुखा	२३४	२२१
इत्युक्ता हयकण्ठेन	६३९	३३४
इत्युक्ते लज्जिताः पौरा	२०५	३२०
इत्युक्ते वह्निजटिना	६२१	३३४
इत्युक्तोऽजितनाथेन	१४३	१८९
इत्युक्तो बलभद्रेण	३१८	३२४
इत्युक्तो मन्त्रिणा तेन	१५६	३४९
इत्युक्तो [illegible]	१५६	३६०
इत्युक्तो विष्णुना दूतः	५१६	३३०
इत्युक्त्वा कुपितः सद्यो	२३७	३५१
इत्युक्त्वा विस्मितो भीतो	१३३	३६०
इत्युक्त्वा तत्र तूर्णाके	८५९	२१०
इत्युक्त्वा न्यासमिव तं	३२१	२४१
इत्युक्त्वा नारदमुनिं	१३७	३६८
इत्युक्त्वा भूपतिः सद्यो	५४	२७६
इत्युक्त्वा मुष्टिमुद्यम्य	३१४	३२३
इत्युक्त्वा राक्षसपतिः	३८	२२७
इत्युक्त्वाऽवस्थिते दूते	३५२	३२५
इत्युक्त्वा सोऽपरेऽपीन्द्रा	५९	१६८
इत्युग्रं कर्मकौटिल्यं	३११	३८५
इत्युच्चकैर्घोषितया	३६१	१७७
इत्युत्कटकटुं वाचं	२४१	३५१
इत्युत्पाट्य गदां शृङ्ग	७३६	३३७
इत्युदित्वा तिरोभूय	२२०	२२०
इत्युदित्वा म्युर्ब्रह्म	५९	३०९
इत्युदित्वा स रोषेण	९११	२१२
इत्युदित्वा स्थिते तस्मिन्	३७४	२४३
इत्युदीर्य महावीर्या	२०३	२२०
इत्युदीर्य सहस्राक्षः	३३७	१७७
इत्युदीर्याऽजितस्वामि	१४०	१८९
इत्युवाच च तान् भूयः	२०४	३२०
इत्यूचतुश्च तौ युक्ता	९८	२७८
इत्यूचुस्ते वयं गङ्गा	२८०	२२२
इत्यूर्जितं स तर्जित्वा	१९५	३९५
इत्येते नव निधयः	२७९	२२२
इदं जगत्त्रयश्रोत्र	२	३०७
इदं जन्म पारमिव	९१	३४७
इदं तु मास्म शङ्कध्वं	३६१	३६७
इदं देवस्य साम्राज्यं	१६७	१६२
इदं प्रैष्यत केनेहा	१०७	३५९
इदं विरुद्धं श्रद्धत्तां	६२६	२५०
इदं सर्वास्त्रसर्वस्वं	१६२	३६१
इदानीं त्वत्प्रसादेन	८८	२९९
इदानीमावयोरेवं	१५६	३८०
इदानीमेकसामन्त	५४८	३३१
इन्द्रजालप्रयोगादौ	३६७	२४३
इन्द्रजालं मतिभ्रंश	३७०	२४३
इन्द्रजालमिदं ह्यद्य	३७६	२४३
इन्द्रत्वेऽपि हि संप्राप्ते	३१५	३८५
इन्द्रध्वजेन च पुरो	८००	३४०
इन्द्रन्यस्तं देवदूष्यं	४२४	३४८
इन्द्रनीलमयाक्रान्त	४३	२७०
इन्द्रा अपि समेत्यैवं	५८	२७१
इन्द्राणां च चतुःषष्टे	२३२	१९२
इन्द्रा द्वाषष्टिरन्येऽपि	१९२	२६१,
	४८०	१८१
इन्द्रादिपदवीप्राप्तिः	९१	२९४
इन्द्राः परिवृता देवैः	४०९	१७९
इन्द्राश्चतुःषष्टिरूपे	१९७	२९०
इन्द्राश्चासनकम्पेन	१२४	२५९
इन्द्राः सामानिकास्त्रायः	७७०	२०८
इन्द्रास्त्रिषष्टिरभ्येत्या	२३	३६५
इन्द्रियाणां विषयेण	७८३	२०८
इन्द्रियार्थरससस्वादु	४९	१५८

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
इन्द्रोपेन्द्रादयोऽप्यत्र	१४०	२७३
इन्दोर्विमानं विष्कम्भा	५४१	२०१
इन्दौ विद्युत्कुमाराणां	५११	२००
इभगन्धेन गन्धेभ	२४२	३५१
इमं देवोऽपि भूभारं	१६६	१६२
इमं विकृत्य प्रासादं	२४४	३९७
इमामाज्ञां समालम्ब्य	४४८	१९८
इयं का ? पारिपार्श्विक्यः	१२	२७५
इयं खलु धरित्री मे	३६	२५६
इयत्काले न कोऽप्यस्थाद्	१७८	१६२
इयत्कालमहं स्त्री वा	४८६	२४६
इयमृद्धिः कुतो वा ते	१७१	३९४
इयं हि त्वद्भुजाधारा	१३१	३७९
इयं हि पूर्वं तेन स्त्री	३८८	२४३
इयेष च व्रतं स्वामी	५६	३०३
इलादेवी सुरादेवी	२०७	१७३
इष्वाकारपर्वताभ्यां	६४२	२०४
इह जीवस्य मा भूवन्	२३३	२८२
इह त्वद्दर्शनालोक	२१४	३८२
इहातिघोरे संसारे	१३३	१६१
इहान्यत्वं भवेद् भेदः	९६	२९४
इहापि दृश्यते लोके	११२	२७८
इहैव तेऽवतिष्ठन्ते	१३०	१८९
इहैव भरतक्षेत्रे	३८१	२४३

"ई"

ईक्षाञ्चक्रे च तान् मङ्क्षु	१७६	२३१
ईक्षाञ्चक्रे जगन्नाथ	३४५	१९५
ईक्षाञ्चक्रे तदानीं च	३१	३४५
ईदृक्षमपि चेत्स्वामी	२९६	२४१
ईदृग् विमानं शक्राज्ञा	३०७	१७६
ईर्यासमितिशालिन्य	५५३	१८३
ईर्ष्या-विषयगार्द्ध्येच	१००	३०४
ईशानकल्पाधिपतेः	४०	३४५
ईशानवद् दक्षिणेन	३७२	१७८
ईशानाङ्कस्थितं नाथं	४१	२८५
ईशानाङ्के निवेश्येशं	३३	३५७,
३६ २९२,	३९	३७६,
	१८५	२८१
ईशानाङ्के प्रभुं न्यस्य	३५	३०८
ईशानाधिपतेरङ्के	३४	३६५
ईशानेन्द्राङ्कपर्यङ्के	३७	२९७

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
ईशावग्निकुमाराणां	५१२	२००
ईशोऽहं वः सबन्धूनां	५०९	३३०
ईश्वरो महेश्वरश्च	१८०	२६१
ईहामृगाऽश्व-वृषभैः	२८६	१७५
ईहामृगैः रत्नमयैः	१५९	१७१

"उ"

उक्त्वा मित्रैरिवाऽमित्रे	५२६	३३०
उक्षणस्तानुपसंहृत्य	१९७	२६२
	४३	३४५
उग्रेण तेजसाऽऽदित्यो	१२६	२३५
उग्रैस्तपोभिर्विविधैः	३२८	१९५
उचितं सुचितं वाऽपि	३७	२३३
उच्चपेटः प्रति सर्पं	३९३	३२६
उच्चैर्नीचैर्भवेद् गोत्रं	४७४	१९९
उच्चैरुच्चैःश्रवःकल्पैः	६०	२१५
उच्छलच्चम्पकाशोक	११८	३४७
उच्छीर्षे कुण्डलद्वन्द्वं	५०६	१८२
उच्छ्वासं सह मेदिन्या	५३३	१८३
उच्यते स कथं बन्धुः	१५७	३४९
उज्झाञ्चकार तदनु	२५६	१९२
उज्झाञ्चकार सगरः	४१३	१९७
उड्डीनमुच्चकैः काण्डं	१६३	३६९
उत्कटभ्रकुटीभीमो	२४९	१७४
उत्कर्षेण चतुस्त्रिंशत्	७४७	२०७
उत्कील्यन्ते त्वचयद्भिः	१२१	२८८
उत्कृष्टया त्वरितया	१७३	१७२
उत्कृष्टलक्षणशतैः	५८१	१८४
उत्केसरततिर्व्याप्ता	७६	१६९
उत्क्षिप्तशैलशिखरे	१६४	२३०
उत्क्षिप्यमाणे धूपे च	४६८	१८१
उत्तमां जातिमाप्नोति	२५८	३८३
उत्तम्भनेनाऽद्रिरपि	५७	२३३
उत्तरङ्ग इवाम्भोधिः	२५०	१७४
उत्तरद्वारमार्गेण	६२१	२५०
उत्तरस्मिन्नञ्जनाद्रौ	५२४	१८२
उत्तरीयच्छन्नमुखाः	१५७	२३६
उत्तरीयैरुभयतो	५४९	१८३
उत्तरेण प्रयागं च	५७४	२४९
उत्तरेण समीरेण	१४१	३९४
उत्तरे वर्षधरादि	५८८	२०२
उत्तिष्ठ गच्छ त्वं तस्मै	१६०	३४९

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
उत्तिष्ठ बन्धो ! निर्बन्धः	८९२	३४२
उत्तीर्य कुञ्जरस्कन्धाद्	७७	१५९
उत्तीर्य वर्धकिकृत	३४	३८८
उत्तीर्य वाहनेभ्योऽहं	१११	१६०
उत्तीर्योत्तीर्य चोत्सङ्गात्	५०	२९२
उत्तुङ्गशृङ्गरुचिरः	२३	१६७
उत्तोरणमुत्पताकम्	३४२	२२४
उत्तोरणामिव दिवं	४६७	१८१
उत्थाय लब्धसंज्ञोऽसौ	१८७	३९५
उत्थाय लब्धसंज्ञस्तत्	१८७	३८१
उत्थाय शयनीयाच्च	४६	२७६
उत्थायादाय तच्चक्रं	१६१	३६१
उत्थायाऽऽदाय शक्रोप	३७६	२६७
उत्पत्ति-विगम-ध्रौव्य	८१५	२०९
उत्पत्त्योत्पत्त्यो राजानो	२०१	१६३
उत्पद्यमानः प्रथमं	२३०	३८२
उत्पन्नकेवलज्ञानः	१००	१८८
उत्पन्नकेवलानां तु	६६८	२५२
उत्पन्ना आर्यदेशेऽपि	१२९	२८८
उत्पन्ने स्वामिनो ज्ञाने	३४६	१९५
उत्पाट्योल्लालयामास	२४८	३९७
उत्पृच्छो विधृतच्छत्र	३४	३१४
उत्पेदे स्वामिनो ज्ञानं	२०७	२८१
उत्प्रासनं स कन्दर्पो	९४	३०४
उत्फालचित्रककुल	११५	३९२
उत्फालमर्कटकुल	३१७	१९४
उत्फुल्लसुमनोभूरि	१२०	३४८
उत्सङ्गे हृदये दोष्णोः	१६	१८५
उत्सर्पयन् दोषशाखां	२७३	३८३
उत्सवं वसुपूज्योऽपि	५५	३४५
उत्सवेन गरिष्ठेन	७९	३७७
उत्साह-मन्त्र-प्रभुता	६	२६९
उत्साहादुत्प्लवमानैः	४६	२१५
उत्सृज्य तृणवद् राज्यं	२९१	२६५
उदक्श्रेणेस्त्वमी भूता	३९३	१७८
उदग्द्वारा प्रविश्याऽथ	३३९	२६६
उदग्द्वारेण समव	४१६	१९७
उदगम्भाचतुःशाले	१५६	२६०
उदयन्निव मार्तण्डः	८०	२१६
उदयाद्रेरिवाऽऽदित्यो	५८५	२४९
उदस्तपूर्णकुम्भाभ्यां	२५	१६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
उदाजहार सगरो	५२४	२४७
उदासे शिबिका पूर्वं	२१०	१९१
उदियाय च पूर्णेन्दुः	१९७	२३८
उदीरयामास ततो	१५०	३६०
उदीरितमहादुःखा	८९	२८७
उदीरिते सूरिणैवं	१४३	१६१
उदीर्णस्वागतमिव	६२	३६६
उद्घाटितं गुहाद्वा	१८९	२१९
उद्दण्डपुण्डरीकाढ्या	१७	३०१
उद्दामदुन्दुभिध्वान	८२६	२१०
उद्दामभ्रकुटीभीम	१४२	२३०
उद्दिश्य क्षुद्रहिमवत्	२४८	२२१
उद्दिश्य तत्र तं नाग	५६०	२४९
उद्धूतचामरः कैश्चित्	३०४	३९९
उद्बुद्बुदरवैः कुम्भैः	४२५	१७९
उद्बुद्धया तयाऽऽख्यातान्	२२५	३२०
उद्यानद्वारसौवर्ण	४१२	१९७
उद्यानपादप इव	९२	२७२
उद्यानपालबालाभिः	५९	३५७
उद्यानमिव चारित्रं	७३	३६६
उद्यानादिप्रदेशेऽपि	१३५	२७९
उद्यानादिषु ते स्वैरं	५०	२२७
उद्यानादिषु रम्येषु	१४	२६९
उद्यानेऽरिन्दमाचार्यं	२४७	१६४
उद्यानेषु विचित्रेषु	८१	२२८
उद्यानैर्विपुलैस्तत्र	२८	२७०
उद्वाहमण्डपमिव	१४२	३६०
उद्विग्ना यावदस्थात् सा	८७२	२११
उद्विद्रुममिवाऽम्भोधिं	२८२	१७५
उद्वीचिहस्तकैर्नृत्यन्	१३१	२५९
उन्नतस्येव मेघस्य	८७	२९३
उन्नतं पार्श्वतः किञ्चित्	५३	१६८
उन्नमद्बाहवश्चेलान्	२९१	१९३
उन्नेमुर्जलदाः सद्यो	७१०	३३७
उन्मग्नायां विनिक्षिप्ता	१९२	२१९
उन्मार्गदेशना मार्ग	१०९	३०४
उन्मृष्टाङ्गो दुकूलेन	५५९	३३१
उन्मृष्टो गन्धकाषाय्या	६४३	२५१
उपचारं प्रयच्छन्तः	१८	३६४
उपचारार्हणीयेषु	५५२	२४८
उपत्यकायां तस्याद्रेः	५७३	३३२
उपदुद्राव तान् सर्वान्	५३६	३३१

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
उपपाद (त) भवा देव	२३९	३७२
उपमानपदं किं स्यात्	३६८	२६७
उपर्युपरि कल्लोलं	३२	१६८
उपरि व्यन्तरश्रेण्यो	६१०	२०३
उपरिष्टाच्चतुर्विंशां	६३४	२०४
उपरिष्टाद् गणभृतां	८२०	२०९
उपरिष्टाधस्ताच्च	६५२	२०४
उपरोधात् तयोः स्वं च	७३	१८७
उपलक्षयितुं ते च	४२०	२४४
उपलक्ष्येव संसार	५८	२९२
उपवासे ततः षष्ठे	४०	२७६
उपसर्गैरनुद्विग्नो	१०१	२५८
उपसंवर्गितामोदो	८२५	२०९
उपस्थितो युगान्तोऽयं	३६१	२४३
उपात्तोपायनः सोऽथ	१२१	२१७
उपाध्यायेनाऽप्यभग्ना	४६	१८६
उपायनमुपादाय	१२४	२१७
उपायं प्रायुङ्क्त तुर्यं	८	२५५
उपाययुरुपाध्यायाः	५३७	१८३
उपायैर्वर्धयंस्तैस्तैः	६	३०७
उपास्यमानस्ताभ्यां च	११५	३१०
उपास्यमानां तां ताभिः	११	२७५
उपेक्ष्य लोष्टक्षेप्तारं	२४३	३८३
उपेतेषु चमूपाले	१६७	१९०
उपेत्य पुष्करोदेऽपि	४२७	१७९
उपेत्य पौरप्रवरा	१७६	१९०
उपेत्य शीघ्रं पुरुष	२०६	३८१
उपेत्याऽरिन्दमाचार्यान्	८९	१६०
उभयोरपि चोर्ध्वाऽधो	५७	१५९
उभयोरप्ययुद्ध्यन्त	२६९	३९८
उभाभ्यामिति विज्ञप्तो	१५७	२८०
उभावथाऽऽसाञ्चक्राते	४८७	३२९
उभावपि गजारूढौ	४७२	३२९
उभावभ्यज्य तैलेन	१५३	२६०
उभौ हर्षाश्रु वर्षन्तौ	१६०	३९४
उरःस्थलकराघात	१८१	२३७
उर्वीरवरजा रम्भा	२५	३६५
उलूकवत् प्रविविशुः	६३२	३३४
उलूलुध्वनिना तूर्यं	४९४	३२९
उल्वणैर्ध्मायमानानां	४९८	१८२
उष्ट्रपृष्ठसमारूढः	३०८	२४१

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
उष्णवात्याभिरनल	१३१	३९१
उष्णेन तप्तो नाऽनिन्द	२७९	१६५
"ऊ"		
ऊचतुश्च महाभाग !	३९२	४०२
ऊचे च राजा यद् वेत्सि	३३२	३२४
ऊचे पुरुषसिंहोऽथ	१८२	३८१
ऊचे विमाता वादोऽयं	१५१	२७९
ऊचे सनत्कुमारोऽपि	३५९	४०१
ऊनमष्टाविंशत्यङ्ग्या	१४७	३०६
ऊरू च कदलीस्तम्भ	१९०	३१९
ऊर्ध्वं वप्रान्तरावन्या	३२७	२६६
ऊर्ध्वं विद्याभृच्छ्रेणिभ्यां	६०९	२०३
ऊर्ध्वा-ऽधोभागयो रज्जु	७९८	२०९
ऊर्जितं गर्जितं तादृक्	७४२	३३८
ऊर्मयोऽपि हि गण्यन्ते	१९१	२८१
"ऋ"		
ऋतुकालव्यतिक्रान्तौ	३२५	३५४
ऋतुः साक्षादिव मधुः	६४	२७७
ऋद्धया महत्या चक्रस्य	२७	२१४
ऋद्धया महत्या भुजङ्ग	१४	३०७
ऋद्धया महत्या श्रीदेवी	४२८	३२७
ऋद्धया महत्या सहितो	८१५	३४०
ऋषभस्वामितीर्थस्य	९८	१८७
ऋषभस्वामिनिर्वाण	१००	२२८
ऋषभस्वामिनो बिम्बं	१०१	२२९
ऋषभस्वामिनो वंशे	१९४	२३७
ऋषभस्वामिपुत्रेण	५५३	२४८
ऋषभा वर्धमाना च	७१४	२०६
ऋषभाविव गर्जन्तौ	४७३	२४६
ऋषभे भरतश्चक्री	१०३	१७०
"ए"		
एक उत्पद्यते जन्तु	२३०	२८२,
	१३२	१८९
एक उल्लालयन् वज्रं	३४३	१७७
एक एव समादत्ते	२३७	२८२
एककोश इव खड्गा	२१४	२३८
एकच्छायं क्षितिरुहैः	२५४	१९२
एकजीवपरिमाण	३७०	३७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
एकं तमेव हत्वाहं	१३१	३६०
एकतः सर्वकृत्यानि	३९	२७०
एकतः सर्वसौख्यानि	३२	२७६
एकं तावत् कृतं कर्म	३६१	३२५
एकदाऽपि कृतान्यायं	२२२	१६४
एकदा मासिकं च द्वि	३२२	१९५
एकदा सर्वसामन्ता	१३७	३४८
एकदेश इव स्वर्ग	५	१५७
एकं द्विजन्ममिथुन	८५१	२१०
एकं निबन्धनं तस्य	९१	२९९
एकपादेन फालाभं	११	२८४
एकयोजनमानेन	४९	२१५
एकयोजनसहस्र	५५६	२०२
एकरश्मिधृतानीव	३०८	२६५
एकविंशसप्तदश	६३३	२०४
एकविंशैर्योजनानां	५३२	२०१
एकः शक्रः प्रभुं दध्रे	६९	२७१
एकः शल्यायते किन्तु	९२	२५८
एकस्मिन् मोचके कुन्त	१६५	३६९
एकस्य धर्मचक्रित्वे	९२	१८७
एकस्यैकस्य चन्द्रस्य	५३९	२०१
एकसहस्रोनद्रोण	२९१	२२२
एकः सुरपतिस्तेषु	३३९	१७७
एकाक्षा बादराः सूक्ष्माः	२४६	३७२
एकाक्षाः स्थावरा भूम्य	२२९	३७१
एकाकिना च जतव्यं	१०७	२७८
एकाकिनी किमगच्छः	२८	३९०
एकाकी निर्ममो मौनी	७१	२९८
एकाकी मौननिरतो	७०	२९३
एकाङ्गो निर्ममोऽसङ्गः	६३	३०३
एकाङ्गोने पूर्वलक्षे	६७१	२५१
एकातपत्रं साम्राज्यं	२५८	३२१
एकादश–द्वादशयोः	४१८	१७९
एकादश सहस्राणि	१६७	२७४,
	११७	२९४
एकान्तदुःखदग्धानां	२९०	२६५
एकान्तानन्तसुखदः	६६	१५९
एकामिषाभिलाषेण	३२३	३८५
एकावलीप्रभृतिभिः	१२	३०१
एकासनसमासीना	४३५	२४५
एकाहमपि निर्मोहः	२६२	१६५
एकेन तेनासकरा	२३	३७५
एकेन प्रभुमुद्धृत्य	६६	३१५
एकेनौष्ठेन चाकर्ष	३९६	३२६
एकोनत्रिंशतं पूर्व	२०२	२८१
एकोनद्वात्रिंशल्लक्षा	२६८	१७५
एकोऽपराधो भवन	१७२	२३१
एकोऽयमेव जगति	४१९	१९७
एणीजङ्घाप्रतिरूपे	६७	१८७
एत एवान्यथारूपाः	१२४	३०५
एतत् तदेव वदनं	४३२	२४५
एतदेव कृतं चैत्यं	१३२	२२९
एतद् वलयविष्कम्भे	७०४	२०६
एतस्यामवनौ तावद्	११७	२३५
एतस्यामवसर्पिण्यां	४२	१६८,
१२५ २५९,	१४९	१७१
एतस्यास्तनयो नार्य	१७६	२८०
एतस्मिन् भरतक्षेत्रे	७८	२१६
एतानि जीवस्थानानि	२४७	३७२
एतान् गर्भस्थिते तीर्थे	१००	१७०
एतामपहरिष्यामि	१५	३८९
एतां चमत्कारकरीं	२२६	२८२
एतावन्तश्च भृङ्गारा	४२२	१७९
एते च विजयादेव्या	३६	१६८
एते तदा विष्णुदेव्या	४०	३१४
एते ददर्शिरे स्वप्नाः	८२	१६९
एत्य प्रदक्षिणापूर्वं	२१३	१७३
एत्य विद्याधरौ द्वौ च	२५७	३९७
एत्य शक्रो मेरुशैले	३१	३५७
एत्याऽपरेद्युः सगरं	३४९	२२४
एभिः प्रलापैस्तदलं	३६	२३३
एभिः स्वप्नैर्महादेवि	६९	१६८
एभिः स्वप्नैस्तव देवि !	५७	२७१
एयुश्चतस्रश्चित्राद्या	१४८	२६०
एयुश्चतस्रो रूपाद्या	१४९	२६०
एयुस्तत् सूतिकावेश्म	१९१	१७२
एवमभ्यर्थितस्तेन	२२७	३९६
एवमन्तःपुरस्त्रीणां	२३	२३२
एवमभ्यर्थ्यतां सर्वं	१२७	३६०
एवमस्त्विति राजाऽपि	१६३	२८०
एवमस्त्रान्तरैरस्त्रा	१७५	३७०
एवमात्मानुरूपं तौ	५६	१८६
एवमाभाषमाणस्य	५३३	२४८
एवमालप्य सत्कृत्य	२४२	२२१
एवमालोच्य ते सर्वे	३८	२३३
एवमाश्वास्य तान् राज्ञः	७६१	३३८
एवमाश्वास्य तान् सर्वान्	६०	२३३
एवमासूत्र्य सूत्रामा	२१३	२६२
एवमिन्द्राश्चतुःषष्टिः	४१७	१७९
एवमुक्तवतस्तस्य	१८९	३७०
एवमुक्तः ससंरम्भं	१६५	३८०
एवमुक्त्वा तु सा स्वामि	१२७	३७९
एवमुक्त्वा विश्वभूति	१३७	३१८
एवमुक्तः कुमारेण	७९	२७७
एवमुच्चैः प्रतिज्ञाय	२५८	२३९
एवं कुमारः कुपितः	१३३	३१७
एवं कोलाहलं व्योम्नि	२९७	१९४
एवं च चिन्तया तस्य	४०३	३२६
एवं च चिन्तयामासुः	१४७	१७१
एवं च तीर्थकृत्कर्मो	३०१	१६६
एवं च दध्यौ ज्वलन	४९६	३२९
एवं च देशनां श्रुत्वा	१०६	२९४
एवं च प्राक्प्राग्वलय	५००	२००
एवं च पालयन् राज्यं	१२०	१८८
एवं च मानविषयं	२८०	३८४
एवं च सेनापतिना	२५४	१७४
एवं चिन्ताप्रपन्नेषु	६१६	३३३
एवं जह्नुकुमारेण	१५५	२३०
एवं जितकषायः स	३४८	३८६
एवं जिनपतिं स्तुत्वा	५३	३४५
एवं तत्त्वानि जानानो	२८७	३७४
एवं तदुक्त्याऽभ्यधिकं	१६२	३८०
एवं तयोरालपतो	२४७	३९७
एवं तस्या श्रुवाणायाः	४२५	२४४
एवं तां देशनां श्रुत्वा	३५०	३५५
एवं तीव्रं तपस्तप्त्वा	३०४	१६६
एवं तृणवदस्त्राणि	७१२	३३७
एवं दशममर्हन्तं	४५	३०८
एवं देवविमानानां	७८०	२०८
एवं देशनया भर्तुः	२८८	३७४,
	८४५	३४१
एवं निसर्गसर्वाङ्ग	२३२	२६३
एवं नैमित्तिकगिरा	४६६	३२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
एवं पित्रा समादिष्टो	१०८	३७८
एवं पुरुषसिंहेन	१८४	३८१
एवं प्रबोध्य पितरौ	१०६	३४७
एवं प्रवृत्ते समरे	६५८	३३५
एवं प्रशस्तनामानो	७४२	२०७
एवं मनसि निश्चित्य	१६	३८९
एवं मन्त्रिभिरप्युक्तः	१९६	१६३
एवं महादुःखहताः	९९	२८७
एवं रुदित्वा विविधं	३३	२३३
एवं लक्षाणि योनीनां	२४५	३७२
एवं वत्स ! विचारेण	१९२	१६३
एवं वदन्त्यां पश्यन्तां	४२२	२४४
एवं वसुमतीनाथे	२४६	२३९
एवं विचित्रक्रीडाभिः	२२६	२६२
एवं विचित्रमानन्दात्	४५९	१८०
एवं विचिन्त्य नृपतिः	१९८	३२०
एवं विचिन्त्य पुरुषैः	३२९	३२४
एवं विचिन्त्य संसार	४१	३९०
एवं विचिन्त्य सुचिरं	१३	२८४
एवं विचिन्तयन् प्रीतेः	५८१	२४९
एवं विज्ञप्य यातेषु	१०९	३४७
एवंविधैरनुष्ठानैः	१३	३०१
एवं विभक्तावयवा	१९१	३१९
एवं विमृश्य मनसा	४९८	३२९
एवं विलापिनमथो	२०३	२३८
एवं विश्वजनीनेन	८११	२०९
एवं शार्ङ्गिणमाश्वास्य	१३३	३७९
एवं सनत्कुमारस्य	१४७	३९४
एवं समाकर्ण्य सनत्	१५८	३९४
एवं स राज्ञाऽभिहितः	२६५	२४०
एवं सुखं वैषयिकं	४४	२२७
एवं स्तुत्वा विरतेषु	२१८	३८२
एवं स्तुत्वा स्थिते शक्रे	८१	२८६
एवं स्थिते च सर्वज्ञो	४१	२२७
एवं स्वप्नफलं राज्ञो	७१	१६९
एवं स्वर्लोकवस्तूनि	१७४	२९०
एष छेत्स्यामि ते शीर्षं	१५१	३६०
एष छेत्स्यामि संसारं	८८	३४६
एषणीय कल्पनीय	४६	२५७
एषणीयं कल्पनीयं	३०४	२६५
एष येषां प्रमाणेन	२८५	२४०
एष सिंहः पुरुषेषु	८२	३७७
एषां पृथक् पृथक् स्थाना	६२	१५९
एषोऽपि सुभटम्मन्यः	१७९	३७०
एषोऽहं वज्रवेगारिः	२७४	३९८
एह्येहि भो ! समित्कण्डू	३८९	३२६
"ऐ"		
ऐशानदिश्यूर्द्ध्व-मध्य	८३२	२१०
ऐशान-सनत्कुमार	७७६	२०८
ऐशान्यादिविदिक्ष्वन्त	६९१	२०६
ऐशान्यां पालकं मुक्त्वा	६४	३१५
"ओ"		
ओजो दधन् माघवनं	४४३	२२८
ओमित्यूचे विमाता तु	१७०	२८०
"औ"		
औदार्य-धैर्य-गाम्भीर्य	३०	१५८
औदासीन्येऽपि सततं	२७५	१९३
"क"		
क एते मामुपद्रोतुं	२३०	२२१
ककुभो द्योतयद् दूराद्	४१	२१५
कच्छूशोषज्वरश्वासा	३८५	४०१
कच्चित् स्मरसि भूनाथ	५१४	२४७
कश्चिदप्यतिबाह्यैव	१०	३६४
कटाक्षमिव कालस्य	६७७	३३५
कटिस्थकरवैशाख	४७८	१९९
कट्या हृदि च पृष्ठे च	२१२	३५०
कणयेन त्रिशूलेन	३७	१८६
कर्णौ शिरसि सुस्तब्धौ	३७९	३२६
कण्टकोच्छेदपरशो	१९	२५६
कण्ठश्च लटभो नालं	१८७	३१९
कण्ठे हा ! रनीहारादि	२६९	२६४
कण्डूयद्भिः सैरिभेभ	१२४	२३५
कतरः स्ववधायैव	६६२	३३५
कतरः स्वामिनमपि	६६३	३३५
कथञ्चिदपि लब्धेन	२५	२५६
कथञ्चिद् बलभद्रेण	८९	३७८
कथमत्र समायासी	१६५	३९४
कथं गम्यः कथं प्रार्थ्यः	२८९	३९८
कथं न कोऽपि ब्रूते यः	१८५	२३७
कथं वा कथयिष्यामः	४३	२३३
कथं संसारवैराग्यं	९६	१६०
कथान्तरे जगन्नाथं	८५२	२१०
कदाचिच्च भ्रमरकैः	६०	३४६
कदाचिच्चातक इव	८६८	२११
कदाचिच्चारुसंगीतैः	२९२	३९८
कदाचिदन्याभिरपि	२९४	३९८
कदाचिद् दिव्यवापीषु	२९३	३९८
कदाचिद् वारितरणैः	६२	३४६
कनकच्छेदगौराङ्गो	७८	३९१
कन्दर्पशासनमिव	२५०	१६५
कन्दरेषु गिरीन्द्राणां	१०७	३९२
कन्यादानं महीदानं	१५८	३०६
कपाटपृथुले तस्य	२२	२९६
कपाटोद्घाटनं तच्च	१८३	२१९
कपित्थैः पातितैश्छन्नां	१३४	३१७
कपोलपाल्योर्ग्रीवायां	४३९	२४५
कं प्रति स्वयमावेशो	२५२	१७४
कफ-मूत्र-मलप्रायं	२७०	१६५
कफविप्रुड्जल्लमल	३८७	४०१
कबन्धास्ताण्डवं चक्रुः	६५६	३३५
कम्बोजेषु वाल्हीकेषु	७६	३४६
करमुक्तैर्यन्त्रमुक्तैः	१७७	३८०
करिराजकराकार	३५१	४००
करीन्द्रकरकल्पोरु	२३०	२६३
करेणुकाधिरूढाभिः	७५	१५९
करोतीत्यन्तकालेऽपि	७६	२५८
करोम्येवं विनष्टे किं	१९३	२३७
कर्कोटकः कार्दमकः	६३५	२०४
कर्कोटको विद्युज्जिह्वः	६३६	२०४
कर्णमर्माविद्भिरिव	१४५	३९४
कर्णिकारैः कणिकाभि	६१	३६६
कर्बटानां मडम्बानां	२९२	२२२
कर्म-काय-मनो-भाषा	२६८	३७३
कर्मणः प्राक्तनस्यैव	५९	३९१
कर्मणां स्थितिघातादी	२५७	३७२
कर्मध्वंसः शुभध्याना	४४०	१९८
कर्माणि भवमूलानि	४५	२९७
कर्माहिपाशनिर्णाश	२	१५७
कर्षकर्ष निषङ्गात् ता	१७३	३७०
कलत्रं त्रायमाणेन	४८४	२४६

श्लोक नं.		पृष्ठ नं.
कलत्र–पुत्र-मित्राद्यैः	१३७	१६१
कलशा–ङ्कुशिनौ बाहू	१४१	३०५
कलाकलापकलनाद्	१६	१६७
कलाकलापं सोऽध्यैष्ट	११४	३१७
कला जग्राह सकलाः	६१	२७७
कलापिकलकण्ठादि	११५	१६०
कल्पद्रुरिव पत्राणि	४०१	२४४
कल्पान्तकल्पे दुष्काले	३५	२५६
कल्याणकन्दलोद्भेद	७३	२७७
कल्याणकल्पनाकल्पो	५४०	१८३
कल्याणकारणं दातुः	३०५	२६५
कल्याणकैर्गर्भ–जन्म	१२४	२२९
कशाभिस्ताडयन्तोऽश्वान्	५२७	३३०
कशामुत्क्षिप्य चैकेन	९१	३९२
कश्चिदुद्भाव्यतां तस्य	२२७	३५१
कषाय–नोकषायाणां	१०५	३०४
कषाया विषया योगाः	८४	३०३
कषायोदयतस्तीव्र	९३	३०४
कस्त्वं ? किमागतोऽसीति	२७६	२४०
कस्मैचिदन्यथैकस्मै	४५१	३२८
कस्य तिष्ठस्यवष्टम्भाद्	१६३	३६१
कस्यापि मायिनोऽदोऽपि	२३२	३९६
कस्याश्चिद् योषितस्तत्र	२३३	३९७
काकतालीयन्यायेन	७	३८९
काकोलैश्चकिरे रोला	५६९	३३२
काचखण्डेन स मणि	५३१	२४८
कातरोऽसीति सचिवं	५५६	३३१
कानप्युन्मूलयन् राज्ञः	८५	२१६
कानप्युन्मूलयामास	२०७	२२०
काऽप्यपेक्षा मुमुक्षूणां	६४०	२५१
काममर्थं च धर्मं च	२०	३६४
कामवर्षिणि लोकानां	३९१	१९७
कामार्थौ पादकण्टक	४	३८७
काययोगे स्थितः सूक्ष्मे	६८०	२५२
काये वयसि चित्ते च	३१०	३८५
कारवश्चानयजाश्चैव	२९१	३८४
कारागारात् पुराबद्धा	२२९	३२१
कारामोक्षादिना यच्छ	२००	३५०
कार्मणेन च सा तेन	२२	३८९
कालक्रमेण पितरौ	८६५	२११
कालद्वये तदुपरि	६२२	२०३
कालमुखान् जौनकांश्च	१६७	२१९
कालं विनाऽस्तिकायाः स्युः	२६५	३७३
कालः सुरूपोऽथ पूर्णे	४०४	१७९
कालसेयेन च क्षीरं	५३२	२४८
कालादिष्टेन सद्योऽपि	५७	२५७
कालिका च तथोत्पन्ना	१६१	२७४
कालिकेवांऽशुमद्बिम्बं	११६	१७०
काले च कृत्वाऽनशनं	१४	३७५
काले चासूत सा सूनु	२०	३८७
काले त्वशीतला–ऽनुष्ण	४६०	१९९
कालेन क्षपयित्वाऽऽयुः	१२	२९६
कालेन गच्छता सोऽभू	९	२९१
कालेन च त्रिदण्डित्वं	५०	३९०
कालोदः पुष्करोदश्च	७४४	२०७
काश्चन प्रस्खलन्तीषु	२१५	१९१
कांश्चित् कौञ्चनिषदना	८४	१५९
काश्चित् तत्कालमुद्ग्राह	२१८	१९१
कांश्चित् तार्क्ष्यासनान् कांश्चित्	८५	१६०
कांश्चिदुत्कटिकासीनान्	८२	१५९
काश्चिद् ददत्यः कनक	१४१	१७१
काश्चिद् देशान्तरादिष्टा	२१७	१९१
किञ्च त्वामप्यनापृच्छ	१९०	१६३
किञ्च पुत्रक्षयं श्रुत्वा	४६	२३३
किञ्च सम्भाव्यतेऽमुष्या	१५९	२३०
किञ्चाऽसौ मे पिता माता	१४२	२३६
किञ्चिच्च सुकृतं कृत्या	१८	२२६
किञ्चित् कथयतां तेषां	१५६	३०६
किञ्चिदुन्नमितग्रीवः	३३९	२४२
किञ्चिदुन्नमितैकभ्रूः	२३१	२३९
किञ्चिदुन्मीलयन् नेत्रे	३७३	३२५
किञ्चिद् विमृश्य तं शरं	७०	२१६
किञ्चिन्नातः परं वाच्य	१४५	३१८
किन्तु नाऽद्यापि करुणा	३३२	२४२
किन्तु पातालगम्भीरा	१५८	२३०
किन्तु विज्ञपयाम्येकं	११०	२७८
किन्त्वष्टापदतीर्थस्य	१५०	२३०
किन्त्वसौ गृहवासस्थैः	९२	२७८
किन्नरैर्नलताभिः	१६०	१७१
किमनेन प्रभो ! पृष्टं	८६०	२११
किमन्यैरुत्सवैस्तासां ?	२०	२७५
किमन्योऽप्यीदृशः कोऽपि	३४२	४००
किमस्मदधिकं हन्त	१४३	३४८
किमाधिर्बाधते कोऽपि	२६	२७५
किमिन्द्रियाणां दमनैः	३३७	३८६
किमुन्मत्तोऽथवा मत्तः	१५०	३६९
किमेतत् तव पुत्राभ्यां	१२६	३६०
किं कुलेन कुशीलस्य	२६२	३८३
किं तिरोधानविद्येह	२६	२३२
किं त्वत्र संसारपथे	१००	३४७
किं नामाऽभ्रंलिहेनाऽपि	१४६	१८९
किंनिमित्तमिहायातौ	३५५	४००
किं पुनः स महाभाग	२६३	१६५
किं मत्तेन प्रमत्तेना	१२७	३६८
किं मुधा सैन्यसंहारे	१४१	३८०
किं रागद्वेषसंकीर्ण	३३९	३८६
किं वा गन्धविहीनेन	१४८	१८९
किं वा निर्झरहीनेन	१४७	१८९
किं वा रत्नानि केनाऽपि	७५	२३४
किं वा रथादिकर्ताऽसि ?	२३८	२३९
किं वा वीणाप्रवीणोऽसि ?	२४१	२३९
किं विसृष्टास्त्वया नामी	८७७	३४२
कियत्यपि गते काले	२१६	३२०
किरीट–रत्न–मुक्ताख्य	१०३	२१७
किरीटं मूर्ध्नि सर्वस्य	२६८	२६४
किल्बिषिकाश्चेति तेषु	७७१	२०८
कुकूलैरिव विस्तीर्णैः	१२९	३९३
कुङ्कुमेन व्यधीयन्त	५४५	१८३
कुञ्जरः कुञ्जरेणेव	६८	३७७
कुञ्जराणां वाजिनां च	२९६	२२२
कुञ्जराभ्यां पूर्णकुम्भ	२१९	३२०
कुटिल–श्यामलैः केशैः	६०	१८६
कुटुम्बिका इव वयं	१७३	२१९
कुटुम्बिनः पत्तयो वा	२४०	२२१
कुट्टयित्वा रासभव	३२४	३२४
कुण्ठापि यदि सोत्कण्ठा	८३	२७१
कुण्डलादिष्वलङ्कारे	२२०	१९१
कुण्डलीभूतनालाभान्	२७०	२६४
कुण्डले च दुकूले च	२०८	२६२
कुतः सम्भाव्यते तेषां	१६८	२३७
कुतो हेतोरियत्कालं	६६४	३३५
कुत्र कुत्र न बाऽटव्यां	८६	३४६
कुत्र कुत्र न वा देशे	८५	३४६
कुत्र कुत्र न वा द्वीपे	८७	३४६
कुन्तप्रोतोऽपि हुंकुर्वन्	१६७	३४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
कुन्तं शक्तिं शर्वलां च	५२	१८६
कुपिता मामिनी साऽथ	४५४	२४५
कुपितोऽथ हयग्रीवः	६८२	३३६
कुभोजनेनाहरिव	१०	३१३
कुमार दोषेणाऽऽत्मानं	३५१	३२५
कुमार ! परित्रायस्व	११२	३७८
कुमारभावे पूर्वाणां	१२३	३१०
कुमारयोर्दुर्ललितं	३३६	३२४
कुमारस्यापहरणं	१०५	३९२
कुमारावूचतुर्ज्ञात	३५८	३२५
कुमारे कवचहरे	१६१	१६२
कुमारैः सह ये जग्मुः	६५३	२५१
कुमारो मामुपेत्येह	१४९	३७९
कुमुदं कौमुदीनाथे	१९७	१६३
कुमुदानीन्दुभासेवा	१३५	३०५
कुम्भकारस्य तस्यापि	५९३	२५०
कुम्भः सनाभिः स्तनयोः	२४	३६४
कुम्भिकुम्भस्थलोच्चे	४०४	१९७
कुम्भेभ्यो निपतस्तेभ्यो	४४२	१८०
कुम्भो भद्रासना–ऽऽदर्शौ	४६४	१८१
कुरवो गजपुरेण	६६८	२०५
कुराला सर्वविधिषु	४९	३०२
कुरूणां मध्यभागेन	५७३	२४९
कुरुवंशनभोभानो	२४१	३९७
कुरुवंशसरोहंसा	१५६	३९४
कुर्वतां गीतनृत्यादि	३४३	३५५
कुर्वन् कृताञ्जलीन् कांश्चित्	८७	२१६
कुर्वन्तोऽथाऽष्टाह्निकां	१७७	२७४
कुर्वन्तो भीषणान् नादान्	६११	३३३
कुलक्रमागताऽप्येषा	२१३	१६३
कुलदेवाऽपवादेभ्यो	२१५	१६३
कुलदेवतयाऽथोक्तं	१०५	२३५
कुलं राज्यं पुरीं चाऽत्रा	८९	२७२
कुलश्रीरिव सा मूर्त्ता	२१	३५६
कुलार्यास्तु कुलकराः	६७५	२०५
कुलीनाः कृतिनः शूरा	७८	३४६
कुलीनैः सचिवैरात्म	२११	३२०
कुशास्त्रश्रवणं सङ्गो	२०९	३६२
कुष्ठादिव्याधिजा बाधा	११३	२७८
कुसुमामोदमत्तालि	२४३	१९२
कूटषाड्गुण्ययोगेन	२८३	३८४
कूटाः कूटतुलमाना	२८५	३८४
कूष्माण्डदारमुदरा	५	२३२
कृतचर्चाश्चन्दनेन	४३८	१८०
कृतमालमिधं तत्र	१४६	२१८
कृतषष्ठतपा माघ	२५८	१९२
कृतषष्ठः पारणाय	३८३	४०१
कृतस्नानाः कृतप्रायः	७३	२२८
कृतस्मितमिव स्मेर	६३	३५८
कृताङ्गरागः आमुक्त	१०७	२७२
कृताङ्गरागो भगवान्	६१	३०९
कृतान्त इव सङ्क्रुद्धो	१४४	२३०
कृतार्थमद्य मे जन्म	३०६	३५३
कृतार्थं मेऽभवज्जन्म	१२२	३७९
कृतार्थयन्नर्थिवर्गान्	१०६	३६७
कृतार्था दर्शनेनापि	८९	२९३
कृतार्थीकृत्य भूयिष्ठैः	५१९	२४७
कृतौर्ध्वदेहिको भ्रातुः	८९९	३४३
कृत्रिमं जज्वलुः केऽपि	४५८	१८०
कृपया पितृवत् तेषां	२१२	२२०
कृपाघनो धिनोति स्म	१८८	१९०
कृशाश्च कुलिशस्येव	६६	१८७
कृशानुवर्षिणी नाग	५८४	३३२
कृषि–सेवा–पाशुपाल्य	३४३	३८६
केचिच्च ढौकयामासुः	५५८	१८४
केचिच्छार्णैर्निघृष्यन्ते	१०४	२८७
केचिदानन्दबहलं	४५७	१८०
केचिदास्फालयामासुः	३	२३३
केचिद् गजवरारूढा	७५	२२८
केन चाऽभ्रंलिहमिह	९५	२२८
केनैष मुषितः ? कोऽयं	६५	२३३
केऽपि केऽपि कुतोऽप्येत्य	१४३	२३६
केऽपि खेन समापेतु	५३०	३३०
केऽपि चाचालयन् पाद	४५६	१८०
केऽपि प्राकारशृङ्गाणि	२२६	१९१
केऽपि स्नात्रविधिं पेठुः	१११	२२९
केऽप्यद्भिर्भ्रमराश्चक्रुः	११०	२२९
केऽप्यास्वादितकिम्पाका	२	२३२
केऽप्युत्फुल्लकुपोलाऽऽस्या	४४८	१८०
केयूर–कटकादीनि	१३२	२१८
केवलज्ञानिनः पादान्	६०४	२५०
केवलज्ञानिनस्तस्माद्	६०२	२५०
केश–रोम–नख–श्मश्रु	४२४	१९८
केशाकेशि मुष्टामुष्टि	२४	२२६
केशानुत्पाटयामास	२५२	१६५
केशान् शक्रः समादाय	१०१	३१६
केषाञ्चित् पेतुरस्त्राणि	६३०	३३४
केसरी केसरभरे	११७	२५९
केसरीवेभयूथेषु	१७३	३४९
कैरपि द्विरदारूढैः	३०६	३९९
कैश्चिदग्रस्थितैः स्वस्व	११३	३४७
कैश्चिद् विज्ञप्यमानश्च	१९५	१९०
कोकिलाभिः कलालापो	२८	३७६
को गौरवी मेरुगिरौ ?	२७५	३२२
कोटिरेका हिरण्यस्य	१८५	१९०
कोटिशश्चारणवरैः	२४५	१७४
कोटीशतत्रयं स्वर्ण	२५९	२६४
कोटीश्वरो नरेन्द्रत्वं	३१४	३८५
कोणैराहन्यमानेषु	१७०	१९०
कोदण्डनागसंयुक्त	१८१	३६१
कोदण्डोद्दण्डदोर्दण्डो	२५	२८४
को दृष्टो विक्रमस्तस्य	६३५	३३४
को नाम मे बलोत्कर्षं	१७८	३७०
कोपाऽरुणकरालाऽक्षः	५४३	३३१
कोपारुणेक्षणद्वन्द्वो	१३४	३६८
कोपिष्यामि मुहुः कस्मै	४३७	२४५
कोऽप्येकदा मया पूर्वं	२८७	३९८
कोमलेन दुकूलेनो	२३१	१६४
कौङ्कुमेनाङ्गरागेण	५५२	१८३
कौङ्कुमेनाङ्गरागेण	५७५	१८४
कौटिल्यपटवः पापा	२८२	३८४
कौटिल्यशङ्कुना क्लिष्ट	३०३	३८५
कौतुकान्मिलिता व्योम्नि	३९८	३२६
कौबेर–वानवासेषु	७२	३४६
कौमारे पञ्चदशाब्द	५२	३७५
कौमारे पञ्चदशाब्द	२२७	३६३
कौमारे पूर्वलक्षार्धं	१५०	३०६
कौमारे पूर्वलक्षे द्वे	१२०	३००
कौमारे पूर्वाणां लक्षाः	१७३	२७४
कौमारेऽब्दलक्षे सार्धे	३६३	३८६
कौमारेऽब्दसप्तशती	३०५	३७४
कौमारेऽब्दसहस्राणि	५५	३८८
कौमारेऽयुः पूर्वलक्षा	२६१	२८३
कौमारे वर्षलक्षार्धं	४०२	४०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
कौमारे सप्त लक्षाणि	३०१	३७४
कौमारेऽस्य ग्रब्दशती	३६५	३८६
कौमारे स्वामिनो वर्ष	८६१	३४१
कौशलं सर्वशस्त्रेषु	२१९	३५१
कौसुम्भैनोत्तरीयेण	५५१	१८३
क्रथ–कैशिक–सूर्पार	७१	३४६
क्रमादासादयामास	८८	२१६
क्रमेण कवचहरो	२३८	३२१
क्रमेण तद्वदन्येऽपि	२६४	२६४
क्रमेण युगपच्चापि	५	१८५
क्रमेण संक्षिप्य स्तत् त	३६७	१७८
क्रीडत्पुरवधूकानि	१७	३४४
क्रीडदुत्तालवेताल	३१८	१९४
क्रीडया धावतो भर्तुः	२२४	२६२
क्रीडयाऽपि न ते मौनं	८९४	३४२
क्रीडयाऽपि प्रचलतो	२४१	३२१
क्रीडागिरिरयं तस्य	९८	२२८
क्रीडाघातमपि तयोः	११३	३६८
क्रीडानिमित्तमधुना	२९५	३९९
क्रीडाभिस्तत्र चित्राभिः	८७	३९१
क्रीडार्थमागतेनेह	७८	२७७
क्रीडावापी स्मरस्येव	१८९	३१९
क्रीडाशुक–मयूरादी	९	१८५
क्रीडाश्रान्तपुरस्त्रीणां	६०	३६६
क्रीडोद्यान–सरो–वापी	९७	२७२
क्रुद्धः सन्नार्यपुत्रोऽपि	२५०	३९७
क्रुद्धः स्वसैन्यभङ्गेन	१७५	३४९
क्रुध्यतः कार्यसिद्धिर्या	२३६	३८२
क्व च सा कुसुमामोद	११७	१६०
क्वचिच्च कुलनारीणां	५३९	१८३
क्वचिच्चौर्य क्वचिद् द्यूतं	१४०	२८८
क्वणद्घर्घरिकाश्रेणिं	६८७	३३६
क्व तद् रूपं क्व सा कान्तिः	३६४	४०१
क्व रे ! विद्याधरा ! याथ	६३४	३३४
क्व सा कुञ्जेषु विश्रान्त	[illegible]	१६०
क्वाधुना रोगीव सरितां	१३२	३९३
क्षणं चुकोप बाणेन	२५२	२२१
क्षणं तेन प्रहारेण	२६७	३५२
क्षणमध्ये क्षणं पृष्ठे	२२४	१९१
क्षणमात्रं प्रतीक्षस्वा	३३५	२४२
क्षणादवस्था वैचित्र्ये	३३०	२२४
क्षणादानाययामासु	२३७	१७४
क्षणाद् दृष्टं क्षणान्नष्टं	२१९	२३८
क्षणाद् रम्यमरम्यं च	१२८	१६१
क्षणान्मेरावतिपाण्डु	६७	३१५
क्षणेनाऽपि मया तस्य	४७९	३४६
क्षपायां क्षुधितोऽशेत	८६६	२११
क्षमया मृदुभावेन	९४	३१०
क्षमीभूतेषु पुत्रेषु	१७६	१६२
क्षरन्मदैर्गजवरैः	४१०	१९७
क्षान्तिः शक्तावशक्तौ वा	८०	२७७
क्षारेतररसाश्लेषाद्	१०६	२८७
क्षितेरसि त्वमाधार	२१०	१६३
क्षिप्तस्य तस्य खाद् भ्रश्य	३८०	२६८
क्षीणावशिष्टकर्मा च	६८२	२५२
क्षीरकण्ठोऽस्य रे ! बाल !	७१६	३३७
क्षीरोदः किमुदीर्णोऽसि	८२०	३४०
क्षीरोदात् त्रिदशैरम्भो	३२४	३९९
क्षीरोदादिसमुद्रेभ्यो	१८६	२६१
क्षीरोदे न्यस्य तान् केशान्	६६	३०९
क्षुधा–पिपासा–शीतोष्णा	१२४	२८८
क्षुधार्त्तः शक्तिसम्पन्न	२७६	१६५
क्षेत्राण्येषा हि खनति	५६५	२५९
क्षेत्रार्याः पञ्चदशसु	६६५	२०५
क्षेत्रे योजनमात्रे च	३३५	१९६
क्षेत्रे–सौध–विमानोप	४५९	१९९
क्षेमङ्करं क्षितिपते	९३	१६९
क्षेममेकाऽपरा योग	१४८	२७९
क्षोणीनाथ ! तवाऽत्रैव	४१०	२४४

"ख"

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
खड्गः खड्गो धन्व धन्व	३०	२३२
खड्गदण्डैः सदोर्दण्ड	६४८	३३४
खड्गधाराति निशितं	९२	३४४
खड्गपञ्जरमध्यस्थ	१४५	२७३
खटीव स्वाम्यनासीनः	३२९	१९५
[illegible]	[illegible]	३८८
खण्डप्रपातया सेना	४२	३८८
खनित्वा विवरं त [illegible]	२२३	१७३
खलीकृतेऽवजयाऽस्मिन्	२९८	३२३
खलीकृते स्वामिनि हि	२९९	३२३
खलूक्त्वा यदि वाऽनल्पं	५१	३४५
खिन्नखिन्नैर्मुच्यमानो	११९	३९३
खे खेचरथस्त्रस्त	३९४	३२६
खेचरास्तित्तिरशुक	१२५	२८८
खेटकानां सहस्राणि	२९३	२२२

"ग"

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
गगने शक्रयानेन	३५०	१७७
गङ्गाजलं तथाश्च	१६	३५६
गङ्गादिषु ह्रदिनीषु	४२९	१८०
गङ्गायाः पश्चिमे कूले	२७७	२२२
गच्छ गच्छाऽधुनाऽपि त्वं	७४३	३३८
गच्छतस्तस्य सहसो	५६३	३३२
गच्छ दूताधुनैवास्मान्	२४०	३५१
गच्छन्नग्रे च शुश्राव	१५२	३९४
गच्छन्नहि द्वितीयेऽपि	१७९	३९५
गच्छन् मार्गे शार्ङ्गपाणि	१७०	३६१
गच्छ माऽस्मद्वचो गोप्यं	१६४	३८०
गच्छंश्चक्रानुगो राजा	२४७	२२१
गच्छंस्तिष्ठन् शयानो वा	५६	२५७
गच्छानय रणाय स्वं	१५४	३६९
गजदन्ताकृती मूर्ध्नो	५९०	२०३
गजप्रभृतिकांस्तीर्थ	३३	३७६
गजरत्न ! किमाप्तस्त्वं	१८९	२३७
गजरत्नं गन्धवर	३३१	४००
गणभृद्देशनान्तेऽयुः	१३७	३०५
गण्डयोरुपधानत्वं	४२१	२४४
गण्डोपरि स्फोट इव	६०३	२५०
गतकामो यथा कामं	५७	३०३
गतं दुःखेन विश्वस्या	८५	२९३
गतायां पूर्वपञ्चाशत्	५४	३०३
गति–जात्यादिवैचित्र्य	४७३	१९९
गतीन्द्रिय–काय–योग	२४८	३७२
गतेऽथ तस्मिन् पप्रच्छुः	३४०	४००
गते प्रस्खलयामासुः	१०	१८५
गतेषु तस्य देवस्या	६७	३७७
गतेषु तेषु देवेषु	२५३	३६३
गतेषु वर्षलक्षेषु	५३	३५७
गत्वा क्रमात् ते सन्नद्धा	२७१	३२२
गत्वा च दक्षिणं रोधः	२८	२८७
गत्वा न शिबिरं स्नान	८१	२१६
गत्वाऽदूरात् सप्तपर्णे	१८५	३९५
गत्वा नन्दीश्वरद्वीपं	८३९	२१०
गत्वा पदानि सप्ताष्टा	४४	१६८
गत्वा वेश्मन्याचचक्षे	९२७	२१२
गत्वाऽऽशु सोमं ससुतं	१३८	३६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
गत्वा सपरिवारोऽपि	१०७	३७८
गत्वा स्नानगृहे स्नानं	२९	२१४
गत्वोद्याने सविनयं	३७९	४०१
गत्वोपनिन्ये तत्सर्वं	१७५	२१९
गत्वौको लोकमाहूय	६१	३९१
गदामुद्गरदण्डाद्यैः	११२	३५९
गदा–मुद्गर–दण्डादी	२५८	३५२
गन्धकार इवाऽऽयुक्तो	२००	१९१
गन्धद्रव्याणि सर्वाणि	१८८	२६१
गन्धद्रव्यैः सुरभिभिः	२३०	१७३
गन्धर्ववर्गसङ्गीतं	२५३	२३९
गन्धर्वव्यन्तराश्चारु	५१९	२००
गन्धर्वाणां प्रभुर्गीत	५२३	२०१
गन्धर्वेषु च गायत्सु	१७३	१९०
गन्धर्वेषु मृदङ्गादि	२३६	२६३
गन्धाम्बुवृष्टिरभवद्	१३६	२६०
गन्धांश्च चूर्णवासांश्च	२०	२१४
गन्धोदकेन सिषिचुः	१११	१७०
गन्धैर्धूपैश्च माल्यैश्च	५६२	२४९
गमितेषु परं शिक्षा	७५	२५८
गर्जन् गजपतिर्गौरः	११६	२५९
गर्भप्रभावाद् देव्येवं	१७७	२८०
गर्भस्थितस्य माताऽस्य	५७१	१८४
गर्भस्थे जननी तस्मिन्	४८	३५७
गर्भस्थेऽस्मिन्नजितं पित्रा	४७	३६५
गर्भस्थेऽस्मिन् धर्मविधौ	४९	३७६
गर्भस्थेऽस्मिन् मातुरासीत्	४९	२९७
गर्भस्थेऽस्मिन् सुपार्श्वाभू	४८	२९२
गर्भावासनिवासोत्थ	१६४	२८९
गलितं वर्धके ! किं ते	१८८	२३७
गाढानुरागबन्धेन	३८१	४०१
गायनीवत् केऽप्यगायन्	४५१	१८०
गायन्तस्तेऽतिमधुर	८६९	३४२
गायन्निवालिविरुतैः	२१८	२८२
गारुडास्त्रमथो धन्व	७०२	३३६
गारुडी रोहिणी चैव	५८२	३३२
गिरिकन्दरवर्तीनि	१८१	१९०
गीताकर्णनवत् कर्णौ !	१९	२३२
गीयमानोऽमरैः कैश्चिद्	१९४	१९०
गीर्वाणेन्द्राः सगीर्वाणा	३६३	३५५
गुणदुनन्दने श्रीमत्	१	२६९
गुणरत्नैरसंख्यातैः	११	३८७
गुणस्थानस्य चैतस्य	३४०	१९५
गुणस्थानेषु यो यः स्यात्	१०४	३१०
गुणानां शौर्य–गाम्भीर्य	२४	३१४
गुणानुरूपमकरो	९	२५५
गुणोज्ज्वलादपि भ्रश्येद्	२६४	३८३
गुरुपादाम्बुजोपास्ति	१५२	१८९
गुरुवागनुवादेन	३१०	२४१
गुरोः खेदविनोदश्च	८३६	२१०
गुरोरनुज्ञयैकाकि	१४८	३१८
गुर्वाज्ञा हि कुलीनानां	१८८	१६३
गुहाया मध्यतस्तस्या	२७६	२२२
गृधाशिनीनां च गवां	३३९	३५४
गृध्रादिचञ्चू–चरण	५८०	२४९
गृहकर्तव्यमन्त्रेषु	२२२	१९१
गृहं निजनिजं जग्मुः	२९०	३२३
गृहिणी–गृह–पुत्रादि	३३०	३५४
गृहीताचमनाः काश्चिद्	२१९	१९१
गृहीत्वा पाणि–पादादौ	९१	२८७
गृहे गृहस्थमात्रस्या	३११	३२३
गृहे गृहे पथि पथि	२१६	२६२
गृह्णीत गृह्णीत हत	२६८	३९८
गृह्णीयाः समये मद्वत्	६१३	२५०
गृह्यतां राज्यमप्येतत्	८२	३४६
गृह्यतां सर्वमप्येतद्	१११	३५९
गोमूत्रिकाक्रमेणाऽथ	१८७	२१९
गोमेध–नरमेधा–ऽश्व	३२२	३५४
गोरोचनाचूर्णकृतैः	८९	१६९
गोशीर्षचन्दनं दग्ध्वा	६०	३१५
गोशीर्षचन्दनरसैः	३१	२१४
गोशीर्षचन्दनरसैः	११५	२१९
गोशीर्षचन्दनरसैः	४६३	१८१
गोशीर्षचन्दनं सर्वौ	२५३	२२१
गोशीर्षचन्दनेनाऽथ	२६७	२६४
गोशीर्षचन्दनैः श्यामा	३५	३५७
गोशीर्षचन्दनैस्तस्या	२०३	१६३
गोशीर्षेण व्यलिम्पंश्च	१५५	२६०
गोस्तुभाद्या गणभृतः	७८३	३३९
गोस्तूप उदकाभासः	६३१	२०४
गोस्तूप–शिवक–शङ्ख	६३२	२०४
गोस्तूप–सुदर्शने अ	७३५	२०७
ग्रहाः स्वोच्चं ययुः स्थानं	१३५	२६०
ग्रहेषूच्चस्थितेष्वृक्षे	१२४	१७०
ग्रामा–ऽऽकर–पुर–द्रोण	८३	२४८
ग्रामा–ऽऽकर प्रभृतिषु	२११	१८१
ग्रामाद्यनियतस्थायी	२८४	१६६
ग्रामारक्षादिना किं वा	७६	२३४
ग्रामे ग्रामे चेक्षुवाटा	११	१५७
ग्रामेशैर्दुर्गपालैश्च	२९८	२२३
ग्रीष्मातपपरिक्लिन्ना	२९३	१६६
ग्रीष्मे सूर्योष्मभीष्मेऽपि	१६	२६९
ग्रैवेयकैः शोभमाना	१३४	१७१

"घ"

घण्टानादे च विश्रान्ते	३८७	१७८
घण्टानिर्घोष–सेनान्यौ	१६३	२६०
घनसारागुरुप्राय	१९६	१७२
घनसारा–गुरुसारं	२४	२१४
घनागमे सिन्धुरिव	५३२	१८३
घनाम्भोधि–महावाता	५०१	२००
घनोदधि–घनवात	७६९	२०८
घनोदधिप्रतिष्ठानौ	७६८	२०८
घर्माम्भांस्यनिलेनेव	८२८	३४०
घर्मार्त्तेव स्वेदवती	३२८	२२३
घातिकर्मक्षयात् तस्य	६६४	२५२
घूकघूत्कारघोरेषु	३१०	१९४
घृतयोन्यादिकरणैः	३३६	३५४
घृतोदः सद्यःक्वथित	७४६	२०७
घृतोदस्य पयांसीव	४२	२५७

"च"

चकार सविशेषां च	३३०	३२४
चक्रं तवास्त्रसर्वस्वं	२६९	३५२
चक्रतुम्बाग्रघातेन	१५८	३६१
चक्र–दण्डा–ऽसयो ! यूयं	१९०	२३७
चक्रधरस्यार्धचक्रर्द्धया	७६७	३३८
चक्रमायुधशालायाः	१३६	२१८
चक्रमार्गानुगः सोऽथ	२५	३८७
चक्रवर्तिन् ! न्यायवर्तिन्	६२	२३३
चक्रवर्तिश्रियं त्यक्त्वा	३८९	४०२
चक्रवर्ती त्यक्तसंगो	२७८	३८४
चक्रवर्त्यपि तत्काल	२७९	३८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक नं.		पृष्ठ नं.
चक्रवर्त्यप्युवाचैवं	६१२	२५०
चक्रवर्त्यातमसाच्चक्रे	२९	३८७
चक्रं विक्रममाणश्च	४३	२१५
चक्राक्रान्तद्विषच्चक्रः	९९	३६७
चक्रादिष्टेन मार्गेण	२६४	२२२
चक्रारामो निषधोद्धाः	६४३	२०४
चक्रिणश्चरणाम्भोजे	५५७	२४८
चक्रिणा नैव चक्रेण	४५	३४५
चक्रिणो भवनिर्वेदः	५२३	२४७
चक्रित्वे तु व्यच्छलक्ष्मी	५६	३८८
चक्रित्वे नवतिवर्षे	४०३	४०२
चक्रिसैन्येऽथ सैन्यानां	१	२३२
चक्रीवतो विषाणं च	२९८	२४१
चक्रे चक्रिमुनेस्तस्य	६५४	२५१
चक्रे च दिव्ये समव	१९९	३७०
चक्रे चर्मोपरिच्छत्रं	२२६	२२०
चक्रे च वसुधारादि	७१	३०९
चक्रेणानेन मुक्तेन	१८१	३८१
चक्रे दृढरथेनापि	४६	३०८
चक्रे निर्वाणकल्याणं	८६५	३४२
चक्रे समवसृत्यग्रे	३३०	२६६
चक्र्यप्युवाच तानेवं	२४१	२२१
चक्षुष्मानपि चक्षुष्मान्	७०	३५८
चचाल च हरिर्देवैः	१९०	१९०
चतस्त्र एत्य चित्राद्या	५१	३१५
चतस्रो रुचकान्तस्था	५२	३१५
चतुरङ्गुलकोत्कर्षं	५३	३१५
चतुरङ्गुलमात्रेण	१७६	१७२
चतुरं विक्रममाणैः	११४	१८८
चतुरशीतिसहस्र	३००	१७६
चतुरशीतिः सहस्राः	३१३	१७६
चतुरिन्द्रियताभाजः	११८	२८८
चतुरोऽथ महास्वप्नान्	९४	३५९
चतुर्गुणं महामूल्यं	३३१	३२४
चतुर्ज्ञानधर ! चतुः	२९३	२६५
चतुर्थषष्ठमासादि	४२	३९०
चतुर्थी पञ्चमी षष्ठी	३५९	२४२
चतुर्दशपूर्वभृतां	१८६	२९०
चतुर्दशपूर्वभृतां	२१९	३६२
चतुर्दशपूर्वभृतां	३५४	३५५
चतुर्दशपूर्वभृतां	८५३	३४१

श्लोक नं.		पृष्ठ नं.
चतुर्दशपूर्विणां द्वे	२५२	२८३
चतुर्दशमहारत्न	२८८	२२२
चतुर्दशसहस्राणि	१६६	२७४
चतुर्धन्वशताग्रैक	७७	२९३
चतुर्धन्वशतोत्तुङ्गः	२२७	२६३
चतुर्नवत्यग्रचितुः	५६५	२०२
चतुःपञ्चाशतं वर्षं	३५८	३५५
चतुर्भिर्निष्कुटैर्गङ्गा	२८६	२२२
चतुर्वर्गेऽग्रणीर्मोक्षो	२१९	३८२
चतुर्वर्णस्य संघस्य	९९	३०४
चतुर्वाद्यं चतुर्वृत्ति	३१	१८५
चतुर्विंशत्यङ्गहीनं	१२१	३००
चतुःशतीं योजनानां	६५७	२०५
चतुःषष्ट्या सहस्रैश्च	४९	३८८
चतुःषष्टिरथैत्येन्द्रा	१२४	२७३
चतुःषष्टिः सहस्राणि	३५३	३८६
चतुःषष्टिसहस्रैः स	३८०	१७८
चतुःषष्टिसहस्रोच्चाः	७२७	२०७
चतुःषष्टीन्द्रमुकुटो	१२०	२३५
चतुःसहस्री त्रिशती	२९३	३७४
चतुस्त्रिंशदतिशय	८४७	२२०
चतुस्त्रिंशदतिशया	२५६	२८३
चन्दनद्रुममुन्मूल्य	२०८	३९६
चन्दनस्थालकांस्तत्र	१८	२१४
चन्दनेन स्वयं भूपः	२०८	१६३
चन्द्रकान्ताश्मनिःस्यन्दैः	२४	२६९
चन्द्रमौलिश्च विजय	५८६	३३२
चन्द्रवेगप्रभृतिभिः	२८३	३९८
चन्द्रवेग—भानुवेगा	२६७	३९८
चन्द्रवेग—भानुवेगौ	२६२	३९७
चन्द्रशालास्थितो राजा	३२६	२४२
चन्द्राऽऽदित्यावसंख्यातौ	४१६	१७१
चन्द्रादीनां गतिजुषां	५४७	२०१
चन्द्राश्मबद्धैः सोपानैः	१५	३४४
चपलचपला लक्ष्मीः	८	३४४
चपेटाघटनमिव	११८	३५९
चमराद्या गणभृतो	२४३	२८२
चमूरुचक्रैराक्रान्त	११६	३९३
चरितं कीर्तयिष्यामि	२	३९६
चरितं श्रीसुपार्श्वस्य	२	२९१
चरितार्थौ प्रचण्डौ ते	३९०	२४३

श्लोक नं.		पृष्ठ नं.
चरित्रेण पवित्रेण	४०	१५८
चर्चा—कुसुम—वस्त्राद्यैः	३०२	१९४
चर्मणा पूर्ववत् सिन्धु	२४३	२२१
चर्वितोरसिजद्वन्द्वं	३२	३९०
चलतोश्चञ्चले चूले	१४	१८५
चलत्काञ्चनताडङ्को	२०२	३५०
चलन्तश्चलत्ताडङ्का	२१४	१९१
चान्दनेनाङ्गरागेण	४८२	३२९
चापाचार्योऽसि यदि वा	२३४	२३९
चापे संधाय नागास्त्रं	६९७	३३६
चारणश्रमणैस्तानि	१०३	२२९
चारित्रचित्ररचनां	२३३	३८२
चारित्रस्यापि संप्राप्ति	२१०	३६२
चारीप्रचारचतुरौ	४७७	२४६
चारुचङ्क्रमणशक्त्या	१२५	१६१
चारुचूडामणिरुचि	१३२	१७१
चारुवाद्य—गीत—नृत्त	१९०	२६१
चिक्रीडुः केचिदागत्य	४०	१८६
चिक्षिपुर्धूपदहने	११२	२२९
चितान्तश्चक्रिरे देवा	६९४	२५३
चित्रमञ्चशताकीर्णं	२४३	१६४
चित्राङ्गहारकरणं	२७७	२६४
चित्रायां कार्तिके कृष्ण	६०	२८६
चिन्तयित्वा नैकधैवं	५२१	२४७
चिन्तयित्वेति किमिदं	१७०	२३७
चिन्तयित्वैवमुर्वीशः	३८	२५६
चिन्ता ममैव राज्ञोऽपि	१९३	३१९
चिरमभ्यक्त उन्मृष्टः	४२४	२४४
चिरमित्यादिसंसार	३७८	२४३
चिरं जीव चिरं नन्द	१४२	२१८
चिरं तीव्रं तपस्तप्त्वा	१०	३५६
चिरं व्रतं पालयित्वा	९	३८७
चिरं व्रतं पालयित्वा	२०	२६९
चिरवासभवस्नेहो	२१४	१६३
चिरं विहृत्य कालं च	१२०	२७८
चिरं व्यहार्षीच्छद्मस्थो	२११	३८२
चिरं शक्रश्रिय भुक्त्वा	७४	२९१
चिराद् वा बलिनाऽन्येन	१५०	२८९
चिरान्नाथेन भवता	७६	२७१
चिरार्जितानि भूयांसि	८४०	३४१
चिरेण दिग्जयं कृत्वा	११०	१६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
चिरेप्सितं पूरयितुं	५१	३७६
चिल्लाश्च मण्डलीभूय	६९	२२८
चूडामणिं निष्कोरस्के	१२२	२१७
चूत-चम्पक-पुन्नाग	१०७	१६०
चूताङ्कुरास्वादहृष्टैः	११६	३४७
चूर्णपूर्णमथ स्थाल	८१७	२०९
चेतसा चिन्तयित्वैवं	४३	१६८
चेतसा चिन्तयित्वैवं	२५९	१७४
चेत् कारणानुकारीणि	३४१	३८६
चैत्य-प्रतिश्रयाऽऽराम	१२३	३०५
चैत्य-प्रासाद-हर्म्यादि	२३९	२३९
चैत्यं सशालभञ्जीक	९१	२२८
चैत्याग्रे रत्नबद्धोर्व्यः	२५	२७०
चैत्येषु जिनबिम्बानां	५३५	१८३
चैत्येषु तस्यामुद्दण्ड	१४	२९१
चैत्रस्य शुक्लैकादश्यां	२१३	२८१
चैत्रस्य सितनवम्यां	२६०	२८३
चैत्रस्य सितपञ्चम्यां	४०१	२६८
च्युत्वा च देवसदना	५९९	२५०
च्युत्वा च भरतक्षेत्रे	८६	३५८
च्युत्वा च लक्ष्मणादेव्याः	२९	२९७
च्युत्वा च विजयपुरे	१९०	३५०
च्युत्वा दिवः सुरवर	१२	२७६
च्युत्वा भाद्रपदे कृष्णा	२८	२९१
च्युत्वा राधे कृष्णषष्ठ्यां	२७	३०७
च्युत्वा मुकुलजीवोऽपि	१६७	३१८

"छ"

छत्र-चर्मान्तरे तस्थौ	२२७	२२०
छत्रलाञ्छितमूर्धानो	७८	२२८
छत्रत्रितोन्नतोष्णीषः	२२८	२६३
छद्मस्थो व्यहरत् स्वामी	१२०	२७३
छन्दकोपरि चक्रश्च	३२९	२६६
छल-पैशुन्य-वक्रोक्ति	३०७	३८५
छलयित्वा तावदमून्	५३०	२४८
छादितं मक्षिकावृन्दैः	३३	३९०
छायाभिकाङ्क्षिणः क्षिप्र	९४	२८७
छिन्न-भिन्नशरीराणां	९८	२८७
छोटयित्वा तदुदर	१८१	३९५

"ज"

जगत्त्रयं त्वधस्तिर्यग्	४८१	१९९
जगत्त्रयस्य निःशेष	८२३	३४०
जगत्त्रितयनाथत्वं	४६	२८५
जगत्प्रतीक्ष्य ! त्वां यान्ति	४२८	१९८
जगत्स्वामी समं तत्र	१२१	२९५
जगदन्धमिदं जज्ञे	८४	३०९
जगदाधारहेतुं तं	३१	३०२
जगदीश ! तव भ्रमः	४१	३०२
जगदुद्योतनमिव	७०	१६९
जगदुर्मन्त्रिणोऽप्येवं	१९३	१६३
जगदेकार्णवीकृत्य	३१२	२४१
जगद्गुरुमिति स्तुत्वा	२७६	१९३
जगद्गुरोर्जगद्बन्धोः	१८१	१७२
जगद्विलक्षणं किं वा	४७६	१८१
जगन्नाथ ! प्रशंसामि	१९०	२८१
जगन्मोहार्यमा यस्य	२०५	२३८
जग्ध्वा सुगन्धिताम्बूलं	९९	२९९
जग्मुस्ततो निजनिजं	७००	२५३
जघन्यतः कोटिसङ्ख्या	४३१	१९८
जन्येने केशवसेनान्या	१९१	३७०
जङ्घालैर्वाहनैर्व्योम	१५१	३४८
जज्ञे तदानीमुद्योतः	१२६	१७०
जज्ञे तीर्थोच्छेद एवं	१६३	३०६
जज्ञे त्रिपृष्ठसैन्याना	७०१	३३६
जज्ञे हाहारवस्तत्र	१०७	२३१
जटापटलभस्माङ्ग	३४२	३५५
जटा-मौञ्जी-शिखा-भस्म	२८६	३८४
जनन्यास्तत्र गर्भस्थे	१९६	२८१
जनयन्ती जनक्षोभं	१३६	३६०
जनान्तिकेन तत्रैव	९७	१७०
जन्तोः सर्वज्ञरूपस्य	४६५	१९९
जन्मतः पूर्वलक्षेषु	५५	२८६
जन्मतः पूर्वलक्षेषु	२०१	२८१
जन्मतः प्रभृति स्वामी	५१	३०२
जन्मतोऽपि भवोद्विग्नो	७१	३५८
जन्मतो वर्षलक्षाणां	९१	३१६
जन्मव्ययध्रौव्यमयां	१५४	२७४
जन्माभिषेकवत्तत्र	२७७	१९३
जन्माभिषेकवद् भर्तुः	२६३	२६४
जम्बूद्वीप इह द्वीपे	२२०	२३८
जम्बूद्वीपपरिक्षेपी	२८९	२४०
जम्बूद्वीपपरिक्षेपी	६१९	२०३
जम्बूद्वीपस्य भरते	२७५	१७५
जम्बूद्वीपस्य भरते	३५९	१७७
जम्बूद्वीपान्तरे मेरुः	५५४	२०१
जम्बूद्वीपे च ये मेरु	६४१	२०४
जम्बूद्वीपे त्विह द्वीपे	५६६	२०२
जय जीव चिरं नन्द	२१९	१७३
जय त्रिभुवनाधीश !	४९४	१८२
जयन्त्यजितनाथस्य	१	१५७
जयन् परीषहचमूः	६९	२९३
जयलक्ष्म्या इव प्राणान्	१७४	३७०
जय विद्याधरवधू	१५७	३९४
जयश्रीनाटिकानान्दीं	६४	२९६
जयश्रीः सा द्वितीयेव	२५५	३९७
जयेःवाकुकुलक्षीर	३७	३०८
जरत्प्लवङ्गम इव	७३	२३४
जरायुरक्तप्रभृति	१३३	२६०
जरा रुजा मृतिर्दास्यं	१३३	२८८
जराविकुलवचित्तत्वा	१४	३८९
जलस्थलसमुद्भूताः	४७७	१८१
जलाऽग्निशस्त्रादिभवं	१२७	२८८
जहद्भुजहसुभ्रेसु	७०८	३३६
जातरूपस्फटिकाङ्क	५५८	२०२
जातवैक्रियलब्धीनां	११४	३००
जातवैक्रियलब्धीनां	१४५	३०५
जातवैक्रियलब्धीनां	२२१	३६२
जातवैक्रियलब्धीनां	३५६	३८६
जाता वैक्रियलब्धीनां	३५६	३५५
जातिभेदान्नैकविधा	२५७	३८३
जातिलाभकुलैश्वर्य	२५६	३८३
जातेनापि त्वयाऽस्माकं	६६	३४६
जात्यजाम्बूनदच्छेद	४७१	१८१
जात्यादिमददुर्वृत्त	३२८	३५४
जानन् भोगफलं कर्म	२३४	२६३
जानाति देव ! यदिह	१३९	३४८
जानुदघ्नी पञ्चवर्ण	१४३	२६०
जायते सर्वजघन्य	७८५	२०८
जायानां राजपुत्रीणां	२८९	२२२
जायाया विजयादेव्याः	२५७	१७४
जाया-वध्वौस्तु विजया	५३०	१८३
जायां वधूं च तदनु	७०	१६९
जिगाय मागधं पूर्वं	७६३	२३८
जिघांसुरप्यभिदधे	१७७	३७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
जितशत्रुर्नरेन्द्रोऽथ	७२	१८७
जितशत्रुरथ प्रीत	९४	१८७
जितशत्रुरपि स्माह	९०	१८७
जित्वा भरतवर्षार्धं	९८	३६७
जिनजन्माभिषेकाय	१८२	३६१
जिनजन्मावधिज्ञाना	३२	२९२
जिनजन्मावचेर्ज्ञात्वो	१६२	२६०
जिनधर्मसरोहंसः	२२१	२३८
जिननाथ ! तव स्नात्र	१८९	२८१
जिनप्रणीतो धर्मोऽयं	९३१	२१३
जिनस्य मातापितरा	८६	३१६
जिनादिष्टो न चेद् धर्मः	९१६	२१२
जिनास्तदुक्तं जीवो वा	२९७	१६६
जिनेन्द्रं करतलेन	२३१	१७४
जिनेन्द्र-जिनजनन्योः	२०५	१७३
जिनेन्द्र-विजयादेव्यौ	२३५	१७४
जिनेन्द्रस्य चतसृषु	४१	३४५
जिनेश्वरमिति स्तुत्वा	४८	३०२
जिष्णोरेव शचीरूप	२५	३१४
जिह्वामिवाहिराजस्य	६८६	३३६
जीर्णवासःखण्डधारी	८६७	२११
जीवन्ति च म्रियन्ते च	५२५	२४७
जीवन्तोऽपि विमुक्तास्ते	३३८	३८६
जीवन्नप्यदशां प्राप्तः	१०	२८४
जीवाऽजीवादिपदार्था	८७६	१११
जीवाजीवावाश्रवश्च	२२३	३७१
जीवानां पुद्गलानां च	२७२	३७३
जीवितं चरितार्थं नः	१२७	२२९
जीवितव्यं विमुच्यैकं	३१९	३२४
जीवो नन्दिसुमित्रस्य	९३	३५९
जृम्भकैर्जृम्भमिच्छिष्ट	५४	३६५
जैत्रं रथमथारुह्य	२५२	३५२
जैनप्रवचनेनेव	२५५	१७४
जैनेन्द्रस्यापि धर्मस्य	३४८	३५५
ज्ञातव्यो विजयादेव्याः	१०४	१७०
ज्ञातेऽवसान समये	४०४	४०२
ज्ञात्वा च मोक्षमासन्नं	३५९	३५५
ज्ञात्वा चासनकम्पेन	१०७	३४७
ज्ञात्वा तु मोक्षसमयं	३५९	३८६
ज्ञात्वाऽऽत्मनो मोक्षकालं	३९७	२६८
ज्ञात्वा त्रिपृष्ठमायान्तं	३०८	३२३

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
ज्ञात्वा निर्वाणमासन्नं	२२४	३६३
ज्ञात्वाऽर्हतोऽवतारं च	४७	१६८
ज्ञात्वाऽर्हज्जन्म ते स्वैः स्वैः	४०७	१७९
ज्ञात्वाऽवधिप्रयोगेण	१४८	२१८
ज्ञानचारित्रयुक्तोऽस्मि	२९६	१६६
ज्ञानत्रयधरः पूर्वं	८२	२९८
ज्ञानत्रयधरे तत्र	५१	२७०
ज्ञानत्रयधरोऽधीशो	८८	३१६
ज्ञानत्रयपरीतात्मा	२४८	२६३
ज्ञानदर्शनचारित्र	१४३	२८८
ज्ञानदर्शनचारित्रा	९१७	२१२
ज्ञानदर्शनयोस्तद्वत्	८६	२०४
ज्ञानदृष्ट्यावरणीये	७७९	३३९
ज्ञान-दृष्ट्यावृती वेद्यं	२८२	३७३
ज्ञानानामिव मूर्त्तानां	२७७	२४०
ज्ञानैस्त्रिभिश्चतुर्भिश्चा	१९९	२६२
ज्ञानोपदेशलेशोऽपि	२०	३०७
ज्ञेया सकामा यमिना	८३०	३४०
ज्यायसो लाङ्गलादीनि	११५	३६८
ज्यायान् वं श्यो न सोऽस्माकं	२३८	३५१
ज्येष्ठशुद्धत्रयोदश्यां	६५	२९३
ज्येष्ठस्य शुद्धद्वादश्यां	३१	२९२
ज्येष्ठस्य शुद्धनवम्यां	३०	३४५
ज्येष्ठस्य षष्ठ्यां कृष्णायां	३१	३१४
ज्योतिःशास्त्रे यस्य मान	२७५	३७३
ज्योतिष्कव्यन्तराश्चायः	७७५	२०८
ज्योतिष्का मध्यमं वप्रं	३२४	२६६
ज्योतीरस सौगन्धिक	१७०	१७२
ज्योत्स्नागौरप्रभापूर	५०	२७७
ज्योत्स्नायिते प्रभापूरे	४६	३०२
ज्वरार्त्तेनाश्रितं पित्रा	९९	३७८
ज्वलज्ज्वालालिजिह्वाल	१७८	३८०
ज्वलन्माणिक्यतेजस्कं	२०५	१६३
ज्वालाजालकरालस्य	९२२	२१२
ज्वालाजालकरालास्या	१९९	३९५
ज्वालामालाकरालं तत्	५	२१४
ज्वालाशतैर्दीप्यमानं	७१३	३३७

"झ"

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
झञ्झानिलोल्लर्णधारा	३२६	१९५
झल्लरीवादनादेन	४८८	३२९

"ड"

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
डाहलेषु दशार्णेषु	७०	३४६
डिम्भानां दुर्नये दण्डो	३३९	३२४

"त"

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
तं गर्भं रत्नगर्भेव	३१	२९७
तं तस्य पश्यतः पीता	६६	२७७
तच्च कर्त्ताऽस्य कण्ठस्य	७४८	३३८
तच्च श्रुत्वा विश्वनन्दी	१३८	३१८
तच्छूलाया दक्षिणतो	३५	३०२
तच्छ्रुत्वा कुपितः शार्ङ्गी	१०९	३५९
तच्छ्रुत्वा कुपिता देवी	१२०	३१७
तच्छ्रुत्वा सम्भ्रमाद् विश्व	१२५	३१७
तज्ज्ञात्वाऽऽसनकम्पेना	२१४	२८२
तडिद्दण्डमिवाऽकाण्डे	६९	२१६
ततः कारण्डवक्रौञ्च	१४९	३९४
ततः किराता इत्यूचुः	२१४	२२०
ततः किरातास्ते भीताः	२३६	२२१
ततः कुबेरस्तैः सार्धं	३२१	३९९
ततः प्रकुपितश्चक्रे	७४७	३३८
ततः प्रकुपितः सद्यः	८७९	३४२
ततः प्रतस्थे पृथ्वीशः	१०९	२१७
ततः प्रदक्षिणीकृत्य	२६१	२६४
ततः प्रदक्षिणीकृत्य	८२८	२१०
ततः प्रभृति तत्तीर्थं	५७६	२४९
ततः प्रभृति चाऽन्येऽपि	१३६	२३६
ततः प्रमुदिता राजा	४५८	२४५
ततः प्रशान्तमोहश्च	२५१	३७२
ततः प्रववृते युद्धं	२७५	३९८
ततः प्रसन्नो ज्वलनः	५६४	२५९
ततः पदानि सप्ताष्टा	४७०	१८१
ततः परं पर्वतोऽसित	६५५	२०४
ततः परं योजनाना	६९२	२०६
ततः परं योजनाना	६९०	२०६
ततः परं साऽनवद्यं	८७५	२११
ततः प्राग्जन्मवैरेण	५३	३९०
ततः प्राणातिपातादि	१६०	१६२
ततः पुत्रश्च वित्तं च	१४७	२७९
ततः पुत्रोपनीतं स्व	२३४	१६४
ततः पुरन्दरादेशात्	१०९	१७०
ततश्च कर्मवैचित्र्यात्	१०५	३४७

श्लोक नं.		पृष्ठ नं.
ततश्च कार्तिके मासि	३१६	२६६
ततश्च कुण्डलद्वीपः	७४१	२०७
ततश्चक्रधरस्तत्र	३६७	२२५
ततश्चक्रानुगश्चक्री	१८६	२१९
ततश्चक्रानुगो गत्वा	१४५	२१८
ततश्च चक्रिरे स्वं स्वं	१७२	१७२
ततश्च जगृहुस्तीर्थं	२२७	१७३
ततश्च जम्बूद्वीपाभि	४०	१६८
ततश्च जम्बूद्वीपेऽस्मिन्	१५	३१३
ततश्च तस्मिन् ध्यानाग्नौ	३४३	१९५
ततश्च तीर्थे तत्रैवो	८४२	२१०
ततश्चतुर्विधः सङ्घः	१२८	२७३
ततश्च तेषु कोऽप्येकः	२७७	३२२
ततश्च तौ विमानेन	३३३	२२४
ततश्च धरणादीनां	३९५	१७८
ततश्च नीतो नरके	६०	१५९
ततश्च पञ्चनवतं	८१४	२०९
ततश्च पद्मैरुन्निद्रैः	१७३	३१९
ततश्च पावनैर्नीरैः	१०	२१४
ततश्च पृथिवीं नाम	१११	३४७
ततश्च भक्तिभागिन्द्रः	४३५	१८०
ततश्च भगवज्जन्म	१९३	१७२
ततश्च मङ्गलादेवी	१७२	२८०
ततश्चर्षभनिर्वाणा	६८५	२५२
ततश्चरणचारिण्यो	२१८	१७३
ततश्च वलितग्रीवो	५११	२४७
ततश्च ववले चक्री	१०६	२१७
ततश्च विश्वसंहार	३६२	२४३
ततश्च शिबिकारत्ना	२५५	१९२
ततश्च स्वामिनं नत्वा	३८४	२६८
ततश्च स्वामिनः स्वामि	२४३	१७४
ततश्च सङ्केतस्थाना	५२८	१८३
ततश्च सगरश्चक्री	५४०	२४८
ततश्च साधयामास	१६८	३६१
ततश्चाऽदत्त वर्षेण	१८६	१९०
ततश्चाऽशनिवेगस्य	२८२	३९८
ततश्चैत्रस्य राकायां	६५	२८६
ततः शक्रः क्षणाच्छक्रान्	३३८	१७७
ततः शरीरकस्यापि	१३१	१८९
ततः षड्योजनशता	६९४	२०६
ततस्त्वां शरणं प्राप्तो	११४	२३५
ततस्तद्रजनीशेषं	६६	१६९
ततस्तदनुरोधेन	६४१	२५१
ततस्तनयलोभेन	१०६	२३५
ततस्तातप्रसादेन	६०	२२७
ततस्ताः परिधाप्योभौ	५९	३१५
ततस्तामङ्गुलीं स्वर्ण	३९८	४०२
ततस्तावूचतुरिदं	३६६	४०१
ततस्तितीर्षुः संसारं	६४	३०९
ततस्ते उपतस्थाते	१५०	२७९
ततस्तेनाऽग्निहोमेन	२४०	१७४
ततस्तौ विप्ररूपेण	३४५	४००
ततः स्थानात् प्रभुरपि	२९१	२७४
ततः स्थानात् प्रभुरपि	२९०	३६८
ततः स्थानात् प्रभुरपि	८५१	३४१
ततः स्थानात् पुरग्रामा	२१७	३६२
ततः स्थानादपच्छेद्मा	६८	३६६
ततः स्थानादथ स्वामी	१०७	३१७
ततः स्थानादथाऽन्यत्र	६८	३५८
ततः स्थानादथान्यत्र	३५२	३५५
ततः स्थानादथान्यत्र	३५२	३८६
ततः स्थानादथान्यत्र	६५८	२५१
ततः स्थानादथान्येषु	१२९	३४८
ततः स्थानान्निववृते	५८३	२४९
ततः स्नात्वा कृतप्राय	४०२	१९७
ततः स्वाम्यथतिशयै	१६३	२७४
ततः स कालयोगेन	५९६	२५०
ततः स गत्वा पितरौ	९७	२७८
ततः सगरमाहूय	१४२	१८९
ततः सनत्कुमारस्तं	१६८	३९४
ततः सनत्कुमारोऽपि	३९४	४०२
ततः समवसरण	३२०	२६६
ततः समवसरणं	६६	३०३
ततः समवसरणा	४१५	१९७
ततः स साधयामास	३१२	३९९
ततः सागरदत्तातो	६३	३६६
ततः सिंहासनं देव	३६९	१९६
ततः सिंहासने स्वस्मिन्	६१५	२५०
ततः सूरप्रभां नाम	५९	३०३
ततः सौधर्मकल्पेन्द्रः	४८७	१८१
ततोऽकृतविवाहां मा	२४३	३९७
ततः गतेषु कौमारे	५६	२९२
ततो ग्रामपुरारण्या	२६५	१६५
ततो घृतवरो द्वीपा	७०३	२०६
ततोऽङ्गुलिं गलत्पामां	३९७	४०२
ततो जयजयारावः	३७१	१९६
ततो द्वादशयोजन्या	७५६	२०७
ततो द्विगुणद्विगुण	५८७	२०२
ततो द्वितीयस्तस्याङ्घ्रि	४८२	२४६
ततो देवोपनीतानि	६४४	२५१
ततो धनुषि सन्धाय	७०९	३३७
ततोऽन्यत्र ययौ स्वामी	११९	२७३
ततोऽन्यतो जग्मतुस्तौ	४३१	३२७
ततो नरशतोद्वाह्यां	२३७	१६४
ततो नरेश्वरवरः	१६३	१९०
ततो नवसु मासेषु	३७	२८५
ततो नवसु मासेषु	६२	२७१
ततो नवसु मासेषु	९५	३५९
ततो नवसु मासेषु	१२३	१७०
ततो नवसु मासेषु	१३२	२५९
ततो नवसु मासेषु	१८०	२८०
ततो नवसु मासेषु	२०६	३५०
ततो निर्जनिजं स्थानं	६०	१६८
ततो निववृते चक्री	२९७	२२३
ततो निवृत्तो दध्यौ च	१५६	३१८
ततो निवृत्तो मघवा	३९	३८८
ततोऽप्यन्यत्र गच्छन्ति	६३	१५९
ततोऽप्यायुःक्षये च्युत्वा	४४	३९०
ततोऽप्युपरि गव्यूत	७५७	२०७
ततोऽपररथारूढा	१८०	३४९
ततोऽपि जालकटका	६१४	२०३
ततोऽपि वारुणिवरो	७०२	२०६
ततो बकुलमतिर	१७७	३९५
ततो बलः सप्तदशा	३६७	३८६
ततो बहलधूलीभि	१९७	३९५
ततो मनोरमां नाम	१६१	२९८
ततो मनोवत् स कथां	५०४	१८२
ततो महाविमानैः स्वैः	१७५	१७२
ततो मासेषु नवसु	१०५	३६७
ततो युक्तमयुक्तं च	२९९	२४१
ततो रथं वालयित्वा	२५७	२२१
ततो राज—युवराजा	८२	१८७
ततो रुण्डश्च मुण्डश्च	४८३	२४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
ततोऽरणक्रो द्वीप	७४०	२०७
ततो रूपं परावर्त्य	५१६	२४७
ततोऽवनिपतिः स्नात्वा	३६२	४०१
ततो वसुमतीनाथः	२८	२१४
ततो विचित्रमुन्निंद्रं	१९५	१७२
ततो विगतगर्भाणि	१५४	१७१
ततो विधायानशनं	११	२९१
ततो विमलसूरीणां	११	२६९
ततो विरसमारब्ध	२१३	३९६
ततो विलक्षः संक्रुद्धो	९१५	२१२
ततो विवेकमाश्रित्य	८१०	२०९
ततो विंशतियोजन्याः	५३१	२०१
ततोऽष्टयोजनशर्ता	६९६	२०५
तत्कारणज्ञानकृते	३४७	१९५
तत्कालं पालकारूढः	३६	३७५
तत्कालमप्युपात्तेन	२५३	१६५
तत्कालमवधिज्ञानाद्	१४६	१७१
तत्कोपमुपलक्ष्येत्थ	२५१	१७४
तत्क्षत्रियकुलाचार	१२४	३७९
तत् त्यक्तव्यं कुटुम्बादि	६५	१५९
तत्तद्वैषयिकं सौख्य	७	३७५
तत् त्रिः प्रदक्षिणीचक्रुः	२१७	१७३
तत्तीर्थजन्मा कुसुमो	१८०	२९०
तत्तीर्थजन्मा त्वजितः	१३८	३०५
तत्तीर्थजन्मा मातङ्गो	१९०	२९४
तत्तीर्थभूः किन्नराख्य	१९७	३८१
तत्तीर्थभूः कुमाराख्यो	२८६	३५३
तत्तीर्थभूर्ब्रह्मनामा	१११	३१०
तत्तीर्थभूर्हरिद्यक्षो	१०८	२९९
तत्तीर्थभूरीश्वराख्यो	७८४	३३९
तत्तीर्थभूश्च पातालः	२००	३७०
तत्तीर्थे तुम्बुरुर्नाम	२४६	२८३
तत्तीर्थेऽभूत् षण्मुखाख्यो	१७८	३६१
तत् तु तुम्बाग्रघातेन	२६६	३५२
तत् प्रविश्य जयादेव्या	३६	३४५
तत्प्रविश्योत्तरद्वारा	८१६	३४०
तत्प्रसादात् तच्चरित्रं	२	२७५
तत् प्रसीद शतं कन्या	२९०	३९८
तत् प्रसीदाभिगच्छामो	३०१	३९९
तत्प्राभृतमुपादाय	१०५	२१७
तत्प्राभृतमुपादाय	१७४	२१९

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
तत् पावयितुमात्मानं	२७७	१७५
तत् पृष्टवा सौविदल्लोऽपि	१३	२७५
तत्प्रेषितं रथं चामु	२६१	३९७
तत्त्ववित् स्वयमेवाऽसि	२०९	२३८
तत्त्वार्थो वाचि सर्वेषां	३२०	३५४
तत्त्वानुगा मतिर्शानं	२२०	३८२
तत्र कच्छमहाकच्छ	६००	२०३
तत्र कालं विना सर्वे	२६४	३७३
तत्र किं श्रोत्रियोऽसि त्व	२३३	२३९
तत्र क्रीडामयूरैभि	२३	२६९
तत्र कृत्वा समुद्घातं	६८७	२५२
तत्र खेलायमानाढय	२६	२७०
तत्र गन्धाम्बुवृष्टिं च	३५६	१९६
तत्र ग्रामेऽस्मिन वास्तव्यो	९२	२३४
तत्र जम्बूतले भर्तु	१७५	३६१
तत्र जम्बूद्वीपेऽमुष्मिन्	५३६	२०१
तत्र जीवा द्विधा ज्ञेया	२२४	३७१
तत्र च्छत्रायमाणस्य	३३४	१९५
तत्र चक्रे सुधान्धोभि	६७	३६६
तत्र च ज्वलनजटी	४१६	३२७
तत्र च प्रविशन् विष्णुः	१११	३७८
तत्र च भरतक्षेत्रे	५७९	२०२
तत्र च शीतोदा भिन्न	५९२	२०३
तत्र च स्नपयामास	१९१	३९५
तत्र च स्वाऽन्यकुलयो	१४९	२७९
तत्र च स्वामिसमव	७८९	३३९
तत्र चाकण्ठमग्नानां	२७	२७०
तत्र चान्तश्चतुःशालं	२२८	१७३
तत्र चामलकस्थूलै	४८	१६८
तत्र चाऽलब्धमध्यानि	९	१५७
तत्र चाष्टादशधनुः	७७	२९८
तत्र चास्थाद् यथास्थानं	७०	२८६
तत्र चासीत् पुरे राजा	५१	३९०
तत्र चूडामणिचिह्नना	५०७	२००
तत्र चैको दधौ नाथं	१६९	२६१
तत्र चैत्यानि चन्द्राश्म	१२	३५६
तत्र चैत्येष्वर्हदर्चा	१६	३६४
तत्र चैत्येषु रत्नाश्म	१४	३४४
तत्र चोत्तरपूर्वस्मिन्	३६६	१७८
तत्र चोत्तीर्य तत्याज	१०९	२७२
तत्र तस्थुर्यथास्थान	७९	३०९

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
तत्र तेन विमानेन	३२९	१७७
तत्र द्वयो रतिकरा	७३२	२०७
तत्र दक्षिणपूर्वस्मिन्	३२७	१७६
तत्र द्वादशकोदण्ड	६७	३०३
तत्र द्वारेण पूर्वेण	२०६	३७१
तत्र दामोदरो नाम	८६२	२११
तत्र देवैन्द्रदेवैश्च	४६	३८८
तत्र नद्याः शीतोदायाः	५९३	२०३
तत्र नन्दोत्तरानन्दे	१९९	१७३
तत्र नाम्ना विन्ध्यशक्ति	१३३	३४४
तत्र प्रजापतिनृपः	२८१	३२२
तत्र प्रदक्षिणीकृत्य	१९०	३६२
तत्र प्रदक्षिणीकृत्य	२११	३७१
तत्र प्रदक्षिणीकृत्या	२९२	३५३
तत्र प्रदक्षिणीकृत्य	२९७	३५३
तत्र प्रदक्षिणीकृत्य	३३३	१७७
तत्र प्रदक्षिणीकृत्य	४१७	१९७
तत्र प्रदक्षिणीकृत्य	६५१	२५१
तत्र प्रदक्षिणीचक्रुः	६७६	२५२
तत्र प्रदक्षिणीचक्रे	६२२	२५०
तत्र प्रविश्य कृत्वा च	२०३	३८१
तत्र प्रविश्य प्राग्द्वारा	७७	३०९
तत्र प्रविश्य प्राग्द्वारा	१८४	३६१
तत्र प्रविश्य प्राग्द्वारा	२१५	२८२
तत्र पद्मागृहं पद्म	४	३५६
तत्र प्राग् देवरमणो	७०८	२०६
तत्र पौषधशालायां	५५	२१५
तत्र पौषधशालायां	९०	२१६
तत्र भापितुर्मातृक्षे	५०८	२४७
तत्र मध्येचतुःशालं	२३२	१७४
तत्र मुक्त्वा परीवारं	१३	२२६
तत्र मेघस्वरा क्रौञ्च	३९६	१७९
तत्र यस्या निवापादि	४६७	२४६
तत्र रुद्रेण भद्रेण	१७३	३६१
तत्र लाङ्गलिनाऽन्यैश्च	१९६	३८१
तत्र विक्रमयामास	३०४	२२३
तत्र विद्याधरा विद्या	४७५	३२९
तत्र श्रमापनोदाय	३१०	२२३
तत्रस्था देवता चैका	९२१	२१२
तत्रस्थोऽपि स उत्थाय	६१८	२५०
तत्र स्नानगृहे स्नात्वा	३४७	२२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
तत्र स्मृत्वा निशावृत्तं	८८०	३४२
तत्र स्वागतिकमिव	८०४	३४०
तत्र सिंहनिषद्यायां	१०७	२२९
तत्र सिंहासनासीनं	२१२	१९१
तत्र सीमेन रामेण	१९५	३७०
तत्र सौधर्म ईशानः	७५१	२०७
तत्र ह्यग्रहारे साधु	९०९	२१२
तत्र हत्वा हयग्रीवं	४५७	३२८
तत्राङ्घ्रिपीठन्यस्ताङ्घ्रि	११२	३४७
तत्राऽच्युताद्या देवेन्द्रा	१९८	१९१
तत्राऽच्युतादयोऽपीन्द्रा	७१	२७१
तत्राञ्जनाद्रौ पूर्वस्मिन्	५२२	१८२
तत्राथ सम्भवजिना	४०६	२६८
तत्रादर्शमुखो मेघ	६९३	२०६
तत्रादौ केसरियुवा	२१८	३२०
तत्रादौ गज ऊर्जस्वी	७५	१६९
तत्राऽधोभागमाश्राया	४८५	१९९
तत्राधो राजतं वप्रं	७९२	३३९
तत्राधिज्यं धनुः कृत्वा	११७	२१७
तत्रान्यदपि यत् कृत्यं	७९८	३३९
तत्राऽनुगोकुलं गावः	१२	१५७
तत्राऽनुवेश्म दातारो	३०	२७०
तत्राप्यवरपौरुष्यां	२९०	३७४
तत्राऽपराजितो नाम	४	२८४
तत्राऽपरेद्युः सगरो	३०३	२२३
तत्राऽपश्यच्च समव	६५	२७७
तत्राऽपाच्यां सराष्ट्राणि	६०८	२०३
तत्रापि चार्यदेशेषु	५५	१५९
तत्रापि दृष्टिमोहाख्यं	४७१	१९९
तत्रायतनसङ्गीत	१६	३०१
तत्रार्द्रवल्लीबहला	१०	१५७
तत्रावगाढो मेदिन्यां	५६८	२०२
तत्राऽवस्वापनीं देव्या	५०९	१८२
तत्रावासगृहेषूच्चै	२०	२८४
तत्रावासे प्रतिष्ठाने	८८७	३४२
तत्राश्वसेनोऽश्वसेना	६९	३९१
तत्राऽशक्यप्रतीकारे	३५	२३३
तत्राशेषाः कला न्याय	२२	१८५
तत्राऽशोकतरोर्मूले	७७८	३३९
तत्राऽशोकतले भर्तु	१९७	३७०
तत्राऽशोकतले सिंहा	८५०	२१०
तत्राष्टानामिन्द्राणीनां	३०१	१७६
तत्राऽऽसयं श्वश्रुःशाल	२३६	१७४
तत्राऽऽसाञ्चक्रिरे स्वेषु	३१४	१७६
तत्राऽसिताक्षो यक्षः प्रा	१९३	३९५
तत्राऽऽसीज्जगदानन्दा	४	२९१
तत्रासीद् वासव इवौ	२०	३४४
तत्रासीद् विक्रमयशा	२	३८९
तत्रासीन्नृपतिर्भानु	२१	३७५
तत्रासीनैः पथि पथि	१३	१५७
तत्राऽसुराणां द्वाविन्द्रौ	५१०	२००
तत्त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य	२५	२१४
तन्निवारणरूपेण	६०१	२५०
तत्रेन्द्रियजयो नाम	२१	३१४
तत्रेन्द्रेभ्यः सुरेभ्यश्च	४४५	१८०
तत्रैकाकिन्योऽपि नार्यः	१६	१५७
तत्रैत्य वेगात्पुमुलं	२६२	१९३
तत्रैव तिष्ठन् नृपति	४१५	२४४
तत्रोच्चतरचैत्याग्र	१९	२८४
तत्रोद्यानेष्वरघट्ट	१२७	२७९
तत्रोपतापकः क्रोधः	२२९	३८२
तत्रोपर्युपरि ग्रामं	६	१५७
तत्रौको नागदन्तानां	१९	३७५
तत् सत्यं यदि तातोऽसि	४५६	२४५
तत् सांसारिकसम्बन्धं	२४१	२८२
तत्सूनुर्नवनवते	९७	२२८
तथा किं नाकृथाः पुण्यं	२४७	३८३
तथा गीतयशोनामा	१७९	२६१
तथा चतुर्दशपूर्व	३५४	३८६
तथा च स्तूयते वेश्या	१५४	३४९
तथा च समवसृतं	२०९	३७१
तथाऽणपन्निकादीनां	४१२	१७९
तथा देशविरत्यादौ	१०५	३१०
तथा न मेघच्छायासु	२१३	३८२
तथाप्यवश्यं त्रातव्यः	३७	२५६
तथा प्रत्यग्रुचकाद्रि	२०६	१७३
तथा पञ्च सहस्राणि	२९४	३७४
तथा परे न रज्यन्त	१३४	२७३
तथापि स्वप्रभावेण	३९	२९२
तथापि तज्ज्ञाः प्रष्टव्याः	८५	१६९
तथापि देवपादाय	१९४	१६३
तथापि प्रार्थ्यसे तात	८६	१८७
तथापि वोऽनुरोधेन	२१९	२२०
तथापि शाश्वतम्मन्यः	६८	२५७
तथापि सप्ताहोरात्रान्	३२०	२४१
तथा ब्राह्मणवाहेषु	७४	३४६
तथा भजेस्त्रीन् पुमर्था	२२६	१६४
तथाऽभूदुत्सवः प्राज्यो	२३१	३२१
तथा मसारगल्लानां	१७१	१७२
तथा सत्पुरुष–महा	५२२	२०१
तथा समाधौ परमे	१३६	२७३
तथाहि दूरे तिष्ठन्तु	१११	२७८
तथा हि याग–होमादि	३३४	३५४
तथा हि स्वेच्छया जल्पन्	५५	२५७
तथा हीक्ष्वाकुवंशादि	९४	३४७
तथेति प्रत्यपद्यन्त	४११	३२७
तथेति प्रतिपद्याऽऽज्ञां	४०	२५६
तथेति प्रतिपद्यार्थं	३०६	३२३
तथेति प्रतिपेदानौ	५७९	३३२
तथेति प्रतिपेदानौ	६७१	३३५
तथेति प्रतिपेदे स	५५५	२४८
तथेति प्रतिपेदे स	८७४	३४२
तथैव धनदेहादिं	१३७	१८९
तथैव धनदेहादि	२४०	२८२
तथैव पूर्वसम्बद्धं	८३८	३४१
तथैव मानवी देवी	७८६	३३९
तथैव राज्ञे विज्ञप्तः	२७२	२४०
तथैवाऽऽगत्य शक्रोऽपि	३३	२९२
तथैवाश्रवरोधेन	८३६	३४१
तथोत्पन्नाऽङ्कुशा नाम	२०२	३७०
तथोत्पन्नाऽच्युता नाम	३८२	२९०
तथोत्पन्ना च कन्दर्पा	१९९	३८१
तथोत्पन्ना स्वशोकेति	११३	३१०
तथोत्पन्ना विदिताख्या	१८०	३६१
तथोत्पन्ना महाकाली	२४८	२८३
तथोत्पन्ना श्यामवर्णा	२८८	३५३
तथोत्पन्ना शान्तादेवी	११२	२९४
तथोत्पन्ना सुताराख्या	१४०	३०५
तथोद्गुरुचकशैल	२०९	१७३
तथोपाये प्रवृत्तस्त्वं	३९७	१९७
तथ्यां पथ्यां च तद्वाच	५५५	३३१
तदग्रे चाभवन् पञ्चा	३१९	१७६
तदत्र वस्तुना येन	११९	३६८
तदत्र संहर स्वं	३१७	३२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
तं दत्तार्घो नमस्कृत्य	११७	३६८
तदद्य किं मे चक्राक्षै	२०१	२३८
तदद्य दिष्ट्या दृष्टोऽयं	७१	२७७
तदद्यास्मि गतक्लेशो	५१८	२४७
तदधस्ताद् घनवात	४९२	२००
तदन्तात् प्रतिनिवृत्य	१६९	२१९
तदन्ते नैसर्पपाण्डू	२७८	२२२
तदनु च्छत्र-भृङ्गार	३१७	१७६
तदनेन शरीरेण	१०३	२९९
तदप्रप्त्या च भग्नाशः	१०८	२३५
तदमी परिखयास्ते	३१३	२४१
तदमुष्य शरीरस्य	८१	२५८
तदलं ते विलम्बेन	१८२	३७०
तदष्टमान्ते देवानां	२११	२२०
तदाकर्ण्य कुमारोऽपि	१०९	२७८
तदाकर्ण्य परिक्रुद्धो	११६	३५९
तदाकर्ण्य वचः क्रुद्धो	१६६	३८०
तदाकर्ण्य वचो विष्णु-	११३	३७८
तदाकर्ण्य हयग्रीवो	५१७	३३०
तदागमनवार्तां च	६८	६५९
तदा च ददृशे देव्या	४५	२७६
तदा च द्वारकां गत्वा	१८७	३६१
तदा च द्वारकापुर्या	१०१	३६७
तदा च दिक्कुमारीणां	१३१	१७१
तदा च दिव्यैर्भोगैश्च	२३६	१९२
तदा च मेरुशिखरात्	५२०	१८२
तदा च राज्ञोऽश्वपतिः	८८	३९२
तदा च राजपुरुषा	२९५	३५३
तदा च राजपुरुषा-	८१२	३४०
तदा च वैजयन्तस्थो	३१	३७६
तदा च वैताढ्यगिरौ	३	२२६
तदा च स्वामिनिर्वाण-	६८८	२५२
तदा चामु पुण्यवशाद्	८६	३९५
तदा चारुप्रभृतीनां	३७४	२६७
तदा चाशनिवेगस्या	२६४	३९७
तदा चासनकम्पेन	३३	२९७
तदा चासीत् पुरे तस्मिन्	४	३८९
तदाऽशासीद्धयग्रीव-	४९५	३२९
तदा ते जग्मतुर्वेश्म	१७८	२८०
तदा तेन तुरङ्गेणा-	१७०	३९४
तदादि चाभूत् सभव	८०	२९३

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
तदानन्तेऽभ्येत्य दीक्षा	११०	३४७
तदानीं चक्रिणोऽभ्येत्य	६१६	२५०
तदानीं च सहस्राक्ष-	३१४	३६६
तदानीं च सुधर्मायां	३३७	४००
तदानीं च सुमित्रोऽपि	८१३	२०९
तदानीमार्यपुत्राय	२६५	३९८
तदानीमेव सौधर्मे	२४४	१७४
तदानीं लक्ष्मणादेवी	३०	२९७
तदाऽऽपातकिराताना	२३५	२२१
तदा पितृणामस्थीनि	५८२	२४९
तदाऽभूतां दृशौ देव्याः	१२९	२५९
तदाऽभूद् दुन्दुभेर्नादो	३०६	२६५
तदा मुखे प्रविशत	३५	२८५
तदा युगपदिन्द्राणा	६७४	२५२
तदार्जवमहौषध्या	२९९	३८४
तदाविशालस्थालस्थ	८२४	२०९
तदा साऽपि महास्वप्ना	१०८	३६७
तदा सुदर्शनादेवी	१०४	३६७
तदा स्वहमितः स्थाना	४७१	२४६
तदाहि चण्डवेगस्य	३४४	३२४
तदाहि देवता काऽपि	९३०	२१३
तदित्याश्वजन्माऽय	१३४	३०५
तदिन्द्रजालरूपोऽयं	३७९	२४३
तदुत्तिष्ठ महावीर	६१९	३३३
तदुत्तिष्ठ स्व निर्गन्तुं	१५६	२८०
तदुद्यानेषु दृश्यन्ते	१६	२९६
तदुपादाय ते सर्वं	४३४	१८०
तदूर्ध्वं च सहस्रार	७६५	२०८
तदूर्ध्वं जालकटको	६१३	२०३
तदूर्ध्वं दशयोजन्यां	५३०	२०१
तदूर्ध्वमण्डपं दिव्यं	३२३	३९९
तदूर्ध्व लान्तकः कल्प	७६४	२०८
तं दृष्ट्वा नित्यमर्चाणि	९३	२२८
तदेतत् तस्य हृदयं	४३३	२४५
तदेतन्मनसिकृत्या	९३४	२१३
तं देव्यपि निशाशेषं	५९	२७१
तदेवं मानुषं क्षेत्रं	६५३	२०४
तदेव वचनं सोऽपि	३९०	३२६
तदेवं सम्प्रत्यपि मे	३०	२२६
तदेवं सर्वलोकेऽपि	२९६	३८४
तदैव परमानन्द	१६९	३१९

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
तद्देवाऽऽसनकम्पेना	१७२	२६१
तद्दैवैशानकल्पेन्द्रो	३५३	१७७
तद्गीताक्षिप्तहृदयः	८७२	३४२
तद् दर्पः परिहर्तव्यः	५४८	२४८
तद्दर्शनेन मे दुःखं	८८७	२११
तद्देशनां समाकर्ण्य	४२९	३२७
तद्भार्या तु स्वदुहितृ	४१४	२४४
तद् यदि त्वं स एवासि	१४४	३६९
तद् युष्माभिर्न भेतव्यम्	१८३	१७२
तद्वचो बिभ्रती नित्यं	९२५	२१२
तद्वत् स्तुत्वा नमस्कृत्य	४८१	१८१
तद्वप्रमेखलासूच्चैं	१७	३१४
तद्विष्कम्भो योजनाना	५९१	२०३
तद्वाचमनुमन्याऽथ	२८४	२२२
तद्वाचा विस्मय-क्षोभौ	२८२	२४०
तद्विक्रमस्य समभूद्	१९	२९६
तद् विद्धि सिद्धमेवाऽर्थ	३७	२७६
तद् विप्रवचनं शृण्वन्	२१२	२३८
तद् विमानं समारुह्य	३८३	१७८
तद्विषाणोत्थितैस्तोयैः	४२	३४५
तनुवातास्त्वसङ्ख्यानि	४९३	२००
तन्त्रप्रायाण्यनीकानि	७७४	२०८
तन्मध्ये लम्बमानोऽभू	२९६	१७६
तत्रिपद्यनुसारेण	८१६	२०९
तन्मिथ्यात्वापसारेण	८८	३०९
तप एकावलिं रत्ना	३०२	१६६
तपश्चतुर्थं कदाचि	३२०	१९४
तं प्रणम्य पुरः स्थित्वा	५८७	२४९
तपस्यकृष्णद्वादश्यां	४१	३१४
तपःस तीव्र तेपे च	७०	३७७
तपसेवांऽहसां राका	१९४	१७२
तं प्रान्तभूपतिं हन्तं	१८०	३७९
तपांस्येकावली-रत्ना	१८	२६९
तपोमाहात्म्यलब्धासु	३९०	४०२
तपोऽष्टमासिकं याव	३२३	१९५
तप्तायस्तोमरश्रेणी	१४३	२३०
तप्यमानस्तपस्तीव्रं	१२	३१३
तमप्यालोक्य दोर्दण्डं	४२६	२४४
तमाज्ञया कुमारस्य	३२०	३२४
तमाल ताल-हिन्ताल	१०६	१६०
तमास्थानस्थमन्येद्युः	३८२	२४३
तमिस्रकारिणी सिंह	५८३	३३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
तमिस्रादक्षिणद्वार	१७७	२१९
तमेव दर्शय निजं	४०३	२४४
तमोभिरान्ध्यं जगत–	२५८	१६५
तया कटिस्थया भान्त्यो	१८४	३१९
तया घोषणयाऽभ्येयुः	३८८	१७८
तया च देवतावाचा	११०	२३५
तया च वार्तया तुष्टो	५३१	१८३
तया जघान तां शक्ति	६९०	३३६
तया देशनया प्रायो	१५२	२७४
तया देशनया भर्तुः	७८२	३३९
तया नृपगिरा म्लाय	१८०	१६२
तयाऽपि ददृशे राजा	३१६	२२३
तया सहवियुक्तस्य	२०	३८९
तया साग्रहमित्युक्त	४५२	२४५
तयैव यात्रया विष्णु	१९०	३८१
तयोः कण्ठे निबद्धाऽभा	१२	१८५
तयोः कपोलौ बभतु	६१	१८६
तयोः कर्णान्तविश्रान्ते	११९	१७०
तयोः प्राणतकल्पस्थः	७६६	२०८
तयोरच्युतवास्तव्य	७६७	२०८
तयोरन्तः शीताभिन्न	५९६	२०३
तयोरभूत् संप्रहारो	२४९	३५२
तयोरस्ति च दुहिता	४४६	३२८
तयोरारूढयोः प्रौढ	२४२	३२१
तयोरुरःस्थलमपि	६५	१८७
तयोर्द्वयोः क्षितिभुजोः	४७३	३२९
तयोर्लवणिमा तादृक्	१२०	१७०
तयोर्विवादवृत्तान्ता	१६५	२८०
तयोश्च क्रीडतोः स्वैरं	१३	१८५
तयोश्च बाहुशिखरौ	६४	१८६
तयोश्च रथनिर्घोषा	३७२	३२५
तयोः श्रुती शुभावर्ते	६३	१८६
तयोः सहस्रमुत्सेधे	५९४	२०३
तं रङ्गभङ्गकर्तारं	२९१	३२३
तले तरूणां प्रचुरः	१२१	१६१
तव क्रुद्धयाऽनया स्वामिन्	२९९	३९९
तव ज्ञानमिदं नाथ !	८३	२९९
तव दर्शनमात्रेऽपि	८१९	३४०
तं वन्दितुमथाऽऽनन्दा	६९	१५९
तव पश्चादियं का नु	५१०	२४७
तवश्रेयोऽस्मिदा सोऽस्मि	८४	२७१

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
तव कर्णाम्बुदस्येव	४५	३७६
तव विश्वविदग्धस्य	३०३	२४१
तव स्वयंप्रभा नाम	५०१	३२९
तवाग्रे भूमिलुठनै	३७	३६५
तवाऽपविघ्नमीदृक्षा	२६३	२४०
तवाशेषजगज्जिष्णो	२६४	३२१
तवाऽसिधारालोदर्य	२९६	२६५
' विसृज्य ततो राजा	२५५	२२१
तवेच्छां पूरयाम्येष	१९०	३९५
तवेदं बकुलमति	२८८	३९८
तवेन्दुधामधवला	२२१	२८२
तवोदर्यं मूर्द्धवं पुण्यर्द्धि	२२५	२८२
तं शारहारकेयूर	७५	२१६
तस्याथ चक्रवर्तित्वा	३२७	४००
तस्थुश्छायाकराः केचित्	४४६	१८०
तस्थौ तत्रैव तच्चक्रं	७२८	३३७
तस्थौ सनत्कुमारस्य	३२६	४००
तस्माच्च प्राणिनस्त्रातु	१३४	१६१
तस्माच्च शिबिकारत्नात्	२८२	२६४
तस्माच्छ्वासापूर्णकण्ठात्	१८०	३९५
तस्मादद्रेरिव प्रादु	२१	३०१
तस्मादुपाददे रुच्या	१०	३७५
तस्मादेको बभ्रमीति	२३६	२८२
तस्मिन् दृढरथो नाम	१६	३०७
तस्मिन् दृढरथो नाम	४	३७५
तस्मिन्नपि महीनाथ	२०	२५६
तस्मिन्नन्वयास्तिलक	१४	१५७
तस्मिन् भवे ममाऽभूस्त्वं	२९	२२६
तस्मिन् मरकतैर्बद्धा	१८	३७५
तस्मिन् महीपतौ लक्ष्मी	२७	२८५
तस्मिंश्च गुणरत्नानां	७०	३९१
तस्मिंश्च सत्रशालासु	१५	३०७
तस्मिन् श्रावकधर्मोऽभूत्	१४	२५६
तस्मिन् शुभे दिने वारे	३६१	२२४
तस्य घोटककण्ठस्य	४०९	३२७
तस्य च प्रथमः सूनुः	१२१	२३५
तस्य चाऽऽक्रान्तदिक्चक्र	२५१	३२१
तस्य चाऽऽचार्यवर्यस्य	९८	२५८
तस्य चाऽतिबलो नाम	१२८	२३५
तस्य चापततोऽप्योष्ठौ	३९५	३२६
तस्य चाऽवरजो धुर्यो	१२३	२३५

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
तस्य चित्ते चैत्य इव	११	२५५
तस्य जन्माभिषेकाय	३६०	१७७
तस्य दानस्य पर्यन्ते	५५	३६५
तस्य द्वे अपि ते भार्ये	१४६	२७९
तस्य दोर्दण्डयोः कण्डू	२४८	३२१
तस्य न्यायः सुहृदभूद्	५	२८४
तस्य नामाङ्कबाणेन	२६	३८७
तस्य पञ्चशतान्यास	३	३८९
तस्य प्रभोर्भव्यजन	२	२६९
तस्य पृथ्वीपतेः पृथ्वी	२२	२९१
तस्य मार्गस्थितस्यैवै	१४४	२७९
तस्य मूर्ध्नि धराधीशो	२०६	१६३
तस्य लक्ष्मीश्च कीर्तिश्च	६	३४४
तस्य वेश्माङ्गणभुवो	११३	१८८
तस्या उपर्येकमासीद्	२९४	१७५
तस्या एव हि यामिन्या	२१	१६७
तस्याः कर्णान्तगे नेत्रे	४२३	३२७
तस्याग्रतो भूपतयः	१९	३०७
तस्या गुणचमूं सर्वा	२७	२९७
तस्यां गृहोर्ध्वभूमीषु	१५	३६४
तस्यां च त्रिजगद्भर्तुः	२	१६७
तस्यां च पुण्यलावण्य	४२	२७०
तस्यां च वासागारेषु	१७	२९६
तस्या जगत्याः पूर्वादि	६१५	२०३
तस्याऽऽज्ञया च सेनानी	३५५	१७७
तस्याऽऽज्ञा नगराऽरण्य	२०	३०१
तस्याऽऽज्ञासाधिताशेष	३२	२७०
तस्या दत्वाऽणुव्रतानि	८८०	२११
तस्या दातुरुपादातु	४१७	३२९
तस्यादेशाच्चमूनाथः	३१	३८८
तस्याऽऽदेशात् पत्त्यनीक	३८६	१७८
तस्याधो मणिपीठोर्व्यां	७९७	३३९
तस्याऽधो मणिभिर्बद्धे	३२८	२६६
तस्याऽन्तःपुरसम्भोग	४३	२२७
तस्याऽनुजन्मान इव	२९७	१७६
तस्याऽनुजन्मा नृपते	१२	१६७
तस्याऽनुपदमेवाऽथ	७	२२६
तस्यां पद्मोत्तराख्योऽभू	४	३०७
तस्यां पद्मोत्तरो नाम	४	३४४
तस्याप्रसादात् सदपि	१४६	३६९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक नं.	पृष्ठ	नं.
तस्याः प्राहरिक इव	२१९	१६४
तस्यापि कर्मणः सद्यः	३६२	३२५
तस्यापि देशनाप्रान्ते	१०७	२९९
तस्यां पुर्यामभून्नाम्ना	४	३०१
तस्याः पूर्वोत्तरदिशि	८४९	२१०
तस्या भ्रुवोश्च गत्यां च	२६	२९७
तस्याभूत् परमं मित्रं	८५	३९१
तस्याभूतामुभे पत्न्यौ	७६	३७७
तस्याभूतामुभे पत्न्यौ	१०२	३६७
तस्यामट्व्यामन्येद्यु	१४८	३९४
तस्यामनेकरत्नाढ्या	१४	२९६
तस्यामस्ति समस्तानां	४	२६९
तस्यामात्मानुरूपायां	४७	२७०
तस्यामासीत् समायात	४	२५५
तस्यामासीत् सिंह इव	१७	३६४
तस्यामासीन्महाराजो	५	२६९
तस्यामासीन्महासेनः	१८	२९६
तस्या मृगाङ्कवक्त्राया	१८२	३१९
तस्यां राज्यां तस्य राज्ञः	४१८	३२७
तस्या राज्ञोऽपि च मिथो	२९	३१४
तस्याऽऽर्जवं च शीलं च	६	२८४
तस्या वक्त्रं दन्तपत्र	१८६	३१९
तस्याप वक्षसि वक्षोजौ	१८८	३४८
तस्यावतो वसुमती	१०२	१८८
तस्या वदननिर्माणा	१८२	३४८
तस्या विषयवैराग्य	८७८	२११
तस्याः शरीरं कान्तेव	३१	२८५
तस्याः शीलं च रूपं च	२३	२९१
तस्याश्च ताड्यमानाया	२६७	१७५
तस्याश्च मूले विष्कम्भ	६१२	२०३
तस्याः सर्वाङ्गसौभाग्य	४२६	३२७
तस्याऽऽसीन्मङ्गला नाम	१३३	२७९
तस्याऽऽसील्लक्ष्मणा नाम	२३	२९६
तस्यास्तत्रैव तिष्ठन्त्या	४२८	२४५
तस्येति वचसा शान्तः	४०७	३२७
तस्यैकदाऽस्त्रशालायां	२३	३८७
तस्यैव तीर्थनाथस्य	२	३७५
तस्यैवमाघोषणया	२७९	१७५
तस्योदक्पूर्वककुभि	३३०	१७७
तस्योपरिष्टादुल्लोचो	२९५	१७६
ता अप्यूचुर्महाभाग	२२०	३९६

श्लोक नं.	पृष्ठ	नं.
ताः कृत्वा विदरं भूमौ	१५०	२६०
तां च श्रीद इवाऽयोध्या	२१०	३२०
ताड्यन्ते तालवृन्ताद्यै	११९	२८८
ताडितः कुलिशेनेव	१७१	२३७
तां तथावस्थितां ज्ञात्वा	२४	२७५
तातन्यक्कारकारं त	३०२	३२३
तातपादैर्विना तात	१८३	१६२
तातेन साधितेऽमुष्मिन्	५९	२२७
तातोपरोधादादाय	२४४	२६३
तादृशीं स्वामिनोऽवस्थां	१७५	२३७
तानि द्रव्याणि सर्वाणि	४३३	१८०
तानि देवाऽसुर–नाग	७११	२०६
तानि विद्याधराङ्गानि	४६६	२४६
तानि स्वयम्भूप्रत्यस्त्रै	१४८	३६०
तान् कुम्भान् लोठयामास	४३९	१८०
तान्यङ्गानि न किं ते वा !	४९९	२४७
तान्यवाजीगणन् सर्वा	७२	२२८
तान् स्वप्नान् विजयादेव्या	६८	१६९
तापनीयः पयस्कुम्भ	१२०	२५९
ताभिः समं रतिगृहे	२२८	३९६
ताभ्यां पर्यस्यमानानि	२४३	३२१
ताभ्यामधिष्ठिताभ्यर्णः	१४२	३०५
ताभ्यामधिष्ठिताभ्यर्णो	२९०	३५३
ताभ्यामपहृतं द्रव्यं	११५	३५९
ताभ्याममुक्तसांनिध्य	१८२	३६१
ताभ्याममुक्तसान्निध्यो	७८८	३३९
ताभ्यामुपासिताभ्यर्णो	२०८	३७०
तामभाषिष्ट भूपोऽपि	४४४	२४५
तामापतन्तं बाणेन	६७८	३३५
तां दण्डेन समाकृष्य	५४२	२४८
तां दृष्ट्वोद्यौवनां राजा	४३४	३२७
तां देशनां स भगवा	९३७	२१३
तां धर्माग्निष्ठिकां तेच	९१४	२१२
तां नवाम्भोजवदनां	३१२	२२३
तां निधाय यथास्थान	२८०	३५३
तां प्रमोदेशनां श्रुत्वा	२४२	२८२
तां पितर्यददाने च	३२४	२२३
तां पिशाचीमिवोन्मत्तां	५६७	२४९
ताः पूजयन्ति सततं	७०१	२५३
तां प्रेक्ष्य विक्रमयशा	८	३८९
ताम्बूलीबीटकभृतो	१९	३४४

श्लोक नं.	पृष्ठ	नं.
ताम्बूली–लवली–द्राक्षा	१०८	१६०
तौ विप्रवाचमाकर्ण्य	१६१	२३६
तां विमुच्य यथास्थानं	७७१	३३९
तांश्च दृष्ट्वा परे वीराः	६२७	३३४
तांश्च किंक्षितुमीशो चेद्	३९६	४०२
तांस्ताननुदिनं नन्दा	८६	३६७
तापनीयस्तु शिखरी	५७२	२०२
तारकः कोपतरलः	२२१	३५१
तारकस्य शिरस्तेन	२७३	३५२
तारकाऽथाग्रहीच्चक्रं	२५९	३५२
तालवृन्तधरैः कैश्चित्	११८	३४७
तालवृन्तानिलेनाऽम्बु	१७९	२३७
तालानुसारैः प्रक्रान्त	२८५	३२२
तावत् सर्वोऽपि जानाति	१४७	२३६
तावद् भुवोऽर्कसन्तापो	२५७	१६५
तावद् वात्योदभूच्चण्डा	९८	३९२
तावदेव हि दारिद्र्यं	८५	२९९
तावदेव हि सन्तापो	८६	२९९
तावदेवान्धकाराणि	८४	२९९
तावेवं यावदासाते	१४४	३७९
तांश्च गन्धोदकैः पुष्पो	२३३	१७४
तासां शब्देन घण्टानां	२६९	१७५
तास्त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य	१३८	२६०
तितिक्षितुमथेदृक्षं	५५४	३३१
तित्यक्षुरपि संसारं	५४	२८५
तिर्यग्गतिमपि प्राप्ता :	१००	२८७
तिर्यग्जातेः परं बीज	२९७	३८४
तिर्यग्योनिभवाः शेषा	२३६	३७२
तिर्यग्लोकस्तु रुचक	४८३	१९९
तिर्यग्लोकस्य त्वधस्ता	४८४	१९९
तिर्यग्लोकादितश्चोर्ध्वं	७५०	२०७
तिलकैर्मुद्रया मन्त्रैः	२८४	३८४
तिलोत्तमोर्वशीमेना	३२०	३९९
तिष्ठ तात ! व्रजिष्यावो	३५९	३२५
तिष्ठ तिष्ठ कियत्कालं	४५३	२४५
तिष्ठ तिष्ठ भटम्मन्ये	१७३	३८०
तिष्ठ तिष्ठाऽहिखेटत्वं	२९	२३२
तिष्ठन्ति चोत्तरश्रेण्यां	४३९	३२८
तिष्ठन्तौ विचरन्तौ च	१४३	३७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
तिसृभिर्गुप्तिभिर्योगान्	९६	३१०
तिसृष्वाशासु तस्यास्ं	२८८	१७५
तीक्ष्णवक्त्रा महादंष्ट्रा	२०१	३९५
तीर्थकृज्जननीत्वेन	२६	२९१
तीर्थकृत्तीर्थकृन्मात्रे	१९७	१७३
तीर्थकृत्तीर्थकृन्मात्रो	३३२	१७७
तीर्थकृत्प्रतिरूपं स	५०५	१८२
तीर्थकृन्मातरं नत्वा	४३	३१४
तीर्थङ्करं करतले	२४२	१७४
तीर्थं प्रवर्तय स्वामि	५४	३७६
तीर्थनाथं तीर्थतोयैः	३५	२९२
तीर्थाय नम इत्युक्त्वा	६८	३०३
तीर्थाय नम इत्युक्त्वा	७८	२९३
तीर्थाय नम इत्युक्त्वा	१८५	३६१
तीर्थाय नम इत्युक्त्वा	२१६	२८२
तीर्थाय नम इत्युच्चै-	७८	२९८
तीर्थाय नम इत्येव-	६८	२८६
तीर्थे तत्र समुत्पन्न-	३८५	२६८
तीर्थे तत्रैव चोत्पन्ना	३८७	२६८
तीर्थे यक्षेश्वरस्तत्र	१५९	२७४
तीव्रानुरागाः सुरते	७९४	२०९
तुङ्गवृक्षाधिरूढास्तौ	३६७	३२५
तुङ्गैस्तुरङ्गै रङ्गद्भि-	५९०	३३२
तुभ्यं दातुं निजाः कन्या	८०	३४६
तुम्बैः कक्षावनक्षिप्तै-	३०९	२४१
तुर्यज्ञानिनां द्वादश	३९३	२६८
तुर्यं ज्ञानं प्रभोर्जज्ञे	६९	३०९
तुरङ्गमः स घूर्णित्वा	१८२	३९५
तुरङ्गैः स्वर्णसन्नाहैः	७१	१५९
तुषैरिव स माणिक्यं	१८८	३५०
तूर्यनादैर्दिशो भिन्दन्	५९३	३३३
तूर्यप्रणादैर्बधिरी-	८०	२२८
तूष्णीकेषु ततोऽस्मासु	४९७	२४७
तृतीयवप्रमध्ये च	४३५	१९८
तृतीयवप्रमध्योर्व्यां	३६८	१९६
ते कलाग्रहणं चक्रुः	४६	२२७
ते च भवनपतयो	५०६	२००
ते च भारतका जम्बू-	६६२	२०५
ते च विद्याधरा वाजि-	४१४	३२७
ते च सिंहशरीरस्य	३९९	३२६
ते चाऽऽभियोगिकाश्चन्द्रा-	५४६	२०१

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
ते चाऽऽर्यनगरैरूप-	६६६	२०५
तेजःकायत्वमाप्ताश्च	१०७	२८७
तेजस्विनामशेषाणां	३४	१६८
तेजांसि जग्रसे राज्ञां	५	३७५
तेजो भीमं तदादाय	७४१	३३८
ते ज्ञानदर्शनाचार-	८७	३०४
ते त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य	१०८	३४७
ते धौतश्वेतवसना-	८७	१६९
तेन चासनकम्पेन	२४८	१७४
तेन चासनकम्पोऽयं	२५८	१७४
तेन दुन्दुभिशब्देन	५५७	३३१
तेन नाम्ना वयं भ्रान्ताः	५०१	२४७
तेन भग्नाः किरातास्ते	२०८	२२०
तेन शाम्यन्ति वैराणि	८५४	२१०
तेन शैलप्रहारेण	२१०	३९६
तेन स्वप्नविचारेण	१२६	२५९
तेन स्वप्नविचारेण	४८	२७६
तेन स्वविषये मन्ये	५१२	३३०
ते नः सम्पश्यमानानां	५८	२३३
तेनापि दौर्बल्येनात्तं	१३२	३६०
तेनार्पितं पितुर्लेखं	९१	३७८
ते निजं दर्शयामासु-	४७	२२७
तेनेत्यभिहितः सख्या	३०२	३९९
तेनैवमुक्तौ पितरौ	११५	२७८
तेनैवमुक्ताः सावज्ञं	५४०	३३१
तेनोत्ततार तां सिन्धुं	१६४	२१९
तेऽप्यभ्यधुः सुरा एवं	२१६	२२०
तेऽप्यूचुर्देव ! तेजस्वी	२७४	३२२
तेऽप्यूचुर्देव ! दुष्टानां	७३२	३३७
तेभ्यश्च तपनीयस्य	४०१	१९७
तेभ्यो द्वादश रूप्यस्य	२०७	३८१
तेऽभवन्नाहवोत्ताला	६०५	३३३
ते मन्त्रानार्यवेदोक्तान्	९२	१६९
तेऽर्थे क्षुद्रहिमवतः	६८५	२०५
तेषां क्ष्वेडारवादन्य-	२७०	३९८
तेषां कलकलं श्रुत्वा	५३१	३३०
तेषां च पक्षसूत्कारा	७०४	३३६
तेषां च मध्यादेकस्य	४४०	३२८
तेषामन्याज्ञया स्वे स्वे	३९९	१७९
तेषामस्माकमप्युच्चैः	८१	३४६
तेषामुद्यानपालानां	६१९	२५०

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
तेषामेव स्वस्वभाषा-	३८६	१९६
तेषां वृषाणां शृङ्गेभ्यः	४८९	१८१
तेषां शृङ्गेभ्य उत्पेतु-	१९५	२६१
तेषां शृङ्गोद्गतैरन्ते-	७३	२१५
तेषां सगरपुत्राणां	५७८	२४९
तेषां संनह्यतामुच्चैः	५९७	३३३
तेषु कालो महाकालो	६२६	२०४
तेषु धूपघटी दाम-	७१७	२०६
तेषु नद्याश्च शीताया-	५९७	२०३
तैर्दिश्युत्तरपूर्वस्यां	४१९	१७९
तैरुत्क्षिप्ताऽम्बरतले	२११	१९१
तैरेवाश्रुजलैर्भ्रातुः	१६०	३६१
तैस्तैः पुरुषसिंहोऽपि	३६४	३८६
तोरणानि प्रतिदिशं	७९१	३३९
तोरणानुभयतश्च	३६४	१९६
तौ तदानीमपि महा-	२६३	३९७
तौ ददर्श मुहुर्वेश्मो-	२०	१८५
तौ सम्यक्त्वोपदेशेन	९०८	२१२
तौ साक्षिणमुपाध्यायं	८४	३७७
त्यक्तराष्ट्रान् महाराष्ट्रान्	११२	२१७
त्यक्तसङ्गास्तनुं त्यक्त्वा	८०४	२०९
त्यक्त्वा क्रीडां कुमारस्त-	९०	३९२
त्यक्त्वाऽङ्गमलवद् राज्यं	११४	२७२
त्यक्त्वा योजनसहस्र-	५०५	२००
त्यजन्त्येते न यावन्मां	१२	२८४
त्याजयन् राज्यलिङ्गानि	१११	२१७
त्र्यब्दोनान्यब्दलक्षाणि	२९७	३७४
त्र्यशीतिवर्षलक्ष्येको	८८९	३४२
त्रयस्त्रिंश-त्रायस्त्रिंशै	४३६	१८०
त्रयोदशं जिनेन्द्रं ते	३२	३५७
त्रयोदशार्हतस्तस्य	२	३५६
त्रयोविंशतिरर्हन्तो	४५५	३२८
त्रस्तान् स्वसैनिकान् दृष्ट्वा	२५४	३५२
त्रसा द्वित्रिचतुःपञ्चे	२३१	३७१
त्रातव्योऽयं मया देशो	१२३	१८८
त्रिकालवेदी भगवान्	५८८	२४९
त्रिके त्रिके पथि पथि	१८३	१९०
त्रिखण्डभरतक्षेत्र	२१६	३८२
त्रिखण्डं भरतं स्वामी	५४७	३३१
त्रिखण्डे भरते ह्यस्मिन्	२९५	३२३
त्रिगुप्तिः पञ्चसमिति	१५	२८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
त्रिगुप्तिः पञ्च समिति	३१३	२६६
त्रिजगद्भूषणं स्वामी	६४	२९३
त्रिजगद्विषयं ध्याने	३४१	१९५
त्रिजगन्नाथ ! नाथामि	३००	२६५
त्रिपृष्ठ इत्यभाषिष्ट	३०९	३२३
त्रिपृष्ठं चेत्यभाषिष्ट	५०७	३३०
त्रिपृष्ठमुत्थितं दृष्ट्वा	७३८	३३७
त्रिपृष्ठस्याब्दसाहस्राः	८८८	३४२
त्रिभिर्यतैः समाक्रामन्	४८	१८६
त्रिमुखो दुरितारिश्च	३८९	२६८
त्रिवर्गं पालयामास	२९	१५८
त्रिवर्गसाधनाशक्त	५०	१५८
त्रिशल्यारणा–ऽच्युतयो	७७८	२०८
त्रिंशद् वर्षधरा देव	६५४	२०८
त्रिसन्ध्यं पूजयामास	३१०	२६५
त्रिसहस्री शते द्वे च	२९५	३७४
त्रीन्द्रियत्वेऽपि सम्प्राप्ते	११६	२८८
त्रैलोक्यचक्रिणो भ्राता	६६२	२५२
त्रैलोक्यप्रभवे पुण्य	१	२५५
त्रैलोक्यप्रलयत्राण	२४६	३८३
त्रैलोक्ये क्षणमुद्द्योतो	१८२	२८१
त्वत्प्रभावे भुवि भ्राम्य–	३९०	१९७
त्वत्प्रसादस्य सम्पर्का	४२	२९२
त्वत्प्रसादात् त्रुटन्माया	२१६	३७१
त्वत्पादपद्मयोर्भृङ्गी	८२४	३४०
त्वत्पादपद्मलीनेन	४७	३७६
त्वत्पादपद्मशुश्रूषा	५०१	१८२
त्वत्पादपद्मामासाद्य	४२	३५७
त्वत्पादाद्भुतवः सर्वे	४२६	१९८
त्वत्पुत्रश्चेन्म्रियेतैक	१३९	२३६
त्वत्पुरो लुठनैर्भूया	७९	२७१
त्वत्साहाय्यं विना सोऽरि	४८५	२४६
त्वद्दर्शनपवित्राणि	४२	३०८
त्वद्दर्शनस्यास्य फल	५२	३४५
त्वद्दर्शनसुखप्राप्त्या	१८८	२८१
त्वद्दर्शनसुधापान	१९७	३६२
त्वद्दर्शनसुधासार	४९९	१८२
त्वद्देशनापयःपूरैः	२१२	३८२
त्वद्वक्त्रकान्तिज्योत्स्नासु	८९	२७१
त्वदास्यलासिनी नेत्रे	८२	२७१
त्वदुक्तं स्वामिने नैत	१६०	३८०
त्वं धन्याऽसि पवित्राऽसि	१७९	१७२
त्वं भुवं स्फोटयित्वैवा	३१२	३२३
त्वमद्याप्यनभिज्ञोऽसि	१५९	३८०
त्वमसि क्ष्मापते ! विश्व	१६४	२३७
त्वमस्त्रीलम्पटस्त्राण	३९८	२४४
त्वमासीरघुनैवेह	२६	३८९
त्वय्यादर्शतलालीन	४७४	१८१
त्वय्याशा राज्यधरणं	१४१	३१८
त्वय्युच्चैः पुरुषसिंह	१३२	३७९
त्वया सह चिरात् प्रेम्णा	३३८	३२४
त्वया सहोपसर्गाश्च	१५५	१८९
त्वया हतं वज्रवेगं	२५८	३९७
त्वयि च स्यन्दनारूढे	६२०	३३४
त्वयि दोषत्रयात् त्रातुं	४२२	१९८
त्वयैक्ष्वाकुकुलं नाथ !	८२२	३४०
त्वं हेलयाऽपि कर्माणि	२८२	१९३
त्वां कामं भक्तिकारीति	१४३	३६९
त्वादृशास्तु महात्मानो	२१८	२३८
त्वामनन्तगुणं स्तोतुं	३९	२९७
त्वामालोकयितुं त्वां च	३८	३०८

"द"

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
दक्षिणं भरतस्यार्धं	७६६	३३८
दक्षिणभरतक्ष्मार्धं	५००	३२९
दक्षिणश्रेणिगा एते	४०५	१७९
दक्षिणस्यां दिश्यभुवन्	३०३	१७६
दक्षिणाभ्यां भुजाभ्यां तु	३८८	२६८
दक्षिणेतरबाहुभ्यां	२०३	३७०
दक्षिणे भरतार्धे हि	२३६	३५१
दक्षिणेनैकलधर	३८६	२६८
दक्षिणोऽपि भजस्तस्य	४८१	२४६
दण्डदारणमार्गेण	१६३	२३०
दण्डं द्वितीयं दोर्दण्डं	६८९	३३६
दण्डपद्मासनात् कांश्चित्	८६	१६०
दण्डरत्नेन तेनाऽथ	१६२	२३०
दण्डेन दण्डभृदिव	२१२	३९६
दण्डेन शय्या शूलेन	३६	१८६
दत्तगुप्यद्गुरुमिवा–	१०४	१६०
दत्तहस्तः स पुत्रेण	२२९	१६४
दत्तं न किञ्चित् कस्मैचि–	७५	२८६
दत्ते समस्तकल्याणे–	४०	२९२
दत्तास्थानः सुधर्माया–	२४७	१७४
दत्त्वाऽपस्वापनीं देव्याः	६८	२७१
दत्त्वाऽवस्वापिनीं देव्याः	६५	३१५
ददर्श कोटिपुरुषो	७६८	३३८
ददर्श च तदा देवी	३०	३०२
ददर्श च महास्वप्नान्	२८	३६५
ददर्श सुखसुप्ता च	१६८	३१९
ददुश्च बलभद्राय	६२६	३३४
ददौ च वार्षिकं दानं	५५	३५७
ददौ च वार्षिकं दानं	५८	२८६
ददौ पदानि सप्ताऽष्टा	३५०	१९५
दधद् वामौ च दोर्दण्डौ	१११	२९४
दधार च तमुत्सङ्गे	१५९	३६१
दधिपर्णतले तत्र	१९५	३८१
दधिष्वेव प्रमथन–	१०७	१८८
दध्याविति कुमारोऽपि	९५	२५८
दध्यौ चैवं विश्वभूति–	१३२	३१७
दध्यौ भगीरथश्चैवं	५७९	२४९
दन्तघात–मदावस्था	३२	१८५
दन्तच्छदौ पराभूत–	३५०	४००
दन्तमैरावणस्येवो–	६९२	३३६
दन्तावलश्चतुर्दन्तः	१७०	३१९
दन्तांशुज्योत्स्नया व्योम–	९७	१६०
दन्तिभिर्गन्धदन्तीव	१३२	२३६
दन्तुराणि ततः कुम्भैः	१५५	१७१
दम्पती पितरः पुत्राः	२८९	३८४
दम्भसंरम्भगर्भाणां	३२९	३५४
दयावान् यदि वाऽसि त्वं	७४	३०३
दर्दर–मलयभवै–	३६४	२२५
दर्शने धार्मिकाणां च	१२५	३०५
दर्शयन्तः पथि चल–	८५	२२८
दवाग्निनाऽप्यदाह्यासु	१४२	३९४
दशभिर्वर्षसहस्रैः	३१३	३९९
दशमो भगवानर्हन्	५६	३०८
दशयोजनसहस्रा–	७०७	२०६
दशार्णा मृत्तिकावत्या	६७१	२०५
दष्टोऽपि दंशमशकैः	२८०	१६५
दह्यते वा प्रदीप्तेन	६१	२५७
दाक्षिण्यं रक्षणभवं	२१६	१६३
दाक्षिण्येन प्रभोः पित्रो–	५४	२९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक न.		पृष्ठ न.
दानधर्मं इवौचित्यात्	२३	३१४
दानं महाफलं सर्वे	१६०	३०६
दान–शील–तपो–भाव–	९	२६९
दान–शील–तपो–भाव–	४२१	१९८
दानस्य चोचितं पात्रं	१६१	३०६
दानादिलब्धयो येन	४७५	१९९
दानान्ते विदधुर्दीक्षा–	५६	३५७
दाने लाभे च वीर्ये च	१३३	३०५
दायमादाय दायादा–	८५	२३४
दायादेनाऽथ केनाऽपि	७७	२३४
दारितां चावनीं प्रेक्ष्य	१४१	२३०
दारिद्र्यं प्राणिनां ताव–	२५९	१६५
दारुदारं विदार्यन्ते	९२	२८७
दासीमपि न दास्यामि	१५९	३४९
दासीरिव समाकृष्य	३५	२७०
दासैरिव याम्यार्ध–	१४०	३६८
दिक्कुमार्यः प्रागुचका–	१४४	२६
दिक्कुमार्योऽपा गुचकात्	१४५	२६०
दिक्कुमार्यः षट्पञ्चाश–	३५	३७६
दिक्कुमार्यस्तत्र चक्रुः	१८३	२८१
दिक्षु प्रभोश्चतसृषु	४८८	१८१
दिग्गजानां युवराजा	५५९	१८३
दिग्मुखप्रसृतैः शङ्ख–	४०५	१९७
दिग्यात्राया न्यवर्तिष्ट	१६९	३६१
दिग्यात्राया निवृत्तोऽथ	२७८	३५३
दिग्यात्राया निवृत्तोऽथ	१९१	३८१
दिने दिने वपुश्छाया	१७१	३१९
दिस दिने योजनिकैः	३०१	२२३
दिने द्वितीये विजय–	२०८	२८१
दिनैः कतिपयैः प्राच्यां	५०	२१५
दिवोऽवतरदर्काभं	५०७	१८२
दिव्यधर्घरका रेजुः	११	१८५
दिव्यघण्टाचतुष्केण	५९	२१५
दिव्यं च वसुधारादि	६७	२९८
दिव्यं च सुमनोदाम–	३६५	२२५
दिव्यतल्पाऽऽसनामत्रे–	२५१	१९२
दिव्यभोगावसाने च	८०८	२०९
दिव्यं समभवत् तत्र	६२	३७७
दिव्यसिंहासनं भूयो	३७८	२६८
दिव्याङ्गरागनेपथ्य–	३८	२९७
दिव्याङ्गरागनेपथ्य–	६	२९६
दिव्याङ्गरागपूजादि–	१९१	२६१
दिव्याङ्गरागलिप्ताङ्गो	९६	३१६
दिव्याङ्गरागैश्चर्चित्वा	३६	३०८
दिव्यानामथ भौमानां	२३८	१९२
दिव्यामृतरसास्वाद–	४७३	१८१
दिव्यास्त्रमिव युत्पारे	१०	३०१
दिव्ये समवसरणे	१९६	३८१
दिव्ये समवसरणे	१७७	३६१
दिव्यैर्विभूषणैर्वस्त्रै–	४४	३४५
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां	३०२	१७६
दिशि याम्यप्रतीच्यां च	३०४	१७६
दिश्यैशान्यां स्थिताः कृत्वा	१३९	२६०
दिष्ट्या दृष्टोऽसि दोर्दृप्त !	४७४	२४६
दिष्ट्या प्रवर्धसे देव !	४७०	२४६
दीक्षां जग्राह तत्पार्श्वे	८	३५६
दीक्षां दास्यन्ति तातस्य	६३९	२५१
दीक्षां सह त्वयाऽऽदास्ये	१५४	१८९
दीनस्वरं प्ररुदितं	५६८	३३२
दीना–ऽनाथैकशरणा–	१७	२५६
दीप्यमाने तपोवह्नौ	८३४	३४१
दीयमानां प्रभोर्भिक्षां	२९८	१९४
दुःखगर्भे मोहगर्भे	२७४	१९३
दुःखदावाग्निभीष्मेऽस्मिन्	१३४	१८९
दुःखदावाग्निभीष्मेऽस्मिन्	२३२	२८२
दुःख–शोक वधास्तापा–	८९	३०४
दुःखहेतुषु वैराग्यं	२६९	१९३
दुःखानुबन्धिभिर्दुःखैः	१२८	३७९
दुःखाय स्वामिविरह	१६१	१८९
दुग्धानि क्वाथसिद्धानि	४५	२५७
दुन्दुभिर्विश्वविश्वेश !	२२४	२८२
दुराचारस्य यत्कृत्यं	५०२	२४७
दुर्गतिप्रपतत्प्राणि–	८९९	२१२
दुर्गाणि जितवैताढ्य	६	३१३
दुर्जनैर्निन्द्यमानः सन्	१२	२६९
दुर्ज्ञानमेतदथवा	२६२	३२१
दुर्दमं दमयामास	३७	१५८
दुर्धावसङ्गपङ्काश्च	२८३	१६५
दुर्निर्णयोऽद्य चकित–	१६०	२८०
दुर्भिक्षकालं सकल–	४७	२५७
दुर्वारैर्वारणैरश्वै	५६२	३३१
दुर्विनीतो यद्यपि त्वं	२६०	३५२
दुर्विनीतो यथा शक्त्या	३१३	३२३
दुर्वेश्मनीव संसारे	६	३५६
दुष्कर्माणि विलीयन्ते	८५५	२१०
दुष्टानां शासके तस्मिन्	२३	३४४
दुःसहान् सहमानस्य	३८६	४०१
दुस्तपं स तपस्तप्त्वा	६६	३७७
दुस्तपं स तपस्तप्त्वा	४३	३९०
दूत इत्येष नो वध्यः	३१६	३२३
दूतत्वेन न वध्योऽसि	५१५	३३०
दूतानां वाक्प्रपञ्चैक–	१६३	३८०
दूतोऽद्राक्षीद् हयग्रीव	३४५	३२४
दूतोऽप्यूचे पितृतुल्य	१५८	३८०
दूरतोऽपि तदाकर्ण्य	३५७	४००
दूरदर्शनशक्त्या च	१२७	१६१
दूरदूरादेत्य भूपैः	१७६	२१९
दूरादहमपदयं च	९६	२३४
दूरे गत्वाऽथ सम्भूय	२०९	२२०
दूरे वा सम्पदः सन्तु	१४७	३६९
दूर्वाङ्कुरैः शिरोन्यस्तै–	८८	१६९
दृक्कारामेलकस्ताभ्या–	४८९	३२९
दृक्सरस्योरन्तराले	६२	१८६
दृढीकृतस्कन्धहारः	४०३	१९७
दृप्तानां दर्पहरणे	१३९	३६८
दृश्यसे नित्यमपि यैः	८७	२९९
दृष्टनष्टमिदं यद्वत्	३७७	२४३
दृष्ट्वाऽन्येषां विमान–श्री	१५२	२८९
दृष्ट्वा परस्य महतीं	१४९	२८९
दृष्ट्वा वंशत्रयं पृष्ठे	२३४	३२१
दृष्ट्वा सगरराजस्य	९९	२१७
देवकन्योपमा राज–	७५	१८७
देवगत्या तथा सर्वं	१७४	१७२
देवताऽजितबला च	८४५	२१०
देवताभिरिति स्वाधि–	११५	१७०
देवतामिव तं नेमुः	१३०	२७९
देवतार्हैर्महामूल्यैः	२१	२१४
देव ! त्वज्जन्मकल्याणे	१८७	२८१
देव ! त्वद्दर्शनसुधा–	२०३	२६२
देव ! त्वद्दर्शनेनाद्य	१९२	३६२
देवदूष्यं देवराजे	२५७	१९२
देवदूष्याण्यदूष्याणि	२०१	१९१
देव ! द्वारवतीभर्तु–	२१८	३५१
देव ! द्वासप्ततिः स्वप्नाः	९८	१७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
देवद्रुपुष्पमालाश्च	२५४	२२१
देव ! प्रसीदादिश मां	१२४	३५९
देवमर्हन्तमेवैकं	८	२६९
देवस्य कृतमालस्य	१५२	२१८
देवस्यामितसैन्यस्या-	११०	३९२
देवा अपि तवाऽऽदेशं	११३	२३५
देवान् मेघमुखान् नाग-	२१०	२२०
देवाय तीर्थनाथाय	१२	२५५
देवाश्च जृम्भकाःशक्रा-	२५४	२६३
देवाः सद्वेदनाः प्रायो-	७८८	२०८
देवास्तेषां विमानानां	३५७	१७७
देवी प्रबुद्धा तान् स्वप्नान्	१२३	२५९
देवीभिर्दानवीभिश्च	२०४	१९१
देवेन मेघवद् विश्व-	५१५	२४७
देवेनाऽपि पितृवचः	१९५	१६३
देवेभ्यो दानवेभ्योऽपि	४१	३७६
देवैश्च त्रिदशे दिव्य-	१२८	३४४
देवैः सञ्चार्यमाणेषु	८०२	३४०
देवैः सञ्चार्यमाणेषु	१२५	२७३
देवैः समवसरणे	७८१	३३९
देवो जय जयेत्युक्त्वा	१५०	२१८
देवोत्तरकुरुभ्यश्च	४३१	१८०
देवोत्तरकुरुभ्यः प्रा-	५९८	२०३
देव्याः कुक्षाववर्धिष्ट	४९	२७६
देव्याः प्रमाणमादेश	१०४	२३५
देव्याः स उदरे गर्भो	१२८	२५९
देव्याः सुदर्शनायास्तु	४४	२७६
देशनां पूर्णपौरुष्यां	१५५	२७४
देशनान्ते च सगरो	६३२	२५१
देशनान्ते प्रभोः पाद-	१०६	२९९
देशनाविरते तस्मिन्	८३८	२१०
देशनाविरते नाथे	१७८	२९०
देशादिदर्शनौत्सुक्य	९५	३०४
देशान्तरगति तस्य	८७०	२११
देहप्रभाभिस्तिरयं	३३९	४००
देहभाजां मनोवित्तं	२१३	३७१
देहाद्या इन्द्रियग्राह्या	९७	२९४
देहिनां निर्वृतिद्वार-	२१९	३७१
दैवतानामायुधानां	५४५	२४८
दैवस्येव न तस्याज्ञां	९०	३५८
दैवेनाप्यभिभूतानां	१५	३५६

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
दैत्यादिभ्योऽपि निर्भीका-	२४४	३२१
दोधूयमानचमरो	२८१	२६४
दोर्भ्यां तदितराभ्यां च	२००	३८१
दोलाऽऽन्दोलनसंसक्त-	५८	३६६
दोषधातुमलाकीर्णं	९६	२९९
दोषा रागद्वेषमोहाः	४४४	१९८
दोष्मतस्तस्य संग्रामे	१३	३८७
द्वयं विरुद्धं भगवं-	६२८	२५१
द्वयोरपि गृहेऽभूवन्	४८१	३२९
द्वयोरपि ततः श्रेण्योः	३९८	१७९
द्वयोरपि तयोः पीडा-	१५३	२३६
द्वयोरपि महासैन्ये	४७१	३२८
द्वयोरप्यग्रसैन्यानां	१६५	३४९
द्वयोरप्यनयोस्तुल्यं	४४३	१९८
द्वयोरप्येक एवात्मा	१५३	३४९
द्व्यग्रं शतं गणधराः	३७५	३६७
द्रविडाश्च कुलक्षाश्च	६८२	२०५
द्रव्यैर्गुणैः पर्ययैश्च	८१९	२०९
द्राक् सुदर्शन भूतोऽन्त-	३६८	३८६
द्वात्रिंशत्पात्रकं केऽपि	४५२	१८०
द्वात्रिंशतान्तःपुरस्त्री-	८६६	३४२
द्वात्रिंशताब्दसहस्रैः	२८७	२२२
द्वात्रिंशतो जनपद-	२९०	२२२
द्वात्रिंशद्राजसहस्रा	३५७	२२४
द्वात्रिंशद् व्यन्तराधीशाः	६९	३१५
द्वादश धातकीखण्डे	५३७	२०१
द्वादशयोजनायामा	२८३	२२२
द्वाभ्यां दिनाभ्यां चात्रागा-	१०५	३७८
द्वारकायां तु सोमस्य	१३०	३६८
द्वारपालोऽथ पप्रच्छ	६६	२३४
द्वारस्थौ द्वारपालेन	३४७	४००
द्वारि भूपतयः सर्वे	८९३	३४२
द्वारे द्वारेऽभवद् वापी	३६५	१९६
द्वावप्यार्यपुत्रविद्या-	२७६	३९८
द्वासप्ततिः पुष्करार्धे	५३८	२०१
द्वासप्ततिं योजनानि	२५१	२२१
द्वासप्तति सहस्राणि	३५३	३५५
द्वाःस्थेन कथितः पूर्वं	१४५	३७९
द्वाःस्थेनाऽपि निषिद्धस्त-	२९६	३२३
द्विड्जयादातुरत्राणा	४१	१५८
द्विगुणं दण्डभेदं च	१६५	२३०

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
द्विगुण-द्विगुण-नदी-	५८४	२०२
द्विचत्वारिंशतं वर्ष	९२	३१६
द्विचत्वारिंशता भिक्षा-	२६८	१६५
द्विचत्वारिंशत्सहस्र-	६२९	२०४
द्विजातिजातिसुलभं	७९	२३४
द्विजोऽपि कथयामास	२८१	२४०
द्वितीयदिवसे स्वामी	६१	२८६
द्वितीयपौरुषीप्रान्ते	२४५	२८३
द्वितीयवप्रमध्ये तु	४३४	१९८
द्वितीयशुक्लध्यानान्ते	१२२	२७३
द्वितीयशुक्लध्यानान्ते	७३	२९३
द्वितीयशुक्लध्यानान्ते	७३	२९८
द्वितीयस्मिन् दिने पुर्या	३०२	२६५
द्वितीयस्मिन् दिने स्वामी	२८९	१९३
द्वितीयस्यां च पौरुष्यां	६५७	२५१
द्वितीयस्यां स पौरुष्यां	३८३	२६८
द्वितीयं सप्तभिन्यूनं	६४९	२०४
द्वितीयः पृष्ठतः स्थित्वा	३४१	१७७
द्वितीयेऽहनि सिद्धार्थ-	१०५	३१६
द्वितीयेऽहन्ययोध्याया-	११६	२७३
द्वितीयेऽह्नि धान्यकट-	६६	३५८
द्वितीयेऽह्नि रिष्टपुरे	७०	३०९
द्वितीयेऽह्नि वर्धमान-	६६	३६६
द्वितीयेऽह्नि श्वेतपुरे	६१	३०३
द्वितीयेऽह्नि सौमनसे	६१	३७७
द्विधाऽऽर्यम्लेच्छभेदात् ते	६६४	२०५
द्विपृष्ठवासुदेवोऽपि	३६४	३५५
द्विपृष्ठस्य कुमारेऽब्द-	३६६	३५५
द्विपृष्ठस्योपरिष्टाच्च	२७४	३५२
द्विवर्षोनां पञ्चदश	२२३	३६३
द्वीन्द्रियत्वे च ताप्यन्ते	११४	२८८
द्वीन्द्रियाः कृमयः शङ्खा	२३४	२७२
द्वीपस्य जम्बूद्वीपस्य	७२	२१६
द्वीपा उल्कामुखो विद्यु-	६९७	२०६
द्वीपाऽम्भोधीनसङ्ख्याता	३२५	१७६
द्वीपेष्वर्धतृतीयेषु	७४३	२०७
द्युसत्कुमारकैर्वेला	४८	३०८
द्युसन्नाथा जगन्नाथ-	२६२	२६४
द्रुपत्रस्याऽप्यसहनात्	४९	२२७
द्रुमवद् दर्शयिष्यन्ति	३१४	२४१
द्वे च विद्याधरश्रेण्यौ	२५५	३२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
द्वे द्वे नाग–यक्ष–भूत–	७१६	२०६
द्यौरिवाऽमरराजेन	८१	२३४
"ध"		
धनमित्रनरेन्द्रस्य	७५	३५८
धनमित्रस्य जीवोऽपि	९०	३५८
धनमित्रोऽन्यदा रेमे	७६	३५८
धनहीनः शतमेकं	३१३	३८५
धनुर्धरवरोन्मुक्त–	१६८	३४९
धनुर्वेदमथाऽन्येषा	३४	१८६
धनुषा फलकाऽसिभ्यां	३५	१८६
धनुःशतत्रयोत्तुङ्गः	१९८	२८१
धनुःशतद्वयोत्तुङ्ग	५३	२९२
धन्यास्तास्त्रिजगन्नाथ !	२९४	२६५
धन्यास्ते विषया ग्रामा	२८७	१९३
धम्मिल्लान्तः काश्चिदर्ध–	२२१	१९१
धरणेन्द्रो हरिवेणु	३९१	१७८
धरणो भूतानन्दश्च	१७४	२६१
धर्मकृत्यानि कुर्वाणो	७	३०१
धर्मगर्गाहिमवत	१	३७५
धर्मचक्रिंस्तव वक्त्रा–	८६	२९३
धर्मदेशनया भर्त्तु	१०४	२९९
धर्मध्याने भवेद् भावः	८०२	२०९
धर्मपुत्रीं च मां पश्यन्	४४९	२४५
धर्मप्ररोहबीजानि	१६	२५६
धर्मप्रभावतः कल्प–	३११	३५४
धर्ममर्थं च कामं च	२२५	१६४
धर्महर्म्यदृढस्तम्भ !	४०	३०२
धर्माधर्मोज्झिता म्लेच्छा	६८४	२०५
धर्माऽधर्मौ समासन्नौ	२३५	२८२
धर्मायाऽचिन्तयन्नित्यं	११	१६७
धर्माविबाधया तस्य	१७	३८७
धर्मैकमण्डपस्तम्भ !	१९२	२८१
धर्मो नरक-पाताल–	३१८	३५४
धर्षयिष्यति यो दूतं	२६७	३२२
धवलानुद्गृणन्तीषु	२३७	२६३
धातकीखण्डक्षेत्रादि–	६४६	२०४
धातकीखण्डद्वीपस्य	६४४	२०४
धातकीखण्डद्वीपस्य	३	२५५
धातकीखण्डद्वीपस्य	३	२९१
धातकीखण्डद्वीपस्य	३	२८४
धातकीखण्डद्वीपस्य	३	२९६

श्लोक	नं	पृष्ठ नं
धातकीखण्डद्वीपे प्रा–	३	३५६
धातकीखण्डद्वीपे प्रा–	३	३६४
धातकीखण्डद्वीपे प्रा–	३	३७५
धातक्यां सेव्याकाराणां	६४५	२०४
धात्र्यः शक्रकृताः पञ्च	२२०	२६२
धात्र्याः परित्राणमिव	२०४	२३८
धात्रीजनैर्लाल्यमानौ	८३	३७७
धात्रीपवित्रीकरणं	२	२५५
धात्रीभिः पाल्यमानास्ते	४५	२२७
धात्रीभिर्धार्यमाणाव–	७	१८५
धात्रीभिःपञ्चभिः शक्रा–	१	१८५
धात्रीभिरिन्द्रादिष्टाभि–	१९७	२८१
धात्रीभिः शक्रादिष्टाभि–	८७	३१६
धात्रीभूय सुरस्त्रीभि–	४९	३५७
धान्यानामेव निष्पेषः	१०३	१८८
धान्याभावादजायन्त	२४	२५६
धाराभिस्तेऽथ मुसल	२२२	२२०
धावद्भिः प्रस्खलद्भिश्च	१२	२१४
धावन्तमुल्ललन्तं वा	२१०	३५०
धावन्तः स्फारत्कारा	६९८	३३६
धिग् नः प्रमादिनो धन्या	४४	२९२
धीराणामपि सङ्क्षोभ–	६३	२२७
धीरीभूय निरीक्षध्वं	१२९	३६०
धूपघटयः प्रतिद्वारं	३६६	१९६
धूमध्वजश्च निर्घूमो	२२४	३२०
धूमं शोकानलस्येवो–	१८२	२३७
धृतस्त्वपुरुषैरत्रा–	३१७	२४१
धृत्वा दर्पण–भृङ्गार–	५०	३१५
धैर्यं लज्जां विवेकं च	१८३	२३७
ध्यातव्योऽयमुपास्योऽय–	८९३	२११
ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं	१३७	२७३
ध्यानान्तरे तिष्ठतश्च	३१५	२६६
ध्यानैकतानः सततं	२९९	१६६
ध्यायन्ति परमात्मानं	४३	३६५
ध्रियमाणस्थगिकोऽन्यैः	३०५	३९९
ध्यायन्नित्यतां नित्यं	३७०	२६७
ध्वनत्सु तूर्यवर्येषु	२७६	२६४
ध्वनिताहिफणाघोर	५८७	३३२
ध्वनिराकर्ण्यतां राजन् !	३४०	२४२
ध्वस्तान्धकारपटलः	२८	१६७
ध्वंसमानो महाध्वान्तं	२२०	३२०
ध्वान्तध्वंसकृदुद्योत–	१३४	२६०

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
ध्रुवं विपन्नो मे पुत्र	१००	२३५
"न"		
न इत्युदीर्य निभृतं	७४	३१६
न कदाप्यरतिं चक्रे	२८२	१६५
न कल्पान्तरसाम्राज्यं	४९	२८५
न कस्याप्युपरि स्वामी	२४६	२६३
न किञ्चन सुखायेह	७९	२५८
न किं संतप्यते तेऽङ्ग	१३६	३७९
नकुलाक्षसूत्रयुक्त	७८५	३३९
न कृतं सुकृतं किञ्चित्	१५१	२८९
न केवलं रागमुक्तं	४७५	१८१
न खल्वेकोत्सुका एव	६८८	२०५
नरवांश्च प्राणिनां प्राणा	३८२	३२६
नखेषु–शोणाश्ममयी	४४	२७०
नखैरिन्दुकलावक्रैः	२४	१६७
नगरीणां विनीतेव	४५	२७०
नगर्यां बलिचञ्चायां	३८५	१७८
नगर्यामभवत् तस्यां	२५	१५८
न गुणेष्वस्य दाक्षिण्यं	३६०	२६७
न च द्वीपाधिपः कोऽपि	९१	२५८
न च मन्त्रप्रयोगैर्य	५०	३४५
न चाऽपूरि मनोहारि	७३	२५८
न चाखैरपरेन्द्राणां	४६	३४५
न चेत् प्रदास्यते तद् वः	२२९	३५१
न चैतौ प्रतिभासेते	२२०	३५१
न ज्वलत्यनलस्तिर्यग्	३१४	३५४
न तथा त्रिजगन्नाथ !	८०	३१६
न तथा भूषणं नाथ !	७९	३१६
न तथा हृदयानन्द	३१५	२२३
न तृप्तोऽद्यापि दयिता	७२	२५८
नत्वा जिनेन्द्रं भूयोऽपि	१९१	३६२
नत्वा प्रदक्षिणापूर्वं	२११	१७३
नत्वा भगीरथोऽप्येव	६१०	२५०
नत्वा महेन्द्रसिंहोऽश्व	१०३	३९२
न दण्डनीतिं प्रायुङ्क्त	१११	१८८
नदीकरिहरीनूचे	१२३	३९३
नदी–नद–नदीनाथ	२४५	२३९
नद्यादिवारितरणं	२५१	२३९
नद्यौ तु रक्ता–रक्तोदे	५८२	२०२
न द्वौ युगपदर्हन्तौ	१०२	१७०

श्लोक नं.		पृष्ठ नं.
न धर्षित श्चण्डवेगो	३२७	३२४
ननामाऽऽलोकमात्रेऽपि	१५	२१४
न निम्न नोन्नतं नापि	१०१	३९२
नन्दनस्येव सर्वस्वं	३०७	२६५
नन्दनात् तत्र चायाता	२१६	३९६
नन्दनोद्यानकल्पासु	२३८	२६३
नन्दनोद्यानकूटस्था	४५	३१४
नन्दामालोक्य तत्कालं	८४	३६७
नन्दास्वामिन्यपि तदा	२८	३०८
नन्दिषेणा चाऽमोधा च	७२२	२०६
नन्दीश्वरद्वीपमिव	९२	२२८
नन्दीश्वरपरिक्षेपी	७३९	२०७
नन्दीश्वरे शाश्वतार्हं	४६	३६५
नन्दोत्तरकुरुर्देव	७३७	२०७
न परिस्खल्यते क्वापि	७१७	३३७
न बोध्यसे स्वयम्बुद्धः	५९	२९३
नभश्चरा भूरिभेदा	२९५	३८४
नभश्चरैर्भूचरैश्च	५९२	३३२
नभसि भ्रमयित्वा तद्	२६५	३५२
नभस्तः पततस्तस्या	८२९	२१०
नभस्तलं तिलकय	१९३	१९०
नभस्युभयतो विद्या	६४४	३३४
नभस्यकृष्णनवम्यां	१४९	३०६
नभस्यकृष्णसप्तम्यां	११९	३००
न भूपाः खण्डयामासु	२४	२८४
नमः श्री वासुपूज्याय	१	३४४
न मन्त्र–तन्त्र भैषज्य	३५५	२६७
नमः सुमतिनाथाय	१	२७५
नमस्कृत्याऽनुजानीहि	३४०	१७७
नमस्तीर्थयिति गिरा	३७४	१९६
नमस्तीर्थयिति जल्पं	३३३	२६६
नमस्तीर्थयिति बदन्	७८	३०९
नमस्तीर्थयिति वदन्	१२७	२७३
नमस्तुभ्यं जगन्मातः !	१७८	१७२
नमस्तुभ्यं पञ्चदशा	४०	३७६
नमस्ते कुक्षिणा रत्न	३३४	९७७
न मे भोगफलं कर्म	१०२	३४७
नमो भगवते तुभ्यं	१९८	२६२
नमो विमलनाथाय	२	३५६
न मनागप्युद्विविजे	९३	२६९
नय–प्रमाणसंसिद्धं	४४५	१९८

श्लोक नं.		पृष्ठ नं.
न याति कतमां यानिं ?	८४	२८६
न यावद् यात्यसौताव	२२८	२२४
न यावद् यौवनं याति	५२८	२४८
न ये नानाविधैः क्वाथै	४९	३४५
नरकान्तानारीकान्ते	५८१	२०२
नरकावरपाताय	८६	३०९
नरकेष्रूष्णशीतेषु	८८	२८७
न रथः सारथिर्नापि	६८३	३३६
नरेन्द्रः कृतवर्माऽपि	४७	३५७
नरेश्वरोऽपि विनया	९१	१६०
नरेषु सिंहः खल्वेष	४०६	३२६
नर्तकीवत् केऽप्यन्नृत्यन्	४५०	१८०
नर्तयन्तो निशातासीन्	५२८	३३०
नर्मणाऽपि वियोगाग्नि	२७	३९०
नर्मोक्तिभिर्विचित्राभि	४१	१८६
नवं कुलकलङ्कं तं	२०७	३२०
नवजीर्णादिरूपेण	२७६	३७३
न वर्त्तुमपि जानाति	१५९	२८०
नवनवतिं योजन	५५५	२०२
नवभिर्यक्षसहस्रैः	२८२	२२२
नवमस्यार्हतस्तस्या	२	३०१
नवस्रोतःस्रवद्विस्र	९३	२९९
नवानारोपयन्कांश्चित्	८६	२१६
नवा निरन्तरै रम्भा	४८	३४५
नवापि निधयस्तत्र	४३	३८८
नवीकृता प्रतिगृहं	६४	१६९
नवीकुरु पुरीमेतां	५७	१६८
नवे नवेऽनवस्थानो	३१२	२६५
नवोढैव हि भार्येयं	७०	२५८
नश्यन्नयं रक्षणीयो	१५०	२३६
नश्वरेण शरीरेणा	८२	२५८
न श्रियो न कलत्राणि	१३५	१६१
नष्टद्विपं हतहयं	२०४	२२०
न सभाययामासचितुं	३०५	२४१
न समोऽस्य प्रतापेन	३३६	४००
न सूनुर्न स्नुषा यस्या	१७	२७५
न सेहे पर्वतानीकै	१७६	३४९
न स्वो न च परः कोऽपि	६३३	२५९
न हि केनाऽपि कस्यापि	५३	२३३
नाऽकुप्यत् प्रणयेनाऽपि	४६	२७०
नागराजे गते ज_नुः	१५७	२३०

श्लोक नं.		पृष्ठ नं.
नागलोकस्य सङ्क्षोभं	१७०	२३१
नागलोकोऽखिल उप	१३८	२३०
नाग विद्युत्–सुपर्णा–ऽग्नि	३९२	१७८
नागा–ऽङ्कुशधरौ बाहू	१६२	२७४
नाऽधर्म्यं किञ्चिदप्यूचे	१०७	२५९
नाऽऽच्छिन्त्तेकस्यचित्कोऽपि	८२	२३४
नाजीगणद् दुर्निमित्ता	१६०	३६९
नाटकप्रभृतिदश	८	३६८
नाटया–ऽट्टहास–सङ्गीता	८९५	२१२
नाट्यनीकेन गन्धर्वा	३२१	१७६
नाथं कदा नु भूयोऽपि	२७८	१९३
नाथं भूयो नमस्कृत्य	२८३	१९६
नाथमेकोऽग्रहीच्छत्रम्	५०३	१८२
नाथेयं घट्यमानाऽपि	६२७	२५१
नादत्त चानले क्षेप्तुं	२४	३८९
नाऽऽधि-व्याधीन दुःस्वप्नः	२९	२७६
नानाकाराण्यगाराणि	१५	२९६
नानाजलचराकीर्णो	२२२	३२०
नानारत्ननिधानं सा	१२३	२७९
नानारणजयोद्भूतं	६३६	३३४
नानाविधानलङ्कारान्	२६७	२२२
नानाविधानि चैत्यानि	५१	३८८
नानाविधाभिः क्रीडाभि	५३	२९७
नानाविधाभिः क्रीडाभिः	७७	१८७
नानोपायैर्मृगयुभि	२९४	३८४
नान्दीपुरेण सन्दर्भा	६७०	२०५
नान्यस्त्वसौ विन्ध्यशक्ति	१५२	३४९
नाभिद्ध्नो रथो यावत्	९२	३१६
नाभीसनाभेर्द्वीपानां	३	१५७
नाऽभुक्त न बभाषे च	२३	२७५
नाभूत् पराङ्मुखो जातु	१७	३५६
नाभेयस्य तपोनिष्ठां	२६९	३८३
नाम्ना गूढदन्तो घन	६९९	२०५
नाम्ना जलधिकल्लोलं	८९	३९२
नाऽऽयाति पूर्वभवतो	२३४	२८२
नारका अपि मोदन्ते	६२९	२५१
नारकाणामपि सुखं	३२	३१४
नारकाणामपि सुखं	१२७	१७०
नारकायुर्निबध्याब्द	८८६	३४२
नारकेभ्यो नाकसदां	४३	३७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
नारदोऽप्यब्रवीदेवं	१२०	३६८
नाराचैस्तद्बलैरर्घ	१७८	३४९
नारीष्वलुब्धमन्यश्चे	५०३	२४७
नारीषु रत्नभूता सा	१४८	३४८
नालं क्षणमपि श्रोतुं	१२१	३७९
नाविर्भवन्ति यद् भूमौ	३८८	१९७
नाशेनैकस्य पुत्रस्य	१५४	२३६
नाश्वग्रीवो दुर्निमित्ता	५७०	३३२
नासिकापेयसौरभ्याः	४१	२५६
नास्ति यत्याश्रम इव	८७	२३४
नाऽस्ति वासोऽशुभं चैत	२८१	१६५
नाऽहं हस्तिबलं याचे	३९५	२४३
निःकषायमुदासीनं	३८२	४०१
निर्घोषेणातिघोरेण	१६६	३६९
निघ्नतः कण्टकीभूतान्	६	२९१
निघ्नन् परीषहचमूं	७२	२८६
निजं फलमदत्त्वाऽपि	४३	२९७
निजसिंहासनासीन	३६८	२४३
निजाधिकारिणमिव	३०५	३२३
नितान्तं पूजनीयः स	२९८	२६५
नितान्तभीषणमितः	२९९	३५३
नितान्तमुग्धैः पितरौ	६	१८५
नितान्ताऽऽरक्तया क्रूर	१३५	३४८
नित्यं नेत्रारविन्दाना	२५०	३२१
नित्यप्रमादिनस्तेषु	२७०	१७५
नित्यमेव हि धात्रीभिः	१०१	३५३
नित्यं विरक्तः कामेभ्यो	२७२	१९३
नित्यं विषयसंसक्तो	८८४	३४२
नित्यान्धकारे प्रद्योतः	४४	२८५
नित्योद्युक्तो निर्ममश्चा	१००	२७८
निदधे च धनुर्मध्ये	६५	२१६
निदधे दक्षिणे कुम्भे	१८५	२१९
निदधे शिबिरं गङ्गा	२६०	२२१
निदानं देवाबध्नामि	४५	२९२
निद्रापराजितं चैत	२२९	३९६
निद्रायमाणेष्वस्मासु	८७३	३४२
निधाय तत्र शिबिरं	१३८	२१८
निधीयते भवत्कण्ठे	४०	३६५
निपेतुरुभयत्रापि	२५०	३५२
निषेधितुं शक्यते चेत्	५४	२३३
निमित्तीकृत्य चाचार्य	११२	३६८
निमित्तीकृत्य चाचार्य	२१४	३५१

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
नियम्य तुरंगांस्तत्र	२५०	२२१
निरन्तरं निपतितै	१७६	३८०
निरपेक्षः शरीरेऽपि	६३	३७७
निरपेक्षान् शरीरेऽपि	८७	१६०
निरर्गलो लाङ्गले वा	२३६	२३९
निरवद्यां मितां सर्व	२६७	१६५
निरालम्बा निराधारा	३१५	३५४
निरास तेषां शस्त्राणि	५३५	३३१
निरास शस्त्रवृष्टीनां	६८४	३३६
निरीक्षन्तामिमी भो भो !	३४८	२४२
निरीक्षितुं रूपलक्ष्मीं	६२४	२५०
निरीतयो निरातङ्का	२४५	२६३
निरीहा निर्ममाः सन्तः	१३२	१६१
निरूपयितुं त्वद्रूपं	३९९	४०२
निर्गत्य चोत्तरद्वारा	८४८	३४१
निर्गत्य नगराच्छैल	६३	३९१
निर्ग्रन्थो निर्ममोऽनीहः	३०९	१९४
निर्जगाम गुहामध्यात्	१९५	२१९
निर्जराकरणे बाह्या	८३९	३४१
निर्जरां निर्जरां कुर्व	८४४	३४१
निर्ममत्वं शरीराद्या	८५	२७७
निर्ममत्वं स्वदेहेऽपि	९९	२७८
निर्ममस्य निरीहस्य	१४९	१८९
निर्ममोऽपि कृपालुस्त्वं	२९७	२६५
निर्माय चैत्यपूजां च	६२	३९१
निर्ययौ सरसस्तस्मात्	३११	२२३
निर्यान्तौ गुहाप्राग्भित्तेः	१७१	२१९
निर्लक्षणो वीरमानी	२०२	२२०
निर्लज्जता चपलता	२१७	१६३
निर्व्यूढः श्रावकधर्मे	१२	३०१
निर्वाणमहिमा भर्तुः	२२६	३६३
निर्वाणसाधने हेतु	८०	१८७
निर्वापयितुमुद्दामो	५६	२३३
निर्वृतेः संवृतद्वार	१९३	२८१
निक्षिप्तः पुष्करस्याऽर्धे	६५६	२०५
निवृत्तायां धनेच्छायां	३३५	३८५
निवेश्य पैतृके राज्ये	३३४	२२४
निशाकरः कराङ्कूरै	१७२	३१९
निशातन्यायनिष्ठेन	१७०	१६२
निशुम्भं प्रस्थितं श्रुत्वा	१६७	३८०
निशुम्भ पुरुषसिंहौ	१६८	३८०
निःशेषदोषमय्याऽपि	२१८	१६४

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
निःशेषभुवनकोश	८४	२९३
निश्चितच्यवनाश्चिह्नै	१६५	२८९
निश्चिन्वानो हेयबुध्या	५०	३६५
निषण्णा श्चन्द्रशालायां	४९	२५७
निषधाद्रेरुत्तरतो	५८९	२०३
निषादिनः सादिनश्च	९१६	१८८
निषिद्धे वज्रिणा मुष्टि	१०२	३१६
निष्कर्षोत्कर्षतः काल	२८३	३७३
निष्कलङ्का सत्यसंधा	७९	३४६
निष्कुटानामशेषाणां	१५७	२१८
निष्पत्रं च व्रीहिवणं	१९९	२३८
निसर्गनैर्मल्यजुषो	२४	२९१
निसर्गमानोज्ञकभू	२४	३०२
निसर्गेणापि तौ रम्यौ	६८	१८७
निसर्गेणाऽपि राजन्यौ	११७	१७०
निःसीमं निःसुप्रभं च	१३६	३६८
निहन्तव्यः सपुत्रोऽपि	२२३	३५१
निहन्तुमुद्यते ध्याये	२५२	३८३
नीचैर्गोत्रास्तव विप	१३२	३०५
नीत्वोभौ प्राक्चतुःशाले	१५४	२६०
नीरङ्गीच्छन्नवदना	३०	२८५
नीरङ्गीषु कुलस्त्रीणां	१९	१५७
नीरन्ध्रेणान्धकारेण	२२१	२२०
नीरुजामपि भज्यन्ते	१६१	२८९
नीलपीताम्बरधरौ	२१६	३५१
नील–पीताम्बरधरौ	२४०	३२१
नीलपीताम्बरौ ताल	१११	३६७
नील–पीतांशुकभृतौ	१०४	३५९
नीलस्तु निषधतुल्यो	५७०	२०२
नीलीरक्तांशुकमयः	५०	२५७
नीलोत्पलदल श्याम	२३२	१६४
नृत्यन्तमिव कङ्केल्लि	१०१	१६०
नृ–तिर्यग्नारका–ऽमर्त्य	४७२	१९९
नृदेवं देववन्नत्वा	७२	१६९
नृपं ग्लानिं प्रपेदानं	५९३	२४७
नृपतिः पर्षदासीनः	४१८	२४४
नृपतिश्चक्ररत्नस्य	१९	२२४
नृपः प्रोवाच तौ कस्माद्	३६५	४०१
नृपवागमृताप्लाव	४०४	२४४
नृपस्तदनुगाश्च	१३७	२१८
नृपस्य तस्य मलय	७७	३६६
नृपादेशादनुज्ञातो	२२८	२३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
नृपादेशेन सदशा	२०२	१६३
नृपादेशेन सेनानीः	२७३	२२२
नृपास्तारकगृह्यास्तु	२७५	३५२
नृपाः सहस्रं जगृहु	२६६	१९३
नृपैर्लोकैश्च तद्बाहु	७७०	३३९
नृपैश्च मेरकायस्ते	१६७	३६१
नृपोऽपि मृत्युना तस्या	२३	३८९
नृपो महाबलस्तत्र	७०	३६६
नेदुर्मङ्गलतूर्याणि	५७६	१८४
नेपालेषु विदेहेषु स्वान्	६८	३४६
नैमित्तिकसदस्यान् स्वान्	३३६	२४२
नैमित्तिकाः पुरो राज्ञो	९१	१६९
नैमित्तिकेन चैकेन	३२२	२२३
नैमित्तिकेन सम्भिन्न	४६८	३२८
नैव क्षीरोदवेलाभि	४७	३४५
नैसर्गिक्याऽपि वः शक्त्या	५७५	३३२
नैसर्पप्रमुखास्ते च	५६	२२७
नोत्पद्यन्ते सप्तशतीं	६५९	२०५
नो वा शस्त्रं परित्यज्या	४७५	२४६
न्यक्कारी कर्णिकारेषु	१२६	३९३
न्यक्कारकारिणं मानो:	१९६	२२०
न्यषीदच्च यथास्थानं	२९४	३५३
न्यस्यैकं मस्तके हस्त	६७२	३३५
न्यस्योर्व्यां दक्षिणं जानु	२६१	१७४
न्यासं नाऽपह्नुते कोऽपि	८३	२३४
न्यासीकृत्य कलत्रं स्वं	४९३	२४६
न्यासीकृतं कलत्रं मे	४९०	२४६
न्यून यत्किञ्चिदप्यासी	५५	१८६
न्यूनं विंशतिपूर्वाङ्ग्या	१२४	२९५
न्यूनस्य विजयेऽपि स्या	५४९	३३१
न्यूनेन विजये दैवात्	५५०	३३१

"प"

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
पक्वबिम्बं द्विधाभूत	१०	३८९
पक्षद्वयेन शुद्धेन	२५	३०२
पक्षं संज्वलनः प्रत्या–	२२७	३८२
पक्षोद्गमः पीलिकाना–	११९	३५९
पक्ष्मलैः कोमलै रूक्षै	११४	२२९
पङ्कजैरङ्कितो विश्वक्	३१	१६७
पच्यन्ते कुम्भकाराद्यैः	१०३	२८७
पञ्चचत्वारिंशल्लक्षयैः	६७०	२५२

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
पञ्चत्रिंशति वर्षेषु	६६१	२०५
पञ्चनवतियोजन–	६२०	२०३
पञ्च निद्रा दर्शनानां	४६७	१९९
पञ्चभिर्मुष्टिभिर्मूर्ध्नो	२८५	२६५
पञ्चभिर्वासवादिष्ट	५८	३४५
पञ्चभ्यां त्रीणि पञ्चोनं	४९०	२००
पञ्चमः शूलपाणिः सन्	४८६	१८१
पञ्चमूर्तीभूयेशानो	७२	२७१
पञ्चयोजनशत्युच्च–	३७९	१७८
पञ्च लक्षाणि कौमारे	१२३	२९५
पञ्च लक्षाणि वर्षाणां	५३	३७६
पञ्चवर्णं च सुमनो	७७	१६९
पञ्चवर्णप्रसूनस्रक्	११८	३५९
पञ्चवर्णमणिज्योतिः	२२३	३२०
पञ्चवर्णा च पुष्पस्रक्	५४	२७१
पञ्चविंशतिलक्षाणि	४८९	२००
पञ्चाङ्गस्पृष्टभूपृष्ठः	८०	२९८
पञ्चाब्दलक्षीमतिवाह्य जन्मतः	५७	३८८
पञ्चार्हन्तः सारिणः पञ्च	४०५	४०२
पञ्चाशत्पूर्वसहस्री	५३	३०८
पञ्चाशतः कुराज्यानाम्	२९४	२२२
पञ्चेन्द्रियप्राणिवधो	१०६	३०४
पञ्चेन्द्रिया जलचराः	१२०	२८८
पञ्चेन्द्रियाणां दौःशील्यं	४२९	१९८
पञ्चैव च सहस्राणि	८५५	३४१
पटैर्घनानेकपुटैः	५६९	१८४
पट्टवन्याशादरैः पूर्वं	२६८	१९३
पठतस्तत्र चान्येयु–	९४	२३४
पणपूर्वं क्रीडतश्च	५१	२९२
पण्डितः किं कविः किं वा	२२५	२३८
पतत्तुहिनसम्भार	३२५	१९५
पतद्भिः परिघैः शल्यै–	१६९	३४९
पतित्वा पादयोश्चक्र	२३७	२२१
पतिभक्त्या कवचिता	१६५	३१८
पतिभक्तिरलङ्कार–	३०	३७६
पत्न्याः प्राणप्रियं पुत्र–	९३	२३४
पत्नी तस्याभवन्नन्दा–	७६	३६६
पत्युर्विपत्तौ यास्यन्ति	१२३	३७९
पत्युर्विपत्तौ वैधव्य	११७	३७८
पत्युरङ्गैः समं वह्नौ	४९५	२४७
पत्युः सा हृदयेऽवात्सीत्	१३४	२७९

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
पत्रलेखनकण्डूर्ति	१८	२३२
पत्रिणाच्छिददेकेन	६८१	३३६
पत्रैर्मारकतैरासन्	३६३	१९६
पदफेनानि चिह्नानि	१००	३९२
पदातिना रथस्थस्य	३८७	३२६
पदानि कतिचिद् दत्वा	८	२१४
पदार्थग्रहणेऽकस्माद्	१६३	२८९
पदार्थमिष्टमाकृष्य	२५६	२३९
पदे पदे तोरणिनीं	३३८	२२४
पदे पदे नाटकानि	५६६	१८९
पदे पदे वन–नदी	१३५	३९३
पद्भ्यां चचाल भूपालः	११	२१४
पद्मखण्डपुरे राज्ञः	६६	२९८
पद्मप्रभजिनेन्द्रस्य	२	२८४
पद्मवर्ण ! पद्मचिह्न !	४७	२८५
पद्मो राजाऽभवत् तस्यां	४	२९६
पद्मशय्या दोहदोऽस्मिन्	५१	२८५
पन्नगानिव पक्षीन्द्रो	११०	२१७
पयःपूर्णाञ्जलिपुटा	४६३	२४६
पयोभिः पूर्यमाणेषु	१६९	२३१
परचक्र इवाऽऽयाते	१३९	२३०
परद्रव्यापहरण	१०८	३०४
परप्रत्यायनासारैः	३४०	३८६
परप्रसादशक्त्यादि–	२६०	३८३
परमाधार्मिककृत	३१८	२६६
परशोकाविष्करण	९८	३०४
परस्त्रीसोदर इति	४५५	२४५
परस्त्रीसोदरत्वं य	३९३	२४३
परस्परमसञ्चारा	५९९	२०३
परस्परं स्नेहलौ ता–	८६	३७७
परस्य निन्दाऽवज्ञोप–	१३०	३०५
परसम्पत्प्रकर्षेणा	१३१	२८८
परं संसारकान्तारे	८४	३४६
परागैर्दिव्यकर्पूर–	२४८	१९२
पराङ्मुखश्च मलया–	१२७	३९३
पराजयेन तेनाथ	६९	३७७
परात् परार्थं स्वार्थं वा	२९०	१६६
पराभूत्या तया ह्रीणो–	१८६	३५०
परिखां पूरयित्वा च	१६८	२३०
परिखाम्भोधिपरिधि–	१७	१५७
परिखावलयेनोच्चैः	१२	३०७

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
परिग्रहाऽभिमानाभ्यां	७८४	२०८
परिग्रहाऽऽरम्भमग्ना	८९८	२१२
परिणामा निवर्तन्ते	२५९	३७२
परितश्छादयन्नुर्वी–	४११	१९७
परितस्तत्परीवारो	३२३	३२४
परितः पावयन् पादैः	२०९	१९१
परितः सूतिकागार–	४४	३१४
परितुष्टस्ततस्तेषां	१०५	१७०
परितो रचितोल्लोच	५०	१६८
परिमातुमलम्भूष्णु	२२	३७५
परिवारसमेताभिः	३८१	१७८
परिवारेऽभवद् भर्तुः	१९०	२९०
परीषहानेवमन्या	३२७	१९५
परीषहोपसर्गाणां	१०३	२७८
परेषामुपकाराय	३०५	३५३
परैरप्युच्यमानेन	१७३	३९५
परोक्षं नरके दुःखं	१४७	२८९
पर्यङ्कस्थः काययोगे	६७८	२५२
पर्यटत्स्वामियशसां	२९३	१९४
पर्यभ्राविष्ट वेगेन	९२	३९२
पर्यन्तसामन्तमिव	१०६	३९२
पर्यन्ते तस्य दानस्य	५८	३०३
पर्याप्तयस्तु षडिमाः	२२७	३७१
पर्याप्तं सम्पदा तन्मे	१३६	१६१
पर्वतव्यतिकरं तं	१६२	३४९
पर्वतायुर्भवेत्याशीः	६१	३१५
पर्वतायुर्भवेत्युच्चै–	१५९	२६०
पर्वतायुर्भवेत्युच्चैः	२४१	१७४
पर्वतारण्यदुर्गादि–	३२	१५८
पर्वतेभ्यश्च मलय–	४३२	१८०
पर्वतोऽप्याजगामाभि–	१६४	३४९
पल्योपमस्थितीनां तु	७८६	२०८
पवक–पवकपती	१८१	२६१
पवित्रं धारयामास	२४	३४४
पवित्राणि पवित्राणि	१९९	१६३
पवित्राः प्रादुरासंश्च	५७७	१८४
पवित्रितां स्वामिपादै–	१९६	१९१
पशूपघाततः स्वर्गि–	३३५	३५४
पश्चादप्यात्तया मोक्षं	९६	३४७
पश्चादुपात्तदीक्षोऽपि	६६३	२५२
पश्चिमान्तहरिं हन्ता	६६७	३३५
पश्चिमाशाकिरीटश्रीः	५३	२२७
पश्चिमाशाङ्कतोद्भासं	७६४	३३८
पश्यतामपि भूपाना–	९५	३९२
पश्यन् सखा ते निद्रान्ते	२३०	३९६
पश्यैतत् पूर्यते सर्वं	३५४	२४२
पाञ्चजन्यध्वनेस्तस्मात्	१३९	३६०
पाञ्चजन्यस्य नादेन	१७०	३६९
पाञ्चजन्याभिधं शङ्खं	६२५	३३४
पाटलाया अधो भस्तु–	२८३	३५३
पाटलीखण्डनगरे	६७	२९३
पाटितं व्रणपट्टाय	२६१	२४०
पाठं पाठं च शास्त्राणि	४५	१८६
पाणि–पादा–धरदलै–	४२४	३२७
पाणि–पादा–ऽधरैणाविः–	२९	२८५
पाणिभ्यां चरणाभ्यां च	१४	१६७
पाणिभ्यां जिनमादाय	१५२	२६०
पाणिर्गतागतं कुर्वन्–	१४५	३६०
पाणिस्तदैव तूणीरे	१४६	३६०
पाणी पादौ च रेजाते	१४६	३४८
पाणी पुष्प–गदायुक्तौ	२८९	३५३
पातक्या ज्वलनज्वाला	१०६	२७८
पातालामिव दुष्पूरां	५३७	२४८
पात्रे दानं तपः श्रद्धा	११५	३०४
पाथसामिव पाथोधि–	२४७	२३९
पादच्छाया सदा तस्य	१९	३५६
पादपीठलुठन्मूर्ध्नि	७७	२७१
पादपोपगमस्याऽथ	६७७	२५२
पादबद्धरणरण–	२०३	३५०
पादातमतिविक्रान्तं	५४४	२४८
पादान् प्रसार्य केऽप्यस्थुः	४	२३२
पादाभ्यां नहयलक्ष्मक्रे	४१४	१९७
पादाहतिः खरेणेव	११७	३५९
पानीयधारोद्गिरणान	४४१	१८०
पायादनन्तस्वामी वः	१	३६४
पारणेच्छुर्द्वितीयेऽह्नि	४३२	३२७
पारदारिकदोषेण	५१२	२४७
पारयामासतुर्ध्यानं	५८८	३३२
पारापतपणीवागात्	१६१	३६९
पारावार इवापारः	८२	२८६
पारिषद्यैरथेत्यूचे	१६१	२८०
पार्थिवोऽरिन्दमाचार्य–	१४४	१६१
पार्श्वतः सञ्चरिष्णुभ्यां	४०८	१९७
पार्श्वतो वारनारीभि–	२०७	१६६
पार्श्वतो वारनारीभिः	२४६	१७४
पार्श्वयो रत्नसोपान–	१६	३७५
पार्श्वे मुनिवृषभर्षे–	१०९	३१७
पार्श्वे श्रवणसिंहर्षे–	१३१	३४८
पावकं पातयामासुः	२३८	१७४
पाशन्ति भवकारायां	१४४	३१८
पाषाणैः खङ्गविषाणो	११३	३९२
पिङ्गकेशाः पिङ्गनेत्राः	२००	३९५
पिण्डः सर्वत्र दैर्घ्यार्धं	५४४	२०१
पितरो मातरः पुत्रा	२७	२५६
पितरो मातरो जाया	२०७	२३८
पितरौ तत्र दुःखार्तौ	३०८	३९९
पितुः पुमर्थं तुर्यं यो	८५	१८७
पितुर्दाहज्वरोदन्ता–	९४	३७८
पितुर्मातुर्ज्यायसश्च	२११	३५०
पितुर्मातुः स्वसुर्भ्रातु–	१४१	२७३
पितुरम्लानवंशस्य	४४८	२४५
पितुरेवाज्ञया राज्यं	९५	३४७
पितृक्षयाऽर्थक्षयाभ्यां	८७१	२११
पितृभ्यां चन्द्रवेगेन	२६०	३९७
पितृभ्यामुत्सवातृप्त्या	२३३	२६३
पित्रेव पृथिवीशेन	४६२	२४६
पिपासयाऽथार्यपुत्रः	१८३	३९५
पिपासार्ताः पुनस्तप्त–	९३	२८७
पिपासितः पथिस्थोऽपि	२७७	१६५
पिपीलिकास्तु तुद्यन्ते	११७	२८८
पिशाच–मुद्गल–प्रेत	३२०	३८५
पिशाचव्यन्तरास्तत्र	५१७	२००
पिशाचानां च भूतानां	४०३	१७९
पिशाचेभ्योऽप्यचकित–	२०३	३९६
पिहिताश्रवसूरीणां	१४	२८४
पीड्यमानस्य विश्वस्या–	८२१	३४०
पीयूषनिःस्यन्दमिव	८२१	२०९
पुच्छाच्छोटनिनादेन	३८५	३२६
पुच्छैराच्छोटयन्तः क्ष्मां	६०९	३३२
पुण्डरीकमिव गङ्गा	१९९	३५०
पुण्डरीकवती छत्रैः	२५१	३५२
पुण्डरीकाणि पद्मानि	४२६	१७९
पुण्यलावण्यभद्राङ्गा	१६	३८७
पुण्याकृष्टास्ततो देवा	६२४	३३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
पुण्यैः संसारिणां देव!	४५	२८५
पुण्योऽयं दिवसः स्वामिं–	१९३	३६२
पुत्रमाताऽप्युवाचैवं	१५४	२८०
पुत्र–मित्र–कलत्रादेः	२२९	२८२
पुत्ररत्ने समुत्पन्ने	१७७	३१९
पुद्गलानां परावर्ते	२०६	३६२
पुद्गलाः स्युः स्पर्श–रस–	२६६	३७३
पुनः प्रणम्य शिरसा	१३१	१६१
पुनः पुनः प्रेक्ष्यमाणः	६४८	२५१
पुनर्जाताविव सुतौ	४१३	३२७
पुनश्च पोतनपुराद्	७६२	३३८
पुमानेषां च कार्येण	१२८	१८८
पुरतः स्वामिबिम्बानाम	११७	२२९
पुरः सिंहा दक्षिणतो	५४५	२०१
पुरस्कृत्येव मनसा	१५१	१७१
पुरस्य तस्य मूर्धन्ये–	४७६	३२९
पुरा विराद्धश्रामण्या	९२३	२१२
पुरीद्वयमिदं वत्स	३७	२२७
पुरीपरिसरेऽन्येद्युः	१०६	३५९
पुरीपरिसरोद्याना–	३५१	२४२
पुरीषसूकरः पूर्व	१३७	२८८
पुरुषवृषभजीवः	७७	३७७
पुरुषोऽप्यब्रवीदेव–	९३	३७८
पुरुहूतः समाहूता	३५३	१९५
रुहूतो मुहूर्तान्तः	३५१	१७७
पुर्या चमरचञ्चायां	३७४	१७८
पुष्करद्वीपभरत	२८	२२६
पुष्करवरद्वीपार्धे	३	३०१
पुष्करवरद्वीपार्धे	३	३०७
पुष्करवरद्वीपार्धे	३	३१३
पुष्करवरद्वीपार्धे	३	३४४
पुष्करावर्त्तकाम्भोद	४२	२१५
पुष्पचङ्गेरिकाश्चापि	४२३	१७९
ष्पदामकरो द्वारि	२२४	२३८
पुष्पदुर्वासनोथानि	५५४	१८३
पुष्पवर्षैः सुरैः शार्ङ्गी–	१९०	३७०
ष्पवृष्टिर्हरेमूर्ध्नि	१८९	३८१
पुष्पाभरणरम्याभि–	१२१	३४८
पूजया जातगर्द्धास्ते	१५७	३०६
पूतास्त्वत्पादसंपर्काद्	१९५	३६२
पूतिगन्धि तदालोक्य	३४	३९०

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
पूरणीया ततोऽवश्यम्	१६०	२३०
पूरयित्वाऽष्टापदाद्रि–	५४१	२४८
पूरिता प्रथमा भूमि–	३५८	२४२
पूर्णकुम्भश्च सौवर्णः	५५	२७१
पूर्णकुम्भान् दधुः काश्चिन्	२२९	१९२
पूर्णकुम्भो गरीयांश्च	३७	३१४
पूर्णकुम्भो नवश्चेता	७९	१६९
पूर्णं द्वितीयपौरुष्यां	२१६	३६२
पूर्णं द्वितीयपौरुष्यां	१५८	२७४
पूर्णं भद्रस्तथा माणि–	१७७	२६१
पूर्णं मेघश्चिरतरं	३२५	२२३
पूर्णमेघात्मजस्तस्मात्	४	२२६
पूर्णायामथ पौरुष्यां	३७९	२६८
पूर्णायामथ पौरुष्यां	६५५	२५१
पूर्णायामादिपौरुष्यां	२१४	३६२
पूर्णायामादिपौरुष्यां	२४४	२८२
पूर्णायामादिपौरुष्यां	३५०	३८६
पूर्णायामादिपौरुष्यां	३५१	३५५
पूर्णायामादिपौरुष्यां	८४६	३४१
पूर्णे काले च विजया–	७८	३७७
पूर्णे काले च सा देवी	२२७	३२०
पूर्णे काले माघशुक्ल–	२८	३५६
पूर्णो वणिग्रश्च द्वीप–	५१४	२००
पूर्वदक्षिणदिग्व्यासा–	३७९	१९६
पूर्वद्वाराऽविशन् साधु–	३७८	१९६
पूर्वद्वारेण तत्राथ	७६	२९३
पूर्वपूर्वपरिक्षेप–	५५३	२०१
पूर्वलक्षं द्वादशाङ्गया	२५७	२८३
पूर्वलक्षं त्रिमासोनं	११६	३००
पूर्वलक्षद्वये सार्धे	५६	२९८
पूर्वलक्षं द्वादशाङ्ग–	२६२	२८३
पूर्वलक्षाः कुमारत्वे	४०३	२६८
पूर्वलक्षास्तु षट् सार्धा	५७	२९८
पूर्ववत् सपरीवाराः	२००	१७३
पूर्ववज्ज्ञापयित्वा स्वं	१९२	१७२
पूर्वसहस्रयैर्महिष्याद्यैः	३८९	१७८
पूर्वादिदिक्षु तत्रान्तः	६२३	२०४
पूर्वालाप–प्रियालापौ	११३	३०४
पूर्वे मदीयाः सर्वेऽपि	१९५	२३७
पूर्वेषां चेत् क्वचित् कश्चि-	३६४	२६७
पूर्वोदितविधानेभ्यः	३४	२३३

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
पूर्वोदीच्यां दिशि तत्रा–	६८६	२०५
पृच्छ्यमानो जनः सर्वो–	१०७	२३५
पृथक् पृथक् पथैनैव	१४४	२३६
पृथक् पृथग् युग्प्रतिशां	५२५	३३०
पृथग्द्वाराणि चत्वार्यु–	७१०	२०६
पृथग्विरुद्धमप्येत–	२१५	३८२
पृथिव्या भूषणं साऽभूत्	१५	१६७
पृथिव्यां मघवेत्यायं	२१	३८७
पृथिव्यामेकमल्लस्य	२६१	३२१
पृथ्वीदेव्या तदा स्वप्ने	७९	२९३
पृथ्वीं समुद्र–संव्यानां	७	३४४
पृष्ठेऽन्यपुंसो विन्यस्य	५५	३९०
पृष्ठे भामण्डलधर्म	३७७	१९६
पृष्ठेऽस्य श्रेष्ठिनो न्यस्या–	५४	३९०
पेतुः स्नात्रविधिं केऽपि	४४७	१८०
पैतृष्वस्रेयीमुद्वोढुं	१५०	३१८
पोष्या अमी सेवकाश्च	१२५	१८८
पौत्रराज्याभिषेकेणा–	६१७	२५०
पौरगन्धर्ववनिता	५५०	१८३
पौरलोकान् समाहूय	२००	३२०
पौराङ्गनामृज्यमान	५७	३७६
पौरुष्यां च द्वितीयायां	८३७	२१०
पौलोम्येव महेन्द्रस्य	१३८	२७९
पौषकृष्णचतुर्दश्यां	७५	३०९
पौषकृष्णत्रयोदश्यां	६४	२९८
पौषधान्ते रथारूढो	२४९	२२१
पौषस्य कृष्णद्वादश्या–	३२	२९७
प्रकम्पमानसर्वाङ्ग–	८२	३६६
प्रकाशमुपनिन्युश्च	११३	१७०
प्रकुप्याम्यपकारिभ्य–	२४२	३८३
प्रकृतिस्थित्यनुभाव–	२८१	३७३
प्रकृष्टदैवतस्येव	८५	२५८
प्रक्वणत्किङ्किणीजालं	७१५	३३७
प्रच्युतं प्राणतात् सोऽपि	२०४	३५०
प्रचचाल जगन्नाथो	२१३	१९१
प्रजहुर्युगपत् तस्मिन्	५३४	३३१
प्रजानां यदि गोपस्त्वं	७१	३०३
प्रजापतिर्ज्वलनज–	७७६	३३९
प्रजापतिनृपस्य स्तः	२७८	३२९
प्रजापतिः समाहूय	३५५	३२५
प्रजामयूरीपर्जन्ये	१०९	१८८

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
प्रजाः शशास धर्माय	३८	२७०
प्रज्ञां प्रज्ञावतां पश्य	२९५	१६६
प्रणते च विपक्षे च	२२	३१४
प्रणम्य नृपतिं भक्त्या	१७३	१६२
प्रणम्य स्वामिनं भूयो	८१७	३४०
प्रणयप्रार्थनां तां च	६१	२२७
प्रणयेष्वेव कलहो	१०८	१८८
प्रणेमतुः पितुः पादौ	४१२	३२७
प्रणेमुः सगरं सर्वे	१७५	१९०
प्रत्यक्षो विश्वकर्मेव	२४९	२३९
प्रत्यग्द्वारेण प्रविश्या-	३३८	२६६
प्रत्यग्द्वारैत्य भवने	३८१	१९६
प्रत्यग्रकदलीस्तम्भैः	५४६	१८३
प्रत्यग्रधर्मस्थानस्य	१३४	२२९
प्रत्यग्रपल्लवाताम्रे-	५९	३६६
प्रत्यग्रपल्लवास्वाद-	१४६	३९४
प्रत्यग्वर्जं प्रतिदिशं	१५१	२६०
प्रत्यग्रे इव च लते	११	३८९
प्रत्यग्रैः कूपपानीयैः-	६१	३५८
प्रत्यट्ट-गृहमासंश्च	५६४	१८४
प्रत्यन्तग्राममेकं तु	५९०	२४९
प्रत्यभाषिष्ट साऽप्येवं	२४६	३९७
प्रत्ययश्चेद् द्वितीयोऽपि	३५३	३२५
प्रत्यर्थिनः पार्थिवस्य	८७	२५८
प्रत्यर्थिभ्यो बलादाता	१८	३०७
प्रत्याख्यानकषायत्वं	११२	३०४
प्रत्यापणं प्रतिगृहं	६४६	२५१
प्रत्याहार्षमहं तस्मा-	३८९	२४३
प्रत्युवाच त्रिपृष्ठोऽपि	७५९	३३८
प्रत्यूचे तारकोऽप्येवं	२७०	३५२
प्रत्येकमञ्जनाद्रीणां	७२१	२०६
प्रत्येकमासां योजन-	७२४	२०६
प्रत्येकं च महानिकैः	१६५	१७२
प्रत्येकं च सामानिकी	१६४	१७२
प्रत्येकं ते पुनः शीता-	५८५	२०२
प्रत्येकं पूर्ववत् सर्व	२१६	१७३
प्रत्येकं महिषीभिस्ते	४०१	१७९
प्रत्येकमेकं तन्मध्ये	२२६	१७३
प्रत्येकमेकद्रव्याणि	३६९	३७३
प्रत्येकं सप्त लक्षाश्च	२४३	३७२
प्रत्येकाः साधारणाश्च	२३०	३७१
प्रत्योकः प्रकृतोद्वाह-	७७४	३३९
प्रतापः प्रसरंस्तस्य	१३१	२७९
प्रतापेष्विव मूर्तेषु	१६६	१९०
प्रतार्य कूटैः शपथैः	२८८	३८४
प्रतिक्षणं प्रभवन्त्या-	८४३	३४१
प्रतिक्षणभवैर्देह-	४३८	१९८
प्रतिकूलमहो ! दैव	१८४	१६२
प्रतिग्रामं प्रतिपुरं	३३३	१९५
प्रतिपक्षप्रहारेण	७२९	३३७
प्रतिपत्त्या महत्या त-	२३३	३५१
प्रतिपन्नः कदाऽस्माभिः	१५२	३६९
प्रतिप्रसादादुद्भूता	११४	३७८
प्रतिबुद्धः प्रविव्रज्या	८२	३५८
प्रतिभृतमरे बालौ !	६६५	३३५
प्रतिरथ्यं रजःशान्त्यै	५६५	१८४
प्रतिलाभ्यमानः क्वचित्	३०४	१९४
प्रतिवासगृहं तत्र	१२६	२७९
प्रतिवेश्म मणिस्तम्भ-	२२	२६९
प्रतिषेधविलक्षः सन्	३८४	२४३
प्रतीक्ष्यमाणः कुत्राऽपि	३०५	१९४
प्रतीयेषोपायनानि	५६२	१८४
प्रतीहार्यभवन् केचिन्	४३	१८६
प्रथमेनैव बाणेन	६७९	३३५
प्रथमो वासुदेवोऽयं	७५५	३३८
प्रथमो वासुदेवोऽयं	४६५	३२८
प्रथमोऽस्त्यन्तरद्वीप	६८७	२०५
प्रद्योतनो द्योतयते	४८८	२४६
प्रदक्षिणात्रयीपूर्वं	२५४	१६५
प्रदक्षिणीचक्रतुस्तौ	४९२	३२९
प्रदक्षिणोऽनुकूलश्च	१२९	१७०
प्रधर्षितश्चण्डसिंहो	६६१	३३५
प्रपुष्णन् लालयन् वृद्धिं	२६	१५८
प्रपेदे च द्वितीयेऽह्नि	९५	३७८
प्रबोध्य वचनैश्चाटु-	५९२	२४९
प्रभावं तं तु सम्प्रेक्ष्य	९२६	२१२
प्रभाभात् स्वामिनस्तस्य	२०	१६७
प्रभावात् स्वामिनः स्वामि-	३३४	२६६
प्रभासतीर्थाधिपतेः	१२६	२१७
प्रभुं नत्वा ततः शक्रो	११५	२७३
प्रभुं प्रदक्षिणीकृत्य	२०८	३८१
प्रभुर्नवतिधन्वोच्चो	५०	३००
प्रभुं विलिप्य सम्पूज्य	७४	२७१
प्रभोश्च प्रतिरूपाणि	२९३	३५३
प्रभोश्च प्रतिबिम्बानि	६९	२८६
प्रभोस्तया देशनया	१०८	३१०
प्रभोः समवसरणो	४००	१९७
प्रभ्रंशयति वप्रांश्च	५६६	२४९
प्रम्लानवदनेन्दुश्च	७२	२३४
प्रमत्तश्चाप्रमत्तश्च	२५०	३७२
प्रमादपरिहारेण	११८	२७८
प्रयुक्तावधयस्ते तु	६७५	२५२
प्रलम्बलम्बमानार्द्र	११६	१६०
प्रलम्बा दारुणाः कृष्णाः	६९९	३३६
प्रलयाय त्वयाऽऽख्यातः	३२७	२४३
प्रव्रज्या केवलज्ञान-	८९	३४७
प्रव्रज्या स्वादृशैरात्ता	१४१	१६१
प्रव्रज्याधारिरूपं ते	४४	२९७
प्रव्रज्यां धर्मराजस्य	९३	२७८
प्रव्रज्यापालने पूर्वं	१२४	३११
प्रव्रज्यापालने वर्ष-	८६२	३४१
प्रव्रज्यायां पूर्वलक्षं	४०४	२६८
प्रव्रज्यायामुपात्तायां	१०४	२७८
प्रव्रज्यालक्षणोपाय	१५१	२७४
प्रवर्धमानः क्रोधोऽयं	२३५	३८२
प्रवर्द्धमानं पुरुषं	३५६	२६७
प्रवासी स्तनितेनैव	२६८	३२२
प्रवाह इव जाह्नव्या	३८४	१७८
प्रविवेश द्विपारूढः	७७५	३३९
प्रविश्य च यथाद्वारं	७९	२९८
प्रविश्य चोत्तरद्वारा-	८१०	३४०
प्रविश्य पश्चिमद्वारा-	८०९	३४०
प्रविश्य प्राग्द्वाराऽर्हन्तं-	३३६	२६६
प्रविश्य पूर्वद्वारेण	३७३	१९६
प्रविश्य पूर्वद्वारेण	८०७	३४०
प्रविश्य सूतिकागारं	१७७	१७२
प्रविश्योदीच्यद्वारेण	३८२	१९६
प्रविश्यापाच्यद्वारेण	८०८	३४०
प्रविशन्तं महात्मान-	३१४	३९९
प्रविशन् हरिदासेन	१४	२२६
प्रविष्टं स्नेहयोगाच्च	९९	३१०
प्रवृत्ते दुःषमाकाले	१३३	२२९
प्रवेशं नृपतिस्तस्य	३८३	२४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
प्रवेशितश्च महती	१७८	३९५
प्रशान्त–क्षीणमोहादौ	१०६	३१०
प्रशान्तकोपस्त्यक्तास्त्रः	८	२२६
प्रस्खलच्चरणन्यासा	१५९	२३६
प्रसन्नचेताः सतत–	३७	२७०
प्रसर्पत्कोपतिमिरं	२१४	३७१
प्रसर्पन्तो गुणास्तस्य	३१	१५८
प्रससाद ककुप्चक्र–	२२८	३२०
प्रसह्य स्ववशीचक्रे	१४	३८७
प्रसह्यापहृतमेक–	७१४	३३७
प्रसादपूर्वं मालण्य	१५१	२१८
प्रसीद विवरं देहि	१२	२३२
प्रसूतिदुःखं नो देव्या–	१२५	१७०
प्रसूनदामभिर्दिव्यैः	२०३	१९१
प्रसूनरसनिस्यन्द	११८	१६१
प्रहर्तुं धावतस्तस्य	२८१	३९८
प्रहारान् वञ्चयमानः	३२२	३२४
प्राक् पुत्रं पालयन्त्येषा	१५५	२८०
प्राकारं चोपरितनं	३६१	१९६
प्राकारभूता द्वीपस्य	६११	२०३
प्राकारवलयेऽमुष्मि–	३५२	२४२
प्राकारे मध्यमे पूर्वो	३६७	१९३
प्राग्मानेन विमानेन	३९०	१७८
प्राग्विदेहोत्तरा ह्येते	६०१	२०३
प्राच्यरम्भागृहचतुः–	५८	३१५
प्राचीनाद्यास्तु सर्वेऽपि	१०९	२८७
प्राज्यराज्यबलेनाद्य–	१५३	३६९
प्राज्याभिराज्याधाराभि–	४६५	२४६
प्राणनाथपथे गन्तु–	४४३	२४५
प्राणप्रियाण्यप्यस्त्राणि	१७६	२३७
प्राणमच्च पितुः पादौ	१००	३७८
प्राणातिपातव्यावृत्ति	८३	२७७
प्राणातिपाते निःशङ्को	८८५	३४२
प्राणाः ! शिवा वः पन्थानः	१४	२३२
प्राणिनः प्रीणयन् कारा	४७	२९२
प्राणेभ्यो वल्लभीभूतान्	२२८	३५१
प्राणेशान् गृह्णताऽस्माकं	११	२३२
प्रातर्जितारिणा राज्ञा	२१५	२६२
प्रातरीश्वरहर्म्याणां	३०	२५६
प्रातः समवसरणं	३३२	२६६
प्रादुरासन् गरुत्मन्तो	७०३	३३६
प्रान्ते सारस्वतादित्या	७६३	२०८
प्राप्तकालमिदं तावत्	३०३	३२३
प्राप्तः षण्णवतिग्राम–	२९५	२२२
प्राप्तेऽपि पुण्यतः स्वर्गे	१५४	२८९
प्राप्ते वसन्ते सोऽन्येद्युः	८६	३९१
प्राप्तेषु पुण्यतः श्रद्धा	२०३	३६२
प्राप्तेरर्थैरतृप्तस्या	१५८	१६२
प्राप्याऽपि परमां बोधिं	४५३	१९८
प्राप्याऽपि मद्गृहं वत्सा !	२००	२३८
प्राप्यापशान्तमाहत्वं	३२२	३८५
प्राप मरावाते पाण्डु	७०	२७१
प्रायाश्च मिवादित्सु	७४०	३३८
प्रायाश्चत्तं वैयावृत्त्यं	८७	२७७
प्रायाश्चत्तं वैयावृत्त्यं	८३३	३४१
प्रायः सन्तोषनिष्ठोऽपि	९	३०१
प्रार्थितो मम पित्रेव	२९१	३९८
प्राविशत् सूतिकावेश्म–	३३१	१७७
प्रावृषि क्ष्मारुहतले	१७	२६९
प्रियङ्गुम०-जरीपु०-ज	५६	३७६
प्रियङ्गुमूले ध्यानस्थ–	२१२	२८१
प्रियया पार्श्ववर्तिन्या	३९४	२४३
प्रिये ! प्रिये ! देवि ! देवी	४४१	२४५
प्रिये ! बकुलमतिके !	१७५	३९५
प्रीणयन्ती जनपदान्	६	२५५
प्रीतः प्रजापतिनृपः	४६७	३२८
प्रेयसीभ्यां समं ताभ्यां	१९६	३५०
प्रेर्यमाणा महामात्रै	१६४	३६९
प्रौढप्रतापमार्तण्ड	२५	३७५
प्रौढभल्लुकहिक्काभिः	११४	३९२
प्लवङ्गम इवोत्पत्य	३६३	२४३
"फ"		
फलप्राग्भारभाराव	११९	१६१
फलप्राग्भारभाराव	२५२	१९२
फला–ऽङ्कुशधरौ बाहू	१४४	३१०
फलानुध्यानवन्ध्योऽहं	३४९	२६७
फलेन तपसोऽमुष्य	८३	३५८
फालाच्च्युत इव द्वीपी	१८५	३५०
फाल्गुनस्यामभूतेष्वा	३३	३४५
फाल्गुनस्य कृष्णषष्ठ्यां	७४	२९३
फाल्गुनस्य त्रयोदश्यां	१००	३१६
फाल्गुनस्य सिताष्टम्यां	११३	२५९
फाल्गुनस्य सिताष्टम्यां	१३१	२५९
फाल्गुनस्यामावास्यायां	१२५	३४८
फाल्गुनासितनवम्यां	२९	३०२
फाल्गुनासितसप्तम्या	७४	२९८
"ब"		
बद्धशोक इवाशोके	१२५	३९३
बद्धाः स्कन्धा बन्ध–शब्द	२६७	३७३
बद्धोर्वीकं मरकतैः	५९	३७७
बन्दिकोलाहलस्पर्द्धा	७४	१५९
बन्दिकोलाहलैर्नोच्चैः	२३९	१६४
बन्धवो नारदस्येव	५९९	३३२
बन्धूनिवोच्चैःश्रवसः	५६०	१८४
बबन्धुर्यन्तरास्तां च	३२१	२६६
बबन्धुस्तत्र पीठं ताः	२२४	१७३
बभूव तस्य तनयो	१२९	२३५
बभूव तस्य महिषी	४१७	३२७
बभूव तस्य श्यामेति	२०	३५६
बभूव तस्यामिक्ष्वाकु	३१	२७०
बभूव तस्यामिक्ष्वाकु	१०४	२५९
बभूव प्रतिवप्रं च	३२६	२६६
बभूव महिषी तस्या	११०	२५९
बभूव सा भूचरेषु	२३	३५६
बभूवुर्ग्रह–नक्षत्र	२८६	२४०
बलभद्रोऽपि पादोन	३६८	३५५
बलवद्वातदोषेण	६२	२५७
बलवन्तोऽपि जयसि	२६६	३८३
बलवानथवा वैरी	७८	२३४
बलवीर्यो महावीर्यः	१३०	२३५
बलं हस्त्यश्व–पादात	७	३१३
बला नव वासुदेवा	४५६	३२८
बलिभ्योऽपि बलितमा	१२३	३६८
बलीन्द्रोऽष्टाह्निकां चक्रे	५२७	१८२
बले द्वयोरुत्पतितैः	६५२	३३५
बलेस्तस्य प्रभावेण	८३०	२१०
बलो नामाग्रजोऽयं मे	६६८	३३५
बहवोऽपि विपद्यन्ते	५२	२३३
बहिः कथञ्चिद् यद्येतत्	३७३	४०१
बहिरङ्गानिव जय	९९	१८८

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
बहिरन्तर्विपर्यासः	३८	३९०
बहुदासीपरीवारं	४०	२१५
बहुवेताभ्यामपराद्धं	३३४	३२४
बाणधेर्बाणमाकृष्य	६७६	३३५
बाणवृष्ट्या बाणवृष्टिं	१४३	३६०
बाणैरजय्यं ज्ञात्वाऽरिं	१४७	३६०
बाधामजनयद् देव्या	१७९	२८०
बाध्यमानोऽपि शीतेन	२७८	१६५
बालकस्यापि सिंहस्य	१५५	३८०
बालतपो-ऽग्नि-तोयादि	११६	३०४
बालधार इवोत्सङ्गे	३४	२९२
बालिशोऽपीदृशं किंस्वित्	९३२	२१३
बालेनैकाकिनाऽनस्त्रे	४०२	३२६
बालोऽपि केसरी नेभान्	७२१	३३७
बालोऽपि तव पुत्रोऽस्मि	८९	२५८
बालोऽपि सन्ध्यारक्षोभ्यः	७२२	३३७
बालोऽसि तन्मया क्षान्तं	७१९	३३७
बालोऽस्मीति स्म मा वादी	६०७	२५०
बाह्यं क्रमेण लङ्घित्वा	१८५	३१९
बाल्ये मूत्र-पुरीषेण	१३६	२८८
बाष्पेण लुप्तनयनः	८३	३६६
बाहु-पाद-शिरो रुण्ड	४९४	२४७
बाहुभ्यां तरणीयोऽयं	१०५	२७८
बाहुवीर्यमसामान्य	५४३	२४८
बाहू ! कङ्कण-केयूरैः	२१	२३२
बाह्यमाभ्यन्तरं वाऽपि	२७	२७५
बाह्यवेलाधारिणां तु	६३०	२०४
बिभराञ्चक्रतुरुभौ	३४२	१७७
बिभर्ति गर्तान् मध्नाति	३४३	२४२
बिभ्रत् पाणी नकुलाऽक्ष	१८१	२९०
बिभ्रद् व्यात्ताननः पश्चा	३८३	३२६
बिभ्राणेन त्वया न्यासे	४०८	२४४
बीजपूरधरेणाऽभी	८४४	२१०
बीजपूरा-ऽङ्कुशाभृद्भ्यां	८४६	२१०
बीजं मोक्षद्रुमस्येव	४९६	१८२
बुद्धिसर्वस्वहरणैः	३८	३५७
ब्रूहि तात ! प्रसादं मे	१३७	३७९
बृंहिते वननागानां	१२१	३९३
बोधयन् भव्यभविनः	८४८	२१०
बोध्यमानावाप्तजनैः	१४२	३७९
ब्रह्मदत्तनृपगृहा	२९९	१९४

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
ब्रह्मदत्तनृपः पीठं	३०१	१९४
ब्रह्मलोकात् सुरा लोकान्	५३	३६५
ब्रह्मलोकादिसर्वार्थ	७९२	२०८
ब्रह्माऽथ परमब्रह्म	२०७	३५०
ब्राह्मणग्रामणीः सोऽथ	४८	२३३
ब्राह्मणानां गुरुर्वेदो	५३८	१८३
"भ"		
भक्ता बहुशा दीप्यन्तो	४१	२३३
भक्तिनिघ्नो जानुदघ्नं	४६६	१८१
भक्तिमान् बलदेवोऽपि	२१३	३२०
भक्तिरर्हत्सु सिद्धेषु	१२६	३०५
भक्त्यैकमपि यैः पुष्पं	३८	३६५
भक्षयाम्यहमङ्गारान्	२५४	२३९
भक्ष्याभक्ष्ये पेयापेये	३४६	३५५
भगवत्स्थानमाहात्म्या	८३४	२१०
भगवद्भगवन्मात्रो	१८७	१७२
भगवन्तं ततो नत्वा	१४०	२६०
भगवन्तं नमस्कृत्य	३९	२२७
भगवन्तं नमस्कृत्य	१२९	२७३
भगवन्तं नमस्कृत्य	५२१	१८२
भगवन्तं नमस्कृत्य	८४१	२१०
भगवन्तमिति स्तुत्वा	४३२	१९८
भगवन्नजितस्वामि	२८०	१९३
भगवन्ननन्तरात्मा त्वं	२८३	१९३
भगवन् भरतक्षेत्र	२०४	२६२
भगवानजितेशोऽपि	१७८	१९०
भगवानप्रतिबद्ध	३०३	१९४
भगवान् पारयामास	३०९	२६५
भगिनीवद् दुहितृवत्	८६	२३४
भगीरथमथोवाच	६०६	२५०
भगीरथेन सामन्तैः	६५०	२५१
भग्नैकदन्तो दन्तीव	२८०	३९८
भङ्क्तो युष्मद्द्रश्मनां तु	१५३	२३०
भृङ्ग्या मासपुरीवर्ताः	६७२	२०५
भटो वप्रमिवाऽऽरुह्य	७४	३०९
भद्र इत्यभिधां तस्य	९६	३५९
भद्रशालमिवाऽऽयातं	१०९	१६०
भद्रशालात् पञ्चशत	५६२	२०२
भद्र-स्वयम्भुवौ प्रीत्या	१०२	३५९
भद्राऽपि स्त्रीशिरोरत्नं	२१२	३२०

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
भद्रा विशाला कुमुदा	७२३	२०६
भद्रासनेषु रम्येषु	९४	१६९
भद्रेति नाम्ना महिषी	१६४	३१८
भद्रे ! न कालहरणं	१७५	२८०
भद्रे ! सनत्कुमारः कः	२३८	३९७
भद्रोऽपि सोदरविप	२३३	३६३
भरतक्षेत्रगेहस्य	४४	३०२
भरतार्धेऽत्र गङ्गातः	१२५	३६८
भरतार्धेश ! इति तु	१२१	३६८
भरतार्धेश्वरोऽस्मीति	१२९	३६८
भरतार्धोद्यानमधु	१४२	३६८
भरतावधिभूस्तम्भो	५५	२२७
भरतेऽत्रैव नगरे	१	३८७
भरतेऽधिष्ठिते ताभ्यां	१३३	३६८
भरतो नाम सौधर्मे	१२२	२३५
भरतोत्सत्वे षड्विंशा	५८६	२०२
भर्ता ते भ्रातृवधको	२५४	३९७
भर्तुः प्रसादाद् भूयोऽपि	१४५	३६९
भर्तुः सहस्रयतिनां	२६४	२८३
भर्तुस्तया देशनया	१७६	२९०
भर्तुस्त्रिनवतिर्दत्ता	१०५	२९९
भल्लूककर्णग्रहण	३१४	१९४
भवच्छासननिःश्रेणि	४३	३५७
भवे तरिष्याम्यज्ञोऽपि	१५३	१८९
भवता जन्तुमात्रेण	३२९	२४२
भवतीन्द्रियवैकल्यं	५२९	२४८
भवत्या तन्न भेतव्यं	२२२	१७३
भवत्याः सुलभा बोधि	९२४	२१२
भवत्वेवं तावदिति	१७४	३९५
भवद्भिरपि सर्वद्धर्या	२७८	१७५
भवन्तो बिभराञ्चक्रुः	१४८	१६१
भवपारं जिगमिषुः	५७	२८६
भवं भ्रान्त्वा चिरं सोऽथ	४९	३९०
भवस्य च्छेदनायोथ	९	२९६
भवः स्वयम्भूरमणो	६०८	२५०
भवस्वरूपं नृपतिः	११६	२३५
भवानपि करोत्वेवं	९८	३४७
भविनां दृष्टमात्रो वा	४१	२९७
भविष्यत्कालदोषेण	१५२	२३०
भविष्यदद्भुतश्रीकैः	६०	३५७
भवे भवे भवदीयौ	८२५	३४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
भवेयुरार्जवजुषो	३०१	३८४
भाग्योदयेन विश्वस्य	२७६	१७५
भान्ति तत्रौकसां मुक्ता	१५	३०१
भामण्डलेन भ्राजिष्णुः	८०१	३४०
भारं वोढुं क्षमे पुत्रे	१८९	१६३
भार्यान्यासे त्वयोपात्ते	४०९	२४४
भालगण्डस्थलेनाऽर्धं	९४	२७२
भावी ह्यर्हन्महावीरः	२४५	३८३
भाव्यं मयीव युष्माभिः	१६२	१६२
भांश्चामराभ्यां श्रीखण्ड	१६१	२१८
भाषार्या नाम ते शिष्ट	६७८	२०५
भासां चयैः परिवृतो	२२३	२८२
भास्करेणेव गगनं	८२	३०९
भिक्षया लज्जमानः सन्	२६	२५६
भिल्ला अन्ध्रा पुक्कसाश्च	६८१	२०५
भीतस्तेनाऽनिमित्तेन	९५	२३४
भीतानामभयदानात्	३९१	२४३
भीतेव वेपथुमती	३२९	२२४
भीरवः फेरव इव	६३१	३३४
भुक्तमात्रो निजावासात्	११०	३७८
भुक्ते तस्मिन् समुच्चखने	६०	३९१
भुक्त्वा भोगफलं कर्मा	१५८	१८९
भुजङ्ग–गृह–गोधाःस्युः	३१९	३८५
भुञ्जाना बहुधा भोगान्	८४	२२८
भुञ्जानो विविधान् भोगान्	२४१	२६३
भुवनत्रितयाधार	१४२	२७९
भुवनस्वामिनं यत्नात्	३४५	१७७
भुवां रत्नप्रभादीनां	४९१	२००
भुवि गोदोहकरणाद्	३४१	३५५
भुवि सर्वौषधीमय्यां	८८	२३४
भूचरा भूचरैः सार्धं	६४५	३३४
भूतलालोकमात्रेण	३१६	१९४
भूतवादितः क्रन्दितो	५२६	२०१
भूतान्येतानि सत्त्वानि	६१४	३३३
भूत्वाऽथ पञ्चेशान	१९३	२६१
भूपतिर्धारयामासो	२१९	२६२
भूभुजा पारिषद्यैश्च	४६९	२४६
भूभुजा राशिसौम्येन	१०८	३५९
भूभुजा स्वस्य कार्पण्य	२६९	२४०
भूमितो दशयोजन्यां	६०७	२०३
भूमिपालैः पाल्यमान	७	२९६

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
भूयः कुमारस्तं नत्वा	७४	२७७
भूयो नत्वा जगन्नाथं	२९८	३५३
भूयो नत्वा जिनेन्द्रं ते	२१२	३७१
भूयोऽपि षष्ठभक्तान्ते	३८४	४०१
भूयोऽपि सगरोऽप्राच्छत्	२०	२२६
भूयोऽपि स्वामिनं नत्वा	२०९	३८१
भूयो बभाषे भूपाल	५०५	२४७
भूयो भूयो जगन्नाथ	२१७	३८२
भूयो भूयोऽपि भूयान्नो	८४०	२१०
भूयो भूयोऽपि शिवराट्	१०२	३७८
भूयो भूयोऽप्येवमुक्त्वा	१११	३९२
भूयो भूयो भगवन्तम्	३४८	१७७
भूयो भूयो भवत्याद	८०	२८६
भूयो भूयो हयग्रीवो	६८०	३३६
भूयो महानिकुञ्जेषु	१२०	३९३
भूषणानि विचित्राणि	१७१	२१९
भूषणोद्यानवाप्यादौ	३२१	३८५
भृङ्गारान् दर्पणांश्चापि	१८५	२६१
भृत्यत्वेन प्रतीयेष	७९	२१६
भेजिरे भूभुजः पत्ति	११०	१८८
भेजे सिंहासनं पूर्वा	८२२	२०९
भेदं गोस्वामिनः कृत्वा	२३	२२६
भेदं विद्वान् न पीडयेत	१०१	२९४
भोः ! किमेव समुद्विग्नो	१०३	२३५
भोः कृत्यमूढाः ! किं यूयं	४९	२३३
भोगङ्करा भोगवती	१६३	१७२
भोगान् यथेच्छं भुञ्जानः	३६५	३५५
भोगान् विचित्रान् भुञ्जानः	२४५	२२१
भोगावत्यमरावल्यो	२४	१५८
भोगेष्वूढवैराग्यः	८	३७५
भोग्यं कर्म क्षपयितुं	५५	२९२
भोग्यं कर्म क्षिपन् राज्ये	२४७	२६३
भोग्यं कर्म निजं जानन्	२००	२८१
भोजनाद्यप्यकृत्वाऽस्थां	१०२	२३५
भोज्यदानक्षमः सैन्ये	३६	२१५
भोज्या–ङ्गराग–नेपथ्य	४७९	३२९
भोज्येनालवणेनेव	१४९	३४८
भो भोः ! क्व वज्रवेगारि	२७३	३९८
भो भोः ! गृहेऽत्र राजानो	१४६	१६१
भो भोः ! शृण्वन्तु गीर्वाणाः	२७४	१७५
भो भोः सर्वेऽपि दोष्मन्तो	२०१	२२०

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
भ्रमद्भिर्मण्डलीभूय	३९	३५७
भ्रमयित्वा चिरतरं	७२५	३३७
भ्रमयित्वाऽथ तच्छार्ङ्गी	२७२	३५२
भ्रश्यत्याधारशैथिल्याद्	२११	१६३
भ्रातृङ्गसंगादमृत	१८६	३७०
भ्रान्त्वा दानप्रभावेण	२६	२२६
भ्राम्यतो विकृताकारान्	२०२	३९५
भ्रामयन्तो मुद्गरांश्च	५२९	३३०
भ्राष्ट्र–कण्डु–महाशूल	९७	२८७
भ्रूवमुन्नमयन्नेकां	१५२	३८०

"म"

श्लोक	नं.	पृष्ठ नं.
मकराङ्का उदधयः	५०९	२००
मकराननसौवर्ण	२३०	१६४
मग्नं प्रदीपन इव	७०७	३३६
मग्नस्य पत्तनस्याऽस्था	३५६	२४२
मघवा चक्रवर्तीति	३८	३८८
मङ्गलानि कुलस्त्रीषु	४८५	३२९
मङ्गलानि जगुः काश्चिन्	२३०	१९२
मङ्गल्यं गीतमारेभे	३२८	४००
मङ्गल्यपाणयो नार्यो	२३२	३२१
मञ्चस्थरत्नपात्रीभिः	३४०	२२४
मञ्चे मञ्चे च गन्धर्व	२४४	१६४
मञ्जुघोषा चेति घण्टा	३९७	१७९
मञ्जुस्वरां मञ्जुघोषां	४१४	१७९
मणि–रत्नयुता हारा	५०८	१८२
मण्डकाः खण्डसम्मिश्रा	४३	२५७
मण्डपो नृपतेरेवं	५७३	१८४
मण्डलाग्रमथाकृष्या	२७९	३९८
मण्डलान्यालिखन् प्राग्वत्	२७५	२२२
मतङ्गजेन मत्तेन	५८	२५७
मति–श्रुता–ऽवधिज्ञानैः	४७	१८६
मति–श्रुता–ऽवधि–मनः	२८१	१९३
मति–श्रुता–ऽवधि–मनः	४६६	१९९
मत्कृते कृतमन्नादि	३९	२५६
मत्तकुञ्जरभग्नाध्व	११७	३९३
मत्तेभ इव संक्रुद्धः	१३४	३६०
मत्पुत्रोऽसि समर्थोऽसि	२८७	१६३
मत्प्रसत्तेस्त्वप्रसादः	६२३	२५०
मत्स्यादयो जलचरा	२९३	३८४
मदगन्धिसप्तपर्ण	१३९	३९३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
मदस्तदानीं करिण	५६५	३३२
मदस्थानानि तस्याऽऽसन्	१०	२५५
मदीयभूमौ ग्रामेषु	२०१	३२०
मदीयाः किङ्कराः सर्वे	११८	३६८
मदीयेऽपि गृहे कालान्	१३८	२३६
मद्दृशौ त्वन्मुखासक्ते	७८	२७१
मदोद्धुरैः कुञ्जरैर	५९१	३३२
मद्बन्धोर्व्यापदमिमां	७३४	३३७
मद्वियोगे पितृपादाः	१६६	३९४
मधुरस्तर्भवत्कोपो	१२४	३६८
मधुराण्यप्यधस्तैवं	१८८	३७०
मधुलिप्तासिधाराग्रा	४६९	१९९
मधुव्रत इवाऽम्भोजं	१७	१८५
मध्ये चातिकृशं तस्याः	१४५	३४८
मध्यदेशे वत्सदेशे	६७	३४६
मध्यप्राकारगर्भोर्व्या	७९६	३३९
मध्यभागो मृगाराति	३५२	४००
मध्यलोके जम्बूद्वीप	५५२	२०१
मध्यादमीषां स्वप्नानां	१०१	१७०
मध्येकृत्य हयग्रीवं	५३९	३३१
मध्ये च तस्य विष्कम्भा	२९३	१७५
मध्ये च भरतस्याऽपा	६०५	२०३
मध्ये च योजनदश	६२१	२०३
मध्ये पुष्करिणीनां च	७२६	२०७
मध्येसुरसभं शक्रः	३६७	४०१
मध्योत्सेधादमुष्मात् तु	४९४	२००
मनःप्रसाद-सन्तोषा	४६१	१९९
मनःपर्ययमुत्पेदे	६६	२९३
मनःपर्ययमुत्पेदे	२८९	२६५
मनःपर्ययसंज्ञं च	११३	२७२
मनःपर्ययिणां त्रीणि	१८७	२९०
मनःपर्ययिणां पञ्च	३५५	३८६
मनःपर्ययिसहस्राः	६६७	२५२
मनःपर्यायियुक्तानां	३५५	३५५
मनसा प्रागपि त्यक्तं	७२	३५८
मनस्कृतेन सङ्कल्प	६००	२५०
मनुष्यक्षेत्रचन्द्रा-र्क	५४९	२०१
मनुष्यत्वेऽनार्यदेशे	१२८	२८८
मनोज्ञानिनामयुतं	२५३	२८३
मनो-भाषा-कायबल	२३७	३७२
मनो-वचः-कायचेष्टाः	१३०	२७३

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
मनो-वचन-कायानां	२७८	३७३
मनो-वाक्कायकर्माणि	८०	३०३
मनो-वाक्कायवक्रत्वं	११७	३०५
मन्त्र्यादयोऽपि ते स्वामि	१७४	२३७
मन्त्रपाठावसाने च	२७५	२४०
मन्त्रबीजाक्षराण्यन्तः	५८०	३३२
मन्त्रयित्वेति ते सर्वे	४७	२३३
मन्त्रिणो मन्त्रयित्वाऽथ	२५	३८९
मन्त्रिभिर्मन्त्र्यमाणो	४६३	३२८
मन्त्री बहुश्रुतोऽप्यूचे	४३८	३२७
मन्दमन्दपदन्यासैः	२२	३०७
मन्दं मन्दमथोत्साह	३९	२३३
मन्दं मन्दं मरालीव	२२	३५६
मन्दमन्दोल्यमानास्ते	२९८	१७६
मन्दाकिनीव सरितां	२१	३०७
मन्दारदामवन्नित्य	४७२	१८१
मन्मनस्युज्ज्वलादर्श	१९४	२८१
मन्यसे यं बलीयांसं	१२६	३६८
मन्ये कन्यानिमित्तो नः	६१५	३३३
मन्ये न संमतं राज्ञो	१२२	३५७
मन्ये प्रोन्मूलितान्यद्भिः	३४९	२४२
मन्ये मद्दर्पणोदन्तो	३४६	३२४
मन्ये यथाऽयमारामो	१२२	१६१
मम त्वद्दर्शनोद्भूता	८०	२७१
मम त्वद्विरहे तस्मिन्	८८६	२११
ममाल्पपरिवारस्य	१०९	३९२
ममाऽसि माता तातो वा	४८७	२४६
ममौरसोऽयं तनयः	१५३	२८०
मयाऽद्य तु प्रमादोऽयं	१५०	१६१
मया दिग्जययात्राया	१५४	१६२
मया विषयसेवेयं	१५३	१६२
मया सन्ध्यादिषाड्गुण्यं	१५५	१६२
मयेव गृह्यतामेतत्	९३	२५८
मरालयाना पीताङ्गी	१०९	२९९
मरुता पङ्कजामोद	१५०	३९४
मरुता सूतिकागार	१८६	१७२
मर्त्यक्षेत्रस्थितप्राणि	६५	२९८
मर्यादां लङ्घते नाऽब्धि	४८९	२४६
मल्लिनाथः पूर्वभवे	२९८	३८४
मल्लिर्नमिः पार्श्व इति	१०३	३४६
मषीलिप्तैरिवामन्द	५४१	३३१

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
महतस्तस्य शाक्रस्य	२९९	१७६
महता चक्रिसैन्येन	५५८	२४८
महता तन्निदानेन	१७२	३८०
महताऽपि निदेशेन	८६	२५८
महता सोऽपमानेन	४००	३२६
महत् कुतूहलमहो !	३२२	२४१
महत्तराभिः सामानि	१९०	१७२
महत्या प्रतिपत्त्या तं	२८८	३२३
महत् सत्त्वं महद् धैर्यं	१०८	२७८
महर्द्धिर्वलयाकारो	३३	२२६
महर्षिः क्रोधसंयुक्तः	२४९	३८३
महागिरि-महारण्ये	३१५	१९४
महाघोषो जलप्रभो	३९४	१७८
महाटव्यामिवोद्याने	९००	३४३
महातपाः शुभध्यानं	१४	३१३
महान्तमुत्सवं चक्रे	८५	३१६
महापक्षधरमिव	८९	२२८
महापद्मात् तु द्विगुण	५७५	२०२
महापुण्डरीको महा	५७६	२०२
महापुरे द्वितीयेऽह्नि	१२७	३४८
महापोतमिवाऽऽरोहत्	२३५	२२०
महाबलोऽपि रोगाद्यैः	२६५	३८३
महाबलौ बल-हरी	११६	३६८
महाबलौ महाबाहू	१३१	३६८
महाबाहुर्बाहुबलिः	१२५	२३५
महाभीमः किम्पुरुषो	४०६	१७९
महाभुजेन तेनोग्र	३३	२७०
महामहिमसौभाग्यं	८०५	२०९
महामुनीनामभ्यर्णे	१३०	१६१
महायाद इवेतश्च	३००	३५३
महारत्नपरीवारा	१६९	२३७
महारत्नं महामूल्यैः	११	२९६
महारत्नानि सेनानी	३४४	२२४
महार्घाणि दुकूलानि	५५७	१८३
महावातस्य वलय	४९६	२००
महावाते च गव्यूत	४९८	२००
महाव्रतधरा धीरा	८९६	२१२
महाव्रतधरस्यास्य	३८०	४०१
महासत्त्व ! महाबुद्धे !	९५	२७८
महासरः-कूप-वापी	९१	२३४
महासरोभिः पीयूष	८८	२२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
महाहिमवदद्रिस्तद्	५७०	२०२
महाहिमवदद्रौ तु	५७४	२०२
महीकम्प–तडित्पात	२४५	३५१
महीं गामिव गोपालः	१५	३८७
महीपतिः परिणम	५७	२१५
महीपतेः परिणम	१३९	२१८
महीपतिर्महासेनो	४८	२९७
महीभृन्मौलिमुकुट	४	३१३
महीयसाऽथोत्सवेन	७७	३९१
महीयसामपि महान्	७९	२८६
महीविवरवतस्तस्य	१८	३५६
महेच्छस्य हि गर्भस्य	५३	२७६
महेन महता भ्रातुः	५८०	१८४
महेन्द्रसिंहस्तदनु	१६९	३९४
महेन्द्रो लान्तकश्चापि	३७१	१७८
महेभभज्यमानद्रु	३१२	१९४
महेभेनेव कलभो	१८२	३५०
महोत्साहस्य सततं	८९५	३४३
महोपकारजनकं	२९९	२६५
महोर्मय इवेतश्च	३०२	३५३
महौजाः स महाबाहुः	२४९	३२१
मागधेश–प्रभासेश	२५६	३२१
माघकृष्णपञ्चदश्यां	७८०	३३९
माघशुक्लतृतीयायां	३४	३७६
माघशुक्लत्रयोदश्यां	६०	३७७
माघशुक्लद्वितीयायां	२८४	३५३
माघस्य कृष्णद्वादश्यां	२९	३०८
माघस्य शुक्लचतुर्थ्यां	६५	३५८
माघस्य शुक्लद्वादश्या	११०	२७२
माघस्य षष्ठ्यां कृष्णायां	३४	२८५
माणिक्यकपिशीर्षं च	७९४	३३९
माणिक्यचूडावलयैः	१३६	१७१
मातरश्च कुमाराणां	१७२	२३७
मातर्मातस्त्वमपि मां	११९	३७९
मातर्वयमधोलोक	१८२	१७२
मातस्त्वमेका धन्याऽसि	३३५	१७७
माताऽसौ मे पिता चाऽसौ	६१	१५९
मातुः कृते दक्षिणस्यां	२०९	३२०
मातुलिङ्ग–मुद्गरभृत्	११२	३१०
मातुलिङ्गाऽकुंशधरौ	२४९	२८३
मातुजधान्न–पानोत्थ	९५	२९९

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
मा त्रिपृष्ठो माऽचलेवा	५३३	३३१
मानवा अपि ते धन्या	२०५	२६२
मानाद् बाहुबलिर्बद्धो	२७७	३८४
मानुषत्वमवाप्याऽपि	२५१	२६३
मानुषोत्तरनामा च	६६०	२०५
मानुषोत्तरपरतः	७०१	२०५
मानुषोत्तरपरतो	५४८	२०१
मानुषोत्तरसीमस्थ	१९०	२१९
मानुष्यकेऽपि सम्प्राप्ते	२५६	१६५
मानुष्यमार्यदेशश्च	२०२	३६२
मानेन भूतेनेवात्ताः	२१५	३७१
मामापतन्तं सम्प्रेक्ष्य	९९	२३५
मायाजयादार्जवं वाङ्	८७	२७७
मायानैमित्तिकः सोऽपि	३६६	२४३
मायाप्रयोगसदृशो	५२२	२४७
मायामोहा–ऽन्धतमस	४५१	१९८
मार्गकृष्णषष्ठ्यां मूले	६०	३०३
मार्गभ्रान्ता वयमिह	६१३	३१३
मार्गशीर्षस्य राकायां	२८४	२६५
मार्गशीर्षे च कृष्णैका	१९२	२९०
मार्गान्तरालो सतत	१००	१६०
मार्गणोत्तरपूर्वेण	२५९	२२१
मार्जारयूनामभ्यर्णे	६८	२७७
मार्तण्डमण्डले केतु	६४	२२७
मार्तण्डमण्डलं दीप्रं	३६	३१४
मार्दवं नाम मृदुता	२७४	३८४
मार्ष्टि विलेपनं पूजां	४९२	१८१
मालव–कैशिकीमुख्य	२२०	२८२
मालामङ्कटकेनेव	५७२	२४९
मलिनीभूतवासस्का	१८०	२३७
माल्यवानन्तराले च	६१८	२०३
मां विना क्रीडसि कथ	२९	३९०
मासमेकं तथा स्थित्वा	८५९	३४१
मांसलुब्धैः शाकुनिकैः	१२६	२८८
मासं स्थित्वा शुचिकृष्ण	२२५	३६३
मासादिकाश्च प्रतिमा	१०१	२७८
मासान्ते श्रुतभवोप	२५९	२८३
मासान्ते चाषाढशुक्ल	३६०	३५५
मासान्ते चैत्रविशद	२९९	३७४
मासान्ते ज्येष्ठविशद	३६०	३८६
मासान्ते वैशाखकृष्ण	१२२	३१०

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
मासान्ते सम्भवस्वामी	४००	२६८
मासोपवासादारम्य	३०३	१६६
मा स्म कश्चिदतिक्रामत्	३००	१९४
मा स्म कृद्ध्वं पुनर्यूयं	१५६	२३०
मा स्म शोकं कृथास्तेन	१४५	२३६
मितसारपरीवारो	११२	३९२
मित्रेणाऽऽमन्त्रितः कुम्भ	५९५	२५०
मिथः संसृजतोस्तस्य	१३४	३४८
मिथ्यात्वमाऽऽशान्तिजिने	१६४	३०६
मिथ्यात्वस्थानुदयेऽन	२५३	३७२
मिथ्यात्वाशीविषो लोके	८७	३०९
मिथ्यादृशामुलूकानां	१९६	३६२
मिथ्यादृशां युगान्तार्कः	४१८	१९७
मिथ्यादृष्टिभिराम्नातो	९०१	२१२
मिथ्यादृष्टिरविरति	२८४	३७३
मिथ्यादृष्टिर्भवेन्मिथ्यां	२५२	३७२
मिथ्यादृष्टिः सास्वादन	२४९	३७२
मिलन्तः केचिदन्योऽन्य	६४९	३३५
मुकुटं कुण्डले हारं	२०२	१९१
मुकुलीकुरुते नेत्रा	१७६	३९५
मुक्तं चेन्मुच्यसे प्राणैः	७१८	३३७
मुक्ता एकस्वभावाः स्युः	२२५	३७१
मुक्तामयानि सर्वाङ्ग	२०४	१६३
मुक्तोऽपि नाऽहं यास्यामि	२३४	२४२
मुक्तोऽपि भरतक्षेत्रं	१३१	२२९
मुक्त्वाऽपि चक्रं नष्टव्यं	१५४	३६०
मुखचन्द्रमसा रेजे	४२२	३२७
मुखे प्रविशतस्तीर्थं	२७	३५६
मुखे प्रविशतः स्वस्मिन्	७५	३९१
मुच्यते च भवेऽत्रैव	२९६	१९४
मुञ्च मुञ्च त्वमप्येतत्	७४६	३३८
मुञ्च मुञ्च त्वमप्येतद्	२७१	३५२
मुञ्च मुञ्चायवा चक्रं	१५५	३६०
मुञ्च मुञ्चेति वदतो	१८	३८१
मुञ्चाऽद्यापि व्रतं वत्स !	१४२	२१८
मुदितैः खेचरैः पुष्प	७४९	३३८
मुद्गरेषु मल्लवर्तें	६९	३४६
मुनीनामनशनिनां	१९३	२९०
मुनीनामपरेषां तु	६९१	२५२
मुनीनामप्यपापानां	१४८	२७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
मुमुदे मेदिनी सर्वा	९५	१८७
मुमोच च मधुश्चक्रं	१८४	३७०
मुमोच तत्र भगवान्	२८३	२६४
मुमोच तारकोऽपीषुं	२५७	३५२
मुष्टिना शक्यते धर्तुं	५५	२३३
मुहुः कुरुबकाऽशोक	२४५	१९२
मुहुर्मुहुरुदैक्षिष्ट	२१८	२६२
मुहूर्तमपि न स्थातुं	१५८	३४९
मूढोपायाः सैनिकास्ते	१०२	३९२
मूर्खो मुमूर्षुरेकः स	५२१	३३०
मूर्च्छया पुण्डरीकाक्षो	१८६	३८१
मूर्च्छाविरामे भूयोऽपि	१०१	२३५
मूर्त्यैकयाऽग्रहीन्नाथ	३७	३४५
मूर्धाभिषिक्तमूर्धन्यो	४०७	१९७
मूर्ध्ना नमन्ति तरव	४३०	१९८
मूर्ध्नि चित्रातपं घोरं	१३७	३९३
मृगया–द्यूत–पानानि	२२३	१६४
मृगयासक्तचित्तैस्तु	१२३	२८८
मृगाक्षीं तत्र सोऽद्राक्षी	७९	३६६
मृगाङ्कमभ्रलेखेवा	३२	३४५
मृगेन्द्रासनमारूढे	२२२	२८२
मृगेष्विव मृगेन्द्रस्य	१०५	२५९
मृज्जला–ऽनल–वातांशु	१०२	२९९
मृज्यमानपदाम्भोजः	३०८	१९४
मृत्योरिवावसपैतैः	७००	३३६
मृत्वा कालक्रमाच्चण्ड	९२	३६७
मृत्वा च कुम्भकृज्जीवः	५९८	२५०
मृत्वा त्रिदण्डिकः सोऽपि	६६	३९१
मृदित्वा शास्त्रसर्वस्वं	२३०	३८५
मेघङ्करा मेघवती	१८९	१७२
मेघानामिव वायूनां	१२५	२२९
मेघा बभूवुर्नभसि	२३	२५६
मेदिनीं छादयन्नश्वै	१९२	३८१
मेरकोऽप्यब्रवीन्मुञ्च	१६४	३६१
मेरोर्योजनषट्शत्या	६४८	२०४
मेरोरिव महत्त्वेना	१८	२९१
मेरोरुत्तरतो नील	५९५	२०३
मेर्वन्तर्गोस्तनाकार	४८२	१९९
मैत्रीं चिरभवां लुप्त्वा	१६३	३४९
मैत्रीपवित्रपात्राय	३९८	१९७
मैत्र्यादिवासितं चेतः	८१	३०३

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
मोक्षकालमथाऽऽसन्नं	१९१	२९०
मोक्षकालं विदित्वा स्वं	८५८	३४१
मोक्षकालेऽथ सम्प्राप्ते	१२१	३१०
मोमूत्र्यते स्म तत्कालं	५६६	३२२
मोहान्धकारतरणिं	८०	१५९
मोहेन तिमिरेणेव	३७	३५७
मौक्तिकस्वस्तिकाकीर्ण	७७२	३३९
मौखर्या-ऽऽक्रोशौ सौभाग्यो	१२१	३०५
मौनेन तस्थौ स प्रायः	२७२	१६५
म्लेच्छानां दण्डमादाय	२४४	२२१
म्लेच्छा मडम्ब–नगर	१७०	२१९
म्लेच्छास्तु शाका यवनाः	६७९	२०५
"य"		
य एव छेकताभाजा	१२४	१६१
यः कर्मपुद्गलादान	८५	३०२
यः कर्मपुद्गलादान	९२	३१०
यकृच्छकृन्मलश्लेष्म	३७	३९०
यक्षोऽपि शैलमुत्क्षिप्य	२०९	३९६
यक्षोऽहमिह वास्तव्यो	१८८	३९५
यच्चक्रे तत् कुमाराभ्यां	३४९	२२५
यच्च तीव्रं तपःकर्म	३४२	३८६
यच्चान्यत् कोशसर्वस्वं	११६	३७८
यजनैर्याजनैः शास्त्रा	६७६	२०५
यतिलिङ्गमुपादाय	८५	३५८
यत् कन्यानां त्वमुचितो	२२६	३९६
यत् किञ्चिदन्यदपि	६९९	२५३
यत् क पत्रलता साऽर्के	११३	१६०
यत् क्षीयते च दुर्भिक्षं	३९३	१९७
यत् त्वं पुरुषरत्नस्य	१८०	१७२
यत् प्रातस्तन्न मध्याह्ने	२०८	२३८
यत् संतोषवतां सौख्यं	३४४	३८६
यत्र पादौ पदं धत्त	४२०	१९८
यत्र यत्र बभञ्जाऽहि	५७७	२४९
यत्र यत्र स्वामिमी सा	२४	३५६
यत्रान्यत्वं शरीरस्य	९४	२९४
यथाकामम थाऽर्थिभ्यः	५७	२७६
यथाकाममथाऽर्थिभ्यः	६४५	२५१
यथाकाममविश्रान्त	२८१	२२२
यथाकामं ददौ सोऽर्थी	२३०	३२१
यथा क्रीडासु बालानां	१५१	३६९
यथा चतुष्पथस्थस्य	९८	३१०
यथा चैकस्तरन् सिन्धुं	२३९	२८२

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
यथा तथा वा महतां	५१७	२४७
यथा तस्याऽतुला शक्तिः	३६	१५८
यथा दिदृक्षुः स्वामी स्वं	४६८	१९९
यथाद्वारं प्रविविशुः	१८६	३६१
यथा नृणां चक्रवर्ती	३३२	३८५
यथा नैसर्गिकं धैर्यं	२१३	२३८
यथापात्रं विनीतेन	५४९	२४८
यथाप्रवृत्तिकरणाद्	२०८	३६२
यथा प्राप्तेऽपि सौराज्ये	४५५	१९९
यथाऽभूदप्रतिच्छन्द	२७	३१४
यथा मृत्युप्रतीकारं	१४६	२७३
यथा यथा देहभाजो	२१७	३७१
यथार्थमभिधायेति	३७०	४०१
यथा वा मेघसंघाताः	८४२	३४१
यथा वा यानपात्रस्य	१०१	३१०
यथा वा सरसि क्वापि	१००	३१०
यथास्थानं प्रविश्यास्थात्	२०५	३८१
यथास्थानमथान्यानि	२४	३८७
यथास्थानमथान्येऽपि	६९	३०३
यथा हि पिहितद्वारं	८३५	३४१
यथेन्द्रो वर्णयामास	३५४	४००
यथैकः स पतिः पृथ्व्याः	५२	३८८
यथैव सरसस्तोयं	८३७	३४१
यथैवैकस्तरन् सिन्धु	१३६	१८९
यथैवोपचितो दोषः	८४१	३४१
यदर्जितं बहुक्लेशैः	३६७	२६७
यदर्थं वञ्चनोपाय	१३६	३१७
यदात्थ तदमिथ्या चेत्	१३५	३६८
यदा मरुन्नरेन्द्रश्रीः	२७१	१९३
यदि गृह्णाति गृह्णातु	१६९	१६२
यदि त्वमनुजानासि	३९३	४०२
यदि त्वं निर्ममस्तत्किं	७२	३०३
यदि वा पित्तदोषेण	६३	२५७
यदि वा स्वयमागत्य	७०	२३४
यदि शान्तस्वभावस्त्वं	७६	३०३
यदि षष्टिसहस्रा वः	५०	२३३
यद्गर्भस्थेऽत्र सम्भूतं	२१७	२६२
यद् दुखं भवसम्बन्धि	१३५	१८९
यद् दुःखं भवसम्बन्धि	२३८	२८२
यद्देहस्यापि दानेन	७६	२८६
ाद्रकषायाणां	२५८	३७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
यद् यद् दुःखं नारकेषु	४५२	१९८
यद्यपि त्वं विपक्षोऽसि	२६२	३५२
यद्यप्येते महास्वप्नाः	८४	१६९
यद्यात्मानं विजानीया	३५७	२६७
यद्युपेक्षापरोऽसि त्वं	७५	३०३
यद्योजनप्रमाणेऽपि .	३८५	१९६
यद्वा गदायुधज्ञोऽसि	२३५	२३९
यद्वा वाग्गेयकारोऽसि !	२४२	२३९
यद्वाऽश्वहृदयज्ञोऽसि	२३७	२३९
यन्मूर्ध्नः पश्चिमे भागे	३९४	१९७
यमौकस्तोरणमिव	३८१	३२६
ययावन्येद्युरुद्यानं	८	२७५
ययुश्च मेरुशिरसि	३७०	१७८
ययौ च क्वचिदप्यम्भ	३६४	२४३
ययौ तस्याश्च मिथ्यात्वे	८७४	२११
यशसा विशदेनोच्चैः	५	१६७
यशो-ऽनुरागैर्युगपद्	२६	२८५
यशोराशिपयोराशि	२२	३०१
यस्य वारिलवेनाऽपि	३४१	२४२
यस्याश्चैताः स्नुषीभूय	१६	२७५
याचकेषु ववर्षाऽर्थ	१८	२५६
याचकोऽसि गृहाणार्थ	२६४	२४०
याचितं दास्यते वाऽथ	२३०	३५१
यातना-रुक्शरीरा-ऽऽयुः	५०३	२००
यात्यसौ यात्यसावश्वः	९७	३९२
यात्रारम्भेण तेनैव	२७६	३५३
यादृग् मायाप्रयोगोऽस्य	५२०	२४७
या देवे देवताबुद्धिः	८९०	२११
याम्यार्धभरतक्षेत्र	७७	३४६
यामिन्या पश्चिमे यामे	२१७	३२०
यामिन्याः पश्चिमे यामे	८७६	३४२
यावज्जीवितमस्नानं	१०२	२७८
यावत् किञ्चिद् ययौ तावद्	३०९	२२३
यावत् कुमारं स्वे राज्ये	१३८	१६१
यावत् सशोकः परिष	४६८	२४६
यावन्तः सागरा यस्य	७८७	२०८
युक्त एवाऽऽग्रहो वत्स !	१५७	१८९
युगपद्बाणवर्षेण	१७२	३४९
युध्यन्ते स्म द्वयोः सैन्याः	१६९	३८०
युध्यध्वं माऽथवा यूयं	६३८	३३४
युद्ध्वा चिरेण भग्नेषु	२७२	३९८

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
युवराज ! ततो राज्यं	१५९	१८९
युवाभ्यामत्र कर्तव्यो	५७८	३३२
युष्मत्पितुः स्मरन् भक्तिं	१४७	३७९
युष्मदानन्दहेतोश्च	४८०	२४६
युष्मद्दर्शनतोऽस्माभिः	१२३	२२९
युष्मद्ध्वा वैजयन्त्या	७४	१६९
युष्मद्विश्वासतोऽशङ्कं	१९२	२३७
युष्मन्मन्त्रबलेनैषा	१४७	१६१
युष्माकं चक्रवर्तित्वा	३५०	२२४
युष्माकं पूर्वजन्मानो	१६४	१६२
युष्माकं स्वामिनमपि	५९	२३३
युष्मान् नष्टान् विनष्टान् वा	२७	२३२
युष्मान् विना गतान् नोऽद्य	२८	२३२
यूका-मत्कुण-मर्कोट	२३५	३७२
यूयं महात्मनः कस्य	२१९	३९६
ये चारुचाराचतुरं	४२	३६५
ये तु देहा-ऽऽत्मनोर्भेदं	१००	२९४
ये तु रागादिभिर्दोषैः	३३३	३५४
ये त्वां त्रिभुवनाधीश !	४९७	१८२
येन येन ह्युपायेन	९३	३१०
येनैव तपसा त्रुट्येत्	२७०	३८३
येऽमुष्मिन् भरतक्षेत्रे	५६९	२४९
ये मेरुं दण्डसात् कर्तुं	३६२	२६७
ये वर्णयन्त्येकदाऽपि	४१	३६५
येषामर्थे च पापानि	१२९	१८८
येऽसिमात्रोपकरणाः	१४७	२७३
ये स्त्री-शस्त्रा-ऽक्षसूत्रादि	८९४	२११
यैः परः प्रेरितः क्रूरैः	२४४	३८३
योगस्य मातरमिव	११	३७५
योगस्याऽष्टाङ्गता नूनं	१३२	२७३
योगादिष्वाश्रवद्वार	१०२	३१०
योगिनः परमात्मान	२५३	३२१
योगी ध्यानामृतमिव	४८	३६५
योजनसहस्रदध्नां	१३६	२३०
योजनानां पञ्चविंशि	४००	१७९
योजनानामेकादश	५३४	२०१
योजनानां सप्तशता	६९५	२०५
योजनानां सप्तशती	६५८	२०५
योजनानां सहस्रं तु	७३१	२०७
योजनानि द्वादशाब्धे	६८	२१६
योजनान्तरितान्येक	१८८	२१९

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
योज्यमानैः खण्डयमानैः	९६	३७८
यो देह-धन-बन्धुभ्यो	९५	२९४
योनियन्त्राद् विनिष्क्रामन्	१३५	२८८
योनिलक्षमहावर्त	४४	१५८
योऽपि धर्मप्रतीकारो	१५०	२७४
यो यद् ययाचे तत् तस्मै	१८४	१९०
यो येनाऽर्थी स तद् द्रव्यं	२५७	२६४
यो वैराग्यशमीपत्र	२३४	३८२
यौवनं पवनोद्धूत	४६	१५८
यौवनं विभवो रूपं	२१२	१६३
यौवनश्रीरपि गिरि	५२७	२४८
यौवनश्रीरवर्धिष्ट	१९२	३१९
यौवने कामिनीभिर्ये	३६६	२६७
यौवने विषयेभ्योऽसौ	५२	१५८
यौवनैश्वर्य-रूपादि	८०	२७७
यौवराज्ये च सगर	९६	१८७

"र"

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
रक्षसेव हृतां तेन	८८	३६७
रक्षार्थं शालिवापानां	२७०	३२२
रक्षोभिरिव जीमूतैः	१३३	३९३
रक्षो-विद्याधरादीनां	४४५	२४५
रङ्कैः करङ्कसङ्काशैः	३३	२५६
रचिताऽ-जलयश्चैव	७५७	३३८
रजतं जातरूपं च	४०५	२४४
रजोवृष्टिरसग्वृष्टिः	५६७	३३२
रऽ-जवश्वाऽऽसहस्रार	७५९	२०८
रटद्‌कङ्कराल्लेपु	३११	१९४
रणकौतुकवीक्षिण्यः	२१४	३९६
रणतूर्याण्यवाद्यन्त	५९५	३३२
रणपारं जिगमिषु	१४७	३६०
रणश्रीकेलिसंगीत	६७३	३३५
रणसोत्कण्ठयोरुच्चैः	५९६	३३३
रतिर्न रतिमन्वाप	२६	३०२
रतिसागरमग्नस्य	८६८	३४२
रतिसागरमध्याव	१५७	१६२
रतेरिव निधानानि	१७३	२९०
रत्नकाञ्चनरूप्याणि	२३६	१६४
रत्नताडङ्क-केयूर	५४८	१८३
रत्नपीठं विकृत्यान्तः	३२३	२६६
रत्नपुऽ-जश्च सर्वस्व	३९	३१४

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
रत्नपुञ्जो मणिगणः	१२२	२५९
रत्नप्रभातलादूर्ध्वं	५२९	२०१
रत्नप्रभाभुवोऽधोऽधः	४८८	२००
रत्नप्रभाया उपरि	५१५	२००
रत्नप्रभायाः प्रथमे	५२४	२०१
रत्नप्रभाया मेदिन्याः	४९५	२००
रत्नप्रभाया वलय	४९७	२००
रत्नभित्तिषु गेहेषु	१३	२९१
रत्नमय्यो युताः स्वस्व	७१५	२०६
रत्न–वैडूर्य–वज्राणां	१६९	१७२
रत्नशर्करावालुका	४८६	१९९
रत्नसिंहासनं रत्न	३४९	१९५
रत्नसिंहासनस्थस्य	८१	३१६
रत्नसिंहासनस्थानि	२०४	३८१
रत्नसिंहासनासीना	८०६	३४०
रत्नसिंहासने पूर्वा	३११	१७६
रत्नसिंहासनोत्सङ्गे	३५२	१७७
रत्नस्तम्भ इवोन्मृष्ट	३०	२१४
रत्नस्तम्भैः श्रीकरेणो	२८४	१७५
रत्नस्वर्णमयैर्दिव्यैः	५९	३४५
रत्नाकरस्य सर्वस्वे	६२	१६८
रत्नाकरो रत्नशैलो	२२०	१७३
रत्नादिव्यवहारेषु	२५०	२३९
रत्नानि ववृषुः केऽपि	४५३	१८०
रत्नाभरणसम्भारा	५५६	१८३
रत्नालङ्कार–वासांसि	२७१	२२२
रत्नावकरवाहीनि	१९	३१४
रत्नाश्मभूमिसङ्क्रान्ते	२२२	२६२
रत्ने च मणिकाकिण्यौ	३९	२१५
रत्नैः स्वर्णैर्धनैर्धान्यैः	५८	१६८
रथ–द्विप–ध्वजाग्रस्थ	४४	२१५
रथमात्रपरीवारौ	३७५	३२५
रथं रथ्यान् सारथिं च	१७९	३४९
रथं साङ्ग्रामिकं रामो	६२२	३३४
रथः सारथिनेवाऽद्य	५००	१८२
रथस्थो व्योमयानेन	६४०	३३४
रथिना बलभद्रेण	१६९	३६९
रथिभिः सादिभिः सारैः	२८०	३२२
रमणीयो मङ्गलवा	६०२	२०३
रममाणस्तया सार्धं	७	२७५
रम्भास्तम्भाविवोरू च	१३	३८९

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
रम्भोर्वशीप्रभृतिभिः	३२९	४००
रम्याणि वज्रवेदीभिः	१५८	१७१
रम्याश्च स्तूप–प्रतिमा	७२०	२०६
रलयोलैरविरलैः	३४	२५६
रसवीर्यविपाकज्ञः	९७	३७८
रसातलद्वारमिव	३७४	३२५
रसा–ऽसृग्–मांस–मेदोऽस्थि	१२	२९९
रहस्यं न हि जानन्ति	३०६	२४१
राकानिशाकर इव	२११	२३८
राक्षसद्वीप इत्यस्ति	३२	२२६
राक्षसद्वीपराज्येन	४०	२२७
राक्षसानां पुनर्भीमो	५२१	२०१
राक्षसास्तु खट्वाङ्गङ्का	५१८	२००
राग–द्वेषादयश्चेतो	७८	२५८
रागादिषु नृशंसेन	७७	२८६
रागाद् द्वेषात् तथा मोहात्	३३२	३५४
राजजक्रे जागरूको	१५	२५६
राजते राजतैस्तत्र	१२२	२७९
राजन्ते तत्र चैत्येषु	२०	१५८
राजन्नीदृशविश्वौस्य	४०७	२४४
राजन्! प्राग्जन्मसंस्कारा	१४०	१६१
राजन् श्वेतातपत्रेण	२३८	१६४
राजन्! सभायां भवतः	३०१	२४१
राजभिर्बद्धमुकुटैः	१५८	३६९
राजभिर्बद्धमुकुटैः	३३३	४००
राजवेश्मनि लोकानां	१७३	२३७
राजवेश्माङ्गणे प्राप	५४२	१८३
राजंश्छत्रेण शिरसि	६२	२१५
राजसिंहनृपः सोऽपि	७२	३७७
राजा केसरियूनाऽथ	२६९	३२२
राजाज्ञया दत्तप्रष्ठ	५८	३९१
राजाऽथ भवनिर्विण्णः	२४२	२६३
राजादन–नागरङ्ग	२४९	१९२
राजा दाहज्वरार्तोऽपि	१३०	३७९
राजानं ते नमस्कृत्य	१६०	२३६
राजानं राजसभ्यांश्च	३७५	२४३
राजानोऽन्येऽपि शुश्रुवु	१५४	३८०
राजा पद्मरथो नाम	४	३६४
राजाऽपि कृतदीक्षाभि	९७	२५८
राजाऽपि दध्यौ विप्रोऽयं	१६६	२३७
राजाऽपि व्याजहाराथ	१७५	३१९

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
राजाऽपि व्याजहारयं	९०	२५८
राजाऽपि व्याजहारैवं	४५७	२४५
राजाऽपि संशयच्छेदो	३२५	२४१
राजाऽपि स्थापयामास	२१५	३२०
राजाऽपि स्वानुवाचैवं	३१९	२४१
राजाऽप्युवाच चाटूक्ति	२७६	३२२
राजाऽप्युवाचाऽमी स्वप्ना	८३	१६९
राजाप्यूचे देवि ! देवी	५२	२७६
राजाऽप्यूचे विक्रमी ते	४७	२७६
राजाऽप्यूचे व्यवस्थेयं	१२२	३१७
राजाऽप्यूचे व्रज स्वैरं	४१२	२४४
राजा भागवतत्वेन	५७	३९१
राजा मुहूर्ते मङ्गल्ये	३३	२१५
राजा राज्ये निवेश्यैवं	२०९	१६३
राजा विजयसेनोऽपि	४१	२७६
राजीभवति नाथाऽहं	१५१	१८९
राजेव रमते विश्व	१२१	३१७
राज्ञस्तद्भववैराग्यं	९३	१६०
राज्ञस्तावर्भ्लीलग्ना	१८	१८५
राज्ञश्च त्यक्तपानान्न	३०	३९०
राज्ञः सनत्कुमारस्य	६४३	४००
राज्ञः सन्तप्तमप्यङ्गं	४७	३०८
राज्ञा जितारिणा साक्षात्	२३५	२६३
राज्ञा निमन्त्रितस्तेन	५२	३९०
राज्ञा निर्दिष्टः सुदिने	२३	१८५
राज्ञाऽपि विदधे प्रातः	८८	२७२
राज्ञा पृष्टः स आचख्यौ	३४७	३२४
राज्ञा भ्रूसंज्ञया पृष्टा	२८३	२४०
राज्ञा महोत्सवश्चक्रे	५८	२७६
राज्ञां मुकुटबद्धानां	४०६	१९७
राज्ञां मुकुटबद्धानां	२५७	३२१
राज्ञा मुमुचिरे तेन	५३४	१८३
राज्ञा सद्यः समाहूय	२२६	३२०
राज्ञा सविस्मयं देव्या	१६७	२८०
राज्ञा स्ववचनं पृष्टः	२६३	३२२
राज्ञी भाषामुत्तरं च	१६८	२८०
राज्ञीं राजैवमाश्वास्य	३८	२७६
राज्ञी स्वप्नानुसारेण	५९	२७६
राज्ञे विज्ञपयिष्यामि	३४०	३२४
राज्ञैव साग्रहं पृष्टः	२६६	३२१
राज्ञो वेश्माङ्गणं जज्ञे	५६१	१८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
राज्ञोऽष्टमे परिणम	१४७	२१८
राज्यं च पालयन् सार्धा	५६	२८६
राज्यं पुत्राः कलत्राणि	१५०	१८९
राज्यभारं गृहाणेमं	१७९	१६२
राज्यमुत्सृज्य निष्पूतं	१६५	१६२
राज्यं रुजमिवान्येद्युः	६	३८७
राज्यं रुजमिवोत्सृज्य	११	३१३
राज्यं वा चक्रभृत्त्वं वा	२०४	३६२
राज्यश्रीभुवनस्तम्भान्	८२	३९१
राज्यं सनतकुमारस्य	३११	३९९
राज्यस्य विकलाङ्गत्वं	८	३१३
राज्याद्ष्यति	८८	१८७
राज्ये तु नवलक्ष्यष्टा	३६६	३८६
राज्ये त्वदीये ये केऽपि	२३५	३५१
राज्ये त्वेकोनषष्ट्यब्द	२३२	३६३
राज्येऽपि न्यायनिष्ठस्य	२८५	१९३
राज्येऽब्दानामथैकोन	३०६	३७४
राज्ये सप्तत्यब्दलक्षी	३६७	३५५
राधकृष्णचतुर्दश्यां	६४	३६६
राधकृष्णचतुर्दश्यां	१९८	३७०
राधकृष्णत्रयोदश्यां	२९	३६५
राधशुक्लत्रयोदश्यां	१९	१६७
राधावेधं शब्दवेधं	५०	१८६
राम-त्रिपृष्ठ-ज्वलन	६४३	३३४
रामोऽपि प्रेरयन् रथ्यान्	६५९	३३५
राहुवक्त्रेख	८८४	२११
रिक्तहस्तो न कुर्वीत	२२९	२३९
रुग्-जरा-मरणैर्ग्रस्ता	१३२	२८८
रुचकद्वीपमध्यस्थाः	३१	३०८
रुचकद्वीपमध्यस्थाः	२१५	१७३
रुचकस्य च पौरस्त्या	४८	३१५
रुचिराणि मणिस्तम्भैः	१५६	१७१
रुचिरो रत्नपुञ्जश्च	५६	२७१
रुजामेव निग्रहश्चा	१०६	१८८
रुजा लुम्पति कायस्य	३७४	४०१
रुध्यते वाऽपि विदग्ध्या	६६	२५७
रूपं लवणिमा कान्तिः	३७६	४०१
रूप-लावण्य-सौभाग्य	१३६	२७९
रूपवत्या अभूत् तस्याः	२४	३०७
रूपस्याप्रतिरूपस्य	६९	२७७
रूपे चाप्रतिरूपेऽपि	११८	१८८

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
रूपेण लवणिम्ना च	२८	३४५
रुपेणाप्रतिरूपं त्वां	४३	२८५
रुपेणाप्रतिरूपेण	८०	३९१
रोधोरन्ध्रेषु पाताल	१०८	३९२
रोमाञ्चितमिवोदञ्च	१०२	१६०
रौद्रध्यान मिथ्यात्वाऽन	१०७	३०४
रौद्रेभ्योऽपि हि रौद्रेषु	३१९	१९४
"ल"		
लक्षद्वयी श्रावकाणां	३५७	३८६
लक्षं मुनीनां साध्वीनां	११६	३१०
लक्षं मुनीनां साध्वीनां	६६६	२५२
लक्षयोजनदीर्घाणि	७२५	२०७
लक्षयोजनमुत्सेधे	११९	२३५
लक्षयोजनविस्तीर्ण	२८७	१७५
लक्षाध लान्तके शुक्रे	७७७	२०८
लक्ष्मीदेव्या निपतद्भ्यां	७०	१५९
लघीयांसौ गरीयांसौ	१५०	३८०
लज्जा सहचरी तस्याः	२९	३७६
लज्जितः सहवासिभ्यो	८६९	२११
लतानामिव धात्रीणा	५१	२९७
लब्धसंज्ञः क्षणाच्छार्ङ्गी	२६८	३५२
लब्धसंज्ञः क्षणाद् रामः	७३१	३३७
लब्धसंज्ञः क्षणेनापि	८९७	३४३
लब्धसंज्ञो विधूयाद्रिं	२११	३९६
लब्धे मानुष्यके स्वर्ग	१४५	२८९
ललाटन्तपतपना	३२४	१९५
ललाटपट्टः पर्यस्ता	३४९	४००
ललाटस्थाऽ-जलील्लाटान्	११३	२१७
लवणोद इवाम्भोधि	२१०	२३८
लवणोदपरिक्षेपी	६४०	२०४
लवणोदे पयोराशौ	३१	२२६
लवणोदोऽथ कालोदः	७४७	२०७
लवलीपुष्पलवन	५८	३७७
लाङ्गललाङ्गलाऽऽपात	६०७	३३३
लाल्यमोनः स धात्रीभिः	६०	२७७
लाल्यमानः स धात्रीभी	२३५	३२१
लाल्यमानो युधात्रीभिः	५२	२८५
लावण्यपूरमसमं	२४	२९६
लावण्यमङ्गे कुचयोः	१३०	२५९
लावण्यसलिलं वक्त्र	२५	२९१

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
लावण्यामृतवल्लीभिः	३०९	१७६
लिखितो नृल्लिलितो नु	१६२	२३६
लिपिज्ञलेखको वा कि	२४४	२३९
लिलेखाऽष्टौ मङ्गलानि	२२	२१४
लीलया पातितेष्वेषु	२२५	२६२
लीलयाऽपि महास्थाम्न	९६	३६७
लीलया षड्जबहला	१८	३४४
लीलयैव महाप्राज्ञः	२३७	३२१
लीलयैव महौजस्कः	२८	१५८
लीलाकमलवद् वोढुं	१६८	१६२
लीलानिर्भिन्नमत्तेभा	४०४	३२६
लीलावनमिव श्रीणां	११४	३६८
लूतया भक्ष्यते वाऽथ	६४	२५७
लोकत्रयेऽपि युगपद्	६४	२७१
लोकपालाश्च चत्वारो	५०७	२४७
लोकपालाश्च तस्यापि	५२५	१८२
लोकपुंस्कृपरसम	७६२	२०८
लोकाकाशप्रदेशस्था	२७४	३७३
लोकाकान्तेऽर्कभास्पृष्टे	२६६	१६५
लोकाग्रस्येव सोपानं	६७२	२५२
लोकान्तिकेषु देवेषु	१०४	२७२
लोकैः क्वचित् क्रियमाण	३०६	१९४
लोकैर्मन्त्रबलाकृष्टैः	२४६	१६४
लोकोत्तरचमत्कार	३५६	४००
लोकोत्तरचमत्कार	४७८	१८१
लोकोऽप्यूचे भवद्भूमौ	२०२	३२०
लोभसागरमुद्वेल	३३१	३८५
लोभस्त्यक्तो यदि तदा	३२९	३८५
लोभाद् ग्रामादिसीमानं	३२४	३८५
लोभाभिधः संपराय	२६०	३७३
"व"		
वक्त्रस्येन्दुः प्रतिनिधिः	३३	३६४
वक्षःस्थललुलद्धाराः	७७	२२८
वक्षःस्थले शैलशिला	७२६	३३७
वक्षोगावद्य वां हारो	२०	२३२
वज्राः पुनस्ताम्रलिप्त्या	६६७	२०५
वचनातिशयैः पञ्च	२५०	२८३
वज्रनाभगुरोः पाद	१०	३४४
वज्रनिर्घोषवद् घोरं	६७५	३३५
वज्रनिर्मितनाभीकं	३	२१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
वज्रं वज्राकरोर्वीव	१२७	२५९
वज्रसंवर्मितमिवा	७८	१५९
वज्रसारेषु देहेषु	३५३	३६७
वज्राकरशिलासारं	६९४	३३६
वज्रानल इवोज्ज्वालः	१७५	२३१
वज्रासनजुषः कांश्चित्	८३	१५९
वटा-ऽश्वत्था-ऽऽमलक्यादि	३४०	३५५
वण्ठैरिव महेभ्यानां	२४४	१९२
वत्स ! तेषामप्यपत्यै	६०९	२५०
वत्सरान्ते समेत्येन्द्रैः	९५	३१६
वत्सौ ! सर्वेऽपि नः पूर्वे	७९	१८७
वदन्ती साऽतिविशदैः	३२	२८५
वदन् "नमस्तीर्थाय" इ	८०५	३४०
वधायोपस्थितेऽन्यस्मिन्	२५१	३८३
वनदेव्यो दास्य इव	११४	१७०
वनस्पतिरिव दशाधा	११०	२८७
वनात् सौमनसात् षट्त्रिं	५६४	२०२
वनानि भद्रशालादी	५१३	१८२
वन्दामहे पद्मवर्ण	१	२८४
वन्दित्वा स्वामिनमथ	६५	३६६
वन्दे ध्वस्तमहामोह	१	२९६
वन्दे श्रीपुष्पदन्तस्य	१	३०१
वपुर्देवाधिदेवस्य	२६६	२६४
वपु-यौवन-लक्ष्मीणां	९	३१३
वपुर्लावण्यसरित	१८८	३१९
वपुषा तदनेनाऽद्य	८३	२५८
वपुष्मतीव राज्यश्रीः	९	२७५
वप्रं द्वितीयं ज्योतिष्काः	३६०	१९६
वप्रे वप्रे च चत्वारि	३६२	१९६
वप्रैस्त्रिभिश्चतुर्द्वारैः	७६	३०९
वप्रो वलयितस्तत्र	२९	२७०
वयं तेन पराभूता	२१५	२२०
वयसो दुर्वयस्याऽस्य	२९५	२४१
वयस्यप्रायाः पार्श्वा	७७३	२०८
वयं हि रुचकद्वीप	२२१	१७३
वरचिन्ताशल्यभृतो	२२३	३९६
वरदामकुमारस्य	९७	२१७
वरदामकुमारस्य	१०८	२१७
वरदामाधिपोऽथैव	१०४	२१७
वरदेन मुद्गरिणा	८४३	२१०
वरं मृगादयोऽरण्ये	३३	२७६

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
वराको मुच्यतामेष	३३०	२४२
वराको मेरकः कोऽयं	११०	३५९
वरिष्ठवनिताचार	१८	३१४
वर्ण्यमानं यथा लोके	३५८	४०१
वर्तमाना अतीतत्वं	२७७	३७३
वर्द्धनीया हस्तिनोऽमी	१२४	१८८
वर्धमाने क्रमाद् गर्भे	३६	२८५
वर्षलक्षद्वयं सार्धं	३५८	३८६
वर्षलक्षद्वये सार्धे	५२	३७६
वर्षलक्षाः पञ्चदश	५२	३६५
वलित्वा पुनरध्यास्य	१५२	१७१
वल्गाया चकृषे सोऽश्वः	९३	३९२
वल्गां सामर्षमाकृष्य	३०७	२२३
वल्लकीमिव को वा मा	४३६	२४५
ववन्दिरे तेभरत	१२९	२२९
ववर्ष बाणैः पाषाणै	६४१	३३४
ववृषुः पञ्चवर्णानि	११२	१७०
ववृषुः प्रावृषीवाब्दा	७११	३३७
ववृषुस्त्रिदशाः सार्धं	२९०	१९३
वसन्तसमयेनेव	४१	३०८
वसन्ति योजनशते	५१६	२००
वसुधाया वसूत्युच्चैः	१०	१६७
वसुधारादीनि पञ्चा	२०९	२८१
वसुधारा पुष्पवृष्टिः	११७	२७३
वसुधां शासतस्तस्य	९	१६७
वसुपूज्य-जयादेव्यौ	६५	३४६
वसुपूज्य-जयादेव्यौ	५६	३४५
वसुपूज्यनृपोऽप्येव	९०	३४७
वस्त्रालङ्करणैः कल्प	१०७	१७०
वस्त्रेण देवदूष्येण	४६१	१८१
वस्त्रैश्चित्रैर्महामूल्यैः	१०१	२१७
वह्निप्रवेशादस्माभिः	४९६	२४७
वाङ्मात्रेण न तं तावत्	३०१	३२३
वाच उत्फुल्लमल्लानां	३०७	२४१
वाचस्पतिमतिर्वाचा	३८०	२४३
वाच्यश्च वाचिकामिदं	४१०	३२७
वाजिभिः स्वर्णसन्नाहैः	४०९	१९७
वातान्दोलितवल्लीव	६६	२२७
वातेन तेन महता	५२	२५७
वात्येव तृण्याः कर्षन्ती	५७५	२४९
वाद्यमानेषु मङ्गल्य	२००	१६३
वामेन भुजदण्डेन	७६९	३३८

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
वामेनोत्पाटयामास	१७१	३६१
वामैर्नकुलफलका	२०१	३७०
वामैः सनकुलचक्र	१७९	३६१
वामैस्तु नकुलपद्मा	१९८	३८१
वामौ च कार्मुकधरा	१८३	२९०
वामौ च धारयन् बाहु	१६०	२७४
वामौ च नकुलधनुः	२८७	३५३
वामौ च बिभ्रती पाणी	७८७	३३९
वामौ तु नकुल-कुन्त	१३९	३०५
वामौ फलक-परशु	११०	२९९
वामौ बाहु गदाधार	२४७	२८३
वायुकायत्वमप्याप्ता	१०८	२८७
वायुवृतव्यंशजला	६२५	२०४
वायुरिवाप्रतिबद्धो	९०७	३४३
वायुरिवाऽप्रतिबद्धो	३३०	१९५
वायूत्क्षिप्तमध्यमिश्रा	६२८	२०४
वायोः पुर इवौजस्वी	८९	३५८
वायोर्वेश्मप्रवेशादि	३४४	२४२
वारणाऽश्वादियानानां	७	३६४
वारुणोदश्चित्रपान	७४५	२०७
वार्येव कुञ्जरवरो	८५६	२१०
वासवादिषु देवेषु	२	२२६
वाससा देवदूष्येण	३६	३६५
वाससा देवदूष्येण	३६३	२२५
वाससा देवदूष्येण	१९९	१९१
वासागारेषु कूजन्ति	१६	२९१
वासागारे सभायां वा	४७	३०२
वासान् सुरादयस्तेषु	३७७	२६८
वासांसि देवदूष्याणि	३६६	२२५
वासुपूज्यकुमारोऽपि	९९	३४७
वासुपूज्यकुमारोऽपि	८३	३४६
वासोभिः कल्पवृक्षेभ्यः	६३	१६८
वाह्याल्यां भ्रमिमानीय	४८	२२७
विकटभ्रुकुटीभङ्ग	५१०	३३०
विकटां कण्टकितरु	११८	३९३
विकटोत्कटदन्तानि	६०६	३३३
विकस्वरनवश्वेत	३०	१६७
विकस्वराणि तिष्ठन्ति	५७७	२०२
विकासिकुसुमामोदा	२६	१६७
विकिरन्त्या रुचीः कांश्चिद्	१४०	१७१
विकृतस्फाटिकमहा	३५	३६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
विकृतानि विमानानि	४११	१७९
विकृत्याऽभ्राणि तद्वेश्म	१४२	२६०
विक्रमेण नयत् साध्यं	३५	२७६
विक्रीणीते स्म चणक	२९	२५६
विख्यातो भारते वर्षे	१५५	२१८
विचक्रे स्फाटिकानुक्ष्ण	७३	२७१
विचित्रखड्ग–फलक	४१६	२४४
विचित्रचारीकरणा	२८३	३२२
विचित्रचौर्य–हर्म्यादि	४	२७५
विचित्ररचनाकल्पं	३४१	४०१
विचित्ररत्नालङ्कारा	२३४	१७४
विचित्रवस्त्रनेपथ्य	१५३	३९४
विचित्रवस्त्रनेपथ्या	९	३६४
विचित्रसन्दर्भविधौ	२५०	१९२
विचित्रस्वर्णमाणिक्य	२	२१४
विचित्रहर्म्यप्रासाद	१४	३५६
विचित्रैर्दामभिर्दिव्यैः	३६	३५७
विचित्रैश्चक्रिरे तत्र	५७१	१८४
विचिन्त्यैवं म्लानमुखी	२१	२७५
विचेरुः क्रीडया पृथ्व्या	२२	३४४
विजयं वैजयन्तं च	७५५	२०७
विजयस्व जगच्चक्षुः	२१०	३८१
विजयावरजोऽप्यूचे	२६१	३५२
विजयावैजयन्त्यौ च	१०८	१७०
विजयास्वामिनी प्रात	६७	१६९
विजयी तत्र विजय	५	२७५
विजयेनान्वीयमानो	२५५	३५२
विजहार च षण्मासां	६३	२८६
विजहार ततोऽन्यत्र	११४	२९४
विजृम्भितं तावदेव	४४	३७६
विजेतुकामो नृपती	२६	३७५
विज्ञप्तो मङ्गलादेव्या	१६४	२८०
विज्ञाप्यैवं तस्थिवांसं	६३७	२५१
विज्ञायाऽऽसनकम्पेन	६६	२७१
वितर्कयामि भगवन् !	२८६	१९३
विदधात्युभयाधीने	१७३	२८०
विदधानः परपुर	३९	१५८
विदधुः पुष्पवृष्टिं च	४७	३१५
विदधुर्गन्धवृष्टिं च	५१५	१८२
विदधुर्वसुधारादि	६२	३०३
विदधुर्वसुधारादि	६८	२९३

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
विदधे विबुधैस्तत्र	६७	३५८
विदधेऽष्टाह्निकां तस्य	२६	२१४
विदधे सिन्धुदेव्याश्च	१३५	२१८
विदन् भोगफलं कर्मा	५५	२९८
विदरं वज्ररत्नैस्त	५४	३१५
विदर्भाद्या गणभृतः	१०७	२९४
विदर्भोऽपि गणधरे	१०९	२९४
विदाश्चकार तत् सर्वं	३२५	३२४
विदाञ्चकाराऽवधिना	१३०	२१८
विद्रावयत तान् गत्वा	५२३	३३०
विदिग्रुचकवास्तव्याः	२१२	१७३
विदेशे द्वादशाब्दानि	१२	२२६
विदेहास्तु मिथिलया	६६९	२०५
विद्याधरकुमाराणां	४५०	३२८
विद्याधरकुमारैश्च	२४६	१९२
विद्याधरपतिस्तत्र	३२०	२२३
विद्याधरपतेश्चाप	२७८	३९८
विद्याधरबलच्छन्न	२५९	३९७
विद्याधरमहाराज्या	२८४	३९८
विद्याधरीविलासौको	९०	३२८
विद्याधराणामन्योऽन्य	६४६	३३४
विद्याधराणां मायेयं	६१७	३३३
विद्याधरान् धराधीशः	२७२	२२२
विद्याधराश्च ज्वलन	६२३	३३४
विद्याधरेन्द्रमापृच्छ	४७८	३२९
विद्याधरैर्गीतोत्साह	५७१	३३२
विद्याधर्यो रममाणाः	१५	२९१
विद्याबलाद् दोर्बलाच्च	५३७	३३१
विद्या भिन्ना हयग्रीवा	५७७	३३२
विद्युत्प्रभकुमारस्यो	४४७	३२८
विजेते सवितृद्वीपा	६३८	२०४
विधाय च निशापादि	१३९	३७९
विधाय देशनामेव	२६४	१६५
विधाय लस्तकन्यस्तं	९५	२१६
विधायाऽष्टाह्निकां तस्या	१८१	२१९
विधिवद्दमरनाथाः	१५३	३०६
विधुरस्तुरगः सोऽपि	३०८	२२३
विनयश्रुतशालीनां	२५५	३८३
विना कुमारानभ्येत्य	४२	२३३
विनाऽचलं न त्रिपृष्ठो	२४५	३२१
विना भिषमकाण्डेऽपि	२२५	३५१

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
विना सैन्यं यदायातः	३९२	३२६
विनीतामध्यतश्चक्री	६४९	२५१
विनीतायाः परिसरे	३०२	२२३
विनीतायां महापुर्या	१४८	१७१
विनीतायां महापुर्यां	४१	१६८
विनीतेनेव भृत्येन	९७	३१६
विनेतरि दुराचारा	१०८	२५९
विनेन्दुमिव कौमुद्या	४५०	२४५
विनोदैर्विविधैस्तत्र	९०	३७८
विन्ध्यशक्तिर्भवे भ्रान्त्वा	१८९	३५०
विन्यस्य दक्षिणं जानु	४५	१६८
विपद्य च हयग्रीवः	७५२	३३८
विपन्नमपि मे पुत्रं	११५	२३५
विपाकः फलमाम्नातः	४५७	१९९
विपुलागणिनीगाढ	९२८	२१२
विपेदे हरिदासोऽपि	१७	२२६
विप्र-क्षत्रिय-विट्-शूद्र	२३२	२३९
विप्रयोगः प्रियजनैः	११४	२७८
विप्रवेषमुपादाय	२७१	२४०
विप्रोऽपि प्रत्युवाचैवं	३३१	२४२
विभिन्नकर्मायुक्ताभिः	२०१	३५०
विभोर्विहरतोऽभूवन्	३९१	२६८
विमलस्वच्छपयसा	१३	३६४
विमलस्वामिनिर्वाण	३०३	३७४
विमानकिङ्किणीक्वाणैः	३४१	२२४
विमानं पुष्पकं नाम	३६४	१७८
विमानमानिभिर्हर्म्यैः	५२	२१५
विमानमिव देवेन	१४	२१४
विमानलक्षास्तन्नादो	३५६	१७७
विमानानां शतं त्वेक	७७९	२०८
विमानानि समारुह्य	१६७	१७२
विमानिभिर्दसमार्गा	६८८	३३६
विमानै रचयन्नाशाः	१९१	१९०
विमानैर्भासुरैः कुर्वन्	३०३	३९९
विमुक्तकल्पनाजालं	२७१	१६५
विमुक्तकुन्तला नाना	५८५	३३२
विमुच्याऽस्थीनि दग्धेषु	६९६	२५३
विमुञ्चत प्रतिभय	७६०	३३८
विमुञ्चत हयग्रीव	७५४	३३८
विमृश्यैवं तदा दूता	३५४	३२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
विमृश्यैवं ब्रह्मलोकात्	५७	३०८
विमृश्यैवं समुत्थाया	१५०	१७१
विरचय्य महाव्यूहं	३६९	३२५
विरचय्य स्तुतिमिति	७८	३०३
विरताविरतस्तु स्यात्	२५५	३७२
विरताविरतानां चा	१०४	३०४
विरते देशनातोऽस्मिन्	१७९	२९०
विरामः सर्वदोषाणां	२३	३०१
विरुद्धादर्शनाद् विश्व	१२९	३१७
विलम्बेनाऽद्य पर्याप्त	४४२	२४५
विलापोऽन्तःपुरस्त्रीणां	१०	२३२
विलासमन्दया गत्या	४१	२३०
विलिप्य पूजयित्वा च	१८६	२८१
विलिप्य पूजयित्वा च	३७	२९२
विलुलन्तीमनाथां क्ष्मां	१९१	१६३
विलेपनार्थमासक्तः	९८	२९९
विवाहार्थमकार्येतां	४८०	३२९
विविधाः प्रतिभाः कुर्वं	७१	२९३
विविधाभिग्रहधरः	२१०	२८१
विविधाभिग्रहधरः	७३	३५८
विविधाभिग्रहधरः	७२	३०९
विविधाभिग्रहपरो	२४९	३१८
विविधाभिग्रहैस्तीव्रैः	१०	३०७
विविधाभिग्रहो दान्तो	१०	२९६
विवेकदर्पणोन्मार्ष्टि	१९८	३६२
विवेकशाणैर्वैराग्य	२७०	१९३
विवेकिन् ! भवता मुग्धन्	१४९	२३६
विवेक्यप्यविवेकीव	८९१	३४२
विंशतिस्थानकानां च	११९	२७८
विंशतेः स्थानकानां च	१९	२६९
विंशतेः स्थानकानां च	१००	२५८
विंशत्यङ्कैः समधिकाः	५७	२९२
विशदाच्छादनास्तीर्णे	५४	१६८
विशदे रूप-लावण्ये	१३७	२७९
विशाखनन्दिजननी	१२७	३१७
विशाखनन्दिने यान्तं	१५२	३१८
विशाखनन्दिनो रोषः	१५३	३१८
विशाखनन्दी क्रीडेच्छुः	११६	३१७
विशाखनन्दी मध्येऽस्ती	१३१	३१७
विशाखनन्दी हसित्वा	१५४	३१८
विशाखभूतेर्भार्यायां	११२	३१७

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
विशाखनन्दिनं दृष्ट्वा	१५५	३१८
विशाले निर्मले स्वच्छे	२३३	१६४
विशिष्टवीर्यबोधाढ्य	८०६	२०९
विश्लेषिणो बन्धबोऽपि	९	३४४
विश्वनन्दिनरेन्द्रस्या	१११	३१७
विश्वनाथ ! त्वदीयस्य	४५	३०२
विश्वनाथेन सह च	१०३	३१६
विश्वभूतिरथावोच	१४३	३१८
विश्वभूतिरिति नाम	११३	३१७
विश्वभूतिश्च मासान्त	१५१	३१८
विश्वमप्युत्तारयसि	६३४	२५१
विश्वस्य कण्टकोद्धारात्	३९२	२४३
विश्वस्याप्यनुकूलश्चेत्	७३	३०३
विश्वस्याऽप्याहृत इव	७८	१६९
विश्वासेनाल्पकेनाऽपि	४०६	२४४
विषण्णास्तत्र च स्थित्वा	४०	२३३
विषयाणां विमुक्तोऽसि	७५	२७७
विषयेषु निरीहोऽपि	९६	२७२
विषयेषु निरीहोऽपि	५१	३०८
विषयेषु विरागस्ते	१३३	२७३
विषयेष्वतिरज्यन्ते	१६१	२८९
विषयैः कषायरागा	२२०	३७१
विषवेगैरिवाऽम्भोभिः	३६०	२४३
विषाणिनं महिषवत्	३१५	२४१
विषेहे हन्यमानोऽपि	२८८	१६६
विष्णुश्रिया रममाणे	२१	३८९
विष्णुस्तेन प्रहारेण	१८५	३७०
विष्णोस्तमूर्जितं शब्द	३७८	३२५
विष्वक् परिवृतः पौरैः	८२७	२१०
विसूत्रितान्धकारं च	११९	२५९
विसूत्रितामित्रबलः	३५	१५८
विसृज्य गङ्गां सगरो	२६३	२२२
विसृज्य तं च सगरः	२६८	२२२
विसृज्य सप्रसादं तां	४३५	३२७
विसृज्याऽन्येद्युरास्थानीं	१२१	१८८
विस्तारिणी करस्पर्शाद्	३८	२१५
विस्तारेऽधः सप्तरज्जु	७९९	२०९
विस्रब्धीभव तद् राजन् !	३४१	३२४
विहरन्नन्यदा नाथः	१२१	२७३
विहरन् भगवान् भूयः	७२	२९८
विहरंश्चाऽऽययौ भूयः	७२	२९३

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
विहरन् स्वामिना सार्धं	६५९	२५१
विहारलीलामुद्याने	६	३६४
विहितानशनो मृत्वा	१०२	२५९
वीक्षापन्नः पन्नगास्त्रं	७०५	३३६
वीज्यमानोऽमरैश्चारु	२०७	१९१
वीतराग-यति-श्राद्ध	२२८	३८२
वीतरागे श्रुते सङ्घे	९०	३०४
वीतरागोऽसि चेद् रागः	७०	३०३
वीर्यकण्डूलदोर्दण्डाः	२४४	३५१
वृतिभिर्वरशालीव	३३१	१९५
वृथैव राज्यसम्पत्तिः	३०	२७६
वृद्धिं शाखे इव तरो	४	१८५
वृद्धैः प्रबोधितः सोऽय	८९८	३४३
वृषः कुतीर्थिकव्याघ्र	७७	३१६
वेत्रासनसमोऽधस्तात्	४७९	१९९
वेत्रिणा दर्शिते स्थाने	२३०	२३९
वेदशास्त्रपराधीन	३२१	३५४
वेदादिशास्त्रविशेषु	२४८	२३९
वेपमानवपुर्भीम	५१८	३३०
वेलम्बः प्रभञ्जनश्च	१७५	२६१
वेलाविलोलजलधि	२९२	१९४
वेश्मद्वारे तवेदानीं	३५५	२४२
वेश्मनां युष्मदीयानां	१४९	२३०
वेश्माग्रे तोरणस्याधः	४८४	३२९
वेश्यादीनामलङ्कार	१२२	३०५
वैक्रियलब्धिसहस्रा	३९४	२६८
वैक्रियलब्धिसहस्राः	१८८	२९०
वैक्रियलब्धिसहस्रा	६६९	२५२
वैक्रियलब्धिसहस्रा	२५४	२८३
वैक्रियेण समुद्घाते	१८४	१७२
वैताढ्यगिरिदुर्गस्थ	११२	२३५
वैताढ्य-जगतीजाल	४९१	२४६
वैताढ्यदक्षिणश्रेणि	१४१	३६८
वैताढ्यपर्वतश्रेणि	४०	३८८
वैताढ्यपर्वतश्रेणि	२७०	२२२
वैताढ्याद्रिकुमारश्च	५४	२२७
वैताढ्याद्रिकुमारस्य	१४४	२१८
वैताढ्याद्रिकुमारोऽपि	१४०	२१८
वैतालिकैरनुतालैः	५७८	१८४
वैतालिकैः स्तूयमानो	५६१	३११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
वैदग्ध्यरमणीयाभी	२४०	२६३
वैमानिकानां स्वर्गस्थ	९४	२२८
वैयावृत्यं समाधिं च	४८	२५७
वैरिणीमिव भिन्नक्ष्मां	५७१	२४९
वैरिवामः स वामेन	२७९	३५३
वैशाखसितचतुर्थ्यां	५०	२७६
वैशाखसितनवम्यां	२०६	२८१
वैशाखस्य सिताष्टम्यां	१७२	२७४
व्यक्तं च शंसत्यधुना	१६७	२३७
व्यध्यन्ते लवणाऽचाम्ल	१०२	२८७
व्यधुर्भूषणवृष्टिं च	५१२	१८२
व्यन्तरादिकुयोनिस्था	२९२	३८४
व्यन्तराष्टनिकायानां	४१३	१७९
व्यन्तरेषु ज्योतिष्केषु	२१०	२६२
व्यरंसीदादिपौरुष्यां	२८९	३७४
व्यलिप्यन्त क्वचिल्लोकाः	५४३	१८३
व्याघ्रेण भक्ष्यते वाऽपि	५९	२५७
व्याजहार कृतव्याज	५००	२४७
व्याजहार प्रतिहारिं	१८०	३७०
व्याजहार प्रतीहारः	६७	२३४
व्याजहार ब्राह्मणोऽपि	९०६	२१२
व्यापिप्रज्ञस्त्वत्प्रभावात्	४०	२९७
व्यावर्तध्वमिदं वो हि	६३७	३३४
व्योमापि व्यानशे भक्तैः	२३१	१९२
व्रतानि निरतीचारा	९	३०७
व्रते छद्मस्थभावेऽगाद्	६८४	२५२
व्रतोत्सुकोऽपि तद्वाचं	९३	१८७

"श"

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
शक-केकय-वोक्काण	७५	३४६
शक्तस्य पुंसो विनयः	५५०	२४८
शक्तीः प्रचिक्षिपुः केऽपि	६५०	३३५
शक्तेनापि सता तेनो	५५४	२४८
शक्रःचक्रेऽङ्गसंस्कारं	१७६	२७४
शक्रधन्वेन मेघेन	१८३	३८१
शक्रन्यस्तं देवदूष्यं	६५	३०९
शक्रः प्रतीष्य चिकुरा	१११	२७२
शक्रः प्रभोश्चतसृषु	१९४	३६१
शक्रवत् सोऽपि सन्त्यज्य	३५४	१७७
शक्रवद् धर्मनोदीचां	३६९	१७८
शक्रसमितकौसुम्भ	४९	२९२
शक्रसङ्क्रमिताङ्गुष्ठ	५७	३४५
शक्रसङ्क्रमितसुधां	९०	२७२
शक्रसिंहासनस्योच्चैः	३०५	१७६
शक्रस्तवेन वन्दित्वा	११९	२२९
शक्रस्तवेन वन्दित्वा	२६२	१७४
शक्रस्तवेन वन्दित्वा	४९३	१८१
शक्रस्तान् स्वामिनः केशा	२८६	२६५
शक्रः स्वामिगृहान्मेरौ	४६	३५७
शक्राङ्कवर्तिनं नाथं	१८४	२८१
शक्रादिभिर्धृतच्छत्र	५७	३६६
शक्रादिष्टैर्वैश्रवण	५१०	१८२
शक्रादेशात् कुबेरेण	९४	३१६
शक्रादेशेन कर्पूर	६९५	२५३
शक्राद्यैस्तत्र समव	१८३	३६१
शक्राद्यैस्तत्र समव	२९१	३५३
शक्राद्यैस्तत्र समव	२०५	३७१
शक्रेण वर्णितं यादृक्	३६८	४०१
शक्रेशानाविव दिवो	१३२	३६८
शक्रेशानौ स्वामिदंष्ट्रे	६९७	२५३
शक्रोत्सङ्गस्थितं नाथं	४०	२८५
शक्रोत्सङ्गान्निजोत्सङ्ग	४८४	१८१
शक्रोपि पालकारूढ	३५	३४५
शक्रोप्यशंसदेतेन	३४१	४००
शक्रोऽप्युपेत्य तत्राऽऽशु	३२	३०८
शक्रो विमानादुत्तीर्य	६७	२७१
शङ्का काङ्क्षा विचिकित्सा	९०५	२१२
शङ्खः कुमुद-नलिने	६०३	२०३
शङ्खरत्नं पाञ्चजन्यं	६२८	३३४
शङ्खादयो निस्वनन्ते	११५	२८८
शङ्खैरापूर्यमाणेषु	१६९	१९०
शतपाकादिभिस्तैलै	५७	३१५
शतयोजन्यायतानि	७०९	२०६
शतानि चाष्टपञ्चाशद्	११९	३१०
शतानि पञ्चपञ्चाशत्	२२०	३६२
शतानि सप्ततिरथ	११८	३१०
शताशीतिः सावधानां	११३	३००
शब्दमश्रुतपूर्वं तं	६४	२३३
शब्द-रूप-रस-स्पर्श	४२५	१९८
शब्दशास्त्रादिशास्त्राणि	२४	१८५
शब्दादेव पदार्थानां	४४२	१९८
शमरूपं पयः प्राज्य	२३२	३८२
शम-संवेग-निर्वेदा	९०३	२१२
शमोऽद्भुतोद्भुतं रूपं	६३०	२५१
शयनासननिक्षेपा	२७४	१६५
शयानया रात्रिशेषे	११५	२५९
शय्याजुषं सूतिगृहे	१६०	२६०
शय्यापालं तमेकान्ते	८८२	३४२
शय्यापालोऽपि तान् गीत	८७५	३४२
शय्यापालोऽपि पञ्चत्वं	८८३	३४२
शरदभ्रमिवाऽऽवर्त्य	१७१	३१९
शरद्यपामिव तदा	१२८	१७०
शरभोत्पिष्टदन्तीन्द्र	३१३	१९४
शरीरमन्तरुत्पन्नैः	३७२	४०१
शरीर-यौवन-धन	३७१	२६७
शरीरं श्रथते नाऽऽशा	३७५	४०१
शरीरेण सुगुप्तेन	८३	३०३
शर्करावलयमान	४९९	२००
शल्यैः प्रववृषुः केचिद्	६५१	३३५
शशंस प्रभुरप्येवं	८५३	२१०
शशास लीलया स्वामी	१००	२७२
शशी चिरं भवं भ्रान्त्वा	२५	२२६
शस्त्राऽग्नि-विष-मन्त्रा-ऽम्बु	२१८	२२०
शस्त्राणां प्राक् प्रयुक्तानां	७२३	३३७
शस्त्राशस्त्रिकथाश्चित्रा	८६	२२८
शस्त्राशस्त्रिकथां श्रुत्वा	९७	३६७
शस्त्राशस्त्रिप्रवृत्तानां	६०२	३३३
शाखा कल्पद्रुमस्येव	२९	१६७
शातकुम्भमयैः स्तम्भैः	४९	१६८
शान्ते चौघस्वराघोषे	३७७	१७८
शान्ते तस्मिन् महाघोषा	३५८	१७७
शान्ते नादे च घण्टानां	४०८	१७९
शान्ते सुघोषानिर्घोषे	२७३	१७५
शारीणामेव हननं	१०५	१८८
शारीरान् मानसानेवं	२९८	१६६
शार्ङ्गपाणेरः पीठे	१५७	३६१
शार्ङ्गपाणेश्चतुर्थस्य	११०	३६७
शार्ङ्गभृद् धैर्यमादाय	१३८	३७९
शार्ङ्गमारोपयामास	६७४	३३५
शार्ङ्गिणो वाचिकेनोच्चैः	१५६	३६९
शाश्वतानामत्यधुना	१४६	२३०
शाश्वतार्हत्प्रतिमानां	१०४	३१६
शाश्वतार्हत्प्रतिमानां	२१४	२६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
शाश्वतार्हत्प्रतिमानां	२८५	३९८
शिक्षोपदेशालापान् ये	२३२	३७१
शिबिकातः समुत्तीर्य	६३	२९८
शिबिकातः समुत्तीर्य	६४	३५८
शिबिकातः समुत्तीर्य	९९	३१६
शिबिकातः समुत्तीर्य	२४८	१६४
शिबिकातस्तदोत्तीर्य	१२३	३४८
शिरसः पश्चिमे भागे	३३५	२६६
शिरसोऽत्रोटयन् केऽपि	७	२३२
शिरस्यञ्जलिमुत्तंस	४६०	१८०
शिरांस्यधुन्वन् हुङ्कारान्	६५७	३३५
शिरीषसुकुमारस्य	२६	३१४
शिलां कोटिनरोत्पाट्यां	१९३	३७०
शिलां तां न्यस्य तत्रैव	१७२	३६१
शिल्पार्याः स्वल्पसावद्य	६७७	२०५
शिवं यियासुरायासीः	४३	३०२
शिवराजोऽप्युवाचैवं	१०३	३७८
शिवः सुतकरस्पर्शाद्	१०१	३७८
शिवेन मृदुशीतेन	१८५	१७२
शिशिरे ब्राह्मणोऽन्येद्युः	९१२	२१२
शिशुत्वतरितः पारं	५४	२९७
शिश्रिये सोऽरिभिरपि	१३६	३४८
शीतमुद्यानवापीभिः	२०	३७५
शीतार्त्तप्लवगैः पुञ्जी	६२	३५८
शीतार्त्तेषु किरातेषु	१४३	३९४
शीर्णेषु जानुदघ्नेषु	१४४	३९४
शीलव्रते सातिचारे	११०	३०४
शुक्र-शोणितसम्भूतो	९४	२९९
शुक्लध्याने चतुर्थे च	६८१	२५२
शुण्डादण्डैस्तृणपूल	६०८	३३३
शुद्धद्वादश्यां राधस्यो	२६	३५६
शुद्धपृथ्वी-ग्राव-वज्र	५५७	२०१
शुद्धभट्टस्तु भट्टिन्या	९३६	२१३
शुद्धभट्टोऽपि तत्कालं	९०७	२१२
शुद्धभट्टोऽप्यभाषिष्ट	८८८	२११
शुद्धभट्टोऽभिधानेन	८६३	२११
शुद्धस्फटिकसङ्काशः	२६२	२४०
शुद्धया महत्या शक्त्या च	१३२	२७८
शुभध्यानपरः स्वायुः	१७	२८४
शुभस्रग्वाङ्गना-माल्य	४५८	१९९
शुभानां कर्मणामत्र	४२	२९७

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
शुभार्जनाय निर्मिथ्यं	८२	३०३
शुभाशुभायां शय्यायां	२८६	१६६
शुभेषु ग्रहनक्षत्र	२०८	३५०
शुभेऽहनि नरेन्द्रोऽय	५६८	१८४
शुभेऽहनि शुभे चन्द्रे	१७८	३१९
शुशुभे स महाबाहुः	९५	३६७
शुश्राव देशनां तस्माद्	९२	१६०
शुश्राव देशनां तस्माद्	९०४	३४३
शूलपाणिरथेशान	३६२	१७७
शुश्रूषमाणः पितरं	२१४	३२०
शृङ्खलिताम्भोदमिव	१०५	१६०
शृङ्गाटकादिरचना	५३	२१९
शृङ्गाटेषु चतुष्केषु	१८२	१९०
शेवलालीव रोमाव	१२	३८९
शेषाः स्पर्श रूप-शब्द	७९५	२०९
शैलस्तु विकटापाती	६१७	२०३
शैलेशीध्यानमास्थाय	१७१	२७४
शैलेषु दधिमुखेषु	७२९	२०७
शैशवं व्यतिचक्राम	४९	३६५
शैशवं व्यतिचक्राम	५२	२९२
शैशवं व्यत्यलङ्घिष्ट	४९	३०८
शोका-ऽमर्ष-विषादेर्ष्या	१४८	३८९
शोचन्ति स्वजनानन्तं	१४२	२७३
शोभाविशेषं जनयं	१२२	३४८
शोभितः कीर्ति-वीर्याभ्यां	१३१	२३६
शोभिताः स्वप्रभापूर्णा	१३३	१७१
शोषयन्तोऽशेषतोया	२२	२५६
शौचं संयमसंशुद्धि	८४	२७७
श्मशानस्थानवर्तीनि	२५५	२६४
श्यामीकृतनभास्यम्भः	२१	१५८
श्रद्धाति श्रियः पश्यन्	३१	२७६
श्रमणानां सहस्राणि	६७३	२५२
श्राद्धानामाऽच्युतं मिथ्या	७९१	२०८
श्रावकाणामुभे लक्षे	१८९	२९०
श्रावकाणामुभे लक्षे	२२२	३६२
श्रावकाणामुभे लक्षे	२५५	२८३
श्रावकाणामुभे लक्षे	३५७	३५५
श्रावकाणां पुनर्लक्ष	२९६	३७४
श्रावकैर्विपुलश्रीकैः	५८९	२४९
श्रावकोऽसीति परतो	९१३	२१२
श्रावणस्याथ शुक्लायां	१४०	२७९

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
श्रावणासितसप्तम्यां	२७	३६५
श्राविकाणां चतुर्लक्ष्य	१२०	३१०
श्राविकाणां पञ्चलक्षी	११९	२९४
श्राविकाणां पञ्चलक्षी	१६८	२७४
श्रियं स्वभावचपलां	२४	३७५
श्रियो मूर्त्यन्तराणीव	७४	१८७
श्रीकाङ्क्षिणाऽपि भवता	२२०	१६४
श्रीखण्डमध्यनादाया	१०९	३७८
श्रीचन्द्रप्रभनिर्वाणात्	१५२	३०६
श्रीधर्मतीर्थकृत्तीर्थे	३१०	३९९
श्रीधर्मस्वामिनस्तेषां	३६१	३८६
श्रीपद्मप्रभनिर्वाणात्	१२५	२९५
श्रीपृथिव्याविव साक्षात्	९२	३५८
श्रीमच्छीतलनाथस्य	८६४	३४२
श्रीमतोऽनन्तनाथस्य	२	३६४
श्रीमद्गणधरेन्द्राणां	२७२	३८३
श्रीमद्भिर्नृपसामन्तैः	२४०	१६४
श्रीमानजितनाथोऽपि	३९	१८६
श्रीमानजितनाथोऽपि	९७	१८७
श्रीमान् सर्वो जनस्तत्र	२२	२८४
श्रीयमाणः षोडशभिः	४८	३८८
श्रीवासुपूज्यनिर्वाणाद्	२२८	३६३
श्रीवासुपूज्यवचन	३६९	३५५
श्रीवीरश्चरमश्चार्हन्	१०४	३४७
श्रीशीतलजिनेन्द्रस्य	१	३०७
श्रीशीतलस्य मुनिभिः	१२६	३११
श्रीश्रेयांसजिनेन्द्रस्य	२	३११
श्रीश्रेयांसप्रभोः पादाः	१	३१३
श्रीसुपार्श्वजिनेन्द्रस्य	१	२९१
श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धि	५७८	२००
श्रुतसागरनामाऽथ	४४९	३२८
श्रुत्वा कुमारमायान्तं	१२७	३१७
श्रुत्वा च देशनां भर्तुः	८१२	२०९
श्रुत्वा च मूर्च्छितो विष्णुः	१३४	३७९
श्रुत्वा तां देशनां भर्तुः	३७३	३६७
श्रुत्वा त्रिभुवनैश्वर्यं	२६३	३८३
श्रुत्वा पुरुषसिंहोऽपि	९१	२७८
श्रुत्वा भगीरथोऽप्येवं	६१४	२५०
श्रुत्वा लोकाञ्छिवराज	१४६	३७९
श्रुत्वा सुदर्शना तच्च	१५	२७५
श्रुत्वेति मुदितो विप्रः	८५८	२१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
श्रुत्वैवं देशनां भर्तुः	२१४	३६२
श्रुत्वैवं देशनां भर्तुः	३४९	३८६
श्रेणिद्वयाधिपत्यं वा	७६५	३३८
श्रेणिप्रश्रेणिका अष्टा	३४५	२२४
श्रेयांसप्रभुनिर्वाणाद्	३६२	३५५
श्रेयांसस्वामिपादानां	९०२	३४३
श्रेयांसोऽथ प्रभुर्व्योम	७९९	३३९
श्रेयोबुद्धयाध्वरहत	३३८	३५४
श्रोतव्या घोषणाऽवश्यं	२७२	१७५
श्रोत्रियः श्वपचः स्वामी	८३	२८६
श्रौतादर्थाद् व्रजन् शब्दं	३३६	१९५
श्वेतच्छत्र–ध्वजस्तम्भ	३२२	२६६
श्वेतरश्मिमिव प्राची	१७६	३१९
श्वेतवर्णश्चतुर्दन्तः	५३	२७१
श्वेतातपत्रैर्मायूरा	१९	२९१
श्वेताम्बरधरः स्रग्वी	३६३	१७८

"ष"

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
षट्खण्डभरतक्षेत्र	२०२	२३८
षट्खण्डमरिषड्वर्ग	५७	२२७
षट्त्रिंशच्च तृतीयं तु	५५९	२०२
षट्पञ्चाशद् दिक्कुमार्यः	३३	३०२
षट्पञ्चाशद् दिक्कुमार्यः	३९	२८५
षट्पञ्चाशद् दिक्कुमार्यः	६५	२७१
षट्पुनर्विकलाक्षेषु	२४४	३७२
षट्षष्टिश्च सहस्राणि	५४०	२९१
षट्सप्ततिगणधर	८४९	३४१
षड् योजनानि भूमध्यं	३५	२२७
षड् योजनानि सक्रोशा	६०६	२०३
षड्विंशतिसहस्राग्र	८६३	३४१
षष्टिधन्वोन्नतः स्वामी	५०	३५७
षष्टिं वत्सरलक्षाणि	२३०	३६३
षष्टिः षट् च सहस्राणि	२९२	३७४
षष्टिसहस्रसङ्ख्यास्ते	१५५	२३६
षष्टिं सहस्रान् सगरात्	१७८	२३१
षष्ठा–ऽष्टमादिनिरतो	१४७	३१८
षष्ठेन प्रतिमास्थस्य	६४	२८६
षष्ठयां सितायां पौषस्य	१७६	३६१
षाड्गुण्यादासनगुणो	५५२	३३१
षाड्गुण्येन स षट्खण्डया	१६१	३१८
षाड्गुण्योपायशक्त्यादि	२९	१८५
षोडश पूर्णकलशा	७१८	२०६
षोडशयोजनायामा	७१२	२०६

"स"

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
स आगच्छन्नथ पथि	५८४	२४९
स आघाट शिला स्तम्भी	२५४	३२१
स उपायै श्चतुर्भिश्च	७	२६९
स एकस्मिन् दिने स्वस्या	२२३	२३८
स एवमद्वैत सुख	३१२	१६६
स एवमुक्तः पुरुषो	१५५	३६१
स एवं जगति न्यायं	५११	३३०
स एवं भवनिर्विण्णः	७	३५६
स एवं राजधर्मस्थः	४२	१५८
स एष मत्पतेः पादो	४२९	२४५
स एष योगसाम्राज्य	३९५	१९७
स क्रमेण तमिस्राया	१९४	२१९
सकलत्रः समित्रश्चा	३०७	३९९
सकलान्तःपुरस्त्रैण	६	२७५
सकलाऽपि श्लाघनीया	२०१	२६२
संकल्पयोनिनाऽनेन	४०	३९०
सकषायतया जीवः	२८०	३७३
स कालं गमयन्नृद्धया	२९८	३९९
सकुरण्टकेन श्वेता	२०६	१९१
स कुर्वन् गर्जितमिव	२१	३४४
सकृष्णवर्णः पञ्चाग्र	७३	३७७
स केसरियुवा चेत्थं	३९१	३२६
सखा ते ताभिरप्यैक्षि	२१७	३९६
सख्येव पवमानेन	१४०	३९३
स गत्वोपतमिस्रं च	१७८	२१९
सगरनृपे चरित्रे	७०२	२५३
सगरः शिबिरं गत्वा	१२५	२१७
सगरश्चक्रभृदथ	९	३२६
सगरः सर्वमर्त्येभ्यः	६९	१८७
सगरं सोऽपहृत्वाऽश्वः	३०६	२२३
सगरस्तु यथाकालं	३	१८५
सगरस्य नरेन्द्रस्य	६१	२३३
सगरानुजीविनोऽपि	२३४	१९२
सगरेणोपनीतेऽथ	८३१	२१०
सगरो गजमारुह्य	२७४	२२२
सगरोऽपि सभूपालः	२७९	१९३
सगरोऽपि सरस्तीरे	३१८	२२३
सगरोऽष्टममक्तस्य	९१	२१६
संक्रन्दनो विचक्रे च	३०८	१७६
सङ्क्रान्तताराकारत्न	१६	३१५
सङ्क्षिपन् सङ्क्षिपन्नेवं	३२८	१७६
सङ्क्षिप्त इव वैताढयः	३३	३१४
सङ्गमा बान्धवादीनां	५२६	२४७
सङ्गीतकस्य सञ्जज्ञे	२८९	३२३
सङ्गीतकानि गन्धर्वै	२३३	१९२
सङ्गीतकैर्नाटकैश्च	३४८	२२४
सङ्गीतरङ्गभङ्ग त्वं	३१०	३२३
सङ्घसमृद्धं तं दृष्ट्वा	५९१	२४९
सङ्घे समाधिजननं	१२८	३०५
सङ्घोऽपि भगवांस्तत्र	८२	२९३
सङ्घोऽप्यस्थाद् यथा स्थानं	२१७	२८२
सचक्री पालयामास	३३५	४००
स च त्रिजगदाकीर्णो	४८०	१९९
स चात्र भरते पृथ्वी	९३	३६७
सचित्तः संवृतः शीत	२४२	३७२
सजलं जलदुर्गस्थ	८८	२५८
संजातासनकम्पाः षट्	३४	३४५
स जित्वाऽपि द्विषोऽशेषा	५	३६४
स ज्ञात्वा पितरं पश्चात्	१६	२२६
सञ्चरद्भिर्गजैस्तत्र	१८	१५७
सञ्जातमध्यच्छिद्रं च	६५	२२७
सञ्जाताऽऽसनकम्पेन	१४५	१७१
सञ्जज्ञिरे समन्ताच्च	१३०	१७०
सततं चिन्तयामास	१९	१८५
स तपो दुस्तपं तेपे	१८७	३५०
स तमिस्रा गुहाद्वारे	३०	३८८
स तमेवाऽन्यदा भूप	३८५	२४३
सतां प्रतिष्ठा कल्पद्रुः	१७	२९१
सतीनां सीमभूताऽभूत्	२८	२८५
सतीसत्यापनां कृत्वा	४६४	२४६
स तु ग्रामजनो मृत्वा	५९७	२५०
सतोरणा चतुर्द्वारा	७९५	३३९
संतोषयुक्तस्य यते	३३३	३८५
संतोषसिद्धौ संसिद्धाः	३३६	३८३
सत्पुरुषाभिधानश्च	१७८	२६१
सत्यं न चेन्मम वचः	३१८	२४१
सत्यं येषां शरीरादौ	९९	२९४
सन्निकृष्टाऽचलं साभ्रि	५४५	३३१

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य	५	२२६
स त्रिः प्रदक्षिणीचक्रे	१६७	२६१
स त्रिंशब्द्वर्षलक्षायुः	९४	३६७
स त्रिंशद्वर्षलक्षायुः	३०४	३७४
स ददौ दानशीलोऽपि	३८	१५८
स दध्यौ चेत्यहो ! जम्बू	२५६	१७४
सदशश्वेतवसनां	४८६	३२९
सदसद्गुणशंसा च	१३१	३०५
सदस्या न्यकृतास्ते य	३७३	२४३
सदा त्रिपृष्ठः पार्श्वस्थां	८७०	३४२
सदाऽर्हदादेशसुधा	१४८	२३६
सदा विरक्तः संसारा	६५	३७७
सदा स चैत्यपूजासु	५३	३८८
सदा सन्निहितैर्देवै	६७	२५७
स दूतः सत्वरं गत्वा	४९९	३२९
स दृढं वसुधां दध्रे	३४	२७०
सदैव हि प्रमत्तानां	२००	२६२
सदैवोदच्यमानाऽपि	१२९	२७९
सदोषमपि दीप्तेन	८३१	३४०
सद्गुरोः पादपद्मान्ते	२४३	२६३
सद्दर्शनेन मिथ्यात्वं	९७	३१०
सद्धूपधूमपल्लीभि	१६	३४४
सद्भक्तया परमात्मेव	२७	३४५
सद्यः पुरादिनिर्माणा	३७	२१५
सद्यश्छित्वा करोपात्तैः	६५३	३३५
सद्यश्छिन्नैः परिकरे	६५५	३३५
सद्यः समवसरणं	२०२	३८१
सद्यः सिंहासनं हित्वा	८१३	३४०
सद्यः सैन्यानि सेनान्यः	२४३	३५१
सद्यो जग्राह दीक्षां च	९०५	३४३
सद्यो नट इवाऽलोकं	८०	२३४
सद्यो निर्वाणदावाग्नि	१३०	२९३
सद्योऽपि कामविधुरा	३१७	२२३
सद्यो रोमाञ्चितवपुः	२६४	१०५
सद्यो वक्रा-ऽतिचाराभ्यां	३८	२८५
सद्यो वर्धकिरत्नेन	१९३	२१९
सद्यो विमानान्यारुह्य	२८०	१७५
स धनुर्द्विशतीकं तु	३२६	२७३
सधर्मचारिणी चाऽऽसी	१३	१६७
सधर्मचारिणी तस्य	४४४	३२८
सधर्मचारिणी तस्या	२१	३६४
स धात्रीं खेदयामास	२२१	२६२
सनत्कुमार इत्युक्त	१७२	३९४
सनत्कुमारकुमार	१६३	३९४
सनत्कुमार कौरव्य	२३५	३९७
सनत्कुमारं त्रिदशा	३३०	४००
सनत्कुमारमालोक्य	३४८	४००
सनत्कुमार-माहेन्द्रा	७६१	२०८
सनत्कुमारं विज्ञप्य	३२५	३९९
सनत्कुमारः षट्खण्डं	३१७	३९९
सनत्कुमारस्य रूपं	२६८	३८३
सनत्कुमारं स्वे राज्ये	३०९	३९९
सनत्कुमारानुज्ञातो	३२२	३९९
सनत्कुमारो ब्रह्मा च	३६८	१७८
सनत्कुमारो हर्षाश्रु	१६४	३९४
स नरेशूत्तमो राजा	१७	१६७
स नित्यं भगवत्पाद	६६१	२५२
स नैमित्तिक इत्यूचे	४५४	३२८
सन्तं भूतं भविष्यन्त	२७९	२४०
सन्तापिनस्तपनांशु	१०३	१६०
सन्त्यशीतौ योजनेषु	५२५	२०१
सन्ध्या सहोदयं याति	४४७	२४५
सन्निहितः समानश्च	५२७	२०१
स पञ्च समितीस्तिस्रो	६६०	२५२
सपर्याणानपर्याणान्	४९	१८६
सपल्लवा इव लताः	१४३	१७१
सपाण्डुरध्वजच्छत्रं	५८	२१५
सपादकटकं पाद	४२३	२४४
सपादयोजनशत	३६	२२७
सपितृभ्रातरं नव्य	१२०	३५९
सा पित्रोरुपरोधेन	५१	३५७
स प्रीतः सपरीवारः	३०७	३२३
संपूर्णचक्रिसामग्रया	४५	३८८
संपूर्णे समये साऽपि	९९	३५९
संपूर्णे समये साऽपि	१०९	३६७
सप्तधातुमये देहे	२६७	३८३
सप्तधा प्रक्षरद्दान	४५	२१५
सप्तभिश्चानीकनाथैः	३८२	१७८
सप्तमे दिवसे जात	५८१	३३२
स प्रदक्षिणयामास	१६५	२६१
स प्रधानपरीवारः	४७०	३२८
सप्रमोदं ततः पित्रा	११६	२७८
स प्रयाणैरविच्छिन्नैः	२४६	३५२
स प्रसूतो जगन्नाथो	१६९	२८०
संप्राप्तबोधयो जीवा	२१३	३६२
स बालो बलभद्रेण	२३६	३२१
स ब्रह्म-विजयाऽनीक	२४७	३५२
सभां विसृज्य राजाऽथ	२७९	३२२
सभ्याः सभाया भवतो	३०२	२४९
समं कुलक्रमेणैव	३०४	२४१
समक्षं सर्वसङ्घस्य	६५२	२५१
समग्रविद्यावैदुष्यो	३०४	३८५
समं नृपसहस्रेण	६८	३०९
स मनोरथमार्गेण	२४२	३९७
समं भगीरथेनाऽथ	६२०	२५०
समं भ्रात्रा भवोद्विग्नो	७८	१८७
समं महेन्द्रसिंहेन	३९७	२९९
समं मुनिसहस्रेण	११७	३००
समं मुनिसहस्रेण	१७०	२७४
समं मुनिसहस्रेण	३९८	२६८
समये साधयिष्यामि	५८	१५९
समयेऽसूत सा सूनुं	७६	३९१
स मर्यादां समुल्लङ्घ्य	३४२	२४२
समस्तदेशप्रवरं	१६८	२१९
समस्तम्लेच्छभाषाज्ञः	१५६	२१८
समस्तलोकाकाशेऽपि	८५	२८७
समं सुदर्शनेन त्वं	१२५	३७९
स महत्त्वपि साम्राज्ये	६	३७५
स महर्षिगणेनापि	१७	३०७
समाहारा सुप्रदत्ता	२०३	१७३
समाकृष्याऽपि पातालाद्	६	२२६
समागधवरदाम	१९२	३७०
समागध-वरदाम-	२७७	३५३
समागमाः सापगमाः	३६९	२६७
समानचतुरस्रेण	५७	१८६
समापतन्तं तमपि	६९३	३३६
समापतन्तं साटोपं	४७२	२४६
समापतन्तं हस्तेन	१९६	३९५
समापतन्तो युगपत्	३४९	१७७
समायाहि महातन्द्रे !	१५	२३२
समाश्वास्य च तां सद्यः	२५२	३९७
समिद्भिः पिप्पलादीना	४९१	३२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
स मिथीकृत्य गोशीर्षं	२३९	१७४
स मुक्ताशेषनेपथ्य	५६	२१५
समुत्थाय व्यपक्रम्य	३५२	१९५
समुत्पत्य मिलन्ति स्म	४९०	१८१
समुत्पद्य समुत्पद्य	३५८	२६७
समुत्पन्ना घटीयन्त्रे	९०	२८७
समुद्दिश्य विनीतां च	३३६	२२४
समुद्र-तीर्थ ह्रदिनी	३५३	२२४
समुद्रदत्त इत्यासी	७५	३६६
समुद्रदत्त दत्तौक	८५	३६७
समुद्रदत्तस्तं प्रीत्या	७८	३६६
समुद्रदत्ते विश्वस्ते	८७	३६७
समुद्रवसनां सोऽनु	२२	३८७
समुद्रेणापि दत्तार्घ	१९४	३७०
संमूर्छिनो नारकाश्च	२४०	३७२
समृगेन्द्रासनं तत्र	३५५	२२४
सम्पदो निर्विशेषाणां	७	१५७
सम्पदो यौवनं रूपं	९	२८४
सम्प्राप्तयौवनं यौव	४२०	३२७
सम्पूर्णकोटि वर्षायु	१५८	३१८
सम्पूर्णपात्रकुम्भाभि	२४२	१६४
सम्पूर्णमण्डलत्वेना	२७	१६७
संपूर्णसैन्यः कतिभि	५७२	३३२
सम्बन्धानात्मनो जन्तु	१०३	२९४
सम्भवस्वाभिनिर्वाणा	१७५	२७४
सम्भावनायाः प्रभुणा	४५	२३३
सम्भ्रमात् पादचारेण	२२३	१९१
सम्भूय गच्छतस्तत्र	२४१	१९२
सम्मान्यते स्म च क्वापि	५४४	१८३
सम्मेताद्रिं ततो गत्वा	१४८	३०६
सम्यक्त्वभाजः कस्याश्चि	९२९	२१२
सम्यक्त्व मिथ्यात्वयोगा	२५४	३७२
सम्यक् प्रमाणशास्त्राणि	२७	१८५
सम्यक् श्रावकधम स	८	३०१
सम्यक् श्रावकधम सा	४३०	३२७
संयतानि न चाऽक्षाणि	१३१	२७३
संयमः सूनृतं शौचं	३१०	३५४
संयमः सूनृतं शौचं	८२	२७७
सयोगिकेवली घाति	२६२	३७३
सरनरकपिशीर्षं च	७९३	३३९
सरागसंयमो देश	८८	३०४

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
सराग संयमो देश	११४	३०४
सरागोऽपि हि देवश्चे	९०२	२१२
स राज्ञामाहुतैर्दण्डै	३६	२७०
सरित्सुत्रा इव सरित्	८२	२२८
स रेजे राजभी राजा	१०६	२५९
स रोगेभ्यो नोद्विविजे	२९१	१६६
सरोवरे तया चेह	३२७	२२३
सर्वकल्याणकश्रेष्ठं	७५	३१६
सर्वंगस्वप्रतिष्ठं स्या	२७३	३७३
सर्वंकषः पिशुनवत्	१३७	२३६
सर्वजीवेषु देहायु	२३८	३७२
सर्वज्ञमाता भवती	१७१	२८०
सर्वज्ञशिष्यगणभृ	२८७	२४०
सर्वज्ञ-सिद्धि-देवाया	९१	३०४
सर्वज्ञो जितरागादि	८९२	२११
सर्वज्ञो भगवान् स्वामी	३४	१५८
सर्वतः कुलशैलेभ्यो	४३०	१८०
सर्वत्र मार्दवं कुर्या	२७६	३८४
सर्वत्रापेक्ष्य सुहृद	१२४	३९३
सर्वथा दुःखलेशस्या	८	२९६
सर्वथा निर्जिगीषेण	७४	२८६
सर्वदा निःप्रतीकारः	३०८	१६६
सर्वदिग्विजयश्रीणाम्	८३	२१६
सर्वधान्यानि शाकांश्च	२२८	२२१
सर्वेऽन्येऽप्यासनकम्पा	३५४	१९६
सर्वपुरुषार्थचौरे	२५३	३८३
सर्वपूर्वभृतां सार्धा	३९२	२६८
सर्वप्रलयशंसित्वात्	३२८	२४२
सर्वमन्यदिदं तस्मा	१०४	३००
सर्वयोगनिरोधेन	११८	३००
सर्वरत्नमयादेव	७१३	२०६
सर्वरत्ना रत्नसञ्च	७३६	२०७
सर्वर्द्धयस्तासु देवाः	७३८	२०७
सर्वलक्षणसम्पूर्णां	१८१	३१९
सर्वविद्याधरैश्वर्य	४५८	३२८
सर्वव्यसनकक्षाग्नि	२२२	२३८
सर्वशक्त्या विन्ध्यशक्ति	१८१	३४९
सर्वाः कुचाभ्यां वृत्ताभ्यां	१४२	१७१
सर्वाङ्गमप्यङ्कुरित	८१	३६६
सर्वाङ्गीणतिलकित	२८३	१७५
सर्वाङ्गीण सुखस्पर्शो	१९३	३९५

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
सर्वाणि धात्रीकर्माणि	२१२	२६२
सर्वात्मना जेतुकामौ	७८	३५८
सर्वात्मनाऽपि सज्जित्वा	२२२	३५१
सर्वाभिमुख्यतो नाथ	३८४	१९६
सर्वाभिलाषिणः सर्वं	८९७	२१२
सर्वाभिसारिभिर्भूपै	३७६	३२५
सर्वा लावण्यपूरेण	१४४	१७१
सर्वावस्थासु खाद्यन्ते	११२	२८७
सर्वे जीवा व्यवहार्य	२४१	३७२
सर्वेन्द्रियग्लानिकर	२५४	३८३
सर्वेऽपि वनस्पतयः	११३	२८७
सर्वे भावाः सर्वजीवैः	२०५	३६२
सर्वेषां कर्मणां शेषे	२०७	३६२
सर्वेषां मन्त्रिणां मन्त्र	४५२	३२८
सर्वेषामाश्रवाणां तु	९१	३१०
सर्वेषामाश्रवाणां यो	२७९	३७३
सर्वं सर्वात्मनाऽन्येषु	७८	२८६
सर्वं सर्वाभिसारेण	५४४	३३१
सर्वैरपि क्षुरीस्थानैः	५३	१८६
सर्वोत्कृष्टायुषस्तार	५४३	२०१
सर्वोपद्रवनीहार	३५	२१५
सर्वौषधीरसवीर्यं	३०	१८५
सलीलचरणन्यासं	१७२	१६२
सवत्सरान्ते चलिता	६०	२९८
संवरादाश्रवद्वारा	१०३	३१०
संवर्तपुष्करावर्त्त	६२९	३३४
स वाहनविधिं चाश्व	३३	१८६
स विचक्रे पिशाचांश्च	१९८	३९५
स विद्यादुर्मदो दोष्मा	५७६	३३२
स विद्याधरसामन्तः	४६९	३२८
स विद्रुमवितानोऽब्धि	१६०	२१८
स विनीतो विनीतेश	१२३	२१७
स विरत्या विहीनेन	६	३०१
स विवेकी भवोद्विग्नः	१०	२६९
स विंशतिस्थानकेभ्यः	१६	२८४
सविषादं जगादैवं	३६०	३२५
संवीतसवशश्वेत	५६०	३३१
संवृतः संवरेणैवं	१०७	३१०
स वृषभर्बिपदाब्ज	७२	३६६
सर्व्यं किञ्चिदन्यन्न्यं बानु	३५१	१९५
स व्रतं पालयस्तीक्ष्णं	१०	२९१
संशयान् नाथ ! हरसे	६२५	२५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
स शालिभोजनस्येव	५१४	३३०
स शूला-ऽभयदो बाहू	११३	२९४
संशोष्यन्ते निपिष्यन्ते	१११	२८७
संश्लेष्यन्ते च शाल्मल्यो	९५	२८७
स सप्ततिधनुस्तुङ्गः	६४	२४६
स सप्ततिधनुस्तुङ्गः	१९१	३५०
स समितिप्राप्तजयो	७	३८७
ससम्भ्रमः शतमखो	२६०	१७४
स संभ्रान्तस्तमित्यूचे	९२	३७८
स सम्यक् पालयन् मूल	९०६	३४३
स सर्वनरदेवानां	७	१६७
स सार्धतानेकविघ्न	४३७	३२७
संसार गर्तपतना	६३५	२५१
संसारतरणोपाय	७७	२७७
संसारबीजभूतानां	८२९	३४०
संसारवासवैराग्य	७१	३६६
संसारसरितो राग	२१८	३७१
संसारसागरगतैः	१४४	२८९
संसारसागरेऽमुष्मिन्	३०८	३५३
संसारसिन्धुतरणे	८१	२७७
संसारसुखमूढेन	६३६	२५१
संसारस्य स्वभावोऽयं	१४१	२३६
संसारिकमहादुःख	९	३७५
संसारिणश्चतुर्भेदाः	८६	२८७
संसारिणो द्विधा जीवाः	२२६	३७१
संसारे क्षणिकं सर्वं	९०	३१०
संसारे दुःखदावाग्नि	१४३	२७३
संसारे धीमतां सर्वं	९८	१६०
संसारे विषयास्वाद	२४९	२६३
संसारोऽयं विपत्खानि	१३९	२७३
स सार्धैकचत्वारिंशद्	८४	३९१
स सिंह इव शौर्येण	१६२	३१८
स स्थित्वा भूपतेरग्रे	२७४	३४०
संस्मार्य मांसलोलत्व	९६	२८७
सस्यहेतौ कृषौ यद्वत्	३४९	३५५
स स्वामी मन्त्रिणो मन्त्र	५	३१३
सहकाराङ्कुरास्वादा	२५३	१९२
सहकारोद्यानमिव	२६०	२३९
सहजाता अपि काऽपि	५१	२३३
सहमानो व्यथामेवं	६५	३९१
सहस्रनयनो नाम	३२१	२२३
सहस्र पूर्विणां सार्ध	१४४	३०५
सहस्रं पूर्विणां सार्ध	१६५	२७४
सहस्रं मुनयस्तेऽपि	४०२	२६८
सहस्रं मुनयस्तेऽपि	६८६	२५२
सहस्रयोजनं चोले	१३७	२३०
सहस्रयोजनायाम	५७३	२०२
सहस्रयोजनाश्चाऽन्ये	६२७	२०४
सहस्रयोजनीमान	६२४	२०४
सहस्रयोजनोत्सेधः	३१८	१७६
सहस्रं रत्नकुम्भानां	२६२	२२१
सहस्रशः शरकरैः	१४४	३६०
सहस्राक्षः क्षणेनाऽपि	२६१	१९३
सहस्राणि नव पुनः	११६	२९४
सहस्राम्रवणं भूयो	७३	३०९
सहस्राराद् दिवश्च्युत्वा	१०७	३६७
सहस्रारा-ऽऽनत-प्राण	७५२	२०७
सहस्रारो महाशुक्रो	१७३	२६१
सहस्रेषु द्वादशसु	६३७	२०४
सहस्रैः सप्तभिन्यूना	३९५	२६८
सहाऽन्वलेन पुत्रेण	२०८	३२०
सहाऽऽनन्देन भर्तुः	२१	१८५
संहार-वियो-द्वियोगा	६६२	२०५
सहाधपञ्चपञ्चाश	६५०	२०४
संहृत्य स्फाटिकानक्षणः	७४	३१६
साकेतपुरनाथस्य	२४०	३९७
साक्षात् स्वप्नफलमिवा	९६	१६९
साक्षादयं तीर्थकरो	९१	१८७
साक्षेपमिति जल्पन्तो	४७६	२४६
सा गीते कलकण्ठीव	१४७	३४८
साग्रेऽपि योजनशते	३८७	१९६
साङ्गानि शब्दशास्त्राणि	८१	३९१
सा च धर्मार्थकामानां	२३	१५८
सा जाह्नवीव गम्भीरा	२६	३४४
सादरं शिरसाऽऽदाय	२६५	१७५
सादरः सोदरमिव	६९	२३४
सादिनां राजपुत्राणां	९४	३९२
साधुत्रिलक्षी साध्वी षड्	१६४	२७४
साधुत्रिलक्षी साध्वीनां	११५	२९४
साधुद्विलक्षी साध्वीनां	१४३	३०५
साधु साध्विति सोदर्यैः	१६१	२३०
साधु साध्वित्यमात्यं त-	२३१	३५१
साधूनां गर्हणा धर्मो	१०३	३०४
साधूनां चतुरशीति-	८५२	३४१
साधूनां त्रीणि लक्षाणि	२५१	२८३
साधूनां त्रीणि लक्षाणि	१८५	२९०
साधूनां दशसाहस्र्या	९९	२२८
साध्वीशुश्रूषया सैवं	८७९	२११
सान्तःपुरः स चिक्रीडो	११५	३१७
सान्तःपुर परीवारः	३४६	२२४
सान्तःपुरोऽपि हि सदो-	११९	३१७
सान्तःपुरस्तदाऽऽरुह्य	३५६	२२४
सान्निध्यकारिदेवानां	२३१	२२१
सान्निध्यभाजां देवानां	३४३	२२४
साऽपि सप्त महास्वप्नान्	९८	३५९
सा भूयो भूपतिं स्माऽऽह	४४६	२४५
सामन्ताऽमात्यसेनानी	४७७	३२९
सामानिकसहस्रैस्तु	४१०	१७९
सामानिकाः पारिषद्याः	३४४	१७७
सामानिकाश्चेन्द्रसमाः	७७२	२०८
सामान्यस्यापि पुरतो	२९४	२४०
साम्राज्यवत् परिव्रज्या-	९९	२५९
सायमापणवीथीषु	१३	३०७
सांयात्रिककुमारः किं ?	२४०	३३९
सायाह्नन्यजितस्वामी	२५९	१९३
सारमत्र हि संसारे	७६	२७७
सारं रत्नाचलस्येव	८१	१६९
सारस्वतप्रभृतयो	५४	३५७
सार्धक्रोशोन्नतं चैत्य-	६७	२८६
सार्धद्विषष्टि सहस्र-	५६३	२०२
सार्धधन्वत्रिशत्युच्चो	९३	२७२
सार्धधन्वद्विशत्युच्चः	५३	२८५
सार्धा द्वादश रूप्यस्य	२१०	३७१
सार्धा द्वादशरूप्यस्य	२९६	३५३
सार्धा द्विलक्षी साधूनां	११२	३००
सार्धानि षट् सहस्राणि	८५४	३४१
सार्धाः षट्त्रिंशतं पूर्व-	१०१	२७२
सार्धे लक्षे श्रावकाणां	११६	३००
सार्प-गारुत्मताग्नेय-	२७७	३९८
सार्हच्चैत्यानि हैमानि	१७	३७५
सांवत्सरिकदानान्ते	६१	२९३
सांवत्सरिकदानान्ते	१०६	२७२
सांवत्सरिकदानान्ते	२६०	२६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
सावद्यं योगमखिलं	२८८	२६५
सावशेषाणि कर्माणि	१०१	३४७
सावहित्थमथाऽऽस्थानी	२७२	३२२
साशङ्कं न हि विश्वासो	२२६	३५१
साश्चर्यैर्वीक्ष्यमाणौ तौ	१६१	३९४
सा स्थलाम्भोरुहाणीव	२५	२९७
सा स्व धन्धोः स्वतुल्यस्टा	१५५	३४९
साहित्यवल्लीकुसुमैः	२६	१८५
साहित्य शास्त्र सर्वस्य	२५	१८५
सितवक्ष इव स्वल्प	१५९	२१८
सिद्धालब्धिरपि व्याधि	४००	४०२
सिद्धार्था नामतः सांहि	२७१	२६४
सिद्धार्था नाम शुद्धान्त	४०	२७०
सिद्धार्था स्वामिनीकुक्षौ	६०	२७९
सिद्धार्था स्वामिनी सूनु	६३	२७१
सिद्धार्था स्वामिनी सम	६१	२७१
सिद्धि सर्वार्थ सिद्धं च	३	१६७
सिद्धेनेव विवेकाक्षं	४०	३५७
सिद्धेषु गुरुषु बहु	३००	१६६
सिन्धुतीरादथ स्तम्भा	१६५	२१९
सिन्धुदेवीं च मनसि	१२९	२१७
सिन्धुदेवीव गङ्गाऽपि	२६१	२२१
सिन्धुदेवींसद्मनश्च	१२८	२१७
सिन्धुरस्कन्धमारूढ	७६	१५९
सिन्धोश्च निष्कुटं प्रत्य	३७	३८८
सिंहनादं हयग्रीव	७३०	३३७
सिंहनादादिव मृगा	२५३	३५२
सिंहलकान् बर्बरकां	१६६	२१९
सिंहवध-चण्डसिंह	५५१	३३१
सिंहसानं पादपीठं	७	२९४
सिंहासनं पादुके च	३१९	३९९
सिंहासनप्रकम्पोऽभूत्	३७	१६८
सिंहासन निषण्णस्य	६४२	२५१
सिंहासनात् समुत्थाया	८३१	२१०
सिंहसानादथोत्थाय	२२८	१६४
सिंहासने च आसित्वा	९	२१४
सिंहासनेऽथ्या सितस्य	२८१	३५३
सिंहासने निषद्याथ	१४५	१६१
सिंहेन निहतानेक	३६६	३२५
सुकुमारतयाऽङ्गस्य	१८४	३९५
सुकुमारा मर्मराला	४४	२५७
सूक्ष्मेण काययोगेन	६७९	२५२

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
सुखं वैषयिकं तामि	६३	२७७
सुखसुप्ता तदानींच	११८	३५०
सुखसुप्ता तदा भद्रा	१९	३८७
सुखसुप्ता तु सा देवी	५२	२७०
सुखसुप्ता निशाशेषे	२९	२९२
सुखाभासविमूढस्य	८०	२५८
सुखित्वे कामललितै	१४१	२८८
सुखिनं परसौख्येन	१५२	२७९
सुखे दुःखे भवे मोक्षे	२७३	१९३
सुगन्धि मुखनिःश्वास	२३	३०७
सुगन्धि सुमनोदाम	३५	३९४
सुगन्ध्युदकवर्षेण	४२७	१९८
सुग्रीवनृपतेस्तस्या	२७	३०२
सुग्रीवो नाम समभूद्	१९	३०१
सुघोषोऽथ महाघोषः	५१३	२००
सुजाता सौमनसा चा	७३४	२०७
सुतं सूकरलक्ष्माणं	२९	३५७
सुदर्शनाऽपि निःश्वस्ये	२८	२७५
सुदुर्लभं दूरमत्थै	४४७	१९८
सुदेवत्व-भोगभूमि	४६२	१९९
सुधर्मा परिषद्भव्या	२६६	१०५
सुधाकुण्डसदक्षासु	२३९	२६३
सुनिष्क्रमप्रवेशानि	१४	३६४
सुपर्णा गरुडचिह्ना	५०८	२००
सुपार्श्व स्वामि निर्वाणं	१२२	३००
सुपार्श्वस्वाम्यपि ततो	६०	२९३
सुप्तमेकफणे पञ्च	३०	२९२
सुप्ता सप्त महास्वप्नान्	२०५	३५०
सुप्रतिष्ठाकृतिर्लोको	८००	२०९
सुप्रभः पञ्चपञ्चाश	३०७	३७४
सुमतिस्वामिनिर्वाणा	१९६	२९०
सुमनोगर्भधम्मिल्लाः	५४७	१८३
सुमित्रस्याऽप गृहिणी	६५	१६९
सुमित्रोऽप्यभ्यधादेवं	८७	१८७
सुमेरावमराधीश	३८	३४५
सुरत्वं सामानिकत्व	२६१	१६५
सुरसञ्चार्यमाणेषु	३७२	१९६
सुराणामसुराणां च	५५१	२४८
सुरापाणसमं प्राशा	४७०	१९९
सुराष्ट्रान् नान्ध्रवत् क्रूरान्	११४	२१७
सुरा-ऽसुरकुमारैश्च	९१	२७२

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
सुरासुरनराधीशा	१२६	३४८
सुरासुरनराधीशैः	५८	३५७
सुरासुरनरेन्द्राणां	१९७	३२०
सुरा-ऽसुर-नरेन्द्राणां	२८६	३७४
सुरा-सुर नरेन्द्राणां	६७	३०९
सुरा-ऽसुरनरैर्मूर्ध्नि	८१	२९८
सुरा-ऽसुर-नरैरेवं	२४२	१९२
सुरा-ऽसुर-नरैः सर्वै	२३९	१९२
सुरा-ऽसुर-नृकुमारैः	८९	३१६
सुराऽसुरनृणामाशु	२८७	२६५
सुराऽ सुर नृणां शक्र	११२	२७२
सुरा-ऽसुरसहस्रणां	६३	३०९
सुरा-ऽसुराणामधिप	३९९	२६८
सुरा-ऽसुरेन्द्रवद् भक्त्या	२६५	२६४
सुरा-ऽसुरेन्द्राः सद्योऽपि	७५	२९३
सुरा-ऽसुरेन्द्राः सद्योऽपि	७५	२९८
सुरा-ऽसुरेन्द्राः समव	६६	२८६
सुरा-ऽसुरेन्द्राः सर्वेऽपि	३९९	२६६
सुरा-ऽसुरैरप्यजय्या	१३५	२३६
सुरूपोऽप्रतिरूपश्च	५२०	२००
सुरैर्जयजयाराव	१७०	२६१
सुरैः सञ्चार्यमाणानि	७६	२९८
सुरैः सञ्चार्यमाणेषु	३३१	२६६
सुलक्षणाऽप्याचचक्षे	८८३	२११
सुलक्षणाऽप्युवाचैच	८८९	२११
सुलक्षणाया द्वौ पुत्रौ	१४	२७५
सुलक्षणा-शुद्धभट्टौ	८६४	२११
सुलभं भूमिसाम्राज्यं	१९६	३१९
सुलेश्या ग्रह-नक्षत्र	५५०	२०१
सुवर्णधूपघटिका	५१	१६८
सुवर्णवर्ण क्रौञ्चाङ्कं	१८१	२८०
सुवर्णादि प्रतिच्छन्द	११८	३०५
सुवत्सक-विशालौ च	५२८	२०१
सुविधिः पुष्पदन्तश्चे	५०	३०२
सुविधिस्वामिनिर्वाणाद्	१२५	३११
सुविधिस्वामिनिर्वाणाद्	१५४	३०६
सुव्यक्तगीतो द्वारेण	२८४	३१२
सुव्रताया गणाभृतो	१७७	२९०
सुस्पर्शैः सुप्रभैः पञ्च	२९९	१७५
सुस्वादून्यन्न-पानानि	९७	२९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
सूचीभिरग्निवर्णाभिः	१३४	२८८
सूतिकावेश्मनस्तस्य	२२५	१७३
सूतिकावेश्मनस्तस्य	५५	३१५
सूतैरिव स्तूयमानः	२०५	१९१
सूत्कारिपक्षमुखरं	६७	२१६
सूत्रात् किञ्चिदुदीरितं	४०६	४०२
सूनोर्गिरातया स्वाशा	१८६	१६३
सूरिपादान् नमस्कृत्य	१३९	३१८
सूरिर्वर्योऽप्युधमुखं	९०	१६०
सूर्या-चन्द्रमसावेतौ	३१६	३५४
सेनया हस्त्यश्व-रथ	६१	२१५
सेनादेव्याः क्षणात् पार्श्वे	२०७	२६२
सेनाधिपति सामन्त	२४	२३२
सेनानीः सगरादेशाद्	२८५	२२२
सेनापति-महामात्य	२८२	३२२
सेनापतिर्गृहपतिः	३५९	२२४
सेनापते ! क्व तेऽगच्छ	१८७	२३७
सेनान्या दण्डरत्नेन	४८	२१५
सेनान्या दण्डरत्नेन	३२	३८८
सेनान्या साधयामास	४४	३८८
सेर्ष्याः प्रियङ्गुदेवीं ताः	११८	३१७
सेवा-कर्षण-वाणिज्य	१३९	२८८
सेव्यमानः सदा ताभ्यां	२०१	३८१
सेव्यमानोऽपि गन्धर्वे	५	२९६
सेहिरे न तयोः पाद	१०३	३५९
सैकोनत्रिंशत्सहस्रा	१४६	३०५
सैनिके रणशौण्डीरैः	१५९	३६९
सैन्यकेतुस्थितैः सिंहैः	५९८	३३३
सैन्यप्राग्भारभारेण	१९७	२२०
सैन्यान् संस्थापयामास	१४०	३६०
सैन्येन चतुरङ्गेण	१६२	२१८
सोऽचिन्तयच्च धिगिदं	३७१	४०१
सोऽटन्नितस्ततोऽन्येद्यु	८१	३५८
सोऽथ विद्रुतसैन्यं तं	१७७	३४९
सोऽथ विद्याधरो गत्वा	४६०	३२८
सोऽथ संक्रमयामास	२९९	२६२
सोऽथेति दध्यौ वेश्मान्ते	६७	२७७
सोदर्यमिव दीक्षाया	२६४	१९३
सोऽनुमान्य निवावासे	३३२	२२४
सोऽनुमेने पुमान् राज	३०४	३२३
सोऽनुसर्त्तोऽप्यनाहूतैः	१३	२१४

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
सोऽन्ते पितुः प्राप चक्र	१९२	३५०
सोपानभूतानि पदा	१०५	२२९
सोऽपि सत्त्वाऽवधिज्ञानात्	३७५	१७८
सोऽपि तं पत्रिणं प्रेक्ष्य	१२०	२१७
सोऽपि द्वितीयपौरुष्यां	८५०	३४१
सोऽपि पूर्णेराघणायु	६७	३९१
सोऽप्यथानुअविपत्ति	३०८	३७४
सोऽप्यूचे द्वारकानाथ	२३४	३५१
सोऽप्रमत्तव्रतो यः	२५६	३७२
सोऽप्याच्यां वरदामाने	२७	३८७
सोऽभिधायैवमुपदा	१०२	२१७
सोऽभूत् प्रत्यर्थिनां युन्ने	२०	२१९
सोऽभूत् सर्वकलापूर्णः	३८	१८६
सोऽभ्येत्य राज्ञे रत्नानि	१४१	२१८
सोऽभ्युत्थाय जगन्नाथं	३०३	२६५
सोऽमार्जद्धस्तविन्यस्त	१६	२१४
सोऽयं सीमन्तरचना	४२७	२४४
सोऽर्मस्तु रमसाकारी	५५३	३३१
सोऽलब्धमध्योऽब्धिरिव	६	१६७
सोऽवादयत् क्षणाद् यात्रा	१५७	३६९
सोऽशीतिधनुरुत्तुङ्गो	२४७	३२१
सोऽसि सोऽसि नासि नासि	४१७	२४४
सोऽस्त्रपाणिः कृपालुश्च	१०९	२५९
सोऽस्तु मित्रममित्रो वा	१५७	३८०
सौधर्मकल्पादारभ्य	७८२	२०८
सौधर्मकल्पाधिपति	३९	३६५
सौधर्मकल्पाधिपति	३४	३०२
सौधर्मदेवलोकस्थो	३२३	१७६
सौधर्ममिव भूमिष्ठं	३२६	१७६
सौधर्मशालिनः पाक	५१७	१८२
सौधर्मेन्द्रः पूर्वजन्म	३१५	३९९
सौधर्मेन्द्रः प्रतीयेष	२६०	१९३
सौधर्मेन्द्रस्य चत्वारो	५२३	१८२
सौधर्मेशानकल्पौ तु	७६०	२०८
सौधेषु रत्नवलभी	१२४	२७९
सौन्दर्येण स्वकीयेन	१२३	१६१
सौम्यकलेव विश्वस्तं	३४६	२४२
सौभाग्यलक्षण्यवती	५	३८९
सौमनसं प्रीतिकर	७५४	२०७
सौवर्णा ध्वजा रत्नाः	४२०	१७१
सौवस्तिकस्त्रोप्रहरे	१७४	१९०

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
सौविदल्ले वदत्येवं	३३१	२२४
स्कन्धावलम्बिश्रवणो	२२९	२६३
स्कन्धावारं चक्रभूतः	५४	२१५
स्कन्धावारप्रमाणेन	२२४	२२०
स्कन्धावारमधिष्ठाय	११५	२१७
स्कन्धावारमुपेत्याऽथ	१०७	२१७
स्तब्धाङ्गकीलित इव	८०	३६६
स्तम्बेरमानुकारीणि	१५७	१७१
स्तम्भबुद्धया महिषाद्यैः	२७३	१६५
स्तम्भे स्तम्भे च कदली	५७०	१८४
स्त्री-क्षेत्र-पद्रादिभवो	३८९	१९७
स्त्रीणां विवादो निर्णेतुं	१६६	२८०
स्त्री-पुंसानङ्गसेवोग्राः	१०२	३०४
स्त्रीरत्नं तदुपादाय	३३५	२२४
स्त्रीरत्नयोग्यं तिलक	१४९	२१८
स्त्रीरत्नवर्जं रत्नानि	७४	२२८
स्त्रैः शस्त्रेणापि चेत् कामो	३९	३९०
स्तुत्वेति तूष्णीं प्राप्तेषु	३०७	३५३
स्तुत्वेति प्रभुमीशाना	४७	२९७
स्तुत्वेति सत्सु तूष्णीके	२००	३६२
स्तुत्वेति स्वामिनं राजा	२८८	१९३
स्तुत्वेति स्वामिनं शक्रो	४८	३७६
स्तुत्वैवं कृतमौनेषु	२२१	३७१
स्तुत्वैवं नाथमादाय	५०	२८५
स्तुत्वैवं पञ्चधा भूत्वे	२०६	२६२
स्तुत्वैवं पञ्च धाभूय	८५	२७१
स्तुत्वैवं प्रभुमादाय	४६	२९२
स्तुत्वैवं विरते शक्रे	१३८	२७३
स्तुत्वैवं विरते शक्रे	२२७	२८२
स्तुत्वैवं विरते शक्रे	३५०	२६७
स्तुत्वैवमादिभिः श्लोकैः	५०२	१८२
स्तूयमानो गीयमानः	६२	२९८
स्थगीवाहभवन् केचि	४४	१८६
स्थलवारिषु चोत्पन्ना	१२१	२८८
स्थविरश्रावकान् धर्म	१५५	३०६
स्थानात् ततश्च भगवान्	३११	२६५
स्थाने स्थाने तोरणानि	२३१	३२१
स्थाने स्थाने नागराणां	२८०	२६४
स्थाने स्थाने नागरैश्च	३४७	२५१
स्थास्यामो वयमत्रैव	१४२	१६१
स्थितोऽत्र वृषभस्वामी	१०४	२११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
स्थित्वा सिंहासने रूप्य	८१४	२४०
स्थिरः सुमेरुवत् स्वामी	२९३	२४०
स्थैर्यं प्रभावना भक्तिः	९०४	२१२
स्नपयाम्यथ चर्चामि ?	७६	३१६
स्नात्राङ्गरागनेपथ्या	४४	३६५
स्नानगन्धोदकैस्तैश्च	११३	२२९
स्नानपीठं तदारुह्य	३६०	२२४
स्नानागारं हयग्रीवो	५५८	३३१
स्निग्धाञ्जनद्युतिवपुः	८७	३५८
स्नेहात् पुरुषसिंहोऽपि	८८	३७८
स्पर्शनं रसनं घ्राणं	२३३	३७१
स्फुलिङ्गैरुल्बणैः सोल्का	६९१	३३६
स्मरन् पञ्चपरमेष्ठि	३०५	१६६
स्मरन् स्वप्रतिपन्नं च	३४८	२२५
स्मरन् स्वां मातरं पश्य	१२९	३७९
स्मरेणुजातवैधुर्यं	१९४	३१९
स्मित्वोवाच त्रिपृष्ठोऽपि	७२०	३३७
स्मृतमात्रोपस्थितं त	१७९	३८०
स्मेरकोकनदोद्दाम	३१३	२२३
स्मेराणि जानुदघ्नानि	३५८	१९६
स्यन्दनान्यन्यदपि यत्	१७२	२१९
स्याच्छैशवे मातृमुख	१३८	२८८
स्याद्वादवादप्रासाद	१२१	२२९
स्याद्वादवादोपन्यासे	२८	१८५
स्युः कषायाः क्रोध–मान	२२६	३८२
स्युरेकाक्ष-विकलाक्ष	२२८	३७१
स्यूतानीवाऽत्मना नित्यं	४३	३०८
स्यूते च स्वगुणैः स्वान्ते	२५	३०७
स्वकञ्चुकान्–कञ्चुकिनः	१७७	२३७
स्वच्छन्दं क्रीडतोऽन्येद्यु	२५९	३२२
स्वच्छन्दं विचरन्तौ तौ	८	१८५
स्वच्छस्वादुजलास्तत्र	८	१५७
स्वच्छ–स्वादुपयःपूर्णैः	२२१	३२०
स्वच्छे तोये तोयजेषु	१३८	३९३
स्वजनानामुपरोधात्	१०३	३४३
स्वं ज्ञापयित्वा कृत्वा च	४६	३१५
स्वं ज्ञापयित्वा स्वामिन्यै	२०१	१७३
स्वतः सुगन्धयो गन्ध	१००	२९९
स्वतोऽन्यतश्च सर्वाभ्यो	३५२	२६७
स्वदारमात्रसन्तोषो	१०१	३०४
स्वधर्मं तद्धन इव	३२६	२२३

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
स्वनामश्रवणात् केयं	२३७	३९७
स्वपाणिपङ्कजाङ्गुष्ठे	२	१८५
स्वपुरीवद्धनापूर्णं	३३२	४००
स्वप्नानां त्रिंशतस्तेषां	९९	१७०
स्वप्ने स्वयम्प्रभाधौता	४१९	३२७
स्वं बान्धवमिवाऽभीष्टं	१४३	२१८
स्वबुद्ध्या रचितान्यन्ये	२७१	३८३
स्वमित्रं तत्र चापश्य	१२२	३९३
स्वं मोक्षकालं ज्ञात्वाऽथ	२९८	३७४
स्वं मोक्षकालं ज्ञात्वाऽथ	२५८	२८३
स्वयं कृतां तां शिबिकां	२७३	२६४
स्वयङ्कृतैः कर्मपाशैः	५३	१५८
स्वयं कृपालुना सोऽथ	७४	२३४
स्वयं गन्तुं प्रवृत्तेषु	२७१	३७३
स्वयम्प्रभा त्रिपृष्ठश्च	४९०	३२९
स्वयम्प्रभाऽपि सम्प्राप्य	४२१	३२०
स्वयम्प्रभायां जज्ञाते	८६७	३४२
स्वयम्बुद्धो बोधितश्च	२०३	२८१
स्वयंबुद्धोऽसि भगव	१३९	१८९
स्वयं भयपरीणामः	९७	३०४
स्वयम्भुवः कुमारत्वे	२३१	३६३
स्वयम्भुवश्चोपरिष्टा	१६६	३६१
स्वयम्भूः पूरयामास	१३८	३६०
स्वयम्भूरपि चैश्वर्य	२२९	३६३
स्वयम्भूरप्युवाचैवं	१५२	३६०
स्वयम्भूरमणाम्भोधि	५५१	२०१
स्वयम्भूरिति तस्यापि	१००	३५९
स्वयम्भूः सह भद्रेण	१८९	३६१
स्वयं विश्लिष्टकपाटे	३५	३८८
स्वयं समन्तात् सामन्तै	७३	१५९
स्वयं संवाहिकीभूय	२२९	१७३
स्वयं स्त्रीलम्पटः कोऽपि	३९७	२४३
स्वरत्नसर्वस्वमिव	३४	१६८
स्वराष्ट्र–पराष्ट्रेभ्यो	३९२	१९७
स्वरूप–पररूपाभ्यां	४४९	१९८
स्वरूपेणोर्वशी–रम्भा	१४१	३४८
स्वर्गराज्येऽपि न भ्राजे	४२	३०२
स्वर्गे पुरन्दरेणेव	६३	२३३
स्वर्णदानं रौप्यदानं	१५९	३०६
स्वर्णप्रभागौरमपि	११८	१७०
स्वर्णरत्नमयास्तत्र	२२	१५८

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
स्वर्ण–रत्नशिलास्तोमै	३५७	१९६
स्वर्णरत्नोपलैस्तां च	७९०	३३९
स्वर्णराशिभिरुत्तुङ्गैः	६१	१६८
स्वर्णरूप्यरत्नमया	४२१	१७९
स्वर्णशैलशिलोरस्कः	९५	२७२
स्वर्णानामेव सन्तापः	१०४	१८८
स्वल्पेष्वप्यपराधेषु	३२७	३५४
स्ववेश्मननयनायोप	३०७	१९४
स्वशासनमिवावन्यां	५	३५६
स्वसुतायाः पतिरभूत्	२०६	३२०
स्वसूनोर्हरिदासस्य	११	२२६
स्वसैन्यं चक्रिसेनानीः	२०५	२२०
स्वस्त्यस्तु तुभ्यं तुभ्यं च	२६८	२४०
स्वस्य लोकद्वयोच्छित्यै	२३७	३८२
स्वस्य व्यापादकं ज्ञात्वा	१४	२२६
स्वस्वप्रमाणसंस्थान	१०२	२२९
स्वस्वभद्रासनासीना	३५८	२२४
स्वं स्वं स्थानं जग्मुरिन्द्राः	४०७	२६८
स्वस्तिकन्यस्त मुक्तासु	२१	२८४
स्वाख्यातः खलु धर्मोऽयं	३०९	३५४
स्वाधीनं राज्यमुत्सृज्य	३३४	३८५
स्वाधीने मय्यपि सदा	२५	२७५
स्वाधीने मुक्तिमार्गेऽपि	४५४	१९९
स्वान्यासनान्यलञ्चक्रुः	३१२	१७६
स्वान्ववायसरोहंसी	२५	३४४
स्वाभाविकी हि ऋजुता	३०६	३८५
स्वामिनः कृतषष्ठस्यो	३१७	२६६
स्वामिनः केवलज्ञान	२४८	१९५
स्वामिनं देवदूष्येण	३४	३५७
स्वामिनं पश्यतां दूराद्	३४७	१७७
स्वामिनः प्रतिरूपाणि	८१	२९३
स्वामिनः प्रतिरूपाणि	२०८	३७१
स्वामिनः प्रतिरूपाणि	३७५	१९६
स्वामिनः प्रथमे कोपे	१२३	३५९
स्वामिनं शीतलमथ	८०	३०९
स्वामिनः स्वच्छलावण्य	१९९	२८१
स्वामिनः स्वामिमातुश्च	३०	३५७
स्वामिनः स्वामि मातुश्च	१५८	२६०
स्वामिनः स्वामिमातुश्च	११४	२७३
स्वामिनः स्वामिशिष्याणां	३००	३७४
स्वामिना न वयं त्यक्ता	१७७	१९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
स्वामिनाऽयं ध्रीयमान	२७०	२४०
स्वामिनीसदनात् पांसु	११०	१७०
स्वामिनो ददतो द्रव्य	१०५	२७२
स्वामिनो देशनान्ते च	१०८	२९४
स्वामिन् ! किं करवाणीति	१२८	३१७
स्वामिन् ! दशमती र्थेश	३९	३०८
स्वामिन्नमीषां स्वप्नानां	१७४	३१९
स्वामिन्नस्माभिरज्ञाना	२३८	२२१
स्वामिन्निहैव भरत	३१९	२२३
स्वामिन् ! पीयूषगण्डूष	१९९	३६२
स्वामिन्या विजयादेव्याः	५२	१६८
स्वामिन् ! व्रतायाऽयमपि	६११	२५०
स्वामिन् ! विमानाद् विजयात्	४१५	१८२
स्वामिपर्षदि तस्यां तं	८३५	२१०
स्वामिपादाम्बुजाभ्यर्णे	१६१	२६०
स्वामिरूपानुपरूपाणि	३७६	१९६
स्वामिंश्चतुर्थतीर्थेश	७५	२७१
स्वामिसङ्गात् तदम्भोऽगात्	४४०	१८०
स्वामिसूतिगृहाच्छक्रो	८४	३१६
स्वामिहर्म्यात् ततः शक्रो	८७	२७२
स्वामी कोटिं साष्टलक्षां	२५८	२६४
स्वामी दिव्ये च सभव	२८५	३५३
स्वामी भवविरक्तोऽथ	९३	३१६
स्वामी भवविरक्तोऽपि	५३	३०२
स्वामी वः सकुटुम्बाना	५०२	३२९
स्वाम्यग्रे तत्र चोत्क्षिप्त	८४७	३४१
स्वाम्यङ्गं वासयामास	६९०	२५२
स्वाम्यङ्घ्रि पीठमध्यास्य	३८२	२६८
स्वाम्यङ्घ्रिपीठमध्यास्य	६५६	२५१
स्वाम्यङ्घ्रिपीठस्थो वज्र	१५७	२७४
स्वाम्यागमनशंसिभ्य	१८८	३६१
स्वाम्यूचे दानशीलस्त्व	२१	२२६
स्वाराज्यसम्भवामेतां	८२	३१६
स्वेच्छाविहारश्रद्धाऽपि	१९६	२३७
स्वेशप्रबोधपिशुनो	७३९	३३७

"ह"

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
हन्त ! पुत्रोदि यस्याल्प	१५२	२३६
हन्यमानैर्दीर्यमाणैः	३७०	३२५
हयकर्णो गजकर्णो	६८३	२०५
हयग्रीवस्य सैन्येऽपि	७५०	३३८
हयग्रीवाङ्गसंस्कार	७५१	३३८
हयग्रीवाज्ञया तत्र	४०८	३२७
हयग्रीवोऽपि सम्पश्य	६६०	३३५
हयग्रीवोऽप्युवाचैव	२६५	३२१
हयानां हेषमाणानां	७१	२२८
हरिद्धरिकान्तानद्यौ	५८०	२०२
हरिरुत्तारयामास	४६९	१८१
हरिः स्वदेशसीमान्ते	५९४	३३३
हरेरुरसि तुम्बाग्र	१८५	३८१
हरेः सिंहासनस्थस्य	३१६	१७६
हर्ष—शोकविमूढेन	२०८	१९१
हर्षान्नराश्च नार्यश्च	५७४	१८४
हर्षाश्रुधारया तुल्य	१५९	३९४
हलादिशस्त्रैः पाट्यन्ते	१०१	२८७
हंसरोमाञ्चितैस्तूल	५७२	१८४
हस्तन्यस्तकपोलाः के	८	२३२
हस्तिरत्नं समारुह्य	१८४	२१९
हस्तेनौजायमानेन	१२६	१६१
हस्तेऽर्हन्तं गृहीत्वाऽर्हन्	५६	३१५
हस्त्यश्वसाधनाध्यक्ष	१६८	१९०
हस्त्यश्वाद्यादपश्चात्	११४	३५९
हहा ! स्त्रीगर्भनरके	१७१	२८९
हहा हा ! जठराङ्गार	१७२	२९०
हंहो ! किमिदमित्युच्चैः	५३५	२४८
हंहो ! गन्तव्यमस्माभिः	१५३	१७१
हा केशपाश ! मुञ्चाऽद्य	१७	२३२
हा ! दुःस्थिता भ्रातरो मे	६९	२५७
हा नाथ नाथ ! दैवेन	२४९	३९७
हा ! नाथाऽहमनाथाऽस्मि	४३४	२४५
हा प्राणेश ! प्रभो ! देव !	१५३	२८९
हा प्रिय ! स्तबकीभूत	४३८	२४५
हा प्रिया ! हा विमानानि	१६६	२८९
हार—केयूर—ताटङ्क	२३५	१६४
हारं च शशिमालां च	३१८	३९९
हा रत्नघटिता स्तम्भाः	१६८	२८९
हा ! रत्नसोपानचिताः	१६९	२८९
हास—शोक—द्वेष—हर्षा	३२५	३८५
हा स्वामिपुत्राः क गताः	२५	२३२
हा हतोऽस्म्युग्रविधिना	८९६	३४३
हित्वा कषायान् मलवत्	२८४	१९३
हिमं सहेत हेमन्ते	७०	२७७
हिमाचलकुमारस्य	२५८	२२१
हिमाद्रेरोषधीभिंद्र	१८७	२६१
हिमान्याऽप्यपराभूतः	६८	२९८
हिरण्य—स्वर्णरत्नानां	५११	१८२
हिंसका अप्युपकृता	१३५	२७३
हिंसादीनामेकतमो	१५९	१६२
हिंसा—ऽनृत—स्तेयाऽब्रह्म	१२०	३०५
हिंसैव सर्वपापानां	३१६	३८५
ही ! स्याद् युगान्तः को ह्येव	३२३	२४१
हुताशन इवाऽऽहुत्या	५४२	३३१
हृत्वाऽवस्वापनीं देव्या	५४	३४५
हृदयं कुट्टयन्तः स्वं	१७८	२३७
हृदयस्थेन शल्येने	८९	३६७
हृदयस्थो विदित्वाऽस्मान्	२५२	३२१
हृदयेन समं विश्व	१५७	२८९
ह्रदिनीनाथ—ह्रदिनी	३४	३०८
हृष्टः प्रदक्षिणीकृत्य	३१०	१७६
हृष्टा तैर्दोहदैः पूर्णैः	५६	२७६
हृष्टो नैमित्तिकं राजा	४५९	३२८
हे कुमाराः ! क यूयं स्थ	१८४	२३७
हेतुरासनकम्पस्य	२५३	१७४
हे पारिजात ! मन्दार !	१७०	२८९
हेमद्युती सार्धचतुः	५८	१८६
हेमन्ते हिमगहनाः	१५	२६९
हेमरत्नमयांश्चैव	१८४	२६१
हेरम्बा इव नागास्यैः	६५४	३३५
हे वत्सा ! हेतुना केन	२१३	२२०
हेषां विदधिरे केऽपि	४५५	१८०
हेषितैर्बृंहितैर्बन्दि	३००	२२३
हैमनेन निशीथेन	६९	२९८
हैमाः कुम्भाः प्रभासन्ते	१३	३५६
हैरण्यवतैरवते	५६७	२०२

परिशिष्टं द्वितीयम् ॥
(द्वितीयतृतीयचतुर्थपर्वगत-विशेषनामसूचिः) ॥

"अ"

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अक्ष (यक्षः)	६७	३९१
अग्नि (भवनपतिनिकायः	३९२	१७८
अग्नि (लोकान्तिकः)	७६३	२०८
अग्निकुमारः	५१२	२००
अग्निकुमारकः	६९४	२५३
अग्निजटी	४६२	३२८
	५०६	३३०
	५१९	३३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	५३६	३३१
	५४५	३३१
	७६५	३३८
अग्निमाणवः (इन्द्रः)	३९३	१७८
	५१२	२००
	१७४	२६१
अग्निशर्मा	४९	३९०
अग्निशिखः (इन्द्रः)	३९१	१७८
	१७४	२६१
अग्निशिखा	५१२	२००
अङ्गः	५७४	२४९
	७५१	३३८
अङ्गदेशः	६६६	२०५
अचलः (बलदेवः)	१७८	३१९
	१८०	३१९
	२०९	३२०
	२१०	३२०
	२१४	३२०
	२३५	३२१
	२४१	३२१
	२४५	३२१
	३०८	३२३
	३७१	३२५
	३७७	३२५
	३८६	३२६
	४०८	३२७
	५३३	३३१
	६३५	३३४
	६६६	३३५
	७७६	३३९
	८९०	३४२
	९०८	३४३
अचलानुजः	६७९	३३५
	७०९	३३७
	७५६	३३८
	८१४	३४०
अच्युतः (इन्द्रः)	३७१	१७८
	४६२	१७९
	४६३	१८१
	४६७	१८१

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	४७९	१८१
	१९८	१९१
	२६७	१९३
अच्युतः (द्वादशः कल्पः)	७५२	२०७
,,	७५९	२०८
,,	७६७	२०८
अच्युतः (इन्द्रः)	७६७	२०८
	७७८	२०८
	७८९	२०८
	७९१	२०८
	१८९	२६१
	२६३	२६४
	३०१	२६५
	७१	२७१
	४०	२८५
	१२६	२९५
	३९	३४५
	८४	३५८
	३३	३६५
अच्युतकल्पः	९७	३५९
अच्युतनाथ	४८०	१८१
अच्युतपतिः	४७०	१८१
	१९१	२६१
अच्युता (शासनदेवी)	१८२	२९०
अच्युतेन्द्रः	४३४	१८०
	४५९	१८०
	४९२	१८१
	१७२	२६१
	१८३	२६१
	१९०	२६१
	२७२	२६४
	२७३	२६४
अजमुख (म्लेच्छजातिः)	६८२	२०५
अजित (जिनः)	१०३	१७०
	५७९	१८४
	१३८	३०५
अजितजिनेश्वरः	१	२२६
अजितनाथ	१	१५७
	३९	१८६
	८९	१८७
	९७	१८७

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	१०१	१८८
	१५१	१८९
	९७	३४७
अजितप्रभुः	१	१८५
	७२	१८७
	७६	१८७
	२५४	१९२
	३१५	१९४
	३२३	१९५
	१६४	२३७
	२०५	२३८
	६१६	२५०
	६७२	२५२
	६८५	२५२
अजितबला (शासनदेवी)	८४५	२१०
अजितस्वामी	२	१५७
	२	१८५
	२२	१८५
	४०	१८६
	५४	१८६
	७३	१८७
	८३	१८७
	९४	१८७
	९६	१८७
	१०९	१८८
	११५	१८८
	१४०	१८९
	१५६	१८९
	१७४	१९०
	२५९	१९३
	२८०	१९३
	४३६	१९८
	१०८	२२९
	१४७	२३०
	६८	२३४
	६१७	२५०
	६६५	२५२
	४०५	२६८
अजितेश	४५	१८६
	७०	१८७
	१७८	१९०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अञ्जन (गिरिः)	८३९	२१०
अञ्जनपर्वतः	७०६	२०६
अञ्जना (शक्रपत्नी)	७३४	२०७
अञ्जनागिरिः	६०६	३३३
अञ्जनाचलः	७२	१५९
	५२६	१८२
	५२७	१८२
अञ्जनाद्रि	५२२	१८२
	५२४	१८२
	७२१	२०६
	२४०	३२१
अणपन्निक (व्यन्तरदेवनिकायः)		
	४१२	१७९
अतिकायः (व्यन्तरेन्द्रः)	४०४	१७९
	५२२	२०१
	१७८	२६१
अतिपाण्डुकम्बला (मेरौ शिला)		
	३५१	१७७
	४८३	१८१
	१७१	२६१
	३३	२९२
	३५	२९७
	३८	३४५
	३१	३५७
	३२	३६५
	३७	३७६
अतिबलः	१२८	२३५
अतिभूतिः	६९	३७७
अनग्न (कल्पद्रुमः)	५१२	१८२
अनन्तजित्	४७	३६५
	२९९	३७४
	३०२	३७४
अनन्तनाथः	२	३६४
	५०	३६५
	२०१	३७०
	२२१	३७१
अनन्तस्वामी	१	३६४
	२०३	३७०
	३०३	३७४
	३६२	३८६
अनिन्दिता (दिक्कुमारी)	१६३	१७२

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अनिवृत्तिबादर	३३७	१९५
अनुत्तरः	७०	१८७
	७६७	२०८
	७७९	२०८
	७८१	२०८
	१०९	३१७
	१६७	३१८
	१३१	३४८
	७३	३५८
अनुत्तरविमान (कल्पातीतदेवलोकः)		
	३०६	१६६
अनुराधा	२९	२९७
	३०	२९७
	३१	२९७
	३२	२९७
	४७	२९७
	७४	२९८
अन्तरद्वीपः	६८४	२०५
	६८७	२०५
अन्तरद्वीपजः	६८४	२०५
अन्तरायक	७७९	३३९
अन्तरायकर्म	४७५	१९९
	१३३	३०५
अन्ध्रः (म्लेच्छजातिः)	६८१	२०५
	११०	२१७
अन्ध्र (देशः)	७०	३४६
अपरविदेह	६०४	२०३
,,	६९	३५८
,,	६४	३७७
,,	५९८	२०३
,,	६०२	२०३
अपराजितम् (अनुत्तरविमानम्)		
	६१५	२०३
	७५५	२०७
	३३	२८५
अपराजित	४	२८४
अपराजिता (दिक्कुमारी)	१९९	१७३
अपराजिता (पुष्करिणी)	७२३	२०६
अपस्वापनिका (निद्रा)	१६८	२६१
,,	६८	२७१
अपस्वापनी ,,	८६	२७२
	३६	३४५
	५४	३४५

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अपागभरतवर्षार्ध	२४१	२२१
	१५९	३१८
	२६०	३२२
	१९२	३७०
	७४	३७७
अपागरुचकः	१४५	२६०
अपाच्यरुचकशैल	२०२	१७३
अपायविचयध्यान	४५६	१९९
अपूर्वकरण (गुणस्थानम्)	३३५	१९५
	६५	३०३
अप्रतिरूपः (व्यन्तरेन्द्रः)	४०५	१७९
	५२०	२००
अप्रमत्तसंयत (गुणस्थानम्)		
	३३५	१९५
अप्सराः (ईशानपत्नी)	७३५	२०७
अब्धिः	६०८	२५०
अब्धिकुमारः	५१३	२००
अभयकरा (शिबिका)	२०५	२८१
अभिनन्दन	१	२६९
	८९	२७२
	९२	२७२
	९९	२७२
	१०१	२७२
	१७१	२७४
	१७५	२७४
	२६३	२८३
अभीचि (नक्षत्रम्)	५०	२७०
	६२	२७१
	११०	२७२
	१२२	२७३
	५३५	२०१
अमरपतिः (नृपः)	१	३८७
	१८	३८७
अमरपुरी	१	३८९
अमराचलः (मेरुः)	११९	२३५
अमरावती (स्वर्गनगरी)	२४	१५८
	१४	३०७
	४५	३८८
अमला (ईशानपत्नी)	७३५	२०७
अमितः (इन्द्रः)	३९१	१७८
	५१४	२००
	१७६	२६१
अमितवाहनः (इन्द्रः)	३९४	१७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	५१४	२००
	१७६	२६१
अमोघा (पुष्करिणी)	७२२	२०६
अम्बुधिः (विजयायाः स्वप्नः ११)		
	३२	१६८
अम्बुधिः(वैजयन्त्याः स्वप्नः)	८०	१६९
अम्मका	७६	३७७
	८०	३७७
अम्मादेवी	१२०	३७९
अयोध्या	१७४	१७२
	२७५	१७५
	२३५	१९२
	३८	२३३
	३९	२३३
	२१	२६९
	११६	२७३
	१४८	२७९
	२१०	३२०
अरवाक (म्लेच्छजातिः)	६८०	२०५
अरिदमन	९	२९१
अरिन्दमसूरिः (राजर्षिः)	६७	१५९
	८१	१५९
	८९	१६०
	१३१	१६१
	१४४	१६१
	२४७	१६४
	२६४	१६५
अरिष्टा (नगरी)	३	३६४
	१९६	३८१
	३५०	३८६
अरुण (लोकान्तिक)	७६३	२०८
अरुणद्वीपः	७३९	२०७
अरुणप्रभः	६३५	२०४
	६३६	२०४
अरुणवरः (द्वीपः सागरश्च)	७४०	२०७
अरुणाभासः (अब्धिः)	७३९	२०७
अरुणाभास (द्वीपसमुद्रौ)	७४०	२०७
अर्ककीर्तिः	४१८	३२७
	४४८	३२८
अर्चिर्माली (शक्रपत्नी)	७३४	२०७

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अर्थशास्त्र	२९	१८५
अर्धभरत	१९२	३५०
	१३१	३६०
	१६६	३३८
अर्धभारत	४६५	३२८
अर्बुद (देशः)	७३	३४६
अलका (देवपूः)	३२०	२२३
अलकापति (कुबेरः)	६४	१६९
अलघुपराक्रमः (ईशानसेनानीः)		
	३५५	१७७
	३७१	१७८
अलम्बुसा (दिक्कुमारी)	२१०	१७३
	१४७	२६०
	४९	३१५
अल्पवातः (तनुवातः)	५०१	२००
अवधि (ज्ञानम्)	३७	१६८
	३८५	१७८
	३९४	१७८
	३४७	१९५
	१३०	२१८
	१४०	२१८
	१४८	२१८
	१३७	२६०
	१६२	२६०
	२११	३६२
अवधिज्ञान	३०९	१६६
	३८	१६८
	३५३	१७७
	३७५	१७८
	१८९	१९०
	३४८	१९५
	७८३	२०८
	१७२	२६१
	३९२	२६८
	१६४	२७४
	२५२	२८३
	१८६	२९०
	११६	२९४
	२९३	३७४
	३५४	३८६
	३१४	३९९

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अवधिज्ञानी	१४३	३०५
अवन्तिः	९०	३३४
अवशिष्टः (इन्द्रः)	१७६	२६१
अवसर्पिणी (कालः)	४२	१६८
	१४९	१७१
	१८१	१७२
	२५७	१७४
	१२५	२५९
अवस्वापनी (निद्रा)	३३७	१७७
	५०१	१८२
अवस्वापिनी	८३	३१६
अव्याबाध (लोकान्तिक)	७६३	२०८
	२४७	३९७
अशनिवेगः	२५८	३९७
	२६४	३९७
	२६८	३९८
	२७२	३९८
	२७९	३९८
	२८२	३९८
अशुभनाम (कर्म)	१२३	३०५
अशोकः (वृक्षः)	२४५	१९२
	७२५	२०७
	११३	३१०
	२९२	३५३
	१६९	२८०
	२१८	२८२
	७७८	३३९
अशोकपादपः	२९१	३५३
	१८३	३६१
	२०२	३८१
अश्मक (देशः)	७०	३४६
अश्वकण्ठः (अश्वग्रीवः)	७४८	३३८
अश्वकन्धर ,,	६५८	३३५
अश्वकर्ण (अन्तरद्वीपः)	६९५	२०६
अश्वगाल (अश्वग्रीवः)	६१४	३३३
अश्वग्रीवः	२४६	३२१
	२५९	३२२
	३२७	३२४
	३३६	३२४
	३४३	३२४
	३५८	३२५
	३६४	३२५
	४३७	३२७
	४५३	३२८
	४६८	३२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	५०२	३२९
	५०७	३३०
	५१६	३३०
	५३०	३३१
	५३४	३३१
	५७०	३३२
	५७३	३३२
	६०३	३३३
अश्वपुर	७५	३७७
	१६६	३८०
	१९२	३८१
	२०१	३८१
अश्वबिन्दु (निमित्तज्ञः)	२६२	३२२
अश्वभद्र (ग्रामः)	९१	२३४
अश्वमुखः (अन्तरद्वीपः)	६९४	२०६
अश्वरत्नम्	३४	२१५
	१८९	२३७
अश्वसेनः	६९	३९१
	९६	३९२
	१०३	३९२
	१११	३९२
	३०९	३९९
	३१६	३९९
अश्वसेनभूः (सनत्कुमारः)	२७९	३९८
अश्वसेनसूः ,,	१७४	३९५
	२४१	३९७
आश्वसेनिः ,,	२५७	३९७
	२८३	३९८
अष्टम (तपः)	५६१	२४९
अष्टमङ्गली	३१६	१७६
	१८१	२१९
	११७	२२९
अष्टमभक्तः	५७०	२४९
अष्टाधिकरणीग्रन्थः	२७८	२४०
अष्टापदः	८७	२२८
	९८	२२८
	१०५	२२९
	१३०	२२९
	२९	२३२
	५३३	२४८
	५३८	२४८

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
अष्टापदगिरिः	११३	२२८
	१२६	२२८
	१५७	२३०
अष्टापदतीर्थ	१५०	२३०
अष्टापदशैलः	२९	२७०
अष्टापदाद्रि	१६५	२३०
	१६७	२३०
	५३६	२४८
	५४१	२४८
	५५९	२४८
	५६४	२४९
असिः (रत्नम्)	१९०	२३७
असिताक्षः (देवः)	१९३	३९५
असिरत्न	३३	२१५
	२०६	२२०
अहि (व्यन्तरनिकायः)	४०३	१७९
अहिच्छत्र (नगरम्)	६६८	२०५

"आ"

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
आग्नेय (अस्त्रम्)	७०५	३३६
आग्नेयबाण	७०६	३३६
आचामाम्लवर्धमान (तपः)	३४१	४००
आज्ञाविचय	४४९	१९८
आदर्श (मङ्गलम्)	४६४	१८१
आदर्शमुखः (अन्तरद्वीपः)	६९३	२०६
आदिजिनेश्वरः	१०७	२२९
आदित्य (इन्द्रः)	४१६	१७९
आदित्य (लोकान्तिक)	७६३	२०८
आदित्यम् (नवमं ग्रैवेयकम्)	७५४	२०७
आदित्ययशाः (भरतपुत्रः)	१२६	२३५
	१२७	२३५
आनत (नवमकल्पः)	७५२	२०७
	७६५	२०८
	७९५	२०९
	१०२	२५९
	११३	२५९
आनन्दः (गणधरः)	१०९	३१०
	११०	३१०
आनन्दकरी (नगरी)	६९	३५८
आनन्दा (दिक्कुमारी)	१९९	१७३
आपात (किरातजातिः)	२००	२२०
	२३५	२२१
	३६	३८८
आभाषिकः (अन्तरद्वीपः)	६८९	२०५
आमर्षः (लब्धिः)	३८७	४०१
आम्रकुब्जासन (योगासनम्)	८५	१६०
आयुः (कर्म)	४७२	१९९
आरण (एकादशः कल्पः)	७५२	२०७
	७६६	२०८
	७७८	२०८
	१९१	२६१
आरणाऽच्युतकल्प	४३५	१८०
आरणाऽच्युतकल्पेन्द्रः	४६५	१८१
आर्यवेद	९२	१६९
	२७४	२४०
आर्षभिः (भरतः)	१४०	३४८
आवर्तः (विजयः)	६००	२०३
आवर्तकः (देशः)	७३	३४६
आवलिः (परिव्राजकः)	२१	२२६
	२२	२२६
	२४	२२६
	२५	२२६
आहारकशरीर	७१	१८७

"इ"

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
इक्ष्वाकु (वंशः)	३	१६७
	१४८	१७१
	६७४	२०५
	१०४	२५९
	३१	२७०
	१२८	२७९
	२०	३४४
	१५३	३८०
इक्ष्वाकुकुल	८२२	३४०
इक्ष्वाकुवंश	४	१६७
	९४	३४७
	१२	३६४
इक्षुवर (द्वीप-समुद्रौ)	७०३	२०६
इन्दुद्वीपः	६३७	२०४
इन्द्रदत्तः	११६	२७३
	११९	२७३
इन्द्रध्वजः	३३५	२६६
इलादेवी (दिक्कुमारी)	२०७	१७३
इष्वाकारः (पर्वतः)	६४३	२०५
	६४५	२०५
इष्वाकाराद्रि	६५	२१६

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
ईशानः (इन्द्रः)	३६२	१७७
	३७२	१७८
	७३२	२०७
(द्वितीयकल्पः)	७५१	२०७
	१७३	२६१
	१९३	२६१
	२०६	२६२
	७२	२७१
	८५	२७१
	१८५	२८१
	४१	२८५
	४७	२९७
	४५	३४५
ईशानकल्प	७६०	२०८
	७३५	२०८
ईशानकल्पाधिपतिः	४०	३४५
ईशानपतिः	३७	३०२
ईशानाङ्कः	३६	२९२
	३३	३५७
	३९	३७६
ईशानाधिपतिः	३४	३६५
ईशानेन्द्रः	५२४	१८२
ईश्वरः	३७	२९७
	५२७	२०१
	१८०	२६१
	७८४	३३९
	२३६	३५१
ईश्वरः (पातालकलशाः)	६२३	२०४
"उ"		
उद्धासन (योगासनम्)	८६	१६०
उग्राः (उग्रकुलीना आर्याः)		
	६७४	२०५
उच्चैर्गोत्र (कर्म)	१३२	३०५
उड्र (म्लेच्छजातिः)	६७९	२०५
उत्कटिका (योगासनम्)	८२	१५९
उत्कल (देशः)	६८	३४६
उत्तरकुरुक्षेत्रम्	५९६	२०३
	६५४	२०४
उत्तरकुरुः (इन्द्राण्या नगरी)	७३७	२०७
उत्तरभद्रपदा	३६०	३५५
	२६	३५६
	२८	३५६
	१७६	३६१
उत्तरानन्दा (दिक्कुमारी)	१९९	१७३
उदकसीमकः (पर्वतः)	६३१	२०४
उदकाभासः (पर्वतः)	६३१	२०४
उदग्रुचकशैल	२०९	१७३
उदयाचल	२०८	१६३
उदयाद्रि	५८५	२४९
उन्मग्ना	१९१	२१९
	१९२	२१९
	२७५	२२२
	३४	३८८
उमादेवी	२०४	३५०
उर्वशी	२०५	३५०
	१४१	३४८
	१४७	३४८
	३२०	३९९
	३२९	४००
उल्कामुखः (अन्तरद्वीपः)	६९७	२०६
उष्ट्रासन (योगासनम्)	८४	१५९
"ऊ"		
ऊर्ध्वरुचक (गिरिः)	१८८	१७२
"ऋ"		
ऋक्षमालिनी	५८६	३३२
ऋषभ (प्रथमजिनः)	१०३	१७०
	५२५	१८२
	९६	२२८
	६८५	२५२
	२८	३८८
ऋषभकूटाद्रि	२५५	२२१
ऋषभध्वजः	४५४	३२८
ऋषभस्वामी	९४	३४७
	२	१६७
	५६	१६८
	९८	१८७
ऋषभस्वामी	९९	२२८
	१००	२२८
	१०१	२२९
	११९	२२९
	१२०	२३५
	१६४	२३७
	१९४	२३७
	५५३	२४८
ऋषभा (शाश्वतप्रतिमा)	७१४	२०६
ऋषिः (इन्द्रः)	५२७	२०१
	१७९	२६१
ऋषिपालः (इन्द्रः)	५२७	२०१
ऋषिपालकः	१७९	२६१
ऋषिवादितः (व्यन्तरनिकायः)		
	५२५	२०१
"ए"		
एकनासा (दिक्कुमारी)	२०७	१७३
एकत्वश्रुतम् (शुक्लध्यानम्)		
	३४०	१९५
एकावलि (तपः)	३०२	१६६
एकावली	१८	२६९
	१२	३०१
एकोरुक (द्वीपः)	६८७	२०५
	६८८	२०५
"ऐ"		
ऐरावणः	४२	३६५
ऐरवत	५६७	२०२
	६६	३९१
ऐरावत	४२८	१७९
	७४३	२०७
	३	२५५
	३	३६४
ऐशान (इन्द्रः)	७६०	२०८
ऐशान (कल्पः)	७७६	२०८
	७८९	२०८
	७९३	२०९
ऐशानकल्प	४८३	१८१
	३३९	४००
ऐशानकल्पेन्द्रः	३५३	१७७
ऐशानपतिः	३६१	१७७
ऐशानसुरेश्वरः	३६५	१७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

"ओ"

ओघस्वरा (चमरस्य घण्टा) ३७६ १७८
३७७ १७८

"क"

ककुद्मान् (वैजयन्त्याःस्वप्नः २)
७५ १६९
कच्छ ६०० २०३
११३ २१७
७३ ३४६
कच्छदेश १६८ २१९
कच्छवान् (विजयः) ६०० २०३
कच्छ (विजयः) ३ ३१३
कनकावलि (तपः) ३०२ १६६
कन्दर्पा (देवी) १९९ ३८१
कपालीकरण (योगासनम्) ८५ १६०
कफ (कफौषधिः) ३८७ ४०१
कमला (लक्ष्मीः, विजयायाः स्वप्नः ४)
२५ १६७
कमलालया ११७ २५९
कम्बोजः (देशः) ७६ ३४६
करी (स्वप्नः) ५३ २७१
करुण (वृक्षप्रकारः) २४९ १९२
कर्कोटकः (पर्वतः) ६३५ २०४
६३६ २०४
कर्णप्रावरणः (अन्तरद्वीपः) ६९५ २०६
कर्माये ६७६ २०५
कलिङ्गः ६६७ २०५
६८ ३४६
कल्पद्रुमः १७० २८९
कश्मीरकः ७५ ३४६
काकन्दी १४ ३०१
काकिणी (रत्नम्) ३९ २१५
२५६ २२१
२७५ २२२
१९० २३७
३३ ३८८
३८ ३८८
काञ्चनपुर २८ २२६
१ ३८९
काञ्चनपुरी ६६७ २०५

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

काञ्चनम् ३३० १९५
काञ्चनाचल (मेरुः) ३७३ १७८
कामधेनुः ४०१ २४४
काम्पील्य (पुरी) ६६८ २०५
११ ३५६
कायाः (म्लेच्छजातिः) ६७९ २०५
कायोत्सर्ग (योगासनम्) ८६ १६०
कार्दमक (पर्वतः) ६३५ २०४
कालः (व्यन्तरेन्द्रः) ४०४ १७९
५१९ २००
१७६ २६१
२७८ २२२
कालमुख (म्लेच्छजातिः) १६७ २१९
कालराक्षसिध (विद्या) ५८५ ३३२
कालिका (देवी) १६१ २७४
कालिन्दी ८५ ३९१
कालोदः (समुद्रः) ५३७ २०१
६४३ २०४
६४४ २०४
७४४ २०७
७४७ २०७
काशिदेशः १२ २९१
काशी ६६७ २०५
कासी (देशः) ५७४ २४९
किन्नर (व्यन्तरनिकायः) ४०३ १७९
किन्नरः (व्यन्तरेन्द्रः) ४०४ १७९
५१८ २००
५२१ २०१
१७७ २६१
१९७ ३८१
किम्पुरुष (व्यन्तरनिकायः) ४०३ १७९
५१८ २००
५२१ २०१
५२२ २०१
१७७ २६१
किम्पुरुषः (व्यन्तरेन्द्रः) ४०६ १७९
किरात ६८२ २०५
कीर्तिवीर्य (भरतसन्ताने नृपः)
१३१ २३६
कीर्तिसाधु ३६८ ३८६
कुक्ष (म्लेच्छजातिः) ६८१ २०५

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

कुणालक (देशः) ६७२ २०५
कुण्डलद्वीपः ७४१ २०७
कुण्डलोदः (समुद्रः) ७४१ २०७
कुन्तल (देशः) ७० ३४६
कुबेरः १०५ २७२
५८ २८६
५४ ३६५
३१५ ३९९
३१९ ३९९
३२१ ३९९
३२५ ३९९
३३१ ४००
३३२ ४००
कुमार (यक्षः) २८६ ३५३
कुमुदः (विजयः) ६०३ २०३
कुमुदा (पुष्करिणी) ७२३ २०६
कुम्भः (मङ्गलम्) ४६४ १८१
कुरु (युगलिकक्षेत्रम्) १३ १५७
५९६ २०३
६५४ २०४
६६८ २०५
६७४ २०५
५७३ २४९
७६ ३४६
कुरुजाङ्गलदेश ६८ ३९१
कुरुबकः (वृक्षः) २४५ १९२
कुरुवंशः ३१६ ३९९
३४३ ४००
कुरुवंश २४१ १९७
कुलक्ष (म्लेच्छजातिः) ६८२ २०५
कुलाचल २१६ २३८
कुलार्य ६७५ २०५
कुलूत (देशः) ७५ ३४६
कुशार्तक (देशः) ६६८ २०५
कुसुमः (यक्षः) १८० २९०
कुरगडुक २४९ ३८३
कूष्माण्डः (व्यन्तरनिकायः)
५२६ २०१
कृतमाल (देवः) १४६ २१८
१४८ २१८
१५२ २१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	१७८	२१९
	५४	२२७
	३०.	३८८
कृतवर्मा (नृपः)	१५	३५६
	४७	३५७
	७४	२९८
कृपाणस्तम्भनी (विद्या)	५८२	३३२
कुशानुवर्षिगी ,,	५८४	३३२
कृष्णः (त्रिपृष्ठः)	२४१	३२१
कृष्णराजी (इन्द्राण्या नगरी)	७३७	२०७
कृष्णा (इन्द्राण्या नगरी)	७३७	२०७
केकय (देशः)	७५	३४६
केतक (देशः)	६७२	२०५
केतकीद्रुमः	२४३	१९२
केयूप (पातालकलशः)	६२३	२०४
केरल (देशः)	७१	३४६
केवलम् (ज्ञानम्)	२८९	२६५
	३१७	२६६
	३९६	२६८
	२५७	२८३
	१२०	२९५
	११६	३००
	८५७	३४१
	९२	३४७
	३५८	३५६
केवलज्ञान	१००	१८८
	३४८	१९५
	६६४	२५२
	३१९	२६६
	१२३	२७३
	१६६	२७४
	२५३	२८३
	१८७	२९०
	१	२९१
	४१	२९२
	११३	३००
	८९	३४७
	२८४	३५३
	३०५	३५३
	३३१	३५४
	३५५	३५५

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	१७६	३६१
	२९४	३७४
	३५५	३८६
केवलज्ञानम्	६५	२८६
	७४	२९३
केवलज्ञानी	११७	२९४
केवलम् (ज्ञानम्)	३४४	१९५
	२१३	२८१
	७४	२९८
	७८०	३३९
	१९८	३७०
	१९५	३८१
	२७७	३८४
केशवः (त्रिपृष्ठः)	३७१	३२५
	६७८	३३५
	८७९	३४२
	१८६	३७०
	२१८	३८२
केसरी (ह्रदः)	५७५	२०२
केसरिपुङ्गवः (जिनमातुः स्वप्नः)	३४	३१४
केसरो ,, ,,	११७	२५९
कैकय (म्लेच्छजातिः)	६८२	२०५
कैटभ (मधुनृपस्य भ्राता)	१००	३६७
कैलाशः (पर्वतः)	६३५	२०४
	६३६	२०४
कैशिक (देशः)	७१	३४६
कोटिशिला	१९१	३८१
कोटीवर्ष (नगरी)	६७२	२०५
कोल्लाद्रि (देशः)	७२	३४६
कोशल (देशः)	५७३	२४९
कोसलः ,,	६६७	२०५
	६७	३४६
कौङ्कण (कुङ्कणदेशीय)	११२	२१७
	७१	३४६
कौबेरीवर्ति (देशः)	७६	३४६
कौमोदकी (गदा)	६२४	३३४
	६८९	३३६
	६९५	३३६
कौलाचार्य	३४६	३५५
	३९-	३५७

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
कौवेर (देशः)	७२	३४६
कौशाम्बी	८४८	२१०
	१८	२८४
	७४	३६६
कौशाम्बीपुरी	६६९	२०५
कौस्तुभः (मणिः)	६२५	३३४
क्रथ (देशः)	७१	३४६
क्रन्दितः (इन्द्रः)	५२६	२०१
क्रौञ्चक (म्लेच्छजातिः)	६८१	२०५
क्रौञ्चनिषदन (योगासनम्)	८४	१५९
क्रौञ्चस्वरा (घण्टा)	३९६	१७८
क्षपकश्रेणिः	२१२	२८१
	१७५	३६१
	६५	३०३
क्षीणमोह (गुणस्थानम्)	३३९	१९५
क्षीरनिधिः (क्षीरसमुद्रः)	१०१	३१६
क्षीरनीरधिः	२६	२७०
क्षीरमहोदधिः	१२१	२५९
क्षीरवर (द्वीप-समुद्रौ)	७०२	२०६
क्षीरोदः	२६१	१९३
	१८६	२६१
	२८६	२६५
	२८७	२६५
	१११	२७२
	२१५	३५१
	३२४	३९९
क्षीरोदधिः	१७	३४४
क्षीरोदसागर	४२४	१७९
क्षुद्रहिमवान् (पर्वतः)	५७३	२०२
	६१६	२०३
	६८५	२०५
क्षुद्रहिमवत्कुमार	२४८	२२१
	२५१	२२१
क्षुद्रहिमवद्गिरि	२३७	१७४
	२४७	२२१
	२४९	२२१
क्षुद्रहिमाचलकुमारकः	२५२	२२१
क्षेत्रार्य	६६५	२०५
क्षेमा (नगरी)	३	३१३
क्षेमपुरी	३	२५५
	३	२९१

"ख"

खण्डप्रपाता	४१	३८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	२६४	२२२
	२६५	२२२
	२७३	२२२
	५५	२२७
	४२	३८८
खस (म्लेच्छजातिः)	६८०	२०५
खासिक ,,	६८०	२०५

"ग"

गगनवल्लभपुर	३१९	२२३
	३३३	२२४
गङ्गा	१७	१६७
	५४	१६८
	१०८	१७०
	४२९	१८०
	५७९	२०२
	५८३	२०२
	२९	२१४
	५०	२१५
गङ्गा (देवी)	२५९	२२१
	२६०	२२१
	२६१	२२१
	२६३	२२२
गङ्गा (नदी)	२७७	२२२
	२८०	२२२
	५३	२२७
	१६०	२३०
	१६५	२३०
	१६७	२३०
	५७५	२४९
	५७६	२४९
	५७८	२४९
	१२८	२५९
	६	२६९
	४७१	३२८
	५५८	३३१
	१९५	३५०
	१	३६६
	३९	३८८
	४३	३८८
	१६	३५६

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	१६२	२३०
गङ्गासागरः (तीर्थम्)	५७६	२४९
गजः (विजयायाः स्वप्नः१)	२२	१६७
गजः (वैजयन्त्याः स्वप्नः१)	७५	१६९
गजकर्णः (अन्तर्द्वीपः)	६८३	२०५
	६९१	२०६
गजपतिः (जिनमातुः स्वप्नः)	११६	२५९
गजपुर	६६८	२०५
गजमुखः (अन्तरद्वीपः)	६८२	२०५
	६९३	२०६
गजरत्नम्	३३	२१५
	१८९	२३७
	३२	३८८
	३३१	४००
गणिपिटक	४४७	१९८
गन्धमादन (पर्वतः)	५९५	२०३
गन्धर्व (व्यन्तरनिकायः)	४०३	१७९
	५१९	२००
	५२३	२०१
गन्धापाती (पर्वतः)	६१७	२०३
गन्धिला (विजयः)	६०४	२०३
गन्धिलावती	६०४	२०३
गरुडध्वजः (त्रिपृष्ठः)	७०२	३३६
गर्दतोय (लोकान्तिक)	७६३	२०८
गाङ्ग (निष्कुट)	२६९	२२२
	४४	३८८
गारुडास्त्रम्	७०२	३३६
गारुडी (विद्या)	५८२	३३२
गीतयशा (व्यन्तरेन्द्रः)	१७९	२६१
गीतयशा ,,	४०६	१७९
गीतरतिः ,,	४०४	१७९
	१७८	२६१
गुणमञ्जरी	१४१	३४८
	१५०	३४८
	१५४	३४९
	१५७	३४९
	१५९	३४९
	१८३	३५०
गुणवती	९३	३६७
गुणस्थान	३३९	१९५
गूढदन्तः (अन्तरद्वीपः)	६९९	२०६

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
गृहाधिपः (रत्नम्)	३६	२१५
	३५९	२२४
गोकर्णः (अन्तरद्वीपः)	६९१	२०६
गोड़ (म्लेच्छ जातिः)	६७९	२०५
गोत्रकर्म	४७४	१९९
गोदोहिकासन (योगासनम्)	८२	१५९
गोमूत्रिकाक्रम	१८७	२१९
गोशीर्षचन्दन	२०३	१६३
	२११	१६४
	२३७	१७४
	४६३	१८१
	३१	२१४
	२५३	२२१
	११५	२२९
	४३८	२४५
	६४३	२५१
	६८९	२५२
	६९२	२५२
	६९३	२५२
	१५५	२६०
	१५७	२६०
	४३	३४५
	४७	३४५
	३५	३५७
	३७	३६५
	५२	३६५
	१८६	३८१
गोशुभ (गणधरः)	७८३	३३९
	८४९	३४१
गोस्तूप (पर्वतः)	६३१	२०४
गोस्तूपा (पुष्करिणी)	७२२	२०६
गोस्तूपा (ईशानपत्नी)	७३५	२०७
गौड (देशः)	६७	३४६
गौतमद्वीपः	६३८	२०४
ग्रीष्म	१३२	३९३
ग्रैवेयकं	७०	१८७
	७६७	२०८
	७७८	२०८
	७७९	२०८
	७९१	२०८
	७९६	२०९
	८०४	२०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	१७	२८४
	३३	२८५
	२११	३६२
	९	३८७
	१८	३८७
घनदन्तकः (अन्तरद्वीपः)	६९९	२०६
घनवात (वायुविशेषः)	१४८	१६१
	४८०	१९९
	४९२	२००
	७६९	२०८
	२७५	२६४
घनवातः	४९३	२००
घनवाहन (नृपः)	४	२२६
	७	२२६
	३९	२२७
घनाब्धिः (घनोदधिः)	४९१	२००
	४९२	२००
घनाम्भोधि (उदधिविशेषः)	१४८	१६१
	४८०	१९९
	४९४	२००
	४९५	२००
	५०१	२००
	५०२	२००
घनोदधि	७६८	२०८
	७६९	२०८
घृतवर (द्वीप–समुद्रौ)	७०३	२०६
घृतोदः	७४५	२०७
घोटककण्ठ (अश्वग्रीवः)	४०९	३२७
घोरघोषिणी (विद्या)	५८७	३३२
"च"		
चक्र	९३७	२१३
	५	२१४
	६	२१४
	८	२१४
	९	२१४
	१४	२१४
	१७	२१४
	२०	२१४
	२५	२१४

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	२७	२१४
	२८	२१४
	१९०	२३७
	२०१	२३८
चक्रधरः	७६७	३३८
चक्रमारणी (विद्या)	५८४	३३२
चक्रम्	४१	२१५
	४३	२१५
	८४	२१६
	१०६	२१७
	१२७	२१७
	१३६	२१८
	१४५	२१८
	१८६	२१९
	१९९	२२०
	२४६	२२१
	२४७	२२१
	२६४	२२२
	७१२	३३७
	७२४	३३७
	७२५	३३७
	७२६	३३७
	७२७	३३७
	७२८	३३७
	७४०	३३८
	७४२	३३८
	७४६	३३८
	७४७	३३८
	७४८	३३८
	७६२	३३८
	१९२	३५०
	२५९	३५२
	२६३	३५२
	२६४	३५२
	२६८	३५२
	२६९	३५२
	२७०	३५२
	२७२	३५२
	२८१	३५३
	१५४	३६०

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	१५५	३६०
	१५६	३६०
	१५८	३६१
	१६१	३६१
	१६८	३६१
	१७६	३७०
	१८२	३७०
	१८६	३७०
	१८८	३७०
	१८९	३७०
	१९५	३७०
	१९९	३७०
	१८१	३८१
	१८२	३८१
	१८३	३८१
	१८७	३८१
	१८८	३८१
	२०२	३८१
	२१	३८७
	२५	३८७
	२८१	३९८
	३११	२९९
	३१२	३९९
	३६७	४०१
चक्ररत्न	४००	१९७
	२५९	२२१
	२९७	२२३
	१७७	३१९
	२३	३८७
चक्ररत्नम्	११	२१४
	१५	२१४
	१९	२१४
	२१	२१४
	२६	२१४
	४७	२१५
	८३	२१६
	१०९	२१७
चञ्चुक (म्लेच्छजातिः)	६८१	२०५
चण्डदीधितिमण्डलम् (जिनमातुः स्वप्नः)	११९	२५९
चण्डवेगः	२६७	३२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	२७९	३२२
	२८६	३२३
	३०५	३२३
	३०६	३२३
	३२७	३२४
	३३७	३२४
	३४४	३२४
चण्डशासनः (नृपः)	७७	३६६
	८४	३६७
	९२	३६७
चण्डसिंहः	६६१	३३५
चन्दनगोधा	१३	२३२
चन्द्र (इन्द्रः)	४१६	१७९
चन्द्रप्रभः (जिनः)	१	२९६
	२	२९६
	४९	२९७
	१११	३००
	१२१	३००
	१२२	३००
	१५२	३०६
	६३	३०९
चन्द्रप्रभप्रभुः	१११	३००
	५८६	३३२
चन्द्रयशाः (राजा)	२४०	३९७
चन्द्रवेगः	२६०	३९७
	२६२	३९७
	२६३	३९७
	२६७	३९८
	२८३	३९८
	२८६	३९८
चन्द्रा (देवी)	२८८	३५३
चन्द्राङ्क (चन्द्रलाञ्छन)	३२	२९७
चन्द्रानना (पुरी)	१३	२९६
चन्द्रानना (शाश्वतप्रतिमा)	७१४	२०६
चन्द्रिका (गदा)	६२६	३३४
चमर (इन्द्रः)	३७४	१७८
	३७७	१७८
	४०२	१७९
	५१०	२००
	६९७	२५३
	१७३	२६१

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	२४३	२८२
	४८०	३२९
चमरचञ्चा (चमरेन्द्रनगरी)		
	३७४	१७८
चमरेन्द्रः	३७८	१७८
	५२६	१८२
चम्पक (दधिमुखाद्रिः)	७२५	२०७
चम्पा	६६६	२०५
	१३	३४४
	३५९	३५५
चर्म (रत्नम्)	१९१	२३७
	३१	३८८
चर्मरत्न	१६०	२१८
	१६३	२१९
	१७४	२१९
	३८	२१५
	२२३	२२०
	२२५	२२०
	२२६	२२०
	२२७	२२०
	२४३	२२१
चामरः (प्रातिहार्यम्)	३६९	१९६
चारित्रमोहनीय (कर्म)	४७१	१९९
	९३	३०४
	१०५	३०४
चारु (गणधरः)	३७४	२६७
,,	३८२	२६८
चित्तरक्षगुरुः (मुनिः)	१०	३६४
चित्रकनका (दिक्कुमारी)	२१२	१७३
चित्रकूट	५९३	२०३
	५९७	२०३
चित्रगुप्ता (दिक्कुमारी)	२०३	१७३
चित्रा (दिक्कुमारी)	२१२	१७३
	१४८	२६०
	३४	२८५
	३७	२८५
	६०	२८६
	४८७	३२९
चित्राङ्ग (कल्पद्रुः)	५१४	१८२
चिन्तामणिः	१८८	१९०
चीन (म्लेच्छजातिः)	६८१	२०५
चूत (दधिमुखाद्रिः)	७२५	२०७

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
चेदि (देशः)	६७०	२०५
चैत्यतरुः	३२७	२६६
चैत्यद्रुम	३९८	१९६
चैत्यपादप	३३२	२६६
	२१५	२८२
	६७	२८६
	७०	२९३
	७७	२९८
	७९६	३३९
	१८४	३६१
	२०५	३७१
	२०६	३७१
चैत्यवृक्षः	३७३	१९६
	१२६	२७३
	८०४	३४०
	२०३	३८१
चौड (देशः)	७१	३४६

"छ"

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
छत्र (रत्नम्)	१९१	२३७
छत्रत्रयम्	३६९	१९६
छत्रत्रयी	२२५	२८२
छत्रत्रितय	३२९	२६६
छत्ररत्नम्	३८	२१५
	२२५	२२०
	२२६	२२०
	२२७	२२०
छन्नदशादिक् (विद्या)	५८५	३३२

"ज"

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
जगती (जम्बूद्वीपस्य)	६११	२०३
	६१५	२०३
जगतीजालकटक	१५	२९१
जगन्नन्दगुरुः	१०	३०१
जगन्नन्दन	४२७	३२७
जनार्दन (वासुदेवः)	७३७	३३७
	७६२	३३८
	८७२	३४२
	१८९	३७०
जन्मकल्याण	२००	२६२
	४४	२९२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
जम्बूद्वीप	३	१५७
	१	१६७
	४०	१६८
	१४७	१७१
	२५६	१७४
	२७५	१७५
	३२८	१७६
	३५९	१७७
	५३२	२०१
	५३६	२०१
	५५२	२०१
	५५४	२०१
	५६६	२०२
	६११	२०३
	६१९	२०३
	६४१	२०४
	६४२	२०४
	७४८	२०७
	३९	२१५
	७२	२१६
	१००	२१७
	२२०	२३८
	२८९	२४०
	१०३	२५९
	३	२६९
	२१	२६९
	१२१	२७८
	१८	२८४
	१२	२९१
	२७	२९१
	१९	३०१
	१३	३४४
	१३२	३४८
	११	३५६
	६९	३५८
	७४	३५८
	१२	३६४
	६९	३६६
	७४	३६६
	१५	३७५
	६४	३७७
	१०	३८७
	६८	३९१
जम्बुद्वीप्य	६६३	२०५
जम्बू (वृक्षः)	१७५	३६१
जयद्रथः	६६	३५८
	६७	३५८
जयन्तम् (अनुत्तरविमानम्)		
	६१५	२०३
	७५५	२०७
जयन्ता (पुष्करिणी)	७२३	२०६
जयन्ती (दिक्कुमारी)	१९९	१७३
जया	२५	३४४
	३०	३४५
	३२	३४५
जयादेवी	३१	३४५
	३६	३४५
	५३	३४५
	५६	३४५
	६५	३४६
जलकान्त (इन्द्रः)	३९१	१७८
	५१३	२००
	१७५	२६१
जलप्रभः (इन्द्रः)	३९४	१७८
	५१३	२००
	१७५	२६१
जल्ल (जल्लौषधिः)	३८७	४०१
जह्नु	४४	२२७
	१२९	२२८
	१३५	२२८
	१४८	२३०
	१५७	२३०
	१६१	२३०
	१६२	२३०
	१६७	२३०
	५९९	२५०
जह्नुकुमारः	१५५	२३०
जाङ्गल (देशः)	६६८	२०५
	७६	३४६
जात्यार्य	६७४	२०५
जालकटकः	६१३	२०३
	६१४	२०३
जाह्नवी	३८४	१७८
	१६७	२३०
	१८१	३१९
	२६	३४४
	७९	३६६
जाह्नवीदेवी	२८५	२२२
जितशत्रुः (अजितस्वामिनः पिता)		
	४	१६७
	१३	१६७
	४१	१६८
	४६	१६८
	६७	१६९
	१०३	१७०
	१४८	१७१
	२५६	१७४
	२७५	१७५
	३५९	१७७
	५०४	१८२
	५१०	१८२
	५२१	१८२
	५३०	१८३
	५५६	१८३
	२८	१८५
	७२	१८७
	७८	१८७
	९०	१८७
	९४	१८७
	९७	१८७
	९८	१८७
जितारि	१०४	२५९
	२१५	२६२
	२३५	२६३
	२४३	२६३
जिनधर्मः (श्रेष्ठिपुत्रः)	४४	३९०
	५२	३९०
	६१	३९१
	६२	३९१
	७४	३९१
जृम्भकाः (देवाः)	५१०	१८२
	५५८	१८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

२५४ २६३
१०५ २७२
५८ २८६
जोनक (म्लेच्छजातिः) १६७ २१९
ज्योतिः (देवनिकायः) ३८१ १९६
८०९ ३४०
ज्योतिर्माला ४४६ ३२८
४४८ ३२८
ज्योतिर्लोकः ५३१ २०१
ज्योतिश्चक्रम् ५३३ २०१
ज्योतिष्कः ३६० १९६
५२९ २०१
५३१ २०१
२१० २६१
३२४ २६६
३३७ २६६
३३८ २६६
७९३ ३३९
८०८ ३४०
ज्वलनजटी ४१६ ३२७
४६१ ३२८
४६८ ३२८
४७६ ३२९
४८३ ३२९
४९६ ३२९
४९९ ३२९
५०४ ३३०
५२१ ३३०
५३१ ३३०
५३५ ३३१
५३७ ३३१
५७४ ३३१
५७९ ३३२
५८९ ३३२
६२३ ३३४
६४३ ३३४
६६२ ३३५
७७६ ३३९
ज्वलनप्रभः १४० २३०
१४४ २३०
१७० २३७

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

१८६ २३७
१९३ २३७
५६० २४९
५६१ २४९
५६३ २४९
५६८ २४९
६०० २५०
ज्ञात (वंशः) ६७४ २०५
ज्ञान–दर्शनावारकर्म ८७ ३०४
ज्ञान–दृष्ट्यावरणीय ७७९ ३३९
ज्ञानावरणकर्म ४६५ १९९
ज्ञानावरणीय ८५ ३०३
ज्ञानावृतिः ४६७ १९९

"ट"

टङ्कण (देशः) १६६ २१९

"ड"

डाहल (देशः) ७० ३४६
डोम्बिलिक (म्लेच्छजातिः) ६८० २०५

"त"

तक्षक (नागः) ६९४ ३३६
७१४ ३३७
तनुवात (वायुविशेषः) १४८ १६१
४८० १९९
४९३ २००
४९८ २००
तनुवायुः ४९६ २००
तपनः (सूर्यः, वैजयन्त्याः स्वप्नः ७)
७८ १६९
तमःप्रभा (नरकपृथ्वी) ३६४ ३५५
३०४ ३७४
तमिस्त्रकारिणी (विद्या) ५८३ ३३२
तमिस्रा (गुहा) २९ ३८७
तमिस्रा १४५ २१८
१७८ २१९
१८६ २१९
१९४ २१९
२७३ २२२
५४ २२७
ताम्रपर्णी २४ २९१

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

ताम्रलिप्त (देशः) ६८ ३४६
ताम्रलिप्ती (नगरी) ६६७ २०५
तारकः (राजपुत्रः) १९० ३५०
२१६ ३५१
२१७ ३५१
२२१ ३५१
२३१ ३५१
२३४ ३५१
२४१ ३५१
२४२ ३५१
२४५ ३५१
२५३ ३५२
२५४ ३५२
२५६ ३५२
२५७ ३५२
२५८ ३५२
२५९ ३५२
२६४ ३५२
२७० ३५२
२७३ ३५२
२७४ ३५२
२७५ ३५२
तार्क्ष्यासन (योगासनम्) ८५ १६०
तिगिञ्छ (द्रहः) ५७५ २०२
तिर्यग्जृम्भक (देवजातिः) १७९ १९०
तिर्यगायुषः १०८ ३०४
तिलोत्तमा (अप्सराः) २३६ २६३
३२६ ३९९
तीक्ष्णशूलिनी (विद्या) ५८५ ३३२
तीर्थकृन्नाम (कर्म) २ ३०१
तीर्थकृन्नामकर्म १९ २६९
११९ २७८
१६ २८४
१० २९१
११ २९६
११ ३४४
९ ३५६
११ ३६४
तुम्बुरु (यक्षः) २४६ २८३
३२८ ४००
तुरग (म्लेच्छजातिः) ६८२ २०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

तुषित (लोकान्तिक) ७६३ २०८
तोयधारा (दिक्कुमारी) १६३ १७२
तोषलः (देशः) ६७ ३४६
त्रसनाडी ७९७ २०९
त्रिकलिङ्ग (देशः) १११ ३१७
त्रिकूटाद्रि ३२ २२६
५५९ २४८
त्रिखण्डभरतक्षेत्र २१६ ३८२
त्रिपृष्ठः (वासुदेवः) २३४ ३२१
२३५ ३२१
२४५ ३२१
२८१ ३२२
२९१ ३२३
२९४ ३२३
३०० ३२३
३०८ ३२३
३०९ ३२३
३१४ ३२३
३४४ ३२४
३६३ ३२५
३८६ ३२६
३८९ ३२६
४०५ ३२६
४११ ३२७
४१४ ३२७
४५७ ३२८
४६४ ३२८
४६६ ३२८
४८३ ३२९
४८७ ३२९
४९० ३२९
५०४ ३३०
५०६ ३३०
५०७ ३३०
५१० ३३०
५३३ ३३१
५४५ ३३१
५८९ ३३२
५९६ ३३३
६०३ ३३३
६११ ३३३
६१५ ३३३
६१६ ३३३
६२१ ३३४
६२४ ३३४
६२८ ३३४
६३५ ३३४
६४१ ३३४
६४३ ३३४
६५८ ३३५
६५९ ३३५
६६६ ३३५
६८० ३३६
६८४ ३३६
६८८ ३३६
७०१ ३३६
७०७ ३३६
७२० ३३७
७३६ ३३७
७३८ ३३७
७५४ ३३८
७५९ ३३८
७६१ ३३८
७७० ३३९
७७६ ३३९
८१२ ३४०
८६६ ३४२
८७० ३४२
८७७ ३४२
८८६ ३४२
८८८ ३४२
त्रिमुख (यक्षः) ३८५ २६८
३८९ २६८
त्रिवण (देशः) ७३ ३४६

"द"

दक्ष (भूतानन्दसेनानीः) ३९५ १७८
दक्षिणभरतक्ष्मार्धम् ५०० ३२९
दक्षिणापथः २७८ ३२०
दक्षिणार्कवंशज्ञ २५५ १६५
दण्डः (रत्नम्) १९० २३७
५४२ २४८
५६७ २४९
दण्डक (देशः) ७१ ३४६
दण्डपद्मासन (योगासनम्) ८६ १६०
दण्डरत्ने १८१ २२९
१३६ २३०
१४५ २३०
१६१ २३०
१६२ २३०
५३६ २४८
५५६ २४८
५५७ २४८
५७१ २४९
३२ ३८८
दण्डरत्नम् ३४ २१५
४८ २१५
दण्डवीर्यः (भरतवंशे नृपः) १३३ २३६
दण्डासन (योगासनम्) ८३ १५९
दत्तः (गणधरः) १०५ २९९
१०६ २९९
दधिपर्ण (वृक्षः) १९५ ३८१
दधिमुखाद्रि ५२३ १८२
५२५ १८२
५२६ १८२
५२७ १८२
७२६ २०७
७२९ २०७
दर्दर (पर्वतः) ३६४ २२५
दर्दुर (गिरिः) ४३२ १८०
दर्शनावरणीय ४६७ १९९
दशार्ण (देशः) ६७१ २०५
७० ३४६
दशेरक (देशः) ७३ ३४६
दाडिम (वृक्षः) २५३ १९२
दामोदरः (ब्राह्मणः) ८६२ २११
दिक् (भवनपतिनिकायः) ३९२ १७८
दिक्कुमारः ५०९ २००
५१४ २००
दिनमणिः (सूर्यः, विजयायाः स्वप्नः ७)
२८ १६७
दिव्यकामिनी (विद्या) ५८३ ३३२
दिव्यध्वनिः २२० २८२
दीक्षाकल्याणक ६७१ २५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

२६४ २६४
दुन्दुभिः (प्रातिहार्यम्) २९२ १९४
३३५ २६६
२२४ २८२
दुन्दुभिनादः ३७७ १९६
दुरितारि (देवी) ३८७ २६८
३८९ २६८
दुःषमसुषमा (चतुर्थोऽरः) ३ १५७
दुःषमाकाल १३३ २२९
दृढरथः १६ ३०७
२५ ३०७
४६ ३०८
४ ३७५
३१ ३७६
दृष्टिमोहः (दर्शनमोहनीयकर्म)
४७१ १९९
९२ ३०४
दृष्ट्यावृतिः ४६८ १९९
देवकुरुः (इन्द्राण्या नगरी)
५९० २०३
६५४ २०४
७३७ २०७
देवच्छन्द ३६७ १९६
६५० २५१
३२६ २६५
३८१ २६८
१०९ २७२
१२७ २७३
१५६ २७४
८४८ ३४१
देवच्छन्दकः ३६९ १९६
७९५ ३३९
देवदत्तः ५७ ३५७
देवदूष्य (दिव्यवस्त्रम्) २०१ १९१
२५७ १९२
२६१ २४०
१५४ २६०
१५५ २६०
२६६ २६४
२८३ २६४
१०९ २७२

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

६४ २९३
१२४ ३४८
३४ ३५७
३५ ३५७
३६ ३६५
३९ ३६५
३१८ ३९९
देवरमणः (अञ्जनाद्रिः) ७०८ २०६
देवोत्तरकुरु (क्षेत्रम्) ४३१ १८०
५९८ २०३
७४३ २०७
द्रमिल (देशः) ७१ ३४६
द्रविड (म्लेच्छजातिः) ६८२ २०५
११० २१७
द्रुमः (चमरसेनानीः) ३७६ १७८
द्वारका १९३ ३५०
२८० ३५३
२९० ३५३
९१ ३५८
१२५ ३६०
१३५ ३६०
१८७ ३६१
१०१ ३६७
१३० ३६८
१३६ ३६८
द्वारवती ६६९ २०५
२१८ ३५१
२३२ ३५१
१७२ ३६१
१८२ ३६१
२०४ ३७०
द्वितीयशुक्लध्यान ३१४ २६६
१२२ २७३
७३ २९३
७७८ ३३९
२८३ ३५३
द्विपृष्ठः (वासुदेवः) २०८ ३५०
२१३ ३५०
२३२ ३५१
२३७ ३५१

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

२४१ ३५१
२४७ ३५२
२५२ ३५२
२५४ ३५२
२५९ ३५२
२६४ ३५२
२६५ ३५२
२७४ ३५२
२९८ ३५३
३५० ३५५
३६४ ३५५
३६६ ३५५
द्वीप (भवनपतिनिकायः) ३९२ १७८
२७६ १९३
५०९ २००
द्वीपकुमारः ५१४ २००

"ध"

धनद (कुबेरः) ५६ १६८
१७९ १९०
३२२ ३९९
धनमित्रः ७४ ३५८
७५ ३५८
७६ ३५८
७९ ३५८
९७ ३५९
धनिष्ठा (नक्षत्रम्) ८५९ ३४१
धनुर्वेदः २४८ २३९
धरः (पद्मप्रभस्वामिनः पिता)
२३ २८४
धरण (इन्द्रः) ३९५ १७८
५१० २००
१७४ २६१
धरणेन्द्रः (इन्द्रः) ३९१ १७८
धरित्रोदरिणी (विद्या) ५८४ ३३२
धर्मः (जिनवरः) १९४ ३८१
२१८ ३८२
धर्मघोषाचार्यः ९०३ ३४३
धर्मचक्र ३७७ १९६
९३७ २१३
३३० २६६
धर्मध्यान ४७६ १९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
धर्मनाथः	१	३७५
	१९८	३८१
	२१०	३८१
	३५२	३८१
	३६२	३८१
धर्मलाभः	७३	२७७
धर्मलाभाशीः	९०	१६०
धर्मसिंहः	६१	३७७
	६२	३७७
धर्मस्वामी	३६१	३८६
धातकी (धातकीखण्डद्वीपः)		
	६४१	२०४
	६४२	२०४
	६४७	२०४
	७४९	२०७
धातकीखण्डः	५३७	२०१
	६४०	२०४
	६५	२१६
	३	२५५
	३	२८४
धातकीखण्डद्वीपः	३	२९१
	३	२९६
	३	३५६
	३	३६४
	३	३७५
धातृ (इन्द्रः)	५२७	२०१
	१७९	२६१
धान्यकटपुर	६६	३५८
धारिणी	११२	३१७
धूमध्वजः (वैजयन्त्याः स्वप्नः १४)		
	८१	१६९
ध्रुवः (तारा)	५३३	२०१
ध्वजः (जिनमातुः स्वप्नः)		
	५४	२७१
	३६	३१४
ध्वनिताहिफणा (विद्या)	५८७	३३२
"न"		
नन्दकम् (खड्गम्)	६२५	३३४
नन्दन (वनम्)	७६	१५९
	१८८	१७२

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	४३१	१८०
	५६२	२०२
	४३४	२४५
	२३८	२६३
	१६५	२८९
	११५	३१७
	६७३	३३५
	३५	३५७
	८७	३९१
	२१६	३९६
नन्दनपुर	८६	३५८
नन्दनृपः	१०५	३१६
	१०६	३१७
नन्दनोद्यान	४५	३१४
नन्दपुरी	६९	३६६
नन्दा (दिक्कुमारी)	१९९	१७३
नन्दा (पुष्करिणी)	७२२	२०६
नन्दा (इन्द्राण्या नगरी)	७३७	२०७
	२७	३०७
	२९	३०८
	४५	३०८
	४७	३०८
	७६	३६६
	७९	३६६
	८४	३६७
	८६	३६७
	८७	३६७
	९०	३६७
नन्दा (शीतलजिनमाता)	२८	३०८
नन्दिघोषा (घण्टा)	३९६	१७८
नन्दिवर्धना (दिक्कुमारी)	१९९	१७३
नन्दिवर्धना (पुष्करिणी)	७२२	२०६
नन्दिषेण	१३	२७५
	४	२९१
	२७	२९१
	२८	२९१
नन्दिषेणा (पुष्करिणी)	७२२	२०६
नन्दिसुमित्रः (नृपः)	६९	३५८
	९३	३५८
नन्दिस्वरा (घण्टा)	३९६	१७८
नन्दीश्वर (द्वीपः)	५९	१६८

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	३६९	१७८
	३७२	१७८
	३८३	१७८
	३९०	१७८
	५२०	१८२
	५२१	१८२
	२७६	१९३
	७०३	२०६
	७३९	२०७
नन्दीश्वर (समुद्रः)	७३९	२०७
	६९९	२५३
	१६४	२६०
	२१३	२६२
	१७७	२७४
	२६४	२८३
	१३७	३०५
	४६	३६५
	२८५	३९८
नन्दीश्वरद्वीप	८३९	२१०
	९२	२२८
नन्दोत्तरा (पुष्करिणी)	७२२	२०६
नन्दोत्तरा (इन्द्राण्या नगरी)		
	७३७	२०७
	१४४	२६०
	४८	३१५
नन्द्यावर्तः (मङ्गलम्)	४६४	१८१
नभोगङ्गा	४०७	१९७
नरकान्ता (नदी)	५८१	२०२
नलिनगुल्मः (राजा)	४	३१३
	३०	३१४
नलिन (विजयः)	६०३	२०३
नलिनवान् (विजयः)	६०३	२०३
नवमिका (दिक्कुमारी)	२०७	१७३
नवमी (ईशानपत्नी)	७३५	२०७
नाग (भवनपतिनिकायः)	३९२	१७८
	३९७	१७९
	३९८	१७९
	५०७	२००
	५१०	२००
	१३७	२३०
	१३९	२३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

५६८ २४९
नागकुमारः ५६० २४९
५६१ २४९
५६२ २४९
नागकुमारकः ६२९ २०४
१७५ २३१
नागदत्तः ४ ३८९
२३ ३८९
४८ ३९०
नागपुर ३२१ ३९९
नागरङ्गः (वृक्षः) २४९ १९२
नागलोकः १३८ २३०
१४० २३०
१५६ २३०
नागवासिनी (विद्या) ५८४ ३३२
नागाश्रम् ६९७ ३३६
नागेन्द्रः १४४ २३०
नाट्यमालः (देवः) २६६ २२२
५५ २२७
४१ ३८८
नाट्यमालक (देवः) २६५ २२२
नानात्वश्रुतवीचारम् (शुक्लध्यानम्)
३३६ १९५
नानारूपिणी (विद्या) ५८५ ३३२
नान्दीपुर ६७० २०५
नाभेय २६९ ३८३
नामकर्म ४७३ १९९
नारदः ११६ ३६८
१२० ३६८
१२४ ३६८
१२८ ३६८
नारीकान्ता (नदी) ५८१ २०२
नाशिक्य (देशः) ७१ ३४६
नित्योद्योतः (अञ्जनाद्रिः) ७०८ २०६
निमग्ना (नदी) १९१ २१९
१९२ २१९
२७५ २२२
निर्धूमो विभावसुः (जिनमातुः स्वप्नः १४)
१२२ २५९
५६ २७१
३९ ३१४

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

निर्धूमपावकः (विजयायाःस्वप्नः १४)
३५ १६९
निर्धूमानलः ३९ ३१४
निशुम्भ (नृपः) ७२ ३७७
१४४ ३७९
१४६ ३७९
१५४ ३८०
१६५ ३८०
१६६ ३८०
१६७ ३८०
१६८ ३८०
१७८ ३८०
१७९ ३८०
१८४ ३८१
१८७ ३८१
१८८ ३८१
निषध (पर्वतः) ५६८ २०२
५७० २०२
५७१ २०२
५७५ २०२
६४३ २०४
निषधाद्रिः ५८९ २०३
निषधा ६१७ २०३
नीचैर्गोत्र (कर्म) १३१ ३०५
नील (पर्वतः) ५६८ २०२
५७१ २०२
६१८ २०३
नीलगिरिः ५९५ २०३
नीलाञ्जना २४६ ३२१
५४२ ३३१
नीलाञ्जनादेवी ४३६ ३२७
नीलाद्रि ५७५ २०२
नेपालः (देशः) ६८ ३४६
नेमिः (जिनः) १०३ ३४७
नैगमेषी (इन्द्रसेनापतिः) २५१ १७४
२६४ १७५
३६८ १७८
नैसर्प (निधिः १) २७८ २२२
५६ २२७
४३ ३८८
३१२ ३९९

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

"प"
पक्वणक (म्लेच्छजातिः) ६७९ २०५
पञ्चप्रज्ञप्तिः (व्यन्तरनिकायः)
५२५ २०१
पञ्चाननः (सिंहः, वैजयन्त्याः स्वप्नः ३)
७६ १६९
३२९ १९५
पञ्चाननयुवा (सिंहः, विजयायाः स्वप्नः ३)
२४ १६७
पञ्चाल (देशः) ६६८ २०५
७५ ३४६
पदस्थ (ध्याननाम) १ ३११
पद्म (ह्रदः) ५७६ २०२
५७३ २०२
५७७ २०२
६०२ २०३
१२० २५९
२०८ २८१
२०९ २८१
४ २९६
पद्मखण्डपुर ६६ २९८
पद्मचिह्नम् (कमललाञ्छनम्)
३८ २८५
पद्मप्रभः १ २८४
२ २८४
५१ २८५
१८३ २९०
१२५ २९५
पद्मप्रभप्रभुः ६५ २८६
१९५ २९०
१९६ २९०
पद्मभूपतिः २८ २९७
पद्मवती (दिक्कुमारी) २०७ १७३
पद्मसरः (स्वप्नः १०)
७९ १६९
३७ ३१४
पद्मसेनः ४ ३५६
२५ ३५६
पद्मरथः ४ ३६४
२६ ३६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
पद्महृदः	४२९	१८०
	२५३	२२१
	२५	२९१
	३७	३१४
पद्महृद	५७४	२०२
पद्मा (शक्रपत्नी)	७३४	२०७
	१	२८४
पद्माकरः (विजयायाः स्वप्नः १०)		
	३१	१६७
पद्मावती	६०२	२०३
पद्मासन (योगासनम्)	८२	१५९
पद्मोत्तर	४	३०७
	२६	३०७
	२७	३०७
	४	३४४
	२९	३४५
पन्नगास्त्रम्	६९६	३३६
	७०५	३३६
पयस्कुम्भः (जिनमातुः स्वप्नः ९)		
	१२०	२५९
पयोमुच् (स्तनितकुमारनिकाय)		
	३२०	२६६
पर्यङ्कासन (योगासनम्)	८४	१५९
पर्वतः (नृपः)	१४०	३४८
	१५१	३४८
	१६३	३४९
	१६४	३४९
	१७६	३४९
	१५०	३४८
पर्वतकः	१५६	३४९
	१६२	३४९
	१७१	३४९
	१७७	३४९
	१८१	३४९
	१८२	३५०
	१८५	३५०
	१८६	३५०
पर्वतभूपतिः	२०४	३५०
पर्वनिशाकरः (स्वप्नः)	३५	३१४
पवक (व्यन्तरनिकायः)	५२६	२०१
,, (व्यन्तरेन्द्रः)	५२८	२०१
पवक (व्यन्तरेन्द्रः)	१८१	२६१
पवकपतिः ,,	१८१	२६१
पवकाधिपः ,,	५२८	२०१
पवनवेगः	१३०	३४८
	१९७	३५०
पाञ्चजन्य (शङ्खः)	६२५	३३४
	६२८	३३४
	२५२	३५२
	२५३	३५२
	१३८	३६०
	१३९	३६०
	१६९	३६९
	१७०	३६९
	१७१	३८०
	३५०	४००
पाटला (वृक्षः)	२८३	३५३
पाटलीखण्डनगर	६७	२९३
पाण्डक (वनम्)	४३१	१८०
	६५१	२०४
पाण्डु (निधिः २)	२७८	२२२
पाण्ड्यः (देशः)	७१	३४६
पाताल (यक्षः)	२००	३७०
पाताललङ्का	३६	२२७
पादपोपगम (अनशनम्)	६७३	२५२
	६७७	२५२
पापा (नगरी)	६७१	२०५
पारस (म्लेच्छजातिः)	६८०	२०५
पारिजात (द्रुमः)	१७०	२८९
पार्श्वः (जिनः)	१०३	३४७
पालकम् (विमानम्)	२८१	१७५
	३२४	१७६
	१६४	२६०
	६६	२७१
	६३	३१५
	६४	३१५
पिङ्गनेत्रा	५८६	३३२
पिङ्गलः (निधिः ३)	२७८	२२२
प्रियङ्गु (वृक्षः)	२१२	२८१
पिशाच (व्यन्तरनिकायः)	४०३	१७९
	४०८	१७९
	४१२	१७९
	५१७	२००
	५१९	२००
पिहिताश्रवसूरिः	१४	२८४
पुण्डरीक ह्रदः	५७६	२०२
पुण्डरीका (दिक्कुमारी)	२१०	१७३
पुण्डरीकिणिका (पुष्करिणी)		
	७२३	२०६
पुण्डरीकिणी	३	३०१
	१०८	३१७
पुण्ड्र (देशः)	६८	३४६
पुनर्मत्स्य (देशः)	६७०	२०५
पुनर्वसुनृपः	७०	३०९
	७१	३०९
पुरुषवृषभ (नृपः)	६४	३७७
	७७	३७७
पुरुषसिंहः	५९	२७६
	९१	२७८
	११७	२७८
	१३९	२७९
	१२४	३१७
	८२	३७७
	८८	३७८
	१३२	३७९
	१५२	३८०
	१६८	३८०
	१८२	३८१
	१८४	३८१
	२०६	३८१
	३६४	३८६
पुरुषोत्तमः (वासुदेवः)	११०	३६७
	१३०	३६८
	१४९	३६९
	१५५	३६९
	१७१	३६९
	२०९	३७१
	२११	३७१
पुरोधोरत्नम्	३५	२१५
	३५९	२२४
पुरोहितरत्न	१८७	२३७
पुलिन्द (म्लेच्छजातिः)	६८१	२०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
पुष्कर (द्वीपः)	७०१	२०६
पुष्करद्वीपः	२८	२२६
पुष्करवरद्वीप	३	३०१
	३	३१३
	३	३४४
पुष्करार्धम् (द्वीपः)	५३८	२०१
	६४५	२०४
	६४६	२०४
	६४७	२०४
	६५६	२०५
	७०१	२०६
	७४९	२०७
पुष्करावर्त्तः (मेघविशेषः)	६२९	३३४
	२६४	३९७
पुष्करावर्तक	४२	२१५
	३४१	२४२
पुष्करोद (समुद्रः)	४२७	१७९
	७४४	२०७
पुष्करोदक; (उदधिः)	७०१	२०६
पुष्कलः (विजयः)	६००	२०३
	३	३०१
पुष्कलावती (विजयः)	६००	२०३
	३	२७५
	३	३०१
पुष्पकम् (विमानम्)	२३७	१६४
	३६४	१७८
पुष्पकरण्डक (उद्यानम्)	११५	३१७
	११९	३१७
	१२१	३१७
	१४२	३१८
पुष्पदाम (विजयायाः स्वप्नः ५)		
	२६	१६७
पुष्पनृपः	६१	३०३
	६२	३०३
पुष्पमाला (दिक्कुमारी)	१६३	१७२
पुष्पस्रक् (स्वप्नः ५)	५४	२७१
पुष्पोत्तर (विमानम्)	११	३६४
पुष्य (नक्षत्रम्)	६०	३७७
	१९५	३८१
पुष्य	३२	३७६
	३६०	३८६

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
पूर्णः (इन्द्रः)	३९१	१७८
	५१४	२००
	१७६	२६१
पूर्णकुम्भः (विजयायाः स्वप्नः ९)		
	३०	१६७
पूर्णकुम्भः (स्वप्नः ९)		
	७९	१६९
	५५	२७१
	३७	३१४
पूर्णभद्रः (व्यन्तरेन्द्रः)	४०४	१७९
	५२०	२००
	१७७	२६१
पूर्णमेघः (नृपः)	३२३	२२३
	३२४	२२३
	३२५	२२३
	३	२२६
	४	२२६
	९	२२६
	१८	२२६
	१९	२२६
पूर्वरुचकाद्रिः	१९८	१७३
पूर्वाषाढा (नक्षत्रम्)	२९	३०८
	७५	३०९
	१२२	३१०
पूर्वाषाढा	६७	३०९
पृथिवी (दिक्कुमारी)	२०७	१७३
	१११	३४७
	९२	३५८
	९७	३५९
पृथ्वी (सुपार्श्वजिनमाता)	२२	२९१
	२८	२९१
पृथ्वीदेवी	२९	२९२
	४६	२९२
	७९	२९३
पृथ्वीपुर	१३०	३४८
	९३	३६७
पोतनपुर	१५९	३१८
	२१३	३२०
	२८०	३२२
	३०७	३२३
	४७५	३२९

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	४९८	३२९
	५३०	३३०
	५७४	३३२
	७६१	३३८
	७६२	३३८
	७७१	३३९
	७७५	३३९
	७८८	३३९
	६७	३७७
	२९९	३७४
प्रजापतिः (राजा)	२०६	३२०
	२७८	३२२
	२७९	३२२
	२८१	३२२
	२८७	३२३
	३०५	३२३
	३०६	३२३
	३२५	३२४
	३४२	३२४
	३४८	३२५
	३५०	३२५
	३५४	३२५
	३५५	३२५
	३६०	३२५
	४१३	३२७
	४५९	३२८
	४६०	३२८
	४६४	३२८
	४६७	३२८
	४६८	३२८
	४७०	३२८
	४७४	३२९
	४७८	३२९
	४७९	३२९
	५२१	३३०
	५४५	३३१
	५८९	३३२
	७७६	३३९
	६५	३७७
प्रज्ञप्तिका (विद्या)	२६५	३९८
प्रतिरूपकः (इन्द्रः)	१७६	२६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
प्रतिष्ठः (नृपः)	१७	२९१
	४८	२९२
प्रत्यमुचक	१४६	२६०
प्रत्यमुचकाद्रि	२०६	१७३
प्रभङ्करा (नगरी)	४४२	३२८
प्रभञ्जनः (इन्द्रः)	३९३	१७८
	५१२	२००
	६२६	२०४
	१७५	२६१
प्रभाकरा (शक्रपत्नी)	७३४	२०७
प्रभास	११५	२१७
	१२४	२१७
	७६४	३३८
	२७७	३५३
	११८	३६८
	१९२	३७०
प्रभासतीर्थाधिपति	१२६	२१७
प्रभासतीर्थेश	११८	२१७
प्रभाससुर	११९	२१७
प्रभासाधिपति	५३	२२७
	२७	३८७
प्रभासेश	२५६	३२१
प्रयाग	५७४	२४९
प्रसूनस्रक् (स्वप्नः ५)	११८	२५९
प्राग्ज्योतिष (देशः)	६७	३४६
प्राग्मुचक	१४४	२६०
प्राग्विदेह	५९८	२०३
	६०१	२०३
	३	२६९
	३	२७५
	३	२८४
	३	२९१
	३	२९६
	३	३४४
	३	३५६
	३	३६४
	६९	३६६
	३	३७५
प्राजापत्य (त्रिपृष्ठः)	६१२	३३३
प्राणतः (इन्द्रः)	३६८	१७८
,, (दशमकल्पः)	७५२	२०७

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	७६५	२०८
	७६६	२०८
प्राणतः (इन्द्रः)	७६६	२०८
	१२	३४४
	२९	३४५
प्रियङ्गुः (वृक्षः)	११०	३१७
प्रियाल (वृक्षः)	१२१	२७३
प्रीतिकरम् (अष्टमं ग्रैवेयकविमानम्)		
	७५४	२०७
प्लक्षशाखी (वृक्षः)	७३	३०९
प्लवगलाञ्छनम्	६३	२७१
"फ"		
फलग्रन्थः	२७८	२४०
"ब"		
बकुलः (वृक्षः)	२४५	१९२
बकुलमतिः (सनत्कुमारस्य पत्नी)		
	१७७	३९५
	२८८	३९८
	२९६	३९९
बकुलमतिका	१७५	३९५
बन्धमोचनी (विद्या)	५८४	३३२
बर्बरक (द्वीपः)	१६६	२१९
बर्बर (म्लेच्छजातिः)	६७९	२०५
बलभद्रः (भरतवंशे नृपः)	१२९	२३५
बलभद्रः (बलदेवः)	१७५	३१८
	२३६	३२१
	२३८	३२१
	६२६	३३४
	७२९	३३७
	७४१	३३८
	८४५	३४१
	९०१	३४३
	३६८	३५५
	१३०	३६०
	१६९	३६९
	१८५	३७०
	२१०	३७१
	८९	३७८
बलवीर्य (भरतवंशे नृपः)	१३०	२३५

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	१३२	२३६
बलानुज (वासुदेवः)	४९३	३२९
	५७४	३३२
	६७१	३३५
	६९०	३३६
बलाहका (दिक्कुमारी)	१८९	१७२
बलिः (इन्द्रः)	३८५	१७८
	३८७	१७८
	४०२	१७९
	५१०	२००
	६९७	२५३
	१७३	२६१
	४८०	३२९
	७५	३५८
	७६	३५८
	८५	३५८
बलिचञ्चा (बलीन्द्रनगरी)	३८५	१७८
बलिभूपतिः	८३	३५८
बलीन्द्रः	५२७	१८२
बहुश्रुतः (मन्त्री)	४३८	३२७
बाहुबलिः	१०३	२२९
	१२५	२३५
	२७७	३८४
बुक्कस (म्लेच्छजातिः)	६८१	२०५
ब्रह्मा (इन्द्रः)	७७६	२०८
	५३	३६५
ब्रह्मदत्तः	२८९	१९३
	२९०	१९३
	२९९	१९४
	३००	१९४
	३०१	१९४
ब्रह्म (यक्षः)	१११	३१०
ब्रह्मभूपतिः	२००	३५०
	२२३	३५१
	२२४	३५१
ब्रह्मलोकः (पञ्चमकल्पः)	१४०	१८९
	७५१	२०७
	७६२	२०८
	७९०	२०८
	७९२	२०८
	७९९	२०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	५८	२९२
	५७	३०८
	५९	३०९
ब्रह्मस्थल (पुरम्)	६१	२८६
ब्रह्मा (इन्द्रः)	३६८	१७८
	७६२	२०८
	१९४	३५०
	१९६	३५०
	२०७	३५१
	२३२	३५१
	२८१	३५३
ब्रह्मोत्तर (देशः)	६९	३४६
ब्राह्मणवाहः (,,)	७४	३४६
"भ"		
भगीरथः	५४०	२४८
	५५५	२४८
	५५७	२४८
	५५८	२४८
	५५९	२४८
	५६०	२४८
	५६१	२४९
	५६३	२४९
	५७०	२४९
	५७२	२४९
	५७५	२४९
	५७६	२४९
	५७७	२४९
	५७९	२४९
	५८३	२४९
	५८७	२४९
	५९९	२५०
	६०२	२५०
	६०४	२५०
	६१०	२५०
	६०६	२५०
	६१४	२५०
	६१५	२५०
	६२०	२५०
	६३८	२५१
	६४२	२५१
	६५०	२५१
	६५१	२५१
	६५८	२५१
भङ्गी (नगरी)	६७२	२०५
भद्र	९६	३५९
	१०२	३५९
	१२५	३६०
	१७३	३६१
	१८९	३६१
	१९०	३६२
	२१६	३६२
	२३३	३६३
भद्रशालम् (मेरौ वनम्)	१०९	१६०
	४३१	१८०
	५१३	१८२
	५६१	२०२
	५६२	२०२
	६४९	२०४
	१८७	२६१
भद्रसेन (धरणेन्द्रसेनानीः)	३९५	१७८
भद्रा (दिक्कुमारी)	२०७	१७३
भद्रा (पुष्करिणी)	७२३	२०६
	१६४	३१८
	१९२	३१९
	२०७	३२०
	२१२	३२०
	१६	३८७
	१८	३८७
	१९	३८७
भद्रादेवी	१८०	३१९
	१९३	३१९
भद्रासन (योगासनम्)	८३	१५९
भद्रासन (मङ्गल्यम्)	४६४	१८१
भद्रिल	६६९	२०५
भद्रिलपुर	११	३०७
	३	३७५
भरणी (नक्षत्रम्)	५३५	२०१
भरतः (चक्री)	१०३	१७०
भरत (क्षेत्रम्)	१	१६७
	१०४	१७०
	२७५	१७५
	३२८	१७६
	३५९	१७७
	४२८	१७९
	६०५	२०३
	७४३	२०७
	७२	२१६
	७८	२१६
	९७	२२८
	१०५	२२९
	२२९	२२९
	१५१	२३०
	६३	२३३
	८१	२३४
	१२२	२३५
	१२६	२३५
	२२०	२३८
	१२१	२७८
	१८	२८४
	७६६	३३८
	३	३५६
	७४	३६६
	९३	३६७
	१३३	३६८
	३	३७५
	७२	३७७
	७५	३७७
	१	३८७
	१०	३८७
	६८	३९१
भरतक्षेत्र	५७९	२०२
	१५७	२१८
	३१९	२२३
	२८	२२६
	९७	२२८
	१३१	२२९
	२०२	२३८
	३८१	२४३
	२०४	२६२
	२९४	२६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	४४	३०२
	७५५	३३८
	७७	३४६
	११	३५६
	८६	३५८
	९१	३५८
	१९५	३६२
	३१२	३९९
भरतचक्री	१३१	२२९
भरतभूषण	७४	३५८
भरतवर्ष	४८३	२४६
भरतवर्षार्ध	९८	३६७
भरत (क्षेत्रम्)	१३१	२२९
भरत ,,	५४	२२७
	५५	२२७
	२१	२६९
भरतार्ध (क्षेत्रम्)	१५३	१७१
	१४०	२१८
	१३४	२३६
	१०३	२५९
	१४	३०१
	१३	३४४
	१३२	३४८
	१३९	३४८
	१९२	३५०
	२३६	३५१
	२७६	३५३
	८८	३५८
	१६८	३६१
	१६९	३६१
	११८	३६८
	१२१	३६८
	१२५	३६८
	१२९	३६८
	१४२	३६८
	४५	३७६
	१९०	३८१
भरतेश्वरः	१००	२२८
भवनपति	३९७	१७९
	३५९	१९५
	५०५	२००

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	५०६	२००
	३३७	२६६
	८०८	३४०
भवनाधिपः	५०७	२००
	७९२	३३९
भवनाधिपतिः	८०९	३४०
भवनेश	३८१	१९६
	३२३	२६६
	३३८	२६६
भानुभूपतिः	४९	३७६
भानुवेगः	२२०	३९६
	२२४	३९६
	२६०	३९७
	२६२	३९७
	२६३	३९७
	२६७	३९८
भामण्डल (प्रातिहार्यम्)	३७७	१९६
	३३५	२६६
भारत (भरतक्षेत्रसत्क)	२५६	१७४
	५६६	२०२
	६६५	२०५
	१००	२१७
	१५५	२१८
	१८६	२२२
	३४९	२२४
	९६	२२८
	१२	२९१
	१५	३७५
	३१७	३९९
भारतक (भरतक्षेत्रसत्क)	६६३	२०५
भावनः (वणिक्)	१०	२२६
	११	२२६
	१२	२२६
	१३	२२६
	१५	२२६
	१८	२२६
भाषार्य	६७८	२०५
भासां चयः (भामण्डलम्)	२२३	२८२
भिल्ल (म्लेच्छजातिः)	६८१	२०५
भीमः (व्यन्तरेन्द्रः)	४०४	१७९

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	५२१	२०१
	२७	२२६
	१७७	२२६
भीरुभीषिणी (विद्या)	५८७	३३२
भुवनक्षोभणी (विद्या)	५८२	३३२
भूत (व्यन्तरनिकायः)	४०३	१७९
	५१७	२००
	५२०	२००
भूतवादित ,,	५२६	२०१
भूता (ईशानपत्नी)	७३४	२०७
भूतानन्दः (इन्द्रः)	३९३	१७८
	३९५	१७८
	५१०	२००
	१७४	२६१
भूतावतंसिका (ईशानपत्नी)	७३४	२०७
भृकुटी (यक्षः)	१०९	२९९
भोगङ्करा (दिक्कुमारी)	१६३	१७२
	१३७	२६०
	३३	३०२
भोगमालिनी (दिक्कुमारी)	१६३	१७२
भोगवती (दिक्कुमारी)	१६३	१७२
भोगवती (पातालपुरी)	२४	१५८
	४	२९६
	१४	३०७
	१	३८९
भोज (कुलविशेषः भोगकुलं)	६७४	२०५
भ्रमररुत (म्लेच्छजातिः)	६८१	२०५

"म"

मकरन्दः (उद्यानम्)	८६	३९१
मकरसाङ्ककान्ति	४१६	१९७
मकराङ्क (मकरलाञ्छन)	३२	३०२
मगध	६६६	२०५
	५७४	२४९
	७६७	३३८
	१७०	३६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	१९३	३७०
	१९१	३८१
मघवा (चक्री)	२१	३८७
	३६	३८८
	३८	३८८
	४५	३८८
मघा (नक्षत्रम्)	२०६	२८१
	२१३	२८१
मघा	१४०	२७९
मङ्गलवान् (विजयः)	६०२	२०३
मङ्गला (सुमतिप्रभुमाता)	१३३	२७९
	१४२	२७९
	१८३	२८१
	१९५	२८१
मङ्गलादेवी ,,	१४०	२७९
	१४१	२७९
	१६४	२८०
	१७२	२८०
	१८१	२८०
मङ्गलावती (विजयः)	३	२६९
	३	३४४
मङ्गलावर्त्तः ,,	६००	२०३
मञ्जुघोषा (घण्टा)	३९७	१७८
	४०७	१७९
	४१४	१७९
मञ्जुस्वरा (घण्टा)	३९६	१७८
	४०७	१७९
	४१४	१७९
मणि (रत्नम्)	३९	२१५
	२७४	२२२
	१८५	२१९
	२२६	२२०
	१९०	२३७
	३३	३८८
मण्यङ्ग (कल्पद्रुमः)	५१२	१८२
मति-श्रुता-ऽवधिज्ञान	४७	१८६
मति-श्रुता-ऽवधि-मनःपर्यय	२८१	१९३
मति-श्रुता-ऽवधि-मनःपर्यायाः केवलं	४६६	१९९
मत्स्यः (मङ्गलम्)	४६४	१८१

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
मथुरा	६७१	२०५
	१४९	३१८
	१५०	३१८
मधु	११६	३६८
	१४२	३६८
	१५५	३६९
	१५६	३६९
	१६८	३६९
	१७०	३६९
	१७१	३६९
	१७६	३७०
	१७७	३७०
	१८३	३७०
	१८४	३७०
	१८६	३७०
	१८८	३७०
मधुरस्वरा (घण्टा)	३९६	१७८
मधुराजः	१३४	३६८
मध्यदेशः	६७	३४६
मध्यलोकः	५५२	२०१
मनःपर्ययः (ज्ञानम्)	२६४	१९३
	२८९	२६५
	१६५	२७४
	६६	२९३
	६५	२९८
	३५५	३५५
	२९३	३७४
मनःपर्यय ,,	११३	२७२
	२०७	२८१
मनःपर्ययी	१८७	२९०
मनोज्ञानम्	२५३	२८३
मनोरमम् (तृतीयं ग्रैवेयकं)	७५३	२०७
मनोरमा (शिबिका)	६१	२९८
मनोहरा ,,	६२	२९३
मन्दरः (मेरुः)	१७७	३६१
	२१५	३६२
मन्दराचल (मेरुः)	४५६	१८०
मन्दाकिनी (गङ्गा)	१५	२३२
	५५९	२४८
	५७१	२४९

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	४५	२७०
	२२	३६४
मन्दार (कल्पवृक्षः)	१७०	२८९
मयूरग्रीवा (राजा)	२४६	३२१
	४३६	३२७
	५४१	३३१
	६७३	३३५
मरीचिः (वीरजीवः)	११२	३१७
मरुद् (लोकान्तिक)	७६३	२०८
मल (लब्धिः)	३८७	४०१
मलय (अद्रिः)	३६४	२२५
मलयः (गिरिः)	४०	१५८
	४३२	१८०
	६६९	२०५
	४०७	२४४
	६८	३४६
	७७	३६६
मलयभूनाथः	७७	३६६
मलय	१२७	३९३
मल्लवर्त (देशः)	६९	३४६
मल्लिः (जिनः)	१०३	३४७
मल्लिनाथः	२९८	३८४
महाकच्छ (विजयः)	६००	२०३
महाकायः (व्यन्तरेन्द्रः)	४०६	१७९
	५२२	२०१
	१७८	२६१
महाकालः (व्यन्तरेन्द्रः)	४०५	१७९
	५१९	२००
महाकाल (निधिः ७)	२७८	२२२
	१७६	२६१
महाकाली (देवी)	२४८	२८३
महाक्रन्दितः (व्यन्तरनिकायः)	५२६	२०१
महागजः (स्वप्नः)	३३	३१४
महाघोषः (इन्द्रः)	३९४	१७८
	५१३	२००
महाघोषा (ईशानघण्टा)	३९५	१७७
	३५८	१७७
	३७१	१७८
	४६८	१८१
	१७५	२६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
महाद्रुमः (बलीन्द्रसेनानीः)	३८६	१७८
महाध्वजः (वैजयन्त्याः स्वप्नः ८)		
	७८	१६९
	११९	२५९
महापद्मः (ह्रदः)	५७४	२०२
	५७५	२०२
	५७६	२०२
	६०२	२०३
महापद्मः (निधिः ५)	२७८	२२२
	४	३०१
	२८	३०२
महापुण्डरीकः (ह्रदः)	५७६	२०२
महापुर	१२७	३४८
महापुरी	३	३५६
महापुरुषः (व्यन्तरेन्द्रः)	४०६	१७९
	५२२	२०१
	१७८	२६१
महाबलः	५	२६९
	४९	२७०
	७०	३६६
	१०३	३६७
महाभीमः (व्यन्तरेन्द्रः)	४०६	१७९
	५२१	२०१
	१७७	२६१
महामेरुः	६४८	२०४
महामेरुगिरिः	६५२	२०४
महायक्षः (शासनदेवः)	८४२	२१०
महाराष्ट्र	११२	२१७
	७०	३४६
महार्णव (स्वप्नः)	३८	३१४
महालक्ष्मीः ,,	३४	३१४
महावत्सः (विजयः)	६०१	२०३
महावप्रः ,,	६०३	२०३
महावात (घनवातः)	५०१	२००
महाविदेह (क्षेत्रम्)	५८०	२०२
	७४३	२०७
महावीरः	२४५	३८३
महाशिला	७६८	३३८
	२७८	३५३
महाशुक्रः (कल्पः)	७६४	२०८

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	१७३	२६१
	१५८	३१८
	२१६	३२०
महाश्वेत (इन्द्रः)	५२८	२०१
	१८०	२६१
महासरः (स्वप्नः)	१२०	२५९
	५५	२७०
महासेन	१८	२९६
	४८	२९७
महाहिमवान् (गिरिः)	५६८	२०२
	५७०	२०२
	५७१	२०२
	५७४	२०२
	६१६	२०३
	६१७	२०३
महाह्रदः	५७३	२०२
महिषाङ्क (महिषलाञ्छनः)		
	३३	३४५
महीमण्डल (नगरी)	१	३८७
महेन्द्रः (इन्द्रः)	३७१	१७८
	७२	१८७
	६८	२९३
	३००	३९९
महेन्द्रसिंहः	८५	३९१
	१०३	३९२
	११२	३९२
	१४७	३९४
	१६३	३९४
	१६४	३९४
	१६७	३९४
	१७५	३९५
	२९७	३९९
	२९८	३९९
	३०९	३९९
महेश्वरः	५२७	२०१
	१८०	२६१
महोरग (व्यन्तरनिकायः)	५१८	२००
	५२२	२०१
महोघस्वरा (बलीन्द्रघण्टा)	३८६	१७८

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
मागध (तीर्थम्)	४२८	१७९
	२८०	२२२
	७६३	३३८
	२७७	३५३
	२७८	३५३
	११८	३६८
	१९२	३७०
	२७	३८७
मागधकुमारकः	७६	२१६
मागधक्षेत्रम्	५०	२१५
मागधतीर्थ	७६	२१६
	२५	३८७
	२६	३८७
मागधतीर्थकुमारः	५५	२१५
	६८	२१६
मागधतीर्थाधिपति	८२	२१६
मागधतीर्थेश	६७	२१६
मागधपति	६९	२१६
	७७	२१६
	५२	२२७
मागधाधिपति	७३	२१६
मागधेश	२५६	३२१
माणव (निधिः ८)	२७८	२२२
माणवक	७००	२५३
माणवस्तम्भ (देवस्तम्भः)	४०७	२६८
माणिभद्रः (व्यन्तरेन्द्रः)	४०५	१७९
	५२०	२००
	१७७	२६१
मातङ्ग (यक्षः)	११०	२९४
मानवी (देवी)	७८६	३३९
मानसम् (सरः)	३८८	१७८
	६५३	२०४
	१८८	३९५
मानससरः	१८९	३९५
	१९०	३९५
मानुषायुः (कर्म)	११३	३०४
मानुषोत्तर (पर्वतः)	५४८	२०१
	६५५	२०४
	६६०	२०५
	६६१	२०५
	७०१	२०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	१९०	२१९
मारीचि (राजदूतः)	४५९	३२८
मार्त्तण्डः (स्वप्नः)	५४	२७९
मार्त्तण्डमण्डलम् ,,	३६	३१४
मालव (म्लेच्छजातिः)	६८१	२०५
	२२०	२८२
मालूरतरु	६४	३०३
माल्यवान् (गिरिः)	५९५	२०३
	६१८	२०३
मासपुरीवर्त (देशः)	६७२	२०५
माहेन्द्र (कल्पः)	७५१	२०७
	७५८	२०७
	७६१	२०८
	७७६	२०८
	१७२	२६१
माहेश्वरी (नगरी)	२०९	३२०
मिथिला	६६९	२०५
मिश्रकेशी (दिक्कुमारी)	२१०	१७३
मुद्गर (देशः)	६९	३४६
मुनिचन्द्रमुनिः	२३३	३६३
मुनिवृषभर्षिः	१०९	३१७
मुरुण्ड (म्लेच्छजातिः)	६७९	२०५
मुरलः (देशः)	७०	३४६
मुशलपाणिः (बलदेवः)	३१४	३२३
मुशली ,,	८९६	३४३
	१५९	३६१
मुसलपाणिः ,,	८१६	३४०
मूल (नक्षत्रम्)	२९	३०२
	६०	३०३
	६५	३०३
	१४९	३०६
मूल ,,	१२२	२९५
	३२	३०२
	६८	३४६
	५३५	२०१
मृगशिरः (नक्षत्रम्)	१३२	२५९
	२८४	२६५
	३१६	२६६
	४०१	२६८
मृगावती	१८२	३१९
	१९२	३१९

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	२०३	३२०
	२१५	३२०
मृगेन्द्रासनम् (प्रातिहार्यम्)		
	२२२	२८२
मृत्तिकावती (नगरी)	६७१	२०५
मेघ (भवनपतिनिकायः)	३९२	१७८
	१२९	२७९
मेघकुमारकः	३५६	१९६
मेघङ्करा (दिक्कुमारी)	१८९	१७२
	१४१	२०६
मेघमालिनी ,,	१८९	१७२
	४४४	३२८
मेघमुख (देवजातिः)	२१०	२२०
	२१२	२२०
	२२९	२२१
	२३४	२२१
	२३५	२२१
मेघवती (दिक्कुमारी)	१८९	१७२
मेघवदन (नागदेवाः)	२२०	२२०
मेघवन (नृपः)	४४३	३२८
मेघवाहन	२५	२२६
	२७	२२६
मेघस्वरा (घण्टा)	३९६	१७९
मेरकः (अर्धचक्री)	८८	३५८
	१०८	३५९
	११०	३५९
	११५	३५९
	११६	३५९
	१२५	३६०
	१३३	३६०
	१३४	३६०
	१३६	३६०
	१३९	३६०
	१४०	३६०
	१४७	३६०
	१४९	३६०
	१५०	३६०
	१५६	३६०
	१६१	३६१
	१६४	३६१
	१६५	३६१

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	१६६	३६१
	१६७	३६१
मेरु	२२	१५८
	१०९	१६०
	६१	१६८
	३७०	१७८
	३८४	१७८
	३९०	१७८
	४०२	१७९
	४११	१७९
	४१६	१७९
	७१	१८७
	५५४	२०१
	५६१	२०३
	६४१	२०४
	६४७	२०४
	६४८	२०४
	६५३	२०४
	७०७	२०६
	१७०	२६१
	१८१	२६१
	२२७	२६३
	३६२	२६७
	१०६	२७८
	१८	२९१
	३३	२९२
	३४	२९७
	४६	३५७
मेरु	५९०	२०३
मेरुगिरिः	२७५	३२२
मेरु	२१३	२६२
	८७	२७२
मेरु	६४९	२०४
मेरुशैल	३४५	१७७
	३५१	१७७
	३६०	१७७
	५३२	२०१
	८४	३१६
	३१	३५७
	३१	३६५
मेरु	६४५	२०४

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

६६२ २०५
मेघमुखः (अन्तरद्वीपः) ६९३ २०६
६९७ २०६
मेषसङ्क्रान्तिः ५१ ३०२
मैत्र (नक्षत्रनाम) ६४ २९८
मोहनीय (कर्म) ४७० १९९
७७९ ३३९

"य"

यक्ष (व्यन्तरनिकायः) ४०३ १७९
५१७ २००
५२० २००
१०८ २९९
७८४ ३३९
यक्षकर्दम (गन्धद्रव्यम्) २४३ १६४
९८ २९९
यक्षराट् (कुबेरः) ५९६ २५०
६७ ३९१
यक्षेश्वर ,, १५९ २७४
यथाप्रवृत्तिकरण (अध्यवसायः)
२०८ ३६२
यमक (गिरिः) ५९७ २०३
यमुना ६० १८६
४७१ ३२८
यवन (देशः) ७४ ३४६
यवनद्वीप १६६ २१९
यवनाः (म्लेच्छाः) ६७९ २०५
यशः (गणधरः) १९९ ३७०
यशोधरा (दिक्कुमारी) २०३ १७३
यशोमती (वैजयन्ती) ६५ १६९
याम्यभारतवर्षार्ध ४० १६८
१४७ १७१
युगन्धरगुरुः ९ २९६
यूपक (पातालकलशः) ६२३ २०४

"र"

रक्षस् (व्यन्तरनिकायः) ४०३ १७९
रजनीकर (स्वप्नः) ११८ २५९
५४ २७१
रतिकर (पर्वतः) ३२७ १७६
३६६ १७८
३६९ १७८

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

३७२ १७८
३८३ १७८
३९० १७८
रतिकराद्रि ७२८ २०७
७२९ २०७
७३० २०७
७३२ २०७
रतिवल्लभ २९ २२६
रत्नपुञ्जः (विजयायाः स्वप्नः १३)
३४ १६७
रत्नपुञ्जः (वैजयन्त्याः स्वप्नः १३)
८१ १६९
१२२ २५९
३९ ३१४
रत्नपुर २४६ ३२१
४३६ ३२७
१५ ३७५
४४ ३९०
५० ३९०
रत्नप्रभा (पृथ्वी) ४८८ २००
४९१ २००
४९५ २००
४९७ २००
५०४ २००
५१५ २००
५२४ २०१
५२९ २०१
२२७ २२०
रत्नमयध्वजः (विजयायाः स्वप्नः ८)
२९ १६७
रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमः
प्रभाः महातमःप्रभा ४८६ १९९
रत्नसञ्चया (इन्द्राण्या नगरी)
७३६ २०७
४ २६९
३ २९६
३ ३४४
रत्ना (इन्द्राण्या नगरी) ७३५ २०७
रत्नाचल (रोहणाद्रिः) ३५४ २२४
रत्नाद्रि २३८ २६३

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

रत्नावलि (तपः) ३०२ १६६
१८ २६९
रत्नोच्चया (इन्द्राण्या नगरी)
७३५ २०७
रथनूपुर (नगरी) ३२३ २२३
रथनूपुर चक्रवाल ४१५ ३२७
रथावर्त्तः (गिरिः) ५३९ ३३१
५७२ ३३२
५९४ ३३३
रथावर्त्तगिरः ७३६ ३३७
रन्ध्रवासिनी (विद्या) ५८३ ३३२
रमणीयः (विजयः) ६०२ २०३
७०८ २०६
३ २९१
रम्भकः परिव्राजकः) २१ २२६
२६ २२६
रम्भा (अप्सराः) २३६ २६३
१४१ ३४८
३२९ ४००
रम्य (विजयः) ६०१ २०३
रम्यक (वर्षम्) ५६६ २०२
५८१ २०२
६०१ २०३
रम्यवान् (विजयः) ६०१ २०३
राक्षस (व्यन्तरनिकायः) ५२१ २०१
राक्षसद्वीपः ३२ २२६
३९ २२७
४० २२७
राक्षसवंश ४० २२७
राक्षसी (विद्या) ३८ २२७
४० २२७
राजगृह ६६६ २०५
११० ३१७
राजन्य (जात्यार्यप्रकारः) ६७४ २०५
राजसिंहः ६८ ३७७
७० ३७७
राजादन (वृक्षः) २४९ १९२
राधा (विशाखानक्षत्रम्) ६५ २९३
राधा २८ २९१
राधावेध ५० १८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

राम (अचलबलदेव:) ६४३ ३३४
६५९ ३३५
७३१ ३३७
७३३ ३३७
रामरक्षिता (इन्द्राण्या नगरी)
७३७ २०७
रामा (इन्द्राण्या नगरी) ७३७ २०७
रामा (सुविधिजिनमाता) २३ ३०१
२९ ३०२
४८ ३०२
रावण: ६९२ ३३६
रिपुप्रतिशत्रु: १६० ३१८
१९४ ३१९
२२९ ३२१
रिष्ट (लोकान्तिक) ७६३ २०८
रिष्टपुर ७० ३०९
रुक्मी ५६८ २०२
५७१ २०२
५७६ २०२
६१७ २०३
६१८ २०३
रुचक (निर्मलप्रदेश:) ४८१ १९९
४८२ १९९
४८३ १९९
रुचक: (समुद्र:) ७४१ २०७
रुचक (द्वीप:) ३० ३६५
१४९ २६०
रुचकद्वीप २१५ १७३
२२१ १७३
७४१ २०७
३१ ३०८
रुद्र (नृपति:) ९१ ३५८
९६ ३५९
१०० ३५९
१२१ ३५९
१२२ ३५९
१२३ ३५९
१२५ ३६०

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

१३५ ३६०
१७३ ३६१
रूपकावती (दिक्कुमारी) २१५ १७३
रूपस्थ (ध्यानम्) २ ३४४
१६२ ३५४
रूपा (दिक्कुमारी) २१५ १७३
१४९ २६०
रूपांशिका (दिक्कुमारी) २१५ १७३
रूप्यकूला (नदी) ५८१ २०२
रेवती (नक्षत्रम्) २७ ३६५
६४ ३६६
१९८ ३७०
रोमक (म्लेच्छजाति:) ६८० २०५
रोहणाद्रि ४०१ २४४
रोहिणिऋक्ष २५८ १९२
रोहिणी (नक्षत्रम्) १९ १६७
१२४ १७०
३४४ १९५
१११ २५९
४५ २७०
५८२ ३३२
रोहिणी (ईशानपत्नी) ७३५ २०७
रोहिता (नदी) ५७९ २०२
रोहितांशा (नदी) ५७९ २०२
६ २६९
रौद्र: (स्वयम्भूनामवासुदेव:)
१३६ ३६०

"ल"

लकुस (म्लेच्छजाति:) ६८० २०५
लक्ष्मणा (चन्द्रप्रभजिनमाता)
२३ २९६
२९ २९७
३० २९७
३१ २९७
४७ २९७
लक्ष्मीदेवी ७० १५९
२७ २८५
लक्ष्मीवती (दिक्कुमारी) २०३ १७३
लङ्का ३४ २२७

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

३९ २२७
१ ३८९
लवण (समुद्र:) ६४३ २०४
१९५ ३५०
२१५ ३५१
लवणार्णव २८९ २४०
लवणोद ५३६ २०१
६२२ २०३
६४० २०४
६९६ २०६
३१ २२६
२१० २३८
लवणोदधि ६३९ २०४
६८६ २०५
६९८ २०६
७४४ २०७
७४७ २०७
११६ २१७
लाङ्गली (बल:) ७३८ ३३७
८९७ ३४३
३५० ३५५
लाङ्गूलिक (अन्तरद्वीप:) ६८९ २०५
लाट (देश:) ६७२ २०५
११३ २१७
लान्तक: (इन्द्र:) ३७१ १७८
लान्तक: (सप्तमकल्प:) ७५१ २०७
७६४ २०८
७७७ २०८
१७३ २६१
लावणक (लवणसमुद्रसत्क) ६६३ २०५
लोकान्तिक: २५२ २६३
लोहशृङ्खला (विद्या) ५८४ ३३२

"व"

वङ्ग (देश:) ६६७ २०५
वचनपेशला (विद्या) ५८६ ३३२
वज्रऋषभनाराच (संहननम्) ५७ १८६
वज्रदत्तर्षि: ११ ३१३
वज्रनाभ: १५२ २७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोकनं.	पृष्ठ नं.
	१५७	२७४
वज्रनाभगुरुः	१०	३४४
वज्रम्	१६२	२३०
	२१७	२३८
	१६९	२६१
	३८४	३२६
	४५	३४५
	१७८	३८०
वज्रवेग	२४७	३९७
	२५०	३९७
	२५३	३९७
	२५८	३९७
वज्रासन (योगासनम्)	८३	१५९
वटतरुः (वृक्षः)	६४	२८६
वडवामुख (पातालकलशः)	६२३	२०४
वत्स (विजयः–क्षेत्रम्)	४	१५७
	६६९	२०५
	३	२८४
	१८	२८४
वत्सकः (विजयः)	६०१	२०३
वत्सदेशः	६७	३४६
वत्समित्रा (दिक्कुमारी)	१८९	१७२
वनमाला (त्रिपृष्ठस्य माला)	६२५	३३४
वप्रः (विजयः)	६०३	२०३
वप्रकाञ्चनम् (धर्मनाथदीक्षोपवनम्)		
	१९४	३८१
वप्रावती (विजयः)	६०३	२०३
वरदामा (देवः)	७६३	३३८
	२७७	३५३
	११८	३६८
	१९२	३७०
वरदामकुमार	९७	२१७
	१०८	२१७
वरदामपतिः	७६	२१७
	१०८	२१७
	१२६	२१७
	५२	२२७
वरदामा	९०	२१६
	२७	३८७
वरदामाधिप	१०४	२१७

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
वरदामाधिपतिः	२५६	३२१
वराह (सुविधिजिनस्याद्यगणधरः)		
	१३६	३०५
वरुण (देशः)	६७०	२०५
वर्धकि (रत्नम्)	१८८	२३७
वर्धकि	३७	२१५
	५४	२१५
	३५९	२२४
	३४	३८८
वर्धकिरत्न	१९३	२१९
वर्धमानः (मङ्गलम्)	४६४	१८१
वर्धमानपुर	६६	३६६
वर्धमाना (शाश्वतप्रतिमा)	७१४	२०६
वर्षधराद्रिः	५६७	२०२
वल्गुः (विजयः)	६०४	२०३
वल्गुलिकासन (योगासनम्)		
	८३	१५९
वशिष्ठः (इन्द्रः)	३९४	१७८
	५१४	२००
वसुः (इन्द्राण्या नगरी)	७३६	२०७
वसुधारा	३०६	२६५
वसुन्धरा (दिक्कुमारी)	२०३	१७३
वसुन्धरा (इन्द्राण्या नगरी)		
	७३६	२०७
वसुपूज्य (वासुपूज्यजिनपिता)		
	२०	३४४
	२६	३४४
	५५	३४४
	५६	३४४
	२७	३४५
	६५	३४६
	९०	३४७
वसुभागा (इन्द्राण्या नगरी)		
	७३६	२०७
वसुमित्रिका (इन्द्राण्या नगरी)		
	७३६	२०७
वह्नि (वह्निकुमारदेवजातिः)		
	५०८	२००
वह्निजटी	६१६	३३३
	६२१	३३४
वाजिकन्धरः (अश्वग्रीवः)	६९६	३३६

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
वाजिग्रीवः „	४१४	३२७
	६०४	३३३
वाजिरत्नम् (अश्वरत्नम्)	२०५	२२०
वानवास (देशः)	७२	३४६
वानायुज „	७५	३४६
वायु (भवनपतिनिकायः)	३९२	१७८
	३३०	१९५
	५०८	२००
वायुकुमारः	५१२	२००
	३२०	२६६
वायुकुमारकः	३५५	१९६
	५१२	२००
	६९४	२५३
वायुवेगः	४१४	३२७
वाराणसी	६६७	२०५
	१२	२९१
वारिशोषिणी (विद्या)	५८४	३३२
वारिषेणा (दिक्कुमारी)	१८९	१७२
वारिषेणा (शाश्वतप्रतिमा)	७१४	२०६
वारुण (नक्षत्रम्)	३३	३४५
	१२५	३४८
वारुणास्त्रम्	७०९	३३७
वारुणिवर (द्वीप–समुद्रौ)	७०२	२०६
वारुणी (दिक्कुमारी)	२१०	१७३
वारुणोदः	७४५	२०७
वाल्हीक (देशः)	७६	३४६
वासुपूज्यः (जिनः)	१	३४४
	५६	३४५
	६५	३४६
	२८२	३५३
	३०७	३५३
	३६२	३५५
	३६९	३५५
	२२८	३६३
	१	३८७
वासुपूज्यकुमारः	९९	३४७
वासुपूज्यजिनेन्द्रः	२८७	३५३
विकटापाती (पर्वतः)	६१७	२०३
विक्रमयशाः (नृपः)	२	३८९
	७	३८९
	८	३८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

१६ ३८९
३४ ३९०
विचित्रकूट (पर्वतः) ५९३ २०३
५९७ २०३
विचित्रा (दिक्कुमारी) १६३ १७२
विजय (अनुत्तरविमानम्) ३०६ १६६
विजय (विमानम्) १८ १६७
३९ १६८
६१५ २०३
७५५ २०७
२० २६९
४९ २७०
१८० २८९
२०० ३५०
२१२ ३५०
२१३ ३५०
२३२ ३५१
२४७ ३५२
२५५ ३५२
२६१ ३५२
२६७ ३५२
२८१ ३५३
२९६ ३५३
२९८ ३५३
३६९ ३५५
३ ३५६
६७ ३६६
३४४ ४००
३९१ ४०२
विजयपुर २०८ २८१
१९० ३५०
विजयमङ्गला (विद्या) ५८६ ३३२
विजयसूरिः ३६९ ३५५
विजयसेन ५ २७५
७ २७५
४१ २७६
६३ २७७
विजया (दिक्कुमारी १९९ १७३
५३० १८३
विजया (पुष्करिणी) ७२३ २०६
विजयादेवी (अजितनाथमाता) १३ १६७

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

१८ १६७
२१ १६७
३६ १६८
४१ १६८
५२ १६८
५५ १६८
६७ १६९
६८ १६९
८३ १६९
१०४ २६९
१०८ १६९
१०९ १७०
११५ १७०
११६ १७०
१२४ १७०
१४६ १७१
१४८ १७१
१९२ १७२
२४२ १७४
२७५ १७५
३३३ १७७
३५९ १७७
५०५ १८२
५०९ १८२
विजया (राज्ञी) ७६ ३७७
७७ ३७७
७८ ३७७
विजय (त्रिपृष्ठपुत्रः) ८६७ ३४२
विदर्भ (देशः) १११ २१७
१०७ २९४
१०८ २९४
१०९ २९४
७० ३४६
विदिता (शासनदेवता) १८० ३६१
विदिग्रुचक (गिरिः) २१२ १७३
१४८ २६०
विदेह ५६६ २०२
६०४ २०३
६६९ २०५
६७४ २०५
६८ ३४६

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

६९ ३५८
६४ ३७७
विदेहक्षेत्रम् ३ १५७
विदेह ५८७ २०२
विद्युत् (भवनपतिनिकायः)
३९२ १७८
५०७ २००
विद्युत्कुमारः ५११ २००
विद्युज्जिह्वः (अन्तरद्वीपः) ६३६ २०४
६९७ २०६
विद्युद्दन्तः (अन्तरद्वीपः) ६९७ २०६
विद्युद्दंष्ट्रः (नृपः) २८ २२६
विद्युत्प्रभः (गिरिः) ५८९ २०३
,, (नृपः) ४४५ ३२८
विधातृ (इन्द्रः) १७९ २६१
विधातृकः ,, ५२७ २०१
६५ २७७
७२ २७७
विनयनन्दनः ९४ २७८
विनयन्धरसूरिः ३७९ ४०१
विनीता (पुरी) १ १६७
४१ १६८
४६ १६८
१४८ १७१
२५६ १७४
३२८ १७६
३५९ १७७
५०४ १८२
१९७ १९१
२१३ १९१
५४ २१५
३०१ २२३
३०२ २२३
३३६ २२४
६० २३३
६४९ २५१
४५ २७०
१२१ २७८
विनीतानगरी १९६ १९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

विनीतेशः (सगरः) १२३ २१७
विन्ध्य ५७४ २४९
विन्ध्यपुर १३२ ३४८
१८४ ३५०
विन्ध्यशक्तिः (नृपः) १३३ ३४८
१५२ ३४९
१५४ ३४९
१५७ ३४९
१५९ ३४९
१६१ ३४९
१६३ ३४९
१७४ ३४९
१७५ ३४९
१७६ ३४९
१८० ३४९
१८१ ३४९
१८२ ३५०
१८३ ३५०
१८४ ३५०
१८७ ३५०
१८९ ३५०
विन्ध्यस्थली (विन्ध्याटवी) ६१३ ३३३
विन्ध्याद्रि १८५ ३८१
१३३ ३४८
विपाकविचय (धर्मध्यानम्)
४७६ १९९
विपुलवाहनः (नृपः) ४ २५५
११२ २५९
विपुला (गणिनी) ८७२ २११
८७३ २११
८८६ २११
९२८ २१२
विप्रुड् (लब्धिः) ३८७ ४०१
विभावसु (जिनमातुः स्वप्नः १४)
१२२ २५९
५६ २७१
विमल (विमलवाहनोऽजितजीवः)
१८ १६७
४८ ३५७
विमलकीर्तिः ८४ २५८
९७ २५८

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

विमलनाथः १ ३५६
१८१ ३६१
विमलप्रभा (शिबिका) ९८ ३१६
विमलप्रभुः ५६ ३५७
६३ ३५८
६६ ३५८
१७४ ३६१
विमलवाहनः (नृपः अजितस्वामिजीवः)
२५ १५८
२२७ १६४
२४७ १६४
९ ३७५
विमलसूरिः ११ २६९
विमलस्वामी २०० ३६२
२१७ ३६२
२२८ ३६३
३०३ ३७४
विमान (विजयायाः स्वप्नः १२)
३३ १६८
१०९ ३१७
१६७ ३१८
विमानम् (वैजयन्त्याः स्वप्नः १२)
८० १६९
१२१ २५९
१३९ २७९
विमानवरम् (स्वप्नः १२) ३८ ३१४
विमुक्तकुन्तला (विद्या) ५८५ ३३२
विराटदेशः ५९६ २५०
विराटविषय ५९७ २५०
विलासभूपतिः ९३ ३६७
विशाखनन्दी ११० ३१७
१११ ३१७
११६ ३१७
११७ ३१७
१३० ३१७
१३१ ३१७
१५० ३१८
१५१ ३१८
१५२ ३१८
१५३ ३१८

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

१५४ ३१८
१५५ ३१८
विशाखभूतिः १११ ३१७
११२ ३१७
विशाखा (नक्षत्रम्) ३१ २९२
७४ २९३
विशाल (इन्द्रः) ५२८ २०१
विशालक ,, १८० २६१
विशाला (पुष्करिणी) ७२३ २०६
विश्वकर्मा २४९ २३९
विश्वनन्दी ११० ३१७
१३८ ३१८
१३९ ३१८
विश्वभूतिः ११३ ३१७
११६ ३१७
११७ ३१७
११८ ३१७
१२१ ३१७
१२५ ३१७
१२६ ३१७
१२८ ३१७
१२९ ३१७
१३० ३१७
१३२ ३१७
१३४ ३१७
१३७ ३१८
१३९ ३१८
१४३ ३१८
१४६ ३१८
१४९ ३१८
१५१ ३१८
१५२ ३१८
१५३ ३१८
१५४ ३१८
१५५ ३१८
१५६ ३१८
१५८ ३१८
२१६ ३२०
विष्णुः २५ ३१४
३१ ३१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	२१७	३२०
	३७८	३२५
	३८७	३२६
	४०३	३२६
	५१६	३३०
	६७५	३३५
	७१२	३३७
	७२७	३३७
	७२८	३३७
	८७१	३४२
	२८०	३५३
	२८१	३५३
	८८	३५८
	१६८	३६९
	१८५	३७०
	१९५	३७०
	५	३८९
	२४	३८९
	२५	३८९
	३४	३९०
विष्णुदेवी	४०	३१४
	४१	३१४
	४७	३१५
विष्णुराजः	२०	३१४
	८५	३१६
वीतभयम्	६७१	२०५
वीरजिनः	२६९	३८३
वीरासन (योगासनम्)	८२	१५९
वृत्तवैताढ्यपर्वतः	६१६	२०३
वृषः (जिनमातुः स्वप्नः २)		
	११६	२५९
	५३	२७१
	३३	३१४
वृषभः (विजयायाः स्वप्नः २)		
	२३	१६७
वृषभर्षिः	७२	३६६
वृषभस्वामी	१०४	२२९
वेगाऽभिगामिनी (विद्या)	५८३	३३२
वेणुदारी (इन्द्रः)	३९३	१७८

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	५११	२००
	१७४	२६१
वेणुदेवः (इन्द्रः)	३९१	१७८
	५११	२००
	१७४	२६१
वेदनीयकर्म	८८३	३४२
वेद्यकर्म	४६९	१९९
वेलम्ब (इन्द्रः)	३९१	१७८
	५१२	२००
	१७५	२६१
वेलाधारीन्द्रपर्वत	६३१	२०४
	६३५	२०४
वैकुण्ठः (वासुदेवः त्रिपृष्ठः)		
	७४७	३३८
वैक्रिय समुद्घात	१३९	२६०
वैजयन्तम् (विमानम्)	६१५	२०३
	१२०	२७८
	१३९	२७९
	१२	२९६
	२८	२९७
	१३	३०१
	२८	३०२
	४३	३०२
	३१	३७६
	३४४	४००
	३९१	४०२
वैजयन्तम् (अनुत्तरविमानम्)		
	७५५	२०७
वैजयन्त	५०	२९७
वैजयन्ता (पुष्करिणी)	७२३	२०६
वैजयन्ती (सुमित्र–भार्या)	६५	१६९
	६७	१६९
	७४	१६९
	१०४	१७०
	१०८	१७०
	११६	१७०
वैजयन्ती (दिक्कुमारी)	१९९	१७३
	५२९	१८३
	५३०	१८३
वैतरणी (नरकभूमौ नदी)	९३	२८७

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
वैताढ्य	६१	१६८
	४३०	१८०
	६१०	२०३
	१३७	२१८
	१६७	२१९
	२७०	२२२
	३१९	२२३
	३३३	२२४
	९०	२२८
	४९१	२४६
	३३	३१४
	७७	३४६
	८८	३५८
	१२५	३६८
	१४१	३६८
	४२	३८८
	२८३	३९३
वैताढ्यकुमार	१३८	२१८
वैताढ्यश्रेणिः	७६४	३३८
	१५७	३९४
वैताढ्यगिरिः	३	२२६
	११२	२३५
	८६	२९३
वैताढ्यपर्वतः	२८	२२६
	२५४	३२१
	२८	३८७
	४०	३८८
वैताढ्याद्रि	६०५	२०३
	२५५	३२१
	२९७	३९९
वैताढ्याद्रिकुमारः	५४	२२७
	१३९	२१८
	१४०	२१८
	१४४	२१८
वैताढ्याद्रिकुमारकः	२९	३८७
वैमानिक	३६१	१९६
	३८२	१९६
	२७२	२६४
	३९	२६६
	१०७	३४०
	८१०	३४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
वैरिमोहिनी (विद्या)	५८३	३३२
वैराट (नगरी)	६७०	२०५
वैश्रवण (धनदः)	५१०	१८२
वैषाणिक (अन्तरद्वीपः)	२५४	२६३
	६८९	२०५
वोक्काण (देशः)	७५	३४६
व्यन्तर (देवजातिः)	२०५	१९१
	३६८	१९६
	३७५	१९६
	३८१	१९६
	५१६	२००
	५१९	२००
	७८	२२८
	२१०	२६२
	३२१	२६६
	३२४	२६६
	३३७	२६६
	३३८	२६६
	८०८	३४०
	८०९	३४०
	२०४	३८१
व्यन्तरामर	३६९	१९६
	७९६	३३९
	७९८	३३९
	८०६	३४०
व्याघ्रमुखः (अन्तरद्वीपः)	६९४	२०६
व्योमचारिणी (विद्या)	५८२	३३२

"श"

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
शाक (देशः)	७५	३४६
शक्रः	४६	१६८
	५२	१६८
	५६	१६८
	२४७	१७४
	२८०	१७५
	३०७	१७६
	३२०	१७६
	३६९	१७८
	३७०	१७८

श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
४८४	१८१
५०३	१८२
५०७	१८२
५१०	१८२
१८९	१९०
१९९	१९१
३८३	१९६
७३२	२०७
७६०	२०८
३४२	२२४
३५८	२२४
५५८	२४८
६८९	२५२
१६४	२६०
१६८	२६१
१६९	२६१
१७०	२६१
१९३	२६१
१९४	२६१
१९७	२६२
२२०	२६२
२३५	२६३
२५४	२६३
२८६	२६५
२९२	२६५
३०१	२६५
३४१	२६६
३५०	२६७
३७६	२६७
६६	२७१
६७	२७१
६९	२७१
७०	२७१
७३	२७१
७४	२७१
८५	२७१
८७	२७२
१०५	२७२
१११	२७२
११२	२७२
११५	२७३

श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
१२९	२७३
१३८	२७३
१८२	२८१
१८३	२८१
१८४	२८१
१८५	२८१
१८६	२८१
२२७	२८२
४०	२८५
४१	२८५
५०	२८५
८१	२८६
३३	२९२
३६	२९२
४६	२९२
४९	२९२
६४	२९३
७९	२९३
३७	२९७
३५	३४५
४०	३४५
५४	३४५
५७	३४५
७५	३४६
२९१	३५३
२९७	३५३
२९८	३५३
३१	३५६
३३	३५७
३६	३५७
४६	३५७
१८३	३६१
३४	३६५
४६	३६५
५७	३६६
१३२	३६८
२०५	३७१
२२१	३७१
२९०	३७४
२०२	३८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

२०९ ३८१
२१८ ३८२
३५१ ३८६
३६१ ३८६
२८५ ३९८
३१५ ३९९
३२५ ३९९
३३५ ४००
३३७ ४००
३४० ४००
३४१ ४००
३६७ ४०१
३६८ ४०१
३१६ ३९९
शक्रध्वज (इन्द्रध्वजः) ३७७ १९६
शक्रस्तव ४६ १६८
१५१ १७१
२६२ १७४
४९३ १८१
६१८ २२०
११९ २२९
शक्रेशानौ (इन्द्रौ) ६९७ २५३
शङ्खः (विजयः) ६०३ २०३
६३१ २०४
शङ्खक (निधि ९) २७८ २२२
शङ्खपुर ४ २७५
शची ११ २७५
२५ ३१५
२३ ३५६
शतभिषग् (नक्षत्रम्) ३० ३४५
२८४ ३५३
शबर (म्लेच्छजातिः) ६७९ २०५
शब्दवेध (बाणविद्याविशेषः)
५० १८६
शब्दापाती (पर्वतः) ६१६ २०३
शम्बर (देवविशेषः) ३६७ २४३
शम्भव (तृतीयजिनः) २१७ २६२
शर्करा (द्वितीयनरकभूमिः)
४९७ २००
शशिसौम्य (नृपः) १०८ ३५९

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

११२ ३५९
११५ ३५९
शशी (वैजयन्त्याः स्वप्नः ६)
७७ १६९
२१ २२६
२३ २२६
२४ २२६
२५ २२६
शष्कुलीकर्णकः (अन्तरद्वीपः)
६९१ २०६
शाक (म्लेच्छजातिः) ६७९ २०५
शान्तादेवी (शासनदेवता)
११२ २९४
शान्तिजिन १६४ ३०६
शान्तिजिनेश १६४ ३०६
शार्ङ्गपाणि (वासुदेवः) ६७४ ३३५
८६७ ३४२
२६१ ३५२
१५७ ३६१
१७० ३६१
शार्ङ्गभृत् ,, ८१५ ३४०
८८३ ३४२
१६० ३६१
१६५ ३६१
१९२ ३७०
शार्ङ्गम् (धनुः) ६२४ ३३४
६७४ ३३५
२५५ ३५२
शार्ङ्गी (वासुदेवः) ७१२ ३३७
७४९ ३३८
८७४ ३४२
२७३ ३५२
१५६ ३६९
१७२ ३६९
१८४ ३७०
१९३ ३८१
२०९ ३८१
शालिग्रामः (अग्रहारः, ग्रामः)
८६१ २११
शिखरी (पर्वतः) ५६८ २०२

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

५७२ २०२
५७६ २०२
६१७ २०३
७०० २०६
शिरीष (वृक्षः) ७२ २९३
शिवः (नृपः) ७५ ३७७
७९ ३७७
८७ ३७७
१०१ ३७८
१०२ ३७८
१०३ ३७८
१०६ ३७८
१२२ ३७९
१३३ ३७९
१४६ ३७९
शिवा (शक्रपत्नी) ७३४ २०७
शीतधामा (इन्दुः, विजयायाः स्वप्न : ६)
२७ १६७
शीतल (जिनः) १६३ ३०६
२ ३०७
४७ ३०८
८० ३०९
१२६ ३११
शीतलनाथः ८६४ ३४२
शीतलप्रभुः ५२ ३०८
६० ३०९
७० ३०९
७२ ३०९
११५ ३१०
१२४ ३११
१२५ ३११
शीतलस्वामी ५९ ३०९
७५ ३०९
शीता (नदी) ५८० २०२
५८४ २०२
५८५ २०२
५९६ २०३
५९७ २०३
शीतोदा (नदी) ५८० २०२
५८४ २०२
५८५ २०२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

५९२ २०३
५९३ २०३
शुक्तिमती (नगरी) ६७० २०५
शुक्रः (इन्द्रः) ३६८ १७८
शुक्र (अष्टमकल्पः) ७५१ २०७
७७७ २०८
३० ३१४
शुक्लध्यान ३३६ १९५
३४० १९५
शची (शक्रपत्नी) ७३४ २०७
शुद्धदन्तः (अन्तरद्वीपः) ६९९ २०६
शुद्धभट्टः (दामोदरतनयः) ८६३ २११
८८१ २११
८८८ २११
९०७ २१२
९३६ २१३
शुभनाम (कर्म) १२५ ३०५
शेष (शेषनागः) १२३ २७९
शेषवती (दिक्कुमारी) २०३ १७३
शैलेशी (ध्यानम्) ४०० २६८
शैलेशीध्यान १०० १८८
६८१ २५२
१७१ २७४
२५९ २८३
८५९ ३४१
शैबि (शिवनृपपुत्र) १५८ ३८०
शौर्य (नगरम्) ६६८ २०५
श्यामा (विमलजिनमाता) २० ३५६
२६ ३५६
२७ ३५६
२९ ३५७
४५ ३५७
श्यामानन्दन (विमलजिनः) ३५ ३५७
श्येनलाञ्छनः (अनन्तजिनः)
२९ ३६५
श्रवण (नक्षत्रम्) ४१ ३१४
१०० ३१६
११९ ३००
३१ ३०४
७८० ३३९
श्रवणसिंहर्षिः १३१ ३४८

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

श्रावस्ती ६७२ २०५
१०३ २५९
२५६ २६४
२५७ २६४
२८१ २६४
७४ ३५८
१० ३८७
४५ ३८८
श्रीः (वैजयन्त्याः स्वप्नः ४)
७६ १६९
श्रीः (दिक्कुमारी) २१० १७३
५ ३८९
२१ ३८९
२४ ३८९
२५ ३८९
३४ ३९०
श्रीद (कुबेरः) ६ ३१३
२१० ३२०
श्रीदेवी २५ २९१
श्रीधरभूपतिः १९० ३५०
श्रीधर्मतीर्थकृत् ३१० ३९९
श्रीनाभिसूनुः ३२७ ४००
श्रीपतिः (त्रिपृष्ठः) ७७५ ३३९
श्रीपद्मप्रभः १२५ २९५
श्रीपुष्पदन्तः १ ३०१
५० ३०२
श्रीमती (राज्ञी) १९० ३५०
श्रीवत्स (मङ्गलम्) ४६४ १८१
श्रीवत्साङ्क (शीतलजिनः) २९ ३०८
श्रीविजयः (त्रिपृष्ठपुत्रः) ८६७ ३४२
श्रीवीरः १०४ ३४७
श्रीशीतलजिनेन्द्रः १ ३०७
श्री श्रेयांसजिनेन्द्रः २ ३१३
श्रीश्रेयांसप्रभुः १ ३१३
श्रीसम्भवजिनेन्द्रः १ २५५
श्रीसुपार्श्वः २ २९१
४८ २९२
१२४ २९५
श्रीसुपार्श्वजिनेन्द्रः १ २९१
श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्मीः (देव्यः)
५७८ २०२

श्लोक नं. पृष्ठ नं.

श्रुतज्ञान ८२ ३०३
श्रुतसागरः (मन्त्री) ४४९ ३२८
श्रेयांसः (जिनः) ८६ ३१६
९२ ३१६
७७७ ३३९
७९९ ३३९
८२६ ३४०
९७ ३४७
श्रेयांसप्रभुः ३६२ ३५५
श्रेयांसमुनिः ८९ ३६७
श्रेयांसस्वामी ७८५ ३३९
८६४ ३४२
९०२ ३४३
श्रेष्ठदन्तकः (अन्तरद्वीपः) ६९९ २०६
श्वेतः (इन्द्रः) १८० २६१
श्वेतपुर ६१ ३०३
श्वेतवी (नगरी) ६७२ २०५

"ष"

षड्जकैशिकी (ग्रामरागः) १८ ३४४
षण्मुखः (यक्षः) १७८ ३६१

"स"

संगमः (देवः) ३३९ ४००
संभवाचार्यः १८६ ३५०
संवरः ३१ २७०
संवरनृपः ९९ २७२
संवर्त (वातविशेषः) ६२९ ३३४
१३९ २६०
संवर्त्तक ,, १८४ १७२
६२६ ३३४
४३ ३१४
संस्थानविचय (धर्मध्यानम्)
४७७ १९९
सिंहकर्ण (अन्तरद्वीपः) ६९५ २०६
सिंहत्रासिनी (विद्या) ५८३ ३३२
सिंहनिःक्रीडितम् (तपः) ३०२ १६६
सिंहनिषद्या (जिनप्रासादः) १०० २२८
१०७ २२८
सिंहपुर १५ ३३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	४९	३९०
सिंहमुखः (अन्तरद्वीपः)	६९४	२०६
सिंहल (देशः)	७२	३४६
सिंहलक (द्वीपः)	१६६	२१९
सिंहसेन (गणधरः)	८१४	२०९
	८३३	२१०
	८४७	२१०
	१७	३६४
	५२	३६५
सिंहासन (प्रातिहार्यम्)	३६९	१९६
सकामनिर्जरा	३७७	४०१
सगरः (चक्री)	१०३	१७०
	५८०	१८४
	१	१८५
	३	१८५
	२३	१८५
	२४	१८५
	२८	१८५
	४५	१८६
	४६	१८६
	५५	१८६
	६९	१८७
	७७	१८७
	९६	१८७
	१४२	१८९
	१४३	१८९
	१५६	१८९
	१६२	१८९
	१६३	१९०
	१७४	१९०
	१७५	१९०
	१९८	१९१
	२०८	१९१
	२३४	१९२
	२७९	१९३
	४०३	१९७
	४०८	१९७
	४१२	१९७
	४१३	१९७
	४१५	१९७
	४१७	१९७

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	८१३	२०९
	८२५	२०९
	८२९	२१०
	८३३	२१०
	८४१	२१०
	१	२१४
	६	२१४
	७	२१४
	१४	२१४
	२९	२१४
	५४	२१५
	६३	२१५
	७०	२१६
	७२	२१६
	७४	२१६
	८०	२१६
	८८	२१६
	९१	२१६
	९२	२१६
	९९	२१७
	१००	२१७
	१०८	२१७
	१२०	२१७
	१२१	२१७
	१२५	२१७
	१४०	२१८
	१४३	२१८
	१५२	२१८
	१५३	२१८
	१७५	२१९
	१७६	२१९
	१८३	२१९
	१९५	२१९
	१९९	२२०
	२१७	२२०
	२३०	२२१
	२३६	२२१
	२४४	२२१
	२५४	२२१
	२५६	२२१

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	२५८	२२१
	३६८	२२२
	२७०	२२२
	२७४	२२२
	२८५	२२२
	२८७	२२२
	३०१	२२३
	३०३	२२३
	३०६	२२३
	३०७	२२३
	३१८	२२३
	३३५	२२४
	३४८	२२४
	३४९	२२४
	२	२२६
	९	२२६
	२०	२२६
	५१	२२७
	४१	२२७
	१२८	२२९
	१३७	२३०
	१४१	२३०
	१४४	२३०
	१७८	२३१
	६१	२३३
	१८४	२३७
	५२४	२४७
	५३४	२४८
	५४०	२४८
	५५६	२४८
	६०६	२५०
	६१५	२५०
	६२०	२५०
	६३२	२५१
	६३७	२५१
	६४१	२५१
	६४२	२५१
	६४३	२५१
	६४५	२५१
	६५०	२५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	६५३	२५१
	६५९	२५१
	६८७	२५२
	७०२	२५३
सगरचक्री	३९९	१९७
	६४	२३३
	५३३	२४८
सगरज	१७१	२३१
सगरपुत्र	५७८	२४९
सतेरा (दिक्कुमारी)	२१२	१७३
सत्पुरुषः (व्यन्तरेन्द्रः)	४०४	१७९
	५२२	२०१
	१७८	२६१
सद्वेद्य (शातावेदनीयम्)	८८	३०४
	८९	३०४
सनत्कुमारः (इन्द्रः)	३६८	१७८
,, (तृतीयकल्पः)	७५१	२०७
	७५८	२०७
	७६१	२०८
	७७६	२०८
,, (इन्द्रः)	१७३	२६१
,, (कल्पः)	५७	३८८
	४३	३९०
,, (चक्री)	२६८	३८३
	७७	३९१
	८७	३९१
	११७	३९३
	१२१	३९३
	१४७	३९४
	१५३	३९४
	१५६	३९४
	१५८	३९४
	१५९	३९४
	१६३	३९४
	१६४	३९४
	१६८	३९४

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	१६९	३९४
	१७२	३९४
	२३५	३९७
	२३८	३९७
	२४१	३९७
	२४५	३९७
	२८८	३९८
	२९६	३९९
	३००	३९९
	३०७	३९९
	३०९	३९९
	३११	३९९
	३१७	३९९
	३१९	३९९
	३२१	३९९
	३२२	३९९
	३२५	३९९
	३२६	४००
	३३०	४००
	३३१	४००
	३४३	४००
	३४६	४००
	३४८	४००
	३५५	४००
	३५९	४०१
	३८९	४०२
	३९४	४०२
सनत्कुमार (कल्पः)	४००	४०२
	४०४	४०२
सन्तान (कल्पवृक्षः)	१७०	२८९
सन्दर्भ (देशः)	६७०	२०५
सन्ध्यावली (राजकन्या)	२५३	३९७
	२६५	३९८
सन्निहित (इन्द्रः)	५२७	२०१
	१७९	२६१
सप्तच्छद (वृक्षः)	२५८	१९२
सप्तच्छदक (दधिमुखाद्रिः)		
	७३५	२०७
सप्तच्छदतरुः	३३४	१९५

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
सप्तपर्णतरुः	१८५	३९५
समानक (इन्द्रः)	१७९	२६१
समरकेसरी (नृपः)	८६	३५८
समवसरण	३७०	१९६
	४००	१९७
	४१५	१९७
	४१६	१९७
	४३३	१९८
	४	२२६
	७	२२६
	६२०	२५०
	३२०	२६६
	१२३	२७३
	१२५	२७३
	६६	२८६
	७५	२९३
	८०	२९३
	७५	२९८
	७८१	३३९
	७८९	३३९
	८०३	३४०
	८१५	३४०
	२८५	३५३
	२९१	३५३
	२९६	३५३
	१७७	३६१
	१८३	३६१
	१८९	३६१
	१९९	३७०
	२०५	३७१
	२१०	३७१
	१९६	३८१
	२०२	३८१
	२०७	३८१
समान (इन्द्रः)	५२७	२०१
समानचतुरस्र (संस्थानम्)	५७	१८६
समाहारा (दिक्कुमारी)	१४५	२६०
	२०३	१७३
	४८	३१५
समुद्घात (केवलिसमुद्घातः)		
	६८७	२५२

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
समुद्रदत्तः	७५	३६६
	७८	३६६
	७९	३६६
	८५	३६७
	८७	३६७
	१०६	३६७
समुद्रविजय	११	३८७
	२१	३८७
	२२	३८७
सम्भव	२	२५५
	२१७	२६२
सम्भवजिनः	४०६	२६८
सम्भवप्रभुः	३९८	२६८
	४०४	२६८
	४०५	२६८
सम्भवस्वामी	२४०	२६३
	२४२	२६३
	२४४	२६३
	२४५	२६३
	२६५	२६४
	३१५	२६६
	३५०	२६७
	४००	२६८
	१७५	२७४
सम्भिन्नश्रोताः (नैमित्तिकः)		
	४५२	३२८
	४६४	३२८
सम्भूतमुनिः	१३७	३१८
सम्मेत (शैलः)	६७२	२५२
	८५८	३४१
	३५९	३८६
सम्मेतगिरिः	६७५	२५२
सम्मेतपर्वत	१२०	२९५
	११६	३००
सम्मेतशैलशिखरम्	३९७	२६८
सम्मेताद्रि	६७१	२५२
	१६९	२७४
	२५८	२८३
	१९१	२९०
	१४८	३०६
	२२४	३६३
	२९८	३७४
सरस्वत् (भवनपतिनिकायः)	३९२	१७८
सरस्वती	१५६	२१८
	२४९	२३९
सरस्वतीदेवी	१६	१६७
सरिन्नाथ (समुद्रः, जिनमातुः स्वप्नः ११)		
	५५	२७०
सर्वगुप्तः	७	३५६
सर्वप्रभा (दिक्कुमारी)	११०	१७३
सर्वभद्रम् (चतुर्थ ग्रैवेयकम्)		
	७५३	२०७
सर्वरत्नकः (निधिः ४)	२७८	२२२
सर्वरत्ना (इन्द्राण्या नगरी)		
	७३६	२०७
सर्वार्थ (अनुत्तरविमानाम्)		
	७८२	२०८
सर्वार्थसिद्ध ,,	७९२	२०८
सर्वार्थसिद्धम् ,,	३	१६७
सर्वार्थसिद्धिकम् ,,	७५५	२०७
सवितृद्वीपः	६३८	२०४
सहकारः (आम्रवृक्षः)	२५३	१९२
सहदेवी	७३	३९१
सहस्रदक् (सुलोचनपुत्रः)	३	२२६
सहस्रनयनः ,,	३२१	२२३
	३२६	२२३
	३३१	२२४
	३३४	२२४
सहस्राक्ष ,,	७	२२६
	२०	२२६
	२५	२२६
	२६	२२६
सहस्राम्रवण	२४२	१९२
	३३३	१९५
	४११	१९७
	३१४	२६६
	१२१	२७३
	२०५	२८१
	२११	२८१
	५९	२८६
	६३	२८६
	६३	२९३
	७२	२९३
	६३	२९८
	७२	२९८
	७७७	३३९
	५८	३५७
	१७४	३६१
	५७	३६६
	१९६	३७०
सहस्रारः (इन्द्रः)	३७१	१७८
,, (कल्पः)	७५२	२०७
	७५९	२०८
	७६५	२०८
	७७७	२०८
	७९०	२०८
(इन्द्रः)	१७३	२६१
(कल्पः)	१०	३५६
	७३	३६६
	९१	३६७
	१०३	३६७
	१०७	३६७
	७७	३७७
सहस्रेक्षण (नृपः)	३३३	२२४
साकेत (नगरी)	८४१	२१०
	१३९	३४८
साकेत	६६७	२०५
साकेतनगरम्	१	२२६
	६०४	२५०
साकेतपुरनाथः	२४०	३९७
साकेतपुरम्	३३५	२२४
	१५१	३४८
सागरदत्तः	५६	३६६
	६३	३६६
सारस्वत (लोकान्तिक)	१३८	१४९
	७६३	२०८
	५३	३६५
सालतरुः	३१४	२६६
सिद्धताडनिका (विद्या)	५८६	३३२
सिद्धभट्ट (ब्राह्मणः)	८६३	२११
सिद्धार्थपुर	१०५	३१६
सिद्धार्था (शिबिका)	२७१	२६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
सिद्धार्था (अभिनन्दनजिनमाता)		
	४०	२७०
	५०	२७०
	६०	२७१
	६१	२७१
	६३	२७१
सिद्धिक्षेत्र	६२१	२५०
सिद्धिशिला	७५६	२०७
सिन्धु (नदी)	१०८	१७०
	५७९	२०२
	५८३	२०२
	६७१	२०५
	१२७	२१७
	१६२	२१८
	१६३	२१९
	१६५	२१९
	१७४	२१९
	१९१	२१९
	५३	२२७
	६	२६९
	७४	३४६
	१९५	३५०
	३१	३८८
	३७	३८८
सिन्धुदेवी	१२८	२१८
	१२९	२१८
	१३५	२१८
	२६१	२२१
सिन्धुनदी	२०९	२२०
	२४२	२२१
	२४३	२२१
	२६९	२२२
	२८६	२२२
सिन्धुनिष्कुटम्	१५३	२२१
सीता (महानदी)	४	१५७
,, (दिक्कुमारी)	२०७	१७३
	१०२	३६७
	१०७	३६७
सुकच्छ	६००	२०३
सुकेशा (सुलोचनतनया)	३२१	२२३
सुग्रीव	१९	३०१

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
सुग्रीवनृपतिः	२७	३०२
सुघोष (इन्द्रः)	३९१	१७८
	५१३	२००
सुघोषा (घण्टा)	२६६	१७५
	२७१	१७५
	२७३	१७५
	३६८	१७८
	४०५	१९७
	१७५	२६१
सुजाता (शक्रपत्नी)	७३४	२०७
सुतारा	१०४	३०५
सुदर्शन (मुनिः)	८१	३५८
सुदर्शनः (नृपः)	७९	३७७
	१२५	३७९
	२०७	३८१
	२०९	३८१
	३६८	३८६
सुदर्शनम् (प्रथमं ग्रैवेयकम्)		
	७५३	२०७
	४	३१४
सुदर्शना (पुष्करिणी)	७२२	२०६
सुदर्शना (पुण्डरीकिणी–वापी)		
	७२२	२०६
,, (ईशानपत्नी)	७३५	२०७
,, (सुमतिजिनमाता)	६	२७५
	९	२७५
	११	२७५
	१२	२७५
	१४	२७५
	१५	२७५
	२१	२७५
	२८	२७५
,, (राज्ञी)	१०२	३६७
	१०३	३६७
	१०४	३६७
	१०५	३६७
सुधर्म	७००	२५३
सुधर्मा (देवसभा)	२४७	१७४
	२६६	१७५
,, (चमरसभा)	३७४	१७८

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	१३७	३४८
	३३७	४००
सुनन्दः	१२८	३४८
सुनन्दनृपः	१२७	३४८
सुनन्दा (पुष्करिणी)	७२२	२०६
	९४	३४७
	२४०	३९७
	२५६	३९७
सुनेत्र (नृपः)	९	२२६
	१९	२२६
सुन्दरी (राज्ञी)	८६	३५८
सुपर्ण (भवनपतिनिकायः)	३९२	१७८
	५०८	२००
	५११	२००
सुपद्मः (विजयः)	६०२	२०३
सुपार्श्व (जिनः)	२	२९१
	४८	२९२
सुपार्श्वजिनेन्द्रः	१	२९१
सुपार्श्वस्वामी	६०	२९३
	६१	२९३
	७४	२९३
	१११	२९४
	१२५	२९५
	१२२	३००
सुप्रदत्ता (दिक्कुमारी)	२०३	१७३
सुप्रबुद्धम् (द्वितीयं ग्रैवेयकम्)		
	७५३	२०७
सुप्रबुद्धा (दिक्कुमारी)	२०३	१७३
सुप्रभ (नृपपुत्रः)	१०६	३६७
	२३०	३६८
	१६१	३६९
	२८८	३७४
	३०७	३७४
सुप्रभा (शिबिका)	२०९	१९१
,, (राज्ञी)	९२	३५८
	९३	३५९
	९४	३५९
	९५	३५९
सुबलः	१०८	२१७
	१६७	३१८
सुबुद्धिः	९३	२२८
	२१५	२३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
सुभद्रा	१९७	३५०
	१९८	३५०
सुभोगा (दिक्कुमारी)	१६३	१७२
सुमङ्गला	९४	३४७
सुमतिः (जिनः)	१९६	२८१
	२०३	२८१
	२५७	२८३
	४४१	३२८
सुमतिनाथः	१	२७५
सुमतिप्रभुः	२२७	२८२
	२५६	२८३
	२६२	२८३
सुमतिस्वामी	२६३	२८३
	१९६	२९०
सुमनः (षष्ठं ग्रैवेयकम्)	७५३	२०७
सुमनसः (जिनप्रातिहार्यम्)	२१९	२८२
सुमनोदाम (वैजयन्त्याः स्वप्नः ५)	७७	१६९
	३५	३१४
सुमित्रः (सगरस्य पिता)	६५	१६९
	८७	१८७
	९३	१८७
	८१३	२०९
सुमित्रविजयः ,,	१२	१६७
	६७	१६९
	७१	१६९
	७२	१६९
सुमेघा (दिक्कुमारी)	१८९	१७२
सुमेरु	३६७	१७८
	४३१	१८०
	३२९	१९५
	५५७	२०२
	५९	२१५
	३२	२२६
	९८	२२८
	११७	२३५
	२९३	२४०
	१८३	२८१
	३८	२४५
	२९७	३९९
सुयशा (अनन्तजिनमाता)	२१	३६४
	२७	३६५
	२९	३६५
सुयशोदेवी ,,	४५	३६५
सुरादेवी (दिक्कुमारी)	२०७	१७३
सुराष्ट्र	११४	२१७
	७३	३४६
	१९३	३५०
	२४०	३९७
सुराष्ट्रक	६६९	२०५
सुरूपः (व्यन्तरेन्द्रः)	४०४	१७९
	५२०	२००
	१७६	२६१
सुरूपा (दिक्कुमारी)	२१५	१७३
सुरेन्द्रदत्तः	३०२	२६५
	३०९	२६५
	३१०	२६५
सुलक्षणा (शुद्धभट्टपत्नी)	८६३	२११
	८७१	२११
	८७३	२११
	८८३	२११
	८८९	२११
	१३	२७५
	१४	२७५
सुलोचनः (विद्याधरराजः)	३२०	२२३
	३२५	२२३
	१८	२२६
सुवत्सः (विजयः)	६०१	२०३
सुवत्सकः (इन्द्रः)	५२८	२०१
	१८०	२६१
सुवत्सा (दिक्कुमारी)	१८९	१७२
सुवप्रः (विजयः)	६०३	२०३
सुवल्गुः (विजयः)	६०४	२०३
सुविधिः	५०	३०२
सुविधिप्रभुः	५५	३०३
सुविधिस्वामी	७८	३०३
	१५१	३०६
	१५१	३०६
	१५४	३०६
	१२५	३११
सुविशालम् (पञ्चमं ग्रैवेयकम्)	७५३	२०७
सुव्रत (पद्मप्रभस्य गणधरः)	१७७	२९०
	१७८	२९०
सुव्रता	२७	३७६
सुव्रताचार्यः	७२	३५८
	४१	३९०
सुव्रतादेवी	३४	३७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	४८	३७६
	३२	३७६
सुश्रुतः (मन्त्री)	४३५	३२७
	४३६	३२७
सुसीमा (नगरी)	१४	१५७
	३	२८४
	२८	२८५
	३४	२८५
	३५	२८५
	५०	२८५
सुस्थित (देवः)	६३८	२०४
सुस्वरा (घण्टा)	३९६	१७८
सूकरलक्ष्मा (विमलजिनः)	२९	३५७
सूक्ष्मः (वासुपूज्यगणधरः)	२८५	३५३
	३५१	३५५
सूक्ष्मसंपराय (दशमगुणस्थानम्)		
	३३८	१९५
सूरनन्दनः	८५	३९१
सूरप्रभा	५९	३०३
सूरसेन (देशः)	६७१	२०५
सूर्पार (देशः)	७१	३४६
सूर्यः (ग्रहः)	५३०	२०१
सूर्याचन्द्रमसौ (इन्द्रौ)	१८१	२६१
सेना (संभवजिनमाता)	११२	२५९
सेनादेवी	११०	२५९
	११५	२५९
	१२४	२५९
	२०७	२६२
सेनापतिरत्नम्	३४	२१५
	३५९	२२४

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
सोपाश्रयासन (योगासनम्)	८६	१६०
सोम (नृपः)	१०१	३६७
	१०६	३६७
	१३०	३६८
	१३७	३६८
	१३८	३६८
	१६१	३६९
	१९५	३७०
सोमदत्तः	६६	२९८
सोमदेवः	६१	२८६
सोमा (ब्राह्मणी)	८६२	२११
सौत्रामणी (दिक्कुमारी)	२१२	१७३
सौदामनी (नाटकम्)	३३७	४००
सौधर्म (प्रथमः कल्पः)	२४५	१७४
	२७४	१७५
	३२३	१७६
	३२४	१७६
	५१७	१८२
	७५१	२०७
	७६०	२०८
	७६५	२०८
	७७५	२०८
	७८२	२०८
	७९२	२०८
	१२२	२३५
	३४	२९७
	६५	३९१
	३६६	४०१
सौधर्मकल्पः	२६९	१७५
	३४	३०२
सौधर्मकल्पाधिपतिः	३१	३६५

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
सौधर्मकल्पेन्द्रः	४८२	१८५
	४८७	१८१
	१९६	२६२
	७१	२८६
	८३	२९३
सौधर्मपतिः (शक्रः)	३३६	१७७
सौधर्माधिपतिः	३४६	१९५
सौधर्मेन्द्रः	५२१	१८२
	५२३	१८२
	२६०	१९३
	३७	२९२
	३६	३६५
	३१५	३९९
	३४२	४००
सौधर्मेश	३७	३०२
सौधर्मेशानः	२१२	१९१
सौधर्मेशानकल्प	७५८	२०७
सौनन्द (मुसलम्)	६२६	३३४
सौमनस (वनम्)	४३१	१८०
	५६४	२०२
	५८९	२०३
	६५०	२०४
	६१	३७७
सौमनसम् (सप्तमं ग्रैवेयकम्)		
	७५४	२०७
सौमनसा (शक्रपत्नी)	७३४	२०७
सौमित्रिः (सगरः)	२५	१८५
सौवीर (देशः)	६७१	२०५
स्तनित (भवनपतिनिकायः)		
	५०८	२००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	५१३	२००
स्त्रीरत्नम्	३२२	२२३
	३३२	२२४
	३३५	२२४
	३४६	२२४
	३५४	२२४
	४३	२२७
	७४	२२८
स्थामशुम्भनी (विद्या)	५८२	३३२
स्वयम्प्रभः (अञ्जनाद्रिः)	७०८	२०६
	९७	२५८
स्वयम्प्रभा (त्रिपृष्ठभार्या)	४२१	३२७
	४२८	३२७
	४३३	३२७
	४३८	३२७
	४४७	३२८
	४६१	३२८
	४८६	३२९
	४८७	३२९
	४९०	३२९
	४९३	३२९
	५०१	३२९
	५१४	३३०
	६६२	३३५
	६६७	३३५
	८६७	३४२
स्वयम्भूः (वासुदेवः)	१००	३५९
	१०२	३५९
	१२५	३६०
	१२८	३६०
	१३५	३६०
	१३८	३६०
	१४०	३६०

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	१४८	३६०
	१५०	३६०
	१५२	३६०
	१५८	३६१
	१६३	३६१
	१६६	३६१
	१६७	३६१
	१६९	३६१
	१७३	३६१
	१८८	३६१
	१८९	३६१
	१९०	३२६
	२१४	३६२
	२२९	३६३
	२३१	३६३
स्वयम्भूरमणः (उदधिः)	५५१	२०१
	५५३	२०१
	७४२	२०७
	७४४	२०७
	७४७	२०७
	१२३	२३५
	६०८	२५०
	१९१	२८१
	८२७	३४०
स्वर्णकूला (नदी)	५८१	२०२
स्वर्णशैल (मेरुः)	३५१	४००
स्वर्णाद्रि ,,	३९	२८५
स्वस्तिक (मङ्गलम्)	४६४	१८१
स्वस्तिकाङ्क (सुपार्श्वनाथः)	३१	२९२
स्वस्तिकासन (योगासनम्)	८५	१६०
स्वाति (नक्षत्रम्)	५३५	२०१

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
"ह"		
हंसस्वरा (घण्टा)	३९६	१७८
हंसासन (योगासनम्)	८४	१५९
हयकण्ठः (अश्वग्रीवः)	५९६	३३३
	६३९	३३४
	७४७	३३८
हयकन्धर ,,	६२९	३३४
	६७६	३३५
	६९२	३३६
	७०५	३३६
	७२०	३३७
हयकर्ण (म्लेच्छजातिः)	६८३	२०५
हयकर्णकः (अन्तरद्वीपः)	६९१	२०६
हयग्रीवः (अश्वग्रीवः)	२६५	३२२
	२९४	३२३
	२९७	३२३
	२९८	३२३
	३०२	३२३
	३४५	३२४
	३५२	३२५
	३५६	३२५
	४०८	३२७
	४५७	३२८
	४९५	३२९
	५००	३२९
	५१५	३३०
	५१७	३३०
	५३२	३३०
	५३९	३३१
	५४०	३३१
	५५८	३३१
	५६२	३३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	५६४	३३२
	५७६	३३२
	५७७	३३२
	६३३	३३४
	६३८	३३४
	६४०	३३४
	६६०	३३५
	६७१	३३५
	६७२	३३५
	६७९	३३५
	६८०	३३६
	६८२	३३६
	६८३	३३६
	६८५	३३६
	६९४	३३६
	७०८	३३६
	७१०	३३७
	७२४	३३७
	७३०	३३७
	७३२	३३७
	७३५	३३७
	७४४	३३८
	७५०	३३८
	७५१	३३८
	७५२	३३८
	७५४	३३८
	७५६	३३८
हयमुखः (अन्तरद्वीपः)	६८२	२०५
	६९३	२०६
हरिः (इन्द्रः)	३९१	१७८
	५११	२००
	६७४	२०५
	१७४	२६१

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	४००	३२६
	४८५	३२९
	४८६	३२९
	४९४	३२९
	६८१	३३६
	६९३	३३६
	७१०	३३७
	७२६	३३७
	७६५	३३८
	८४५	३४१
	१७२	३६१
	२१०	३७१
	३७	३७६
हरिकान्ता (नदी)	५८०	२०२
हरिचन्दन (कल्पवृक्षः)	१७०	२८९
हरित् (नदी)	५८०	२०२
हरिदासः (वणिक्पुत्रः)	१४	२२६
	१७	२२६
	१८	२२६
हरिपुर	७२	३७७
हरिवर्ष (क्षेत्रम्)	५६६	२०२
हरिवर्षक	५८०	२०२
हरिवाहनः (नृपः)	५१	३९०
	५३	३९०
हरिशिखः (इन्द्रः)	३९३	१७८
हरिसहः ,,	५११	२००
	१७४	२६१
हलायुध (बलदेवः)	८९१	३४२
हस्त (नक्षत्रम्)	३३१	१९५
हस्तिकर्ण (अन्तरद्वीपः)	६९५	२०६
हस्तिनापुर	५७३	२४९
	६८	३९१
	३०१	३९९
	३०७	३९९
	३१३	३९९
	३३१	४००

	श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
	३३२	४००
	३३४	४००
हस्तिमुखः (अन्तरद्वीपः)	६९४	२०६
हस्तिरत्न	१८४	२१९
हास (इन्द्रः)	५२८	२०१
	१८०	२६१
	९४	३०४
हासरतिः (इन्द्रः)	५२८	२०१
	१८०	२६१
हासा (दिक्कुमारी)	२१०	१७३
हाहा (गन्धर्वः)	२३५	२६३
हिमवदद्रि	९५	२२८
हिमवान् (गिरिः)	५६८	२०२
	५७२	२०२
	५६९	२०२
	६	२६९
हिमाचल	२०६	१९१
हिमाचलकुमार (देवः)	२५८	२२१
हिमाचलकुमारक	५५	२२७
	३७	३८८
हिमाद्रि	१८७	२६१
	३१	३०२
	१	३५६
हुण्डावसर्पिणी	१५४	३०६
हूण (म्लेच्छजातिः)	६८०	२०५
	७५	३४६
हूहूः (गन्धर्वः)	२३५	२६३
हृषीकेश (वासुदेवः)	७३९	३३७
हैमवत् (क्षेत्रम्)	५७९	२०२
हैमवतम्	५६६	२०२
हैरण्यवत् (क्षेत्रम्)	५६७	२०२
	५८१	२०२
ह्रीः (दिक्कुमारी)	२१०	१७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीयं परिशिष्टम् ॥

हेमचन्द्र-वचनामृतम् ॥
द्वितीये पर्वणि प्रथमः सर्गः ॥

चिकित्स्यते हि निपुणै-रङ्गोद्भवमपि व्रणम् ॥२७॥
जन्मान्तरानुधावीनि, कर्माणि ऋणवन्नृणाम् ॥६०॥
स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता ॥६५॥
... निश्चिते कार्ये, नालसन्ति मनीषिणः ॥१४३॥
चक्षुष्मानपि किं कुर्या-दन्धकारे प्रसृत्वरे ॥१५१॥
बालेऽपि हि सुते हन्त !, सिंही स्वपिति निर्भरम् ॥१८९॥
गुर्वाज्ञाकरणं सर्व-गुणेभ्यो ह्यतिरिच्यते ॥१९४॥
तिष्ठन्त्येकत्र नर्षयः ॥२६४॥

द्वितीयः सर्गः ॥

महापुमांसो गर्भस्था, अपि लोकोपकारिणः ॥१०६॥
सर्वं हि शुभमेव स्या-ज्जन्मतोऽपि शुभात्मनाम् ॥१३०॥
देवतानां जन्मसिद्धाः, खलु वैक्रियलब्धयः ॥१७२॥
जायते घृष्यमाणाद्धि, दहनश्चन्दनादपि ॥२३८॥
निष्पद्यन्ते सुमनसां, मनसा हीष्टसिद्धयः ॥३०७॥
एकधाऽनेकधा च स्युः, कामरूपा दिवौकसः ॥३३८॥
तापनीये ह्यलङ्कारे, सुतरां द्योतते मणिः ॥४४०॥
सर्वसाधारणी वृष्टि-र्वारिदस्योद्यतस्य हि ॥५३६॥

तृतीयः सर्गः ॥

न केसरिकिशोराणां, पञ्जरे जात्ववस्थितिः ॥७॥
वयो गौणं महात्मनाम् ॥८॥
यथाव्याधि हि भेषजम् ॥७६॥
विनयी हि लघुभ्राता, पुत्रादप्यतिरिच्यते ॥८६॥
कोऽल्पहेतोर्बहु त्यजेत् ? ॥८७॥
राज्यादप्यतिसाम्राज्या-च्चक्रवर्तिपदादपि ।
देवत्वादपि विदुषां, गुरुसेवा गरीयसी ॥८८॥
भावतोऽपि यतिर्यतिः ॥९०॥
सतां ह्यलङ्घ्या गुर्वाज्ञा, मर्यादोदन्वतामिव ॥९३॥
दासन्ति ह्यन्यमणयः, सर्वे चिन्तामणेः पुरः ॥११०॥
पूज्यैरभक्तोऽपि शिशुः, शिष्यते, न तु हीयते ॥१४५॥
गोपुच्छलग्नो हि तरे-न्नदीं गोपालबालकः ॥१५३॥
० ० ० बलवत्, स्वाम्यवज्ञाभयं सताम् ॥३४९॥
० ० ० ऽऽवश्यकविधि-र्दुर्लङ्घ्यो महतामपि ॥३७३॥
निर्धनस्य सुभिक्षेऽपि, दुर्भिक्षं पारिपार्श्विकम् ॥८६६॥
प्रायः प्रावृष ऊर्ध्वं न, तिष्ठन्त्येकत्र संयताः ॥८८०॥
धर्मे धर्मोपदेष्टारः, साक्षिमात्रं शुभात्मनाम् ॥९०७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्णीस्यातां सिद्धरसात्, सीसक-त्रपुणी अपि ।।९०८।।

चतुर्थः सर्गः ।।

० ० ० ० देवतीयन्ति, यदत्राण्यत्रजीविनः ।।८।।

पादचारेणोपस्थानं, पूजातोऽप्यतिरिच्यते ।।११।।
स्वाधिकार प्रमादित्वं, भीतये ह्यधिकारिणाम् ।।१३।।
प्रयान्ति ह्युत्तमस्थाने, भूषणान्यपि भूष्यताम् ।।३२।।
० ० ० ० स्वामिदत्त-माहात्म्याः खलु सेवकाः ।।८२।।
० ० ० भक्तेष्वीशा हि प्रतिपत्तिदाः ।।१०८।।

महात्मनां महर्द्धीना-मुत्सवा हि पदे पदे ।।१३५।।

० ० ० ० कृत्यं, महान्तो न त्यजन्ति हि ।।१४६।।

सेवनीयाश्चक्रिणो हि, देवैरपि नरैरिव ।।१५०।।

कृष्टाश्चेदय इवाऽऽयान्ति, शक्त्या शक्तिमतां श्रियः ।।१७५।।

० ० ० प्रायस्तपोग्राह्या हि देवताः ।।१७८।।

प्रणिपातावसानो हि, कोपाटोपो महात्मनाम् ।।२३९।।

० ० ० ० नास्ति, विदेशः कोऽपि दोष्मताम् ।।२४५।।
तुष्यन्ति हि महीयांसः, सेवामय्या गिराऽपि हि ।।२७२।।
अनुत्सुकानां शक्तानां, लीलापूर्वाः प्रवृत्तयः ।।२८७।।
महात्मानः प्रणयिनां, प्रणयं खण्डयन्ति न ।।३५१।।

पञ्चमः सर्गः ।।

उत्कण्ठा हि बलीयसी ।।१३।।
महत्सु याच्ञाऽन्यस्याऽपि, न मुधा किं पुनस्तुकाम् ।।६१।।
तज्ज्ञानामपि हि नृणां, प्रमाणं भवितव्यता ।।७२।।
आत्मैव हि सुतत्वभाक् ।।७४।।
० ० ० सामवागम्भः, कोपाग्नेः शमनं सताम् ।।१५५।।
नीयते यत्र तत्राम्भो, गच्छत्यृजुपुमानिव ।। १६३ ।।
लोके स्यादनुकम्पायै, सागसामपि निग्रहः ।।१७७।।

षष्ठः सर्गः ।।

अभ्रादपि पतितानां, शरणं धरणी खलु ।।१२।।
सहजाता अपि क्वापि, विपद्यन्ते पृथक् पृथक् ।
पृथग्जाता अपि क्वापि, विपद्यन्ते सहैव हि ।।१५।।
बहवोऽपि विपद्यन्ते, विपद्यन्तेऽल्पका अपि ।
सर्वेषामपि जीवानां, यन्मृत्युः पारिपार्श्विकः ।।५२।।
कालो हि दुरतिक्रमः ।।१३६।।
पितुर्मातुश्च तुल्यं हि, दुःखं सुतवियोगजम् ।।१७२।।
यत्राऽऽकृतिस्तत्र गुणा, इत्यर्भा अप्यधीयते ।।२२६।।
ज्ञानस्य प्रत्ययः फलम् ।।२८०।।
न मायिनामृजूनां चाऽजर्यं शाश्वतवैरिवत् ।।२८३।।
नारीपरिभवं राजन् ! सहन्ते पशवोऽपि न ।।३८९।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्दनास्पदमेको हि, मलयः सानुमानिह ।४०७॥
विमृश्य हि विधातव्य-मल्पीयोऽपि प्रयोजनम् ॥४५३॥
नाऽलं दग्धुं कक्षमग्नि-र्विना वायुं ज्वलन्नपि ॥४८५॥
न हि प्रमाणे प्रत्यक्षे, प्रमाणान्तरकल्पना ॥५०९॥
अदर्शितपथं याति, पयो ह्यन्धवत्कुत्पथे ॥५४२॥
गुणप्रकर्षो विनया-दशक्तस्यापि जायते ॥५४९॥
निसर्गेण विनीतस्य, शिक्षा सद्भित्तिचित्रवत् ॥५५५॥
सोऽध्वा यो महदाश्रितः ॥५८२॥
तुल्या भूस्तुल्यकर्मणाम् ॥५९७ ॥

अथ तृतीयं पर्व । तत्र प्रथमः सर्गः ॥

विवेकिनां विवेकस्य, फलं ह्यौचित्यवर्तनम् ॥९॥
नदीवन्न नदीभर्तु-र्हर्षाय घनागमः ॥१०॥
दुर्लङ्घ्या भवितव्यता ॥२०॥
पात्रोपकारे प्रथमं, महतां यदुपक्रमः ॥३७॥
सरस्या हि सरोजानि, विशिष्यन्ते शरत्क्षणे ॥१२९॥
पङ्कजं पङ्कजमपि, याति पङ्किलतां न हि ॥२९५॥

द्वितीयः सर्गः ॥

सरिदम्भोभिरम्भोधिः, किं माद्यति मनागपि ? ॥२६॥
• ० ० कुलस्त्रियः । पतिव्रतात्वे सतत्व-दर्शीचारस्य गौरवः ॥४६॥

तृतीय सर्गः ॥

प्रतिमायाः प्रभावोऽधि-ष्ठातृदेवोचितः खलु ॥५३॥
हिमं सहेत हेमन्ते, ग्रीष्मे च तपनातपः ।
झञ्झावातोऽपि वर्षासु, न पुनर्यौवने स्मरः ॥७०॥
यौवनैश्वर्यरूपादि-मदस्थानानि शान्तये ।
मान्त्रिकस्येव भूतानि पदातित्वाय, साधनात् ॥८०॥
गृहवासो हि संसार-तरोर्दोहदमुत्तमम् ॥९२॥
दैवस्य विषमा गतिः ॥१४५॥
कः परव्यसनेऽर्तिमान् ? ॥१५१॥
राज्ञा दृष्टः कुदृष्टो वा निर्णयो ह्यपुनर्भवः ॥१५६॥
स्त्रीणां विवादो निर्णेतुं, स्त्रीभिरेव हि युज्यते ॥१६६॥
कोकिलायाः खल्वपत्यं, काक्या पुष्टोऽपि कोकिलः ॥१७६॥

चतुर्थः सर्गः ॥

बाल्ये मूत्र-पुरीषेण, यौवने रतचेष्टितैः ।
वार्धके श्वास-कासाद्यै-र्जनो जातु न लज्जते ॥१३६॥
पुरीषसूकरः पूर्वं, ततो मदनगर्दभः ।
जराजरद्गवः पश्चात्, कदाऽपि न पुमान् पुमान् ॥१३७॥
स्याच्छैशवे मातृमुख-स्तारुण्ये तरुणीमुखः ।
वृद्धभावे सुतमुखो, मूर्खो नाऽन्तर्मुखः क्वचित् ॥१३८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिष्या गुरूणां कुर्वाना-माहात्मा इव तत्क्रियाः ॥१७८॥

पञ्चमः सर्गः ॥

स्यन्दन्ते चन्द्रकान्ता हि, चन्द्रकान्तिप्रभावतः ॥३९॥
अपि त्रिलोकनाथानां, मान्यं हि पितृशासनम् ॥५४॥
० ० ० भगवन्तो हि, कर्मच्छेदाय तत्पराः ॥५५॥

षष्ठः सर्गः ॥

० ० ० धीमानक्षरात् सारमुद्धरेत् ॥१०३॥

सप्तमः सर्गः ॥

भात्यद्रौ न तथा रत्न-मर्थ्याङ्घ्रिकटके यथा ॥४२॥
निर्व्यक्षदेशे क्रियते, स्लेरण्डस्यापि वेदिका ॥१६२॥

अष्टमः सर्गः ॥

विहायसो महत्त्वे हि नोपमानं भवेत् परम् ॥२४॥

अथ चतुर्थ पर्व । तत्र प्रथमः सर्गः ॥

प्रष्टुमर्हो न सामान्य-जनो हि स्वप्नमुत्तमम् ॥१७४॥
श्रेयान् स देशो नो यत्र, श्रूयन्ते दुर्जनोक्तयः ॥२०८॥
यादृशस्तादृशो वाऽपि, पूजनीयः पिता सताम् ॥२१३॥
० ० ० न पूज्यचरितं, चर्चयन्ति मनीषिणः ॥२१४॥
विसंवादो न धीमताम् ॥२२६॥
न ह्याप्ताश्चाद्रुभाषिणः ॥२६५॥
बलिनो यद् बलिभ्योऽपि, बहुरत्ना हि भूरियम् ॥३७६॥
स्वामिनि व्यग्रचित्ते हि, नाऽवकाशः कलावताम् ॥२९०॥
न श्वाऽप्यास्कन्द्यते यस्मात्, स्वामिनः किं पुनः पुमान् ? ॥२९६॥
दूतदृष्टयनुसारेण, प्रवर्तन्ते हि भूभुजः ॥२९८॥
स्वप्रशंसेवाऽन्यनिन्दा, सतां लज्जाकरी खलु ॥३०१॥
राजवद् राजपुत्रोऽपि, मान्यो राजानुजीविनाम् ॥३०४॥
न चपेटा शृगालेषु, क्रोशत्स्वपि मृगद्विषः ॥३१५॥
दन्तिनां दन्तघातस्य, स्थानं नैरण्डपादपः ॥३१७॥
दूता हि प्रतिरूपाणि, प्रभूणां संचरन्त्यमी ॥३२७॥
यत उत्तिष्ठति शिखी, निर्वाप्यस्तत एव हि ॥३२८॥
कवलः शक्यते क्षेप्तुं, नाक्रष्टुं हस्तिनो मुखात् ॥३४०॥
इङ्गितज्ञा हि सेवकाः ॥३४६॥
उग्राणां स्वामिनामग्रे कोऽन्यथा वक्तुमीश्वरः ? ॥३४७॥
प्रमाद्यन्ति शुभात्मानो, न हि ज्ञात्वा मनागपि ॥४३०॥
सर्वस्याऽभ्यागतो गुरुः ॥४७०॥
रत्नं रत्नाकरे हि यत् ॥४९६॥
दूतो हि प्रथमो नये ॥४९७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कन्यादानं सकृत् खलु ।।५०४।।

० ० ० भृत्यानां, प्रमाणं स्वामिशासनम् ।।५०९।।

मार्जारसूनः पुरतः, किं दुग्धमवशिष्यते ? ।।५१२।।

स्वपक्षे हि विपक्षस्थे, स्यादमर्षो विशेषतः ।।५३४।।

का श्लाघा हरिणवधे, हरेः करिविदारिणः ? ।।५४९।।

मन्यावन्तर्मधुनीव, चेतनाऽस्तु कुतो नृणाम् ? ।।५५५।।

प्रेमाऽस्थानेपि भीप्रदम् ।।५७५।।

पुण्याकृष्टं स्वयं सर्वं किं किं न स्यान्महात्मनाम् ? ।।५८८।।

० ० ० सर्पचर्षं हि, सर्पो जानाति नाऽपरः ।।६१७।।

श्रीच्छिदेऽञ्जनलेशोऽपि, धौतस्य श्वेतवाससः ।।६३६।।

बालोऽपि केसरी नेभान्महतोऽपि पलायते ।

महतोऽपि हि किं सर्पात् तार्क्ष्यबालोऽपसर्पति ? ।।७२१।।

क्षत्रियाणां क्रमो ह्येष, युद्धं स्वाम्याज्ञया खलु ।।७५९।।

फलन्ति हि महात्मानः, सेविताः कल्पवृक्षवत् ।।७६५।।

भक्तिमन्तोऽप्रमादेनायुक्तेभ्योऽप्यतिशेरते ।।७९८।।

महतामन्तकालो हि, पर्वणे न पुनः शुचे ।।८६५।।

विषयाक्षिप्तमनसा, गलेद्धि स्वामिशासनम् ।।८७५।।

दुर्लङ्घ्यं शासनं ह्युग्र-शासनानां महीभुजाम् ।।८८२।।

अनुष्ठाने प्रवर्तन्ते, ज्ञात्वा खलु महाशयाः ।।९०५।।

द्वितीयः सर्गः ।।

कस्तृष्येदमृतस्य हि ? ।।६६।।

प्राणान् रक्षेद् धनैरपि ।।१३६।।

राज्ञां भवन्ति दूता हि यथावस्थितवादिनः ।।१६०।।

शूराणां ह्यभिगमनं सुहृदीवाऽसुहृद्यपि ।।१६४।।

तस्य श्रीर्यस्य विक्रमः ।।१८३।।

संजायते व्याधिरिव द्विषन् विषमुपेक्षितः ।।२२३।।

सर्वोऽपि सापराधो हि, छलमन्विष्यते यदा ।।२३०।।

० ० ० जीवन्, नरो भद्राणि पश्यति ।।२६९।।

तृतीयः सर्गः ।।

० ० ० ० ० मान्या, पित्राज्ञा ह्यर्हतामपि ।।५२।।

द्यूतान्धानां कुतो मतिः ? ।।७८।।

क्षत्रियाणां गुणो ह्येष, परस्त्रीहरणं हठात् ।।११४।।

विपरीता मतिः पुंसां, भवेद् दैवे पराङ्मुखे ।।११९।।

हन्यते न खलु श्वाऽपि, स्वामिनो मुखलज्जया ।।१२६।।

वीरभोग्या हि भूरियम् ।।१२९।।

न हि केसरिबूत्कारं, श्रुत्वा तिष्ठन्ति वारणाः ।।१३९।।

काकानां तस्कराणां च, नश्यतां का ननु त्रपा ? ।।१५१।।

नाभूत् पत्युः कलत्रं या; सा स्यादुपपतेः कथम् ? ।।१६४।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्ययात्रा हि सैवाऽभूत्, परमन्यतरो वरः ॥१६७॥

चतुर्थः सर्गः ॥

स्पृशन्नपि गजो हन्ति, जिघ्रन्नपि च पन्नगः ॥११३॥
बन्द्यर्थवादः सर्वोऽपि, किं यथार्थीभवेत् क्वचित् ? ॥१२१॥
अर्थलोभादर्थिजनैः स्तूयमानेन धीमता ।
लज्जितव्यं प्रत्युतापि प्रत्येतव्यं न जातुचित् ॥१२२॥
बलिभ्योऽपि बलितमा, महद्भ्योऽपि महत्तमाः ।
दृश्यन्ते ह्यत्र जगति, बहुरत्ना वसुन्धरा ॥१२३॥
ओजायन्तेऽनोजसोऽपि, दूताः स्वाम्योजसा खलु ॥१३८॥
आदत्ते ह्यम्बु यद्भानुः पुनरुज्झति भूरि तत् ॥१४५॥
श्रियः स्वामिनि रुष्टे हि, न तिष्ठन्ति भयादिव ॥१४६॥
किं रम्भोन्मूलने स्थाम-वर्णनं वरदन्तिनः ? ॥१७८॥
तमांसि हन्ति प्रौढानि, बालोऽपि हि दिवाकरः ॥१८०॥
तेजः प्रमाणं वीराणां, तेजसां कीदृशं वयः ? ॥१८१॥
व्यालोऽपि गरलं मुक्त्वा शाम्येन्न पुनरन्यथा ॥१८२॥

पञ्चमः सर्गः ॥

इष्टस्य दर्शनेनापि शं स्यात् स्पर्शेन किं पुनः ? ॥१०१॥
सर्वार्थसाधकः काय-श्चलत्येव हि भोजनात् ॥१०७॥
नदीमध्यस्थितानां हि, किं करोति दवानलः ? ॥१४९॥
रसान्तरेण हि रसो बाध्यते बलवानपि ॥१५१॥
बालकस्यापि सिंहस्य, को हि देशं प्रयच्छति ? ।
प्रवर्धयति तं को वा ? कुतस्तस्य पराभवः ? ॥१५५॥
सहस्रधा हि फलति, व्यवसायो महात्मनाम् ॥१९०॥
तरवोऽपि निधिं प्राप्य, पादैः प्रच्छादयन्ति यत् ॥३१७॥
अङ्गुल्या पिहिते कर्णे, शब्दाद्वैतं हि जृम्भते ॥३३५॥
अक्ष्णोः पिधाने विहितं, ननु विश्वं चराचरम् ॥३३६॥

सप्तमः सर्गः ॥

हस्त्यश्वे राजपुत्राणां, कौतुकं सर्वतोऽधिकम् ॥९०॥
इन्दोः क्षीरार्णवाज्जन्म मूर्त्याऽपि ह्यनुमीयते ॥२२५॥
रत्नं स्वर्णे हि योज्यते ॥२२६॥
बलिभ्योऽपि छलं बलिः ॥२२९॥
स्वलोभः कस्य नोपरि ? ॥२५४॥
भर्तृगृह्या हि योषितः ॥२६५॥
क्षत्रिया हि रणप्रियाः ॥२६६॥
विक्रान्तो हि श्रियां पदम् ॥२८२॥
याच्ञा ह्यमोघा महता-ममोघं च ऋषेर्वचः ॥२९०॥
मिथ्या न खलु भाषन्ते, महात्मानः कदाचन ॥३५४॥
० ० ० ० मर्त्यानां, क्षणिकं सर्वमेव हि ॥३६४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरिते द्वितीये विभागे शुद्धिपत्रम् ॥

पत्राङ्क	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६३	२१	राज्यसम्पल्लतोतद्भू०	राज्यसम्पल्लतोद्भूत०
१७३	६	अपाच्यरुचशैल०	अपाच्यरुचकशैल०
१७४	२४	सुरा–२ सुर०	सुरा–ऽसुर०
,,	३०	मिथ्यादुष्कृत०	मिथ्या दुष्कृत०
२०७	८	शक्रस्यै०	शक्रस्ये०
२१७	८	शक्रदेश्यदेशे	शक्रदेश्य ! देशे
२१८	३	नभस्थिता	नभःस्थिता
२२८	१७	माला विद्याधरा	मालाविद्याधरा
२५७	२४	लूतया[१८]	लूतया[१९]
२६१	१२	पूर्णोऽवशिष्ट०	पूर्णो वसिष्ट०
२६२	१८	सूत्रामा	सुत्रामा
२६९	५	सुन्दरी	सुन्दरः (?)
२८७	२६	पचयते	पच्यन्ते
२९२	१०	फलादानं	फालादानं
२९६	१४	तीर्थकृन्नाम कर्म	तीर्थकृन्नामकर्म
३०१	१७	० जपमाल	० जपमाला
३३८	९	तच्च कर्त्ता०	तच्चकर्त्ता०
३४४	१३	तीर्थकृन्नाम कर्म	तीर्थकृन्नामकर्म
३४७	३०	प्रदीयमानाध	प्रदीयमानार्घ
३५६	११	तीर्थकृन्नाम कर्म	तीर्थकृन्नामकर्म
३६०	१५	अशेषद् द्विष०	अशेषद्विष०
३६१	टिप्पण्यां २	८ जन्यं–युद्धम्	८ जन्यं 'जान' इति भाषायाम् । बरयात्रा ।
३६४	१४	तीर्थकृन्नाम कर्म	तीर्थकृन्नामकर्म
३६६	१५	सुन्दरी	सुन्दरा
३६८	१२१	यथार्थी भवेत्	यथार्थीभवेत्
३७३	२	स्यान्मोहस्योमशमे	स्यान्मोहस्योपशमे
,,	८	बद्धाः स्कन्धा गन्ध–	बद्धाः स्कन्धा बन्ध–
,,	२५	० ज्ञानावृत्यादिरष्टधा	० ज्ञानावृत्यादिरष्टधा
३७४	६	देशेनातो	देशनातो
३७५	८	जानन्नैद्रीमपि	जानन्नैन्द्रीमपि
,,	१५	तीर्थकृन्नाम कर्म	तीर्थकृन्नामकर्म
३७६	११	अपि पाण्डुकम्बलायां	अतिपाण्डुकम्बलायां
३७७	२	० रिवोन्मरुचकं	० रिवोन्मरुबकं
,,	२०	तस्याभूतामु पत्न्यौभे	तस्याभूतामुभे पत्न्यौ
३७८	२३	० नावपन्ते नकुलस्थितम्	० नावतप्तेनकुलस्थितम्
३७८	२९	नेपथ्यसमुद्रदायाः	नेपथ्यसमुदायाः
३८०	५	पैशून्य०	पैशुन्य०
३८२	२३	श्यमलीकुरुतेतमाम्	श्यामलीकुरुतेतमाम्
३८५	७	अहो ! शैक्षाश्वाश्रौषु०	अहो ! शैक्षा इवाश्रौषु०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८६	१०	असन्तुष्टास्तृणायते	असन्तुष्टास्तृणायन्ते
३८८	१२	खण्डप्रपाताद् द्वारस्थं	खण्डप्रपाताद्वारस्थं
३९१	३०	इत्याख्या ख्यातः	इत्याख्याख्यातः
३९३	१०	सर्व त्राप्रेक्ष्य सहृद०	सर्वत्राप्रेक्ष्य सुहृद०

परिशिष्टे पृ. १० (कॉलम ३) पं. ३९ तः पश्चात् उदयक्षयक्षयोप० ४६३ ३९९

ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષચરિત

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित् ॥

"જે અહીં છે તે અન્ય સ્થળે છે; જે અહીં નથી તે ક્યાંય નથી."

ઉપરનાં વચન મહાભારત માટે લખાયેલાં છે. તે જ વચન ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષચરિતને સારી રીતે લાગુ પડે છે. ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષચરિત એટલે જૈન સંપ્રદાયના સિદ્ધાંતો, કથાનકો, ઈતિહાસ, પૌરાણિક કથાઓ, તત્ત્વજ્ઞાનનો સર્વસંગ્રહ, આખા ગ્રંથનું કદ ૩૬૦૦૦ શ્લોક ઉપરાંત પ્રમાણનું થવા જાય છે. આ મહાસાગર સમાન વિશાલ ગ્રંથની રચના શ્રી હેમચંદ્રાચાર્યે તેમની ઉત્તરાવસ્થામાં કરી હતી. શ્રી હેમચંદ્રાચાર્યની સુધાવર્ષિણી વાણીનાં ગૌરવ અને મીઠાશ એ મહાકાવ્યમાં આપણે અનુભવી શકીએ છીએ. સમકાલીન સામાજિક, ધાર્મિક અને વિચારગત પ્રણાલિકાના. પ્રતિબિંબો એ વિશાલ, ગ્રંથમાં ઘણે સ્થળે આપણે જોઈ શકીએ છીએ. એ રીતે તો ગૂજરાતનો તે કાલનો સમાજ અને તેનું માનસ તેમાં નિગૂઢ રીતે પ્રતિબિંબિત થયા છે. આ દૃષ્ટિએ ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષચરિતનું મહત્ત્વ હેમચંદ્રાચાર્યની કૃતિઓમાં વિશિષ્ટ પ્રકારનું છે. દ્વયાશ્રયમાં જેટલું વૈવિધ્ય તેમનાથી સાધી શકાયું છે તેના કરતાં અનેક પ્રકારે ચઢિયાતું વૈવિધ્ય આ ગ્રંથમાં દૃષ્ટિગોચર થાય છે.

ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષચરિતમાં ૬૩ "શલાકાપુરુષો"માં ચરિતોનું આલેખન કરવામાં આવ્યું છે. "શલાકાપુરુષો" એટલે તે પ્રભાવક પુરુષો જેમના મોક્ષ વિષે સંદેહ નથી. આ ત્રેસઠ શલાકાપુરુષોમાં ૨૪–તીર્થંકર, ૧૨ ચક્રવર્તી, ૯ વાસુદેવ, ૯ બળદેવ, તથા ૯ પ્રતિવાસુદેવનો સમાવેશ થાય છે.

કાવ્યની અને શબ્દશાસ્ત્રની દૃષ્ટિએ તો આ કાવ્યની વાત જ શી કરવી? તેમાં પ્રસાદ છે, કલ્પના છે. શબ્દનું માધુર્ય છે, સરળતા છતાંય ગૌરવ છે. આ નાના પ્રકરણમાં આ બધુંય બતાવવા માટે શી રીતે અવતરણો આપવા. ? જિજ્ઞાસુને તો મૂળગ્રંથ જોવા માટે જ ભલામણ કરવી રહી. એક પરિશીલન કરનાર કહે છે કે "એ ગ્રંથ આખોય સાદ્યંત વાંચવામાં આવે તો સંસ્કૃતભાષાના આખા કોશનો અભ્યાસ થઈ જાય તેવી તેની ગોઠવણ છે"

ત્રિષષ્ટિશલાકાપુરુષચરિતનું આખુંય અવલોકન અને પરિશીલન એ નાના પ્રકરણનો વિષય ન જ થઈ શકે. ૩૬૦૦૦ શ્લોકના અગાધ કાવ્યશક્તિ અને વ્યુત્પત્તિથી ભરેલા ગ્રંથનું પ્રસ્તુત પરિશીલન અત્યંત અલ્પ છે. આખાય ગ્રંથનું સમગ્ર પરીક્ષણ તો એક વિસ્તૃત મહાનિબંધનો વિષય બની શકે. હેમચંદ્રાચાર્યનું કલિકાલસર્વજ્ઞનું બિરૂદ આ એકલો ગ્રંથ પણ સિદ્ધ કરી શકે એવો એ વિશાળ, ગંભીર, સર્વદર્શી છે. એક દિશાસૂચક પ્રકાશશલાકાથી વધારે તો ક્યાંથી આ નાનું લખાણ આપી શકે ? કાલિદાસના શબ્દોમાં "દુસ્તર સમુદ્રને તરાપા"થી ઓળંગવા માટે આશા સેવતા હેમસારસ્વતના ઉપાસકના પ્રયત્ન કરતાં આ પ્રકરણમાં વધારે હોઈ પણ શું શકે ?

—મધુસૂદન મોદી

("હેમસમીક્ષા" માંથી સભાર ઉદ્ધૃત)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org